प्रवचन-क्रम

1. जागो, मन जागरण की बेला 2
2. ओंकारः मूल और गंतव्य 27
3. देह गेह ईश्वर का 49
4. सहज-योग और क्षण-बोध 72
5. जगत--एक रूपक 96
6. सहज-योग का आधारः साक्षी 123
7. जीवन के मूल प्रश्न 148
8. जीवन का शीर्षकः प्रेम 172
9. फागुन पाहुन बन आया घर 197
10. तरी खोल गाता चल माझी 223
11. खोलो गृह के द्वार 249
12. प्रेमः कितना मधुर, कितना मदिर 272
13. प्रार्थना अर्थात संवेदना 298
14. धरती बरसे अंबर भीजे 324
15. प्रेम--समर्पण--स्वतंत्रता 350
16. भोग में योग, योग में भोग 374
17. भाई, आज बजी शहनाई 400
18. हो गया हृदय का मौन मुखर 422
19. प्रेम प्रार्थना है 448
20. हे कमल, पंक से उठो, उठो 474

पहला प्रवचन

जागो, मन जागरण की बेला

मन्तः मंते स्सन्ति ण होइ।
पड़िल भित्ति कि उट्ठिअ होइ।। 1।।

तरुफल दरिसणे णउ अगघाइ।
वेज्ज देक्खि किं रोग पसाइ।। 2।।

जाव ण अप्पा जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।
अंधं अंध कढ़ाव तिम वेण वि कूव पड़ेइ।। 3।।

बह्मणेहि म जाणन्त भेउ।
एवइ पढ़िअउ एच्चउ वेउ।।
मट्टी पाणी कुस लइ पढ़न्त।
घरहि वइसी अग्गि हुणन्त।।
कज्जे विरहइ हुअवह होमें।
अक्खि डहाविअ कडुएं धुम्में।। 4।।

जइ नग्गा विअ होइ मुत्ति ता सुणइ सिआलह।
लोम पारणें अत्थि सिद्धि ता जुवइ णिअम्वह।। 5।।

पिच्छी गहणे दिट्ठि मोक्ख ता मोरह चमरह।
उंछें भोअणें होइ जान ता करिह तुरंगह।। 6।।

जागो, मन जागरण की बेला!
अलस उनींदे नैन उघारो,
सतत तरंगित ज्योति निहारो!
आगत की आरती उतारो,
गत पीड़ामय, दुखद बिसारो!
यत्किंचित नव ज्योति समेटो,
दुख-प्रसंग अध्याय समेटो,
जीवनमय नव कण-कण तोलो,
आशामय नव प्रकरण खोलो।

आगत उदबोधन की बेला;
जागो, मन जागरण की बेला।

बहुरंगी कुसुमावलि कुसुमित,
मादक मारुत-उर्मि तरंगित,
रश्मि-राशि हिल्लोल तरंगित!
वसुधा-अंचल लास तरंगित!
कल-कूजन निर्बाध तरंगित,
नाना सौरभ मदिर तरंगित,
राशि-राशि छवि लास तरंगित,
राशि-राशि नव मोद तरंगित,
जागो, नव प्रमोद की बेला।
जागो, मन जागरण की बेला।

शीत विगत, नव मधु-ऋतु आई,
वन, उपवन, नव सुषमा छाई,
विटप, वेलि कुसुमावलि आई,
पल्लव-पल्लव छवि मुस्काई!
व्योम वितान नील छवि छाई,
मदिर सुरभि चल अनिल समाई,
कण-कण व्याप्त अनंग लुनाई,
प्रकृति नवोढ़ा बन मुस्काई!
जागो, मन बसंत की बेला।
जागो, मन जागरण की बेला!

और जब जाग जाओ, तभी सुबह है और जब तक सोये रहो, तब तक रात है। जागे को सदा सुबह है, सोये को सदा रात है। रात्रि बाहर नहीं और न प्रभात बाहर है। सूरज तुम्हारे भीतर उगना है; तभी होगी वास्तविक सुबह। बाहर के सूरज उगते हैं, डूबते हैं; भीतर का सूरज उगा तो फिर डूबता नहीं।

जागो, मन जागरण की बेला! और जागरण की बेला हमेशा है। ऐसा कोई क्षण नहीं जब तुम जाग न सको। ऐसा कोई पल नहीं जब तुम पलक न खोल सको। आंख बंद किये हो, यह तुम्हारा निर्णय है। आंख खोलना चाहो, तो इसी क्षण क्रांति घट सकती है। और समस्त सिद्धों ने, समस्त बुद्धों ने बार-बार यही पुकारा है, बार-बार यही कहा है, कि चाहो तो अभी जाग जाओ। ये स्वप्न तुम्हारे निर्मित हैं। ये चिंताएं तुमने ही फैला रखी हैं। यह नर्क तुमने ही बसा रखा है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई और जिम्मेवार नहीं है। कोई दूसरा तुम्हें जगा भी न सकेगा। कोई लाख उपाय करे, तुमने निर्णय किया हो न जागने का तो सब उपाय व्यर्थ चले जायेंगे।

जैसे कभी तुम आंख बंद किये बैठे हो, सूरज आ भी जाये, तुम्हारी आंख पर भी सूरज की किरणें बरसने लगें, तुम्हारी पलकों को पार करके भी किरणें तुम्हारी आंख तक पहुंचने लगें, धीमी-धीमी रोशनी भी होने लगे

तो भी तुम आंख न खोलो तो सूरज क्या करेगा? ऐसे ही सदगुरु आते हैं और जाते हैं। उनकी मौजूदगी में तुम्हारी बंद पलकों में से भी थोड़ी-सी किरणें प्रवेश कर जाती हैं, मगर तुम आंख खोलते नहीं। तुम उन थोड़ी-सी किरणों के आसपास भी स्वप्नों के नये जाल गूंथ लेते हो, शब्दों और सिद्धांतों के नये जाल गूंथ लेते हो।

सिद्ध तुम्हें जगाने आते हैं, लेकिन तुम हिंदू हो जाते, मुसलमान हो जाते, ईसाई हो जाते, जैन हो जाते, बौद्ध हो जाते। जागते नहीं, तुम नींद में एक नयी करवट ले लेते, तुम नींद में एक नया स्वप्न देखने लगते हो! इसलिये सदियों-सदियों में जगाने वाले लोग रहे हैं, मगर तुम हो कि सोये ही रहे।

आगत उदबोधन की बेला

जागो, मन जागरण की बेला

जागो, नव प्रमोद की बेला

जागो, मन जागरण की बेला

जागो, मन बसंत की बेला

जागो, मन जागरण की बेला!

वसंत आया हुआ है। द्वार पर दस्तक दे रहा है। लेकिन तुम द्वार बंद किये बैठे हो।

जिस अपूर्व व्यक्ति के साथ हम आज यात्रा शुरू करते हैं, इस पृथ्वी पर हुए अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तियों में वह एक है। चौरासी सिद्धों में जो प्रथम सिद्ध है, सरहपा उसके साथ हम अपनी यात्रा आज शुरू करते हैं।

सरहपा के तीन नाम हैं, कोई सरह की तरह उन्हें याद करता है, कोई सरहपाद की तरह, कोई सरहपा की तरह। ऐसा प्रतीत होता है सरहपा के गुरु ने उन्हें सरह पुकारा होगा, सरहपा के संगी-साथियों ने उन्हें सरहपा पुकारा होगा, सरहपा के शिष्यों ने उन्हें सरहपाद पुकारा होगा। मैंने चुना है कि उन्हें सरहपा पुकारूं, क्योंकि मैं जानता हूं तुम उनके संगी-साथी बन सकते हो। तुम उनके समसामयिक बन सकते हो। सिद्ध होना तुम्हारी क्षमता के भीतर है।

सिद्धों में और तुममें समय का फासला हो, स्वभाव का फासला नहीं है। स्वभाव से तो तुम अभी भी सिद्ध हो। सोये हो सही, जैसे बीज में सोया पड़ा है अंकुर; समय पाकर फूटेगा, पल्लव निकलेंगे। जैसे मां के गर्भ में बच्चा है, समय पाकर जन्मेगा। समय का ही फासला है। तुममें, सिद्धों और बुद्धों में, स्वभाव का जरा भी फासला नहीं है। तुम ठीक वैसे ही हो जैसे बुद्ध, जैसे महावीर, जैसे मुहम्मद, जैसे कृष्ण, जैसे सरहपा। यह तो पहला सूत्र है जो स्मरण रखना, क्योंकि सरहपा इसीकी तुम्हें याद दिलायेंगे। और इस सूत्र की जिसे ठीक से प्रतीति हो जाये, इस सूत्र की अनुभूति हो जाये, इस सूत्र को जो हृदय में समा ले, सम्हाल ले, उसका नब्बे प्रतिशत काम पूरा हो गया।

सिद्ध होना नहीं है--सिद्ध तुम हो, ऐसा जानना है। सिर्फ जानना है, सिर्फ जागना है। वसंत आया ही हुआ है, द्वार पर दस्तकें दे रहा है। तुम पलक खोलो और सारा जगत अपरिसीम सौंदर्य से भरा हुआ है। तुम पलक खोलो, और उत्सव से तुम्हारा मिलन हो जाये! विषाद कटे, यह रात का अंधेरा कटे। यह रात का अंधेरा, बस तुम्हारी बंद आंख के कारण है।

सरहपा जन्म से ब्राह्मण थे, लेकिन जन्म से ही ब्राह्मण न रहे, अनुभव से भी ब्राह्मण हो गये। जन्म से तो बहुत लोग ब्राह्मण होते हैं, मगर जन्म के ब्राह्मणत्व का कोई भी मूल्य नहीं है, दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। ठीक से समझो तो जन्म से सभी शूद्र होते हैं। जन्म से कोई ब्राह्मण कैसे होगा? नाममात्र की बात है। ब्राह्मण तो अनुभव की बात है, बोध की बात है। ब्रह्म को जो जाने, सो ब्राह्मण। ब्रह्म को जो पहचाने, सो ब्राह्मण। तो जन्म

से तो सभी शूद्र हैं। जो जाग जाये वही ब्राह्मण; जो सोया है वह शूद्र--ऐसी परिभाषा करना। जो जागा है वह ब्राह्मण।

सरहपा जन्म से ब्राह्मण थे, लेकिन जन्म से ही ब्राह्मण न रहे, अनुभव से भी ब्राह्मण हो गये। बड़े पंडित थे और यह विरल घटना है, कि पंडित और सिद्ध हो जाये। यह काम अति कठिन है। अज्ञानी सिद्ध हो जाये, यह उतना कठिन नहीं है; लेकिन पंडित सिद्ध हो जाये, यह बहुत कठिन है। कारण? अज्ञानी को इतना तो भाव होता ही है कि मैं अज्ञानी हूं, मुझे पता नहीं; इसलिए अकड़ नहीं होती, अहंकार नहीं होता। अज्ञान में एक निर्दोषता होती है। छोटे बच्चे का अज्ञान, दूर जंगल में बसे आदिवासी का अज्ञान--उसमें तुम्हें एक निर्दोष भाव मिलेगा; दंभ न मिलेगा जानने का। और दंभ जानने में सबसे बड़ी बाधा है। अहंकार भटकाता है, बहुत भटकाता है।

और सरहपा बड़े पंडित थे, नालंदा के आचार्य थे। नालंदा में तो प्रवेश भी होना बहुत कठिन बात थी। नालंदा में विद्यार्थी जो प्रवेश होते थे, उनको महीनों द्वार पर पड़े रहना पड़ता था। प्रवेश-परीक्षा ही जब तक पूरी न होती तब तक द्वार के भीतर प्रवेश नहीं मिलता था। नालंदा अदभुत विश्वविद्यालय था! दस हजार विद्यार्थी थे वहां और हजारों आचार्य थे और एक-एक आचार्य अनूठा था। जो नालंदा का आचार्य हो जाता, उसके पांडित्य की तो पताका फहर जाती थी सारे देश में।

सरहपा नालंदा के आचार्य थे; बड़ी उनकी कीर्ति थी, बड़ा उनका पांडित्य था! एक दिन सारे पांडित्य को लात मार दी। धन को छोड़ना आसान है, पद को छोड़ना आसान है, पांडित्य को छोड़ना बहुत कठिन है। क्योंकि धन तो बाहर है; चोर चुरा लेते हैं, सरकारें बदल जायें, सिक्के न पुराने चलें, बैंक का दीवाला निकल जाये... । धन का क्या भरोसा है! धन तो बाहर की मान्यता पर निर्भर है। लेकिन ज्ञान तो भीतर है, न चोर चुरा सकते, न डाकू लूट सकते। तो ज्ञान पर पकड़ ज्यादा गहरी होती है। ज्ञान अपना मालूम होता है। इसे कोई छीन नहीं सकता। यह दूसरों पर निर्भर नहीं है। यह धन ज्यादा सुरक्षित मालूम होता है। फिर ज्ञान के साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है, धन के साथ हमारा तादात्म्य कभी नहीं होता। तुम्हारे पास हजारों सिक्कों का ढेर लगा हो, तो भी तुम ऐसा नहीं कहते कि मैं यह सिक्कों का ढेर हूं। तुम जानते हो ये सिक्के मेरे पास हैं, कल मेरे पास नहीं थे, कल हो सकता है मेरे पास फिर न हों। तुम ज्यादा से ज्यादा सिक्कों की मालकियत कर सकते हो। वह मालकियत भी बड़ी संदिग्ध है। हजार-हजार परिस्थितियों पर निर्भर है।

लेकिन ज्ञान के साथ तादात्म्य हो जाता है। तुम जो जानते हो, वही हो जाते हो। वेद को जानने वाला अनुभव करने लगता है कि जैसे मैं वेद हो गया। कुरान जिसे कंठस्थ है उसे अनुभव होने लगता है कि जैसे मैं कुरान हो गया। ज्ञान मन के इतने गहरे में है कि आत्मा उसके साथ अभिभूत हो जाती है; इतना निकट है कि तादात्म्य हो जाता है। इसलिए दुनिया में लोग और सब आसानी से छोड़ देते हैं... ।

मेरे एक परिचित, सब छोड़कर जंगल चले गये। जंगल से मैं गुजरता था, किसी यात्रा पर था, तो मैंने, जो मित्र मुझे अपनी गाड़ी से ले जा रहे थे, उनसे कहा कि एक पांच-सात मील का चक्कर होगा, लेकिन मेरे एक पुराने परिचित हैं, वे सब छोड़-छाड़ चुके हैं--धन, पद-प्रतिष्ठा, वे इस जंगल में हैं, उनसे मिलते चलें। उन्हें मिलने मैं गया। उन्होंने सब छोड़ दिया था, लेकिन सब छोड़कर भी वे जैन थे सो जैन ही थे!

मैंने उनसे पूछाः तुम सब छोड़ आये--समाज छोड़ दिया, घर छोड़ दिया, पत्नी-बच्चे छोड़ दिये, धन छोड़ दिया--लेकिन जिस समाज ने तुम्हें यह जैन होने की भ्रांति दी थी, उस समाज को तो छोड़ आये, मगर भ्रांति को तुम लिये बैठे हो! अभी भी तुम जैन हो!

उनको एकदम से समझ में न आया कि यह कैसे छोड़ा जा सकता है!

जैन होना क्या है? ज्ञान की एक खास राशि। हिंदू होना क्या है? ज्ञान की एक दूसरी राशि। ईसाई होना क्या है? ज्ञान की तीसरी राशि। जिसने बाइबिल से अपना ज्ञान चुना है वह ईसाई है और जिसने गीता से अपना ज्ञान चुना है वह हिंदू है। सब छोड़कर आदमी चला जाता है। तुम देखते हो, संन्यासी हैं, सब छोड़ देते हैं मगर फिर भी हिंदू हैं सो हिंदू हैं, ज्ञान नहीं छूटता। और जब तक ज्ञान न छूटे, तब तक जानना कुछ भी नहीं छूटा। समाज मत छोड़ो, चलेगा। घर-द्वार मत छोड़ो, चलेगा। मगर ज्ञान छोड़ दो; क्योंकि ज्ञान के कारण तुम्हें भ्रांति हो रही है कि मुझे मालूम है, जबकि तुम्हें मालूम नहीं है। मालूम तुम्हें तभी हो सकता है जब तुम पहले यह अंगीकार कर लो कि मुझे मालूम नहीं है। ज्ञान की यात्रा ही अज्ञान के बोध से शुरू होती है।

अदभुत व्यक्ति रहे होंगे सरहपा! एक दिन पांडित्य को लात मार दी। अज्ञानी हो गये। सब छोड़-छाड़ दिया। शास्त्र, जानकारी, उपाधियां--सब छोड़ दिया। एक फक्कड़ फकीर हो गये। अज्ञानी की तरह घूमने लगे। मुझे कुछ मालूम नहीं है, ऐसी घोषणा करने लगे। और जो आदमी ऐसी घोषणा करे कि मुझे कुछ मालूम नहीं है, मालूम होने के करीब उसके दिन आ गये, समय आ गया; क्योंकि अहंकार गिर गया, अब रुकावट कहां रही! अहंकार की दीवाल ही तोड़े थी।

ख्याल करना, जानने के लिए छोटे बच्चे जैसा सरल हो जाना जरूरी है। जानने के लिए फिर आंखों में वही आश्चर्य चाहिए जो छोटे बच्चों की आंखों में होता है--और वही निर्मलता, वही निर्दोष भाव! वही छोटी-से-छोटी चीज को देखकर अवाक हो जाना! वृक्ष से आता हुआ धूप का एक टुकड़ा--और बच्चा आश्चर्य-विमुग्ध हो जाता है। जैसे सोने की ढेरी मिल गयी हो! ... कि हवाओं का गुजरना वृक्षों से और वृक्षों का नाच, वृक्षों से टकरा कर होता हुआ नाद--और छोटा बच्चा नाच उठता है, मग्न हो जाता है! फूल खिल जायें, कि तितलियां उड़ने लगें, कि कोयल पुकार ले--और छोटे बच्चे का सारा प्राण रस-विमुग्ध हो जाता है।

लेकिन तुम गुजर जाते हो ऐसे, जैसे कुछ भी नहीं हो रहा। वृक्षों से छनती हुई धूप, उस धूप में छाया हुआ रहस्य तुम्हें आंदोलित नहीं करता। न नाचते हुए वृक्ष तुम्हें प्रभावित करते हैं, न आकाश के तारे तुम्हें छूते हैं। तुम अस्पर्शित गुजर जाते हो। तुमने चारों तरफ ज्ञान की इतनी राशियां इकट्ठी कर ली हैं, इतनी पर्तें इकट्ठी कर ली हैं कि तुम्हारी जानकारी के कारण तुम्हारा आश्चर्य का भाव मर गया है। और आश्चर्य के भाव से ही कोई परमात्मा को अनुभव कर सकता है। आश्चर्यविमुग्ध जो है वही प्रार्थना में रत है। आश्चर्य प्रार्थना की शुरुआत है। और तुम्हारा ज्ञान आश्चर्य को मार डालता है, आश्चर्य की गर्दन घोंट देता है।

सरहपा को यह अनुभव हुआ होगा कि यह जो मैंने शास्त्रों से सीख लिया है, मेरा नहीं है, उधार है, बासा है। इसका कोई मूल्य नहीं है। मैंने तो जाना नहीं, किसी और ने जाना है। किसी और के जानने से क्या होगा? किसी और ने रोशनी देखी, इससे मैंने तो रोशनी नहीं देख ली। और किसी और ने भोजन किया तो मुझे पोषण न मिला। और कोई और चला तो मेरी मंजिल तो आयी नहीं। मैं चलूं तो मेरी मंजिल आये। मैं देखूं तो मुझे दर्शन हो। और मैं जल पिऊं तो मेरी प्यास बुझे। एक दिन यह बात समझ में आ गयी होगी।

यह बहुत बिरली घटना है। पंडित को यह बात समझ में नहीं आती। आए तो भी पंडित समझना नहीं चाहता। क्योंकि इसका मतलब हुआ कि वह इतने दिन तक, वर्षों तक जो पांडित्य इकट्ठा किया था, उसे छोड़ना होगा। तो वे सारे वर्ष व्यर्थ गये! तो वे सारी चेष्टाएं, वह रात देर-देर तक जाग कर शास्त्रों के साथ सिर फोड़ना, शब्दों का संग्रह, और उन शब्दों और शास्त्रों के कारण मिली प्रतिष्ठा, अहंकार पर चढ़ी हुई पुष्पमालायें, वे सब व्यर्थ गईं! तो इतने दिन मूढ़ता में बीते! इतनी हिम्मत कम होती है।

जैसे-जैसे व्यक्ति प्रसिद्ध होने लगता है वैसे-वैसे मुश्किल होने लगती है।

मैंने सुना है कि एक कवि का सम्मान किया जा रहा था--उसका साठवां वर्ष मनाया जा रहा था। बड़ी फूलमालायें चढ़ाई गयी थीं, बड़े प्रशस्ति में गीत पढ़े गये थे। लेकिन कवि था कि कुछ उदास बैठा था। किसी संगी-साथी ने पूछा कि आज उदास होने का दिन नहीं, आज इतने उदास क्यों हो? तो उस कवि ने कहाः सच बात यह है, यह सारा स्वागत-समारोह, ये फूलमालायें, ये प्रशस्तियां, मुझे याद दिला रही हैं कि मैं कभी कवि होना ही नहीं चाहता था। मैंने कभी चाहा नहीं था कवि होना। यह तो मजबूरी में, पैसे कमाने के लिए मैंने कवितायें लिखनी शुरू की थीं। मुझे इनमें कभी रस भी नहीं आया।

तो उस मित्र ने पूछा कि फिर तुम साठ वर्ष तक राह क्या देखते रहे? छोड़ क्यों न दिया कवितायें बनाना?

उन्होंने कहाः कैसे छोड़ता? धीरे-धीरे मैं प्रसिद्ध हो गया। जब तक छोड़ने की नौबत आती, जब तक इतना पैसा मेरे पास हुआ कि मैं छोड़ सकता था, तब तक मैं प्रसिद्ध हो गया था, तब तक लोग मुझे महाकवि समझने लगे थे। फिर कैसे छोड़ता?

जब तुम्हारे अहंकार की तृप्ति होने लगे, तब छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है, अति कठिन हो जाता है। फिर तुम्हारा मन भी न लगता हो तो भी आदमी बोझ को ढो लेता है--थोड़े दिन की बात और है, मौत तो आती ही होगी। अब साठ वर्ष तो हो ही गये और दस-पांच वर्ष खींच लो। अब इतनी प्रसिद्धि मिल गई है, अब इस प्रसिद्धि को क्यों गंवाना! अकसर ऐसा हो जाता है कि प्रसिद्धि के लिए लोग अपनी आत्मायें खो देते हैं, अपने जीवन की सारी संभावनायें खो देते हैं।

इसलिए मैं कहता हूंः पंडित को ज्ञान कठिन बात है।

सरहपा बड़े हिम्मत के आदमी रहे होंगे। उनके शब्दों से भी मालूम पड़ता है कि बड़े जानदार व्यक्ति थे। सदियां बीत गयीं, लेकिन उनके शब्दों में ऐसी अंगार है अभी भी, कि अभी भी तुम्हें तिलमिला देंगे। पांडित्य छोड़ा, नालंदा छोड़ा--और उस समय का एक बहुत फक्कड़ों का संप्रदाय था, वज्रयान, उसमें सम्मिलित हो गये। यह जमात ऐसी ही थी जैसी मेरी जमात है। इसमें जिनको तुम समादृत कहो, प्रतिष्ठित कहो, ऐसे लोग सम्मिलित नहीं होते थे। इसमें तो तुम उन्हीं को देख पा सकते थे, जिनको बगावती कहो, क्रांतिकारी कहो--जो लात मार दें सारी प्रतिष्ठा पर, समाज के सम्मान पर।

वज्रयान बड़े हिम्मतवर लोगों का समूह था। वज्रयान की मूल धारणा है कि जो है उसे ऐसे जाना जा सकता है, जैसे बिजली की कौंध होती है। एक क्षण में सब दिखाई पड़ जाता है। सत्य को जानने के लिए कोई क्रमिक आरोहण की जरूरत नहीं है, क्योंकि सत्य दूर नहीं है कि उस तक पहुंचने में समय लगे। सत्य तो यहीं मौजूद है; बिजली कौंध जाए, जैसे बिजली कौंध जाए, ऐसा अभी मिल सकता है, इसी क्षण मिल सकता है। साहस चाहिए। त्वरा चाहिए। तो जैसे कोई तलवार से एक ही झटके में गर्दन काट दे, ऐसे एक ही झटके में सिद्धावस्था प्राप्त हो सकती है। यही मैं भी तुमसे कह रहा हूंः क्रमिक उपलब्धि की बात कि धीरे-धीरे मिलेगा, कि जनम-जनम श्रम करेंगे तब मिलेगा, भ्रांत है। इसलिए भ्रांत है कि मौलिक रूप से मन यही चाहता है कि कल पर टाला जा सके। और क्रमिक विकास की धारणा में कल पर टालने की सुविधा है। कल मिलेगा, परसों मिलेगा, अगले जन्म में मिलेगा; आज तो नहीं मिलने वाला है। इसलिए आज तो तुम जो कर रहे हो करो, जैसे हो रहो, कल की फिक्र करो।

वज्रयान कहता हैः अभी मिल सकता है, यहीं, इसी क्षण! या तो इसी क्षण या कभी नहीं। या तो अभी या कभी नहीं। और जब भी मिलेगा तब अभी ही मिलेगा। क्योंकि अभी के अतिरिक्त और कोई समय नहीं है। आज के अतिरिक्त कोई दिन नहीं। कल कभी आया है? जिस कल पर तुम टाले चले जाते हो, वह तुम्हारे टालने का उपाय है, और कुछ भी नहीं। तुम्हारी बेईमानी का एक ढंग है समय। समय तुम्हारी ईजाद है। फूल अभी खिल रहे हैं, वृक्ष अभी बढ़ रहे हैं, पक्षी अभी गीत गा रहे हैं, सूरज अभी निकला है--और तुम... तुम कल खिलोगे! और तुम कल गीत गाओगे! तुम कल उगोगे! कल कभी आता है? फूलों ने नहीं टाला कल पर, वृक्षों ने नहीं टाला कल पर, पक्षियों ने नहीं टाला कल पर, आदमी ने कल पर टाला है।

सिवाय आदमी के और कोई भविष्य में नहीं जी रहा है। सिर्फ इसीलिए आदमी भर परेशान है, और कोई परेशान नहीं है। वृक्ष अशांत नहीं हैं। तुम वृक्षों ं को मनोवैज्ञानिकों के पास जाते नहीं देखते हो। और न पशु-पक्षी अशांत हैं।

तुमने कभी किसी पशु-पक्षी के चेहरे पर तनाव की, बेचैनी की रेखायें देखीं? कभी कोई पशु-पक्षी जंगल में स्वाभाविक अवस्था में तुमने पागल होते सुना? हां कभी-कभी सर्कस के जानवर पागल हो जाते हैं, अजायबघर के जानवर पागल हो जाते हैं--वह आदमियों के कारण। उनका जुम्मा आदमियों पर है। अब कोई जानवर सर्कस में रहने को थोड़े ही बना है, कि अजायबघर में रहने को बना है।

ऐसा समझो कि पशुओं की दुनिया हो और उसमें अजायबघर हों जिनमें आदमी बंद हों, उनकी क्या हालत होगी? और पशु देखने आयें... हाथी चले आयें, घोड़े चले आयें, गधे चले आयें देखने आदमी को अजायबघर में, और आदमी घूम रहा है कटघरे में। जैसे आदमी पागल हो जाए, ऐसे तुम्हारे अजायबघरों में तुम्हारे जानवर कभी-कभी पागल हो जाते हैं। तुम्हारे कारण। लेकिन प्रकृति में पागलपन घटता ही नहीं। प्रकृति पागलपन को जानती नहीं। क्यों? अशांति ही नहीं है तो विक्षिप्तता कैसे होगी? अशांति नहीं है, क्योंकि समय ही नहीं है, तो अशांत कोई कैसे होगा?

इसे थोड़ा समझ लेना, तो ये सूत्र समझ में आने आसान हो जायेंगे।

अशांत होने के लिए समय चाहिए। अशांत होने के लिए अतीत का भाव चाहिए, भविष्य का भाव चाहिए। अतीत की याददाश्त चाहिए अशांत होने के लिए। वह जो दस साल पहले किसी ने गाली दी थी, वह अभी भी चुभनी चाहिए। गाली भी गई, देने वाले भी गये, समय भी गया, मगर तुम भीतर चुभाए बैठे हो। तुम उसे पकड़े बैठे हो। तुम उसे ढो रहे हो। वर्षों पहले की याददाश्तें तुम्हारे चित्त पर बोझिल होनी चाहिए तो तुम अशांत हो सकते हो। और भविष्य की कल्पना होनी चाहिए कि कल ऐसा करेंगे, परसों ऐसा करेंगे। योजनायें, कल्पनायें भविष्य की और स्मृतियां अतीत की--इन दोनों के बीच में ही पिसकर तुम पागल होओगे। इन दो चक्की के पाट के बीच जो फंस जाता है वह बच नहीं पाता।

और मजा यह है कि दोनों ही चक्की के पाट झूठे हैं। अतीत जा चुका, अब नहीं है और भविष्य अभी आया नहीं। सच्चा तो सिर्फ वर्तमान है। सच्चा तो यह क्षण है। नगद तो केवल यह क्षण है। इस क्षण में कैसी अशांति? जरा सोचो, गुनो! इस क्षण में कैसी अशांति? मत आने दो अतीत को, मत आने दो भविष्य को, फिर इस क्षण में तुम अशांति खोज सकोगे? चेष्टा भी करोगे तो अशांत न हो सकोगे। वर्तमान अशांति जानता ही नहीं।

अब यह बड़ा मजा है कि आदमी भविष्य की कल्पना करके अशांति खड़ी करता है और फिर भविष्य में ही शांत होने की योजना भी बनाता है। उससे अशांति और कई गुनी हो जाती है। और भविष्य को हम फैलाये चले जाते हैं। इस जन्म में ही हमारे भविष्य का विस्तार नहीं है, हम अगले जन्मों में भी फैलाते हैं। हमारी

वासनायें इतनी हैं कि इस जन्म में भी पूरी नहीं होती उनकी कल्पना, अगले जन्म में होगी। और-और जन्म, और-और जन्म... आगे फैलाये चले जाते हैं। सारा बोझ तुम्हारी छाती पर पड़ता है। तुम टूट जाते हो। इसी बोझ के नीचे दबा हुआ आदमी अशांत होता है।

वज्रयान कहता हैः वर्तमान में जीयो। इस क्षण के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है। और जिस दिन तुम इस क्षण में जीयोगे, सहज हो जाओगे। वज्रयान सहज योग है।

वज्रयान क्यों नाम पड़ाः वज्र की भांति चोट करता है, और एक ही चोट में फैसला कर देता है।

सरहपा पालवंशीय राजा धर्मपाल के समकालिक थे। धर्मपाल का समय ईस्वी. 768-809 माना जाता है। पूर्वी प्रदेश के किसी राज्ञी नगरी के निवासी थे। इस नगरी का अब कोई पता नहीं चलता। कभी महानगरी रही होगी, अब तो खंडहर भी नहीं मिलते। ऐसी ही हमारी नगरियां भी खो जाएंगी। ऐसे ही जहां बस्तियां हैं, मरघट बन जाते हैं; जहां मरघट हैं वहां बस्तियां बन जाती हैं।

हड़प्पा की खुदाई में सात पर्तें मिलीं, कि हड़प्पा सात बार बसा और सात बार उजड़ा। एक-एक नगर के नीचे न-मालूम कितने नगर दबे पड़े होंगे। तुम जहां बैठे हो, वैज्ञानिक हिसाब लगाकर कहते हैं कि एक-एक आदमी के नीचे कम-से-कम दस-दस आदमियों की लाश गड़ी है। इतने आदमी इस जमीन पर हो चुके हैं। और मर चुके हैं कि सारी जमीन मरघट हो गयी है। अब तुम मरघट जाने से मत डरा करो। तुम जहां हो मरघट पर ही हो। मरघट के अलावा अब कोई जगह बची नहीं है। सब तरफ कब्रें ही कब्रें हैं। और एक-एक जगह न मालूम कितनी बार भवन बने, मंदिर उठे! और कितनी बार भवन गिरे, मंदिर गिरे! धूल में मिल गये। मगर आदमी बड़ा अदभुत है! वह इसी तरह के विचारों में पड़ा रहता है।

मैं मांडवगढ़ एक मित्र के साथ था। मांडवगढ़ कभी सात लाख लोगों की आबादी का नगर था। प्रमाण भी हैं कि सात लाख लोग रहे होंगे। खंडहर बताते हैं। इतने खंडहर हैं कि किसी जमाने की बड़ी महानगरी रही होगी। मांडवगढ़ उसका नाम था तब। इतनी बड़ी मस्जिदें हैं कि जिनमें दस-दस हजार लोग एक साथ नमाज पढ़ सकें। अब तो खंडहर ही हैं। इतनी-इतनी बड़ी धर्मशालायें हैं कि जिनमें दस-दस हजार लोग एक साथ ठहर सकें। इतनी बड़ी-बड़ी घुड़सालें हैं जिनमें हजारों घोड़े एक साथ रुक सकें, हजारों ऊंट एक साथ रुक सकें। किसी जमाने में जब ऊंटों से ही सारी यात्रा होती थी, मांडवगढ़ बड़ी प्रसिद्ध नगरी थी।

अब मांडवगढ़ नहीं बचा। अब उसका नाम हैः मांडू। अब वहां केवल तीन सौ पांच आदमी रहते हैं। कुल आबादी! जिस होटल में मैं ठहरा था, बस वही एक होटल यात्रियों के लिए है। जिन मित्र के साथ ठहरा था, वह मित्र विचार कर रहे थे। इंदौर में उन्हें एक भवन बनाना है, कैसे बनाना है। वह सब ले आये थे नक्शे, मुझे दिखा रहे थे कि मैं चुन दूं, कि किस तरह का। स्थिति मुझे बड़ी विडंबना की मालूम पड़ी। मैंने उनसे कहाः जरा बाहर चलो। उन्होंने कहाः बाहर क्या होगा? मैंने कहाः जरा देखो, यह मांडू जो कभी मांडवगढ़ था, यहां बड़े महल थे। सब गिर गये! सब मिट्टी में पड़े हैं। और तुम इतनी उत्सुकता से महल बनाने के लिए आतुर हो! चौबीस घंटे तुम्हें एक ही धुन सवार है कि ऐसा महल बने कि इंदौर में कोई दूसरा महल न हो। सब गिर जायेंगे। लोगों का पता नहीं चलता, लोगों की बनाई हुई चीजों का पता नहीं चलता। मगर इन पर ही हम सब कुछ लगा देते हैं। और जो वास्तविक धन है उसकी तलाश ही नहीं हो पाती।

"राज्ञी" नगरी की बड़ी खोज की गयी है, लेकिन कहीं पता भी नहीं चलता कि यह नगरी कभी थी भी। निशान भी नहीं मिलते, सबूत भी नहीं रह गये हैं। ऐसे ही सब खो जाता है। नहीं जागोगे, नहीं सम्हलोगे तो ऐसा ही कुछ व्यर्थ करते रहोगे, जिसके मिट्टी में निशान भी नहीं छूटेंगे।

जागो! जागरण की यही बेला है। सरहपा जैसे जागे वैसे ही तुम भी जागो।

सरहपा का स्वर क्रांति का स्वर है। समस्त जानने वालों का स्वर क्रांति का ही स्वर रहा है। जहां क्रांति न हो, समझना ज्ञान नहीं है। ज्ञान अग्नि की भांति है--प्रज्वलित अग्नि की भांति! और जो ज्ञान से गुजरेगा वह अग्नि में जलकर कुंदन हो जाता है। और बिना जले कोई भी कुंदन नहीं होता। बिना आग से गुजरे, बिना अग्नि-परीक्षा दिए कोई भी शुद्ध नहीं होता है।

लेकिन लोगों को धर्म के साथ क्रांति के जोड़ने की बात ठीक नहीं लगती। धर्म के साथ तो लोग शांति को जोड़ते हैं, क्रांति को नहीं जोड़ते। धर्म के साथ तो लोग सांत्वना को जोड़ते हैं, सत्य को नहीं जोड़ते। धर्म के साथ संप्रदाय को जोड़ते हैं, साधना को नहीं जोड़ते। धर्म संप्रदाय नहीं है, साधना है। धर्म सांत्वना नहीं है, सत्य है। धर्म शांति नहीं है, क्रांति है। यद्यपि क्रांति से अपूर्व शांति मिलती है, लेकिन वह गौण है। वह लक्ष्य नहीं है।

और कोई भी व्यक्ति जो दकियानूसी है, धार्मिक नहीं होता, न हो सकता है। जो परंपराग्रस्त है, धार्मिक नहीं होता। धर्म की कोई परंपरा नहीं होती। क्रांति की कहीं कोई परंपरा होती है?

धर्म लीक पर नहीं चलता--अपनी पगडंडी खोजता है, अपना मार्ग बनाता है। लीक पर तो भेड़ें चलती हैं, भीड़ में तो भेड़ें चलती हैं। भेड़चाल कभी किसी व्यक्ति को आत्मवान नहीं बनाती। निजता की घोषणा चाहिए, रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए। अंधविश्वासों से बाहर आने का साहस चाहिए। और ध्यान रखना, अंधविश्वासों में बड़ी सुरक्षा है! झंझट नहीं है। रूढ़ि को मानने में बड़ी सुविधा है, क्योंकि और सभी भी उसी को मानते हैं। सांत्वना मिलती है। जब सभी लोग किसी बात को मानते हैं तो खोजने की झंझट नहीं रह जाती। मुफ्त हमने भी मान लिया। जिस भीड़ में संयोग से पड़ गये, हिंदुओं की तो हिंदू और मुसलमानों की तो मुसलमान... जिस भीड़ में संयोग से पड़ गये वही हो गये। और संयोग की ही बात है कि तुम किस भीड़ में पड़ गये हो।

लेकिन सत्य इतना सस्ता नहीं है। सत्य तो केवल उनको मिलता है जो खोजते हैं। और खोजने वाला कभी भी भेड़चाल से नहीं चल सकता। खोजने वाले को तो अकेले चलना होगा। एकला चलो रे! उसे तो अभियान पर निकलना होगा। उसे तो बहुत-सी मान्यताओं के विपरीत जाना होगा। उसे तो बहुत-सी अंधी धारणाओं का खंडन करना होगा।

और तुम सरहपा के वचनों में इसी तरह का अदभुत खंडन पाओगे। लेकिन खंडन लक्ष्य नहीं है। खंडन का इरादा इतना ही है, ताकि गलत का खंडन हो जाये और सही शेष रह जाये। क्रांतिवादी नकारात्मक होता है। उसके स्वर में चोट होती है तलवार की। वह तोड़ने को आतुर होता है। वह तब तक तोड़ता ही जाता है जब तक ऐसी कोई चीज न आ जाए जो तोड़ी ही नहीं जा सकती। नेति-नेति उसकी व्यवस्था होती है। वह कहता हैः यह भी नहीं, यह भी नहीं। तुम ऐसा स्वर पाओगे सरहपा में कि वह कहेंगेः यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं! घबड़ा मत जाना। उनके निषेध से बेचैन मत हो जाना।

नकार तो केवल विधायक को खोजने की विधि है। विधायक तो तभी मिलता है जब हम सब निषेध कर चुके और अब निषेध करने को न बचा, तब जो शेष रह जाता है उस शेष को जानना मुक्ति है, निर्वाण है।

आरजी हदबंदियां हैं, देस क्या परदेश क्या?

मैं हूं इन्सां वुसअते-कोनैन है मेरा वतन।

जो सत्य को खोजने निकलते हैं न उनका कोई देश है, न उनका कोई परदेस है। न कोई अपना है, न कोई पराया है। आरजी हदबंदियां हैं, देस क्या परदेश क्या? उनके लिए तो सारी हदें, सारी सीमायें कृत्रिम हैं, आरजी हैं।

आरजी हदबंदियां हैं, देस क्या परदेश क्या?

मैं हूं इन्सां वुसअते-कोनैन है मेरा वतन।

इनकी घोषणा तो यही है कि सारा विश्व हमारा है। यह विश्व की विशालता हमारा देश है, हमारी मातृभूमि है। इससे छोटे पर वे राजी नहीं हैं। सारा आकाश अपना है। छोटे-छोटे आंगनों का उनका आग्रह नहीं। जो आंगनों में बंधे हैं वे अंधे रह जाते हैं।

आकाश की तरफ आंखें उठाओ। हिंदू होने से नहीं चलेगा, जैन होने से नहीं चलेगा, मुसलमान होने से नहीं चलेगा। यह सारे विश्व की विशालता तुम्हारी अपनी होनी चाहिए। यह सारा आकाश मेरा है और मैं इस आकाश का हूं, ऐसा हृदय होगा तो पा सकोगे। नहीं तो आरजी हदबंदियां हैं... सब कृत्रिम हदें हैं। आदमी के द्वारा खींची गयी रेखायें हैं, उन्हीं में बंधे रह जाओगे।

इसी रफ्तारे आवारा से भटकेगा यहां कब तक?

अमीरे-कारवां बन जा, गुबारे-कारवां कब तक?

और कब तक तुम भीड़ की धूल बने रहोगे? गुबारे कारवां कब तक... कब तक यात्री-दल के पैरों की धूल ही खाते रहोगे? इसी रफ्तारे-आवारा से भटकेगा यहां कब तक? कितने जन्मों से तो भटक रहे हो! इस भीड़ के हिस्से, उस भीड़ के हिस्से! इस भीड़ की धूल खाई उस भीड़ की धूल खाई! तुम यात्री-दल के पीछे पैरों से बंधे ही घिसटते रहोगे?

इसी रफ्तारे-आवारा से भटकेगा यहां कब तक?

अमीरे-कारवां बन जा, गुबारे-कारवां कब तक?

अब तो यात्री-दल की धूल रहने की जरूरत नहीं है। अब तो अपने यात्री-दल के खुद ही मालिक बन जाओ। अमीरे-कारवां बन जा! अब तो अपने जीवन को अपने हाथ में ले लो। अब तो उत्तरदायित्व स्वीकार करो। किसी और पर यह उत्तरदायित्व मत डालो। किसी मंदिर, किसी मस्जिद, किसी गुरुद्वारे पर ईश्वर की तलाश को मत छोड़ दो। किन्हीं पंडित-पुरोहितों पर मत छोड़ दो ईश्वर की पूजा को। अब तो तुम्हारा हृदय ही संलग्न हो।

सरहपा के सूत्र--

मन्तः मन्ते स्सन्ति ण होइ।

मंत्र-जाप करने से शांति मिलने को नहीं। ... चोट शुरू हुई! क्रांति का पहला सूत्रः मंत्र-जाप करने से शांति मिलने को नहीं है। मंत्र-जाप करने से निद्रा मिलती है, शांति नहीं; मूर्च्छा आती है, शांति नहीं। मंत्र-जाप का उपयोग लोरी की तरह है जैसे मां अपने बच्चे को कहती है--सो जा बेटा, राजा बेटा; सो जा बेटा, राजा बेटा! बार-बार दोहराए जाती हैः राजा बेटा, राजा बेटा, राजा बेटा! एक ही शब्द को बार-बार सुनने से ऊब पैदा होती है। स्वभावतः ऊब से ऊबाइयां शुरू हो जाती हैं। और बेटा भाग नहीं सकता, राजा बेटा, भाग कर जाए कहां? मां बैठी है उसे पकड़े और कहती है--सो जा, राजा बेटा सो जा! उसे भागने का और कोई उपाय नहीं मिलता तो वह नींद में ही डुबकी मार जाता है। वही भागने का उपाय बचता है। और यह एक ही शब्द, एक ही लय में दोहराया गया, नींद लाने वाला हो जाता है।

तुम बैठे राम-राम, राम-राम, राम-राम जपते हो। एक ही शब्द दोहराओगे, तंद्रा आयेगी। एक ही शब्द दोहराओगे, उस शब्द की पुनरुक्ति से सम्मोहित हो जाओगे। सम्मोहन से थोड़ा सुख मिलेगा, अच्छी नींद ले

लोगे; लेकिन इससे कुछ सत्य मिलने वाला नहीं है और न शांति मिलने वाली है। शांति तो तब मिलेगी जब तुम अशांति के कारण छोड़ दोगे।

एक राजनेता मेरे पास आते थे, कि मन बड़ा अशांत है, कोई मंत्र दे दें। मैंने कहा कि मन अशांत है, उसके कारण छोड़ोगे नहीं। मन अशांत है, क्योंकि तुम्हें मुख्यमंत्री बनना है।

उन्होंने कहाः बात तो आप ठीक ही कह रहे हैं। आज दस साल से कोशिश में लगा हूं लेकिन बस मंत्री पर ही अटक गया हूं। मेरे से पीछे आने वाले लोग, जो न जेल गये कभी, न जिन्होंने कोई त्याग-तपश्चर्या की, वे भी मुख्यमंत्री हो गये। मैं अपनी सादगी की वजह से अटका हुआ हूं। इसलिए चित्त मेरा बड़ा अशांत रहता है। नींद तो आती ही नहीं मुझे।

अब मैंने उनसे कहा कि दो बातें हैं। अगर तुम किसी ईमानदार आदमी के पास जाओगे तो वह कहेगा कि जिस चीज से चित्त अशांत होता है, वे कारण छोड़ दो। अगर तुम किसी बेईमान के पास जाओगे तो वह तुम्हें कह देगा कि यह लो मंत्र, इसको दोहराओ, इससे सब शांति हो जायेगी। अगर तुम बीमार हो तो मंत्र दोहराने से धोखा ही पैदा होगा, बीमारी मिटेगी नहीं। बीमारी के मूल कारण मिटाने होंगे।

मैंने उनसे कहाः तुम्हारा राजनैतिक चित्त, तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा, तुम्हारी अशांति का कारण है। महत्त्वाकांक्षी अशांत होगा ही। महत्त्वाकांक्षी शांत हो कैसे सकता है? और अगर महत्त्वाकांक्षी शांत हो जायेगा तो फिर गैर-महत्त्वाकांक्षी को क्या मिलेगा इस जगत में? फिर तो सभी महत्त्वाकांक्षी को मिल गया। पद भी उसको मिल गये, प्रतिष्ठा भी उसको मिल गयी, धन भी उसको मिल गया, और मोक्ष भी उसको मिल गया। फिर गैर-महत्त्वाकांक्षी को क्या बचेगा? कुछ उसको भी बचने दो। बाहर का तुम सम्हाल लो, गैर-महत्त्वाकांक्षी को कम-से-कम भीतर का तो बचने दो।

लेकिन वे बोले कि यह तो मैं कर नहीं सकता कि अभी छोड़ दूं। छोड़ना है एक दिन जरूर, क्योंकि देख लिया सब।

मैंने कहाः अभी देखा नहीं। अगर तुमने देख लिया तो तुम यह कभी न कहोगे कि छोड़ना है एक दिन जरूर। तुम अभी छोड़ दोगे! अगर देख लिया सब, तो फिर अब और क्या देखना है? छोड़ ही दो। शांति अपने से घटित हो जायेगी। कांटे की सेज बिछाकर लेटे हो, कहते हो शांति मिलती नहीं, कांटे चुभ रहे हैं, मंत्र दो कोई। मैं तुमसे कहता हूंः इस सेज पर मत लेटो। ये कांटे तुम्हें तकलीफ दे रहे हैं, छोड़ो। तुम कहते होः छोड़ना है एक दिन, जरूर छोड़ेंगे, देख लिया सब। मगर यह सब बहाना है।

पश्चिम के देशों में मंत्रों का प्रभाव बढ़ रहा है--सिर्फ एक कारण से, क्योंकि पश्चिम ने बहुत अशांति इकट्ठी कर ली है। महत्वाकांक्षा के कारण बहुत अशांति इकट्ठी हो गयी है। अब मंत्र चाहिए। मंत्र सिर्फ धोखे हैं।

मन्तः मन्ते स्सन्ति ण होइ।

पड़िल भित्ति कि उट्ठिअ होइ।।

मंत्रों से शांति मिलने को नहीं। दीवाल जो गिर चुकी, अब उठेगी नहीं। मंत्र दोहराने से यह गिरी दीवाल उठेगी नहीं। मंत्र दोहराने से हो सकता है तुम थोड़ी देर सपना देख लो कि दीवाल उठ गयी। मगर जब आंख खोलोगे तभी दीवार को गिरा हुआ पाओगे। मंत्र तुम्हें थोड़ी-बहुत देर के लिए धोखा दे दें... मंत्र एक तरह का नशा है।

तुम चौंकोगे यह बात जानकर कि मंत्र नशा है। लेकिन मनोवैज्ञानिक से भी पूछो तो मनोवैज्ञानिक भी कहेगा कि मंत्र नशा है। एक ही शब्द की, संगीतपूर्ण शब्द की पुनरुक्ति से बार-बार रासायनिक परिर्वतन होते हैं

तुम्हारे भीतर। उन रासायनिक परिवर्तनों का वही अर्थ होता है जो तुम बाहर से नशा कर लो... । नशे में और मंत्र में कोई बुनियादी भेद नहीं है। एक आदमी ने भांग पी ली और मस्त हो रहा है। उसकी मस्ती भी झूठी है। तुम जानते हो, उसकी मस्ती-झूठी है। घड़ी-भर बाद टूट जायेगी। और एक आदमी वर्षों तक राम-राम, राम-राम, कोई भी मंत्र, राम से कुछ लेना-देना नहीं है; कोई भी मंत्र जपता बैठा रहा है, बैठा रहा है, पुनरुक्ति से बार-बार उसके पूरे मस्तिष्क का स्नायु-जाल एक ही झंकार खाते-खाते एक रासायनिक रूपांतरण से गुजर जाता है। वह अपने ही भीतर नशे पैदा करने लगता है। शब्दों में नशा है।

तुम जानते हो कि युद्ध पर जाते हुए सैनिक एक खास तरह के बाजे बजाते हैं, एक खास तरह के गीत गाते हैं और नशे से भर जाते हैं। उनकी बाहुओं में खून दौड़ जाता है। छाती जोर से धड़कने लगती है। मरने-मारने की आकांक्षा पैदा हो जाती है।

आधुनिक संगीत है, फिल्मी संगीत है, उसको सुनते ही तुम्हारे भीतर कामवासना प्रज्वलित होने लगती है। प्राचीन शास्त्रीय संगीत है; उसे सुनते ही तुम्हारे भीतर अगर कामवासना चल भी रही हो तो शांत हो जाती है, सो जाती है।

संगीत का रासायनिक परिणाम होता है तुम्हारी देह पर। शब्दों की चोट अर्थ रखती है। एक शब्द तुम्हें उतावला कर देता है, बेचैन कर देता है। दूसरा शब्द मल्हम कर जाता है, सांत्वना दे जाता है।

शब्द ध्वनि है। ध्वनि का खास तरह का संघात रासायनिक परिवर्तन पैदा करता है। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्षों के पास खास तरह का संगीत बजाया जाए तो वे जल्दी बढ़ते हैं; और एक दूसरे तरह का संगीत बजाया जाए तो उनकी बाढ़ रुक जाती है। फूलों के पास खास तरह का संगीत बजाया जाये तो वे बड़े खिलते हैं, बड़े हो जाते हैं।

गायों के पास संगीत बजाया जा रहा है अमरीका में अब, क्योंकि संगीत के प्रभाव में गायें ज्यादा दूध दे देती हैं। तुम आदमियों को ही नहीं, गायों को भी धोखा देने लगे। गाय को पता नहीं कि यह तरकीब है। संगीत उसके भीतर रासायनिक परिवर्तन ले आता है, कि उसके स्तनों में ज्यादा दूध आ जाता है।

मंत्र से शांति होने वाली नहीं है। क्यों? क्योंकि अशांति का कारण मंत्र नहीं है। एक आदमी धन के पीछे दीवाना है, यह उसकी अशांति है। जब तक वह यह न समझ लेगा कि मेरे धन के पीछे दौड़ने में मेरी अशांति है और जब तक कारण को न छोड़ देगा तब तक शांत नहीं हो सकेगा। मंत्र इत्यादि देने वाले उसे केवल प्रलोभन दे रहे हैं। थोड़े दिन का धोखा खा जायेगा, फिर धोखे टूट जायेंगे। यह दीवार जो गिर चुकी है तुम्हारे चित्त की, यह मंत्रों से उठने वाली नहीं है, कुछ और करना होगा।

शोरे-हस्ती अभी जरा ठहरे।
सुन रहा हूं जमीर की आवाज।।

वह जो तुम्हारे भीतर चिल्ल-पों चल रही है महत्त्वाकांक्षाओं की, पद-प्रतिष्ठा की--यह हो जाऊं, वह हो जाऊं; यह कर लूं, वह कर लूं; नाम छोड़ जाऊं दुनिया में! वह जो चिल्ल-पों चल रही है तुम्हारे भीतर, जिंदगी का शोरगुल चल रहा है... ।

शोरे-हस्ती अभी जरा ठहरे।
सुन रहा हूं जमीर की आवाज।।

यह शोर अगर रुक जाये, यह चिल्ल-पों जिंदगी की अगर रुक जाये तो तुम्हारे भीतर जमीर की आवाज, अंतरात्मा की आवाज सुनाई पड़े। वही आवाज शांति है। कोई मंत्र से मिलने वाली नहीं है। मंत्र से तो शायद

मिलती भी हो, तो मिलेगी नहीं। और आदमी बड़ा बेईमान है। दूसरों को धोखा देता है, अपने को धोखा देता है, और अंततः परमात्मा तक को धोखा देने की कोशिश करता है।

जैसे वह जमीर की जो आवाज है, अंतरात्मा की जो आवाज है, जब सुनाई पड़ेगी तो ऐसा ही मालूम होगा जैसे ओंकार का नाद हो रहा है। ओंकार का ही नाद होगा, मगर तुम करने वाले नहीं होओगे नाद, तुम सिर्फ जानने वाले होओगे--साक्षी। तुम्हारे भीतर नाद उठता हुआ होगा। तुम कर्ता नहीं होओगे, केवल साक्षी।

आदमी ने धोखा देना शुरू कर दिया है। वह बैठकर ओम-ओम-ओम का नाद करता है। सोचता है इस तरह ओम-ओम करते-करते एक दिन वह भीतर के ओंकार को पा जायेगा। नहीं; इस शोरगुल के कारण अगर मिलता भी होगा तो नहीं मिलेगा। अगर तुम्हें ओंकार का नाद सुनना हो कभी तो भूलकर भी ओम का पाठ मत करना, नहीं तो तुम धोखा खड़ा कर लोगे। तुम जो ओम का पाठ कर रहे हो, वह तुम्हारे मन का ही खेल है।

फिर करना क्या है? सरहपा क्या कहते हैं? मैं क्या कहता हूं? सारे मंत्र छोड़ो। सारे शब्द छोड़ो। मौन हो रहो। बस मौन ही असली मंत्र है। मौन का अर्थ है--वहां कोई मंत्र नहीं है अब। न ओम है, न राम है, न अल्लाह है, न नमोकार है, न गायत्री है; कोई मंत्र नहीं है। तुम चुप होकर बैठे हो। एक सन्नाटा है। जैसे तुम हो ही नहीं। एक शून्य बैठा है... । उसी शून्य में आविर्भाव होता है ओंकार का। उसी शून्य में तुम्हारे भीतर अनाहत का नाद सुना जाता है। उसी शून्य में वीणा बजती है तुम्हारी आत्मा की।

शोरे-हस्ती अभी जरा ठहरे।

सुन रहा हूं जमीर की आवाज।।

बस, यह चिल्ल-पों तुम्हारी रुक जाये। मगर चिल्ल-पों तो तुम रोकते नहीं हो, चिल्ल-पों को और धार्मिक ढंग देते हो। कोई है, फिल्मी गाना गा रहा है; यह भी चिल्ल-पों है। और कोई हैं कि भगवान की स्तुति करने लगे हैं; यह भी चिल्ल-पों है। यह धार्मिक ढंग की होगी, बस इससे ज्यादा कुछ फर्क नहीं है! कोई राम-राम जपे कि कोकाकोला कोकाकोला करे, कुछ फर्क नहीं है, जरा भी फर्क नहीं है। ऊपर से फर्क दिखाई पड़ रहा है क्योंकि राम-राम को हमने मान लिया कि यह धार्मिक शब्द है। और कोकाकोला? यह अधार्मिक शब्द है! कोकाकोला में क्या अधर्म है? जिन वर्णमालाओं से राम बना है, उन्हीं वर्णमाला से कोकाकोला बना है। जरा भी भेद नहीं है। सिर्फ तुम्हारी धारणा है, सिर्फ तुम्हारी मान्यता है।

सारा शोरगुल रुक जाना चाहिये, तब वह दीवाल उठेगी जो कभी गिरती नहीं है।

बंदगी ने हजार रुख बदले।

जो खुदा था वही खुदा है हनूज।।

प्रार्थनायें तो बदलती रहीं, मंत्र भी बदलते रहे, पूजा-आराधन भी बदलते रहे, मंदिर-मस्जिद बदलते रहे, रंग-ढंग बदलते रहे--लेकिन जो परमात्मा था वह तो वही-का-वही है।

बंदगी ने हजार रुख बदले।

जो खुदा था वही खुदा है हनूज।।

परमात्मा तो वही-का-वही है आज भी। फिर तुम अरबी में प्रार्थना करो कि संस्कृत में। परमात्मा तो वही-का-वही है। और परमात्मा को न अरबी आती है और न संस्कृत। परमात्मा को तो एक ही भाषा आती है--उस भाषा का नाम मौन है। उस भाषा का नाम चुप्पी है। चुप हो रहो। जैसे ही तुम चुप हुए, न तुम हिंदू रहे न मुसलमान। तुमने यह ख्याल किया? चुप्पी की कोई हद नहीं होती, चुप्पी बेहद होती है। अगर तुम बिल्कुल मौन बैठ गये घड़ी भर को, तो उस घड़ी में तुम जैन हो, बौद्ध हो, पारसी हो, सिक्ख हो, क्या हो? उस शून्य की घड़ी

में तुम कोई भी नहीं हो। क्योंकि उसमें न तो गुरुग्रंथ बोलेगा, न रामायण बोलेगी, न धम्मपद बोलेगा। उस चुप्पी में तो बोल ही गया, भाषा ही गयी, तो भाषा के बने सारे सिद्धांत भी गये, सारे शास्त्र भी गये! फिर उस चुप्पी में कौन होगा? उस चुप्पी में सिर्फ तुम्हारा शुद्ध अस्तित्व है। वही परमात्मा है।

मौन से उससे जुड़ना है। मंत्रों से कोई कभी उससे न जुड़ा है न जुड़ सकता है।

मगर ऐसी बातें खतरनाक मालूम होती हैं! अभी भी खतरनाक मालूम होती हैं तो सरहपा ने जब कहीं, तब तो बड़ी खतरनाक मालूम पड़ी होंगी।

अक्ल के भटके हुओं को राह दिखलाते हुए।

हमने काटी जिंदगी दीवाना कहलाते हुए।।

जिन्होंने भी जाना है और ईमानदारी से तुम्हें वही कह देना चाहा है जो सत्य है, वे दीवाने ही समझे गये हैं, उन्हें लोग पागल ही समझते रहे हैं। सदियां बीत जाती हैं, तब भी लोग उन्हें समझ नहीं पाते।

एक ही काम करने जैसा हैः चित्त की आपाधापी छोड़ देनी है। चित्त में इतनी आपाधापी क्यों है? क्योंकि बड़ी आकांक्षायें हैं। आकांक्षाओं के कारण शोरगुल है। शोरगुल के कारण अशांति है। अशांति को कैसे ठीक करें, तुम चले पूछने। किसी ने तुम्हें एक मंत्र और पकड़ा दिया, तो तुम्हारे शोरगुल में थोड़ा और संबंध जोड़ दिया, और थोड़ा शोरगुल जोड़ दिया।

है हुसले-आरजू का राज तर्के-आरजू।

मैंने दुनिया छोड़ दी तो मिल गई दुनिया मुझे।।

इस जगत में आकांक्षाओं की पूर्ति का एक ही उपाय हैः आकांक्षाओं का त्याग। यह उल्टा दिखनेवाला सूत्र खूब समझ लेनाः है हुसले-आरजू का राज तर्के-आरजू। अगर कभी तृप्ति चाहिए हो तो एक ही उपाय है कि सारी आकांक्षाओं को गिर जाने दो। मैंने दुनिया छोड़ दी तो मिल गई दुनिया मुझे! जो नहीं कुछ पाना चाहता उसे सब मिल जाता है। जो विजय नहीं पाना चाहता उसे विजय मिल जाती है। शांति पाने की आकांक्षा भी मत लेकर चलो, अन्यथा अटकन हो जायेगी, अड़चन हो जायेगी। क्योंकि आकांक्षा तो आकांक्षा है, फिर धन पाने की हो कि शांति पाने की हो।

तरुफल दरिसणे णउ अगघाइ।

वेज्ज देक्खि किं रोग पसाइ।।

वृक्ष में लगा हुआ फल देखना, उसकी गंध लेना नहीं है--सरहपा कहते हैं--वैद्य को देखने मात्र से क्या रोग दूर हो जाता है?

सुनते हो, ये वचन कितने समसामयिक मालूम होते हैं! जैसे अभी किसी ने कहे हों!

सत्य की यही खूबी है कि सत्य कभी पुराना नहीं पड़ता। सत्य सदा नया बना रहता है। सत्य की गुणवत्ता ऐसी है कि उसमें हमेशा धार होती है।

"वृक्ष में लगा हुआ फल देखना, उसकी गंध लेना नहीं है।" दूर से फल देख लिया वृक्ष में लगा हुआ, इससे न तो तुम्हें गंध मिलेगी; स्वाद की तो बात ही छोड़ दो, गंध भी न मिलेगी, स्वाद तो कैसे मिलेगा? न गंध मिली न स्वाद मिला, तो पोषण क्या खाक मिलेगा? और लोग धर्म के साथ ऐसा ही कर रहे हैं। निकट नहीं आते। फलों को दूर से देख रहे हैं। सच तो यह है, फलों को भी नहीं देख रहे हैं, फलों की तस्वीर को देख रहे हैं। क्योंकि तुम जब गीता पढ़ते हो तब तुम्हें कृष्ण थोड़े ही दिखाई पड़ते हैं--कृष्ण की तस्वीर... ।

कृष्ण को देखना हो तो गीता से रास्ता नहीं मिलेगा--किसी सदगुरु का हाथ पकड़ना होगा, जहां कृष्ण अभी मौजूद हों, जहां बुद्ध अभी बोलते हों। किन्हीं ऐसी आंखों में झांकना पड़ेगा, जिनमें तुम्हें बुद्धत्व की गहराई मिल जाये। यह फल को देखना होगा। सरहपा तो कहते हैंः इससे भी कुछ होने वाला नहीं। फल को देखने से भी, ध्यान रखना, गंध नहीं मिलेगी, स्वाद नहीं मिलेगा। लेकिन फल को देखने से एक बात हो जायेगी--कि फल हो सकता है, इसका भरोसा आ जायेगा, इसकी श्रद्धा आ जायेगी।

और जो किसी एक की आंखों में जलता हुआ दीया तुमने देखा है, वह तुम्हारे भीतर एक नयी यात्रा का प्रारंभ हो जायेगा, कि ऐसा दीया मेरे भीतर भी जले, कैसे जले, कब जले, क्या करूं? कैसे यह दीया जला है, इसकी मुमुक्षा पैदा हो जायेगी। लेकिन ख्याल रखना, बुद्ध को मिल गया इसलिए तुम बुद्ध के पास बैठे रहोगे तो तुम्हें मिल जायेगा, ऐसा मत सोच लेना।

"वृ्क्ष में लगा हुआ फल देखना उसकी गंध लेना नहीं है। और वैद्य को देखने मात्र से क्या रोग दूर हो जायेगा?" वैद्य जो कहता है वह करना पड़ेगा। वैद्य को देखने मात्र से रोग दूर नहीं होता। तो गुरु को देख लिया, इससे ही कुछ होने वाला नहीं है।

बुद्ध ने तो कहा ही है कि मैं वैद्य हूं। ठीक यही शब्द कहे हैं कि मैं वैद्य हूं। मेरे पास आ जाने से कुछ हल न होगा, जब तक कि मैं जो तुम्हें उपचार देता हूं तुम उससे गुजरो न। मैं तुमसे जो कहता हूं वह करो।

बुद्ध के पास एक युवक आया, दार्शनिक था। उसने बुद्ध से प्रश्न पूछे। बुद्ध ने प्रश्न शांति से सुने और कहाः एक काम कर। दो साल रुक जा। दो साल चुप बैठ। फिर पूछ लेना। फिर तुझे उत्तर दे दूंगा।

उस युवक ने कहाः दो साल चुप बैठूं, फिर आप उत्तर देंगे! उत्तर मालूम हों तो अभी क्यों नहीं दे देते?

बुद्ध ने कहाः मुझे उत्तर मालूम हैं, लेकिन अभी तू ले न सकेगा, अभी तेरी पात्रता नहीं है, तू ग्रहण न कर सकेगा। मैं तो अमृत डाल दूं, मगर तेरा पात्र् उलटा है, अमृत व्यर्थ जायेगा। तू दो साल पात्र को सीधा कर। तू दो साल चुप बैठ।

ऐसी बात सुनकर बुद्ध की एक दूसरा बुद्ध का भिक्षु वृक्ष के पास ही बैठा था, हंसने लगा। उस युवक ने उस भिक्षु को पूछाः आप क्यों हंसते हैं? उस भिक्षु ने कहा कि मत धोखे में पड़ना, पूछना हो तो अभी पूछ लो, क्योंकि यही मेरे साथ गुजरी थी। मुझे भी कहा कि दो साल चुप बैठ जाओ, मैं दो साल चुप बैठ गया। अब मेरे भीतर प्रश्न ही नहीं उठते। दो साल चुप्पी में ऐसा मजा आ गया है कि किसको लेना पड़ा है किसको देना पड़ा है प्रश्नों से! वे प्रश्न ही गिर गये। पूछना हो तो अभी पूछ लेना। मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं।

लेकिन बुद्ध ने कहा कि मैं उत्तर नहीं देता; मैं औषधि देता हूं। मैं उत्तर नहीं देता; उपचार देता हूं। मैं वैद्य हूं, दार्शनिक नहीं हूं। यह मेरा उपचार हैः दो साल चुप बैठो। यह औषधि है। फिर दो साल तुम जब औषधि का उपयोग कर चुके होओगे, परिपुष्ट हो चुके होओगे, फिर पूछ लेना।

और यही हुआ, दो साल वह युवक--उसका नाम था मौलुंकपुत्त--चुप बैठा। और दो साल जब पूरे हो गये तो उसने तो नहीं पूछा, लेकिन बुद्ध ने उससे कहा कि दो साल पूरे हो गये मौलुंकपुत्त, कुछ समय का होश है? दो साल पूरे हो गये, अब तू पूछ ले।

मौलुंकपुत्त हंसने लगा। उसने कहाः औषधि काम कर गयी। जो मिलना था मिल गया। जो जानना था जान लिया। आपकी कृपा अपरिसीम है। अगर मैं जिद करता प्रश्न पाने की, प्रश्नों के उत्तर पाने की, तो चूक जाता। मैंने जिद न की और आपकी औषधि ले ली, उत्तर मिल गये।

औषधि के ही प्रयोग में स्वास्थ्य उपलब्ध हो जाता है। वही उत्तर है।

"जब तक अपने-आप को नहीं जान लिया, तब तक किसी को शिष्य नहीं करना चाहिए।"

जाव ण अप्पा जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।

और जब तक तुम खुद न जान लो तब तक भूलकर किसी को जतलाना मत, किसी को बतलाना मत। क्योंकि तुम जो भी बतलाओगे वह गलत होगा। तुम जो भी बतलाओगे, हो सकता है पांडित्यपूर्ण हो, मगर प्रज्ञापूर्ण नहीं होगा।

जाव ण अप्पा जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।

अन्धं अन्ध कढ़ाव तिम वेण वि कूव पड़ेइ।।

ऐसी भूलकर भी कोशिश मत करना, जब तक तुम न जान लो, किसी को जतलाना मत, बतलाना मत, क्योंकि यह तो वैसी भूल हो जायेगी जैसे एक अंधा दूसरे अंधे को साथ ले चला और दोनों ही कुएं में गिर पड़े। इस वचन का जन्म सरहपा के साथ हुआ कि एक अंधा दूसरे अंधे को ले चला। अन्धं अन्ध कढ़ाव तिम वेण वि कूव पड़ेइ। फिर तो संतों में करीब-करीब सब ने यह दोहराया है। कबीर ने कहा हैः अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत। यह सरहपा की ही प्रतीक-शैली है, कि अंधा अंधे को ले चला और दोनों कुएं में गिर गये। मगर इस दुनिया में बहुत-से अंधे अंधों को ले चल रहे हैं। तुम इसकी फिक्र ही नहीं करते कि जिसके पीछे तुम चल रहे हो उसको दिखाई भी पड़ता है! तुम इसकी चिंता ही नहीं कर रहे हो। चलते चले जाते हो। एक लंबी कतार है अंधों की--आगे भी तुम्हारे, पीछे भी तुम्हारे; तुम कतार के मध्य में हो। तुम अंधों की शृंखला में एक कड़ी मात्र हो। तुमने न कभी पूछा, न तुमने कभी सोचा, न तलाशा, न जिज्ञासा की--कि जिनके पीछे मैं चल रहा हूं, उन्हें पता है? उन्होंने जाना है?

विवेकानंद तलाश करते थे--गुरु की तलाश करते थे। और जिसे भी जानना हो उसे गुरु की तलाश ही करनी होगी। उस तलाश में वे बहुत लोगों के पास गये। रवींद्रनाथ के दादा के पास भी गये। उनकी बड़ी ख्याति थी। महर्षि देवेंद्रनाथ! महर्षि की तरह ख्याति थी। वे एक बजरे पर रहते थे। विवेकानंद आधी रात नदी में कूदे, तैरकर बजरे पर पहुंचे; सारा बजरा हिल गया। विवेकानंद चढ़े, जाकर दरवाजे को धक्का दिया। देवेंद्रनाथ रात अपने ध्यान में बैठे थे। इस पागल-से युवक को देखकर बड़े हैरान हुए। कहाः किसलिए आये हो युवक? क्या चाहते हो? यह कोई समय है आने का? विवेकानंद ने कहा कि समय और असमय का सवाल नहीं है। मैं यह जानना चाहता हूंः ईश्वर है?

यह बेवक्त आधी रात का समय, यह कोई पूछने की बात है! ऐसे कोई पूछने आता है! पूछा न ताछा, द्वार ठेलकर अंदर घुस आया युवक, पानी से भीगा हुआ, कपड़े पहने हुए तर-बतर।

एक क्षण देवेंद्रनाथ झिझक गये। उनका झिझकना था कि विवेकानंद वापिस कूद गये। उन्होंने कहा भी कि वापिस कैसे चले? तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो लेते जाओ। लेकिन विवेकानंद ने कहाः आपकी झिझक ने सब कह दिया। अभी आपको ही पता नहीं।

और यह बात सच थी। देवेंद्रनाथ ने लिखा है कि घाव कर गयी मेरे हृदय में। यह बात सच थी। मुझे भी अभी पता नहीं था, हालांकि मैं उत्तर देने को तत्पर था।

फिर यही विवेकानंद रामकृष्ण के पास गया और रामकृष्ण से भी यही पूछाः ईश्वर है? फर्क देखना, कितना फर्क है महर्षि देवेंद्रनाथ के उत्तर में और रामकृष्ण के उत्तर में। पूछाः ईश्वर है? रामकृष्ण ने एकदम गर्दन पकड़ ली विवेकानंद की और कहा कि जानना है, अभी जानना है, इसी समय जानेगा? यह विवेकानंद सोचकर न आये थे कि कोई ऐसा करेगा! कोई ईश्वर को जनाने के लिए ऐसी गर्दन पकड़ ले एकदम से और कहे कि अभी

जानना है? इसी वक्त? तैयारी है? ... खुद झिझक गये। कहां झिझका दिया था देवेंद्रनाथ को, अब झिझक गये खुद! और रामकृष्ण कहने लगेः ईश्वर को पूछने चला है, तो सोचकर नहीं आया कि जानना है कि नहीं? और इसके पहले कि विवेकानंद कुछ कहें, रामकृष्ण तो दीवाने आदमी थे, पागल थे, पैर लगा दिया विवेकानंद की छाती से और विवेकानंद बेहोश हो गये। तीन घंटे बाद जब होश में आये तो जो आदमी बेहोश हुआ था वह तो मिट गया था, दूसरा ही आदमी वापिस आया था। चरण पकड़ लिए रामकृष्ण के और कहा कि मैं तो झिझक रहा था, मैं तो उत्तर न दे सका, लेकिन आपने उत्तर दे दिया।

सदगुरु की तलाश! लेकिन पंडित सदगुरुओं के जैसे ही वचन बोलते हैं, उससे सावधान रहना। खोटे सिक्के बाजार में बहुत हैं। और ख्याल रखना, खोटे सिक्कों की एक खूबी होती है, तुम अर्थशास्त्रियों से पूछ सकते हो। अर्थशास्त्री कहते हैं, खोटे सिक्के की एक खूबी होती है कि अगर तुम्हारी जेब में खोटा सिक्का पड़ा हो और असली सिक्का पड़ा हो तो पहले तुम खोटे को चलाते हो। खोटे सिक्के की खूबी होती है कि वह चलने को आतुर होता है। अकसर ऐसा होगा। तुम्हारी जेब में अगर दस का एक नकली नोट पड़ा है और एक असली, तो तुम पहले नकली चलाओगे न! जब तक नकली चल जाये, अच्छा। और जिसके पास भी नकली पहुंचेगा, वह भी पहले नकली ही चलायेगा। तो नकली सिक्के चलन में हो जाते हैं, असली सिक्के रुक जाते हैं। नकली सिक्के चलने के लिए आतुर होते हैं।

इस जगत में पंडित, मौलवी, पुरोहित खूब चलते हैं। सस्ते भी होते हैं, सुविधापूर्ण भी होते हैं, सांप्रदायिक भी होते हैं, भीड़ के अंग होते हैं, परंपरा के समर्थक होते हैं, रूढ़ि-अंधविश्वासों के हिमायती होते हैं, तुम्हारी जिंदगी में कोई क्रांति लाने की झंझट भी खड़ी नहीं करते, सिर्फ सांत्वना देते हैं; घाव हो तो एक फूल रख देते हैं घाव पर कि फूल दिखाई पड़े, घाव दिखायी पड़ना बंद हो जाये। इलाज तो नहीं करते। इलाज तो कैसे करेंगे? इलाज तो अपने घावों का भी अभी नहीं किया है।

ब्रह्मणेहि म जाणन्त भेउ।
एवइ पढिअउ एच्चउ वेउ।।
मट्टी पाणी कुस लइ पढ़न्त।
घरहि वइसी अग्गि हुणन्त।।
कज्जे विरहइ हुअवह होमें।
अक्खि डहाविअ कडुएं धुम्में।।

"ब्राह्मण भेद नहीं जानतेे।" पंडितों से सावधान रहना। उन्हें कुछ पता नहीं है। शास्त्रों का पता है, शब्दों का पता है, सत्य की कोई अनुभूति नहीं है। ज्ञान होगा उनके पास, ध्यान नहीं है। और जहां ध्यान नहीं, वहां ज्ञान कहां? ज्ञान का धोखा होगा।

"वे चारों वेद पढ़ते हैं।" यह सच है। सरहपा कहते हैंः ब्राह्मण भेद नहीं जानतेे। वे चारों वेद पढ़ते हैं, वे चारों वेद जानते हैं; मगर अभी उनके अंतरवेद का जन्म नहीं हुआ, पांचवां वेद अभी नहीं जन्मा है। और पांचवां ही असली है।

एक ईसाई मिशनरी मुझे मिलने आये। बात होती थी। मैंने उनसे पूछा कि आपने फिफ्थ गॉसपिल पढ़ी? उन्होंने कहाः फिफ्थ गॉसपिल! क्योंकि ईसाइयों की तो चार ही धर्म-किताबें हैं। मैंने पूछाः पांचवीं धर्म-किताब पढ़ी? उन्होंने कहाः पांचवीं धर्म-किताब! सुनी ही नहीं, पढ़ेंगे कहां से? चार ही तो धर्म-किताबें हैं। जैसे हिंदुओं के चार वेद हैं, ऐसे ईसाइयों की चार गॉसपिल हैं, चार सु-समाचार।

तो मैंने उनसे कहा कि वे चार बेकार हैं; जब तक पांचवीं न पढ़ोगे उन चारों को समझ भी न सकोगे। उन्होंने कहाः पांचवीं लेकिन सुनी ही नहीं। मैंने कहाः पांचवीं सुनने की बात ही नहीं है और पढ़ने की बात भी नहीं है, पांचवीं तुम्हारे भीतर है और जब तक भीतर से जन्म न हो... ।

"वेद" शब्द आया है विद से। विद का अर्थ होता है जानना, ज्ञान। जब तक विद पैदा न हो, तब तक वेद से तुम्हारा कोई परिचय न हो सकेगा। तुम रट लो तोतों की तरह, तोते भी दोहरा सकते हैं। अब तो यंत्र हैं, यंत्र दोहरा देंगे--तुमसे ज्यादा अच्छे ढंग से दोहरा देंगे।

स्मृति ज्ञान नहीं है स्मरण रहे। ज्ञान अनुभव का नाम है।

"ब्राह्मण भेद नहीं जानते, वे चारों वेद पढ़ते हैं। वे हाथ में मिट्टी, कुश और जल लेकर मंत्र पढ़ते हैं और घर बैठे आग में घी डालते रहते हैं। होम करने से मोक्ष मिले न मिले, कडुआ धुआं लगने से आंखों को पीड़ा अवश्य होती है।" बस इतना ही होता है, कुछ और मिलता नहीं, आंखों को व्यर्थ पीड़ा देते हैं। कोई वेद को पढ़-पढ़कर आंखें खराब कर लेता है, कोई आग में धुआं पैदा कर-करके, घी डाल-डालकर। मगर हम इन्हीं के पीछे चलते रहते हैं, जिनकी खुद की आंखें अभी ठीक नहीं हैं, जिनकी खुद की आंखें कडुवे धुएं से भरी हैं। हम अंधों के पीछे चलते रहते हैं। और मजा ऐसा है कि हमें अंधों के पीछे चलना सुगम मालूम पड़ता है। उसका भी कारण है, क्योंकि हम भी अंधे हैं, वे भी अंधे हैं; हम दोनों के बीच तालमेल हो जाता है। आंखवाले के पीछे चलने में हमें बड़ी अड़चन होती है, क्योंकि तालमेल नहीं होता। आंखवाला हम से समझौता कर ही नहीं सकता; करना हो तो हम ही को समझौता करना पड़े। यह तो पक्की बात है। अगर आंखवाले के साथ अंधा चलेगा तो आंखवाला अंधे से समझौता नहीं कर सकता। अंधा कहेगा कि यहां से चलें, यहां दरवाजा मालूम होता है। आंखवाला कहेगा, तू चुप बकवास बंद कर, तुझे क्या पता दरवाजे का? दरवाजा मुझे दिखाई पड़ रहा है। तू जहां बता रहा है वहां दीवाल है। सिर फोड़ेगा।

आंखवाला अंधे से समझौता नहीं कर सकता। सरहपा ने किसी से समझौता नहीं किया--न बुद्ध ने, न क्राइस्ट ने, न मुहम्मद ने। आंखवाला कैसे समझौता करे? यह मत समझना कि आंखवाला जिद्दी होता है। आंखवाला आंखवाला है, यह उसकी मुश्किल है। उसे दिखाई पड़ रहा है। लेकिन अंधों को इससे नाराजगी होती है। अंधे कहते हैंः कम से कम फिफ्टी-फिफ्टी। तुम हमारी आधी मानो, आधी हम तुम्हारी मानें, कुछ तो हमारी मानो, कि हम बिल्कुल ही बेकार? कुछ हमारे अहंकार को थोड़ी तृप्ति तो दो। चलो, चार बातें हम तुम्हारी मान लेते हैं, चार तुम हमारी मान लो।

पंडित मानने को राजी है। पंडित झुकने को राजी है। तुम जो कहो, पंडित वैसा करने को राजी है, क्योंकि पंडित तुम पर निर्भर है। पंडित तुम्हारे सहारे जीता है। तुम कहो कि घंटी ऐसी बजाओ तो वैसी बजा देगा।

मेरे सामने एक ज्योतिषी रहते थे एक गांव में। जिसकी गांव में कोई भी कुंडली न मिला सके विवाह इत्यादि के समय, वे उसकी मिला देते थे। मैंने उनसे पूछा कि आप गजब के ज्योतिषी मालूम होते हैं, क्योंकि मैं देखता हूं आपके पास सिर्फ ऐसे ही मरीज आते हैं जिनका कहीं इलाज नहीं, जिनकी कोई कुंडली मिला नहीं सकता; सब ब्राह्मण कह देते हैं कि भाई इनकी कुंडली नहीं मिलती, यह विवाह नहीं हो सकेगा।

उन्होंने मुझसे कहाः अब आप से क्या छिपाना, जो फीस चुकाने को राजी है, हमें क्या लेना-देना कुंडली से, हम मिला ही देते हैं। फीस चुकाने को राजी होना चाहिए। फीस हमारी ज्यादा है। जहां दूसरे एक रुपये में मिला देते हैं वहां हम पांच में मिलाते हैं, मगर हम ऐसी मिला देते हैं जिनको कोई दुनिया में न मिला सके। मिलाना अपने हाथ में है फीस चुकनी चाहिए। हमें लेना-देना क्या है?

और फिर वे कहने लगे कि जिनकी कुंडली मिल-मिलकर भी विवाह होता है, वे भी कहां मिल पाते हैं? तो झंझट में पड़ने से सार भी क्या है? कितनी तो कुंडली मिल-मिलकर विवाह होते हैं, दुनिया में सभी विवाह, कम-से-कम इस देश में तो कुंडली मिलकर ही होते हैं, मगर कौन मिल पाता है! पति-पत्नी में ऐसी कलह चल रही है, इससे सारी कुंडलियां गलत सिद्ध हो चुकी हैं, फिर भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता! पति-पत्नी में सिवाय कलह के कुछ भी नहीं हो रहा है। चाहे कुंडली कितनी ही मिली हो, मिलन कहां है!

तो मैंने कहाः यह बात तो मुझे भी पसंद पड़ी। तो फिर हर्ज ही क्या है, पांच रुपये अपने को भी मिल गये, इस बेचारे की भी झंझट मिटी। इसकी भी कुंडली मिल गयी, हमारा भी फायदा है, इसका भी फायदा है--फायदा ही फायदा है, नुकसान कुछ मालूम होता नहीं।

वह जो पंडित है, पुरोहित है, वह तुमसे समझौता करेगा। वह भी अंधा है। और यही अड़चन है।

मैं तुमसे समझौता नहीं कर सकता। एकतरफा सौदा करना होगा। समझौता करना हो तो तुम्हीं को करना होगा। मैं तो जैसा जी रहा हूं वैसा ही जीऊंगा, रत्ती भर भेद नहीं कर सकता। लेकिन शिष्य चाहता है कि गुरु कुछ हमारी भी मान कर चले। बड़ी तरकीब से चाहता है कि हम जैसा कहें वैसा उठे, वैसा बैठे।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः आपको यह बात नहीं कहनी चाहिए थी। मैंने कहाः तुम मुझे बताने वाले कौन, कि क्या मुझे कहना चाहिए क्या मुझे नहीं कहना चाहिए।

नहीं, वे कहते हैं कि इसका समाज में बुरा परिणाम होगा, लोग आपके विरोध में हो जायेंगे, कि कोई आपके दुश्मन हो जायेंगे।

अगर सत्य बोलना हो तो न मालूम कितने लोगों को दुश्मन बनाना ही होगा। अगर किसी को दुश्मन न बनाना हो तो फिर झूठ पर राजी रहना चाहिए, तो कोई दुश्मन नहीं होगा। झूठ बड़ा मीठा मालूम होता है। है जहर लेकिन शक्कर चढ़ा हुआ है; बड़ा मीठा मालूम होता है। सत्य बड़ा कड़वा मालूम होता है।

इसलिए अंधे अंधों के पीछे चलना आसान पाते हैं; क्योंकि उनसे तुम्हारा तालमेल होता है। तुम कहते हो आपको ऐसे उठना चाहिए, मुंह पर पट्टी बांधनी चाहिए--तो वे मुंह पर पट्टी बांधते हैं। आपको एक ही बार भोजन करना चाहिए, त्यागी को, तो वे एक ही बार भोजन करते हैं, चाहे एक ही बार इतना भोजन कर लेते हैं कि दिन-भर परेशान रहते हैं। ... कि आपको रात पानी नहीं पीना चाहिए, तो वे इतना पानी पी लेते हैं शाम को कि रात-भर के लिए निपटारा हो जाये। जो तुम कहते हो, उससे उन्हें समझौता करना पड़ता है। और तब तुम उन्हें गुरु मानते हो। तब उनके पैर छूते हो तुम। यह बड़ा पारस्परिक लेन-देन चल रहा है। सूक्ष्म रूप से वे तुम्हारे पैर छू रहे हैं, और स्थूल रूप से तुम उनके पैर छू रहे हो।

यहां शिष्य ही गुरु के पीछे नहीं चल रहे हैं, यहां गुरु भी शिष्यों के पीछे चल रहे हैं। यहां हर नेता अपने अनुयायियों के पीछे चल रहा है। अनुयायियों के पीछे चलना ही पड़ता है नेता को। नेता देखता रहता है अनुयायी किस तरफ जा रहा है, उचककर उसके आगे हो जाता है, जिस तरफ जा रहा हो। अनुयायी अगर कहने लगे समाजवाद, तो नेता समाजवाद की जय बोलने लगता है। अगर अनुयायी कहने लगे साम्यवाद तो नेता साम्यवाद की जय बोलने लगता है। उसे मतलब नहीं है; उसे मतलब सिर्फ एक बात से है कि तुम जो बोलो, मैं उसे ज्यादा जोर से बोलूंगा। मैं तुम्हारे आगे हूं। बस इतना भर पक्का रहे कि मैं तुमसे आगे हूं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन बजार से अपने गधे पर बैठा जा रहा है, तेजी से! किसी ने पूछा कि नसरुद्दीन, बड़ी तेजी से जा रहे हो, कहां जा रहे हो? उसने कहाः भई गधे से ही पूछ लो, क्योंकि यह गधा बड़ा जिद्दी है और बीच बजार में भद्द करवा देता है। अगर मैं इसको बायें ले जाऊं तो नहीं जायेगा और जहां इसने बजार

देखा, लोग देखे, फिर तो यह बड़ी अकड़ में आ जाता है, बड़े तैश में आ जाता है। तो पहले जब नया-नया लिया था, तब तो मैं यह भूल कर लेता था कि इसको जहां ले जाना है वहां ले जाने की कोशिश करता था। उसमें गांव में हंसी होती, बजार में लोग कहते कि अरे मुल्ला, तुम्हारा गधा और तुम्हारी नहीं मानता! और जितनी मेरी भद्द होती उतना यह अकड़ता जाता। अब मैंने एक तरकीब सीख ली हैः जैसे ही बाजार आया कि मैं इसे छोड़ देता हूं लगाम को, चलो बेटा, जिस तरफ जाओ वहीं मुझे जाना है। अब देखें कि कैसे तुम बगावत करते हो! इसीसे पूछ लो कहां जा रहा है। गांव के बाहर जाकर फिर मैं इसको रास्ते पर लगाऊंगा, मगर अभी तो मुझे इसके साथ ही जाना पड़ेगा। यह भीड़-भाड़ देखकर बड़ा उत्सुक हो जाता है रौब जमाने में!

नेतागण अनुयायियों के पीछे चलते हैं। आगे झंडा लिये दिखाई पड़ते हैं, लेकिन उनकी नजर पीछे लगी रहती है कि जनता किस तरफ जा रही है, पूरब कि पश्चिम? होशियार नेता उसी को कहा जाता है, जो समय रहते रास्ता बदल ले। उन्हीं को तो आया-राम गया-राम... । समय रहते देख ले कि अब आदमी कहां जा रहे हैं। देखा बाबू जगजीवनराम को, आया-राम गया-राम... देख लिया कि जनता कहां जा रही है, जल्दी से उचककर आगे हो जाओ अगर अपना नेतृत्व बचाना है।

अंधे अंधों से समझौता करेंगे, आंखवाले समझौता नहीं कर सकते। और इसलिये आंख वाले के पीछे केवल वे ही साहसी लोग चल सकते हैं, जिन्होंने तय किया है कि पूरा समर्पण करेंगे, कोई अपेक्षा न रखेंगे।

जइ नग्गा विअ होइ मुत्ति ता सुणइ सिआलह।

लोम पारणें अत्थि सिद्धि ता जुवइ णिअम्बह।।

"यदि नग्न हो जाने से मुक्ति मिलती हो तो सियार, कुत्तों को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए।" यह जैन मुनियों के लिए कहा होगा कि अगर नग्न रहने से मुक्ति मिलती हो तो सियार, कुत्तों को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए। "और केवल केश-लुंचन से मुक्ति मिलती हो तो नितंबों को मुक्ति मिलनी चाहिए, जिनका लोमोत्पाटन होता रहता है।"

नितंबों पर तो केश नहीं जम पाते, क्योंकि नितंब घिसटते रहते हैं जमीन में, फिर उठे, फिर बैठे, घिसटते ही रहे तो नितंब पर कभी भी केश नहीं जम पाते, तो नितंबों की तो मुक्ति हो जानी चाहिए।

देखते हो ये वचन! ये आग्नेय वचन, अंगार-भरे वचन! केश-लुंचन से मुक्ति नहीं होगी। जैन मुनि केश उखाड़ते हैं, लोचते हैं। तुम्हारे पास जो एक गाली है नंगा-लुच्चा, वह सबसे पहले महावीर के लिए प्रयोग किया गया शब्द है। क्योंकि वे नग्न रहते थे और केश लोंचते थे। "लुच्चा!" धीरे-धीरे कब गाली बन गयी, कहना मुश्किल है।

शब्दों की भी बड़ी यात्रायें होती हैं। कभी अच्छे शब्दों के भी बुरे दिन आ जाते हैं। कभी बुरे शब्दों के भी अच्छे दिन आ जाते हैं। कभी घूरों के भी दिन फिरते हैं। तो कभी जो गालियां होती हैं, सम्मान-सूचक हो जाती हैं। और कभी जो सम्मान-सूचक शब्द होते हैं, गालियां हो जाते हैं। सबसे पहले महावीर के लिए उपयोग किया गया होगा नंगा-लुच्चा। तब इसमें गाली नहीं थी। तब तो सिर्फ यह तथ्य था कि वे नग्न रहते थे और बाल लोंचते थे। फिर जल्दी ही यह गाली हो गयी। फिर इसके अर्थ बदलते चले गये! अब तो लोग भूल ही गये कि यह कभी जैन दिगंबर मुनियों के लिए प्रयोग किया गया शब्द था। अब तो नंगा-लुच्चा हम उसको कहते हैं, जिसके पास कुछ नहीं है और दूसरे का छीनने को, लोंचने को तैयार है। अपना तो कुछ है नहीं, दूसरे का लोंचने के लिए उत्सुक है। उसको हम नंगा-लुच्चा कहते हैं। अब बात बदल गयी।

"बुद्धू" शब्द पहले बुद्ध के साथ जुड़ा था। तब तो उनको हम बुद्धू कहते थे, जो छोड़ दिए सब और जाकर बैठ गये विश्राम में--पर्वतों में, वृक्षों के तले, मौन में शांति में! बुद्धू हो गये! बौद्ध हो गये! फिर यह धीरे-धीरे गाली हो गयी। गाली का मतलब यह हो गया कि इन्हें कुछ भी अक्ल नहीं है। संसार का कुछ इनको आता नहीं है, बुद्धू है। संसार को छोड़ने वाले को पहले हमने बुद्धू कहा था, फिर धीरे-धीरे जो संसार में हैं, लेकिन जिनसे संसार सम्हलता नहीं, जिन्हें कोई भी लूट ले, खसोट ले, जिन्हें कोई भी धोखा दे दे, बेइमानी कर दे, कोई उनकी जेब काट ले, कोई उनका सामान ले जाये, उनको कुछ अकल नहीं है। संसार नहीं सम्हाल पाते तो उनका नाम बुद्धू हो गया।

अच्छे शब्दों के दिन फिर गये, बुरे हो गये। कभी-कभी बुरे शब्दों के भी दिन फिरते हैं। जैसे गणेश जी! सबसे पहले रूप बड़ा विकृत था। उनकी पूजा सबसे पहले इसलिए शुरू हुई कि वे विघ्नकारी देवता थे। अगर उनकी पूजा न करो तो वे विघ्न करते थे खड़ा। जैसे शादी-विवाह हो रहा है, अगर तुमने उनकी पूजा न की तो वे उपद्रव मचायेंगे। अब जो उपद्रव करे उसकी तो पहले पूजा करनी ही पड़ती है--उपद्रव से सुरक्षा के लिए। तो सबसे पहले रूप गणेश का था उपद्रवी का, झंझटी का, अराजक का, विघ्नकारी का; फिर धीरे-धीरे वे मंगल के देवता हो गये। अब तो कोई भी मंगल कार्य उनके बिना शुरू नहीं होता। श्रीगणेश का अर्थ ही होता हैः मंगल शुरुआत। विघ्नकारी देवता मंगल का देवता हो गया! दिन बदल गये। धीरे-धीरे पूजा लोगों ने इतनी की--करनी ही पड़ी, क्योंकि जो आदमी उपद्रव करे उसको मना-बुझाकर रखना अच्छा--धीरे-धीरे लोग भूल ही गये कि विघ्नकारी की पूजा कर रहे हैं। यह बात जुड़ गयी कि सबसे पहले पूजा गणेश की होती है। इसलिए वे मंगल के देवता हो गये।

यदि नग्न होने से मुक्ति मिलती हो तो फिर जानवर सभी मुक्त हो जायें। और अगर बाल लोंचने से मुक्ति मिलती हो तो नितंब मुक्त ही होने चाहिए। यह मजाक कर रहे हैं सरहपा। वे कह रहे हैंः इतनी छोटी बातों से मोक्ष का कोई संबंध नहीं है। इतनी ओछी बातों से मोक्ष का कोई संबंध नहीं है।

पिच्छी गहणे दिट्ठि मोक्ख ता मोरह चमरह।

उंछें भोअणें होइ जान ता करिह तुरंगह।।

"यदि पिच्छी ग्रहण करने से मुक्ति मिलती हो तो मोर को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए।" मुनि मोर की बनी हुई पिच्छियां रखते हैं। अगर पिच्छी रखने से मोक्ष मिलता हो तो मोर तो पिच्छियों के साथ ही पैदा होते हैं, पिच्छियों के साथ ही मरते हैं, उनका तो मोक्ष कभी का हो जाना चाहिए।

"यदि उच्छ भोजन से मुक्ति मिलती हो तो हाथी-घोड़े मुक्ति के पहले अधिकारी हैं।" उच्छ भोजन का अर्थ होता हैः दाने जो गिर जाते हैं खेतों में, उनको चुन-चुनकर जो भोजन करता है। ऐसे लोग रहे। बड़े दार्शनिक कणाद का नाम लिया जा सकता है। उनका नाम ही कणाद पड़ गया, क्योंकि वे कण-कण बीनकर खाते थे। खेतों में जो पड़ जाते हैं दाने, गिर जाते हैं दाने, वही बीनकर खाते थे। सरहपा कह रहे हैं कि अगर ऐसा होता तो पक्षी भी दाने बीनकर खाते हैं, पशु भी दाने बीनकर खाते हैं, इनका मोक्ष हो जाता।

प्रयोजन इतना है सिर्फ कि ये औपचारिकतायें हैं, इनको नियम मत समझो। ये क्रिया-कांड हैं, इनको धर्म का प्राण मत समझो। धर्म का प्राण कुछ और है।

सुलगना और जीना, यह कोई जीने में जीना है।

लगा दे आग अपने दिल में दीवाने धुआं कब तक?

ये सब धुआं ही धुआं की बातें हैं। धर्म तो आग है। ये औपचारिक बातें तो सिर्फ धुआं हैं। हां, आग से धुआं उठता है, लेकिन तुम धुएं को ले जाओ अपने घर में तो यह मत समझना कि आग आ जायेगी। इस बात को ख्याल में रखना। आग हो तो धुआं उठता है, लेकिन धुआं होने से आग पैदा नहीं हो जाती है।

महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए, नग्न हो गये। ज्ञान की अग्नि से नग्न होने का धुआं उठा, लेकिन नग्न होने से तुम ज्ञानी न हो जाओगे। इस बात को ख्याल में रखना। महावीर को ज्ञान उपलब्ध होने के बाद ऐसी निर्दोषता आ गयी जैसे छोटे बच्चों में होती है वस्त्र गिर गये। छोड़े नहीं, गिर गये। त्यागे नहीं, छूट गये। कुछ छिपाने को न रहा। देह का भाव जाता रहा। फिर कौन स्त्री, फिर कौन पुरुष? लाज-शंका सब जाती रही। सरल हो गये। जैसे छोटा बच्चा नग्न खड़ा होता है, उसे पता भी नहीं होता कि वह नग्न है, ऐसे महावीर हो गये। मगर ज्ञान पहले घटा। यह ज्ञान के साथ सहज ही आयी छाया है। अब तुम उल्टा कर रहे हो। तुम कह रहे हो हम नग्न खड़े हो जायें इससे ज्ञान घट जायेगा, तो तुम धुआं ला रहे हो घर में और सोच रहे हो आग आ जायेगी! ले आओ धुआं, मोहल्ले-भर का सारा धुआं निमंत्रित कर लो, तो भी आग पैदा नहीं हो पायेगी। धुएं के अंबार लग जायें तो भी आग पैदा नहीं होगी।

मूल कारण पहले आना चाहिए, फिर उपपत्तियां अपने-आप आ जाती हैं। ये सारे जीवन-व्यवहार परिणाम हैं। जिनको ज्ञान उत्पन्न हो गया, वे अहिंसक हो गये। अहिंसक होने से किसी भी जीव की हिंसा न हो, इसकी उन्होंने चेष्टा की। तो जैन मुनि अपने साथ पिच्छी रखता है। पिच्छी का अर्थ है कि जहां भी बैठेगा, वहां पहले पिच्छी से साफ कर लेगा। मोर के पंख से बनाई गई कि चींटी भी मरेगी नहीं, हटाए जाने पर भी मरेगी नहीं। मोर के पंख से और कोमल क्या मिल सकेगा? उन दिनों तो कम-से-कम नहीं ही मिल सकता था, तो जो कोमलतम था उसकी पिच्छी बना ली है। उसको साथ लेकर चलता है कि कहीं बैठूंगा, खड़ा होऊंगा, तो साफ कर लूंगा। कोई कीड़ा कोई चींटी भी न मर जाए, इतनी हिंसा भी न हो।

अगर भीतर ध्यान पैदा हुआ तो बाहर प्रेम पैदा होता है। फिर ठीक है पिच्छी लेकर चलो। लेकिन कोई सोचता हो कि शानदार पिच्छी बनवा ली, सबसे बढ़िया-से-बढ़िया मोर के पंखों से बनवा ली, चले लेकर, अब बस मोक्ष तय है--इतना आसान नहीं है। बात को समझ लेना।

सरहपा यह नहीं कह रहे हैं कि ऐसा मत करो। सरहपा यह नहीं कह रहे हैं कि वेद मत पढ़ो। सरहपा यह नहीं कह रहे हैं कि नग्न मत रहो। सरहपा यही कह रहे हैं कि पहले भीतर की घटना घटने दो, फिर बाहर की घटनायें अपने-आप घट जाती हैं, वे परिणाम हैं। नहीं तो तुम व्यर्थ की औपचारिकताओं में, क्रिया-कांडों में ही अपना जीवन नष्ट कर दोगे।

वोह दैर-ओ-कलीसा हो, या काबा-ओ-बुतखाना।

कुछ पर्दे हैं, कुछ धोके, कुछ शोब्दा-गाहें हैं।

फिर तुम चाहे मंदिर जाओ, चाहे मस्जिद, चाहे गिरजा, वहां फिर कुछ औपचारिकतायें हैं, क्रिया-कांड हैं। कुछ पर्दे हैं, कुछ धोके, कुछ शोब्दा-गाहें हैं। फिर वहां तुम व्यर्थ के जाल में ही उलझ रहोगे। जागना है जिसे, उसे मंदिर-मस्जिद और उनसे पैदा होने वाली औपचारिकतायें सब छोड़ देनी होंगी।

खड़े हैं दुराहे पै दैरो-हरम के।

तेरी जुस्तजू में सफर करने वाले।

जिन्हें तेरी तलाश है वे न तो मंदिर जाते न मस्जिद; वे दोनों के दुराहे पर खड़े हैं। जहां से मंदिर और मस्जिद अलग होते हैं, वहीं रुक जाते हैं। क्योंकि जहां मंदिर-मस्जिद अलग हुए वहां गलती हुई, झूठ हुआ। जहां

मंदिर और मस्जिद एक हैं, वहां सत्य है। जहां मंदिर-मस्जिद अलग हैं वहीं गलती है। जहां हिंदू-मुसलमान एक हैं वहां सत्य है। और जहां हिंदू-मुसलमान अलग-अलग हैं, वहां सत्य के खोजी को कोई जगह न रही। खड़े हैं दुराहे पै दैरो-हरम के! मंदिर और मस्जिद जहां से अलग होते हैं उसी दुराहे से सत्य का खोजी परमात्मा की तलाश में निकल जाता है। तेरी जुस्तजू में सफर करने वाले!

सत्य तो मिल सकता है, काश! हम व्यर्थ की औपचारिकतायें छोड़ दें।

अगर मैं नाकामे-दीद मर जाऊं अपने कूचे में ढूंढ लेना।

वहीं कहीं खाको-खूं में गलतां मेरी तमन्ना पड़ी मिलेगी।

ब-होश-हवास ऐ मुसाफिर-राहे जिंदगी! यह वोह रास्ता है

जहां तुझे रहबरी की सूरत में जा-बजा रहजनी मिलेगी।

धर्म के रास्ते पर जो तुम्हें मार्गदर्शक मिलें, जरा सावधान होकर चुनना, क्योंकि यह वह रास्ता है--जहां तुझे रहबरी की सूरत में जा-बजा रहजनी मिलेगी! यहां मार्ग-दर्शन देने के नाम पर लुटेरे खड़े हैं। यहां मंदिर-मस्जिद के नाम पर शोषण चल रहा है। यहां सच्चे के नाम पर झूठ ने बड़े आयोजन कर लिए हैं। झूठे सिक्के बाजार में गतिमान हैं।

बहुत होशपूर्वक जीयोगे, सोच-सोचकर कदम रखोगे, तो ही शायद सदगुरु से मिलना हो पाए। और तो ही शायद औपचारिकताओं और क्रिया-कांड में जिंदगी समाप्त न हो। पांचवां वेद जो पढ़ा दे, ग्यारहवीं दिशा में जो लगा दे... दस दिशायें बाहर हैं, ग्यारहवीं दिशा भीतर है... जो तुम्हें तुम्हारे मूल उत्स से मिला दे, उसके साथ अपने को जोड़ लेना। और फिर भी सरहपा कहते हैंः उसके साथ जुड़ जाने से ही कुछ न होगा।

मेरे पास कुछ लोग आ जाते हैं। एक मित्र हमेशा आते हैं। वे आकर पैर छूकर कहते हैं कि बस आशीर्वाद दे दें, बस आपका आशीर्वाद मिल गया कि सब हो गया। मैंने उनसे कहा कि आशीर्वाद तुम कम-से-कम आठ-दस साल से ले रहे हो, अभी तक कुछ हुआ नहीं? उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, सब हो ही जायेगा जब आपका आशीर्वाद है। मैंने कहाः दस साल हो गये, मेरा आशीर्वाद दस साल से दे रहा हूं, क्या तुम्हें शक है कि आशीर्वाद नहीं दे रहा हूं? मगर कुछ होता दिखाई नहीं पड़ रहा है। औषधि कब लोगे? आशीर्वाद ही लेते रहोगे!

औषधि लेने की तैयारी नहीं है। आशीर्वाद मुफ्त मिल जाता है। औषधि में तो फिर पथ्य भी होगा, औषधि कड़वी भी हो सकती है। कड़वी ही होगी! और औषधि के साथ फिर नियम होगा, अनुशासन होगा। नहीं, वे कहते हैं कि आपका आशीर्वाद काफी है, और क्या करना है मुझे? जब आप मिल गये तो सब मिल गया!

सरहपा कहते हैंः इतने से कुछ भी न होगा। "वृक्ष में लगा हुआ फल देखना, उसकी गंध लेना नहीं है। वैद्य देखने मात्र से क्या रोग दूर हो जाता है?"

सदगुरु भी मिल जाए तो फिर उसकी औषधि अंगीकार करना। वह जो मार्ग दिखाये उस पर चलना। वह जो उपचार दे उसे अपना जीवन बनाना, तो एक दिन तुम्हारे भीतर प्रकाश होगा। तो एक दिन मेघ घिरेंगे आनंद के, समाधि के! तुम पर वर्षा होगी अमृत की।

बरसो, बरसो घन पावस के!

उमड़ो, गरजो, बरसो

रिम-झिम, नर्तन-रत पायल सम

झिम-झिम

पोषण-रस-पूरित

जल बरसो
बरसो अमृत सम
जल बरसो!
बरसो, बरसो घन पावस के!

खेतों में
अन्नांकुर फूटें
सुषमा हरीतिमा
बन फूटे,
हर ओर
खुले मैदानों में
हरियाली की
चादर फैले!
सिंचित, पुलकित,
उत्साहित हो,
धरती अपनी
वैभव उगले!
बरसो, बरसो घन पावस के!

पीड़ायें सोयें,
शांति जगे,
प्रति पीड़ित जीव
उल्लसित हो,
मानव-मन
हुलसे,
रस बरसे
अंतर के
कोने-कोने में!
जल-गीत छिड़े,
जीवन विहंसे
वसुधा के
कोने-कोने में
बरसो, बरसो घन पावस के!

उमड़ो, गरजो, बरसो

रिम-झिम

नर्तन-रत पायल सम

झिम-झिम!

पोषण-रस-पूरित

जल बरसो,

बरसो अमृत सम

जल बरसो!

बरसो, बरसो घन पावस के!

घिर सकते हैं मेघ। घिरे ही हैं! तुम्हारी ठीक-ठीक पुकार उठ जाये, तुम्हारे भीतर प्रार्थना जग जाए, तुम्हारे भीतर सम्यक साधना की यात्रा शुरू हो जाये--तो अमृत बरसे। नहाओ तुम शाश्वत में! जानो तुम उसे, जिसे बिना जाने जीवन व्यर्थ है। और जिसे जानते ही जीवन में परम तृप्ति, परितोष उत्पन्न होता है।

सरहपा के सूत्र साफ-सुथरे हैं। पहले वे निषेध करेंगे। जो-जो औपचारिक है, गौण है, बाह्य है, उसका खंडन करेंगे; फिर उस नेति-नेति के बाद जो सीधा-सा सूत्र है वज्रयान का, सहज-योग, वह तुम्हें देंगे। सरल-सी प्रक्रिया है सहज-योग की, अत्यंत सरल! सब कर सकें, ऐसी। छोटे-से-छोटा बच्चा कर सके, ऐसी। उस प्रक्रिया को ही मैं ध्यान कह रहा हूं।

यह अपूर्व क्रांति तुम्हारे जीवन में घट सकती है, कोई रुकावट नहीं है सिवाय तुम्हारे। तुम्हारे सिवाय न कोई तुम्हारा मित्र है, न कोई तुम्हारा शत्रु है। आंखें बंद किये पड़े रहो तो तुम शत्रु हो अपने, आंख खोल लो तो तुम्हीं मित्र हो।

जागो! वसंत ऋतु द्वार पर दस्तक दे रही है। फूटो! टूटने दो इस बीज को। तुम जो होने को हो वह होकर ही जाना है। कल पर मत टालो। जिसने कल पर टाला, सदा के लिए टाला। अभी या कभी नहीं! यही वज्रयान का उदघोष है।

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

ओंकारः मूल और गंतव्य

पहला प्रश्नः ओशो, आपने कहा धर्म साधना है, क्रिया-कांड नहीं। लेकिन जिन्हें सरहपा क्रिया-कांड कहेंगे, उनमें से अनेक, जैसे भजन-कीर्तन, अपने आश्रम में और अन्यत्र भी, साधना के अंग बने हैं। कृपापूर्वक हमें समझायें।

आनंद मैत्रेय, जले दीये और बुझे दीये में जरा-सा ही भेद होता है। और आंख हो तो ही भेद दिखाई पड़ सकता है, आंख न हो तो बुझा दीया जला दीया दोनों एक जैसे हैं। दीया तो दीया है; हाथ में लेकर वजन तौलोगे तो जले दीये में वजन ज्यादा नहीं होगा--उतना ही होगा जितना बुझे दीये में। ज्योति का कोई वजन थोड़े ही होता है। लेकिन फिर भी जले दीये में, बुझे दीये में जमीन-आसमान का फर्क है। पर आंखवाले को ही फर्क है।

तो ऐसा कीर्तन भी हो सकता है, जो जला दीया हो और ऐसा कीर्तन भी, जो बुझा दीया हो। ऐसी प्रार्थना हो सकती है जो ज्योतिर्मय हो और ऐसी प्रार्थना, जो बिल्कुल बुझी-बुझी राख। हिंदू-घर में कोई पैदा हुआ है और बचपन से सिखाया गया है कि रोज रात सोते समय राम का स्मरण करके सोना, तो सोता है, रोज राम का स्मरण कर लेता है, आदत बन गई, यंत्रवत पुनरुक्ति करता है। इस पुनरुक्ति का विरोध है। यह क्रिया-कांड हुआ, क्योंकि इसमें हृदय नहीं है। और फिर बाल्या भील ने राम को पुकारा, बेपढ़ा-लिखा आदमी था, ठीक से याद भी न रख सका कि राम ही पुकारना है, पुकारते-पुकारते मरा-मरा पुकारने लगा--और मरा-मरा पुकारते-पुकारते ही उपलब्ध हो गया! बाल्या भील ऋषि बाल्मीक हो गया।

तुम राम ही पुकार रहे हो, तो भी काम न पड़ेगा और बाल्या ने मरा-मरा पुकारा तो भी काम पड़ गया। उस मरा-मरा पुकारने में भी अंतर का भाव था, प्राणों का संयोग था, आत्मा की पुकार थी। जहां आत्मा की पुकार जुड़ जाती है वहां क्रिया-कांड तिरोहित हो जाता है। वहां जीवित धर्म का जन्म होता है। मीरा ने भी गाये गीत और शायद लता मंगेशकर भी मीरा के भजन गाती है और यह भी हो सकता है कि मीरा से भी ज्यादा ढंग से गाये, क्योंकि मीरा कोई गायिका तो न थी। अभी लता मंगेशकर को कोल्हापुर विश्वविद्यालय ने पी एच. डी. की उपाधि दी, मीरा को कोई देता? जहर दिया था लोगों ने। कोई पी एच. डी. की उपाधि मीरा को देता? दूसरों की तो बात छोड़ दो, अपनों ने, परिवार के लोगों ने, मीरा को मार डालने के सब उपाय किये थे। पिटारी में बंद रखकर सांप भेजा, कि प्याली में भरकर जहर भेजा। हो सकता है लता मीरा से भी बेहतर गाये। गीत की कला अलग बात, लेकिन मीरा के टूटे-फूटे शब्दों में भी जो होगा वह बड़े-से-बड़े गायक के सुंदरतम सुव्यवस्थित गीत में नहीं हो सकता। दीया मीरा का चाहे टूटा-फूटा रहा हो, मगर उसमें ज्योति थी। दीया चाहे कुरूप रहा हो, मिट्टी का रहा हो, पर उसमें ज्योति थी। और तुम्हारा दीया चाहे सोने का हो और हीरे-जवाहरात मढ़ा हो और लाखों के उसके दाम हों, लेकिन अगर ज्योति नहीं है तो किस काम का है? इस भेद को स्मरण रखोगे तो सरहपा या मुझे समझने में तुम्हें आसानी होगी।

निश्चित ही यहां भी लोग नाच रहे हैं, गीत गा रहे हैं। और और मंदिरों में भी गीत गा रहे हैं, नाच रहे हैं। पर भेद है, बड़ा भेद है! यहां कोई हिंदू होने की वजह से नहीं नाच रहा, न कोई मुसलमान होने की वजह से गीत गा रहा है, न कोई ईसाई होने की वजह से। यहां तो वे लोग इकट्ठे हुए हैं जिन्हें सत्य की तलाश है; जिन्हें

सत्य की तलाश नहीं है वे तो जन्म से ही जो धर्म मिलता है उसी से तृप्त हो जाते हैं। जन्म से कहीं धर्म मिला है? जन्म से तो केवल धारणाएं मिलती हैं, धर्म नहीं। जन्म से तो विश्वास मिलते हैं, श्रद्धायें नहीं। जन्म से तो सिद्धांत मिलते हैं, सत्य नहीं; शास्त्र मिलते हैं, स्वानुभूति नहीं। जन्म से तो बंधी-बंधाई, पिटी-पिटायी लकीरें मिलती हैं; जीवन का उदघोष, अमृत की खोज जन्म से कैसे मिलेगी?

जन्म से कोई धार्मिक नहीं होता; ईसाई होता है, जैन होता है, मुसलमान होता है, हिंदू होता है; धार्मिक नहीं होता। धर्म की खोज तो व्यक्ति की निजता की खोज है। प्रत्येक व्यक्ति को इस अभियान पर निकलना होता है। यहां तो वे लोग इकट्ठे हुए हैं जिन्हें धर्म की खोज है; जो सच में ही परमात्मा को जानना चाहते हैं, चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े।

मेरे साथ होना कीमत चुकाने की शुरुआत हो गयी। तुमने मुझसे नाता जोड़ा कि तुम मुश्किल में पड़े, कि तुम्हें हजार झंझटें होंगी। मेरे साथ संबंध जोड़ने से तुम्हें सुविधा तो एक भी न मिलेगी, असुविधाएं बहुत मिलेंगी। क्योंकि मुझसे संबंध जोड़कर तुम किसी संप्रदाय के हिस्से नहीं बन रहे हो। मुझसे संबंध जोड़कर तुम तो दीवानगी सीख रहे हो, दीवानों की जमात के अंग बन रहे हो। तुम अड़चनों में पड़ोगे।

सरहपा से जिन्होंने संबंध जोड़ा वे भी पड़े और जीसस से जिन्होंने संबंध जोड़ा वे भी पड़े। हां, आज जो जीसस से संबंध जोड़े हैं उनको कोई अड़चन नहीं है; उनका जीसस से कोई संबंध नहीं है। अब जन्मगत है ईसाइयत। अब बौद्ध होना जन्म से हो जाता है।

जरा उन लोगों की सोचो, हिंदुओं की जमात में जो पैदा हुए थे, वेद और उपनिषद और गीता को दोहराते जो पैदा हुए थे, जिन्हें दूध के साथ वेद पिलाया गया था--वे लोग जब बुद्ध के साथ चल पड़े थे तो अड़चनें हुई थीं, क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्ति सदा ही मृत धर्मों के विरोधी होते हैं। धर्म के पक्षपाती जो हैं उन्हें मृत धर्म के विरोधी होना ही पड़ेगा। जीवन के जो पक्षपाती हैं वे लाश की पूजा करने के पक्षपाती नहीं हो सकते। वे तो कहेंगे कि यह सड़ी हुई लाश है; इसे जाओ और जला दो चिता पर! वही बुद्ध ने कहा था, कि तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे वेद किसी काम के नहीं हैं। लेकिन जो थोड़े-से हिम्मतवर लोग उनके साथ हो लिए थे, तुम जानते हो उनकी अड़चनें? अब जो आदमी बौद्ध घर में पैदा होकर बौद्ध हो जाता है, क्या तुम सोचते हो इसकी उपलब्धि वही होगी जो उन पहले लोगों की थी जो बुद्ध के साथ चले थे। इसको तो कोई कीमत ही नहीं चुकानी पड़ रही। यह तो मुफ्त बौद्ध हो गया है। और मुफ्त कहीं कोई बौद्ध हो सकता है, या जैन हो सकता है, या हिंदू हो सकता है?

धर्म का संबंध जन्म से नहीं है--स्वयं की खोज से है। खोज महंगा सौदा है। यहां जो लोग इकट्ठे हुए हैं वे खोजी हैं। अगर वे यहां नाच रहे हैं तो यह नाचना औपचारिकता नहीं है। क्योंकि यहां कोई उनको नाचने के लिए किसी तरह की न सुरक्षा दे रहा है, न सुविधा दे रहा है, न आश्वासन दे रहा है। मैंने तुमसे कहा नहीं है कि नाचोगे तो स्वर्ग मिलेगा। मैंने तुमसे कहा नहीं है कि ध्यान करोगे तो मोक्ष जाओगे। मैं तो तुमसे यह कह रहा हूं कि नाचने में स्वर्ग है, ध्यान में मोक्ष है। फल नहीं है मोक्ष।

जहां ध्यान का फल मोक्ष होता है वहां ध्यान क्रिया-कांड हो जाता है। तब तुम कर लेते हो किसी तरह, क्योंकि लक्ष्य तो फल पर लगा है, मन तो फल पर लगा है। अब चूंकि ध्यान के बिना मोक्ष नहीं मिलेगा, इसलिए ध्यान भी कर लेते हैं, लेकिन यह ध्यान बेमन से हो रहा है। अगर बिना ध्यान के मिल सके तो क्या तुम ध्यान करोगे? तुम्हें मेहनत करनी पड़ती है धन कमाने के लिए तो तुम मेहनत करते हो। मगर मेहनत करने में कोई रस थोड़े ही है। अगर कम मेहनत करने से इतना ही धन मिलता हो फिर भी तुम इतनी ही मेहनत करोगे? और

अगर बिना मेहनत करने से धन मिलता हो, फिर क्या तुम मेहनत करोगे? मेहनत में तुम्हें कोई रस नहीं है। अगर फल मिल जाए बिना श्रम के तो कौन श्रम करेगा? लेकिन जिसे श्रम में आनंद है, वह कहेगाः फल मिले या न मिले, श्रम मैं करूंगा। जो सुबह-सुबह घूमने गया है, तुम उससे यह नहीं पूछ सकते कि तुम किसलिए घूमने जा रहे हो, तुम्हें क्या मिलेगा? वह कहेगाः घूमना आनंद है। उसका घूमना क्रिया-कांड नहीं है। उसका साधन और साध्य एक है।

इसे तुम परिभाषा समझो, जब साधन और साध्य एक होता है तो क्रिया-कांड नहीं होता। जब साधन और साध्य अलग-अलग हो जाते हैं तो साधन क्रिया-कांड हो जाता है। फलाकांक्षा-रहित तुम कुछ भी कर सको, वही धर्म है। नाच सको मस्त होकर, नाचने में ही आनंद हो, नाचने के पार नजर ही न हो, नाचने के पार कुछ आकांक्षा ही न हो, नाचना समग्र हो जाए, तुम्हारे पूरे प्राण को डुबा ले, तुम्हारी श्वास-श्वास में रम जाए, तुम्हारे रोएं-रोएं में बैठ जाए--बस, इस नृत्य में मीरा का आविर्भाव हो जाएगा। इस गीत में सूरदास के पद समा जाएंगे। इस चुपचाप बैठ जाने में बुद्धत्व की अपने-आप गरिमा, महिमा आ जाएगी।

बुद्ध बैठे वृक्ष के नीचे और उन्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ। तुम भी वृक्ष के नीचे बैठते हो कि ज्ञान उत्पन्न हो जाए। तुम्हारा वृक्ष के नीचे बैठना क्रिया-कांड है। तुम बैठो जन्मों-जन्मों तक, तुम अपना भी समय खराब कर रहे हो। तुम वृक्ष को भी परेशान कर रहे हो। वृक्ष भी तुमसे ऊबेगा और तुम बीच-बीच में आंख खोल-खोलकर देख लोगे अभी तक ज्ञान मिला नहीं, बुद्धत्व आया नहीं?

बुद्धत्व उस क्षण का नाम है जिस क्षण में तुम समग्रीभूत रूप से डूब जाते हो, फिर वह नृत्य हो, मौन हो, गीत हो, गान हो, संगीत हो, कुछ भेद नहीं पड़ता। मौलिक बात एक ही हैः जिस क्षण में तुम पूरे लीन हो जाते हो, तल्लीन हो जाते हो, तन्मय हो जाते हो, रसमय हो जाते हो, तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं बचता, सब डूब जाता है, उस डुबकी का नाम धर्म है।

तुमने पूछाः आपने कहा धर्म साधना है, क्रिया-कांड नहीं। निश्चय ही साधना और क्रिया-कांड ऊपर से एक जैसे दिखाई पड़ते हैं; भेद इतना ही है कि साधना में आत्मा होती है, क्रिया-कांड में आत्मा नहीं होती। जिंदा आदमी और मरा हुआ आदमी दोनों पास-पास लेटे हों, एक से दिखाई पड़ते हैं; और जिंदा आदमी ने अगर थोड़ा योग इत्यादि की साधना की हो और सांस रोककर पड़ जाए तो शायद चिकित्सक भी भेद न कर पाएं कि मुर्दा कौन है और जिंदा कौन है? लेकिन फिर भी जिंदा जिंदा है और मुर्दा मुर्दा है। भेद कहां है? ऊपर से तो एक जैसे लगते हैं अगर तस्वीर लोगे तो दोनों की तस्वीर एक जैसी आ जायेगी और तस्वीर में भेद करना मुश्किल हो जाएगा, कि कौन जिंदा है कौन मुर्दा है।

शास्त्र तस्वीर हैं, इसलिए शास्त्रों से भेद करना मुश्किल हो जाता है कि कौन जिंदा है कौन मुर्दा है। लेकिन अगर तुम जाकर टटोलोगे तो छोटी-सी बात बता देगी कि कौन जिंदा है कौन मुर्दा है।

यूनान में एक बड़ा चित्रकार हुआ। उसकी मौत आई। कहानी बड़ी प्रीतिकर है। उसने अपनी ही ग्यारह मूर्तियां बना लीं और उनमें छुपकर खड़ा हो गया। इतना बड़ा कलाकार था वह, इतना बड़ा मूर्तिकार था कि लोग कहते थेः अगर मूर्ति मूल के पास खड़ी कर दी जाए तो दूर से बताना मुश्किल है कि कौन मूल है और कौन मूर्ति है। अपनी ही उसने ग्यारह मूर्तियां बना लीं, खड़ा हो गया। मौत भीतर आई, मौत भी चौंकी। एक को ले जाना था, वहां बारह एक जैसे लोग थे। किसको ले जाए, किसको न ले जाए? सब एक जैसे थे। रत्ती-भर भी भेद नहीं था। मौत वापिस लौट गई। उसने परमात्मा को पूछा कि क्या करूं, वहां बारह लोग हैं? परमात्मा खूब हंसा। उसने कहाः आखिर तू मौत है, मौत ही रही। इतनी छोटी-सी बात तू पहचान न पाई?

लेकिन मौत है तो जीवन को कैसे पहचाने? परमात्मा ने कहाः छोटी-सी तरकीब है, यह ले, यह जाकर ये शब्द, ये वचन बोल देना बीच भवन में और जो असली है बाहर निकल आएगा।

मौत वापिस लौटी। जैसा परमात्मा ने कहा था उसने वैसा ही किया। एक-एक मूर्ति के पास गई, गौर से देखा और सारी मूर्तियों को देखने के बाद बोलीः और तो सब ठीक है, एक भूल रह गई। वह जो चित्रकार था, एकदम से बोलाः कौन-सी भूल? मौत ने कहाः बाहर आ जाओ। यही परमात्मा ने मुझे सूत्र दिया था कि इतना बोल देना। और जो जिंदा है वह बोल ही देगा कि कौन-सी भूल। यही भूल कि तुम अपने को नहीं भूल सकते हो। बाहर आ जाओ।

जिंदा और मुर्दा आदमी अगर बिल्कुल भी एक जैसे मालूम होते हों, तो भी एक जैसे नहीं हैं। ऐसा ही साधना और क्रिया-कांड का भेद है। क्रिया-कांड साधना की लाश है, जिसमें से प्राण उड़ चुके। पींजड़ा पड़ा रह गया, पक्षी जा चुका। हंसा उड़ गया। कभी हंसा था। कभी प्यारा पक्षी पींजड़े में था, तब सुबह सूरज ऊगता था, गीत भी फूटता था पींजड़े से। पींजड़ा नहीं गाता था गीत, याद रखना; पींजड़ा क्या खाक गीत गायेगा! मगर पक्षी था भीतर जो गीत गाता था। हवायें आती थीं तो पंख भी फड़फड़ाता था। अब पींजड़ा ही रह गया। अब सूरज अभी भी ऊगता है और हवायें अब भी आती हैं, लेकिन न कोई पंख फड़फड़ाता है, न कोई गीत गाता है। पींजड़ा अब भी है, पर पींजड़े से क्या होगा।

साधना है जीवंत घटना और क्रिया-कांड है उसी साधना की पड़ी रह गई लाश। दोनों एक जैसे मालूम होते हैं, इसलिए दो तरह की भ्रांतियां हो सकती हैं। पहली भ्रांति, कि दोनों एक जैसे मालूम होते हैं इसलिए लोग क्रिया-कांड करते रहते हैं, कि यह भी तो साधना ही है। आखिर मीरा भी तो नाची थी! पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! तो तुमने भी पद घुंघरू बांध लिए और तुम भी नाचे। मगर मीरा का प्राण कहां है? हंसा कहां है? वह भाव कहां है? वह भक्ति कहां है? घूंघर तो बांध लिए, घूंघर तो बाजार में मिल जाते हैं। नाच भी सीख लिया; वह भी कोई कठिन नहीं। मगर मीरा की आत्मा कहां से लाओगे? और जब तक मीरा की आत्मा नहीं है तब तक कितना ही ता ता थेई थेई करो, ता ता थेई थेई ही रहेगा। पींजड़ा पड़ा है। सूरज ऊग गया, गीत नहीं फूटेगा। गीत नहीं फूटेगा, नहीं फूट सकता है। गीत गाओगे, बस कंठ से निकलेगा, हृदय से न आएगा।

तो एक तो भूल यह होती है कि लोग समझते हैं क्रिया-कांड साधना है; फिर दूसरी भूल यह हो सकती है, सरहपा या मेरे जैसे लोग जब क्रिया-कांड का विरोध करते हैं तो तुम समझ लो कि साधना का विरोध हो रहा है। यह उसी भूल का दूसरा पहलू है, उसी सिक्के का दूसरा पहलू है। या तो लोग समझते हैं कि क्रिया-कांड साधना है। अगर विरोध करो क्रिया-कांड का तो समझते हैं कि साधना का विरोध हो रहा है। सरहपा क्यों साधना का विरोध करेंगे? क्रिया-कांड का विरोध कर रहे हैं।

सोच-सोच पग रखना। सरहपा जैसे लोगों के साथ चलना हो तो बहुत सोच-सोच पग रखना। यह खडग की धार है।

ले ही लिया असीरों ने दीवानगी से काम
जिंदां में सर को फोड़ के, रोजन बना दिया।

दीवाने थे, फिकिर न की, सिर मार-मारकर कारागृह की दीवालों में सेंध बना ली। सिर मार-मारकर सेंध बना ली।

ले ही लिया असीरों ने दीवानगी से काम
जिंदां में सर को फोड़ के, रोजन बना दिया।

साधना तो दीवानों की बात है। यहां तो सिर मार-मारकर दीवालें तोड़ ली जाती हैं।

एक लफ्जे हू, सदा करने के सौ अंदा.ज हैं।

नालए-नाकूस है गोया अजाने-बरहमन।।

सूफियों का वचन हैः एक लफ्जे हू... ! हू सूफियों का मंत्र है। जैसे ओम, ऐसा हू। हू का अर्थ होता हैः वह, तत। हू का अर्थ होता है परमात्मा का नाम, परमात्मा के नाम की एक पुकार। हू, अल्ला-हू का आखिरी हिस्सा है। एक लफ्जे हू, सदा करने के सौ अंदा.ज हैं! शब्द तो एक ही है, ध्वनि तो एक ही है हू, लेकिन उसे पुकारने के सौ अंदा.ज हो सकते हैं। हर पुकारने वाले पर अंदा.ज निर्भर करेगा। पुकारने-पुकारने वाले का अंदाज होगा, क्योंकि पुकारने-पुकारने वाले की आत्मा उस हू के पीछे खड़ी होगी।

एक लफ्जे हू, सदा करने के सौ अंदा.ज हैं।

नालए-नाकूस है गोया अजाने-बरहमन।।

और वह जो पुजारी शंख बजा रहा है, उसमें और मस्जिद में उठती अजान में जरा भी भेद नहीं है। वह जो मंदिर में शंख बज रहा है, अगर उसमें आत्मा हो और जो मस्जिद में अजान उठ रही है अगर उसमें आत्मा हो, तो ये एक ही पुकार के दो अलग अंदाज हैं, एक ही पुकार की दो अलग तर्जें हैं, दो शैलियां हैं। पुजारी का ढंग है अजान पढ़ने का मंदिर में घंटियां बजाना। मस्जिद में घंटियों की जगह अजान हो रही है। वह भी उसी की पुकार है असली बात एक है ख्याल में रखने जैसी, कि जिससे पुकार उठी है, उसने सच पुकारा है या तोतों की तरह केवल पुनरुक्ति कर रहा है? आवाज उससे ही आई है, उसकी ही है, अपनी है? अपने प्राणों का संग-साथ है, सहयोग है? और अगर वह न हो तो फिर सब फिजूल है। फिर तुम बाजार से प्लास्टिक के फूल खरीद ला सकते हो। खिड़की में सजा ले सकते हो, पड़ोसियों को शायद धोखा भी हो जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन रोज अपनी खिड़की में लगाये हुए फूलों में पानी डालता। पड़ोसी देखते कि लाता है फव्वारा, उंडेलता है फव्वारा, लेकिन कभी पानी किसी ने फव्वारे से गिरते देखा नहीं। आखिर एक पड़ोसी से न रहा गया, न रहा गया। उसने कहाः क्षमा करें, आपने उत्सुकता जगा दी है। सोचता हूं मैं क्यों दखलन्दाजी दूं, मगर पूछना जरूरी हो गया, क्योंकि अब मैं इसके बिना जाने सो भी नहीं सकता। यह बार-बार मुझे ख्याल आता है कि मामला क्या है, आप डालते तो जरूर हैं रोज पानी, लेकिन पानी मैं गिरते नहीं देखता!

मुल्ला ने कहाः पानी गिराने की जरूरत ही नहीं है, ये फूल ही कौन सच्चे हैं?

ये फूल प्लास्टिक के हैं।

तो उस पड़ोसी ने कहाः अब तुमने मुझे और मुश्किल में डाल दिया। अगर फूल प्लास्टिक के हैं और पानी डालते नहीं तो नाहक फव्वारे से डालने का ढौंग क्यों करते हो?

उसने कहाः ताकि पड़ोस के लोग जानें कि फूल सच्चे हैं; नहीं तो पानी न डालो और फूल लगे ही रहें, लगे ही रहें, लगे ही रहें, तो आज नहीं कल शक हो जायेगा कि फूल प्लास्टिक के हैं। इसलिए पानी डालने की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ डालने का बहाना करना पड़ता है।

ऐसी ही तुम्हारी प्रार्थना हैः न फूल सच्चे हैं, न पानी सच्चा है, न तुम पानी डाल रहे हो। पड़ोसियों को धोखा दे रहे हो--पड़ोस में खबर बनी रहे कि तुम धार्मिक हो।

उस जाने-बहारां ने जब से मुंह फेर लिया है गुलशन से।

शाखों ने लचकना छोड़ दिया, गुंचे भी चटखना भूल गये।

जब तक तुम्हारे भीतर उस प्रीतम के प्रेम का बसंत है तब तक सब ठीक है; तब तक तुम जो करो वही ठीक है; जैसे करो वही ठीक है। तुम जैसे उठो वही उपासना है और तुम जैसे बैठो वही साधना है। जब तक उस प्यारे का बसंत तुम्हारे भीतर छाया है... उस जाने-बहारां ने जब से मुंह फेर लिया है गुलशन से... लेकिन जिस क्षण से तुम्हारा परमात्मा की स्मृति में कोई रंग नहीं रहा, रस नहीं रहा, तुम्हारी जड़ें नहीं रहीं, शाखों ने लचकना छोड़ दिया, गुंचे भी चटखना भूल गये! फिर उस दिन से न तो शाखें लचकेंगी, न तो शाखें नाचेंगी और न गुंचे चटखेंगे और न फूल खिलेंगे। फिर तुम कागज की तस्वीरें लेकर बैठे रह सकते हो। फिर उन तस्वीरों की तुम करते रहो पूजा। तुम समय ही गंवा रहे हो।

क्रिया-कांड का विरोध है। साधना का कोई विरोध नहीं है। अब लोग हैं जो संस्कृत में पूजा कर रहे हैं, और संस्कृत उन्हें आती नहीं। उसका अर्थ भी उन्हें पता नहीं है। लोग हैं, अरबी में नमाज पढ़ रहे हैं, उन्हें अरबी आती नहीं; उसका अर्थ भी उन्हें पता नहीं। जिसका अर्थ भी पता नहीं उसमें तुम्हारी आत्मा का क्या जोड़ होगा?

समझ में कुछ नहीं आता,
पढ़े जाऊं तो क्या हासिल?
नमाजों का है कुछ मतलब तो
परदेशी .जबां क्यों हो?

तुम दूसरों की जबान बोल रहे हो। तुम उधार वचन बोल रहे हो। इसलिए सब क्रिया-कांड हो गया है।

मैं तुम्हें फिर याद दिला दूंः यहां हम जरूर नाच रहे हैं, मगर यह नाच न हिंदू का है न मुसलमान का न ईसाई का। यह नाचने वालों का नाच है। इस नाचने का कोई लक्ष्य नहीं है। यह नाचना अपने में ही अपना लक्ष्य है। हम आनंद से नाच रहे हैं; यह हमारा उत्सव है। यह हमारी पूजा नहीं है, यह हमारी प्रार्थना नहीं है; यह हमारा धन्यवाद है। इतना दिया है अस्तित्व ने, क्या हम उसे धन्यवाद देने के लिए नाचें भी न? और जब तुम्हारे अनुग्रह से कोई बात उठती है तब उसका रूप ही और होता है, रंग और होता है, उसका गौरव और, गरिमा और। तब दीया जलता है। मगर अंधे हाथों में जले दीए बुझे दीए में कोई भेद नहीं होता।

झेन कथा है। एक फकीर अपने मित्र के घर से वापिस लौटता था। रात देर हो गई थी। मित्र ने कहाः रुको, मैं लालटेन जला दूं, तुम साथ लालटेन ले जाओ। वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा कि तुम मुझे जानते हो, मैं अंधा हूं, मुझे दिन और रात में ही कोई फर्क नहीं। लालटेन भी ले जाकर क्या होगा? मुझे तो अंधेरा ही अंधेरा है। लालटेन भी ले जाऊंगा तो मुझे क्या लाभ?

लेकिन वह फकीर भी बड़ा तार्किक था। उसने कहा कि सुनो, वह तो मुझे मालूम है कि तुम अंधे हो, जीवन-भर से तुम्हें जानता हूं; लेकिन हाथ में लालटेन रहेगी, रात बड़ी अंधेरी है, वर्षा की रात है, आकाश में बादल घिरे हैं, अमावस है। हाथ में लालटेन रहेगी तो कोई दूसरा तुमसे न टकरायेगा। कम-से-कम इतना बचाव हो जाएगा। तुम्हें तो कोई फर्क न पड़ेगा, लेकिन दूसरा तुमसे न टकराएगा, इतना भी क्या कम है? आधी सुरक्षा हो जाएगी।

यह तर्क ऐसा था कि अंधे को मान ही लेना पड़ा। लेकर लालटेन चला।

कोई पचास कदम ही गया होगा कि कोई आकर टकरा गया। अंधा तो बड़ा हैरान हुआ। अंधे ने कहा कि भाई क्या तुम भी अंधे हो? इस गांव में तो मैं अकेला अंधा हूं, तुम कहां से आ गए? कोई परदेसी मालूम होते हो। तुम्हें मेरे हाथ की लालटेन नहीं दिखाई पड़ती?

वह दूसरा आदमी हंसने लगा। उसने कहा कि क्षमा करें, मैं अंधा नहीं हूं, लेकिन आपके हाथ की लालटेन बुझ गई है, इसका आपको पता नहीं है।

अब अंधा लालटेन भी ले जाए तो भी क्या होगा? रास्ते में बुझ जायेगी तो उसे पता भी न चलेगा। अंधों के हाथ में साधनायें पड़कर क्रिया-कांड हो जाती हैं--बुझी लालटेनें हो जाती हैं। आंखवालों के हाथ में बुझी लालटेन पड़ जाए तो वे जल्दी ही उसमें ज्योति जगा देते हैं।

ऐसी जन्मों-जन्मों, सदियों-सदियों की बुझी लालटेनों में ज्योति जलाने की यहां कोशिश की जा रही है। यहां हम सारी विधियों को पुनरुज्जीवित कर रहे हैं। ऐसा कोई स्थल पृथ्वी पर नहीं है, जहां झेन साधना चल रही है, सूफी साधना चल रही है; जहां बौद्ध साधना चल रही है; जहां भक्तों का, ज्ञानियों का, योगियों का जो कुछ दान है जगत को, उस सबको पुनरुज्जीवित किया जा रहा है। बुझी हुई लालटेनें हैं तुम्हारे हाथ में, कोशिश कर रहे हैं कि उनमें ज्योति जल जाए। हम क्रिया-कांडों को साधना बनाने में लगे हैं। और तुमने सारी साधनाओं को क्रिया-कांड बना लिया है।

दूसरा प्रश्नः क्या उपासना का कोई भी मूल्य नहीं है और यदि मूल्य है तो फिर विरोध क्यों?

किसने कहा उपासना का मूल्य नहीं है। हां, तुम जिसे उपासना समझते हो उसका कोई मूल्य नहीं है। मगर वह उपासना ही नहीं है। उपासना शब्द को ही समझो जरा। इसका अर्थ होता हैः पास में आसन मारकर बैठ जाना, उप धन आसन।

तुमने जरा इसके अर्थ पर भी गौर किया, कितना प्यारा अर्थ है! किसके पास आसन मारकर बैठ जाना? सदगुरु मिल जाए, जिसके भीतर ज्योति जगी हो, उसके पास आसन मारकर बैठ जाने का नाम उपासना है।

ये तीनों शब्द एक अर्थ रखते हैं--उपासना, उपवास, उपनिषद। तुम चौंकोगे, क्योंकि तुमने तो इनके बड़े अलग अर्थ कर रखे हैं। उपासना का अर्थ होता हैः पास बैठना।

उपवास का अर्थ भी होता हैः पास वास करना। वह उपासना से भी थोड़ा और आगे बढ़ना है। क्योंकि पास बैठे, कभी-कभी नहीं बैठे। कभी मिल गए सत्संग में फिर चले गए दुनिया में। उपवास का अर्थ होता हैः बैठे सो बैठे, वास ही करने लगे। बैठे सो फिर उठे नहीं।

और उपनिषद का अर्थ होता हैः पास बैठकर जो मिल जाए। वह जो संक्रमण होता है। वह और आगे की बात है। क्योंकि तुम बैठ ही गए, इतने से कुछ नहीं होता। जब धीरे-धीरे तुम्हारा चित्त बिल्कुल शून्य हो जाएगा, बैठे-बैठे जब तुम मिट जाओगे, तब उपनिषद घटित होता है। उपनषिद का अर्थ होता है गुरु से शिष्य की शून्यता में जब ज्योति का प्रवेश होता है। उसका नाम उपनिषद।

उपासना... किसने कहा कि इसका कोई मूल्य नहीं है? न तो सरहपा ने कहा न मैं कहता हूं। कोई भी जानने वाला कैसे कहेगा? लेकिन फिर भी सरहपा ने कहा है और मैं भी कहता हूं कि तुम जिसे उपासना मानते हो, वह दौ कौड़ी की है।

तुम्हारी उपासना बिल्कुल झूठी है, औपचारिक है; थोथी है। मूल्य है उपासना का, और क्या मूल्य है?

इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये!

ज्ञान कर्म से विरक्त;

व्यर्थ ज्ञान कर्म-त्यक्त!

ज्ञान-कर्म-बंध में
उपासना सबल सशक्त!
जीवन-संग्राम में पैर कहीं डगमगाये!
इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये!

लक्ष्य ज्ञान का सुदूर;
प्रगति-शील पुरुष शूर
बढ़ता है, किन्तु, हृदय
होता जब चूर-चूर!
मात्र एक स्मरण शेष मुक्ति का चरम उपाय!
इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये!

ज्ञान हो न कर्म-हीन,
कर्म हो न खिन्न, दीन;
हो न जाये ज्ञान का
प्रकाश कहीं मलिन-क्षीण!
नित्य, चिन्नवीन रहे, अमर ज्योति जगमगाये!
इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये!

जिसे स्मरण हो आया हो परमात्मा का उसके पास बैठने का एक ही अर्थ हैः इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये! और अगर भूल गए हो तो याद आए।

इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाए!
जीवन संग्राम में पैर कहीं डगमगाये!

जिनके पैर डगमगाने बंद हो गए हैं, थोड़ा उनके साथ चलो, तो तुम्हारे भी पैर थिर होने लगें।

मात्र एक स्मरण शेष मुक्ति का चरम उपाय!
इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये!

याद दिलाती रहे कोई परिस्थिति, कोई वातावरण, कोई ऊर्जा-क्षेत्र तुम्हें बार-बार तीर की तरह चुभता रहे, स्मरण दिलाता रहे--

मात्र एक स्मरण शेष मुक्ति का चरम उपाय!
इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये!
नित्य, चिन्नवीन रहे, अमर ज्योति जगमगाये!
इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये!

और हम भूले खड़े हैं। हम बुरी तरह भूल गए हैं। हमें याद ही नहीं रहा कि हम कौन हैं, किसलिए हैं, कहां से हैं, किस ओर जा रहे हैं? हमसे ज्यादा मूर्च्छित और क्या है इस अस्तित्व में? हम बिल्कुल ही मूर्च्छित हैं। तुम्हें चौराहे पर कोई आदमी मिल जाए और तुम उससे पूछोः कौन हो आप? और वह कंधे हिलाकर रह जाए और कहे कि मुझे कुछ पता नहीं है। तो क्या समझोगे? समझोगे कि पागल है, या मजाक कर रहा है, या नशे में है?

और पूछो कि कहां से आते हो, वह फिर कंधे बिचकाकर रह जाए, कहे कि मुझे कुछ पता नहीं है। और पूछो कहां जाते हो, वह फिर कंधे बिचकाए और कहे कि मुझे कुछ पता नहीं है। तो तुम डरोगे उस आदमी से। तुम जल्दी से हट जाना चाहोगे; यह आदमी खतरनाक मालूम होता है, पता नहीं पागल ही हो! जिसे यह भी पता नहीं है, कहां से आता है, कहां जाता है, कौन है!

लेकिन यही तो तुम्हारी जीवन के चौराहे पर दशा है। कहां से आते हो? कौन हो? कहां जा रहे हो? क्या है प्रयोजन तुम्हारे होने का? नहीं, फुरसत ही कहां है इस सब बात को सोचने की?

उपासना का अर्थ हैः जहां किसी के पास बैठकर किसी की सन्निधि में इन बातों पर विचार हो, इन बातों पर चिंतन हो, इन बातों पर ध्यान हो। ये जीवन के मौलिक प्रश्न जहां तीर की तरह तुम्हारे प्राणों में छिद जायें!

इसलिए उपासना कि तू न कहीं भूल जाये!

पूछा तुमनेः क्या उपासना का कोई भी मूल्य नहीं है। मूल्य है; लेकिन तुम जिसे उपासना समझते हो उसका कोई भी मूल्य नहीं है। तुम्हारी क्या है उपासना? गए मंदिर में, जल्दी से घंटी बजा दी, सिर पटक दिया पत्थर की मूर्ति के सामने, भागे! यह तो तुम कितनी बार कर चुके, क्या हुआ? पत्थरों की पूजा करते-करते अकसर तुम पत्थर हो गए। स्वाभाविक है। जिसकी पूजा करोगे वैसे ही हो जाओगे। जरा पूज्य को सोचकर चुनना, क्योंकि पूज्य का अर्थ होता है, वह निर्धारक होगा। कोई पीपल के झाड़ की पूजा कर रहा है, इसको उपासना कहता है! किसी ने पत्थर की मूर्ति बना ली, उसकी उपासना कर रहा है। कोई शास्त्रों की उपासना कर रहा है! कोई कुछ कोई कुछ... !

जीवंत ज्योति खोजो! कहीं कोई बुद्ध मिल जाए, उसे खोजो। कहीं कोई सरहपा मिल जाए, उसे खोजो। कहीं जहां जागरण हुआ हो, जहां सुबह हो गई हो, उससे संबंध जोड़ो, सेतु बनाओ। उस तरह के संबंध का नाम शिष्यत्व है। और संबंध जुड़ जाए प्रकाश के किसी पुंज से तो उपासना।

और तुम पूछते होः यदि मूल्य है तो फिर विरोध क्यों?

विरोध तो है ही नहीं। विरोध तो गलत सिक्कों का है। और गलत सिक्के बिल्कुल सही सिक्कों जैसे मालूम होते हैं; इसलिए विरोध करना ही होगा, बार-बार करना होगा। क्योंकि गलत और सही सिक्के की पहचान कैसे होगी?

ऊपर उठो, ऊपर उठो!
क्योंकि तुम इन्सान हो;
परमात्मा की जान हो!
तुम गगन से और भी!
ऊपर उठो, ऊपर उठो!

वृत्ति पाशव छोड़ दो;
वेग को तुम मोड़ दो!
हे मनुज के वंश-धर,
ऊपर उठो, ऊपर उठो!

तुम चढ़ो दिग्मरु पर

तुम बढ़ो, हो अग्रसर!

धूम्र-वर्षा-मेघ से

ऊपर उठो, ऊपर उठो!

इसलिए विरोध है, क्योंकि तुम जहां पड़े हो वह तुम्हारी नियति नहीं है। मंदिरों में पूजा से कुछ भी न होगा। यह सारा अस्तित्व मंदिर हो जाए, तब तक रुकना नहीं है। जब तक कण-कण चिन्मय न हो जाए, तब तक रुकना नहीं है। इतना बड़ा मंदिर है, यह आकाश का चंदोवा है, यह तारों से भरा आकाश है। इतना सुंदर विश्व; इतना अपूर्व, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता; तुम चले अपने मंदिर अपनी मस्जिद की तरफ। यह परमात्मा का मंदिर और मस्जिद और गिरजा और गुरुद्वारा, इसे कब देखोगे? आदमी की ईंटों से बने मंदिर-मस्जिदों को पूजते रहोगे, आदमी के द्वारा निर्मित पत्थरों के सामने सिर पटकते रहोगे? ऊपर उठो, ऊपर उठो!

इसलिए उपासना, कि तुम्हें कोई याद दिलाता रहे। ऊपर उठने में कठिनाई तो है, क्योंकि पंख खोलने पड़ेंगे, जो तुमने न मालूम कितने जन्मों से नहीं खोले। और अनंत आकाश का विस्तार भयभीत करता है, कंपाता है, डराता है। तुम घोंसलों में छिपने के आदी हो गए हो। इसलिए तुम सस्ती बातों से राजी हो जाते हो। बना लिए मिट्टी के गणेश जी, कर ली पूजा, निपटारा हो गया। और अगर कोई कहे कि यह तुम क्या कर रहे हो, तो तुम्हें चोट लगती है, तुम्हारे अहंकार को चोट लग जाती है।

अभी कुछ दिन पहले मैंने कहा कि मुहम्मद ने सारी मूर्तियों का विरोध किया है और ठीक किया है, क्योंकि उस परम की कोई मूर्ति नहीं बन सकती। उस परम को किसी रूप में नहीं समाया जा सकता। लेकिन फिर मुसलमान हैं कि काबा के पत्थर की पूजा कर रहे हैं। यह तो मुहम्मद की खिलाफत हो गई। यह तो मुहम्मद से दुश्मनी हो गई। मैं मुहम्मद के पक्ष में हूं, इसलिए मैंने यह कहा। लेकिन मुसलमान इकट्ठे हो गए जामा मस्जिद में कि मैंने मुहम्मद का विरोध किया है, मैं काबा के पत्थर के खिलाफ बोला हूं। मैंने मुहम्मद का विरोध नहीं किया है। मैं मुहम्मद का पक्षधर हूं, इसलिए काबा के पत्थर की मैंने बात उठाई। अब इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम एक गढ़े हुए पत्थर को पूजते हो कि अनगढ़े पत्थर को पूजते हो, बात तो पत्थर को पूजने की है। लेकिन मुसलमान नाराज हो जाते हैं, तब बड़ी हैरानी होती है। तब इतनी हैरानी होती है कि मुहम्मद को मानने वाले इसलिए नाराज हो गए कि मैंने काबा के पत्थर का विरोध किया है। तो तुम खाक समझे हो मुहम्मद को! तुम कभी समझ सकोगे?

मगर यही दशा औरों की भी है--यही जैनों की, यही बौद्धों की, यही हिंदुओं की, यही ईसाइयों की। यह बड़े आश्चर्य की दुनिया है। यहां जाग्रत पुरुष जो कह जाते हैं उनके पीछे चलनेवाले ठीक उससे उल्टा करते हैं, ठीक उल्टा! और फिर भी मानते हैं कि वे अनुयायी हैं। और अगर कोई उन्हें चेताए तो दुश्मन मालूम होता है।

अब मुसलमानों ने सारी प्रादेशिक सरकार को और केंद्रीय सरकार को मेरे खिलाफ पत्र लिखे हैं कि मैंने उनकी धार्मिक भावना को चोट पहुंचा दी, कि मैंने उनके जज्बात को चोट पहुंचा दी, कि मेरे बोलने पर रोक लगाई जाए। अगर इस तरह के लोगों को मुहम्मद से मिलना हो जाए तो ये मुहम्मद के खिलाफ भी इसी तरह का शोरगुल मचायेंगे, क्योंकि मैंने जो कहा वह वही है जो मुहम्मद ने कहा।

लेकिन ऐसा ही अंधापन है आदमियों का।

उपासना का विरोध नहीं किया जा रहा है यहां। लेकिन कई बार तुम्हें लगेगा कि विरोध किया जा रहा है। जब भी तुम्हें ऐसा लगे कि विरोध किया जा रहा है तब तुम समझना कि तुम जिसे उपासना समझते हो

उसका विरोध किया जा रहा है। एक और भी उपासना है बुद्धों की, उसका तो कैसे विरोध किया जा सकता है? और विरोध इसीलिए किया जा रहा है कि तुम्हें सच्ची उपासना उपलब्ध हो सके।

तीसरा प्रश्नः ओशो, सत्य ही कहता हूं, सत्य ही सुनता हूं। इस सत्यपन की आदत से सभी रिश्तेदार व मित्र साथ छोड़ गये हैं। सांसारिक होने के कारण अकेलापन बहुत परेशान करता है। काम ईमानदारी से करने और ईमानदारी से ही जीवन व्यतीत करने में शांति तो मिल रही है, लेकिन बच्चों के लिए ईमानदारी का पैसा कमाने में रात-दिन काम करता रहता हूं और साधना नहीं कर पाता। कृपया मार्ग दिखायें।

रोशन, कहीं बुनियाद में चूक हो रही है। कहीं बड़ी गहरी भूल हो रही है। तुम कहते होः सत्य ही कहता हूं, सत्य ही सुनता हूं। तुमने किसी-न-किसी अनजान क्षण में इस सत्य के पीछे अपने अहंकार को जोड़ लिया है। बस वहीं भूल हो गई है। इसलिए परेशानी हो रही है, नहीं तो परेशानी न होती। यह सत्य कहना तुम्हारा आनंद नहीं है, तुम्हारी अस्मिता है। और भेद बड़ा है। दोनों में भेद काफी बड़ा है। ठीक से समझ लोगे, इसी क्षण उपद्रव बंद हो जाएगा।

सत्य कहना अगर तुम्हारा आनंद है, तो यह प्रश्न नहीं उठेगा। तुम इतना आनंद उठा रहे हो तो उस आनंद के लिए कुछ चुकाओगे नहीं? तो ठीक है, नाते-रिश्तेदार छोड़ दिए, ठीक है। असली नातेदार, असली रिश्तेदार तो मिल गया--सत्य--परमात्मा से साथ बन रहा है। अगर ये साधारण नाते-रिश्तेदार साथ छोड़ रहे हैं, छोड़ने दो। इनसे तो साथ छूट ही जानेवाला है। ये तो सब मतलब के साथी हैं। इससे हर्ज क्या है? झंझट ही मिटी। थोड़ा उपद्रव कम हुआ। तुम्हारे जीवन में और शांति होगी और चैन होगा। इनके होने से क्या होना था?

नहीं; लेकिन तुम्हारे भीतर आकांक्षा यह रही होगा कि मैं सत्य ही कहता हूं और सत्य ही सुनता हूं, तो सारे नाते-रिश्तेदार मेरा सम्मान करें। कहीं छिपी हुई आकांक्षा रही होगी कि इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़नी चाहिए, यह उल्टी घट रही है? तुम्हारे अहंकार की पूजा नहीं हुई।

और ध्यान रखना, नाते-रिश्तेदारों ने तय नहीं किया है कि उन्हें सत्य ही कहना है और सत्य ही सुनना है। उनको उनके ढंग से जीने दो। उन पर कृपा करो। यह तुम्हारा निर्णय है। और निश्चित ही उन्हें अड़चन होती होगी, क्योंकि वे झूठ में जी रहे हैं। और उन्हें झूठ में जीना है तो उसका हक है उन्हें। पूरा हक है। उन्हें पूरी स्वतंत्रता है। जैसे तुम्हें स्वतंत्रता है सत्य में जीने की, उन्हें स्वतंत्रता है झूठ में जीने की।

और निश्चित ही जो लोग झूठ में जी रहे हैं, वे सत्य में जीने वाले आदमी के साथ तालमेल नहीं पायेंगे। हमेशा झंझट खड़ी होगी। हमेशा अड़चन आ जाएगी। वे तुमसे बचेंगे, क्योंकि तुम वही कह दोगे, जैसा है। तुम नंगा सत्य कह दोगे। तुम उसे कपड़े भी न ओढ़ाओगे। तुम थोड़ा उसे मीठा भी न करोगे। कड़वा सत्य वैसा-का-वैसा कह दोगे। और अगर कहीं सत्य के पीछे अहंकार छिपा है, तो तुम कड़वे को और कड़वा कर दोगे। तुम नंगे को और नंगा कर दोगे। तुम्हारा मजा उसमें होगा।

तो नाते-रिश्तेदार तो छोड़ ही देंगे। इसमें अड़चन क्या है? इसमें तुम्हें परेशानी क्या है? सत्य का जिसे साथ मिल गया है उसे कोई और साथ चाहिए नहीं। पर्याप्त है उतना संगी-साथी। उतना सत्संग बहुत है। लेकिन नहीं; तुम्हारे मन में कहीं आकांक्षा है कि नातेदार रिश्तेदार छोड़ें न। इसलिए तुम अकेलापन अनुभव कर रहे हो। नहीं तो जिसने सत्य से संबंध जोड़ा है, वह कभी अकेलापन अनुभव नहीं करता है। सत्य से साथ जिसका जुड़

गया है, वह तो कभी भी अकेला नहीं होता, हो ही नहीं सकता अकेला। और सब तरह के लोग अकेले हो जायें। किसी ने रेडियो से साथ जोड़ा है, किसी दिन रेडियो बिगड़ जाता है तो अकेला हो जाता है। किसी ने पत्नी से साथ जोड़ा है, पत्नी किसी दिन नाराज हो गई और नहीं बोलती, अकेला हो गया। किसी ने बेटे से साथ जोड़ा है, बेटा बड़ा हो गया, अपने काम-धाम पर लगा, अपनी दुनिया उसने अलग बसा ली, जा बसा दूर, अकेला हो गया। किसी से तुमने प्रेम किया, वह मर गया। किसी से तुमने प्रेम किया, लेकिन उसका किसी और से प्रेम हो गया। यह सब तो उजड़ जानेवाली बस्तियां हैं। यह तो बरबाद हो जानेवाली आबादियां हैं।

लेकिन सत्य से जिसने संबंध जोड़ा उसने तो परमात्मा से संबंध जोड़ लिया। अब इससे तो छूटने का कोई उपाय नहीं है। अब तो तुम जहां रहोगे वहीं सत्य साथ होगा, सत्संग जारी रहेगा। अब तो तुम अकेले कैसे हो सकते हो?

लेकिन रोशन, तुम्हें अकेलापन मालूम हो रहा है, उसका मतलब साफ है। तुमने सत्य को आचरण की तरह ओढ़ लिया है। तुमने एक जिद्द बना ली है। तुमने अपने अहंकार का आभूषण बना लिया है सत्य को। तुम कहते होः मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, सत्यवादी हूं! सत्य ही बोलूंगा, चाहे सब छोड़कर चले जायें। लेकिन तब अकेलापन अनुभव होगा।

सत्य कोई जिद्द नहीं होनी चाहिए। सत्य सरल होना चाहिए। सत्य कोई आग्रह नहीं होना चाहिए। सत्य स्वानुभूत होना चाहिए, स्वस्फूर्त होना चाहिए। सत्य ध्यान की छाया होनी चाहिए। वहीं भूल हो गई। तुमने ध्यान तो किया नहीं और तुम सत्य का आचरण थोपने की कोशिश किए। जब भी कोई आचरण को ऊपर से थोपता है, इसी तरह की झंझटें शुरू हो जाती हैं। और रोशन, तुम आदमी भले हो, तुम्हारी आंख में मैंने झांक कर देखा है। दो दिन पहले ही रोशन ने संन्यास लिया है, तो आदमी भले हो। मगर गलत धारणाओं में जीये हो। आदमी प्यारे हो, लेकिन तुम्हारी अब तक सोचने की प्रक्रिया भ्रांत रही है। तुमने सत्यवादी होने की चेष्टा की है। लेकिन चेष्टा से जो सत्य लाया जाता है, वह कभी जीवंत नहीं होता। तुम सरल नहीं हो। तुम सत्य को हंसकर अंगीकार नहीं कर रहे हो। तुम बड़े गंभीर हो। तुमने सत्य पर दांव लगा दिया है। तुम कुछ सिद्ध करने में लगे हो दुनिया के सामने, कि मैं सत्यवादी हूं। क्या रखा है सिद्ध करने में? या तो दुनिया के सामने या परमात्मा के सामने, सिद्ध करने में क्या रखा है।

तुम जीवन को थोड़ा लीला समझो। तुमने थो.ड़ी गंभीरता से जीवन ले लिया है। अति गंभीरता से ले लिया है। वहीं चूक हो गई। थोड़ा हंसो। थोड़ा मुस्कुराओ, थोड़ा जिंदगी को सरलता से लो। तब तुम्हारे मन में वे लोग जो झूठ हैं उनके प्रति भी सदभाव होगा। तब तुम अकारण ही उनका झूठ उघाड़ने को राजी न हो जाओगे। जहां तक बनेगा, तुम किसी का झूठ उघाड़ोगे नहीं, क्योंकि तुम्हें क्या प्रयोजन है? प्रत्येक व्यक्ति को अपने ढंग से जीने का अधिकार है, स्वतंत्रता है। यह परमात्मा प्रदत्त स्वतंत्रता है। जब परमात्मा ने हक दिया है लोगों को कि चाहें सच्चे हों चाहे झूठे हों, तो तुम उनका हक मत छीनो। तुम कौन हो।

अगर कोई व्यक्ति सत्यवादिता को एक जिद्द न बना ले, तो सौ में से निन्यानबे मौके पर जब झूठ देखेगा दूसरे में, तो चुप रह जाएगा, उपेक्षा कर जाएगा; मुझे क्या लेना-देना है? तुम हर एक आंखवाले आदमी को पकड़-पकड़कर तो नहीं कहते फिरते हो कि तुम कनवे हो। क्या जरूरत है, क्या प्रयोजन है? तुम हर कुरूप आदमी को तो पकड़कर नहीं कहते कि तुम कुरूप हो, देखो दर्पण में अपना चेहरा तुम बिल्कुल कुरूप हो! क्या प्रयोजन है? तुम कौन निर्णायक हो? और अगर तुम हर आदमी का चेहरा उसको दर्पण में दिखलाओगे, फिर अगर नाते-रिश्तेदार नाराज हो जायें तो फिर दुखी क्यों हो रहे हो? तुम्हीं ने उनको नाराज किया है। तुम उल्टी

आकांक्षा करते थे। तुम चाहते थे, उनको मैं नग्न भी कर दूं, उनके सत्य भी उघाड़ दूं, उनके झूठ भी उघाड़ दूं और फिर वे आयें और मेरा सम्मान करें और कहें कि आपकी बड़ी कृपा है कि आपने हम पर बड़ा अनुग्रह किया। वे बदला लेंगे। वे तुम्हें सब तरह से नुकसान पहुंचायेंगे। फिर उनकी भीड़ है।

मगर तुम्हें इतनी गंभीरता से लेने की कोई जरूरत नहीं है। वे जानें, उनका परमात्मा जाने। वे उत्तरदायी होंगे परमात्मा के सामने। तुम्हारे सामने वे उत्तरदायी नहीं हैं। और कहीं भीतर गहरे में लोग तुम्हारे पास आयें, तुम्हारा सम्मान करें, तुम्हें स्वीकार करें, समादर करें--यह आकांक्षा बनी है। शायद सत्य ही बोलूं सत्य ही सुनूं! इसके पीछे भी कहीं यही भाव तो नहीं था कि सत्यवादी हरिशचंद्र हो जाऊंगा तो लोग सम्मान देंगे?

ऐसा समझाया गया है लोगों को। बच्चों को कहा जाता है घरों में, पाठशालाओं में, स्कूलों में, कालेजों में कि तुम सत्य बोलोगे तो तुम्हें सम्मान मिलेगा। यह तो बच्चे समझदार होते हैं तो वे समझ जाते हैं बहुत जल्दी कि ये बातें कहने की हैं, मगर सीधे-सादे भोले बच्चे फंस जाते हैं। तुम भोले-भाले आदमी हो। तुम फंस गये। यह तो बच्चे समझ जाते हैं। सब समझदार बच्चे समझ जाते हैं कि ये बातें कहने की हैं कि सत्य बोलोगे तो सम्मान मिलेगा, क्योंकि जो यह बता रहा है वह खुद ही झूठ बोलता है!

एक बाप बेटे से कह रहा है कि सत्य बोलना चाहिए और दरवाजे पर भिखारी दस्तक देता है और बाप बेटे से कहता हैः कह दो कि पिता जी घर पर नहीं हैं। तो बेटा देख लेता है कि मामला क्या है? अभी ये पिता कह रहे थे कि सत्य बोलो, सत्य धर्म है; और ये कह रहे हैं भिखारी को कि कह दो कि पिताजी घर पर नहीं हैं। और बेटा जाता है बाहर और कह देता है कि पिताजी कहते हैं कि पिताजी घर पर नहीं हैं। बाप बड़े नाराज हो गए कि तू कैसा नासमझ है, यह कोई कहने की बात है?

हालांकि वह सिर्फ सत्य ही बोल रहा है, वैसा-का-वैसा जैसा कहा गया है। जल्दी ही बच्चे समझ लेते हैं कि सत्य बोलो, ऐसे सिद्धांत दूसरों को समझाने के लिए हैं। इन सिद्धांतों का आचरण मत करना। जीवन धोखा है। बोलो कुछ, करो कुछ।

सच तो यह है कि सत्य बोलना चाहिए, ऐसा सबको समझाओ, तभी तो तुम्हारा झूठ काम आएगा; नहीं तो तुम्हारा झूठ कैसे काम आएगा? मेरी बात समझे? अगर सभी लोग झूठ बोलते हों और सभी लोग मानते हों कि झूठ बोलना परम धर्म है, तो झूठ बेकार हो जाएगा। समझो कि यहां पांच सौ आदमी बैठे हुए हैं और सभी ने यह तय कर लिया है कि झूठ ही बोलेंगे और तुम सबको पता है कि झूठ यहां धर्म है। अब बड़ी मुश्किल हो जाएगी। तुम किसी से पूछते हो कितना बजा है, वह कहता है नौ बजे हैं। तुम जानते हो कि वह झूठ बोल रहा है। तुम किसी से बोले कि यह रास्ता कहां जाता है? वह कहता है, नदी की तरफ जाता है। तुम समझ लो कि पक्का है कि नदी की तरफ नहीं जाएगा यह रास्ता और कहीं ही जाएगा। यहां झूठ बोलना धर्म है। अगर यहां पाच सौ आदमियों ने तय कर लिया कि जेब काटेंगे, सबने तय कर लिया है, जेब कटनी मुश्किल हो जाएगी। असंभव ही हो जाएगी!

मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा था कि उसने गांव के सबसे सीधे-साधु आदमी को लूट लिया। मजिस्ट्रेट ने कहा कि नसरुद्दीन थोड़ी तो शर्म खाते। तुम्हें गांव में कोई और लूटने को न मिला, यह सीधा-सादा आदमी, यह जो गांव का सबसे सीधा-सादा आदमी है, यह एक नमूना है सतयुग का, इसको तुमने लूटा?

नसरुद्दीन ने कहाः मालिक, आप भी क्या बात कर रहे हैं! इसको मैं न लूटूं तो किसको लूटूं? यह ही भर लुट सकता है इस गांव में, बाकी तो सब पहुंचे हुए लोग हैं। मेरी भी मजबूरी समझो। मैं और किसको लूटूं? और

तो मुझे ही लूट लेंगे। यह एक ही बचा मेरे लिए तो। यह तो मेरे धन्यभाग कि एक सतयुगी भी है, नहीं तो मेरा तो किसी पर उपाय ही न चलेगा।

लोग समझाते हैं दूसरों को कि सच बोलो, ईमानदारी से रहो। ये उपाय हैं, ताकि अगर तुम्हें बेईमानी करनी हो तो तुम कर सको। जितने लोग इन बातों को मान लेंगे उतने ही लोगों के साथ बेईमानी होगी। लेकिन कुछ भोले-भाले लोग इन बातों को मान लेते हैं। वे जीने लगते हैं इस आशा में कि अब मैं सच बोल रहा हूं, सम्मान मिलेगा। सच बोलोगे, जगह-जगह अपमान मिलेगा; नहीं तो सुकरात को लोग जहर पिलाते रोशन? वह सच बोलने की झंझट में पड़ गया, तो जहर पिलाया। लेकिन सुकरात का सत्य ऊपर से थोपा हुआ सत्य नहीं था। इसलिए वह दुखी नहीं था। जहर पीया उसने आनंद से, मस्त भाव से। उसने शिकायत नहीं की। उसने यह नहीं कहा कि यह क्या बात है? किताबों में लिखा है कि जो सत्य बोलेगा, उसको सम्मान मिलेगा, मुझको जहर मिल रहा है! उसने आनंद से जहर पीया।

अदालत ने सुकरात को कहा था कि अगर तुम यह वचन दे दो अदालत को कि तुम यह जो सत्य बोलने का उपद्रव मचाए हुए हो, यह बंद कर दोगे, तो हम तुम्हें छोड़ सकते हैं, अगर तुम आश्वासन दे दो। सुकरात ने कहा कि नहीं, फिर मैं जी कर ही क्या करूंगा? सत्य बोलना ही तो मेरा आनंद है। इससे तो मौत बेहतर है। लेकिन सत्य बोलना छोड़कर मैं जी कर क्या करूंगा?

यह बड़ी और बात हो गई। यह बड़ी भिन्न बात हो गई। सत्य से कुछ पाना नहीं है। सत्य बोलना ही आनंद है। लेकिन रोशन, कहीं तुम्हारे मन में सत्य बोलकर कुछ पाने की आकांक्षा है--पुण्य, सम्मान, सत्कार। यहां या परलोक में। और तुम्हारे भीतर वह सब पाने की भी आकांक्षा है जो कि झूठ बोलने वाले को सरलता से मिल रहा है। तो तुम कहते होः काम में लगा रहता हूं, क्योंकि सचाई और ईमानदारी से काम करना है तो बहुत काम करना पड़ता है। इसलिए सारा समय तो काम में चला जाता है। रात-दिन बच्चों की सेवा में लगा हूं। साधना नहीं कर पाता।

अगर तुम्हारे हृदय से यह बात उठी होती तो यही साधना थी, और क्या साधना चाहिए? साधना में और क्या करोगे? सत्य की साधना कर रहे; ईमानदारी की साधना कर रहे; और क्या साधना होगी?

नहीं, लेकिन तुम चाहते हो कि और कोई साधना। मगर क्या करें, मजबूरी है, सचाई और ईमानदारी के कारण समय ही नहीं मिलता, बामुश्किल बच्चों के लिए रोटी जुटा पाते हैं। तुम उसमें आनंद नहीं ले रहे हो। तुम चाहते हो जैसे झूठ बोलने वाले मजा कर रहे हैं, समय है उनके पास, दिन-भर पत्थर नहीं तोड़ रहे हैं, जरा-सी चालबाजियां कर लेते हैं, तस्करी कर लेते हैं, राजनीति कर लेते हैं थोड़ी-सी और मजा करते हैं और हिमालय की सैर को जाते हैं। और तीर्थयात्रा भी करते हैं, पुण्य भी करते हैं, मंदिर भी बनवाते हैं।

देखते हो न, बिड़ला ने कितने मंदिर बनवाये! ये मंदिर तो बन गए, लेकिन बिड़ला जो भी सामान बनाकर छोड़ गए हैं, सब कचरा है। उनकी एम्बेसडर कार देखते हो? मैंने सुना है, जब बिड़ला मरे और स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंचे, तो और भी कई लोग मरे थे। इतनी बड़ी दुनिया है! इसमें कोई पादरी भी मरा है, कोई साधु भी मरा है, कोई संत भी मरा, कई लोग मरे थे। लेकिन सबसे पहले बिड़ला के लिए दरवाजा खोला। देवदूतों ने खूब बैंड-बाजे बजाए। लाल मखमली चादर बिछाई। संत इत्यादि तो बड़े नाराज हो गए। पंडित-पुजारी तो बड़े नाराज हो गए कि जिंदगी-भर हम प्रार्थना-पूजा में लगे रहे! पूछा उन्होंने देवदूतों से कि मामला क्या है? हम जीवन-भर तपश्चर्या, व्रत, नियम, उपवास सब किए और ये जुगल किशोर बिड़ला को सबसे पहले क्यों जाने दिया जा रहा है?

तो उन्होंने कहाः तुम्हें मालूम नहीं है। इस आदमी ने एक ऐसी गाड़ी बनाई है कि जो भी उसमें बैठते हैं वे राम-राम करते रहते हैं। इसने इतने लोगों को राम-राम करवाया है। इसकी गाड़ी ऐसी है कि उसमें सब चीजें बजती हैं, सिर्फ हार्न को छोड़कर। इसलिए इतना सम्मान किया जा रहा है।

मगर मंदिर उन्होंने खूब बनवाये! हार्न बजे कि न बजे, मंदिर बज रहे हैं। मंदिर जगह-जगह बनवा दिए।

अब रोशन, तुम सोचते हो कि तुम मंदिर बनवाओ कि पुण्य करो कि हरिद्वार जाओ कि सत्संग करो, मुश्किल में पड़ोगे। तुम भी चाहते हो कि ऐसा कर सकते। तुम्हारे मन में कहीं यह बात उठती होगी कि सच बोलता, सचाई से जीता, ईमानदारी से जीता। न हरिद्वार जा पाता, न कुंभ का मेला कर पाता, न काशी-करवट लेने का मौका दिखता है कि जाकर काशी में देह को छोड़ देंगे और स्वर्ग चले जायेंगे। होना तो नहीं था ऐसा। यह तो बड़ा अन्याय हो रहा है। अगर तुम्हारे मन में ऐसी आकांक्षायें हैं तो वे ही आकांक्षायें बता रही हैं कि तुम भी चाहते थे कि जैसे झूठे लोग जी रहे हैं, जीते। रस तुम्हारा उसी में था। मगर सरलतावश तुमने यह सत्य का आवरण ओढ़ लिया है। तुमने एक अपने भीतर द्वंद्व पैदा कर लिया है।

खबर नहीं है क्या वजहे-पारसाईए शेख?

गुनाह हो न सका या गुनाह कर न सके?

इन दोनों बातों का भेद समझ लेनाः गुनाह हो न सका या गुनाह कर न सके?

तुम झूठ बोल न सके या झूठ बोलने की संभावना ही न थी? तुम्हारे भीतर जो सत्य उठ रहा है, सम्हाल-सम्हालकर उठाया या कि यही तुम्हारी नियति थी?

यही नीति और धर्म का भेद है। नीति ऊपर से थोपी जाती है, पाखंड होती है। धर्म भीतर से आता है, सहजस्फूर्त होता है, तुम्हारी अंतरधारा होती है।

तुम मेरे पास आ गए हो, अब कृपा करके इन नैतिक धारणाओं को छोड़ो। अब तुम धार्मिक होना सीखो और धार्मिक होने का अर्थ हैः न तो सत्य से कोई धार्मिक होता है, न ईमानदारी से कोई धार्मिक होता है। धार्मिक तो केवल व्यक्ति ध्यान से होता है। और मजा ऐसा है कि जब ध्यान तुम्हारे भीतर सघन होगा तो सत्य और ईमानदारी और पुण्य सब अपने-आप पीछे से चले आते हैं। तुम एक साध लो ध्यान, और शेष सब सध जाएगा।

अब रही ध्यान साधने की बात। सवाल फिर उठेगा रोशन कि ध्यान साधें कब? ध्यान साधें कहां? फुर्सत कहां है? वह ईमानदारी और सत्य और बच्चों के लिए धन कमाना, और उसीमें तो समय बीता जा रहा है।

नहीं, ध्यान वहीं सध जाएगा। तुम जो कर रहे हो उसे ही ध्यानपूर्वक करो, शांत करो, मौन करो, तनावरहित होकर करो। तुम जो भी कर रहे हो, उसे ही ध्यान में रूपांतरित किया जा सकता है। प्रत्येक कृत्य ध्यान हो सकता है। बस ध्यान का एक ही अर्थ होता हैः शांत भाव से, मौन भाव से जो भी कर रहे हो करो। बुहारी लगाओ कि रोटी बनाओ कि कपड़े साफ करो। रोशन प्रेस चलाते हैं, तो प्रेस चलाओ। कोई हर्जा नहीं, मगर जो भी करो उसको अब ऐसे करो जैसे यही प्रार्थना है, यही पूजा है, यही ध्यान है। परमात्मा ने तुम्हें यही करने को दिया है, तुम इसी को पूरे मन से, समग्रता से करो।

कबीर कपड़ा ही बुनते रहे, कपड़ा बुनते-बुनते पा गए। गोरा कुम्हार मिट्टी के घड़े ही पकाता रहा, घड़े पकाते-पकाते पा गया। रैदास चमार जूते बनाता रहा, जूते बनाते-बनाते पा गया। तो कुछ अड़चन नहीं है। तुम जहां हो उस कृत्य को परमात्मा को समर्पित कर दो। और अब किसी नैतिक कारण से नहीं, बल्कि ध्यान के

आधार से जीयो। और फिर थोड़ा याद रखो, कभी थोड़ी भूल-चूक हो जाए तो इतना शोरगुल न मचाओ। जीवन को एक नाटक समझो।

अब एक डाक्टर है, मरीज को कैंसर हुआ है, उदाहरण के लिए तुमसे कह रहा हूंः अगर वह मरीज को बता दे कि तुझे कैंसर हुआ है तो वह जो तीन महीने में मर रहा था, तीन दिन में मर जाएगा। डाक्टर सच बोले कि झूठ? अच्छा हुआ कि रोशन डाक्टर नहीं हैं। न मालूम कितने मरीजों को मार डालते! सच बोले कि झूठ? अगर सच बोलता है तो यह मरीज जितने दिन जिंदा रह सकता है उतने दिन भी जिंदा नहीं रहेगा। और वह भी बड़ी बात नहीं कि तीन महीने जीया कि छह महीने जीया, वह कोई बड़ी बात नहीं, मरना तो है ही; मगर जितने दिन जीयेगा, अगर इसे पता चल गया कि कैंसर है तो नरक में जीयेगा उतने दिन। उस सब का जुम्मा किस पर होगा? सत्यवादी डाक्टर पर। ये राजा हरिशचंद्र! इन पर जुम्मा होगा उसका। नहीं, डाक्टर कहता हैः कोई फिक्र न करो, सब ठीक हो जाएगा, कोई खास मामला नहीं है, सर्दी-जुकाम है। और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि यह सर्दी-जुकाम कहना ही ठीक होने का आधार बन जाता है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि यह आदमी निश्चिंत हो गया, कि अरे सर्दी-जुकाम है। और हो सकता है इसके कैंसर के पीछे तनाव और अशांति ही कारण रही हो। इसको कहीं भीतर शक रहा हो कि कैंसर तो नहीं है? आज-कल सभी को शक होता है। जरा ही कुछ हुआ कि कैंसर का शक होता है। हो सकता है उसी शक और तनाव और परेशानी के कारण इसको कैंसर पैदा हुआ हो। अगर चिकित्सक ने मुस्कराकर कह दिया कि कुछ मामला ही नहीं है, सर्दी-जुकाम है, कुछ दिन में ठीक हो जायेगा। दवा तो चिकित्सक करेगा कैंसर की, वह दवा तो जारी रहेगी; मगर इस आदमी के चित्त से तनाव का बोझ उठ गया। क्या तुम सोचते हो परमात्मा के सामने इस डाक्टर पर झूठ बोलने का इल्जाम लगेगा? तो फिर तुम समझे नहीं। तो फिर तुम जीवन का राज नहीं समझे।

जिंदगी कुछ गणित जैसी साफ-सुथरी नहीं है। जिंदगी काव्य जैसी है। उसे एकदम जोर से पकड़ोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे, हाथ में जो भी आएगा, कंकड़-पत्थर आयेंगे, जीवन के असली राज छूट जायेंगे। जिंदगी को इतनी ज्यादा जिद्द से न पकड़ो। झूठ एकदम सदा ही बुरा नहीं होता। कुछ तो बड़े प्यारे झूठ होते हैं।

अब सुबह किसी ने तुमसे पूछा कि कहिये कैसे हैं, उसका कोई मतलब यह नहीं है कि अब आप अपनी पूरी कथा बतलाइये, कि बिठालकर उसको झाड़ के नीचे, कि सुनो, क्योंकि तुमने पूछा, तब तो हम सत्य ही बोलेंगे। उसने तो बेचारे ने सिर्फ सुबह शिष्टाचारवश कहा था, कहिये कैसे हैं? वह इतना ही सुनना चाहता था कि आप जल्दी से कहिये कि सब ठीक है तो जाए; उसे भी हजार काम हैं। अब मगर आप सत्यवादी हैं; आप कहते हैं कि हम कैसे कह दें कि सब ठीक है। सब ठीक है ही कहां? ठीक कुछ भी नहीं है। रुको! अब तुमने पूछा है तो बताना ही पड़ेगा। और तुमने खुद ही पूछा है तो उत्तर तो सत्य देना पड़ेगा।

जिंदगी को ऐसी जिद्द से न पकड़ो। जरा जिंदगी को हलके-फुलके लो। लीला है। यही तो अर्थ है लीला शब्द का। इस देश ने बड़ा प्यारा शब्द खोजा हैः लीला। इसे थोड़ा खेल की तरह लो। इतने ज्यादा अभिनय को सचाई मत मान लो।

और फिर कुछ थोड़ी-बहुत भूलें जरूर करो। तुम कहोगे, मैं भी क्या समझा रहा हूं! मगर मैं ऐसी बातें समझाता हूं। कुछ थोड़ी-बहुत भूलें करो। उससे आदमी में थोड़ी आदमियत रहती है। उससे आदमी में थोड़ी भलमनसाहत... ! जो बिल्कुल ठीक ही ठीक करने की जिद्द कर लेते हैं, उनके साथ घड़ी-दो-घड़ी रहना भी बड़ी घबराहट की बात हो जाती है।

इसीलिए तुम्हारे रिश्तेदार संगी-साथी सब छोड़ गए। वह तो अच्छा हुआ कि तुम भारत में हो, इसलिए पत्नी ने तुम्हें अभी नहीं छोड़ा, बच्चों ने तुम्हें अभी नहीं छोड़ा, नहीं तो वे कभी का छोड़ दिए होते। क्योंकि संतों के साथ रहना बड़ा कठिन काम है। इसीलिए तो लोग संतों के जल्दी से पैर छूते हैं, कहते हैंः महाराज, अब जाते हैं। चौबीस घंटे अगर तुम किसी असली संत के साथ रह जाओ, आत्महत्या कर लोगे। क्योंकि हर चीज गलत है। तुम्हें वह उठने नहीं देगा, बैठने नहीं देगा, हिलने नहीं देगा, सांस नहीं लेने देगा। तुम जो करोगे वही गलत है। उसकी निंदा से भरी आंखें तुम्हें कीड़ा-मकोड़ा बना देंगी। फिर कुछ परमात्मा पर भी तो छोड़ो।

खुदा की रहमत को पारसा अब, अजाबे-दोजख समझ रहे हैं।

उन्हें गुमां तक न था कि जन्नत गुनाहगारों को भी मिलेगी।।

रोशन, तुम्हारे साधु-संत जब पहुंचेंगे वहां और देखेंगे कि पापी भी स्वर्ग पहुंच गए हैं, तो उन्हें बड़ी हैरानी होगी। उन्हें तो गुमां तक न था... उन्हें गुमां तक न था कि जन्नत गुनाहगारों को भी मिलेगी! मगर उस परमात्मा की अनुकंपा अपार है! उसकी अनुकंपा के लिए थोड़ा-बहुत अवसर दो। इसलिए मैं कहता हूं कि थोड़ी-बहुत भूल-चूक करो, चलेगा।

उसकी रहमत को नाज हो जिस पर।

तुझसे ऐसी असर ख़ता ही न हुई।।

कवि ने कहा है कि मैं कैसा अभागा हूं कि ऐसी कोई बड़ी खता न कर सका कि परमात्मा को भी अपनी करुणा करने में मजा आता, कोई ऐसी खता न कर सका।

उसकी रहमत को नाज हो जिस पर।

तुझसे ऐसी असर ख़ता न हुई।।

पछताओगे बहुत रोशन, जब परमात्मा सामने देखेगा तुम्हारे और रोयेगा कि तुमने कुछ खता ही न की रोशन, कुछ मुझे मौका देते क्षमा करने का! अब मैं क्या करूं?

इसलिए कहता हूंः थोड़ी-बहुत भूलें चलेंगी। छोटी-मोटी भूलों का बहुत शोरगुल न मचाओ। अपने को इतनी गंभीरता से न लो।

अब मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं कि धूम्रपान नहीं छूटता, और वह तो छूटना ही चाहिए!

इतनी भी क्या तुमने गंभीरता बना रखी है? अब कभी कर ही लिया धुआं बाहर-भीतर, तो ऐसी क्या अड़चन हुई जा रही है? वैसे ही अब हवा में इतना धुआं है, कारों से निकल रहा है, इंजिनों से निकल रहा है, फैक्ट्रियों से निकल रहा है। अब तो हवा में इतना धुआं है कि सभी धूम्रपान कर रहे हैं, अब कहां तुम... किस जमाने की बातें तुम कर रहे हो?

अभी न्यूयार्क का निरीक्षण हुआ है। न्यूयार्क का वैज्ञानिकों ने परीक्षण किया तो हैरान हुए। न्यूयार्क की हवा में इतना जहर है, जितने जहर में आदमी जिंदा रहना ही नहीं चाहिए। मगर आदमी जिंदा है! आदमी भी खूब है! अब पता ही नहीं था, अभी तक तो जिंदा रहे आए, अब शायद मरें। अब शायद सोचें कि यह बात ठीक नहीं है, यह नियम के अनुकूल नहीं हो रहा। अभी तक पता ही नहीं था। आदमी के मरने के लिए जितना जहर हवा में चाहिए, उससे कई गुना ज्यादा जहर हवा में है। खासकर न्यूयार्क, लास एंजेल्स, बंबई, कलकत्ता जैसे नगरों में। मगर आदमी जीए जा रहा है।

इसलिए मैं कहता हूंः जीवन को इतनी गंभीरता से न लो। थोड़ा-बहुत तुमने धुआं पी लिया, क्या बना-बिगाड़ लोगे किसी का? मगर कुछ लोग छोटी-छोटी बातों को गंभीरता से लेते हैं। उसका कारण क्या है?

उसका कारण यह नहीं है कि वे धार्मिक हैं। उसका कुल कारण इतना है कि उनके अहंकार को बाधा पड़ रही है। लोग कह देते हैं कि अरे आप, और धूम्रपान करते हैं। आप और धूम्रपान! बस अहंकार को चोट लगी। ये अहंकार की वजह से ही सारे प्रश्न उठ जाते हैं, अन्यथा जिंदगी सरल होनी चाहिए।

अब कोई आ जाता है, वह कहता है कि चाय नहीं छूटती। पागल हो गए हो? अगर मेरी मानो तो मैं तुमसे कहता हूं कि परमात्मा भी चाय पीता है। न मानो, तुम्हारी मर्जी। और जब तुम पहली दफा परमात्मा को मिलोगे तो वह कहेगा कि चाय पीयेंगे कि काफी? फिर तुम मुश्किल में पड़ोगे, कि अब क्या करें! तुम्हारे अहंकारों को चोटें लग रही हैं, बस।

सारे बौद्ध भिक्षु सारी दुनिया में चाय पीते हैं, कोई अड़चन नहीं है। असल में चाय की ईजाद ही बोधिधर्म ने की--एक बौद्ध भिक्षु ने की। छोटे-मोटे भिक्षु ने नहीं, बुद्ध की हैसियत के भिक्षु ने की! इसलिए तो कहता हूं कि परमात्मा चाय पीता होगा, नहीं तो बोधिधर्म पहुंच गए, उनने सिखा दी होगी। बोधिधर्म बड़ी हिम्मत का आदमी था। और बोधिधर्म ने अपने शिष्यों को कहा कि चाय जरूर पीयो, क्योंकि यह ध्यान में सहयोगी है, क्योंकि जब तुम चाय पी लेते हो तो नींद नहीं आती। और ध्यान में नींद सबसे बड़ी बाधा है। नहीं तो अकसर ध्यान करने बैठे हैं। आंख बंद की कि झपकी खानी शुरू हुई। चाय पीकर बैठे तो जरा झपकी नहीं आती। तो बौद्ध आश्रमों में चाय तो ध्यान का अंग रही है।

अब ये मानने की बातें हैं! अब कोई और बोधिधर्म किसी दिन आ जाए और कहे कि धूम्रपान करने से ध्यान में सुविधा होती है, क्योंकि धूम्रपान से भी वही होता है, निकोटिन जो चाय में है, वही धूम्रपान में है, दोनों से आदमी का जागरण बढ़ता है। अभी प्रतीक्षा है किसी बोधिधर्म के आने की। जरूर आयेगा कोई न कोई बोधिधर्म।

जीवन को सरलता से लो। यह बोधिधर्म मुझे प्यारा लगता है। इतना जिंदगी को उलझाओ मत। ऐसी हर छोटी-छोटे बात के उपद्रव खड़े न करो, अन्यथा इसी में सड़ जाओगे, इसी में परेशान हो जाओगे।

जिंदगी एक उत्सव है। इस उत्सव में बहुत शिकायतें न उठाओ। और ऐसे जबरदस्ती दबा-दबाकर बैठने जाओगे तो यह फिर-फिर उभरेगा।

तशद्दुद को तशद्दुद से दबा लें, यह तो मुमकिन है।
मगर शोले को शोले से बुझाया जा नहीं सकता।।
हिंसा को हिंसा से दबा लें, क्रोध को क्रोध से दबा लें, यह तो मुमकिन है।
तशद्दुद को तशद्दुद से दबा लें, यह तो मुमकिन है।
मगर शोले को शोले से बुझाया जा नहीं सकता।।

तुम दबा-दबाकर बैठ गए हो। हल्के हो जाओ। सरल हो जाओ। और फिर ध्यान से भी एक सत्य उठेगा, लेकिन उस सत्य का स्वाद और, गंध और। उस सत्य में कहीं आग्रह नहीं होता। उस सत्य में किसी पर आरोपित होने की चेष्टा नहीं होती। उस सत्य में डुंडी पीटने का भाव नहीं होता। मैं सत्यपूर्वक ही जीऊंगा, ऐसी कोई जिद्द नहीं होती, हठाग्रह नहीं होता। परिस्थिति, समय, जो अनुकूल होगा वैसा करूंगा। बोधपूर्वक जीऊंगा, बस इतना पर्याप्त है। अगर कभी झूठ भी बोलना पड़ेगा तो बोधपूर्वक बोलूंगा, क्योंकि कभी झूठ बोलना भी धर्म हो सकता है। और कभी सच बोलना अधर्म हो सकता है।

एक आदमी को फांसी लगने जा रही है, अगर तुम सच बोल दो। और अगर झूठ बोल दो, उसकी फांसी बच जाए। और फांसी का कारण कुछ क्षुद्र भी हो सकता है, बिल्कुल क्षुद्र हो सकता है।

अब तुम झूठ बोलोगे कि सच? और फिर यह आदमी अगर मार भी डाला जाए तो भी इसने जो कृत्य किया है वह कृत्य तो हो ही चुका।

इंग्लैंड का एक सम्राट अपने वजीर को फ्रांस भेज रहा था, लेकिन फ्रांस में जो सम्राट था बड़ा झक्की था। उस वजीर ने कहाः मालिक, आप मुझे भेज तो रहे हैं, लेकिन वह आदमी बड़ा झक्की है और मैंने खबर सुनी है कि उसने कहा है कि वह आए वजीर, उसकी गर्दन उतरवा दूंगा। मेरी गर्दन उतर जायेगी मालिक!

सम्राट ने कहाः तू फिकिर मत कर, अगर तेरी गर्दन उसने उतारी तो उसके सौ आदमियों की गर्दन मैं उतरवा दूंगा। तू बिल्कुल फिकिर मत कर।

पर उसने कहाः वह तो मैं समझ गया कि आप सौ की उतरवा देंगे, मगर मेरी उससे जुड़ेगी नहीं। मेरी उतरी सो उतर ही गई। अब उसमें सौ की उतरे कि हजार की, उससे मेरी नहीं जुड़ेगी। और सौ की उतर जायेगी। मेरे पत्नी-बच्चे रोयेंगे, और सौ के रोयेंगे। इससे क्या हल होगा?

फांसी जब एक आदमी को लगती है तो समाज सिर्फ मूढ़तापूर्ण बदला ले रहा है, और कुछ भी नहीं। मूढ़तापूर्ण बदला! इसने कोई कसूर किया है, जरूर किया है; मगर अब वही कसूर इसके साथ समाज करे, इससे क्या हल है? फिर इसने कसूर किया है तो इसका इलाज होना चाहिए। फांसी से क्या होगा?

अब तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दुनिया में जितने भी अपराधी हैं, सभी मनोवैज्ञानिक रूप से रुग्ण हैं। उनकी चिकित्सा होनी चाहिए। उनको कोड़े मारो, उनके हाथ काट दो, कि उनकी गर्दन काट दो--यह तो मूढ़तापूर्ण है। और व्यक्ति मूढ़तायें करते हैं, तो हम क्षमा करते और जब पूरा समाज मूढ़ता करता है, न्याय का बड़ा धोखा और टट्टी खड़ी करके न्याय की, और बड़ी अदालतें और बड़े मजिस्ट्रेट और बड़े ढंग से जब वही काम करता है, जो उसने बेढंगे ढंग से किया है, तो हम कहते हैंः बिल्कुल ठीक हो रहा है, सब सुंदर हो रहा है, होना ही चाहिए। जब एक आदमी किसी को मार डालता है तो पाप है और जब पूरा समाज मिलकर किसी को मारता है तो पुण्य है! यह कैसी दुनिया है।

यहां अगर अदालत में रोशन किसी आदमी की फांसी लगती हो और तुम्हारे झूठ बोलने से बचता हो तो मैं तुमसे कहता हूंः झूठ बोल देना। इतनी गंभीरता से न लो। होशपूर्वक करो, जो भी कर रहे हो, बस। और होश बड़ी बात है। लेकिन तुम सत्य की जिद्द में पड़ गए हो, इससे तुम अड़चन में हो। और तुम्हारी अड़चन न मिटेगी। जब तक तुम यह जिद्द न छोड़ दो।

और अपने काम को साधना समझो। जो भी करो उसे प्रभु को समर्पित करो। उसे प्रभु के चरणों में सेवा के लिए ही कर रहे हो, ऐसा मानकर करो। बच्चे भी तुम्हारे तो नहीं, परमात्मा के हैं।

आखिरी प्रश्नः ओंकार का आपने विरोध किया, इससे मन को ठेस पहुंची। कृपया समझावें कि ऋषि-मुनियों ने सदा ओंकार का समर्थन क्यों किया है?

किसने ओंकार का विरोध किया? मैंने? तुम होते यहां हो, मगर होते नहीं। सुनते मुझे हो, मगर गुनते अपनी हो।

मैंने कहा ओम-ओम जपने से कुछ भी न होगा और तुम समझ गए ओंकार का विरोध! मैंने इसीलिए कहा कि ओम-ओम जपना मत, क्योंकि ओम-ओम जो जपेगा उसके भीतर ओंकार कभी पैदा न होगा। मैं तो ओंकार का पक्षपाती हूं, इसलिए कहा।

अब यह बड़ी मुश्किल है। न मुसलमान मुझे समझेंगे न हिंदू मुझे समझेंगे। मैं मुहम्मद का पक्षपाती हूं, इसलिए काबा का विरोध किया। और मैं ओंकार का पक्षपाती हूं, इसलिए ओम के जाप का विरोध किया। मगर कब तुम समझोगे? समझोगे या नहीं समझोगे? जब तुम ओम-ओम जपते हो तो तुम अपने ऊपर से चित्त से थोप रहे हो ओम-ओम, तुम्हें पता नहीं है कि तुम्हारे भीतर ओंकार की सतत धारा बह रही है। उसे सुनना है, जपना नहीं है। ओंकार सुना जायेगा, जपा नहीं जाता। तुम शांत हो जाओ, मौन हो जाओ, बिल्कुल चुप हो जाओ, सन्नाटा पैदा करो। उतना काम तुम्हारा है। चित्त का शोरगुल बंद करो और अचानक तुम पाओगे एक घड़ी, जब सारा शोरगुल जा चुका है और चित्त के मार्ग पर कोई यात्री नहीं, कोई विचार नहीं, कोई कल्पना नहीं, कोई वासना नहीं। जब चित्त निर्विचार है, अचानक तुम्हारे भीतर के अंतर्तम से ओंकार उठेगा। वह अनाहत नाद है। तुम्हारे करने का सवाल नहीं है।

ऐसा ही समझो कि ये चिड़ियां हैं, ये टी वी टुक टुक, टी वी टुक टुक चिड़ियाएं कर रही हैं। चुप होकर सुनो, सुनाई पड़ा। मगर तुम क्या कर रहे हो, तुम झाड़ के नीचे बैठे हो और कह रहे हो टी वी टुट, टी वी टुट, टी वी टुट, टी वी टुट... कैसे सुनोगे? सुनोगे कब? खाक सुनोगे! और मैंने तुमसे कहा यह टी वी टुट मत करो, तो आप आ गए कि ओंकार का विरोध हो गया! तुम्हारे भीतर नाद हो रहा है, तुम सुनो। बस चुप हो जाओ। चुप्पी एकमात्र साधना है। मौन एकमात्र उपाय है। उस मौन में संगीत बहेगा।

बज रहा है शंख, प्रति-ध्वनि से भरा संसार!
दिश-विदिश में गूंजता है एक वह ओंकार!
एक वह झंकार अविरल हो रही सब ओर!
छू रही जिसकी तरंगें सूर्य-शशि का छोर!
बज रहा है एक ही वह, कौन जाने, तार?
और सातों स्वर सुरीले कर रहे गुंजार!
राग-रागिनियां विविध ये, रंग-रूप अपार!
सब उसी का गीत गाते, कर रहे शृंगार!
मेघ का गर्जन, प्रपातों का अजस्र निनाद
कोकिला की कूक, वीणा का मधुर सम्वाद!
एक ही वह शब्द अव्यय, एक ही उल्लास!
व्याप्त है जिससे जगत, पाताल से आकाश!
ध्वनि-प्रतिध्वनि, विश्व औ, प्रतिबिंब का जो ध्यान,
आत्म-साक्षात्कार ही देगा तुझे वह ज्ञान!
शब्द के पीछे कहां तू जायेगा, किस ओर?
शब्द का उदगम पकड़ तू, शब्द का धर छोर!
बज रहा है शंख, युग से हो रहा घननाद!
व्याप्त है चारों दिशाओं में अमर आह्लाद!
बज रहा है शंख, प्रति-ध्वनि से भरा संसार!
दिश-विदिश में गूंजता है एक वह ओंकार!

ओंकार गूंज ही रहा है। ओंकार इस जगत की विषय-वस्तु है। यह जगत बना ही ओंकार से है। यह सारा जगत ओंकार का नाद ही है। तुम चुप हो जाओ। तो जिन्होंने तुम्हें सिखाया है कि बैठकर और माला हाथ में लेकर और फेरते रहो गुरिये और करते रहो और ओम ओम ओम वे तुम्हें झूठा सिक्का दे रहे हैं। और अगर यह सिक्का तुम्हें पकड़ गया और अगर इसकी तुम्हारे भीतर आदत बन गई, तो इसी के पीछे छिपा ओंकार है, वह तुम्हें कभी अनुभव में न आ पायेगा।

शब्द को नहीं पकड़ना है; जहां से शब्द पैदा होता है, उस स्रोत में उतरना है।

शब्द के पीछे कहां तू जायेगा, किस ओर?
शब्द का उदगम पकड़ तू, शब्द का धर छोर!

कहां से तुम्हारे भीतर से शब्द पैदा हो रहे हैं, उस स्रोत की तरफ चलो, उस मूल उदगम की तरफ चलो। तुम्हारे चैतन्य की धारा कहां से आ रही है, उस स्रोत को पकड़ो। गंगोत्री में उतरो। और वहीं तुम्हें सब मिल जायेगा जिसकी तलाश है--आनंद और सौंदर्य और सत्य, या सबका इकट्ठा नाम परमात्मा।

जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।
पुण्यफल उद्यान, निश्रेयस, अमर आराम;
जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।

ज्योति की ऊर्जा-तरंगों में प्रवाहित प्राण;
ज्योति में ही एक दिन होंगे समाहित प्राण;
प्रामाणिक दिक्क ल, रवि-नक्षत्र ज्योतिर्धाम।
जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।

परिधि का हर बिन्दु होगा केन्द्रगत, विश्वास;
केन्द्र सविता हो कि कविता या कि शिव कैलाश;
रूप अंत स्वरूपगत, हर नाम अंत अनाम।
जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।

चाक मिट्टी प्रजापति या सुदृढ़ इंगित-यष्टि;
व्यक्तियों में जो विभाजित भासमान समष्टि;
सृष्टि लय हो कर कहेगी--शून्य ब्रह्म प्रणाम।
जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।

सृष्टि के संगीत का सम, शून्य है स्वर-स्रोत;
शून्य में कैवल्य रस-साकल्य ओत-प्रोत;
शून्य केवल कृष्ण; सब में रम रहे, वह राम।
जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।

राम सब में हैं, सभी के प्रति समर्पण भाव;
कृष्ण सब में हैं, परस्पर क्यों न हो अपनाव?
क्यों न सब गतिचक्र में यति बन, करें विश्राम?
जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।

मिलें यति-गति, खिले अंतर्लय, वलय आनंद;
चतुष्पद हों, चतुर्भुज हों, चतुर्मुख हों छंद;
गीत हो जीवन, नियत श्रुति मूर्छना स्वर ग्राम।
जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।

जहां से हम चले हैं वहीं हमें पहुंच जाना है। जो हमारा मूल है वही हमारा गन्तव्य है। ओंकार मूल है, ओंकार गन्तव्य है। मगर मैं तुम्हें उन मंत्रों में उलझने को न कहूंगा, जो तुमने ही बना लिये हैं। मैं तुम्हें शब्दों में उलझने को न कहूंगा। निशब्द में जाना है, शून्य में जाना है।

सृष्टि के संगीत का सम, शून्य है स्वर-स्रोत;
शून्य में कैवल्य, रस-साकल्य ओत-प्रोत;
शून्य केवल कृष्ण, सब में रम रहे, वह राम।
जो जहां से चला, उसका वहीं चार विराम।

तुम पूछते होः ओंकार का आपने विरोध किया, इससे मन को ठेस पहुंची।

ठेस पहुंची तो अच्छा हुआ। उतना तो अच्छा हुआ, क्योंकि मन को तो मिटाना है; ठेस पहुंच-पहुंच कर ही मिटेगा। मन को तो चोट करनी है।

मगर मैंने ओंकार का विरोध नहीं किया। हां, तुम्हारे मन में ओम के प्रति आसक्ति रही होगी। तुम शायद जप करते रहे होओगे ओम का, इसलिए तुम्हें ठेस पहुंची, तुम्हें चोट पहुंची।

पूछते होः कृपया समझावें ऋषि-मुनियों ने सदा ओंकार का समर्थन क्यों किया है?

वही तो मैं कर रहा हूं। ऋषि-मुनियों को क्यों बीच में लाना? मैं खुद ही वही कर रहा हूं। लेकिन तुम्हारी धारणाओं को जब भी जरा-सी चोट पहुंचती है, तुम तिलमिला जाते हो। तुम मिटने को राजी ही नहीं हो और बिना मिटे कुछ भी न होगा। और मैं अगर तुम्हें न मिटाऊं तो फिर मेरा कोई प्रयोजन नहीं। मेरा अर्थ ही यही है, मेरे साथ तुम्हारे होने का अर्थ ही यही है कि मैं तुम्हें मिटाऊं, कि मैं तुम्हें बिल्कुल शून्य कर दूं, कि मैं तुम्हारे कागज को फिर कोरा कर दूं। उस कोरे कागज में ही उतरता है परमात्मा--उस शून्यता में ही संगीत सुना जाता है--अनंत का, अनादि का।

मन को लगे चोट, मन को लगे ठेस, तो समझना कि कुछ सार्थक बात हुई। मन को ठेस लगे तो भाग मत खड़े होना। मन की सुरक्षा मत करने लगना। मन ही तो तुम्हारा शत्रु है। उससे ही तो तुम्हें छुड़ाना है। उन्मन करना है तुम्हें। और जिस दिन तुम उन्मन हो जाओगे, उस दिन तुमने सब पा लिया।

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

देह गेह ईश्वर का

पहला प्रश्नः अब इस देह में ज्यादा रहने का मन नहीं होता है, इससे विदा लेने का मन है। लेकिन आपके लिए जी पीछे खींचता है। मैं बता नहीं सकती कुछ भी। मुझे कुछ भी लिखने को नहीं आता है। ओशो, क्या कहूं?

आनंद भारती, देह तो मंदिर है। और जो देवता के पक्ष में है वह देवता के गृह के विपक्ष में नहीं हो सकता। परमात्मा ने आवास किया है इस देह में। इस देह को सन्मानो, स्वीकारो और इस देह के लिए परमात्मा के प्रति अनुग्रह अनुभव करो।

लेकिन मैं जानता हूं कहां से यह विचार, देह को छोड़ने का, उठता है बार-बार। सदियों-सदियों से तुम्हें देह की दुश्मनी सिखाई गई है। सदियों-सदियों से एक ही संस्कार दिया गया है कि शरीर शत्रु है, शरीर को नष्ट करना है, शरीर को छोड़ना है; शरीर में फिर न आना पड़े, ऐसा उपाय करना है। शरीर को इतनी गालियां दी गई हैं कि स्वभावतः यह संस्कार खून, हड्डी, मांस-मज्जा में मिल गया है। जबकि सचाई बिल्कुल उल्टी हैः मन को छोड़ना है, तन को नहीं छोड़ना है। मन मनुष्य-निर्मित है; तन तो परमात्मा की भेंट है। शरीर न तो हिंदू होता न मुसलमान होता; शरीर न तो कम्यूनिस्ट होता न फेसिस्ट होता। शरीर तो बस शरीर है। शरीर तो बड़ी शुद्ध दशा है। उपद्रव तो मन का है। कहीं हिंदू है मन, कहीं मुसलमान है मन; कहीं इस शास्त्र को मानता है, कहीं उस शास्त्र को और सदा लड़ने को तत्पर है। और अशांति मन के कारण है, तन के कारण नहीं। सारा उपद्रव मन के कारण है और मन तुम्हें तोड़े डाल रहा है, पीसे डाल रहा है खंड-खंडों में। एक खंड खींचता पूरब, एक खींचता पश्चिम। इस मन को छोड़ो।

लेकिन मन को तो न छोड़ोगे, तन को छोड़ने की तैयारी है! मरना है तो मन में मरो। मन समाज का दिया हुआ है। मन मां-बाप ने दिया, परिवार ने, समाज ने, स्कूल ने, विश्वविद्यालय ने। मन उधार है। तन तो परमात्मा से सीधा जुड़ा है; मन के जुड़ने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि मन कृत्रिम है। मन तो ऐसे है जैसे प्लास्टिक के फूल। तन तो ऐसे है जैसे वृक्ष खड़े हैं अपनी जड़ों को फैलाये भूमि में। तन तो अब भी परमात्मा से जुड़ा है; एक क्षण को भी जोड़ टूटेगा कि श्वास अवरुद्ध हो जायेगी, कि हृदय की धड़कन बंद हो जायेगी।

परमात्मा तो तुम्हारे तन के द्वार से ही तुम्हारे भीतर आ रहा है, मन के द्वार से नहीं। मन के द्वार से तो परमात्मा के आने का कोई उपाय ही नहीं, झूठे द्वार से सत्य आये भी तो कैसे आये? सत्य तो सच्चे द्वार से ही आता है। जब तपी दुपहरी में, प्यास से थके-मांदे, एक घूंट ठंडा जल पीते हो, तब जो तृप्ति तुम्हारे भीतर होगी, वह तृप्ति उसी परमात्मा की है; या कि थके-मांदे, ठंडी जलधार के नीचे बैठकर स्नान कर लेते हो, तो जो देह पर ताजगी फैल जाती है वह उसी परमात्मा की है। जब नाचते हो और रोआं-रोआं पुलकित हो जाता है, तो कौन पुलक उठा है तुम्हारे भीतर? वही परमात्मा! आकाश से पड़ती धूप के नीचे, कि चांद-तारों के नीचे, कि वृक्षों के पास बैठकर, जो ताजगी की लहरों पर लहरें आती हैं, जो जीवन नये-नये रंगों और रूपों में तुम्हें घेर लेता है, वह तन के माध्यम से हो रहा है।

आंख के माध्यम से तुमने परमात्मा को देखा है, तब उसे सौंदर्य कहा है; और कान के माध्यम से जब तुमने परमात्मा को देखा है, तो उसे संगीत कहा है। न होगा कान, खो जायेगा संगीत; न होगी आंख, खो जायेगा रूप,

खो जायेगा सौंदर्य। इतने अपूर्व अनुभव को इतने जल्दी खो देने की आकांक्षा क्यों है? यह आकांक्षा आत्मघाती है; लेकिन धर्म की आड़ में छिप जाती है तो हम आत्मघात को आत्मघात नहीं समझते, हम उसे साधना समझने लगते हैं।

यह जानकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि जैसे ही कोई समाज अधार्मिक हो जाता है वहां आत्महत्याओं की संख्या बढ़ जाती है। इस तथ्य के कारण इस देश के बहुत से पंडित-पुरोहित, साधु-महात्मा इस तरह की घोषणायें करते रहते हैं कि देखो, जो-जो देश अधार्मिक हो गये हैं वहां आत्मघात बढ़ गया है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि असली कारण क्या है। असली कारण यही है कि आत्मघात तो यहां भी चल रहा है, लेकिन यहां धर्म की आड़ में चल रहा है। जिन देशों में धर्म की आड़ टूट गई है वहां आत्मघात सीधा चलता है। किसी को मरना है तो वह जहर खा लेता है, कि गोली मार लेता है। यहां किसी को मरना है तो उपवास करता है, लेकिन उपवास से कोई जल्दी नहीं मरता, वर्षों लग जायेंगे, मरते-मरते वर्षों लग जायेंगे। आदमी बिना भोजन के तीन महीने जी सकता है, इकट्ठा नब्बे दिन तक आदमी बिना भोजन के जी सकता है। उपवास करते रहोगे कि आठ दिन का, दस दिन का, पंद्रह दिन का, फिर कुछ दिन उपवास, फिर भोजन, फिर उपवास--जीते रहोगे। और तुम चकित होओगे यह बात जानकर कि मनोवैज्ञानिकों ने बहुत-से प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि भोजन अगर कम लिया जाये तो आदमी ज्यादा जी जाता है। चूहों पर प्रयोग किये गए हैंः अगर उन्हें पूरा भोजन दिया जाये तो वे जल्दी मर जाते हैं; अगर और ज्यादा भोजन दिया जाये तो और जल्दी मर जाते हैं। उनकी जरूरत से आधा भोजन दिया जाये तो दुगुना जीते हैं। क्यों? किस कारण ऐसा होता होगा? कम भोजन दिया जाये तो देह पर भोजन को पचाने का जोर कम पड़ता है। भोजन से शक्ति तो मिलती ही है, लेकिन भोजन से शक्ति पाने में शरीर को शक्ति गंवानी भी पड़ती है--उसे पचाने में। अगर न्यून भोजन दिया जाये, इतना भोजन दिया जाये जिससे शरीर चलता रहे और पचाने का बोझ न पड़े, तो आदमी लंबा जी सकता है। इसलिए उपवास करने वाले लोग लंबे जी जाते हैं। मगर उनकी आकांक्षा मरने की थी। कोई धूप में खड़ा है, जबकि छाया में बैठने का तन आग्रह करता था। कोई प्यासा बैठा है, जबकि तन कहता था जल चाहिए। और कोई कांटों पर लेटा है।

शरीर को तुम सता रहे हो। शरीर को सताने के पीछे छिपी हुई आत्मघात की आकांक्षा है।

सिग्मंड फ्रायड ने मनुष्य के जीवन में दो महत वृत्तियां स्वीकार की हैं। एक को उसने कहा है जीवेषणा, कि आदमी जीना चाहता है, कि आदमी आनंद से जीना चाहता है, कि आदमी खूब जीना चाहता है, जी भर के जीना चाहता है। यह आकांक्षा पैंतीस वर्ष की उम्र तक प्रगाढ़ होती है। अगर सत्तर वर्ष को हम आदमी की औसत उम्र मान लें तो पैंतीस वर्ष की उम्र में पहाड़ का आखिरी शिखर आ गया, ऊंचाई आ गई; फिर ढलान होगी। रेखा पहुंच गई ग्राफ की ऊंचाई पर अब इसके बाद उतार शुरू होगा। पैंतीस साल की उम्र तक जीवेषणा, जिसको फ्रायड ने इरोस कहा है, वह प्रगाढ़ होती है। फिर पैंतीस साल के बाद मृत्यु की आकांक्षा, जिसे उसने थानोटोस कहा है, वह प्रगाढ़ होने लगती है। फिर आदमी मरने की आकांक्षा करने लगता है। फिर थकने लगता है, टूटने लगता है।

इसीलिए जो देश जवान होते हैं वे जीवन की आकांक्षा से भरे होते हैं और जो देश पुराने हो जाते हैं, जराजीर्ण हो जाते हैं, वे मरने की आकांक्षा से भरे होते हैं। यह देश काफी पुराना है। इस देश जैसा कोई दूसरा देश दुनिया में नहीं है। यह देश काफी पुराना हो गया है। इसके भीतर रोएं-रोएं में मरने का भाव बैठ गया है। इसलिए जब भी हम किसी को इस तरह के काम करते देखते हैं जो मृत्यु के अनुकूल हैं, हम सम्मान देते हैं। हम उसे तपश्चर्या कहते हैं। हमारे मन से जीवन का उल्लास जा चुका है।

फिर से तुम वेदों को उठाकर देखो। पांच हजार साल पहले लिखे गये वेद कुछ और कहते हैं। तब जीवन का उल्लास था। तब ऋषि आकांक्षा करते थेः "हे प्रभु, हमारे ऊपर बरसो, कि हम कम-से-कम सौ वर्ष जीयें, शतायु हों!" तब यह देश जवान रहा होगा। तब इस देश की धमनियों में जीवन का रक्त बहता रहा होगा। वेदों के ऋषि कहते हैंः "धन मिले, धान्य मिले, हमारी फसलें उगें, हमारी गौवों के स्तनों में दूध बढ़े!" तुम जरा सोचते हो, ऋषि और ऐसी प्रार्थना करें! लेकिन ये प्रार्थनाएं बड़ी प्रीतिकर हैं, बड़ी सूचक हैं। ये यह कह रही हैं कि अभी देश जवान है; अभी लोग बूढ़े नहीं हो गये हैं; अभी लोग जीने की आतुरता से भरे हैं; अभी जीवन को उत्सव बनाना है।

फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम पुराने होते गए वैसे-वैसे जीवन की आकांक्षा तिरोहित होती गई। अब तो धार्मिक आदमी हम उसको कहते हैं जो आते से कहता है कि आवागमन से छुटकारा कैसे हो! अब तो हम धार्मिक आदमी उसको कहते हैं जो जीना नहीं चाहता; जो कहता हैः मैं मरूं, कि मुझे मरना है। इतनी हिम्मत भी नहीं कि तत्क्षण मर जाये। वैसी हिम्मत भी जवानों में होती है। आखिर तत्क्षण मरने की हिम्मत के लिए भी तो थोड़ा बल चाहिए, वह बल भी खो गया है। एक तरह की नपुंसकता है, एक तरह की निर्बलता है। मरना है, मगर मरना भी ऐसे है कि अपने-आप हो जाये। अगर दो कदम चलकर मरना पड़े तो दो कदम भी कौन उठाये!

इस हताशा को देखो। इस हताशा से जागो। यह कोई ढंग नहीं है। इस तरह कोई परमात्मा का मंदिर निर्मित न होगा।

पूछा है तूने आनंद भारतीः "अब इस देह में ज्यादा रहने का मन नहीं होता।" मन की मानेगी? पूछा हैः "इससे विदा लेने का मन है।" मन की मानेगी? और मैं समझा रहा हूं रोज-रोज नित-नित एक ही बात, कि मन को जाने दो। तन भी प्यारा है, आत्मा भी प्यारी है। अगर कुछ कुरूप है तो दोनों के बीच में खड़ा हुआ मन है। विचारों का जाल जंजाल है। तन कोई पाप नहीं करवाता। सारे पाप मन के हैं।

जरा सोचो, तुम्हारे भीतर सत्य दो चीजें हैं। एक देह सत्य है, क्योंकि देह प्रकृति है। देह विज्ञान का सत्य है। और एक तुम्हारे भीतर आत्मा है सत्य, क्योंकि आत्मा परमात्मा है। आत्मा धर्म का सत्य है। इन दोनों के बीच में खड़ा तुम्हारा मन है, जो सत्य नहीं है--जो केवल विचारों का ऊहापोह है; जो केवल सपनों का जाल है; जो केवल संस्कारों की ही राशि है। और यह झूठा मन तुम्हारे भीतर के दो सत्यों को तोड़ रहा है, जुड़ने नहीं देता। आत्मा को देह से नहीं जुड़ने देता।

इस मन को जाने दो! इसके जाते ही तुम चकित हो जाओगे। इसके जाते ही इस जगत का सबसे बड़ा चमत्कार घटता है। क्या है वह चमत्कार? वह चमत्कार है कि तब तुम अचानक देखते हो कि आत्मा और देह दो नहीं हैं। दो जब तक मालूम होते थे, जब तक कि मन था, तब तक मालूम होते थे। मन के कारण दो मालूम पड़ते थे। मन के बीच में एक रेखा खींच दी थी।

मन ऐसा ही है जैसे राजनीति के द्वारा खींची गई पृथ्वी पर रेखायें हैं--यह हिंदुस्तान यह पाकिस्तान। नक्शों पर खींची रेखायें हैं। कहीं पृथ्वी टूटती नहीं। पृथ्वी अखंड है। पृथ्वी एक है। लेकिन राजनीति रेखायें खींच देती है। ऐसे ही मन ने रेखा खींच दी है--यह रहा तन, यह रही आत्मा।

जरा मन को जाने दो! कभी शांत और मौन बैठकर देखना जब मन न हो, मन की तरंगें न हों, मन का व्यापार न चलता हो, तब जरा देखना कि तुम दो हो या एक? तुम पाओगे तुम एक हो। तुम पाओगे कि देह तुम्हारी आत्मा का प्रगट रूप है और आत्मा तुम्हारी देह का अप्रगट रूप। तुम पाओगे देह तुम्हारी आत्मा की स्थूल अभिव्यक्ति है। और आत्मा तुम्हारी देह के भीतर छिपा सार है।

देह फूल है, आत्मा सुगंध है।

देह शब्द है, आत्मा शब्द में प्रगट अर्थ है।

देह वीणा है, आत्मा वीणा में छेड़ी गई झंकार है।

नहीं भेद है जरा, दोनों एक हैं। परमात्मा और प्रकृति भिन्न नहीं हैं, संयुक्त हैं।

यह परमात्मा की देह है विश्व और इसका विस्तार। और सूक्ष्म में छोटे पैमाने पर वही तुम्हारे भीतर घटा है। मनुष्य प्रतिछवि है सारे विराट की, ब्रह्मांड की। ब्रह्मांड पिंड में प्रगट हुआ है। तुम्हारे भीतर वह सब कुछ है जो इस विराट विस्तार में है--छोटे पैमाने पर है।

आत्मा को जानने के लिए देह को छोड़ना नहीं है। आत्मा को जानने के लिए देह को जानना है, क्योंकि आत्मा देह का ही छिपा हुआ रूप है। आत्मा देह का ही राज है, रहस्य है। हां, मन को जाने दो भारती, मन को विदा करो।

आत्मा का गेह देह, देह को संवारो!

मंदिर के लिए पर न देव को बिसारो!

इतना भर ख्याल रहे कि मंदिर के लिए देवता न बिसर जाये। इसका यह अर्थ नहीं कि मंदिर को बिसार दो। मंदिर को साफ करो, सुथरा करो, सजाओ, बंदनवार लगाओ, दीये जलाओ। मंदिर प्यारा है। देवता का विस्मरण न हो। देवता के कारण ही प्यारा है। वह जो मंदिर के गर्भगृह में देवता विराजमान है उसको न भूलना। लेकिन यह मंदिर उस देवता का शत्रु नहीं है, उसकी सुरक्षा है।

आत्मा का गेह देह, देह को संवारो!

मंदिर के लिए पर न देव को बिसारो!

पूजा का दीप हृदय; स्नेह डाल, बालो!

देव के पुजापे को तुम स्वयं न खा लो!

पुष्प दीप अक्षत धर, आरती उतारो!

देह गेह ईश्वर का, धरा देह पावन;

नागरिक पुजारी हैं, नगर-ग्राम आसन;

आसन पर कौन? अरे, कोटि नयन वारो!

मत्सर मद मोह द्रोह प्रतिक्रिया त्यागो!

आत्मा के मंदिर में सोओ मत, जागो!

सूर्य उगा, क्षितिज खुला, जीत कर न हारो!

मन को जाने दो--मन तुम्हें सुला रहा है। मन एक नींद है। मन को जाने दो क्योंकि मन ही है--मत्सर, मद, मोह, द्रोह।

मत्सर मद मोह द्रोह प्रतिक्रिया त्यागो!

आत्मा के मंदिर में सोओ मत, जागो!

सूर्य उगा, क्षितिज खुला, जीत कर न हारो!

आत्मा का गेह देह, देह को संवारो!

मंदिर के लिए पर न देव को बिसारो!

यही तो मैं सिखा रहा हूं। मेरी देशना यही है, क्योंकि प्रकृति और परमात्मा एक है, कि स्थूल और सूक्ष्म विपरीत नहीं। जैसे दिन और रात जुड़े हैं और सर्दी और ग्रीष्म जुड़े हैं; जैसे स्त्री और पुरुष जुड़े हैं; जैसे ऋण और धन जुड़े हैं; जैसे निषेध और विधेय जुड़े हैं; जैसे जन्म और मृत्यु जुड़े हैं--ऐसे ही परमात्मा और प्रकृति जुड़े हैं, देह और आत्मा जुड़ी है। मेरी शिक्षा आत्मघात की नहीं है, मेरी शिक्षा आत्म-उत्सव की है।

जीयो, जी भर जीयो!
अमर-जीवन-कामना में अमृत ही मत पीयो!
जीयो, जी भर जीयो!

यदि अमृत जग में कहीं, तो है न वह सुर-तरु चरण में;
स्वेद में है, रक्त में है, अश्रु में, जीवन-मरण में;
पंचरंगी प्राण जल की क्षण-चपल मछलियो!
जीयो, जी भर जीयो!

मीन का क्या हित करेगा अमृत? उसका सत्व पानी!
अनुभवों के मध्य जीवन, अनुभवी ही तत्व-ज्ञानी!
तीर-वासी मुनि बनो मत, लहर चिर-तरूणियों!
जीयो, जी भर जीयो!

डरो मत सुख-दुख भंवर से, लगाओ चूबक अतल में!
डूब कर उबरो, उबर कर डूब जाओ पुनः जल में;
सप्त सप्तक धर, मुहुर्मुहु सांस लो, मुरलियो!
जीयो, जी भर जीयो!

अतल हो या सुतल, सुंदर सकल संकेतस्थली है;
देह धर आत्मा किसी अभिसार के पथ चली है;
ठठक कर मत अटक जाओ वेणु, सुन हरनियो!
जीयो, जी भर जीयो!

दान ले यदि शीश का वह वेणु का वादक, अहेरी,
नाद-लुब्धा मुग्ध-नयना, दान में करना न देरी;
मरणध्रुव धन्वतरी है, रुधिर की धमनियो!
जीयो, जी भर जीयो!

आर जीवन, पार जीवन, मरण मणिमय देहली है,

दीप अनुभव का, शिखा में लौ लगाए बेकली है;

वरो मत निर्वाण, ज्वाला बन जले बिन, दीयो!

जीयो, जी भर जीयो!

जल लो, जी लो, ज्योतिर्मय हो लो! जल्दी क्या है? प्रभु जिस दिन पायेगा कि अब देह की कोई जरूरत न रही, हटा लेगा देह भी। पर उस पर छोड़ो। यह तुम्हारी मन की आकांक्षा न हो। न तो मांगना कि ज्यादा जीऊं, न मांगना कि कम जीऊं। मांगना ही मत। जो हो उसे अंगीकार करना। जो हो उसे स्वीकार करना। जब जीवन दे तो जीवन और जब जीवन न दे तो निर्वाण। लेकिन तुम अपनी अपेक्षा आकांक्षा को आरोपित न करो।

और अंतिम बात, जो तुम्हें शायद और भी चौंकायेः जिस दिन तुम मांगना बंद कर दो उसी दिन फिर इस पृथ्वी पर लौटने की जरूरत नहीं रह जाती। मगर अभी मांग जारी है। एक नई मांग है कि अब देह नहीं चाहिए, कि अब देह से छूटना है। यह नई मांग हो गई। यह निर्वाण की मांग हो गई। यह मोक्ष की मांग हो गई। और जब तक मांग है, मोक्ष कहां? जब तक मांग है तब तक आवागमन से मुक्ति कहां है? मांग ही तो लाती है। मांग वासना है।

भिखारियों का कोई मोक्ष नहीं होता। सम्राट बनो। और सम्राट बनने का ढंग हैः जीयो, जी भर जीयो! परमात्मा ने जीवन दिया है, धन्यवाद से जीयो। और जिस दिन ले ले उस दिन धन्यवाद से दे देना वापिस। दिया उसने, लिया उसने। तुम बीच में न आना। इस भावदशा को मैं संन्यास कहता हूंः तुम बीच में न आना।

जो है उसे वैसा ही स्वीकार कर लेना संन्यास है। और जिसमें ऐसी परमस्वीकृति फलित होती है उसका मोक्ष हो ही गया, जीते-जी हो गया। वह जीवन-मुक्त है।

दूसरा प्रश्नः आप राजनीति पर वक्तव्य देते हैं, तो फिर आपको राजनीतिज्ञ क्यों न माना जाये?

केशवराम! संगीत पर वक्तव्य देने से कोई संगीतज्ञ नहीं हो जाता, न काव्य पर वक्तव्य देने से कोई कवि हो जाता है। राजनीति पर वक्तव्य देने से मैं राजनीतिज्ञ कैसे हो जाऊंगा? काश, ऐसा होता होता तो मोरारजी देसाई धर्म पर वक्तव्य देते हैं, अब तक धार्मिक हो गये होते! वक्तव्य देने से न कोई कवि होता, न कोई धार्मिक होता, न कोई राजनीतिज्ञ होता है। कवि होना हो तो कृत्य और संगीतज्ञ होना हो तो कृत्य और राजनीतिज्ञ होना हो तो कृत्य और धार्मिक होना हो तो कृत्य... । कृत्य निर्धारक है।

मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूं। लेकिन धार्मिक व्यक्ति को राजनीति पर वक्तव्य देने का उतना ही अधिकार है जितना राजनीतिज्ञों को धर्म पर वक्तव्य देने का अधिकार है। जब अंधे भी आंखवालों के संबंध में वक्तव्य दे सकते हों, तो आंखवालों को तो कुछ अधिकार है अंधों के संबंध में वक्तव्य देने का, या नहीं? राजनीतिज्ञ को संकोच करना चाहिए धर्म पर वक्तव्य देने में। उसे पता क्या, उसे अनुभव क्या? धर्म उसके लिए बहुत दूर की बात है। धर्म उसकी चिंतना और चेतना से विपरीत बात है। न उसने ध्यान किया है, न उसने अंतस की शांति जानी है। जीता है महत्वाकांक्षा में--महत्वाकांक्षा के तनाव और चिंता में। फिर भी तुम उसके धर्म पर दिये गये वक्तव्यों पर कोई एतराज नहीं उठाते हो!

मैं राजनीति पर वक्तव्य दे सकता हूं। पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर घाटियों के संबंध में वक्तव्य दिया जा सकता है। सच तो यह है कि पहाड़ की चोटियों से ही घाटियां ठीक से दिखाई पड़ती हैं। कहते हैं न--विहंगम दृष्टि... जब पक्षी उड़ता आकाश में तो उसे जमीन ठीक-ठीक दिखाई पड़ती है। जो जमीन पर ही घसिट रहे हैं,

उन्हें जमीन दिखाई नहीं पड़ती। उन्हें जमीन ही नहीं दिखाई पड़ती, तो उन्हें चोटियां शिखर की तो कैसे दिखाई पड़ेंगी? लेकिन जो शिखर पर खड़ा हो, उसे घाटियां दिखाई पड़ती हैं; घाटियों का अंधेरा दिखाई पड़ता है; घाटियों में भटकते हुए लोग दिखाई पड़ते हैं। और अगर शिखर से कोई पुकारे घाटियों के लोगों को, तो तुम्हें ऐतराज होता है?

अगर मुझे दिखाई पड़ता हो अपने शिखर पर खड़े होकर कि अंधे लोगों की एक जमात, एक ऐसी दिशा में बढ़ रही है जहां जाकर खड्ड में गिरेगी, तो क्या तुम सोचते हो मैं चुप देखता रहूं, आवाज भी न दूं? और अगर आवाज दूं, तुम्हें संदेह होता है कि कहीं मैं भी तो राजनीतिज्ञ नहीं हूं! चिकित्सक तुम्हें तुम्हारी बीमारी के संबंध में जगाता है, इससे बीमार नहीं हो जाता; तुम्हारी बीमारी का निदान करता है। इससे क्या तुम यह समझोगे कि वह भी बीमार हो गया?

राजनीति में मेरा कोई रस नहीं है। होने का कोई उपाय भी नहीं है। राजनीति पैदा होती है महत्वाकांक्षा से। मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। भगवत्ता को जान लेने के बाद और क्या महत्वाकांक्षा हो सकती है? भगवत्ता को पहचान लेने के बाद अब और इसके ऊपर कौन पद हो सकता है? जिस दिन तुम जान लोगे अपने भीतर छिपे भगवान को, उसी क्षण तुम्हारी भी सारी महत्वाकांक्षाएं गिर जायेंगी।

सच तो यह है, महत्वाकांक्षा वस्तुतः भगवत्ता की ही तलाश है--गलत दिशा में, मगर है तलाश भगवत्ता की। एक आदमी धन की दा.ैड में लगा है, अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा कि धन की दौड़ में भी उसी परम धन की खोज चल रही है--गलत ढंग से चल रही है, मगर उसी परम धन की खोज चल रही है। आदमी को निर्धनता काटती है। गरीबी घाव बन जाती है... । चाहता है किसी तरह गरीबी के घाव भर ले, यह घाव भर ले। किसी तरह मिटा दे यह दीनता। यह दीनता शोभती नहीं, भाती नहीं। चित्त रमता नहीं। एक दुख स्वप्न मालूम होता है--कैसे इसके बाहर आ जाऊं? धन इकट्ठा करता है इस आशा में कि शायद धन हो जायेगा तो दीनता, भीतर की दरिद्रता मिट जायेगी। लेकिन बाहर का धन भीतर की दरिद्रता को मिटाये भी तो कैसे मिटाये? धन बाहर है, दरिद्रता भीतर है; दोनों का तालमेल होता नहीं। मगर आकांक्षा सही थी, दिशा गलत थी। धन पाने के बाद एक-न-एक दिन, एक-न-एक दिन यह समझ में आ ही जायेगा कि चूक हो गयी, धन भी भीतर खोजना था। अगर भीतर दरिद्रता थी तो भीतर का धन ही उसे भर सकता था।

और ऐसी ही पद की खोज है। तुम बाहर पद खोज रहे हो, वह भी भीतर के छिपे परम पद की खोज है। तुम कुछ भी हो जाओ, राष्ट्रपति हो जाओ, प्रधानमंत्री हो जाओ, यह हो जाओ, वह हो जाओ, तुम्हारी दीनता न मिटेगी। तुम्हारी पद-हीनता न मिटेगी। बड़े-से-बड़े पद पर बैठकर भी तुम पाओगे, तुम वैसे-के-वैसे खाली, वैसे-के-वैसे सूने, वैसे-के-वैसे रिक्त--वही-के-वही। सिंहासन पर बैठ जाने से तुम्हारे भीतर थोड़े ही संपदा बरस जायेगी। एक भिखारी को सिंहासन पर बिठाल दो, इससे क्या होगा? भिखारी भिखारी है। हां, सिंहासन पर बैठकर थोड़ा अकड़ लेगा, थोड़ा शोरगुल मचा लेगा, थोड़ा मंच पर रौब बांध देगा; मगर भीतर तो जानेगा कि मैं भिखारी हूं। क्या फर्क पड़ेगा? पद की तलाश भी एक दिन उस जगह ले आती है, जहां पता चलता है कि तलाश तो ठीक थी, मगर दिशा गलत थी। पद खोजना था भीतर, क्योंकि पद-हीनता भीतर मालूम हो रही थी।

मेरे लेखे कुछ भी तुम खोजो तुम परमात्मा को ही खोज रहे हो जाने-अनजाने।

जो जानकर खोजने लगा, निश्चित ही उसके कदम फिर राजनीति में नहीं पड़ सकते। उसके कदम फिर कैसे पड़ सकते हैं बाहर की खोज में? जिसे मिलना ही शुरू हो गया, उसकी यात्रा बदल गयी। और जिसे मिल ही गया हो उसका तो कहना ही क्या?

मेरा कोई रस राजनीति में नहीं है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि अगर मैं देखूं कि देश गड्ढे में गिर रहा हो, तो चुपचाप खड़ा रहूं। इतनी क्रूरता भी मुझमें नहीं है। इतनी क्रूरता धार्मिक व्यक्ति में हो ही नहीं सकती; होनी भी नहीं चाहिए। इतनी उपेक्षा भी नहीं होनी चाहिए। साधारण आदमी भी अगर किसी को देखेगा कि जा रहा है यह गिरने, चट्टान के नीचे गिरेगा तो सदा के लिए समाप्त हो जाएगा--वह भी दौड़कर आवाज देगा कि रुक जाओ, उस तरफ मत बढ़ो। मानो-न-मानो तुम्हारी मर्जी। तुम्हें गिरना ही हो तो तुम गिरोगे। तुम्हें गिरने में रस लगा हो तो तुम गिरोगे। मगर एक बात तय रहेगी कि मुझसे यह न कह सकोगे कि मैंने पुकार न दी थी।

तुम कहते होः "आप राजनीति पर वक्तव्य देते हैं तो फिर आप को राजनीतिज्ञ क्यों न मान लिया जाये?" राजनीतिज्ञ होने के लिए वक्तव्य देना आवश्यक भी नहीं होता। मौन होकर भी आदमी राजनीतिज्ञ हो सकता है। विनोबा भावे को देखते न, वक्तव्य तो देते नहीं, मौन हैं, मगर फिर भी राजनीति चलती है।

कुछ महीनों पहले इंदिरा और इंदिरा के कुछ साथी विनोबा भावे के आश्रम में इकट्ठे हुए और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया, वक्तव्य दिया कि उन्होंने आशीर्वाद दिया है। फिर दो दिन बाद विनोबा ने सोचा-विचारा होगा कि ये आशीर्वाद महंगा पड़ सकता है। राजनीतिज्ञ तो सोच-सोचकर कदम रखता है। राजनीतिज्ञ मेरे जैसा थोड़े ही बोलता है कि फिर हो जो हो! कोई राजनीतिज्ञ इस तरह मोरारजी से बात कर सकता है जैसे मैं करता हूं? राजनीतिज्ञ हजार गणित बिठाकर बात करता है। मेरा कोई गणित नहीं है। मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। न मुझे कुछ पाना है, न कुछ मेरे पास है जिसे कोई छीन सकता है। और जो मेरे पास है उसे कोई छीन नहीं सकता। और जो मेरे पास है उससे ज्यादा इस जगत में कुछ है नहीं पाने को, इसलिए क्या हिसाब-किताब?

दो दिन बाद विनोबा ने देखा कि हिसाब-किताब में गड़बड़ होगी, नुकसान होगा--बदल गये! अखबारों में वक्तव्य दे दिया कि मैंने आशीर्वाद नहीं दिया है। जब इंदिरा प्रधानमंत्री थी और विनोबा के आश्रम में जाती थी, तो विनोबा उन्हें आमंत्रित करते थे। विनोबा के संदेशवाहक जाकर उन्हें दिल्ली निमंत्रण देते थे। और विनोबा द्वार पर उनका स्वागत करने आते थे। लेने भी, भेजने भी, द्वार तक विदा करने आते थे। फिर जब इंदिरा प्रधानमंत्री न रही, तो संदेश भेजना तो दूर कि आओ; इंदिरा जब आयी, अपने-से आयी तो विनोबा फिर द्वार पर लेने नहीं आये और न विदा करने आये। और विनोबा नहीं आये सो तो ठीक ही है, आश्रमवासी भी द्वार पर स्वागत करने नहीं आये! इसे मैं राजनीति कहता हूं!

इंदिरा प्रधानमंत्री थी, मैंने कभी उसकी प्रशंसा नहीं की। ये कहीं राजनीति के ढंग हैं? और अब जब कि इंदिरा की प्रशंसा करने वाला इस देश में कोई भी नहीं है, मैं प्रशंसा कर रहा हूं। ये कोई राजनीति के ढंग हैं? यह तो अंधों को भी समझ में आ जाये कि ये राजनीति के ढंग नहीं हैं। यह तो बिल्कुल उल्टी राजनीति हो गयी; ऐसे कहीं राजनीति चलती है!

फिर अभी इंदिरा जीती, तो विनोबा मौन हैं; जब उनको खबर दी गयी कि इंदिरा जीत गयी, तो खुशी में उन्होंने ताली बजाई। अखबारों में खबर छप गई कि विनोबा ने खुशी में ताली बजाई, मस्त हो गये!

फिर दो दिन बाद वक्तव्य, कि वह मैंने ताली इंदिरा की जीत के कारण नहीं बजाई थी, वह तो उस क्षण संयोगवशात मैं मौज में था।

उसी क्षण मौज में थे, क्षण भर पहले नहीं, क्षण-भर बाद नहीं!

एकदम खूब संयोग बैठा कि उसी क्षण मस्ती आयी ताली बजाने की! दो दिन बाद फिर हिसाब-किताब बिठाया होगा कि यह ताली बजाना महंगा पड़ सकता है।

राजनीति हमेशा हिसाब-किताब है, गणित है, चालबाजी है चालाकी है। मैं तुमसे कहता हूंः मैं राजनीति पर वक्तव्य देकर भी राजनीतिज्ञ नहीं हूं और विनोबा चुप रहकर, मौन रहकर, बिना वक्तव्य दिये भी राजनीतिज्ञ हैं। राजनीति जीवन की एक शैली है, वक्तव्य और गैर-वक्तव्य से कुछ भी नहीं होता। अगर मुझ में थोड़ी भी राजनीति होती तो यह कोई समय था कि मोरारजी का मैं विरोध करूं और इंदिरा का समर्थन करूं? चौंकी तो इंदिरा भी। मोरारजी ही नहीं चौंके, इंदिरा भी चौंकी। इंदिरा ने कहा भी अपने किसी साथी को, वह मुझे खबर देकर गये। उन्होंने कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि आज तो इस देश में मेरा हाथ पकड़ने वाला कोई भी नहीं; उन्होंने क्यों वक्तव्य दिया मेरे समर्थन में?

मोरारजी आज मेरे दो संन्यासियों को दिल्ली में मिल रहे हैं। शर्त उन्होंने रखी है कि मिलना बिल्कुल ही एकांत में होगा। और यह भी शर्त रखी है कि मिलने में जो भी बातचीत होगी, उस संबंध में अखबारों में कोई चर्चा नहीं होनी चाहिए। यह शर्तों के साथ मिलना हो रहा है। मोरारजी भी हैरान हैं, क्योंकि क्यों मैं उनके विरोध में बोल रहा हूं! ... क्योंकि ये मेरे वक्तव्य अत्यंत गैर-राजनीतिपूर्ण हैं।

मैं वही कहता हूं जो मुझे ठीक लगता है, उसमें कोई प्रयोजन नहीं है। उसमें कोई फलाकांक्षा नहीं है। उसमें क्या परिणाम होगा, इसका कोई हिसाब नहीं है। लेकिन जब मुझे जो लगता है, वैसा मैं कहूंगा और वैसा मैं कहता रहूंगा। अगर मैं वैसा न कहूं तो कौन और कह सकेगा? सनद तो रहेगी कि मैंने कहा था। जब भी मैं देखूंगा कुछ गलत हो रहा है, तो जरूर कहूंगा।

अब यह जरूरी थोड़े ही है कि तुम मुझे गलत-सलत भोजन परोस दो और मैं कहूं कि यह कड़वा है, और तुम मुझसे कहो कि आप पाकशास्त्री हैं, जो आप इसको कड़वा कह रहे हैं? अब भोजन को कड़वा कहने के लिए मेरे लिए पाकशास्त्री होना जरूरी भी नहीं है। अगर यह शर्त हो कि पाकशास्त्री हुए बिना कोई भोजन पर वक्तव्य नहीं दे सकता, तब तो बड़ी मुसीबत हो जाये। तब तो फिर कोई जहर भी परोस दे तो खाना पड़े! क्योंकि तुम कोई पाकशास्त्री तो नहीं हो, जो तुम वक्तव्य दो!

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं, लेकिन जन्मों-जन्मों में, लंबी यात्रा में राजनीति के सब खेल देखे हैं। शिखर पर आज आ गया हूं, लेकिन जन्मों-जन्मों तक तो घाटियों में मुझे भी वैसे ही अंधेरे में टटोलना पड़ा है जैसे तुम टटोल रहे हो। ये चोटें मैंने भी खायी हैं। इन गड्ढों में मैं भी गिरा हूं। ये सब परिचित गड्ढे हैं। इसलिए जब भी जो मैं कह रहा हूं वह ऐसा नहीं है कि बिल्कुल ही अपरिचित बातों के संबंध में कुछ कह रहा हूं।

कहावत हैः हर संत का अतीत होता है और हर पापी का भविष्य।

मैंने संसार का सब जाना है, जैसा तुम जान रहे हो। इसलिए संसार की किसी भी स्थिति और घटना के संबंध में मैं वक्तव्य देने का हकदार हूं। और हक मेरा और बढ़ गया, क्योंकि मैंने कुछ और भी जाना है जो तुम नहीं जान रहे हो। और उस कुछ और के जानने से ही परिप्रेक्ष्य बड़ा हो जाता है, दृष्टि विहंगम हो जाती है। दूर की चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं जो तुम्हें नहीं दिखाई पड़तीं।

जैसे कोई आदमी जमीन पर खड़ा है और कोई आदमी वृक्ष पर बैठा है। एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है। जमीन पर जो आदमी खड़ा है उसे अभी दिखाई नहीं पड़ती कि बैलगाड़ी आ रही है। अभी दूर है। लेकिन वृक्ष पर जो बैठा है उसे दिखाई पड़ती है कि बैलगाड़ी आ रही है। जमीन पर खड़े आदमी के लिए बैलगाड़ी अभी भविष्य है, अंधकार में है; वृक्ष पर बैठे आदमी के लिए वर्तमान है, अंधकार में नहीं है, प्रकाश में है।

जितनी ऊंचाई तुम्हारी चेतना की बढ़ेगी, उतनी ही चीजें जो औरों के लिए भविष्य में हैं, तुम्हारे लिए वर्तमान हो जायेंगी। उतनी ही चीजें जो औरों के लिए अतीत हो गयी हैं, वे भी तुम्हारे लिए वर्तमान में होंगी।

इसी बात की अंतिम तर्कसरणी... जैन कहते हैं कि महावीर त्रिकालज्ञ हैं। उसका अर्थ कुछ और नहीं है--उसका इतना ही अर्थ है कि ऊंचाई इतनी बढ़ गयी है कि अब अतीत भी वर्तमान है, भविष्य भी वर्तमान है--अब सिर्फ एक ही काल बचा, वर्तमान; अब तीन काल नहीं बचे। लेकिन मूढ़ताएं तो ऐसी होती हैं कि लोग उसमें भी जिद में पड़ गये हैं, लोग समझते हैं कि महावीर को हर विस्तार का पता है, कि दो हजार साल बाद चूहड़मल-फूहड़मल बंबई में एक होटल खोलेंगे, इसका भी पता है। यह कोई मतलब नहीं है। मतलब केवल इतना है कि जैसे-जैसे चित्त की ऊंचाई बढ़ती है, वैसे-ही-वैसे उस ऊंचाई के कारण सारा विस्तार वर्तमान में समा जाता है। उसमें कोई चूहड़मल-फूहड़मल की दुकान नहीं होती।

मैं जिस जगह से देख रहा हूं, वहां से मैं राजनीति जो कर रही है इस देश में और इस देश को जिस गड्ढे में ले जा रही है, वह भी दिखाई पड़ रहा है। या तो चुप रहूं... चुप रहूं, क्योंकि अगर बोलूंगा तो मेरे काम को परेशानी होगी, मेरे काम को हानि होगी। लेकिन तब मैं तुमसे कहता हूंः मेरा चुप रहना राजनीति होगी। तुम जरा समझने की फिक्र करना।

यहां मेरे एक संन्यासी हैं। जर्मन सम्राट के पोते हैं। ग्रीक की महारानी कल बंबई से गुजरती थीं, तो उसने उन्हें बुलाया था। वह उनकी मौसी है। ग्रीक की महारानी उनकी मौसी है, इंग्लैंड की महारानी उनकी मौसी है। यूरोप के करीब-करीब सारे राजघरों में उनके कुछ-न-कुछ संबंध हैं। महारानी ने उनको कहा कि मैंने तुम्हें यहां सावधान करने को बुलाया है कि यह आश्रम जल्दी ही सरकार बंद कर देगी। क्योंकि मुझे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि सरकार खिलाफ होती जा रही है। तुम्हें अगर कभी अड़चन आये, तुम्हें जरूरत हो, तो मैं सदा तुम्हारी सहायता को तत्पर हूं। तुम मेरे पास चले आना।

फिर महारानी का भोजन था यूनान के दूतावास में, तो वहां भी विमलकीर्ति, मेरा संन्यासी, वहां रानी उनको साथ ले गयी। राजदूत ने भी यही कहा कि तुम्हारे आश्रम पर खतरे के बादल हैं।

ये खतरे के बादल मेरे वक्तव्यों के कारण हैं। अगर मुझ में थोड़ी भी राजनीति होती तो मैं चुप रहता; या जो सत्ता में हैं, उनकी झूठी प्रशंसा करता। क्योंकि उनकी प्रशंसा से हजार काम हो सकते हैं। लेकिन उनकी प्रशंसा से देश का जो भी दुर्भाग्य हो उससे मुझे क्या लेना-देना है! अगर मैं राजनीतिज्ञ होता, राजनीति मेरे चित्त में होती, तो मुझे अपना प्रयोजन होता। उनसे मैं हजार काम ले सकता था। लेकिन मुझे किसी से कोई काम नहीं लेना है। परमात्मा मुझसे जो काम करवा ले, करवा ले, उसकी मर्जी। और कभी-कभी वह मुझसे राजनीति पर वक्तव्य भी दिलवा लेता है तो मैं क्या करूं?

तीसरा प्रश्नः सिद्ध सरहपा ने कहा कि जब तक स्वयं को न जान लो तब तक किसी को शिष्य न करना। इस पर कुछ और कहें।

यह तो बात बिल्कुल सीधी-साफ है, और कुछ कहने की जरूरत नहीं है। जो तुमने न जाना हो उसे किसी को मत जतलाना, क्योंकि तुम जतलाओगे वह गलत ही होगा, अनुमान होगा, उधार होगा, बासा होगा। तुम्हारी स्वयं की अनुभूति अगर नहीं है तो उसमें प्राण कैसे होंगे? ज्ञान तो होगा मगर निष्प्राण होगा; शास्त्रीय होगा, स्वानुभूत न होगा। और इसी तरह के लोगों ने मनुष्य को भटका दिया है। इसलिए सरहपा ठीक कहते हैं।

इस दुनिया में इतना अधर्म न हो जितना है, अगर तथाकथित धार्मिक लोग उन बातों को कहना बंद कर दें जो उनके अनुभव पर आधारित नहीं हैं। अगर सारे धार्मिक लोग एक बात की कसम ले लें कि हम उतना ही

कहेंगे जितना जाना है, इस दुनिया में बड़ी अपूर्व क्रांति घट जाये। झूठ के आधार पर परमात्मा का आगमन नहीं हो सकता है। और जो तुमने नहीं जाना है वह झूठ है। और तुम ऐसे रंग गये हो पक गये हो झूठ में कि तुम्हें याद भी नहीं आती कि तुम झूठ बोल रहे हो। जब कोई तुमसे पूछता है, ईश्वर है? और तुम कहते हो--हां, ईश्वर है! तब तुम्हें ख्याल आता है कि तुमने जाना? तुमने पहचाना? तुम्हारा अनुभव है? तुमने स्वाद लिया? नहीं, ये प्रश्न ही नहीं उठते। ये प्रश्न ही तुमने काटकर फेंक दिये हैं। तुम इतने बचपन से इस बात को मानते रहे हो, यह जहर तुम्हें घुटी में घोंटकर पिलाया गया है, कि अब तुम्हें याद ही नहीं आती कि तुम्हें पता नहीं है ईश्वर का, कि तुम एक झूठ बोल रहे हो, कि तुम बेईमान हो, कि तुम पाखंडी हो। नहीं, यह कोई बात ख्याल में नहीं आती। जब कोई तुमसे पूछता है, ईश्वर है? तुम बड़ी सरलता से कहते मालूम पड़ते हो कि हां, है--अगर भारत में पैदा हुए, अगर किसी धार्मिक देश में पैदा हुए। अगर रूस में पैदा हुए तो उतनी ही झूठ को तुम उतनी ही सरलता से बोल देते हो कि नहीं, ईश्वर नहीं है। क्योंकि वही सिखाया गया है।

रूस के स्कूलों में समझाया जा रहा है, ईश्वर नहीं है; तुम्हारे स्कूलों में समझाया जा रहा है ईश्वर है। दोनों बातें उधार हैं। दोनों दूसरे तुम्हें समझा रहे हैं। और जो तुम्हें समझा रहे हैं उन्हें भी पता नहीं है। ऐसे कैसे धर्म की तलाश होगी? और फिर तुम्हारी बात मानकर जो चल पड़ता है वह गड्ढे में गिरेगा। इसलिए सरहपा कहते हैं कि यह तो ऐसा ही है कि जैसे अंधे अंधों को रास्ते बतायें, फिर दोनों अगर कुएं में गिर पड़ें तो आश्चर्य कैसा? यह तो बड़ी सीधी-सादी बात है, पर बड़ी महत्वपूर्ण।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि जब भी तुम बोलो तो बहुत सावधानी से बोलना, क्योंकि बोलते तुम करीब-करीब ग्रामोफोन रिकार्ड की भांति हो, उसमें सावधानी होती ही नहीं, सावधानी की जरूरत ही नहीं होती; सब रटा हुआ है, बोल देते हो।

एक पादरी तोते खरीदने गया था एक दुकान पर, उसका तोता मर गया था। उसने कहाः कोई शानदार तोता चाहिए, दाम की कोई फिकिर न करो। बहुत तोते देखे लेकिन उसे पसंद नहीं आया, फिर एक तोता उसे दिखाई पड़ा--अमे.जान के जंगल से लाया गया तोता था, बड़ा जानदार तोता था, बड़ा शानदार तोता था। ऐसा तोता उसने कभी देखा नहीं था, उसने कहा कि यह... । पर दुकानदार ने कहा कि इसे मैं बेचना नहीं चाहता। यह बड़ा अनूठा तोता है।

क्या इसका अनूठापन है, पादरी ने पूछा। दुकानदार ने कहाः देखते हैं आप, इसके बाएं पैर में एक छोटा-सा धागा बंधा है, जरा-सा इसका धागा खींच दो, किसी को पता भी नहीं चलेगा, यह तत्क्षण बाइबिल के वचन दोहराता है। और इसके दाएं पैर में भी धागा बंधा है, देखते हो, पतला धागा, किसी को दिखाई भी नहीं पड़ेगा, तुम चुपचाप इसको खींच दोगे, बस इसको इशारा मिल जायेगा, यह तत्क्षण ईसाइयों की जो प्रार्थना है वह दोहरा देता है।

पादरी ने कहाः और अगर दोनों धागे एक साथ खींच दो? तोता बोलाः अरे बुद्धू! तो मैं चारों खाने चित्त नीचे गिर पडूंगा।

तोतों में भी इतनी अकल है, इतनी अकल आदमियों में भी नहीं रही है अब। तोता भी इतना जानता है। दोहरा देगा बाइबिल के वचन और दोहरा देगा प्रार्थना--मगर वह दोहराना है, उस दोहराने का कोई मूल्य नहीं है। इसी तरह तुम दोहरा रहे हो, मगर तोता भी इतना बुद्धू नहीं था जितने लोग बुद्धू हो गये हैं। जब पादरी ने कहा कि अगर दोनों धागे एक साथ खींचें तो क्या होगा, तो तोता भी चौंका, उसने कहाः हद हो गई, अरे बुद्धू! चारों खाने चित्त गिर पडूंगा।

तुम जब कोई बात कहो, क्षण-भर रुक जाना, पुनर्विचार कर लेना। तुम्हारे अनुभव से आती है, तो ही कहना। और उतनी ही कहना जितनी अनुभव से आती हो, एक रत्ती ज्यादा नहीं। एक इंच आगे मत बढ़ना अपने अनुभव से। यह जगत रोशन हो जाये अगर लोग उतनी ही बात कहें जितनी उनके अनुभव की है। इस जगत में सचाई का तूफान आ जाये।

यह दुनिया झूठ में दबी जा रही है। और बड़े-से-बड़े झूठ वे हैं जिनको तुमने सच मान लिया है। मैं यह नहीं कह रहा कि ईश्वर नहीं है, मैं यह कह रहा हूं कि तुम जब तक न जान लो, कुछ मत कहना। कहनाः मुझे पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। मुझे पता होगा कभी तो जरूर निवेदन करूंगा, अभी मैं भी तलाश में हूं। मुझे कुछ पता नहीं, मैं अज्ञानी हूं।

जरा सोचो, ऐसा कहते ही तुम कैसे निर्भार हो जाओगे, कैसे हलके! और ऐसा कहते ही तुमने दूसरे आदमी को एक दिशा दे दी--ईमानदारी की, अन्वेषण की, खोज की, तलाश की। तुमने दूसरे आदमी में भी एक ज्योति जला दी; यह ज्योति ज्यादा मूल्यवान है उस झूठी बात से जो तुमने उससे कह दी होती कि हां, ईश्वर है, मैं मानता हूं। और तुम हजार तर्क देते, वे सब तर्क भी बासे होते; उन तर्कों का कोई मूल्य नहीं है।

आज तक ईश्वर के पक्ष में कोई तर्क दिया नहीं जा सका है, न विपक्ष में दिया जा सका है। ईश्वर तर्क की बात ही नहीं है; न तो सिद्ध किया जा सकता है तर्क से, न असिद्ध किया जा सकता है तर्क से। ईश्वर तो अनुभव है। और न ईश्वर हिंदू है, न मुसलमान, न ईसाई; न कुरान में है, न बाइबिल में, न वेद में। ईश्वर तो तुम्हारे स्वानुभव में है। और तुम्हारे अतिरिक्त कोई उसका गवाह नहीं हो सकता, तुम उसके साक्षी बनो।

सरहपा ठीक कहते हैं।

पीछे करना अध्ययन, बंधु, तुम औरों का;
हो सावधान, पहले अपना अध्ययन करो!
पीछे दिखलाना आंखें औरों को, पहले--
अपने प्रति तो तुम बंद न अपने नयन करो!
हो सावधान, पहले अपना अध्ययन करो!

जीते-जीते थक गया, जब कि जीने वाला,
तज कर्म, सजा कर मंच, बन गया अभिनेता!
वह कोई और न था, तुम ही कच्चे साधक,
जिसने अपने को समझ लिया जीवन-जेता!
मन नहीं, वचन के शूर, रूप धरने वाले;
तुम उतर मंच से, भार मौन का वहन करो!
हो सावधान, पहले अपना अध्ययन करो!

अभिमान तुम्हारा व्यर्थ--कि तुम साधक, विनम्र!
तुम निरभिमान होने का मत अभिमान करो!
कह दिया किसी ने यदि, तुम हो ज्ञानी-ध्यानी;
यह बात मान कर, मत उसका अपमान करो!

यश फूलों का परयंक नहीं, अंगारा है;
तुम शयन करो इस पर, आपे का दहन करो!
हो सावधान, पहले अपना अध्ययन करो!

उपदेश, सुभाषित शब्दों के घड़िया-जड़िया--
जाने क्या क्या तुम समझ बैठते अपने को!
मत समझो जग को मूर्ख, बनो मत मूर्खराज;
समझो न सिद्धि तुम, अपना अहम पनपने को!
तुम बात उड़ाओ नहीं, चुराओ नहीं आंख;
कच्चे घट हो, जी भर कर ज्वाला सहन करो!
हो सावधान, पहले अपना अध्ययन करो!

अभी कच्चे घड़े हो, अभी पको। कच्चे घट हो, जी भरकर ज्वाला सहन करो! अभी तो तुम्हारे भीतर व्यर्थ की बकवास है। तुम उतर मंच से, भार मौन का वहन करो! अभी तो तुम्हारे भीतर बड़ा अहंकार है, वही अहंकार तो तुम्हें सुझाव देता है कि मार्ग-दर्शन करो लोगों का; लोगों को चलाओ, रास्ता बताओ, ज्ञान दो!

तुम शयन करो इस पर, आपे का दहन करो!
यश फूलों का परयंक नहीं, अंगारा है;
तुम शयन करो इस पर, आपे का दहन करो!
अभी खुद की आंखें बंद, तुम दूसरों की खोलने चले!
अपने प्रति तो तुम बंद न अपने नयन करो!
पीछे दिखलाना आंखें औरों को, पहले--
अपने प्रति तो तुम बंद न अपने नयन करो!
पीछे करना अध्ययन, बंधु तुम औरों का;
हो सावधान, पहले अपना अध्ययन करो!

पहले तो स्वयं को पढ़ो, फिर पढ़ाना। पहले जागो, फिर जगाना। पहले आंख खोलो, आंख पाओ, फिर तुम्हें चेष्टा न करनी पड़ेगी। जिन्हें तलाश है वे खुद ही तुम्हें ढूंढते चले आयेंगे। वे सदा चले आते हैं। तुम्हारा दीया जले तो दूर अंधकार में भटकते हुए लोग उस धीमी-सी दीये की ज्योति को देख चल पड़ेंगे, तुम्हारी तलाश शुरू हो जायेगी। जिन्होंने जाना है उनसे लोग पूछने चले आए; उन्हें जा जाकर किसी को कहना भी नहीं पड़ता है, कहने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

सरहपा ठीक कहते हैं। उनकी बात को गांठ बांध लो।

चौथा प्रश्नः आपने कहा है जीवन को लीला समझो। कैसे? और यदि जीवन माया मात्र है, तो इस जीवन की आवश्यकता क्या है?

जीवन को लीला समझो, इस बात को कहने का यह अर्थ नहीं है कि जीवन लीला नहीं है और तुम्हें लीला समझना है। जीवन लीला है, तुम समझो चाहे न समझो। जीवन का लीला होना तुम्हारे समझने पर निर्भर नहीं

है। जीवन का लीला स्वभाव है। यह सत्य हैः तुम समझ लो तो तुम्हारे जीवन में सत्य से मिलने वाली शांति का आविर्भाव होगा; तुम न समझो तो असत्य से मिलने वाली अशांति का विस्तार होगा। तुम समझ लो तो संगीत पैदा हो जायेगा क्योंकि तुम्हारा तालमेल बैठ जायेगा विराट से; तुम न समझो तो तुम तालमेल के बाहर पड़े रहोगे, तुम्हारा छंद विराट के छंद के साथ न बैठेगा। वही दुख है।

दुख क्या है? विराट के छंद से पृथक-पृथक रहना; अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाना, दुख है। जिस दिन तुम इस विराट उत्सव में सम्मिलत हो जाते हो, इस विराट संगीत में एक अंग बन जाते हो, बस उसी दिन सुख है, उसी दिन शांति है, उसी दिन आनंद है।

जीवन लीला है, इसका क्या अर्थ? जीवन गंभीर नहीं है। परमात्मा गंभीर कैसे हो सकता है! गंभीरता तो उदासी है। उदासी तो रुग्णता है, उदासी तो विषाद है। उदासी तो उनमें होती है जिनकी अपेक्षायें हैं और फिर अपेक्षायें पूरी नहीं होतीं तो उदासी होती है। परमात्मा की कोई अपेक्षा नहीं है, इसलिए उदासी कैसी? परमात्मा विषाद को कैसे उत्पन्न होगा? परमात्मा तो सदा ही आनंदमग्न है।

यह जगत परमात्मा ने प्रयोजन से नहीं बनाया है, क्योंकि प्रयोजन तो उसका होता है जिसको कुछ पाना हो, आकांक्षा हो। परमात्मा तो वह है जिसके पास सब है, कुछ पाने को नहीं है, कुछ और ज्यादा हो नहीं सकता। फिर उसने जगत को क्यों बनाया है? इसलिए इस देश के मनीषियों ने ठीक बात कही, दुनिया के किसी और मनीषी ने इस गहन बात को नहीं पकड़ पाया है। सारी दुनिया में लोग यही कहते रहे कि परमात्मा ने जगत को रचा है, बनाया है, सृष्टि की है; इसके पीछे कोई प्रयोजन है, कोई महत प्रयोजन है। और यह बात आदमी के मन को जमती भी है, क्योंकि हम सब प्रयोजन से जीते हैं।

तुम एक दुकान खोलते हो तो कोई लीला थोड़े ही है। तुम एक दुकान खोलते हो, धन कमाना है। तुम शादी करते हो तो कोई लीला थोड़े ही है। तुम गंभीरता से शादी करते हो; घर बसाना है, बच्चे पीछे छोड़ जाना है। नहीं तो कौन करेगा श्राद्ध, और कौन तुम्हारी खोपड़ी तोड़ेगा मरघट पर, हालांकि बच्चे ऐसे हैं कि जिंदा में ही तोड़ देते हैं। पुराने जमाने में मरने तक रुकते थे, अब वे एकदम जल्दी में हैं। हर चीज जल्दी में हो रही है।

तुम प्रयोजन से जीते हो, तो तुमने परमात्मा को भी अपने हिसाब ही से सोच लिया है कि वह भी प्रयोजन से जी रहा होगा। जरूर कोई लक्ष्य होगा, शायद हमको पता नहीं है, मगर लक्ष्य तो होगा-ही-होगा। लेकिन परमात्मा का कोई लक्ष्य नहीं हो सकता। वह तो वहीं है जहां होना है। वह तो पहुंचा ही हुआ है। कोई मंजिल तो नहीं है, मंजिल पर ही है।

परमात्मा इस जगत को किसी प्रयोजन से नहीं रचता। फिर क्यों? हमारे सामने सवाल उठता हैः फिर क्यों? ऊर्जा है। छोटे बच्चों को देखा? एक बच्चा बैठा है, कुछ नहीं तो बैठे-बैठे ही डोल रहा है, करवट बदलता है। तुम उससे कहते होः शांत बैठो! वह शांत बैठे कैसे? ऊर्जा है, शक्ति का प्रवाह है, शक्ति ऊपर से बह रही है। बाढ़ आई है शक्ति की, वह चुप कैसे बैठे? बच्चे नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, दौड़ रहे हैं; तुम उनसे पूछो--प्रयोजन? तो वे चौंकेंगे कि यह भी कोई बात हुई? नाचना काफी है, प्रयोजन क्या? या फिर तुम कवियों से पूछो कि तुमने जो गीत गाये--प्रयोजन? अगर किसीने प्रयोजन से गीत गाया हो तो वह कवि ही नहीं है। वह कहे कि इसलिए गीत गाया कि राजा की स्तुति करनी थी, तो वह कवि ही नहीं है, तुकबंद है। उसके गीतों का कोई मूल्य नहीं है।

रवींद्रनाथ जैसे कवि से पूछो तो वह कहेंगे, ऊर्जा का सहज आविर्भाव है। मेरे वश में न था, गाना ही पड़ा, प्रयोजन कुछ भी नहीं। गीत जैसे अपने से फूटा है! जैसे वृक्षों से फूल फूटे हैं, और पक्षियों के कंठ से सुबह गान निकले हैं, और रात आकाश तारों से भर गई है--प्रयोजन क्या है?

पाबलो पिकासो चित्र बना रहा था, कोई आदमी आकर खड़ा हो गया, गौर से देखता रहा, फिर उसने पूछा--इस चित्र के बनाने का प्रयोजन क्या है? पिकासो ने अपने सिर पर हाथ मार लिया। उसने कहाः तुम पहाड़ों से नहीं पूछते, तुम वृक्षों से नहीं पूछते, तुम चांद-तारों से नहीं पूछते, मेरे क्यों पीछे पड़े हो? यह जो पास में गुलाब का फूल खिल रहा है, इससे पूछो कि प्रयोजन क्या है? और अगर गुलाब का फूल खिल सकता है निष्प्रयोजन, तो क्या इतना हक मुझे नहीं है कि निष्प्रयोजन मैं रंग फैलाऊं कैनवस पर, चित्र बनाऊं निष्प्रयोजन?

संगीतज्ञ जब अपनी परम गहराई में उतरता है तो संगीत का कोई लक्ष्य नहीं होता, संगीत अपने में ही अपना लक्ष्य होता है। कला--कला के लिये। लीला का वही अर्थ है।

परमात्मा दुकानदार नहीं है, कलाकार है--लीला का इतना ही अर्थ है। परमात्मा गणित से नहीं जी रहा है, काव्य से जी रहा है--इतना ही लीला का अर्थ है। लीला का अर्थ है, यह खेल है। परमात्मा के पास इतनी ऊर्जा है कि करे क्या, तो फूल बनाता है, पक्षी बनाता है, लोग बनाता है। और देखो कैसा रंग-बिरंगा जगत! अदभुत जगत है। यह ऊर्जा की बाढ़ है।

पश्चिम के बड़े रहस्यवादी कवि ब्लेक ने कहा हैः इनर्जी इज डिलाइट, ऊर्जा आनंद है। यह वक्तव्य उपनिषद के वक्तव्यों जैसा वक्तव्य है--उसी कीमत का, उसी मूल्य का। जहां ऊर्जा है वहां ऊर्जा बहेगी और आनंद प्रगट होगा। वहां नृत्य होगा, गीत गाये जायेंगे, फूल खिलेंगे। और ऊर्जा अजस्र है, अनंत है, इसलिए खेल जारी रहेगा।

तो मैंने जब तुमसे कहा कि जीवन को लीला समझो, तो मैंने यह नहीं कहा कि तुम समझोगे तो जीवन लीला होगा; मैंने इतना ही कहा है कि जीवन तो लीला है ही, तुम समझोगे तो तुम्हें सदबुद्धि आयेगी। तुम्हारे नहीं समझने से जीवन में कुछ फर्क नहीं पड़ता, लेकिन तुममें फर्क पड़ता है। ठीक-ठीक समझोगे तो जोड़ बैठ जायेगा, तरंग बैठ जायेगी। तुम्हारे तार परमात्मा के तार के साथ कंपने लगेंगे। और अगर तुमने ठीक-ठीक न समझा, तुम कुछ का कुछ और समझते रहे तो तुम्हारे तार अलग-थलग चलते रहेंगे। उसका नाच चलता रहेगा, तुम अलग अकेले पड़ जाओगे।

धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं जिसने परमात्मा का लीलामय रूप समझा और उस लीलामय रूप में अपने को सम्मिलत कर दिया। अधार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं जो प्रयोजन से जी रहा है। समझ लेना जरा मेरी व्याख्या को, क्योंकि अगर मेरी व्याख्या ठीक से समझ में आई तो तुम्हारे तथाकथित धार्मिक कहे जाने वाले निन्यानबे प्रतिशत लोग मेरी व्याख्या के हिसाब से अधार्मिक हो जायेंगे और बहुत-से लोग जिन्हें तुमने कभी भी धार्मिक की तरह नहीं सोचा वे धार्मिक हो जायेंगे।

मैं दोहरा दूं मेरी परिभाषाः धार्मिक वह है जो परमात्मा की लीला के साथ संयुक्त हो गया है; जिसने अपने जीवन को भी लीला बना लिया, जिसे अब न कहीं जाना है, न कुछ होना है, न कुछ पाना है--स्वर्ग भी नहीं, बैकुंठ भी नहीं, मोक्ष भी नहीं, कुछ नहीं पाना है। यह क्षण पर्याप्त है। यह क्षण पूरा-पूरा मन को भर रहा है, प्राणों को भर रहा है। आह्लाद है यहां और अभी। इसी आह्लाद में बाढ़ आई है तो कभी नाच पैदा हुआ, तो कभी गीत पैदा हुआ। वे ही नाच, वे ही गीत प्रार्थनायें हैं।

धार्मिक व्यक्ति वह है जिसने जगत का लीलामय रूप समझा और उसके साथ एक हो गया। तब बहुत से कवि, जिनको तुम कभी धार्मिक नहीं समझते, मेरे हिसाब से धार्मिक हो जायेंगे। बहुत से नर्तक, बहुत से संगीतज्ञ, बहुत से चित्रकार... मेरे हिसाब से सारे कलाकार परमात्मा के ज्यादा निकट हैं, बजाये तुम्हारे

तथाकथित तपस्वियों के, तुम्हारे तथाकथित मुनियों के, साधुओं के। क्योंकि तुम्हारे साधु प्रयोजन से चल रहे हैं। पूछो किसी साधु से कि उपवास क्यों कर रहे हो? तो वह कहता हैः मोक्ष जाना है। यह दुकान ही है। यह नया फैलाव हुआ सौदे का। पूछो किसी साधु से कि तुम सिर के बल क्यों खड़े हो? वह कहता हैः बैकुंठ जाना है, कि परमात्मा को प्रसन्न कर रहा हूं। परमात्मा पागल है कि तुम सिर के बल खड़े होओगे तो प्रसन्न होता है! अगर परमात्मा को सिर के बल ही खड़ा करना था तो तुम्हें सिर के बल ही खड़ा किया होता; इतनी बड़ी भूल तो न करता कि तुम्हें पैरों के बल खड़ा करता। अगर परमात्मा को उपवास में इतना ही रस था तो तुम्हें पेट ही क्यों दिया था? तुम्हारे पेट में पहले ही पत्थर भर दिये होते; न लगती भूख, न होता उपद्रव। अगर परमात्मा को तुम्हें उदास ही देखना था, तो हंसी की क्षमता क्यों दी थी? तो तुम्हारे होठों पर मुस्कुराहट आने का उपाय क्यों रचा था? अगर परमात्मा तुम्हें उदास ही जानना चाहता था तो तुम्हें उदास ही बनाया होता, तुम्हें उदासी में ही रंगा होता। तुम्हें मुर्दा ही पैदा किया होता। तुम्हें जिंदगी न दी होती और जिंदगी के सारे रंग न दिये होते और जिंदगी का इतना बड़ा इंद्रधनुष न फैलाया होता। न होते वृक्ष हरे, न खिलते फूल, न पक्षी गीत गाते।

लेकिन परमात्मा ने तुम्हें आनंद के लिए तत्पर किया है और तुम प्रयोजन के कारण परेशान हो। तुम कहते होः हर चीज में प्रयोजन होना चाहिए। माला भी फेरते हो तो आनंद से नहीं; नजर लगाये बैठे हो कि कितनी बार... एक हजार बार माला फिर जाये तो फिर परमात्मा प्रसन्न होगा!

एक घर में मैं मेहमान था। उन सज्जन ने सारा घर भर रखा है। किताबें ही किताबें, किताबें ही किताबें। वह राम-राम लिखते रहते हैं। बस उनका पूरा काम सुबह से शाम तक किताबें खराब करना... राम-राम, राम-राम। वह मुझसे कहने लगेः आप देखते हैं, इतना मैंने राम लिख डाला, करोड़ों राम लिख डाले हैं! इसका मेरा क्या फल होगा, आप मुझे कहिये।

मैंने कहाः फल! अगर कहीं नर्क है तो पड़ोगे नर्क में। उन्होंने कहाः नर्क में! आप मजाक करते हैं?

मैंने कहाः इतनी किताबें खराब कीं, बच्चों के काम आ जातीं, स्कूल में बंटवा देते। बच्चों में राम देख लेते, उनको किताबें दे देते, राम के काम आ जातीं किताबें। तुमने व्यर्थ ही खराब कर दीं। और अगर तुम्हें लिखने की ही धुन थी कि बिना लिखे रुक ही नहीं सकते थे तो कम-से-कम स्लेट-पट्टी पर लिखते रहते और मिटाते रहते। किताबें क्यों खराब कीं?

वह कहने लगेः आप पहले आदमी हैं जो इस तरह की बात कर रहे हैं। यहां तो मेरे घर में जो आता है वही कहता हैः "आहा! आप भी धन्यभागी हैं।" आपने संदेह पैदा कर दिया। जो भी आता है वह कहता है कि आप तो पुण्य-लोक जायेंगे, इतना राम लिख डाला!

मैंने उनसे कहा कि एक आदमी मरा, जिंदगी भर राम-राम ही करता रहा था। और धीरे भी नहीं करता था, जोर से करता था। जोर से ही नहीं करता था, लाउड-स्पीकर लगाकर करता था कि मोहल्ले-भर के लोगों को भी मुफ्त ही पुण्य मिलता रहे। ऐसे कई लोग हैं जो मुफ्त पुण्य देते हैं मोहल्ले वालों को; चाहे उनको सोना हो मगर वे कहते हैं राम-राम... ! वे कहते हैं अखंड कीर्तन हो रहा है। अखंड कीरंतन को वे अखंड कीर्तन कहते हैं।

वह आदमी मरा। संयोग की बात, उसके सामने ही एक और आदमी रहता था, जो बिल्कुल नास्तिक था, वह भी मरा। एक ही दिन मरे। धार्मिक ने तो समझा कि बेचारा जायेगा नर्क यह, मैं जाऊंगा स्वर्ग। और जब देवदूत लेने आये और उसको ले चले नर्क की तरफ तो उसने कहाः ठहरो भाई, तुमसे कुछ भूल हो रही है। नर्क उसको ले जाओ, जिसने कभी राम का नाम न लिया। मैं तो राम-राम ही जपता रहा।

उन्होंने कहाः हमसे कुछ भूल नहीं हो रही। यह कोई भारतीय सरकार का दफ्तर नहीं है कि भूल हो जाये। यह कोई सरकारी काम नहीं है, ईश्वरीय काम है, यहां भूल-चूक होती ही नहीं। तुमको नर्क भेजा है, उसको स्वर्ग।

उसको स्वर्ग! उसने कहाः निश्चित भूल है। पहले मुझे परमात्मा से मिलना है।

खैर दोनों परमात्मा के सामने मौजूद किये गये। नास्तिक की आंखों से तो आंसू बह रहे थे। वह तो भरोसा ही नहीं कर सकता था कि मुझे और स्वर्ग! और आस्तिक की आंखों से आग बरस रही थी कि मुझे और नर्क? और उसने जाते से ही कहा कि सुनते हैं, जिंदगी बिता दी चिल्ला-चिल्लाकर। अकेला ही नहीं चिल्लाया, मोहल्ले भर पर आवाज लगाई, लाउड-स्पीकर लगवाया, खर्चा भी किया, अखंड कीर्तन करता रहा--और इसका यह फल! मुझे नर्क क्यों भेजा जा रहा है?

परमात्मा ने कहा : इसीलिये कि तुमने जिंदगी-भर मुझे भी नहीं सोने दिया, अब तू स्वर्ग में रहेगा और लाउड-स्पीकर लगायेगा, झंझट खड़ी होगी। यहां देवी-देवताओं को सोने दे भैया। तू नर्क जा। वहां लगाना लाउड-स्पीकर। वहां तुझे जो करना हो करना।

"और इस नास्तिक को यहां क्यों बुलाया जा रहा है?"

उसने कहा : इससे मैं इसीलिये प्रसन्न हूं, तेरे कारण। तूने मुझे इतना सताया है कि मैं इस पर खुश हो गया कि इसने एक भी दफे मेरा नाम नहीं लिया, एक भी दफे परेशान नहीं किया तेरे कारण मैं इस पर खुश हो गया हूं।

तुम जब भी किसी काम में लगे हो, अगर उसमें परिणाम की आकांक्षा है तो वह काम सांसारिक हो गया, दुकानदारी हो गई, व्यवसाय हो गया।

मैं तुमसे कहता हूं : संसार लीला है। इसलिये मैं अपने संन्यासी को गंभीर होने को नहीं कह रहा हूं। उससे कह रहा हूं : जीवन को मौज से लो हलके-हलके, नाचते-नाचते, मुस्कुराते-मुस्कुराते। यही तुम्हारी प्रार्थना है, यही तुम्हारी उपासना है।

और तुम पूछते हो : "और यदि जीवन माया मात्र है तो इस जीवन की आवश्यकता ही क्या है?"

ठीक है, तर्क और गणित वाले विचार में ऐसा प्रश्न उठेगा ही। या तो होना चाहिए गंभीर मामला, तब तुम राजी हो। कोई महत प्रयोजन होना चाहिए। अगर कोई प्रयोजन नहीं है, तब सवाल उठता हैः तो फिर इसकी जरूरत ही क्या है?

उत्सव की तुम्हें कोई जरूरत ही दिखाई नहीं पड़ती! सहज आनंद की तुम्हें कोई अर्थवत्ता ही नहीं मालूम होती। कभी सुबह घूमने गये हो? और अगर कोई पूछ ले कि इसका प्रयोजन क्या है, क्यों जा रहे हो घूमने, कहां जा रहे हो? और तुम कहो कि सिर्फ घूमने जा रहे हैं, इसमें कहां जाने का क्या सवाल है, सिर्फ घूमने निकले हैं! और वह कहे, तो फिर निकले ही क्यों, उत्तर चाहिए! अगर या तो दफ्तर जा रहे हो, ठीक; दुकान जा रहे हो, ठीक; कारखाने जा रहे हो ठीक; पत्नी बीमार है, दवा लेने जा रहे हो, ठीक; कि नोन तेल लकड़ी के लिए जा रहे हो, ठीक--घूमने, तफरी के लिये! तुमने कोई लखनऊ समझ रखी है? यह पूना है, पुण्य की नगरी है, कहां जा रहे हो? यह कोई लखनऊ तो नहीं! तो फिर तुम्हें बहाने खोजने पड़ते हैं। तुम कहते हो कि स्वास्थ्य के लिये, कि मैं प्राकृतिक चिकित्सा में विश्वास करता हूं, कि मेरा तीर्थ है उरली कांचन, सेहत बनाने के लिए जा रहा हूं।

तब दूसरा आदमी राजी हो जाता है कि तब फिर ठीक है, तो जाओ। मगर काश तुम कहो कि बस घूमने के लिए घूम रहा हूं! यह सुबह, यह ताजी हवा, ये पक्षी, यह सूरज का उगना, यह फिर प्रभात, यह फिर एक

सुबह का आगमन... पर्याप्त है! ऐसे ही मजे में निकल पड़ा हूं! ऐसी मस्ती में! तो दूसरा आदमी पूछेगाः फिर निकले ही क्यों?

हमने जिंदगी को ऐसा गणित में कस लिया है कि गणित के बाहर हम कुछ भी नहीं होने देते! कुछ भी नहीं! हर चीज गणित के शिकंजे में कस गई है।

तो तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक है कि फिर माया क्यों? अगर मानते ही नहीं हो कि माया क्यों, तुम्हें उत्तर चाहिए ही चाहिए, तो यह रहा उत्तर--

दिखती पहले धूप रूप की,
दिखती फिर मटमैली काया!
दुहरी झलक दिखा कर अपनी
मोह-मुक्त कर देती माया!

देखा एक सुंदर स्त्री को, पड़ गये मोह में, प्रेम में। फिर एक दिन पाया कि वृद्ध हो गई, झुर्रियां पड़ गईं चेहरे पर, अब बड़ी विरक्ति होने लगी। पहले देखा दूर सुहावना दृश्य, फिर पास गये कुछ भी न पाया। दूर से देखा इंद्रधनुष; पास गये, मुट्ठी में कुछ भी न आया।

दिखती पहले धूप रूप की,
दिखती फिर मटमैली काया!
दुहरी झलक दिखा कर अपनी
मोह-मुक्त कर देती माया!

असंभाव्य भावी की आशा;
पूर्ति चरम शाश्वत अपूर्ति की;
ललक कलक में झलक दिखाती
अनासक्त आसक्तिमूर्ति की!
अंत सत्य को सुगम बनाती
हरि की अगम अछूती छाया!

मन में हरि, रसना पर शड्रस,
अधर-धरे मुसकान सुहानी;
हरि तक उसे नचाती लाती,
हरि की जिसने बात न मानी!
शकुन दिखा, हर अंधतनय को
हरि-माया ने खेल खिलाया!

संज्ञाहत हो या अनात्मरत,
आत्ममुग्ध या आत्मप्रवंचक;
पहुंचाया है हर झूठे को

माया ने झूठे के घर तक;
लग्न लगा कर, मोहमग्न को
मृगजल-जलनिधि पार कराया!

अपनी समझ, जिसे हर कोई
करता रहता मेरी-तेरी
वह अनेक जन-मन-विलासिनी
एक मात्र श्रीहरि की चेरी!
मैंने इस सहस्रारूपा को
राममयी, कह, शीश झुकाया!

अगर तुम कहते हो प्रयोजन चाहिए ही चाहिए... अगर मानो मेरी बात तो मत पूछो प्रयोजन, सब लीला है... मगर चित्त मानता ही न हो, गणित ने ऐसा शिकंजा कसा हो, तो फिर ऐसा समझो कि माया तुम्हें जगाने का एक उपाय है। माया तुम्हें चेताने का एक उपाय है।

दिखती पहले धूप रूप की,
दिखती फिर मटमैली काया!
दुहरी झलक दिखाकर अपनी
मोहमुक्त कर देती माया!

शायद हरि तक तुम सीधे जा भी नहीं सकते। पहले पड़ोगे किसी सुंदर स्त्री के प्रेम में, सुंदर पुरुष के प्रेम में। लेकिन जल्दी ही सौंदर्य तिरोहित हो जाता है। हाथ रिक्त, खाली रह जाते हैं।

ऐसे बार-बार चूक-चूक करके, भूल-भूल करके, एक दिन तुम्हें याद आती है कि अब उसी को प्रेम करें जो शाश्वत है; अब उसी को चाहें, जिसे चाह लेने से सब चाहें मिट जाती हैं; अब उसी को पा लें जिसे पा लेने से फिर कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता।

हरि तक उसे नचाती लाती,
हरि की जिसने बात न मानी!

तुम सीधे-सीधे न मानो तो माया तुम्हें मना देती है। भटको, टूटो, रोगग्रस्त होओ, हजार पीड़ाओं से भरो, सड़ो--सीधे नहीं मानते तो भटक-भटककर मानो, जागो!

लगन लगाकर मोहमग्न को
मृगजल-जलनिधि पार कराया!
मैंने इस सहस्रारूपा को
राममयी कह, शीश झुकाया!

लेकिन जो जानते हैं वे माया को भी नमस्कार करेंगे, यह भी उसी का खेल है। मैं तुमसे कहता हूंः माया को छोड़ना मत, यह भी उसी की छाया है। परमात्मा प्रिय है, उसकी छाया भी प्रिय है। इसलिए मैंने अपने संन्यासी को कहाः त्याग नहीं, संसार से पलायन नहीं। इसी छाया को अगर ठीक से समझ लोगे तो इसी छाया के माध्यम से तुम उसे समझ लोगे जिसकी यह छाया है।

पर फिर भी मैं तुमसे कहता हूंः हलके-हलके! गुरु-गंभीर न हो जाना। सदियों से गुरु-गंभीर धर्म ने मनुष्य की बड़ी हत्या की है। सारे मंदिर उदास हो गये; मस्जिदें, मंदिर, चर्च मरघटों जैसे हो गये।

त्यागी मत बनना। भोग में कहीं छिपा है भगवान, उसे वहीं तलाश करना। जब तुम भोजन करो तो कहीं स्वाद में उसे तलाश करना।

इसलिए तो अदभुत वचन कह सके उपनिषदः अन्नं ब्रह्म। यह कोई छोटे-मोटे लोगों ने नहीं कहा, छोटे-मोटे लोग तो अस्वाद सिखाते हैं। उपनिषद कह सकेः अन्नं ब्रह्म, अन्न ब्रह्म है। सब सौंदर्य उसकी ही झलक है; जैसे चांद आकाश में निकला और झील में उसकी झलक पड़ी। जब कोई स्त्री या कोई पुरुष तुम्हें सुंदर मालूम पड़ता है तब झील में तुमने चांद देखा। सूफी फकीर जुन्नेद जब भी किसी सुंदर स्त्री को देखता था, भाव-विभोर होकर उसकी आंख से आंसू बहने लग जाते। रास्तों पर खड़ा हो जाता था। अनेक बार उसके शिष्यों ने कहाः अच्छा नहीं मालूम होता, आप जैसा प्रसिद्ध पुरुष, आपके सैकड़ों शिष्य आप किसी सुंदर स्त्री को देखकर एकदम ठिठक कर खड़े हो जाते हैं!

जुन्नेद ने कहाः सुंदर स्त्री उसकी झलक है। उसकी आंख से आंसू बहने लगते थे, कृतकृत्य हो जाता था।

जुन्नेद मुझे जमता है। सुंदर स्त्री में भी उसकी झलक है, सुंदर पुरुष में भी उसकी झलक है। झलक मात्र ही है, इसलिए जल्दी ही खो जायेगी। चांद बना झील में, एक कंकड़ गिर जायेगा कि उपद्रव हो जायेगा, एक कंकड़ गिर जायेगा कि सब चांद खो जायेगा, सब झील में हलचल मच जायेगी।

देर नहीं है यहां, सब क्षणभंगुर है; मगर छाया तो उसी की है। माना कि झील में बना चांद जरा-से कंकड़ के गिरने से खो जाता है, मगर इससे भी क्या यह सिद्ध तो नहीं होता कि जो चांद झील में बन रहा है वह असली चांद की छवि नहीं है। झील में देखो चांद को और फिर तलाश में निकल जाओ असली चांद की। झील में देखो चांद को, फिर आकाश में खोजने लगो। संसार में देखो परमात्मा को, फिर आकाश में खोजने लगो। मगर संसार को छोड़कर भागने की कोई भी जरूरत नहीं है, झील को त्यागने की कोई भी जरूरत नहीं है। झील को जिसने त्याग दिया वह शायद आकाश की तरफ आंख भी न उठा पाये, कौन उसे याद दिलायेगा? कौन उसे बतायेगा कि आकाश में चांद निकला है? उसकी आंखें जमीन में गड़ी रहेंगी, और जमीन में प्रतिबिंब नहीं बनते, झील में प्रतिबिंब बनते हैं।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः राग की, रंग की, इस अपूर्व माया को छोड़कर मत भागना। भगोड़े मत बनना, जगोड़े बनो। जागो।

आखिरी सवालः आप हजारों लोगों को संन्यास क्यों दे रहे हो?

संन्यास का अर्थ जानते हो? संन्यास का अर्थ है--मेरा अर्थ--जीवन को जीने की कला। जीवन को सम्यक रूपेण जीना। लोग जीना भूल गये हैं, इसलिए हजारों लोगों को संन्यास दे रहा हूं।

लोग भूल ही गये हैं कि जीना कैसे। और जिन्होंने भुलाने में सहयोग दिया है उन्हें अब तक संन्यासी समझा जाता रहा है। इसलिए संन्यास नाम मैंने चुना, ताकि प्रायश्चित हो जाये। प्रायश्चित के निमित्त। मैं कुछ और नाम भी चुन सकता था, मैं कोई और वस्त्र भी चुन सकता था, लेकिन मैंने संन्यास ही नाम चुना और मैंने गैरिक वस्त्र ही चुने, क्योंकि गैरिक वस्त्रों पर और संन्यास पर बड़ी कालिख लग गई है। इनके कारण ही बहुत-से लोग जीवन का छंद भूल बैठे हैं, भगोड़े बन गये हैं। इसी सीढ़ी से भागे हैं, इसी सीढ़ी से वापिस लाना है। और

संन्यास के नाम पर जो कालिख लगी है उसको मिटा देना है। संन्यास को अब नाचता हुआ, आनंदमग्न रूप देना है। संन्यास को एक नया संस्कार देना है, एक नई संस्कृति देनी है।

अब जिसे मैं संन्यास कह रहा हूं उसका पुराने संन्यास से कुछ भी लेना-देना नहीं है, वह उसके ठीक विपरीत है। इसलिए अगर पुराने संन्यासी मुझसे नाराज हों तो तुम आश्चर्य न करना, स्वाभाविक है। उन्होंने तो कभी सोचा ही नहीं है कि ऐसा भी संन्यास हो सकता है। संन्यास, जो संसार में पैर जमाकर खड़ा हो; संन्यास, जो घर, परिवार, प्रिजयनों के विपरीत न हो। संन्यास के नाम पर कितने घर उजड़े हैं, तुम्हें पता है? लुटेरों ने इतने घर नहीं उजाड़े, हत्यारों ने इतनी स्त्रियों को विधवा नहीं किया है, दुष्टों ने इतनी माताओं को रोता नहीं छोड़ा है--जितना संन्यासियों ने। मगर अच्छे नाम के पीछे कुछ भी चले, छिप जाता है, नाम भर अच्छा हो। तो तुम रो भी नहीं सकते। कोई संन्यासी हो गया घर-द्वार छोड़कर, अब पत्नी रो भी नहीं सकती। देखते हो, कैसी तुमने गर्दन कस दी है लोगों की! पत्नी को लोग समझायेंगेः तू धन्यभागी है, कि तुझे ऐसा पति मिला जो संन्यासी हो गया! अब यह पत्नी आटा पीसेगी, कि चक्की चलायेगी, रोती रहेगी; मगर यह अपने आंसुओं को वाणी न दे सकेगी। यह किसी से कह भी न सकेगी और पतिदेव कभी अगर नगर में आयेंगे, संन्यस्त हो गये हैं अब, तो उनके चरण छुएगी और ऊपर-ऊपर मानेगी कि धन्यभागी हूं मैं और भीतर जानेगी अभागी। इसके बच्चे अनाथ हो गए। और कौन जाने कितनी स्त्रियां वेश्याएं न हो गई होंगी और कितने बच्चे भिखमंगे न हो गए होंगे, कितने बच्चे गैर-पढ़े-लिखे न रह गए होंगे, कितने बच्चों को दवा न मिली होगी और मर न गए होंगे! कितने मां-बाप बुढ़ापे में असहाय न हो गए होंगे, उनके हाथ की लकड़ी न छूट गई होगी।

तुम जरा देखो तो, अगर संन्यास के नाम पर हुआ जो अब तक का भगोड़ापन है, हजारों साल का, उसका हिसाब लगाया जाये तो हिटलर और तैमूरलंग और चंगीज खां और नादिरशाह और महमूद गजनवी, इन सबने जो भी अत्याचार ढाये, सबके इकट्ठे भी जोड़ लो तो उनका कुल जोड़ संन्यास के द्वारा हुए अत्याचारों के मुकाबले कुछ भी नहीं है।

मगर बात अच्छी है। झंडा संन्यास का है, उसके पीछे सब छिप जाता है, सब खून छिप जाते हैं।

मैं इस सारी कहानी को नया ढंग देना चाहता हूं। संन्यास को मैं पहली बार पृथ्वी के प्रेम में संलग्न करना चाहता हूं, क्योंकि मेरे लिये पृथ्वी और परमात्मा में भेद नहीं है, अभेद है। यह एक महत क्रांति है, जो घट रही है। पृथ्वी का संगीत खो गया है, आनंद खो गया है। जीवन की रसधार छिन्न-भिन्न हो गई है। तुम्हें ऐसी बातें सिखाई गई हैं जिनके कारण तुम ठीक से जी ही नहीं सकते। तुम्हें जीवन-विरोध सिखाया गया है, जीवन-निषेध सिखाया गया है। तुम्हें आत्मघाती वृत्तियों की निरंतर उपदेशना दी गई है। तुम नाच भूल गये हो। तुम गीत भूल गये हो। वीणा पड़ी है तुम्हारे हृदय की और तुम तार नहीं छेड़ते। संन्यास एक नई झंकार को जन्म देना है।

क्यों कस रहे हो तार को?
क्या जन्म देना है नई झंकार को?
कहीं पर कुछ शिथिल करते
और कर कसते कहीं;
नियति के कर कौन चालित
कर रहा, यदि तुम नहीं?
नियति धरती रही किसके हेतु
साज-सिंगार को?

क्यों कस रहे हो तार को?
क्या जन्म देना है नई झंकार को?

अवनि की तूंबी बनी है,
गगन के परदे लगे;
प्राण का है तार, जिसमें
नित्य नूतन स्वर जगे;
लिए बैठी गोद में यों
नियति सृष्टि-सितार को!
क्यों कस रहे हो तार को?
क्या जन्म देना है नई झंकार को?

विलंबित बेकल अंगुलियां
खोजती झंकार को;
नाद के हे सिंधु, अब तो
बिंदु की बौछार हो!
मिला दो स्वर्लोक में अब
सार और असार को!
क्यों कस रहे हो तार को!
क्या जन्म देना है नई झंकार को?

हां, निश्चय ही, जन्म देना है नई झंकार को। संन्यास तुम्हारे तारों का कसना है।

मिला दो स्वर्लोक में अब
सार और असार को!

पृथ्वी और परमात्मा को, देह और आत्मा को, सार और असार को मिला देना है। एक ही संगीत का अंग बना देना है। स्थूल वीणा पर सूक्ष्म संगीत उठता है, विरोध नहीं है। दोनों में तालमेल है। दोनों में एक का ही विस्तार है।

अवनि की तूंबी बनी है,
गगन के परदे लगे;
प्राण का है तार, जिसमें
नित्य नूतन स्वर जगे;
लिए बैठी गोद में यों
नियति सृष्टि-सितार को!
क्यों कस रहे हो तार को?
क्या जन्म देना है नई झंकार को?

प्रकृति लिए बैठी है सितार को अपनी गोदी में और तुम भूल गए बजाना। तुम्हें याद ही न रही। तुम्हारा तारों से संबंध ही छूट गया। तुम्हारी अंगुलियों की कला जाती रही। तुम्हारे पास पैर हैं, पैरों में छिपी नाच की क्षमता है, उसे जगाना है।

संन्यास इस जगत को फिर से एक उत्सव बनाने की कला है। इसलिए हजारों-हजारों को संन्यास दूंगा। रंग देना है सारी पृथ्वी को बसंत के इस रंग से। गैरिक रंग बसंत का रंग है। मधुमास लाना है पृथ्वी पर, इसलिये संन्यास दे रहा हूं।

पर याद रखना, भूलकर भी मेरे संन्यास को पुराने संन्यास से एक मत समझ लेना। यह बात ही और है। यह आयाम ही और है। मगर प्रवेश करोगे तो ही स्वाद पा सकोगे। अब तुमने पूछा है तो जरूर तुम्हारे मन में भी संन्यास लेने की कहीं-न-कहीं छिपी हुई कोई कामना होगी, नहीं तो पूछते ही क्यों? कहीं सुगबुगाता होगा कोई बीज टूटने को। कहीं आतुर हो गई होगी कोई बात। कोई तार तुम्हारे भीतर भी झनझना उठा होगा।

और जानने का एक ही उपाय हैः होना। संन्यास कोई ऐसी बात नहीं कि तुम बाहर-बाहर दर्शक की तरह खड़े होकर देखते रहो, पूछते रहो, हजारों लोगों को संन्यास मैं क्यों दे रहा हूं? जरा यह भी तो पूछो कि हजारों लोग संन्यास क्यों ले रहे हैं! जरूर हजारों लोगों के हृदय में कुछ बज उठा होगा। मैंने उनके तार कहीं छू दिये हैं।

आओ तुम भी पास! तुम भी वीणा लिये बैठे हो! तुम्हारे भी तार कसें। तुमसे भी संगीत जनमे। तुमसे भी नाद का जन्म हो। ओंकार प्रतीक्षा कर रहा है तुमसे भी बहने को। आओ बहायें ओंकार को, जगायें ओंकार को, ताकि तुम्हारी नियति पूरी हो सके।

वही व्यक्ति सम्यक रूपेण जीता है जो परमात्मा को जान लेता है और वही सम्यक रूपेण मरता है जो परमात्मा को जानकर मरता है।

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

सहज-योग और क्षण-बोध

पहला प्रश्नः सिद्ध सरहपा का सहज-योग और झेन का क्षण-बोध क्या अन्य हैं या अनन्य? और क्या सहज-योग समर्पण का ही दूसरा नाम नहीं है?

नरेन्द्र! जैसे एक बीज से वृक्ष पैदा हो अनेक शाखाओं वाला और उस पर अनंत फूल लगें, ऐसे ही एक बुद्ध के बीज से बड़ा बोधि-वृक्ष पैदा होता है--बहुत शाखायें, बहुत पत्ते, बहुत फूल, बहुत फल!

गौतम बुद्ध के जीवन में जो महाक्रांति घटी उसकी किरणें सभी दिशाओं में फैलीं। झेन भी उसी बोधि-वृक्ष पर लगा हुआ एक फूल है और सरहपा का सहज-योग भी। सरहपा बुद्ध का उतना ही ऋणी है जितना बोधिधर्म। बुद्ध के एक शिष्य से झेन की उत्पत्ति हुई; दूसरे शिष्य से, सरहपा से, सहज-योग की। पर दोनों में उस एक ही वीणावादक के स्वर गूंज रहे हैं। ऊपर-ऊपर भेद होगा, भीतर-भीतर अभेद है। एक ही राग गाया है, वाद्य अलग हो सकते हैं। किसी ने वही राग मुरली पर गाया है, और किसी ने वही राग वीणा पर छेड़ा है। वाद्य भिन्न हैं, होंगे ही। बोधिधर्म के पास एक तरह का व्यक्तित्व है, जिससे झेन का जन्म हुआ; सरहपा के पास दूसरे तरह का व्यक्तित्व है, जिससे सिद्धों के सहज-योग का जन्म हुआ।

जैसे चांद निकले, झीलों में भी उसका प्रतिबिंब बने, नदियों में भी, सागरों में भी, तालों-तलैयों में भी। एक ही चांद का प्रतिबिंब है, लेकिन प्रत्येक ताल-तलैया के जल का अपना रंग है। किसी का मटमैला है, किसी का स्वच्छ है, किसी का नीला है, किसी का स्फटिक मणि की भांति है, तो उतने भेद पड़ जायेंगे, पर वे भेद मौलिक नहीं हैं।

झेन का क्षण-बोध और सरहपा का सहज-योग एक ही प्रक्रिया के दो प्रयोग हैं। दोनों को ठीक से समझ लोगे तो अभेद दिखाई पड़ जायेगा। और सच तो यह है, अगर ठीक से समझोगे तो अभेद ही अभेद है। फिर बुद्ध के दो शिष्यों में ही नहीं, बुद्ध और महावीर में भी अभेद है; यद्यपि वे अलग-अलग परंपराओं के दीये हैं, मगर दीये कितने ही अलग कुम्हारों के बनाये हुए हों उनकी ज्योति तो एक ही होगी। और गहराई से समझोगे तो फिर बुद्ध, महावीर, मूसा, मुहम्मद, जरथुस्त्र, लाओत्सु इनमें भी अभेद पाओगे क्योंकि मिट्टी किसी देश की हो, दीये को बनाने वाले कारीगर अलग हों, तेल भिन्न-भिन्न भरे हों, बातियों का ढंग अलग-अलग हो मगर ज्योति तो एक ही होगी!

अंधेरे को तोड़ना उसका गुणधर्म होगा।

जैसे ही तुम्हारी गहराई बढ़ेगी वैसे-वैसे अभेद दिखाई पड़ेगा। भेद तो उथलेपन का लक्षण है। जब तक तुम्हें भेद दिखाई पड़े तब तक समझना कि अभी समझ नहीं आई, जब एक ही स्वर गूंजता हुआ मालूम होने लगे, एक ही ओंकार, फिर चाहे बुद्ध हों, चाहे महावीर, चाहे जरथुस्त्र, जरा भी भेद न दिखाई पड़े--शब्द भिन्न, ढंग भिन्न, लेकिन भीतर का नाद एक--तभी जानना समझ का जन्म हुआ। उस समझ को प्रज्ञा कहते हैं। वह समझ शास्त्रों से नहीं आती। शास्त्रों से आती होती तो दुनिया में धर्म इतने झगड़े खड़े न करते, इतने उपद्रव न होते। वह समझ भीतर शून्य-भाव हो तो आती है। वह समझ शून्य-भाव का ही स्वाद है, सुगंध है। ध्यान की गहराई में वह समझ पैदा होती है।

झेन कहता हैः क्षण-क्षण जीयो। इस क्षण में बीते हुए क्षणों की कोई छाया न पड़े। इस क्षण पर आने वाले क्षणों की भी छाया न पड़े, क्योंकि बीता हुआ क्षण अगर छाया मारेगा तो इस क्षण को बासा कर देगा। फिर तुम ताजे न जी सकोगे। फिर तुम्हारी जिंदगी में ऊब हो जायेगी। फिर पुनरुक्ति होगी। फिर तुम युवा न रहोगे; तुम समय के पहले वृद्ध हो जाओगे। फिर तुम किसी अर्थ में जिंदा न रहोगे; जिंदा दिखाई पड़ोगे, मगर मुर्दा होओगे, क्योंकि अतीत मुर्दा का नाम है। जो जा चुका और अब नहीं है, उसका बोझ तुम्हारे ऊपर नहीं होना चाहिए। जो क्षण बीत गया सो बीत गया। उसे बीत ही जाने दो। उसकी धूल इकट्ठी मत करो, नहीं तो चित्त का दर्पण धूल से भर गया तो फिर जो मौजूद है उसकी प्रतिछवि न बना सकेगा। और फिर तुम जो भी करोगे वह प्रतिक्रिया होगी। वह अतीत से आच्छादित होगी। फिर तुम जो भी करोगे उसमें चूक होगी, क्योंकि वह वर्तमान का उत्तर नहीं होगा उसमें। पूछा कुछ जायेगा, कहोगे कुछ। परिस्थिति कुछ होगी, प्रत्युत्तर कुछ होगा, क्योंकि प्रत्युत्तर आयेगा अतीत से। वे परिस्थितियां जा चुकी हैं। अब तो हर क्षण नई परिस्थिति है।

जैसे दर्पण के सामने से कोई गुजरा और दर्पण उसकी तस्वीर पकड़ ले, आदमी तो गया लेकिन तस्वीर पकड़ गई, फिर कोई और गुजरा उसकी भी तस्वीर पकड़ ले। ऐसे तस्वीर पकड़ता जाये--तो जल्दी ही वह घड़ी आ जायेगी कि दर्पण इतना तस्वीरों से भर जायेगा कि फिर नई तस्वीरें न बन सकेंगी और बनेंगी भी तो विकृत हो जायेंगी। दर्पण की खूबी यही हैः दर्पण झेन है। इसलिए झेन फकीरों ने दर्पण का खूब उदाहरण लिया है। वह उनका खास प्रतीक है। जो आया, दर्पण झलका देता है; जो गया, गया, दर्पण फिर खाली। फिर खाली का खाली। ताकि फिर जो सामने आयेगा, उसे पूरा झलका सके। ऐसे दर्पण की भांति जीने का नाम झेन है। और स्वभावतः जो इस तरह जीयेगा उसकी जिंदगी में बोझ नहीं होगा और चिंता भी नहीं। स्मृति का बोझ नहीं, भविष्य की चिंतायें नहीं। उसका क्षण बड़ा शुद्ध होगा। उसके क्षण में बड़ी सुगंध होगी। उसका क्षण ऐसे होगा जैसे इन वृक्षों का क्षण--हरा-भरा! उसका प्रतिपल अपूर्व निर्दोषिता से भरा होगा। उसकी जिंदगी में एक सुवास होगी। उसी सुवास का नाम संन्यास है। और ऐसी अवस्था का नाम ध्यान है। उस व्यक्ति को ध्यान करने बैठना नहीं पड़ेगा--वह ध्यान में ही उठेगा, ध्यान में ही बैठेगा, ध्यान में ही चलेगा, ध्यान में बोलेगा, ध्यान में चुप होगा, ध्यान में सोयेगा, ध्यान ही होगा उसका बिछौना और ध्यान ही होगी उसकी ओढ़नी। ध्यान ही होगा उसका छप्पर। ध्यान ही होगा उसका भोजन। ध्यान ही उसकी जीवन-चर्या होगी। ऐसा समाधिस्थ पुरुष बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है।

सरहपा का सहज-योग भी इसी बात को कहने का दूसरा ढंग है। सहज-योग का अर्थ होता है--कृत्रिम न होओ, स्वाभाविक रहो। अपने ऊपर आदर्श मत ओढ़ो, आदर्श पाखंड लाते हैं। आदर्शों के कारण विकृति पैदा होती है, क्योंकि कुछ तुम होते हो, कुछ तुम होने की चेष्टा करते हो, तनाव पैदा हो जाता है। फिर तुम जो हो वह दब जाता है, उसमें जो तुम होना चाहते हो। इसी का नाम पाखंड है।

सरहपा कहता हैः तुम जैसे हो वैसे ही जीयो। जरा सोचो, जरा इस पर ध्यान करो। तुम जैसे हो वैसे ही जीयो, जो परिणाम हो। धोखा न दो। अपने को अन्य मत बतलाओ। अगर झूठ बोलते हो तो कह दो कि मैं झूठा हूं और भाई मेरे, मुझसे सावधान रहना, मैं झूठ बोलता हूं। झूठ ही मेरी चर्या है। इसलिये कोई मेरा भरोसा न करे। कोई भरोसा करे तो उसकी जोखिम, वह जाने। मैं झूठ बोलता हूं।

जरा सोचते हो, ऐसा जो आदमी कह सके क्या वह सच्चा नहीं हो गया? इस कहने में ही सच्चा हो गया। इससे बड़ी और सचाई क्या होगी कि चोर आकर तुमसे कह जाये कि रात जरा सावधान रहना, कि मेरी नजर

तुम्हारी तिजोड़ी पर लगी है, कि मैं आदमी चोर हूं, कि मैं आदमी भला नहीं हूं, कि मैं लाख दोस्ती बनाऊं तुम सचेत रहना। ऐसा चोर चोर है? ऐसा चोर साधु हो गया!

इस चोर ने अपनी स्वाभाविकता को उदघोषित कर दिया। इस चोर ने अपनी निजता को प्रगट कर दिया। अब यह असाधु कैसे हो सकता है? इसका पाखंड न रहा।

फिर एक आदमी है, जो दावा तो सच बोलने का करता है और आड़ में झूठ बोलता है। जिनको भी झूठ बोलना है उन्हें सच बोलने का दावा करना होता है, नहीं तो उनका झूठ मानेगा कौन? इसलिये झूठ बोलने वाला बार-बार दोहराता है कि मैं सच कह रहा हूं, मैं बिल्कुल सच कह रहा हूं, मैं कसम खाकर कहता हूं कि सच कह रहा हूं। जब भी कोई आदमी बहुत कसम खाने लगे कि मैं सच कह रहा हूं तो सावधान हो जाना, क्योंकि यह झूठे का लक्षण है।

ईसाइयों का एक छोटा-सा समूह है, क्वेकर। वे अदालत में कसम नहीं खाते। उन पर कई मुकदमे चले हैं, सजायें काटीं उन्होंने, लेकिन अदालत में वे कसम नहीं खाते। अदालत में कसम खानी पड़ती है कि मैं शास्त्र को सामने रखकर या परमात्मा को साक्षी रखकर कसम खाता हूं कि झूठ न बोलूंगा। क्वेकर कहते हैं कि जो झूठ बोल सकता है वह ऐसी कसम भी खा सकता है, फिर भी झूठ बोलेगा। झूठ बोलने वाले को झूठी कसम खाने में अड़चन क्या है? बात तो ठीक कहते हैं कि जब झूठ ही बोलता है कोई तो उसकी कसम पर कैसे भरोसा करते हो? वह कसम भी झूठ खा लेगा। और वे यह भी कहते हैं चूंकि हम झूठ नहीं बोलते, इसलिये हम यह कसम कैसे खायें कि हम झूठ नहीं बोलेंगे। यह तो कसम खाने में हमने मान ही लिया कि हम झूठ बोलते थे, कि हम झूठ बोलते हैं, कि हम झूठ बोल सकते हैं और हम कसम खा रहे हैं कि झूठ नहीं बोलेंगे।

क्वेकर कसम नहीं खाते। यह बात प्रीतिकर है। कोई सच्चा आदमी कसम क्यों खाये? कसम का तो मतलब ही यह हो गया कि बिना कसम खाये जो बोलते हैं वह झूठ है। और फिर जो झूठ ही बोलता है उसे कसमों से क्या भेद पड़ेगा? याद रखना, जो आदमी बार-बार कहे कि मैं कसम खाता हूं, कि राम जी की दुहाई, कि गीता छू ले, कि बाइबिल पर हाथ रख दे, उससे तो सावधान ही हो जाना। सच्चा आदमी कसम क्यों खायेगा? सच्चा आदमी सच बोलता है; इसकी दुहाई नहीं देनी होती; इसको पुनरुक्त नहीं करना होता। लेकिन झूठे को खुद ही शक होता है। झूठे को भीतर लगा रहता है कि कौन मानेगा मेरी, चलो कुरान का सहारा ले लूं, कि बाइबिल का, कि गीता का, कि चलो राम को बीच में ले आऊं, कि कृष्ण को बीच में ले आऊं, अल्लाह को बीच में ले आऊं; शायद उनकी आड़ में काम बन जाये। बहुत कसमें खाकर वह आदमी अपने झूठ को चलाने का उपाय बना रहा है, झूठ के लिये रास्ता बना रहा है। कसम खाना कोई अच्छा लक्षण नहीं है। कसम झूठे का लक्षण है।

जो आदमी जैसा है वैसा ही अपने को घोषित कर दे, रत्ती-भर इंच-भर अन्यथा न करे, इसका नाम है सहज-योग। तुम थोड़ा ध्यान करो इस बात पर। इस आदमी के जीवन में कोई जटिलता न रह जायेगी। जटिलता का कोई कारण ही न रहा। झूठ जटिलता पैदा करवाता है। और झूठ से मेरा मतलब बोलने वाले झूठ से ही नहीं है, लोग झूठ जीते भी हैं। लोग मुखौटे लगाये हुए हैं। मुखौटे के पीछे कुछ और है। मुंह में राम, बगल में छुरी है। मुखौटा बड़ा प्यारा लगा लेते हैं। मुखौटे तो बाजार में मिलते हैं। तुम जो चाहो वह मुखौटा लगा लो, असली चेहरा पीछे छिप जाता है। जो बड़े कूटनीतिज्ञ होते हैं, उनको देखा, वे दिन में भी रात में भी काला चश्मा चढ़ाये रखते हैं, ताकि उनकी असली आंख दिखाई न पड़े। काला चश्मा रात में भी कोई आदमी चढ़ाये हो, सावधान हो जाना, क्योंकि काला चश्मा चढ़ाने वाला आदमी बेईमान है। वह यह खबर दे रहा है कि वह अपनी असली आंख तुम्हें नहीं दिखाना चाहता। और आंखें अकसर कह देती हैं जो जबान नहीं कह पाती। तो वह आंख को ओट में

किये हुए है। बेईमान आदमी आंख में आंख डालकर नहीं देखता, यहां-वहां देखता है। उसे डर लगता है कि आंख कहीं कह ही न दे। आंख कह देती है।

अब तो वैज्ञानिकों ने ऐसे उपाय खोजे हैं कि तुम चकित हो जाओगे। जैसे एक आदमी कहता है कि मुझे स्त्रियों में कोई रस नहीं है, मैं तो ब्रह्मचारी हूं, मुझे स्त्रियों में कोई भाव ही नहीं उठता। अब वैज्ञानिकों ने उपाय खोजे हैं। एक दस तस्वीरें उसे पकड़ा देते हैं, उनमें एक तस्वीर कार की है, एक मकान की है, एक नदी की है, पहाड़ की है; फिर एक तस्वीर आती है नग्न स्त्री की और पूरे वक्त उस आदमी की आंख यंत्र से जांची जा रही है। यंत्र उसकी आंख की तस्वीरें ले रहा है जैसे ही नग्न स्त्री पर आंख आती है, आंख के सामने नग्न स्त्री की तस्वीर आती है, उस आंदमी की आंखें एकदम फैल जाती हैं; जो कहता है कि मुझे कोई रस नहीं है, उसकी पुतलियां बड़ी हो जाती हैं। तुमने देखा न, जब तुम धूप में जाते हो पुतलियां छोटी हो जाती हैं, और जब तुम छाया में आते हो पुतलियां बड़ी हो जाती हैं। तुम आईने में देख सकते हो। धूप में से आकर एकदम आईने के सामने खड़े हो जाओ, तुम पाओगे तुम्हारी पुतली बड़ी छोटी है, फिर धीरे-धीरे बड़ी होगी, फिर बड़ी होगी। जैसे अंधेरा बढ़ेगा वैसे बड़ी होगी। मतलब यह है कि जब रोशनी ज्यादा होती है, तो पुतली छोटी हो जाती हैं; क्योंकि उतनी रोशनी भीतर लेना उचित नहीं है, घातक है। और जब अंधेरा होता है तो पुतली बड़ी हो जाती है, क्योंकि अंधेरा काफी है, पुतली बड़ी होगी तो तुम देख पाओगे। जैसे कैमरे से कोई तस्वीर उतारता है, अंधेरे में उतारता है तो लैंस को ज्यादा देर खुली रखता है; रोशनी में उतारता है तो कम देर।

जब नग्न स्त्री की तस्वीर तुम्हारे सामने आती है तुम देखने को इतने उत्सुक हो जाते हो कि अनजाने में तुम्हारी पुतली बड़ी हो जाती है। तुम चाहते हो कि पूरा-का-पूरा हड़प जाओ। अब लाख तुम कहते रहो कि तुम ब्रह्मचारी हो, मगर आंख बता देगी कि तुम हो या नहीं। तुम्हारे कहने से कुछ भी न होगा। इस छोटी-सी कसौटी पर तुम्हारे कितने साधु और कितने ब्रह्मचारी उतर पायेंगे और मजा ऐसा है कि इस आंख पर तुम्हारा कोई बस नहीं है। पुतली तुम्हारे नियंत्रण में नहीं है कि तुम जब चाहो बड़ा कर लो जब चाहो छोटा कर लो। इसलिये धोखा नहीं दे सकते। जबान तुम्हारे नियंत्रण में है, तुम कह सकते हो मैं ब्रह्मचारी हूं लेकिन पुतली पर तुम्हारा कोई बस नहीं है। पुतली तुम्हारी इच्छा की सीमा के बाहर है। तुम जब चाहो तब छोटी जब चाहो बड़ी, ऐसा नहीं कर सकते। वह तो तुम्हारे भावावेग से चलती है। और भावावेग उठा कि तत्क्षण पुतली बड़ी हो जायेगी।

इसलिये तो तुम स्त्रियों को घूर-घूरकर देखते हो। हमारा शब्द "लुच्चा" बहुत अच्छा है। "लुच्चा" का मतलब होता है घूर-घूरकर देखने वाला। लुच्चा शब्द बनता है लोचन से, आंख से। आलोचक शब्द भी उसी से बनता है। वह भी घूर-घूरकर देखता है, इसलिये उसको आलोचक कहते हैं। लुच्चा भी घूर-घूरकर देखता है इसलिये उसको लुच्चा कहते हैं। लेकिन घूर-घूरकर देखने... तुम चाहो तो बचा भी सकते हो, तुम अपनी गर्दन मोड़ लो, सुंदर स्त्री पास से जा रही है, तुम गर्दन मोड़ लो, मगर गर्दन मोड़ने से कुछ न होगा, पुतली तो कह जायेगी, पुतली तो बता जायेगी। पुतली तो खबर दे देगी।

बेईमान आदमी आंख-से-आंख नहीं मिलाता, इधर-उधर देखता है, नीचे-ऊपर देखता है, कहीं-कहीं देखता है। बात करता है कहीं, देखता कहीं है। और जो बड़े बेईमान हैं, राजनीतिज्ञ हैं, कूटनीतिज्ञ हैं, वे काला चश्मा चढ़ा लेते हैं कि झंझट ही न रही। वे तो तुम्हारी आंख देखते रहेंगे और तुम्हें उनकी आंख देखने का उपाय न रहा, तो पता न चल सकेगा कि उनकी असलियत क्या है। वे जो कहेंगे उसी पर भरोसा करना होगा।

सहज-योग का अर्थ होता हैः मत करो जटिल। मत बनो झूठ। क्योंकि तुम जितने झूठ हो जाओगे उतने ही दुखी हो जाओगे। झूठ दुख लाता है, क्योंकि झूठ के कारण तुम्हारा संबंध सत्य से छूटने लगता है, टूटने लगता है।

यह अस्तित्व सत्य है। इसके साथ सत्य हो जाओ तो तुम्हारा संगीत जुड़ जाये, तो तुम्हारी सरगम बैठ जाये। तुम इसके साथ सत्य हो जाओ तो ही तुम्हारा छंद बैठेगा और तुम्हारे जीवन में नृत्य होगा, उत्सव होगा। इसके साथ तुम सत्य हो जाओ तो इसके साथ लीन हो जाओगे। और उसी लीनता में समाधि है। और अगर तुम झूठ रहे तो तुम अलग-थलग रहोगे।

अस्तित्व का झूठ से कोई मिलन नहीं हो सकता, क्योंकि झूठ है ही नहीं। जो है ही नहीं, उससे उसका कैसे मिलन हो जो है? दोनों में कोई तालमेल नहीं हो सकता। है का मिलन है से होगा। नहीं है का मिलन नहीं है से होगा। इसलिये जो आदमी एक झूठ बोलता है, उसे फिर हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। अब एक झूठ को बचाने के लिए दूसरा झूठ बोलो, क्योंकि झूठ से सिर्फ झूठ ही बच सकता है। झूठ ही झूठ की सुरक्षा कर सकता है। फिर दूसरे झूठ के लिए और दस झूठ बोलो और बोलते चले जाओ। कभी तुमने ख्याल किया, एक झूठ बोलकर तुम कितनी मुश्किल में पड़ गये हो! फिर चौबीस घंटे ख्याल रखना पड़ता है कि वह एक झूठ बोले हैं उसको बचाये रखना है, कहीं भूल-चूक से निकल न जाये। और निकल ही जायेगा। कितना बचाओगे? कब तक बचाओगे? दिन में न निकलेगा तो रात निकल जायेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात नींद में एकदम बोलने लगाः कमला! कमला! पत्नी एकदम चौंककर बैठ गई। पत्नियां तो दिन और रात होश में रहती हैं। उसने सुना, कमला! संदेह तो उसे हो ही रहा था। संदेह तो पत्नियों को रहता ही है; उसके होने की कोई जरूरत ही नहीं होती। ... तो अब इस चुड़ैल का नाम भी पता चल गया--कमला! उसी वक्त हिलाकर मुल्ला को उठाया, बोलीः यह कमला कौन है? मुल्ला भी सजग हो गया। पति भी सजग रहते हैं। जैसे स्त्रियां संदेह से भरी रहती हैं, ऐसे पति सजग रहते हैं। और जिसकी स्त्री जितने ज्यादा संदेह से भरी रहती है, वह पति उतना ही ज्यादा सजग रहता है, नींद तक में होश रखता है। समझ गया कि भूल हो गई।

उसने कहा कि यह कमला कोई नहीं है, घुड़-दौड़ होने वाली है, उसमें एक घोड़ी का नाम है।

खैर किसी तरह बात रफा-दफा हो गई, दोनों सो गये। लेकिन इतनी आसानी से कोई पत्नी राजी तो होती नहीं कि इतने जल्दी भरोसा कर ले। दूसरे दिन मुल्ला जब दफ्तर से वापिस लौटा तो उसने कहा कि उस घोड़ी का फोन आया था, मुल्ला को पसीना छूट गया, पकड़े गये! फोन वगैरह आया नहीं था। लेकिन इतना कहने में ही पकड़े गये।

झूठ बोलोगे, ज्यादा देर नहीं चल पायेगा। चल ही नहीं सकता। झूठ के पैर नहीं होते। झूठ को चलना भी पड़ता है तो सच के पैर उधार लेने पड़ते हैं। और सच के पैर और झूठ की देह, इन दोनों के कारण तुम्हारे जीवन में एक द्वंद्व पैदा हो जाता है। और एक झूठ नहीं हजार झूठ हैं, इसलिये हजार द्वंद्व पैदा हो जाते हैं। इन्हीं द्वंद्वों में ग्रस्त व्यक्ति नर्क में जीता है।

सहज-योग का अर्थ होता हैः छोड़ो ये द्वंद्व, छोड़ो ये जाल। तुम जैसे हो वैसे अपने को स्वीकार कर लो। मत दिखाओ वैसा, जैसे कि तुम नहीं हो। जाने दो सब पाखंड। अगर कोई व्यक्ति अपनी संपूर्ण नग्नता में अपने को स्वीकार कर ले तो क्या हो? क्रांति घट जाती है। उस स्वीकार के साथ ही झेन की प्रक्रिया घट जाती है।

झेन कहता हैः अतीत की मत सोचो, लेकिन जो आदमी नग्न रूप से अपने स्वभाव को स्वीकार करता है वह अतीत की सोचेगा ही नहीं। अतीत का लेना-देना क्या है? जो गया सो गया। जो गया सो झूठ हो गया। और जिस आदमी को अपनी सहजता स्वीकार है और जिसे अपनी सहजता से कोई विरोध नहीं है, वह भविष्य की

योजनायें नहीं बनाता कि कल ऐसा हो जाऊं, परसों वैसा हो जाऊं। वह तो जैसा है वैसा ही आनंदित होता है। उसका भविष्य भी खो जाता है।

सहज-योग का अर्थ होता हैः तुम जैसे हो, तुम्हें अंगीकार है। परमात्मा ने तुम्हें जैसा बनाया है इसमें तुम रत्ती-भर हेर-फेर नहीं करना चाहते हो। तुम परमात्मा से अपने को ज्यादा बुद्धिमान सिद्ध नहीं करना चाहते हो। परमात्मा ने तुम्हें जैसा बनाया है उसने तुम्हें जैसा रंगा, वही तुम्हारा रंग है, वही तुम्हारा ढंग है; तुम उससे अन्यथा होने की न आकांक्षा करते हो न सपना देखते हो।

सहज-योग परमात्मा के प्रति अनुग्रह का बोध है, कि तूने जैसा मुझे बनाया ठीक ही बनाया होगा और यहीं से तुम्हें दूसरी बात भी समझ में आ जायेगी। पूछा हैः क्या सहज-योग समर्पण का ही दूसरा नाम नहीं है? निश्चय ही नरेन्द्र, सहज-योग समर्पण का ही दूसरा नाम है। जिस आदमी ने अपनी सहजता को अंगीकार किया, उसने अपने को परमात्मा को समर्पित कर दिया। समर्पित करेगा तो ही सहज हो सकेगा। असहज होना पड़ता है, क्योंकि हम अपने ही पैरों पर खड़े होने की कोशिश कर रहे हैं। जब वही हमें लिये जा रहा है, जहां उसकी मर्जी, जैसी उसकी मर्जी तो फिर क्या चिंता रही, क्या बोझ रहा? फिर रख दिया उतार कर बोझ। फिर बह चले धार में। जब अपनी कोई इच्छा नहीं रह जाती तो प्रार्थना होती है।

नहीं अपने किसी मकसद से खाली कोई भी सजदा।
खुदा के नाम से करता है इन्सां बन्दगी अपनी।।

तुम्हारी तो सब प्रार्थनायें झूठी हैं। नाम तो तुम ईश्वर का लेते हो लेकिन बंदगी तुम अपनी ही करते हो क्योंकि मांग तो तुम अपनी ही सामने रखते हो। तुम्हारी मांग महत्वपूर्ण है। परमात्मा का तुम उपयोग करना चाहते हो, शोषण करना चाहते हो, मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में, जाकर तुमने जो प्रार्थना की है, अगर उस प्रार्थना में तुमने कुछ भी मांगा है, कुछ भी--मोक्ष मांगा, धन मांगा, पद मांगा, कुछ भी मांगा--तो तुमने परमात्मा को नंबर दो कर दिया। तुम्हारी मांग परमात्मा से बड़ी हो गई। तुम परमात्मा का शोषण करने गये हो। तुम्हारी प्रार्थना प्रार्थना नहीं है, चालबाजी है, बेईमानी है, कूटनीति हैं। नहीं अपने किसी मकसद से खाली कोई भी सजदा! और अगर लोगों की प्रार्थनायें देखो, उनके सजदे देखो तो तुम पाओगे सब स्वार्थ से भरे हैं। खुदा के नाम से करता है इन्सां बन्दगी अपनी। ईश्वर का नाम लेता है, चरण परमात्मा के छूता है, लेकिन अगर गौर से देखो तो अपने ही चरण छू रहा है। सिर परमात्मा को झुकाता है, लेकिन मतलब है तो सिर अपने को ही झुका रहा है। सच तो यह है, परमात्मा का सिर अपने चरणों में झुकाना चाहता है। कहता हैः मैं जैसा कहूं वैसा करो। मेरी मर्जी से भिन्न न हो। मेरी मर्जी तुझसे ऊपर, तो यह परमात्मा का सिर अपने चरणों में झुका लेना हुआ। और इसको तुम प्रार्थना कहते हो? इसको तुम सजदा कहते हो? इसको तुम नमाज कहते हो?

बशर के दिल में न पड़ता जो आरजू का दाग।
खुदा गवाह कि अनमोल यह नगीं होता।।

बस एक ही कमी है आदमी के हीरे होने में, नहीं तो एक नगीना होता--एक बहुमूल्य नगीना होता! जरा-सी चूक पड़ गई है, दाग पड़ गया है।

देखते हो, हीरे में जरा-सा दाग हो, कीमत गिर जाती है। छोटा-सा हीरा भी बेदाग हो तो बड़े हीरे से कीमती होता है, जो दाग वाला है। दाग क्या पड़ गया आदमी में, कि हीरा न रहा। बशर के दिल में न पड़ता जो आरजू का दाग! ... आदमी के दिल में अगर आकांक्षा का, इच्छा का, वासना का दाग न पड़ता। ... खुदा गवाह कि अनमोल यह नगीं होता। फिर बस तुम्हारे मूल्य की कोई सीमा नहीं आंकी जा सकती।

सहज-योग का अर्थ हैः नहीं कुछ मांगेंगे, चुपचाप जीयेंगे। जो मिलेगा उसमें तृप्त, संतुष्ट। जो नहीं मिलेगा, जानेंगे कि उसके न मिलने में ही हमारा हित होगा। ऐसा है सहज-योग का भाव-जगत! मिलेगा तो मानेंगे, परमात्मा की इच्छा है तो जरूर हमारा हित होगा; नहीं मिलेगा तो भी मानेंगे परमात्मा की इच्छा है तो न मिलने में ही हमारा हित होगा। फूल मिलेगा तो स्वीकार, कांटा मिलेगा तो स्वीकार। स्वीकृति में भेद न पड़ेगा। सफलता हो कि असफलता, सम्मान हो कि अपमान, लेकिन भीतर की प्रार्थना और भीतर का अनुग्रह भाव सतत एक-सा बहता रहेगा। इस प्रवाह का नाम है सहज-योग।

क्या-क्या दुआएं मांगते हैं सब मगर असर।

अपनी यही दुआ है, कोई मुद्दआ न हो।।

एक ही प्रार्थना करने जैसी है कि हे प्रभु, ऐसी प्रार्थना करनी आ जाये जिसमें कोई आकांक्षा न हो।

क्या-क्या दुआएं मांगते हैं सब मगर असर।

अपनी यही दुआ है, कोई मुद्दआ न हो।।

बस ऐसी दुआ करनी आ जाये, ऐसी प्रार्थना करनी आ जाये जिसमें कोई अभीप्सा नहीं है, आकांक्षा नहीं है।

सहज-योग समर्पण है--समग्र समर्पण।

जीवन के मेरे प्रिय,
अंधकार हर लो!
नेत्रों के सम्मुख जो
अंतहीन फैला है,
कुहरे-सा तिमिर-वर्ण
अंबर मटमैला है!
हे असीम, बाहों से
मुझको तुम भर लो!
आओ तुम किरणों के
रथ पर चढ़ उज्जवल;
दिशि-दिशि में छलका दो
अरुणा प्रभा कोमल!
विहगों के कंठ मधुर
मेरे तुम स्वर लो!
जीवन के मेरे प्रिय,
अंधकार हर लो!

सहज भाव से परमात्मा को पुकारना। बिना किसी क्षुद्र आकांक्षा से भरे, चुपचाप जीवन में बहे जाना। तैरना नहीं, संघर्ष नहीं करना, नदी जहां ले जाये उसी तरफ चले चलना, क्योंकि सभी नदियां अंततः सागर पहुंच जाती हैं। अगर कोई चुपचाप बहता चले तो परमात्मा मिलना सुनिश्चित है। परमात्मा मिला ही हुआ है, तुम बहो कि अभी अनुभव में आ जाये। तुम जरा विश्राम करो, मगर तुम बड़े जद्दो-जहद में लगे हो। तुम बड़ी

दौड़-धूप कर रहे हो, आपाधापी में पड़े हो। तुम्हारी आपाधापी और दौड़-धूप के कारण जो तुम्हारे भीतर बैठा है वह दिखाई भी नहीं पड़ता। तुम इतने उलझे हो, इतने व्यस्त हो कि उसे देखो ही कैसे जो मौजूद ही है!

परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है। इसलिये परमात्मा को पाना नहीं है। पाने की दौड़ छोड़कर जरा बैठो और परमात्मा का अनुभव शुरू हो जाता है।

उड़ चल अब दूर कहीं, हंसावर प्राणों के!
अगम गगन दूर नहीं, हंसावर प्राणों के।

मिट्टी ने गोद खिला-खिला तुझे बड़ा किया,
दिया दिशा-ज्ञान और पांवों पर खड़ा किया,
शाश्वत मत नीड़ बना, यायावर प्राणों के!
धरती का सदय हृदय अंतरिक्ष-वासी है,
जिसका तू अंश, धरा उसकी ही दासी है!
मिट्टी की माया तज, मायावर प्राणों के!

सम्मुख गन्तव्य-धाम, गति से तू मुंह न मोड़!
उड़ता चल अम्बर में, धरती पर छांह छोड़!
छाया की बांह न गह, छायाधर प्राणों के!

हम शाश्वत नीड़ बनाने में लग जाते हैं, वहीं भूल हो जाती है। जीवन प्रवाह है। शाश्वत मत नीड़ बना, यायावर प्राणों के! जीवन एक सरित-प्रवाह है और हम जगह-जगह पकड़ लेते हैं, जोर से पकड़ लेते हैं, आसक्त हो जाते हैं। नीड़ बनाने में लग जाते हैं--शाश्वत नीड़! जैसे यहां सदा रहना है!

सहज-योग कहता हैः यहां कुछ भी सदा रहने को नहीं; सभी बहा जा रहा है, प्रवाहमान है। सब क्षण-भंगुर है। पकड़ो मत, जीयो। और जो चला जाये उसे जाने दो, ताकि जो नया आ रहा है उसके लिये तुम्हारा हृदय खाली हो, खुला हो। बीते कलों का हिसाब मत रखो और आनेवाले कलों की चिंता मत करो। आज जो आया है, इसे नाचो, इसे गाओ, इसे गुनगुनाओ। और इसी गीत में प्रार्थना पूरी हो जाती है। इसी गीत में समर्पण पूरा हो जाता है। इसी गीत में सिद्धों का सहज-योग सध गया, झेन फकीरों का क्षण-बोध सध गया। ये एक ही घटना के दो पहलू हैं।

दूसरा प्रश्नः उस दिन भारत के प्रसंग में आपने कहा कि इस देश की बुनियादी समस्या उसके अंधविश्वास हैं और यह कि यह देश समय से ड.ेढ हजार वर्ष पीछे है। क्या बताने की कृपा करेंगे कि विश्वास और अंधविश्वास की परख क्या है, और क्या आज के विश्वास कल अंधविश्वास नहीं हो जायेंगे? क्या यह भी बताने की अनुकंपा करेंगे कि कोई व्यक्ति या जनसमूह समसामयिक होने के लिए, आधुनिक रहने के लिए क्या करे?

आनंद मैत्रेय, जैसे प्रत्येक व्यक्ति जन्मता है और मरता है, उसी तरह प्रत्येक विश्वास एक दिन अंधविश्वास बन जाता है। अंधविश्वास विश्वास की लाश है, जिसमें से प्राणों का हंसा उड़ गया।

तुमने अपनी मां को कितना प्रेम किया था, फिर एक दिन मां चल बसी, अब उसकी लाश थोड़े ही रखे बैठे रहोगे। लाश रखोगे तो जीना मुश्किल हो जायेगा। सारा घर बदबू से भर जायेगा। और ऐसी लाशें इकट्ठी करते गये, एक दिन पिता चल बसेंगे, ऐसी लाशें इकट्ठी करते गये तो घर में जीना असंभव हो जायेगा। मुर्दे इतने हो जायेंगे कि जिंदा रहेंगे कहां, जिंदा रहेंगे कैसे? इसलिए मां बड़ी प्यारी थी, लेकिन जब चल बसी तो तुम फिर देर नहीं करते अर्थी बांधने में। और तुम अगर देर करो भी तो मोहल्ले वाले जल्दी से बांधने लगते हैं। आखिर उनको भी तो जीना है। तुम रोने-धोने में लगे हो, मोहल्ले के लोग जल्दी से बांस, लकड़ी इकट्ठा करने लगते हैं; क्योंकि उनके घर जब कोई मरता है, तब तुम बांस लकड़ी इकट्ठा कर देते हो, यह पारस्परिक लेन-देन है। देर नहीं लगती, कोई मरा कि लाश उठी। पल-पल घर में लाश रखना कठिन हो जाता है।

और ऐसा नहीं कि तुम्हें मां से प्रेम न था; खूब था प्रेम, छाती पीटकर रो रहे हो, मगर फिर भी रोते रहोगे और ले चले हंडिया लटका कर। रोते रहोगे और चढ़ा दोगे जाकर अर्थी पर। रोते रहोगे और आग लगा दोगे। यह करना ही होगा।

ऐसी ही अवस्था विश्वास और अंधविश्वास की है। विश्वास--जीवंत जब होता है सत्य। और जब सत्य के भीतर से प्राण तो उड़ जाते हैं, सिर्फ क्रिया-कांड रह जाता है, मगर तुम उसी क्रिया-कांड को ढोते रहते हो--तब अंधविश्वास। आंखवाला विश्वास तो जीवंत होता है, अंधा विश्वास मुर्दा होता है। जैसे किसी ने बुद्ध को देखा, उस अपूर्व ज्योति को, और कोई झुक गया चरणों में! यह विश्वास। झुकने की न तो योजना बनाई थी, न झुकने का कोई इरादा लेकर आये थे, लेकिन झुक गये, झुक जाना पड़ा। ज्योति ऐसी थी, प्रभा ऐसी थी! रुक न सके। पता ही न चला कब झुक गये। यह तो एक जीवंत घटना है। और इसमें रस है और इसमें गहरे अभिप्राय हैं। इसमें भाव की धड़कन है। इसमें सांस चल रही है। जब कोई बुद्ध को देखकर, उन आंखों में झांककर, उन चरणों की महिमा में सिर रख दिया है--अपने अनुभव से, अपनी प्रतीति से, अपने साक्षात से--तब बात और है। फिर यह आदमी तो जा चुका, बुद्ध भी जा चुके, लेकिन इसके बच्चे बुद्ध की प्रतिमा के सामने झुकते हैं, क्योंकि बाप झुका था बुद्ध के सामने, फिर बच्चों के बच्चे भी झुकते रहेंगे, झुकते रहेंगे। हजारों वर्ष बीत जाते हैं। अब बुद्ध की प्रतिमा रखी है और लोग सिर झुका रहे हैं। भीतर झुकने का कोई भाव नहीं है। हो भी क्या, पत्थर के सामने कोई झुकने का भाव होता है? न पत्थर में कोई महिमा है, न पत्थर में कोई प्राण है। वह तो बुद्ध की महिमा थी, वह तो बुद्ध का अवतरण था, जिसके सामने तुम्हारा कोई पुरखा झुका था। मगर तुम क्यों झुक रहे हो? तुम कहते हो कि हमारे-बाप दादे झुकते रहे, हम भी झुकेंगे। तो झुकते रहो। मगर तुम्हारा झुकना अंधविश्वास है।

अब समझने की बात यह है कि हर अंधविश्वास की शुरुआत में विश्वास होता है। नहीं तो पैदा ही कैसे होगा? कोई नानक की मस्ती से मस्त हो गया। सुना नानक का गीत, डोल गया, नाच गया मन, बहार छा गई, बसंत आ गया--उस बसंत में झुक जाना ही पड़ा। नानक जैसा फूल खिले और कोई झुके न, अभागा है, अंधा है; पत्थर है उसके भीतर, हृदय नहीं; निष्प्राण है। नानक जैसा फूल खिले और तुम्हारी नासापुटों में श्वास सुगंध से न भर जाये, यह संभव कैसे है? यह संभव तभी हो सकता है जब तुम्हारे पास कोई संवेदनशीलता ही न हो। अगर थोड़ी भी संवेदनशीलता है, थोड़ा भी मनुष्य तुम्हारे भीतर जाग्रत है, जीवित है, तो झुकोगे ही। लेकिन फिर सदियां बीत गईं, अब नानक नहीं हैं, नानक की मूर्ति भी नहीं है, लेकिन कोई गुरुग्रंथ के सामने झुक रहा है।

मैं एक पंजाबी घर में मेहमान था। सुबह-सुबह उठकर स्नान करने जा रहा था तो बीच के कमरे से जिससे मुझे गुजरना पड़ा, वहां देखकर मैं हैरान हुआः गुरुग्रंथ के लिये उन्होंने बड़ा एक सिंहासन बनाया हुआ था।

नानक को हृदय के सिंहासन पर बैठाया था, वह तो समझ में आता है, मगर अब किताब को सिंहासन पर बिठा दिया है। वहां तक भी बात ठीक थी कि चलो तुम्हारा आदर है; चौंका मैं इसलिए कि उसी सिंहासन के पास एक लोटे में जल भरा रखा है--चांदी का लोटा--और दतौन भी रखी है। मैंने पूछा कि यह क्या है, यह किसलिए रखी है? तो उन्होंने कहाः गुरुग्रंथ साहब के लिए दतौन। अब हद हो गई। तुमने नानक के लिए जाकर लोटे में दतौन का पानी ले गये होते, चांदी का सोने का लोटा ले गये होते, समझ में आती बात; अब किताब के लिये दतौन रख रहे हो! तुम होश में हो कि तुम पागल हो गये हो? मगर इसी तरह होता है।

मैंने सुना, एक आदमी मरा। उसकी आदत थी कि भोजन के बाद रोज उठकर अपने दांत साफ करता था एक लकड़ी के टुकड़े से। उसके बच्चे छोटे-छोटे थे। बाप मर गया, मां पहले ही मर गई थी, बच्चों को कुछ और ज्यादा याद न था, लेकिन एक बात बराबर उन्हें याद थी कि आले में चौके के बाहर ही एक लकड़ी का टुकड़ा रखा रहता था और पिता रोज भोजन के बाद उस टुकड़े के साथ कुछ करता था; क्या करता था पता नहीं, लेकिन जरूर कोई बात राज की रही होगी। तो उन्होंने लकड़ी का टुकड़ा रखा। अब जब बाप की याद में रखना है तो साधारण लकड़ी का टुकड़ा क्या रखना, उन्होंने चंदन की लकड़ी का टुकड़ा रखा। और जब रख ही रहे हैं तो छोटा-मोटा क्या रखना, उन्होंने चंदन की बड़ी लकड़ी का एक टुकड़ा रखा, सब नक्काशी करवाकर। अब उसका कोई भी संबंध न रहा दांत के साफ करने से। उससे दांत साफ हो भी नहीं सकते। दांत से कुछ लेना-देना भी न रहा। फिर बच्चे बड़े हुए, उन्होंने नया मकान बनवाया। धन कमाया। अब नये मकान में उन्होंने सोचा कि आले में रखा है, यह याददाश्त है अपने पुरखों की, तो क्यों न एक छोटा-सा मंदिर बना लें। बात जंची सभी को और अब धन भी पास में था, तो उन्होंने एक संगमरमर का छोटा-सा मंदिर ही बना लिया। उन्होंने कहा, अब आले में क्या रखना। बाप-दादे गरीब थे, तो ठीक... । अब मंदिर बन गया संगमरमर का बड़ा मंदिर, अब उसमें एक छोटे-से लकड़ी के टुकड़े को क्या रखना, तो उन्होंने एक बड़ा खंभा, पूरा झाड़ का झाड़ ले आये होंगे, कटवाकर चंदन का, उस पर खूब नक्काशी करवा कर उसको लगा दिया है। मैंने सुना है कि अब उसकी पूजा चलती है, घंटा बजता है और पुजारी आता है, फूल चढ़ाये जाते हैं। अब किसी को याद ही नहीं है कि कहां से शुरुआत हो गई थी बात की।

जो भी इस जगत में तुम्हें अंधविश्वास दिखाई पड़ रहे हैं, उनका प्रारंभ तो जरूर कभी विश्वास से ही हुआ था। कहीं-न-कहीं चाहे कितनी ही बात खो गई हो, चाहे आज खोजना भी संभव न रह जाये, चाहे आज हमारे पास उपाय भी न रह गये हों कि हम पर्त-दर-पर्त इतिहास में उतरकर उनकी खोज कर सकें, लेकिन कहीं-न-कहीं प्रारंभ में कोई-न-कोई छोटी न मोटी बात रही होगी। जिसमें कुछ सत्य था और जिसको किसी ने साक्षात्कार किया था। लेकिन फिर पीछे सभी चीजें अंधविश्वास हो जाती हैं।

विश्वास का अर्थ होता हैः जो तुम्हारे अनुभव से घटित हो।

अब मेरे पास लोग आते हैं। कोई मां ने संन्यास ले लिया, वह अपने बेटे को ले आती है कि इसको भी संन्यास दें। बेटा भाग रहा है, वह उसको पकड़ रही है कि इसको संन्यास दें। बेटा बैठ नहीं रहा है, बेटा उठ-उठ जा रहा है, वह उसको जबरदस्ती बैठा रही है कि इसको संन्यास दें। उसकी गर्दन पकड़कर उसका सिर मेरे चरणों में लगा रही है। वह इनकार किये जा रहा है, वह सिर अलग कर रहा है। अब यह कोई संन्यास होगा? अब इसको मैं मना करूं तो दुखी होती है। इसको मैं कहूं कि नहीं, तो दुखी होती है। और मैं जानता हूं उसकी भी अड़चन, क्योंकि वह कहती है यह घर में बेटा माला मांगता है। यह कहता है हम भी गेरुआ वस्त्र पहनेंगे, हम भी माला पहनेंगे तो मेरी झंझट खड़ी कर रखी है। मगर इस मां ने तो होशपूर्वक, बोधपूर्वक संन्यास लिया है, इस

बेटे पर जबरदस्ती थोपा जा रहा है। यह यहीं के यहीं विश्वास और अंधविश्वास दोनों हुए जा रहे हैं। यह कल मां विदा हो जायेगी और यह बेटा संन्यासी रह जायेगा। यह संन्यासी बिल्कुल थोथा होगा, इसका कोई मूल्य नहीं होगा, कोई अर्थ नहीं होगा। मगर इसको जिद्द रहेगी, अकड़ रहेगी कि हमारी मां संन्यासी थी, अब मां से कोई गद्दारी थोड़े ही करेंगे। तो पहनेंगे कपड़ा और अगर ज्यादा ही दिल हो जायेगा दूसरे कपड़े पहनने का तो ऊपर-ऊपर गेरुआ पहन लेंगे, भीतर-भीतर जो अपनी मौज के हैं वे पहन लेंगे। भीतर मखमली और रेशमी कपड़े पहन लेंगे और ऊपर गेरुआ डाले रखेंगे। या दिन में गेरुआ पहन लिया करेंगे, जब लोग देखें-दाखें और रात अपने घर में मौज से जो अपने को पहनना है वह पहनेंगे। अब यह माला झूठी हो जायेगी। अब इस माला में से लकड़ी के दाने विदा हो जायेंगे, सोने-चांदी के दाने आ जायेंगे। अब यह माला नये-नये अर्थ लेने लगेगी। यह एक आभूषण हो जायेगी।

तुमने पूछा हैः उस दिन भारत के प्रसंग में आपने कहा "कि इस देश की बुनियादी समस्या उसके अंधविश्वास हैं। इस देश की ही नहीं सारी दुनिया की बुनियादी समस्या अंधविश्वास हैं। इस देश की थोड़ी ज्यादा। ज्यादा क्यों? क्योंकि इस देश में ऐसे बहुत पुरुष हुए जिनके आसपास विश्वास जगा। इसलिये इस देश के पास अंधविश्वास भी ज्यादा हैं। बुद्ध यहां हुए, महावीर यहां हुए, कृष्ण यहां हुए, अपूर्व पुरुष यहां हुए--सरहपा और गोरख और कबीर और नानक और दादू और रैदास और फरीद... ! एक जागते हुए दीयों की परंपरा है। यह देश तो एक दीवाली मनाता रहा है। यहां दीयों पर दीये जलते चले गये हैं। जहां इतने दीये जले वहां स्वभावतः बहुत-से बुझे दीयों की पूजा भी होगी; दीये जब जलेंगे तो एक दिन बुझेंगे। और इतनी हिम्मत हम नहीं जुटा पाते कि जब दीया बुझ जाये तो उसका निर्वाण कर दें, उसको चले जायें और सागर में बहा दें और नमस्कार कर लें। इतनी हिम्मत हम नहीं जुटा पाते, कोई भी नहीं जुटा पाता। मोह लग जाते हैं, आसक्तियां बंध जाती हैं। भय भी पकड़ जाते हैं।।

अब यहां पूना में ही एक सज्जन हैं, पढ़े-लिखे आदमी हैं, बड़े ठेकेदार हैं, धनपति हैं। उनकी पत्नी यहां मुझे सुनने आती है। वह सुनने नहीं देना चाहते। उनको डर है कि कहीं पत्नी संन्यासिनी न हो जाये। तो उनकी पत्नी ने मुझे बताया कि वे इतने आप पर नाराज हैं कि आपकी किताब नहीं पढ़ने देते। तो मुझे किताब भी चोरी से पढ़नी पड़ती है। अगर कभी उनके हाथ में किताब पकड़ जाये तो उसको फेंक देते हैं घर के बाहर। और उनकी पत्नी फिर हंसने लगी और बोली कि मजा यह है कि जब मैं नहीं देखती तो जाकर किताब को उठाकर उसको नमस्कार करके फिर वापिस रख देते हैं। अब घबड़ाहट भी लगती होगी कि फेंक तो दी, मगर कहीं कोई पाप इत्यादि न हो जाये। तो जब पत्नी नहीं देखती, तब उसको नमस्कार कर लेते हैं।

आदमी ऐसा अजीब है! तो कोई मोह से पकड़े हुए है, कोई भय से पकड़े हुए है कि अब छोड़ने से कोई नुकसान न हो जाये। इतने दिन पकड़े रहे हैं, अब छोड़ने से कोई हानि न हो जाये तो कर ही लो पूजा क्या बिगड़ता है, पांच मिनट रोज सुबह घंटी बजाकर थोड़ा पानी छिड़ककर झंझट मिटा ली। पांच ही मिनिट गये, कोई ज्यादा गया भी नहीं, हो न हो कभी भगवान हो ही, बाद में मरने के मुलाकात हो, तो कहने को तो रहेगा कि देखो रोज पूजा करता था! और नहीं हुआ तो क्या बिगड़ गया, ऐसे ही समय बीत रहा है, पांच मिनट और गये।

इस देश में चूंकि विश्वास घट सके, ऐसे बहुत लोग पैदा हुए, इसलिए अंधविश्वास भी खूब घटा। हर सौभाग्य के पीछे उसके दुर्भाग्य की छाया होती है। अमीर आदमी ही गरीब हो सकता है। गरीब आदमी गरीब नहीं हो सकता। गरीब आदमी को गरीबी का पता ही नहीं होता। अमीर जब गरीब होता है तब उसे गरीबी का

पता चलता है। उसके पास तुलना का उपाय होता है। जिन्होंने सुख जाना है उन्हें दुख का पता चलता है। जो दुख में ही जीये हैं, उन्हें दुख का पता नहीं चलता।

यह बात जानकर तुम हैरान होओगे कि दुनिया में गरीबों ने कोई क्रांति नहीं की है। भला कार्ल-मार्क्स और उनके अनुयायी कुछ भी कहते रहें, दुनिया में गरीबों ने कोई क्रांति नहीं की। गरीब कभी क्रांति नहीं करेंगे, गरीब क्रांति कर ही नहीं सकते, क्योंकि गरीबों को सुख का कोई आभास ही नहीं होता, आशा भी नहीं होती। अमीर तो क्रांति करेंगे क्यों, क्योंकि उनके पास तो सब है, क्रांति से तो उनको नुकसान होगा। उनके पास तो सुख के सब साधन हैं। इसलिये अमीर कभी क्रांति नहीं कर सकते, एक बात तय हो गई। गरीब कभी क्रांति नहीं कर सकते, क्योंकि सुख का कोई आभास नहीं। फिर क्रांति कौन करता है? क्रांति करते हैं मध्य-वर्गीय लोग, दोनों के बीच में जो हैं; जिन्होंने थोड़ा दुख भी जाना है और सुख की भी थोड़ी-सी प्रतीति है।

मध्य वर्ग क्रांतिकारी वर्ग है। इसलिये सब उपद्रव मध्य वर्ग से पैदा होते हैं खुद मार्क्स, एंजल्स, लेनिन, स्टेलिन, सब मध्य-वर्गीय लोग हैं। इस देश में भी, अन्य देशों में भी, जो भी क्रांति की बातें उठती हैं वे मध्य-वर्गीयों से उठती हैं। इस देश में तुम जानते हो कि आजादी का आंदोलन किनने चलाया--वकीलों ने चलाया। कांग्रेस सिर्फ वकीलों की संस्था थी शुरुआत में। वकीलों ने क्यों चलाया? वकीलों को क्या आजादी से लेना-देना? इस देश में सब तरह के लोग थे, किसी को चिंता नहीं थी, वकीलों को क्यों थी? वकीलों को थोड़ा रस आ गया अंग्रेजों के साथ रहने का--पद का, प्रतिष्ठा का, अदालतों का। तुम जानकर यह हैरान होओगे कि जिन लोगों ने इस देश में क्रांति की वे सभी लोग पश्चिम में शिक्षित होकर आये थे--मध्य वर्गीय लोग थे। पश्चिम में देखकर आये थे, स्वतंत्रता का थोड़ा सुख लेकर आये थे।

इस देश में क्रांति न होती अगर मैकाले न हुआ होता। लोग कहते हैं कि मैकाले ने इस देश को गुलाम बनाया और मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि मैकाले ही इस देश की आजादी का पिता है। अगर अंग्रेजों ने कोशिश न की होती शिक्षा देने की इस देश के लोगों को, यहां कभी क्रांति न होती। क्योंकि क्रांति आई शिक्षित लोगों से, अशिक्षित लोगों से नहीं, पंडित-पुरोहितों से नहीं, वेद के, उपनिषदों के ज्ञाताओं से नहीं--जो लोग पश्चिम से शिक्षा लेकर लौटे, जो वहां का थोड़ा रस लेकर लौटे।

सुभाष ने लिखा है कि जब मैं पहली दफा यूरोप पहुंचा और एक अंग्रेज चमार ने मेरे जूतों पर पालिश किया तो मेरे आनंद का ठिकाना न रहा। अब जिसने अपने जूतों पर अंग्रेज को पालिश करते देखा हो, वह वापिस आकर इस देश में अंग्रेज के जूतों पर पालिश करे, यह संभव नहीं। अब मुश्किल खड़ी हुई।

मैकाले इस देश की आजादी का पिता है। उसी ने उपद्रव खड़ा करवाया। अगर मैकाले इस देश के लोगों को अंग्रेजी शिक्षा न देता, पढ़ने देता उन्हें संस्कृत मजे से और पाठशालाओं में रटने देता उनको गायत्री, कोई हर्जा होने वाला नहीं था। वे अपना जनेऊ लटकाये, अपनी घंटियां बजाते हुए शांति से अपने भजन-कीर्तन में लगे रहते। उसने लोगों को पश्चिम में जो स्वतंत्रता फली है उसका स्वाद दिलवा दिया। एक दफा स्वाद मिल गया, फिर अड़चन हो गई।

अभी तुम देखते हो, ईरान में क्या हो रहा है? ईरान के सम्राट को जो परेशानी झेलनी पड़ रही है वह उसके खुद ही के कारण। ईरान अकेला मुसलमान देश है जहां शिक्षा का ठीक से व्यापक विस्तार हुआ है और ईरान के शहंशाह ने शिक्षा पर बड़ा जोर दिया। ईरान समृद्ध है, शिक्षित है--सारे मुसलमान देशों में! और यही नुकसान की बात हो गई। अब वे ही शिक्षित लोग और समृद्ध लोग अब चुप नहीं रहना चाहते; अब वे कहते हैं, हमें हक भी दो, अब हमें प्रजातंत्र चाहिए; अब हम राज्य करें, इसका भी हमें मौका दो। और कोई मुसलमान

देश में उपद्रव नहीं हो रहा है, क्योंकि लोग इतने गरीब हैं, इतने अशिक्षित हैं, मान ही नहीं सकते, सोच ही नहीं सकते कि हमें और राज्य की सत्ता मिल सकेगी, असंभव! असंभव को कौन चाहता है? जब संभव दिखाई पड़ने लगती है कोई बात, जब हाथ के करीब दिखाई पड़ने लगती है कि थोड़ी मेहनत करूं तो मिल सकती है, तब उपद्रव शुरू होता है।

इस देश में शूद्र हजारों साल से परेशान हैं, कोई बगावत नहीं उठी। उठ नहीं सकती थी। अंबेदकर जैसे व्यक्ति में बगावत उठी, क्योंकि शिक्षा का मौका अंग्रेजों से मिला।

यह जीवन का एक तथ्य है समझने जैसा कि न तो गरीब बगावत करते हैं न अमीर बगावत करते हैं--बगावत मध्य-वर्गीय लोग करते हैं। सारी क्रांतियां मध्य-वर्गीय लोगों से पैदा होती हैं। विचार की, अर्थ की, समाज की--सारी क्रांतियां! थोड़ा अनुभव होना चाहिए। इस देश को विश्वास का अनुभव है, बहुत अनुभव है। विश्वास की छाया और विश्वास की शांति इस देश ने जानी है। इसको पता है कि बुद्धत्व जैसी घटना भी घटती है। इसकी प्रतीति इसको है। इसलिये अगर बुद्ध न हों तो चलो बुद्ध की प्रतिमा ही सही, मगर किसी न किसी चीज को यह पकड़ लेता है।

दूसरे मुल्कों में इतना अंधविश्वास नहीं है, क्योंकि विश्वास के इतने मौके ही नहीं। अमरीका में अंधविश्वास नहीं है, क्योंकि अमरीका ने न तो कभी कोई बुद्ध जाना न कोई महावीर जाना न कोई कृष्ण जाना। अमरीका इस अर्थ में गैर-अंधविश्वासी है। और असंभव है तब तक अंधविश्वास पैदा होना, जब तक कि विश्वास पैदा न हो जाये। सुख हो तो दुख का बोध होता है। धन हो तो गरीबी का बोध पैदा होता है। विश्वास का अनुभव हो तो अविश्वास की छाया निर्मित होती है। फिर अविश्वास से डर पैदा हो तो आदमी अंधविश्वास को पकड़कर किसी तरह बैठा रहना चाहता है।

समझो कि तुम्हारे घर में अंधेरा है और तुमने दीये की रोशनी देखी है, अब तुम अंधेरे से राजी नहीं हो सकते। और दीया बुझ गया और अंधेरे से तुम राजी नहीं हो सकते। तुम जानते हो कि रोशनी होती है, रोशनी थी, रोशनी फिर हो सकती है। लेकिन अब रोशनी नहीं है और अंधेरा ही अंधेरा है। अब तुम एक ही काम कर सकते हो, कम-से-कम तुम उस दीये को तो पकड़कर बैठे रह सकते हो, जिसमें रोशनी घटी थी। इस आशा में कि शायद फिर घटे। तो दीये को ही पकड़े रहो। तुम दीये की ही पूजा करने लगोगे उसी याददाश्त में--रोशनी की याददाश्त में। फिर तुम्हारे बच्चे भी दीये की पूजा करेंगे। क्योंकि बच्चों को यह ख्याल होता है कि जो मां-बाप करते हैं, वह अगर हम न करें तो गद्दारी हो गई। तुम बच्चों को सिखाते भी यही हो कि हम जो करते हैं वही तुम भी करना, नहीं तो गद्दारी हो जायेगी। फिर दीये की पूजा शुरू हो जाती है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि रोशनी से दीये की पूजा शुरू हुई, लेकिन अब जबकि दीये की पूजा शुरू हो गई तो अब रोशनी कभी पैदा न हो सकेगी; क्योंकि दीये की पूजा करके आदमी निपट जाता है, रोशनी की तलाश ही नहीं करता। सोचता है, दीये की पूजा काफी है।

तो विश्वास से अंधविश्वास पैदा होते हैं। और एक बार अंधविश्वास पैदा हो जायें तो फिर विश्वास पैदा होना बहुत मुश्किल हो जाता है।

इसलिये मैं तुमसे कहता हूं कि अंधविश्वास तोड़ो ताकि फिर विश्वास की धारा बह सके, फिर तुम श्रद्धा के वास्तविक सत्व को खोज सको।

"उस दिन भारत के प्रसंग में आपने कहा कि इस देश की बुनियादी समस्या उसके अंधविश्वास हैं और यह कि यह देश समय से डेढ़ हजार वर्ष पीछे है। क्या बताने की कृपा करेंगे कि विश्वास और अंधविश्वास की परख क्या है?"

जीवंत हो तो विश्वास, मृत हो तो अंधविश्वास। तुम्हारा अपना हो तो विश्वास; उधार हो, बासा हो, माता-पिता का हो, पूर्वजों का हो, पुरखों का हो, तो अधंविश्वास।

"और क्या आज के विश्वास कल अंधविश्वास नहीं हो जायेंगे?"

निश्चित हो जायेंगे। मैत्रेय के पूछने का प्रयोजन यह है कि जब आज के विश्वास कल के अंधविश्वास हो जायेंगे तो हम विश्वास ही क्यों पैदा करें? आज के बच्चे कल बूढ़े नहीं हो जायेंगे? तो बच्चे पैदा करना बंद कर दो। और जो आज जन्मा है कल मरेगा या नहीं? तो क्या जन्म की प्रक्रिया को नष्ट कर दें? और जो फूल सुबह खिला है, सांझ कुम्हलायेगा या नहीं? गिरेगा या नहीं धूल में फिर वापिस? तो इस कारण क्या सुबह खिले फूल का आनंद छोड़ दें? जो सूरज उगा है, सांझ डूबेगा या नहीं? और जो देह अभी स्वस्थ है, कल रुग्ण होगी या नहीं? इस कारण क्या स्वास्थ्य को छोड़ दोगे? क्या सुबह के सूरज को विदा कर दोगे? दीया जला है, इसलिये फूंककर बुझा दोगे कि क्या फायदा?

प्रश्न पूछने का अर्थ यह है कि अगर सभी आज के विश्वास कल अंधविश्वास हो जायेंगे तो फिर सार ही क्या? नहीं, फिर भी सार है। जब तक विश्वास हैं तब तक उनसे तुम्हें रोशनी मिलेगी और जो उस रोशनी में चल लेंगे, वे पहुंच जायेंगे। कल जरूर वे अंधविश्वास हो जायेंगे, इसलिये यह चेतावनी देते जाना चाहिए बार-बार कि जब कोई विश्वास अंधविश्वास हो जाये तो उसकी अर्थी उठा लेना। रोना-धोना, लेकिन हंडी लेकर, और चल पड़ना अर्थी कोः राम-राम सत्य है! मरघट पर जाकर अंधविश्वास को जला आना। थोड़ी पीड़ा भी होगी, लेकिन अंधविश्वास को सम्हालकर मत रखना।

सदगुरु के दो काम हैंः एक तो तुम्हें श्रद्धा दे, तुम्हारे जीवन में अनुभव का मार्ग बताये; और दूसरा, तुम्हें सचेत करे कि जब श्रद्धा मर जाये और उसकी जगह केवल अंधी श्रद्धा रह जाये तो उसे विदा कर देना, जाकर नदी में डुबा आना, कि मरघट पर जला आना। अपने बच्चों को अंधी श्रद्धा मत दे जाना। इतना जरूर उनको याद दिला जाना कि श्रद्धा जैसी कोई चीज होती है, हमने जानी थी; बुद्ध जैसे लोग होते हैं, हमने जाने थे--तुम भी खोजना। अपने बुद्ध की प्रतिमा उन्हें मत पकड़ा जाना, लेकिन अपने बुद्ध का अनुभव जरूर उन्हें सुना जाना। उसकी कथा उन्हें जरूर बता जाना। उसका गीत जरूर उनके कान में गुनगुना जाना, ताकि उनके भीतर गूंज होती रहे; एक न एक दिन कभी वे भी तलाश पर निकलें। लेकिन अपना गुरु उन्हें मत पकड़ा जाना; उसमें गलती हो जाती है, वहीं गलती हो जाती है। तुम्हारा मोह यह होता है कि मेरा गुरु मेरे बेटे का भी गुरु होना चाहिए। क्यों?

मैं हूं, तुम्हारे लिये जिंदा हूं, तुम मेरे लिये जिंदा हो। इन दोनों जिंदगियों के बीच में कुछ घटेगा। जब मैं कल जा चुका होऊंगा, तुम्हारे बच्चों और मेरे बीच कैसे कुछ घटेगा? हां, इतना जरूर तुम अपने बच्चों को बता जाना कि इस तरह की घटना घटती है, खोजना; हमें मिल गया था, तुम्हें भी मिल जायेगा। कोई न कोई मिल जायेगा--कोई जाग्रत पुरुष; तुम उसके चरणों में झुकना। मगर तुम मेरी तस्वीर या मेरी मूर्ति अपने बच्चों को मत पकड़ा जाना। क्योंकि मैं तुम्हारे लिये मूर्ति नहीं हूं, मैं तुम्हारे लिये एक जिंदा अनुभव हूं। तुम्हारे बच्चों के लिये मैं एक मुर्दा मूर्ति रहूंगा। वे मेरी पूजा कर देंगे, पानी डालकर स्नान करवा देंगे, दतौन रख देंगे, मगर मूर्ति के लिये

इनका कोई अर्थ नहीं होगा। यह सब व्यर्थ होगा। और चूंकि वे इस मूर्ति में उलझे रहेंगे, इसलिये कोई जिंदा गुरु उनके द्वार से भी गुजरेगा तो वे देखेंगे नहीं। वे कहेंगेः हमें जरूरत ही नहीं, हमारे गुरु तो हैं, हम तो उनकी पूजा करते हैं, हम तो उनको मानते हैं।

अब एक महिला अभी यहां आई। उसका रस मुझमें जगा है, नहीं तो दूर अमरीका से आती न। वृद्ध महिला है। लेकिन एक बड़ी अड़चन आ गई। अड़चन यह है कि वह कहती है कि बचपन से ही मैं मानती रही हूं कि जीसस मेरे गुरु हैं, अब दो गुरु कैसे बनाऊं? मैंने उसको कहा कि अगर जीसस तेरे गुरु हैं तो तू यहां आई ही क्यों? अगर जीसस के गुरु होने से काम पूरा हो गया तो काम पूरा हो गया। अगर जीसस के गुरु होने से काम पूरा नहीं हुआ तो जीसस तेरे गुरु कैसे? बात खतम कर! ... जीसस रहे होंगे तेरे बाप-दादों के गुरु। यह पुश्तैनी तुझे हक मिल गया।

यह कोई धन ऐसा थोड़े ही है कि वसीयत में मिल जाये। बाहर का धन वसीयत में मिलता है, भीतर का धन वसीयत में नहीं मिलता। और बाहर के धन और भीतर के धन के ढंग ही अलग होते हैं। तुम्हारे बाप मरेंगे तो उनकी तिजोड़ी पर तुम हकदार हो जाओगे। लेकिन तुम्हारे बाप मरेंगे तो उनके आनंद-अनुभूति के, उनके समाधि के, उनके ध्यान के तुम हकदार नहीं हो जाओगे। भीतर का धन ऐसे नहीं दिया जाता कि उसकी वसीयत कर दी कि मरते वक्त जैसे वसीयत लिख गये कि मेरा सारा धन मेरे बेटे का और मेरी समाधि भी, और मेरा ध्यान भी इसीका। कि मेरे चार बेटे हैं तो चारों समाधि को बांट लेना।

ध्यान या समाधि बांटी नहीं जाती, न दी जाती न ली जाती।

तो अब यह महिला आई दूर से, मगर चूक जायेगी। अब उसको एक अड़चन आ रही है। उसके पति भी आये हैं, पति संन्यस्त हो रहे हैं, अब और अड़चन खड़ी हो गई।

उसने मुझे कल फिर पत्र लिखा कि एक और अड़चन आ गई। मैं तो अड़चन में थी ही कि क्या करूं क्या न करूं, अब पति संन्यस्त हो रहे हैं, तो कहीं ऐसा तो नहीं हो जायेगा कि पति के गुरु एक, मेरे गुरु दो, तो हम दोनों में भेद हो जाये और हम एक-दूसरे के विपरीत पड़ जायें?

अगर जीसस से तुम्हारे जीवन में शांति आ गई तो बात समाप्त हो गई। तुम्हारे पति के जीवन में मुझसे शांति आयेगी तो विरोध कैसे पड़ जायेगा? दो शांतियां सदा एक हो जाती हैं। दो अशांतियों में विरोध हो सकता है। मगर पत्नी को कोई शांति इत्यादि आई नहीं है, नहीं तो यहां तक आती क्यों?

"जीसस" सिर्फ एक कोरा शब्द है, जिसका कोई मूल्य नहीं है। जीसस को तुम्हारा अनुभव क्या है? तुमने जीसस को जाना कहां? जीसस की आंख में तुमने आंख कहां डाली? जीसस का हाथ तुमने कहां पकड़ा? पकड़ना भी चाहोगे तो कैसे पकड़ोगे?

जीसस और तुम्हारे बीच दो हजार साल का फासला हो गया। इन दो हजार सालों में हजारों पोप और पादरी तुम्हारे और जीसस के बीच में खड़े हो गये हैं। बड़ी दीवाल है। चीन की दीवाल भी इतनी बड़ी दीवाल नहीं! अब इस दीवाल को खोदते-खोदते-खोदते तुम असली जीसस की तलाश करोगे, मर जाओगे, पहुंच न पाओगे। फिर उन दो हजार सालों में जीसस पर इतनी टीका, इतनी टिप्पणी थोप दी गई है कि यह पता लगाना कि जीसस का खुद का वचन क्या है, करीब-करीब असंभव बात है। जीसस हुए भी या नहीं, इसका भी पूरा-पूरा निर्णय लेना असंभव है। तो फिर कृष्ण की तो क्या कहो, और मुश्किल हो गई, और फासला है।

सदगुरु तो समसामयिक ही हो सकता है। जो अभी देह में हो, वही, तुम देह में हो तो तुमसे संबंध जोड़ सकता है।

नहीं मैत्रेय! चूंकि विश्वास अंधविश्वास हो जायेंगे, इस डर से विश्वास छोड़े नहीं जा सकते। तुम तो जी लो विश्वास से। तुम तो श्रद्धा का आनंद ले लो। तुम तो मस्त हो लो; पीछे आने वाले उनकी वे जानें। इतना भर कर जाना कि उनके लिये अड़ंगे खड़े मत कर जाना। उनको अपने आग्रह में मत बांध जाना, अपना पक्षपात मत दे जाना। उनको दे जाना स्वतंत्र खोज की आकांक्षा, अभीप्सा। उनको बता जानाः हमने खोजा था और हमने पा लिया था कोई, जिसके पास बैठकर हमने स्वर्ग का संवाद सुना! जिसके पास बैठकर हमने स्वर्ग का संगीत सुना। जिसके साथ चलकर हमने दो कदम परमात्मा की रोशनी अनुभव की, हमने ध्यान जाना; हमें समाधि के थोड़े-से फूल झड़े; तुम भी खोजना।

यह जगत परमात्मा से भरा है और इस जगत में परमात्मा बहुत-बहुत रूपों में प्रगट होता रहता है। जब तुम पुराने रूपों से बहुत आग्रहपूर्ण हो जाते हो तो नये रूप देखने मुश्किल हो जाते हैं। तब अड़चन खड़ी हो जाती है।

अब मेरे पास अगर कोई मुसलमान आ जाता है तो मुसलमान मौलवी कहता है उससे, कि मुसलमान होकर तुम वहां जा रहे हो! यहां कमी क्या है? अपनी कुरान में तो सब लिखा है। कोई हिंदू आना चाहता है तो हिंदू पुरोहित रोकता है कि वहां जाने की क्या जरूरत है? ये वे ही लोग हैं जो पहले भी रोक रहे थे। जब महावीर जिंदा थे, तो भी ये रोक रहे थे। ये वे ही लोग हैं, जब मुहम्मद जिंदा थे तब भी रोक रहे थे। ये जिंदगी के दुश्मन हैं, ये मौत के पक्षपाती हैं, ये मुर्दों के पूजक हैं।

तुमसे मैं जरूर यह कहना चाहता हूं कि अपने बच्चों को तुम जिज्ञासा दे जाना, मुमुक्षा दे जाना, खोज की आतुरता दे जाना। प्यास दे जाना, मगर कोई बंधे हुए सिद्धांत मत पकड़ा जाना। तो तुम्हारा जो विश्वास था, तुम्हारे बच्चों के लिये कभी अंधविश्वास न होगा। तुम पर निर्भर है। अपना विश्वास किसी पर मत थोपना। अपने बच्चों को प्रेम दो, अपने विश्वास नहीं। अपने बच्चों को प्रेम दो, अपने सिद्धांत नहीं। अपने बच्चों को सत्य की अभीप्सा दो, मगर सत्य के शास्त्र नहीं। तो जगत में धीरे-धीरे विश्वास पैदा हो और अंधविश्वास के पैदा होने की जरूरत न रह जाये।

मगर फिर भी यह कोई सौ प्रतिशत बचाने की व्यवस्था नहीं है, क्योंकि कुछ हैं जो विश्वास में पड़ना ही नहीं चाहते; जो अंधविश्वास को ही पकड़ना चाहते हैं, उनको नहीं रोका जा सकता है। उनका न्यस्त स्वार्थ अंधविश्वास में है।

अंधविश्वास की कुछ खूबियां हैं, वह भी समझ लो। क्यों लोग उनको पकड़ते हैं? एकदम पागल नहीं हैं लोग। लोग भी बड़े होशियार हैं, लोग बड़े चालबाज हैं। लोग बड़े गणित से काम चलाते हैं। वे अंधविश्वास को पकड़ते हैं तो उसके पीछे उनका तर्क है। तर्क क्या है? एक तो यह कि अंधविश्वास में कभी कोई झंझट नहीं होती। अंधविश्वास में बदलना नहीं पड़ता स्वयं को। अंधविश्वास तुम्हें जैसा है वैसा ही रहने देता है; तुम्हारे जीवन को जरा भी नहीं छूता, जरा चोट नहीं करता। जीवंत विश्वास तुम्हारे जीवन को बदलेगा, वह आग है। उसमें से गुजरोगे तो जलोगे। हालांकि जलोगे तो ही निखरोगे, मगर जलन के क्षण तो कठिन होते हैं, पीड़ा के होते हैं। अंधविश्वास राख है। अच्छा शब्द कहो तो विभूति। खूब मलो, शरीर पर लगाकर बैठे रहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। कभी अंगारे थे।

मुझसे एक सज्जन मिले। कहने लगे कि आप ऐसा चमत्कार क्यों नहीं दिखाते जैसा सत्य साईंबाबा दिखाते हैं, विभूति? मैंने कहा कि मैं अंगार पैदा करता हूं, विभूति वगैरह तो अपने-आप पैदा हो जायेगी, जब अंगार बुझ जायेंगे तो विभूति पैदा हो जायेगी। अंगार खाने हों तो मेरे पास आओ। अंगार चबाने हों तो मेरे पास आओ।

विभूति वगैरह में क्या रखा है? वह तो राख अपने-आप पैदा हो जाती है। हर अंगारा आखिर में राख होकर पड़ा रह जायेगा। फिर बांट लेना विभूति, लगा लेना सिर पर और चख लेना विभूति। मगर विभूति से कुछ भी न होगा। अंगार! अंगार चाहिए।

जीवित गुरु के पास होना आग के पास होना है। अंधविश्वास में एक सुविधा है। अंधविश्वास एक खिलौना है। मजे से खेलो, कोई खतरा नहीं है। अंधविश्वास आग नहीं है, कागज पर बनी हुई आग की तस्वीर है। छाती से लगाओ, सिर पर रखो, कुछ हर्जा नहीं होने वाला, तुम जल नहीं जाओगे। विश्वास अग्नि है, अग्नि की तस्वीर नहीं। छुओगे कि बदलाहट शुरू होगी।

तो जो बदलना ही चाहते हैं, जो जीवन को दांव पर लगाने को ही तत्पर हैं, जो कहते हैं, जिंदगी में रोशनी चाहिए, मरने के पहले अमृत को जानना है--ऐसा जिनके मन में भाव है, वे ही लोग विश्वास से जुड़ेंगे। मगर सौ में निन्यानबे प्रतिशत लोग इतनी झंझट में नहीं पड़ना चाहते। वे कहते हैंः जिंदगी सब ठीक चल रही है, हम मजे में हैं। मगर थोड़ा-सा संदेह कभी-कभी किन्हीं-किन्हीं क्षणों में मन को पकड़ लेता है कि मरना तो होगा एक दिन और ईश्वर के सामने खड़े होंगे और वह पूछेगा कि कहो, कुछ किया था? तो बड़ी मुश्किल होगी, क्योंकि अपना इतिहास तो बस इतना ही है कि इस होटल से उस होटल में गये; इस क्लब से उस क्लब में गये; इस फिल्म से उस फिल्म में गये; इस स्त्री को छोड़ा उस स्त्री को पकड़ा! यही अपनी कथा है। ईश्वर के सामने कहने में बड़ी लज्जा आयेगी, क्योंकि एक क्लब से दूसरे क्लब जाते बीच में किसी मंदिर में था.ेडा सिर झुका लें तो ठीक रहेगा, कम-से-कम कहने को तो कुछ रहेगा कि जब एक क्लब से दूसरे क्लब जा रहे थे, बीच में हनुमान जी का मंदिर पड़ा था तो हमने सिर झुकाया था; कि जब एक स्त्री को छोड़कर दूसरी स्त्री से विवाह किया था तो हम मंदिर में गये थे, हमने फूल चढ़ाये थे, नारियल भी चढ़ाया था। और जब हमने एक धंधे को छोड़कर दूसरा धंधा किया था तो हमने तुम्हारी याद रखी थी। कुछ कहने को रहेगा।

मन में आदमी के संदेह पैदा होते हैं, क्योंकि मौत तो है! कैसे झुठलाओ, मौत तो है! और कहीं मौत के बाद बचे फिर, पक्का नहीं हो पाता मौत के बाद क्या है, बचेंगे कि नहीं? अगर बिल्कुल पक्का हो जाये कि नहीं बचेंगे तो तुम अंधविश्वास भी छोड़ दो। विश्वास तो पकड़ने का सवाल ही नहीं उठता फिर, फिर अंधविश्वास भी छोड़ दो। अगर यह निर्णायक रूप से सिद्ध हो जाये कि मौत के साथ सब समाप्त हो जाता है तो फिर तुम हनुमान जी की मूर्ति पर सिर न झुकाओ। फिर क्या प्रयोजन रहा? फिर क्यों नारियल खराब करो। क्या अर्थ? इतना समय और थोड़ा धन कमाओ। इतना समय और थोड़ा रेडियो सुनो। इतना समय और थोड़ा अखबार पढ़ो। इतना समय कुछ और कर लो। समय क्यों खराब करो? मगर तय हो नहीं पाता कि मौत के बाद क्या है! न इस तरफ तय होता न उस तरफ। न तो यही तय हो पाता कि बचेंगे। अगर यह बिल्कुल पक्का हो जाये कि बचेंगे, तो विश्वास पकड़ लो। तो तुम किसी सदगुरु की तलाश करो। न यह पक्का होता कि नहीं बचेंगे। अगर यह हो जाये तो अंधविश्वास भी छोड़ दो। इस दुविधा में कि पता नहीं बचेंगे कि नहीं बचेंगे, तुम तरकीब खोजते हो। तुम कहते हो कि थोड़ा-बहुत कुछ करते रहो, थोड़ा-बहुत कुछ करते रहना ठीक है।

मेरे एक मित्र हैं, कृष्णमूर्ति को तीस साल से सुनते हैं, मुझे भी सुनते हैं। न ईश्वर को मानते, न मंत्र को, न पूजा न प्रार्थना को, कुछ नहीं। एक दिन उनके बेटे ने मुझे आकर खबर दी कि उनको हार्ट-अटैक हो गया है और आप आ जायें, शायद घड़ी-दो-घड़ी के मेहमान हैं। आपके आने से ठीक होगा। उनको बड़ी राहत मिलेगी।

तो मैं गया। मैं गया तो मैं बहुत चौंका। चुपचाप उनके कमरे में प्रविष्ट हुआ। क्योंकि उनकी हालत खराब थी, वे आंखें बंद किये राम-राम जप रहे! राम-राम, मुझे भरोसा ही नहीं आया! मैंने उन्हें हिलाया। मैं भूल ही

गया उनको हृदय का दौरा पड़ा है। मैंने कहाः जाने दो हृदय के दौरे को भाड़ में, यह तुम क्या कर रहे हो? राम-राम! तीस साल कृष्णमूर्ति को सुना, दस साल से मुझे भी सुनते हो... राम-राम!

उन्होंने कहा कि अब आप यह बात रहने दो, अभी मत उठाओ! अभी यह मरने का मामला है। कौन जाने हो ही! अब अभी यह सिद्धांत, दार्शनिक सिद्धांत न छेड़ो। अभी तो मुझे राम-राम कर ही लेने दो। अगर हुआ तो कम-से-कम कहने को तो रहेगा कि आखिरी वक्त में याद कर लिया था।

ऐसा आदमी हिसाब से चल रहा है, कुशलता से चल रहा है, इंतजाम कर के चल रहा है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन छाता लेकर बाजार की तरफ जा रहा था। बीच में पानी आ गया। तो उसके साथी ने कहा कि, नसरुद्दीन, छाता खोल क्यों नहीं लेते? उसने कहा कि छाता खोलने से कोई सार नहीं, छाता टूटा हुआ है और छेद ही छेद हैं। तो उसने कहाः तो फिर इसको बड़े मियां साथ क्यों लिये फिर रहे हो? तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः मैंने सोचा कौन जाने पानी गिरने ही लगे!

ऐसी हालत है अंधविश्वासी कीः छाता है। काम का नहीं है, कोई हर्जा नहीं, मगर छाता जैसा तो दिखाई पड़ता ही है कम से कम! कौन जाने पानी गिरने ही लगे, तो साथ तो रख ही लो छाता। एक आत्मविश्वास तो बना रहेगा कि छाता पास है, हालांकि काम नहीं पड़ने वाला छाता, अगर पानी गिरेगा तो छेद-ही-छेद हैं, टूटा-फूटा है।

मगर ऐसी आदमी की अवस्था है। तुम जरा अपनी भी जांच करना। तुम श्रद्धा से मंदिर गये हो? तुम अपने अहोभाव से मंदिर गये हो? तुम कभी झुके हो मस्ती में, मदमस्त होकर? नहीं, वही छेदों वाला छाता है--कौन जाने हो ईश्वर तो चलो झुक ही लो! मगर तुम्हारा झुकना झूठा है। छेद वाला छाता है, काम नहीं पड़ेगा। तुम किसको धोखा दे रहे हो?

तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सौ प्रतिशत गारंटी है कि तुम अपने बच्चों को अंधविश्वास नहीं दे जाओगे तो वे अंधविश्वास नहीं अपने खुद पैदा कर लेंगे। सौ में निन्यानबे बच्चे तो पैदा करेंगे। तुम नहीं दोगे तो वे खुद ही पैदा कर लेंगे। तुम न पकड़ाओगे तो खुद ही पकड़ लेंगे। क्योंकि अंधविश्वास में एक तरह की सुरक्षा है, कम-से-कम सुरक्षा की भ्रांति तो है। और अंधविश्वास में एक तरह की बचाव की सुविधा हैः न तो बदलना पड़ता है, न जलना पड़ता है और फिर भी धार्मिक होने का मजा आ जाता है। इसीलिए तो लोग मंदिर चले जाते हैं, मस्जिद चले जाते हैं, गुरुद्वारा चले जाते हैं, चर्च चले जाते हैं, रविवार को हो आये चर्च। पुरुष जाकर रविवार को मिलजुल लेते हैं, गपशप कर लेते हैं चर्च में। चर्च से किसी को लेना-देना नहीं। स्त्रियां अपना गहना, साड़ी इत्यादि दिखला आती हैं; उनको भी कोई चर्च से मतलब नहीं है।

मैं जैन मंदिर में एक दफा बोलने गया। मैं तो देखकर हैरान हुआ कि सारी स्त्रियां खूब गहने पहने बैठी हुई हैं, सबने साड़ियां पहन रखी हैं। कोई किसी की साड़ी का पोत देख रही है, कोई किसी का गहना देख रही है। मैंने कहाः मुझे तुम किसलिए ले आये हो यहां? न मेरे पास साड़ी है, न मेरे पास गहना है। किसको पोत दिखाऊं, किसका पोत देखूं? यहां तो मामला ही कुछ और चल रहा है! तो जो मुझे ले गये थे, उन्होंने कहा कि अब आप तो जानते ही हैं मंदिर ही एकमात्र जगह है जैन स्त्रियों के लिये, जहां वे अपनी साड़ी और अपने गहने पहनकर आयें, और तो कहीं कोई जगह नहीं है। अभी इतनी पढ़ी-लिखी भी नहीं कि रोटरी क्लब चली जायें कि लायंस क्लब चली जायें, इतनी आधुनिक भी नहीं हैं। यह मंदिर ही इनका रोटरी क्लब, यह मंदिर ही इनका लायंस क्लब, जो भी समझो यही है। यहीं इन्हें सब नाच नाचना है। और कहीं जाने की जगह भी नहीं है। यहीं इनका मिलन होता है। तो सारा गांव, सारे गांव की स्त्रियां यहीं इकट्ठी होकर अपनी साड़ी, अपना गहना दिखला लेती

हैं। और साड़ी-गहने का मजा ही यह है कि वह दूसरे को दिखलाई पड़ना चाहिए, नहीं तो उससे मजा ही क्या? तुम्हारी तिजोड़ी में बंद रहे, उससे सार क्या है?

तुमने उस स्त्री की कहानी सुनी है न, जिसने चूड़ियां खरीदी थीं नई और महीने भर चटकाती फिरी, बजाती फिरी, मगर किसी ने न पूछा, तो उसने अपने घर में आग लगा ली। और जब छाती पीट-पीटकर खूब हाथ हिला-हिलाकर चिल्लाने लगी कि बरबाद हो गई, बरबाद हो गई, तब एक स्त्री ने उससे पूछा कि बाई और तो सब ठीक है, बरबाद तो तू हो गई, मगर चूड़ी कब खरीदीं? तो उसने कहा कि अरी नासमझ, अगर पहले ही पूछी होती तो घर में आग क्यों लगती?

आदमी के चाहे घर में आग लग जाये, कोई फिकिर नहीं, मगर चार लोगों को पता तो चल जाये कि मेरे पास भी कुछ है। और तो कुछ है भी नहीं भीतर का, बाहर ही बाहर का है।

मंदिर-मस्जिद में लोग इकट्ठे हो जाते हैं, उनके प्रयोजन और ही हैं। परमात्मा उनका प्रयोजन नहीं है। जो उन्हें वहां उपदेश दे रहे हैं उनका प्रयोजन कुछ और है, परमात्मा उनका भी प्रयोजन नहीं है। धर्मों के पीछे राजनीति चलती है, गहन राजनीति चलती है। धर्मों के समूह राजनीति के अड्डे हैं। मगर अंधविश्वास आदमी को चाहिये, क्योंकि सभी लोग इतने हिम्मतवर नहीं हैं, साहसी नहीं हैं।

अगर तुम चाहते हो एक दुनिया, जहां अंधविश्वास न हों, तो साहस पैदा करना होगा। ऐसा अदम्य साहस कि या तो हम पकड़ेंगे सत्य को, फिर चाहे कितनी ही आग बरसे, कोई फिकिर नहीं; और अगर हमें सत्य नहीं पकड़ना है तो सत्य के नाम पर हम झूठे सत्य न पकड़ेंगे। या तो हम आस्तिक होंगे तो ऐसे आस्तिक, जिन्होंने परमात्मा को जाना; या फिर हम नास्तिक ही रहेंगे। मगर ईमानदार नास्तिक रहेंगे।

मेरी यही देशना हैः या तो बनो असली आस्तिक या कम-से-कम असली नास्तिक तो रहो। इन दोनों के बीच में अंधविश्वासी है--न असली आस्तिक न असली नास्तिक। है तो नास्तिक, आस्तिकता की चादर ओढ़े हुए है, राम-राम की चदरिया ओढ़े है, और भीतर बैठा नास्तिक। भीतर शक है, बाहर से विश्वास ओढ़ा हुआ है। यह अंधविश्वास की स्थिति है।

और तुमने पूछाः "क्या यह भी बताने की अनुकंपा करेंगे कि कोई व्यक्ति या जन-समूह समसामयिक होने के लिये, आधुनिक रहने के लिए क्या करे?" एक ही बातः जो जा चुका जा चुका। जो है है और जो अभी नहीं है अभी नहीं है। तो है से संबंध जोड़ो। सब अर्थों में है से संबंध जोड़ो। तुम वह भोजन तो नहीं करते जो तीन हजार साल पहले दुनिया में था, या कि करते हो? उस संबंध में तुम बिल्कुल समसामयिक हो। तुम भोजन वही करते हो जो आज उपलब्ध है। कपड़े तुम वे तो नहीं पहनते जो तुम्हारे पुरखे पहनते थे। उस संबंध में तुम बिल्कुल समसामयिक हो। तुम टेरेलिन पहनते हो, टेरिकाट पहनते हो। और अब मोरारजी देसाई कोशिश कर रहे हैं कि खादी भी असली न रह जाये, खादी भी नकली हो जाये। उसमें भी अस्सी प्रतिशत कृत्रिम सिंथेटिक धागे मिला दिये जायें। अब तो खादी भी आधुनिक होने की कोशिश कर रही है! कपड़े तुम आधुनिक पहनते हो, भोजन तुम आधुनिक करते हो, श्वास तुम आधुनिक लेते हो--लेकिन धर्म के मामले में भर तुम आधुनिक नहीं हो! क्योंकि धर्म में तुम्हारा कोई रस नहीं है, नहीं तो तुम उसमें भी आधुनिक होओगे। न तो बुद्ध के समय के तुम कपड़े पहनते हो, न बुद्ध के समय का भोजन करते हो; लेकिन बुद्ध के समय की पूजा क्यों कर रहे हो? पूजा में तुम्हें रस ही नहीं है। तुम कहते होः कोई भी हुई चलेगी, क्या लेना-देना है!

जिस बात में तुम्हें रस है, उसमें तो तुम अत्याधुनिक होने की कोशिश करते हो। एक साल बीत जाती है तो नई साल की कार का माडल खरीदते हो। नहीं खरीद पाते तो दिल में बेचैन होते हो। अगर कोई उपाय ही

नहीं होता तो कम-से-कम कार की प्लेट नई लगा लेते हो। एम्बेसडर तो पुरानी है, मगर लगा लिया एम्बेसडर मार्क थ्री। कम से कम इतना ही धोखा, क्योंकि बाकी एम्बेसडर तो एक ही जैसी है, एम्बेसडर तो कभी दूसरी जैसी होने वाली है नहीं, वह तो वैसी ही वैसी रहने वाली है। मगर मार्क थ्री तो बाजार में मिल जाता है, वह तो लगा लिया। खुद को ही धोखा दे रहे हो, दूसरों को धोखा दे रहे हो।

मुल्ला नसरुद्दीन के साथ एक दिन मैं उसकी गाड़ी में उसके घर गया। गर्मी के दिन, भयंकर आग बरस रही और वह खिड़कियां न खोले। मैंने कहाः मुल्ला तू पागल है, तू पसीने से तरबतर है, मैं पसीने से तरबतर... ! उसने कहाः चाहे जान चली जाये, मगर इज्जत का सवाल है। मैंने कहाः इसमें इज्जत का सवाल है? खिड़की क्यों नहीं खोलता? उसने कहाः लोग क्या समझेंगे कि गाड़ी एअरकंडीशन नहीं है।

जान चली जाये, उसने कहा, उसकी कोई फिकिर नहीं है; मगर गाड़ी एअरकंडीशंड है, यह मोहल्ले वालों को पता होना ही चाहिए। पसीना पसीना है, गाड़ी से उतरते से ही गिर पड़ा बिस्तर पर, चारों खाने चित्त, आधा घंटे में सम्हल पाया। मैंने कहा कि मुल्ला ऐसी एअरकंडीशन से क्या फायदा? उसने कहाः कुछ भी हो जाये, मगर इज्जत तो आदमी को बचानी ही होती है। तुम गाड़ी के संबंध में आधुनिक हो, मकान के संबंध में आधुनिक हो, कपड़ों के संबंध में आधुनिक हो--सब बातों में आधुनिक हो--सिर्फ धर्म के संबंध में पूछते हो कि आधुनिक कैसे हों! शायद तुम होना ही नहीं चाहते आधुनिक। नहीं तो जब तुम सब चीजों में आधुनिक हो जाते हो, तो धर्म के संबंध में क्या अड़चन है। अगर तुम कार का नया माडल पसंद करते हो, अगर तुम में थोड़ी भी बुद्धि होगी तो तुम धर्म का भी नये-से-नया संस्करण पसंद करोगे, स्वभावतः।

मोरार जी देसाई ने अहमदाबाद में कहाः मेरे संन्यासी उन्हें मिले तो उन्होंने कहा कि मैं इस बात से मैं बहुत नाराज हूं कि आप अपने गुरु की तुलना महावीर से क्यों करते हैं? उनकी तुलना महावीर से नहीं की जा सकती। उन मित्रों ने मुझे आकर कहा। मैंने कहाः इस बात में मैं मोरारजी देसाई से सहमत हूं। तुम क्यों मेरी तुलना महावीर से करते हो? मेरी तुलना महावीर से नहीं की जा सकती, क्योंकि महावीर ढाई हजार साल पुराना माडल है। कुछ मेरी इज्जत की भी तो फिकिर करो! यह तो ऐसे ही हुआ कि मर्सिडीज बैंज अठहत्तर का माडल और तुम फोर्ड का नंबर ऐट टी माडल... । तुम कुछ मेरी इज्जत की भी फिकिर करो। ढाई हजार साल बीच में गुजर गये हैं, ढाई हजार साल का लाभ मैंने लिया है। उस ढाई हजार साल का महावीर को कुछ भी पता नहीं। तुम महावीर को क्यों बीच में लाते हो?

मैंने कहाः अब दोबारा मोरारजी देसाई को मिलो तो कह देना कि हमारे गुरु बहुत नाराज हुए! उन्होंने भी यही कहा कि यह बात बिल्कुल गलत है, कभी भूलकर ऐसा नहीं करना चाहिए।

तुम अगर हर चीज में अत्याधुनिक हो तो धर्म के संबंध में क्यों नहीं? धर्म के संबंध में तुम प्राचीन को क्यों मूल्य देते हो? सच तुम धार्मिक होना नहीं चाहते। ये तुम्हारे बहाने हैं। ये टालने की तरकीबें हैं। ये उपाय हैं तुम्हारे। कृष्ण के जमाने के रथ में तो नहीं चलते हो? जीसस तो गधे पर चलते थे, तुम तो गधे पर नहीं चलते हो। अब ईसाई होकर और कार में चलना शोभा नहीं देता। जब ईसा मसीह खुद ही गधे पर चलते थे तो तुम ईसाई होकर कार में चल रहे हो! उस संबंध में तुमने बदल ली है बात।

लेकिन ठीक उसी तरह और सारी चीजें भी गतिमान हैं। परमात्मा रोज नये फूल खिलाता है। परमात्मा रोज मसीहा भी पैदा करता है। परमात्मा रोज नये तीर्थंकर भी पैदा करता है। परमात्मा रोज नये पैगंबर भी भेजता है। परमात्मा थक नहीं गया है। मगर तुम पुरानों को पकड़कर बैठ जाते हो। पुरानों को पकड़ने में सुविधा

है; कुछ करना नहीं पड़ता। धोखा भी हो गया कि धार्मिक हैं और कुछ करना भी नहीं पड़ता। कभी-कभी पूजा कर ली, कभी-कभी फूल चढ़ा दिये, झंझट मिटा ली। निश्चिंत हो रहे। नये को पकड़ोगे तो मुसीबत आयेगी।

मेरे साथ चलोगे तो मुसीबत आयेगी। महावीर के साथ चलने से अब क्या मुसीबत है? कोई मुसीबत नहीं है। लेकिन मेरे साथ इंच-इंच मुसीबत होगी। और वही मुसीबत है, जो रूपांतरण करती है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आप क्यों इस मतांधों के देश में श्रम कर रहे हैं? परंपराग्रस्त, और रूढ़िवादी लोग आपको न समझे हैं, न समझेंगे। मैं स्वयं तो इस देश के अंधविश्वासों से इतना ऊब गया हूं कि सोचता हूं कि कहीं परदेश में जा बसूं। आपका क्या आदेश है?

लोग सब जगह एक जैसे हैं। लोगों में कुछ खास भेद नहीं है। यहां एक तरह के अंधविश्वास हैं, वहां दूसरी तरह के अंधविश्वास हैं। कोई बुनियादी अंतर नहीं है, थोड़ा-बहुत मात्रा का अंतर होगा।

क्या तुम सोचते हो कि मैं अमरीका चला जाऊं तो मेरी बात ज्यादा सुगमता से समझी जा सकेगी। नहीं! जैसे यहां हिंदुओं को विरोध है, मुसलमानों को विरोध है, जैनों को विरोध हैं--वहां ईसाइयों को विरोध होगा, कैथलिकों को विरोध होगा, प्रोटेस्टेंटों को विरोध होगा।

तुम जानकर चकित होओगे कि मैं तो बाहर गया ही नहीं कभी, लेकिन प्रोटेस्टेंट चर्च ने अपने जासूस यहां भेजे हैं, क्योंकि जर्मनी से बहुत-से युवक आकर संन्यस्त हो गये हैं। प्रोटेस्टेंट चर्च को इससे बहुत हानि हो रही है। मैं उनके लोगों को बिगाड़ रहा हूं। मेरा काम ही बिगाड़ना है! अब जर्मनी के चर्च को चिंता पैदा हुई है। उन्होंने जासूस भेजे हैं यहां कि यहां के संबंध में सारी बातें किसी भी तरह गलत-सलत प्रचारित की जायें जर्मनी में। जर्मनी मैं कभी गया नहीं हूं, लेकिन जितनी मेरी चर्चा इस समय जर्मनी में है उतनी भारत में नहीं है। शायद ही कोई अखबार हो जर्मनी का जो मेरी चर्चा से नहीं भरा है। इस दो महीने में ऐसा लगता है कि कोई सामूहिक शड्यंत्र है; सारे अखबार, सारे पत्र-पत्रिकायें... । क्योंकि जर्मनी से बड़ी संख्या युवकों की आई है।

और स्वाभाविक है कि जर्मनी से युवकों की बड़ी संख्या आये। जर्मन कौम में थोड़ी हिम्मत है, थोड़ा बल है। यह अकारण नहीं है, आकस्मिक नहीं है उनका आना। थोड़ा बल है। जर्मन सरकार परेशान है; उसने भी जासूस भेजे हैं कि यहां जांच-पड़ताल की जाये, कि मामला क्या है! मैं जरूर लोगों को सम्मोहित कर रहा हूं क्योंकि जो यहां आता है, फिर लौटता ही नहीं!

तुम सोचते हो मैं जर्मनी जाऊं तो मुझे चैन मिलेगा? मुश्किल होगी, यही इसी तरह की मुश्किल होगी। कोई भेद न पड़ेगा। सच तो यह है, हिंदू-जाति कितनी ही मतांध हो, पर हिंदू-जाति से ज्यादा उदार जाति इस दुनिया में और कोई भी नहीं है। इसे स्वीकार करना ही होगा। कितनी ही मतांध हो, कितनी ही अंधविश्वासी हो, लेकिन हिंदू-जाति से ज्यादा उदार कोई जाति दुनिया में नहीं है।

यहूदी जीसस को बर्दाश्त न कर सके, सूली पर लटका दिया। यूनानी सुकरात को बर्दाश्त न कर सके, जहर पिला दिया। और मुसलमान तो जाहिर ही हैं कि अत्यंत मतांध हैं; उन्होंने मंसूर को मार डाला, और फकीरों को मारा। भारत अकेला देश है जहां हमने बुद्धों पर, महावीरों पर थोड़ी-बहुत झंझटें कीं, पत्थर फेंक दिये, गाली-गलौज दे दी, नाराज रहे हम उन पर, मगर हमने कोई सूली नहीं लगा दी, हमने कोई गोली नहीं मार दी। हमने उन्हें भी धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया, आत्मसात कर लिया।

जो मैं कह रहा हूं, वह किसी भी देश में मुसीबत लायेगा और इस देश से ज्यादा मुसीबत लायेगा।

तुम कहते हो कि आप क्यों परंपराग्रस्त, रूढ़िवादी लोगों के साथ परेशान हो रहे हैं? मैं परेशान नहीं हो रहा, मैं पूरा मजा ले रहा हूं! परेशान तो रूढ़िवादी और परंपरावादी हो रहे हैं। मैं क्यों परेशान होने लगा! चिंता तो उन्हें हो रही है। बेचैन तो वे हैं। कुछ जायेगा तो उनका जायेगा, मेरा क्या जाना है? मुझसे झंझट लेकर उनके ही कुछ आदमी वे खो सकते हैं। मेरे पास तो कुछ खोने को नहीं है। मेरी कोई हानि होने का कारण नहीं है। और मैं अगर परेशान होऊं किसी बात से तो मैं करना ही बंद कर दूं, क्योंकि परेशानी में मुझे कुछ रस नहीं है।

तो जो भी मैं कर रहा हूं, मैं उसे आनंद से कर रहा हूं। और जो भी हो रहा है उसे आनंद से देख रहा हूं।

लेकिन तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं। तुम्हें हैरानी होती होगीः क्यों इतना श्रम करूं? और तुम इतने अंधविश्वासों से ऊब गये हो, तुम कहते हो कि मैं परदेश ही चला जाऊं। कुछ भेद न पड़ेगा। परदेश में तुम इसी तरह के लोग पाओगे।

.गम नहीं तो लज्.जते-शादी नहीं।

बे असीरी लुत्फे-आजादी नहीं।।

और जहां दुख नहीं है वहां सुख नहीं होता। और जहां कारागृह नहीं है वहां स्वतंत्रता का अनुभव भी नहीं होता। सब द्वंद्व साथ-साथ चलते हैं। अंधेरे के साथ-साथ रोशनी और जन्म के साथ-साथ मृत्यु, सब द्वंद्व साथ-साथ चलते हैं। मतांधता तो रहेगी दुनिया में, फिर भी हमें दीये जलाने हैं--मतांधता में ही दीये जलाने हैं। अब कोई सिर पीटकर बैठ जाये कि अंधेरा बहुत है, क्या रोशनी करने से फायदा? मजा ही यही है कि अंधेरा है और रोशनी करनी है। अंधेरा है तभी तो रोशनी करने का मजा है। और इतना अंधेरा कभी भी न था जितना आज है। इसलिये जितना मजा आज रोशनी करने का है, इतना मजा भी कभी नहीं था।

बुद्ध के शिष्य यह आनंद नहीं ले सकते थे जो तुम ले सकते हो, क्योंकि इतना अंधेरा न था। आज अंधेरा बहुत है। मशालें जलानी हैं! अंधेरे के कारण मशालें जलाना थोड़े ही बंद कर देंगे। अंधेरे के कारण मशालें और जलायेंगे। अंधेरे की जिद है तो रोशनी की भी अपनी जिद होगी।

मौजों की सयासत से मायूस न हो फानी।

गिरदाब की हर तह में साहिल न.जर आता है।।

लहरों के वेग से उदास न हो जाओ।

मौजों की सयासत से मायूस न हो .फानी।

गिरदाब की हर तह में साहिल न.जर आता है।।

भंवर की गहराई में जरा देखोगे तो हर भंवर की गहराई में किनारा दिखाई पड़ेगा। देखने का ढंग आना चाहिए। देखने का ढंग बदलो। स्थान बदलने से कुछ भी न होगा। यहां से छोड़कर कहीं और चले जाओगे, क्या होगा? थोड़े-बहुत भेद से इसी तरह के लोग, इसी तरह के अंधविश्वास हैं।

कदम बढ़ाओ खि.जा नसीबों! वोह मिं.जलें मुन्ति.जर हैं अपनी।

जहां पहुंचकर निगाहो-दिल को, बहार की ता.जगी मिलेगी।।

उस आदमे-नौ की आमद-आमद, है जिसके इदराक की दमक से।

समाज को बांकापन मिलेगा, हयात को दिलकशी मिलेगी।।

थोड़ी हिम्मत बढ़ाओ। कदम बढ़ाओ खिजा नसीबों! आज माना कि पतझड़ है और कहीं फूल दिखाई नहीं पड़ते, मगर थोड़े कदम बढ़ाओ। कदम बढ़ाओ खिजां नसीबों! वोह मिं.जलें मुन्ति.जर हैं अपनी। बहार की मंजिलें

राह देख रही हैं। बसंत प्रतीक्षा कर रहा है। जहां पहुंचकर निगाहो-दिल को, बहार की ताजगी मिलेगी। दिल और आंख दोनों ही तृप्त हो जायेंगे। थोड़ा बढ़ो। थोड़े कदम बढ़ाओ।

उस आदमे-नौ की आमद-आमद। ... एक नये आदमी को लाना है इस पृथ्वी पर। नया आदमी आने की तैयारी में है। तुम जरा स्थल तैयार करो, बगीचे को तैयार करो, भूमि को तैयार करो। सींचो, खाद डालो! उस आदमे-नौ की आमद-आमद। नया आदमी बस आने-आने को है। किस घड़ी आ जायेगा, कहना मुश्किल है। उस आदमे-नौ की आमद-आमद, है जिसके इदराक की दमक से। ... जिसके बोध की दमक भी काफी है, जिसके आने की भनक भी काफी है, जिसके पैरों की जरा-सी आवाज भी काफी मधुर है। समाज को बांकापन मिलेगा, हयात को दिलकशी मिलेगी। जिंदगी मस्त हो सकती है। समाज फिर एक बांकेपन से, एक रंगीनी से भर सकता है। इंद्रधनुष फिर पैदा हो सकते हैं।

उदास न हो जाओ, भागकर कहां जाओगे? और भागकर जहां भी जाओगे इसी तरह के लोग पाओगे। भागकर पाओगे कि जिन लोगों को छोड़ आये हो, वे ही लोग बेहतर थे।

तेरी .गरीबी का क्या मदावा कि तू है अहसास का सताया।
रहा अगर तेरा जहन मुफलिस तो हर जगह मुफलिसी मिलेगी।।
खला-ए-.जहनी को अपने पुर कर, नहीं तो जीना भी होगा दूभर।
यह .जेबे-फितरत रही जो खाली तो सारी दुनिया तही मिलेगी।।
वतन को तू छोड़ दे मगर, क्या, गमे-वतन तुझको छोड़ देगा?
वोह सा.ज की हो, कि मतरुबा की हर इक सदा दुखभरी मिलेगी।।
वहां जो अहले वतन मिलेंगे तो वोह भी तसवीरे-गम मिलेंगे।
अदा-अदा गम.जदा मिलेगी, न.जर-न.जर शबनमी मिलेगी।।
यहां का जब त.जकरा छिड़ेगा, तो उन फि.जाओं में दम घुटेगा।
बुझी-बुझी होगी शम.अ दिल की, धुआं-धुआं िं.जदगी मिलेगी।।
न कर मुझे मौत के हवाले, वतन से ऐ दूर जानेवाले।
यहां तड़पती हैं आज लाशें, यहीं पे कल िं.जदगी मिलेगी।
यह .जर्द पत्ते सिमट-सिमटकर समेट ही लेंगे अपने बिस्तर।
चमन सलामत, बहार इक दिन तवाफ करती हुई मिलेगी।।
नया .जमाना, नया सबेरा, नई-नई रोशनी मिलेगी।
यह रात जब ले चुकेगी हिचकी, हयात इक दूसरी मिलेगी।।

यह रात टूटने को है। यह रात एक हिचकी पर टूट जायेगी। यह .जर्द पत्ते सिमट-सिमटकर समेट ही लेंगे अपने बिस्तर। ये सूखे पत्ते चले जायेंगे अपने-आप। ये सूखे पत्ते खाद बन जायेंगे बहार के लिये, बसंत के लिये।

यह .जर्द पत्ते सिमट-सिमटकर समेट ही लेंगे अपने बिस्तर।
चमन सलामत, बहार इक दिन तवाफ करती हुई मिलेगी।।

जल्दी ही तुम पाओगेः बसंत आ गया, बहार परिक्रमा कर रही है! सब तुम पर निर्भर है। भागने से कुछ न होगा, जागने से कुछ हो सकता है।

नया .जमाना, नया सबेरा, नई-नई रोशनी मिलेगी।
यह रात जब ले चुकेगी हिचकी, हयात इक दूसरी मिलेगी।।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

जगत --एक रूपक

पहला प्रश्नः परमात्मा की परिभाषा क्या है?

परमात्मा की परिभाषा? परमात्मा और परिभाषा? परमात्मा तो उसी का नाम है जिसकी कोई परिभाषा नहीं है। परमात्मा अर्थात अपरिभाष्य।

इसलिये परमात्मा की परिभाषा पूछोगे, उलझन में पड़ोगे। जो भी परिभाषा बनाओगे वही गलत होगी। और कोई परिभाषा पकड़ ली तो परमात्मा को जानने से सदा के लिये वंचित रह जाओगे।

परमात्मा समग्रता का नाम है। और सब चीजों की परिभाषा हो सकती है समग्रता के संदर्भ में, पर समग्रता की परिभाषा किसके संदर्भ में होगी?

जैसे हम कह सकते हैं कि तुम च्वांगत्सु के छप्पर के नीचे बैठे हो, च्वांगत्सु का छप्पर वृक्षों की छाया में है, वृक्ष चांद-तारों की छाया में हैं, चांद-तारे आकाश के नीचे हैं, फिर आकाश। फिर आकाश के ऊपर कुछ भी नहीं। सब आकाश में है तो आकाश किस में होगा? यह तो बात बनेगी ही नहीं। जब सब आकाश में है तो अब आकाश किसी में नहीं हो सकता। इसलिये आकाश तो होगा, लेकिन किसी में नहीं होगा।

ऐसे ही परमात्मा है। परमात्मा का अर्थ है, जिसमें सब है; जिसमें बाहर का आकाश भी है और भीतर का आकाश भी है, जिसमें पदार्थ भी है और चैतन्य भी; जिसमें जीवन भी है और मृत्यु भी--दिन और रात, सुख और दुख, पतझड़ और बसंत, जिसमें सब समाहित है। परमात्मा सारे अस्तित्व का संदर्भ है, उसकी पृष्ठभूमि है। इसलिये स्वयं परमात्मा की कोई परिभाषा नहीं हो सकती।

ऐसा नहीं है कि परिभाषा न की गई हों; आदमी ने परिभाषाएं की हैं, लेकिन सब परिभाषाएं गलत हैं। हो ही नहीं सकती परिभाषा, तो ठीक होने का कोई उपाय ही नहीं है। परमात्मा को जाना जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है, जीया जा सकता है, उसका स्वाद लिया जा सकता है; लेकिन परिभाषा? परिभाषा, मत पूछो। और अगर तुमने तय किया कि पहले परिभाषा करेंगे, फिर यात्रा करेंगे, तो न तो परिभाषा होगी, न कभी यात्रा होगी।

परिभाषा तो छोटी-छोटी चीजों की हो सकती है। शब्दों की सामर्थ्य कितनी है? शब्द में कुछ भी कहोगे, सीमित हो जायेगा; जैसे ही कहोगे वैसे ही सीमित हो जायेगा।

सत्य, इसीलिए कहते ही असत्य हो जाता है। बोले कि सत्य की विराटता गई। लाओत्सु जीवन-भर चुप रहा, नहीं बोला। हजार बार पूछा गया सत्य के संबंध में, चुप रहा। और सब चीजों के संबंध में बोलता था, लेकिन सत्य के संबंध में चुप रह जाता था। और अंत में जब बहुत उस पर आग्रह डाला गया, जोर डाला गया कि जीवन से विदा लेते क्षण कुछ तो सूचना दे जाओ, तुमने जो जाना था, तुमने जो पहचाना था, उसकी--तो उसने जो पहला ही वचन लिखा वह थाः सत्य बोला कि झूठ हो जाता है। कोई बोला गया सत्य सत्य नहीं होता। कारण? सत्य का अनुभव तो होता है निशब्द में, शून्य में, और जब तुम बोलते हो तो शून्य को समाना पड़ता है छोटे-छोटे शब्दों में।

एक पिता अपने छोटे बच्चे को समझा रहा था--महान नेपोलियन का प्रसिद्ध वचन कि इस जगत में कुछ भी असंभव नहीं है। वह छोटा बच्चा खिलखिलाकर हंसने लगा। उसने कहाः गलत! बाप ने कहा कि तू कहता है गलत! नेपोलियन ने कहा है कि इस जगत में कुछ भी असंभव नहीं है। उस लड़के ने कहा कि मैं अभी करके बता सकता हूं एक चीज, जो बिल्कुल असंभव है, क्योंकि मैं कई दफे करके देख चुका हूं। वह भागा, स्नान-गृह से उठा लाया टुथपेस्ट। टुथपेस्ट को पिचकाकर उसने बाहर निकाल दिया और पिता से कहा कि इसको भीतर करके दिखा दो, सिद्ध हो जायेगा कि नेपोलियन ठीक कहता है कि गलत कहता है।

अब टुथपेस्ट बाहर निकल आया, इसको भीतर कैसे करोगे? छोटे बच्चे ने ठीक किया। छोटे बच्चे की सामर्थ्य... समझ के अनुसार बिल्कुल ठीक उत्तर दिया, नेपोलियन को गलत कर दिया!

इस जगत में बहुत कुछ है जो असंभव है। और सच तो यह हैः वही पाने योग्य है जो असंभव है। विरोधाभास मालूम होगा। परमात्मा को कहना असंभव है, इसलिए परमात्मा पाने योग्य है। कहा जा सकता होता, किताबों में लिख दिया गया होता, स्कूलों में पढ़ा दिया गया होता, लोगों ने कंठस्थ कर लिया होता। फिर बात बड़ी आसान हो गई होती, बड़ी सस्ती हो गई होती, दो कौड़ी की हो गई होती। न आज तक कोई कह सका है परमात्मा को न कभी कोई कह सकेगा; इसलिये अनुभव सदा ही क्वांरा है। जब भी तुम जानोगे, उधार नहीं होगा। तुम ही जानोगे। और जानते ही तुम गूंगे हो जाओगे। और सब बोल सकोगे, बस परमात्मा के संबंध में एकदम चुप्पी साध जाओगे।

शब्द तो बड़े छोटे-छोटे हैं। अगर कहो परमात्मा प्रकाश है, तो फिर अंधेरे का क्या होगा? ऐसा कहा है शास्त्रों में कि परमात्मा प्रकाश है। चलो मान लें इसे परिभाषा, फिर अंधेरे का क्या होगा? फिर अंधेरा कहां जायेगा? अंधेरा भी है, प्रकाश से कहीं ज्यादा है। प्रकाश तो कभी होता है कभी नहीं भी होता; अंधेरा सदा है, शाश्वत है। अंधेरे को कहां रखोगे? अगर कहा परमात्मा प्रकाश है, तो अंधेरा बाहर पड़ गया। अगर कहा परमात्मा अंधेरा है, तो प्रकाश बाहर पड़ गया। अगर कहो परमात्मा अंधेरा प्रकाश दोनों है, तो विरोधाभास होता है। दोनों एक साथ हो नहीं सकता। एक ही कमरे में अंधेरा और प्रकाश करके दिखाओ। प्रकाश करोगे, अंधेरा खो जायेगा; अंधेरा बचाओगे, प्रकाश न कर सकोगे। तो दोनों साथ कैसे होंगे? तब एक असंभव बात हो गई। तो यह भी नहीं कह सकते कि दोनों है।

फिर चौथा उपाय यह है कि कहो कि दोनों नहीं है--न प्रकाश है न अंधेरा है। वह भी बात ठीक नहीं, क्योंकि फिर प्रकाश का उदभव कहां से होगा? फिर अंधेरे का आविर्भाव कहां से होगा? सब उसी से उमगता है, सब उसी में वापिस लीन हो जाता है।

नहीं, शब्द उसे नहीं कह पायेंगे। और परिभाषाएं तो शब्दों से बनती हैं। और न ही मूर्तियां उसे कह पायेंगी, क्योंकि मूर्तियां भी आखिर मनुष्य गढ़ता है। न चित्र उसे कह पायेंगे, न संगीत उसे कह पायेगा, न काव्य। यहां तक कि तुम अगर चुप हो जाओगे तो तुम्हारी चुप्पी भी उसे न कह पायेगी, क्योंकि चुप्पी भी एक इशारा है। सभी इशारे छोटे हैं। उसे मौन से भी नहीं कहा जा सकता, मुखरता से कहने की तो बात ही अलग है, क्योंकि मौन भी सीमित कर देता है। अगर तुम कहो कि मौन से तो कहा जा सकता है। पूछा कि परमात्मा है, और जिससे पूछा वह चुप रह गया। अगर परमात्मा मौन है तो फिर शब्दों का जन्म कहां से है? फिर शब्द कहां से आते हैं? उसे शब्द कहो तो फिर मौन भी तो है, मौन कहां से आता है?

जैसे ही तुमने परिभाषा की वैसे ही उलझन बढ़ी, घटेगी नहीं। तुमने तो पूछा है घटाने को कि परिभाषा साफ हो जाये तो यात्रा सुगम हो। लेकिन परिभाषा साफ होगी नहीं, और उलझती जायेगी; जितना सुलझाओगे

उतनी उलझती जायेगी। और परिभाषा में बहुत उलझ गये तो दर्शन-शास्त्र में डूबे रह जाओगे। धर्म से तुम्हारा कभी संबंध न हो पायेगा। फिर तुम व्यर्थ शब्दों की खाल निकालते रहोगे, बाल की खाल निकालते रहोगे, तर्क-जाल में गिर जाओगे। और तर्कों के जंगल विराट हैं, उनका कोई अंत नहीं। जो उनमें प्रवेश करता है, बहुत मुश्किल हो जाता है उसका निकलना। पांडित्य में जो भटक गया उसका लौटना बहुत मुश्किल हो जाता है, बहुत दूभर हो जाता है। अज्ञानी पहुंच जाते हैं, पंडित नहीं पहुंच पाते।

सौ-सौ सांचे बना रहा तू,
किसी एक में मैं आ जाऊं!

यह तो ज्यों त्रिकोण के मुख में
वर्गाकार दंड को रखना!
यह तो जैसे कनक-कसौटी पर
हीरे का मोल परखना!

यह तो कठिन असंभव-सा है,
जैसे गूंगे को पंचम स्वर!
मानो, कोई चला मापने
वामन अपने पद से अंबर!

तेरे ये सांचे सब सीमित,
मैं असीम किस भांति समाऊं?

सांचा तो सीमित ही होगा। सांचा तो असीम नहीं हो सकता, नहीं तो फिर सांचा कैसे होगा?

तेरे ये सांचे सब सीमित,
मैं असीम किस भांति समाऊं?

और आदमी ने कितने सांचे बनाये... जैनों ने, बौद्धों ने, ईसाइयों ने, मुसलमानों ने, हिंदुओं ने, पारसियों ने कितने सांचे नहीं ढाले! ये सारी दुनिया के धर्म हैं क्या? परमात्मा को प्रगट करने के लिये की गई चेष्टायें; परमात्मा की परिभाषा बनाने के उपाय।

सौ-सौ सांचे बना रहा तू,
किसी एक में मैं आ जाऊं!

लेकिन कोई सांचा उसे पकड़ नहीं पाया। इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई उसे नहीं पकड़ पाया। जिसने सब सांचे तोड़ दिये वह उसे पकड़ पाया। जिसने सब शास्त्र छोड़ दिये वह उसे पकड़ पाया। जिसने सारे संप्रदायों की सीमाओं का उल्लंघन कर दिया वह उसे पकड़ पाया।

यह तो ज्यों त्रिकोण के मुख में
वर्गाकार दंड को रखना

ऐसा ही असंभव काम कर रहे हो तुमः त्रिकोण के मुख में वर्गाकार दंड को रखना।

यह तो जैसे कनक-कसौटी पर

हीरे का मोल परखना!

सच है कि सोने को कसा जा सकता है पत्थर पर, मगर अगर हीरे को कसोगे तो पागल हो जाओगे। हीरे को कैसे कसोगे सोने की कसौटी पर?

शब्द बने हैं जगत की अभिव्यक्ति के लिये। शब्द बने हैं सामाजिक आदान-प्रदान के लिये। शब्द बने हैं दो मनुष्यों के बीच संवाद हो सके, इसलिए। यह शब्दों की सीमा है। शब्द मनुष्य और परमात्मा के बीच संवाद हो सके, इसलिये नहीं बने। मनुष्य और परमात्मा के बीच कोई भाषा नहीं है।

लेकिन दावेदारों का तो क्या कहना। दावेदारों की मूढ़ता का तो क्या कहना! कोई घोषणा करता है कि संस्कृत देव-भाषा है। देव-भाषा! फिर कोई कहता है कि नहीं, अरबी उसकी असली भाषा है, नहीं तो कुरान अरबी में बोलता वह? फिर कोई कहता हैः नहीं, अरेमैक... क्योंकि जीसस अरेमैक बोले। फिर कोई कहता है हिब्रू, क्योंकि मो.जज हिब्रू में बोले। जरूर मो.जज हिबूर में बोले और कृष्ण संस्कृत में बोले और बुद्ध पाली में और महावीर प्राकृत में; मगर परमात्मा की कोई भी ये भाषायें नहीं हैं। परमात्मा और मनुष्य के बीच भाषा का संबंध ही नहीं बनता। परमात्मा और मनुष्य के बीच संबंध ही तब बनता है जब सब भाषा गिर जाती है। मुखरता तो मुखरता, मौन भी गिर जाता है। न मौन रह जाता न मुखरता रह जाती है। ऐसा सन्नाटा कि यह भी बोध नहीं रह जाता कि मैं चुप हूं। जब तक तुम्हें यह बोध है कि मैं चुप हूं तब तक जानना शब्द अभी मौजूद हैं, छिपे हैं। यह बोध भी तो शब्द में ही होगा न, जब तुम सोचोगे कि मैं चुप हूं! तुम कैसे सोचोगे कि मैं चुप हूं? तुम कैसे जानोगे अपने भीतर कि मैं चुप हूं, जब तुम भीतर भी जानोगे कि मैं चुप हूं तुमने शब्द बना लिये। चुप्पी भी शब्द बन गई। तुमने कहा मैं मौन हूं, मौन भी शब्द हो गया। तो मुखरता भी खो जाये और मौन की भी याद न रह जाये, ऐसी विस्मृति हो, ऐसी गहन विस्मृति हो, ऐसा नशा छा जाये, ऐसी मादकता हो, ऐसी मस्ती हो, ऐसे पी बैठो अस्तित्व के रस को--तब जाना जाता है। लेकिन संस्कृत कोई उसकी भाषा नहीं है और न अरबी और न हिबूर। कोई भाषा उसकी भाषा नहीं है।

दूसरे महायुद्ध में जर्मन हार गये। एक हारा हुआ सेनापति एक अंग्रेज सेनापति से बात कर रहा था कि हम हार कैसे गये? हमारी ताकत तुमसे कम न थी, ज्यादा थी। हमारे सैनिक तुमसे कमजोर न थे, ज्यादा शक्तिशाली थे। हम हार कैसे गये? तुम क्या कारण पाते हो हमारे हारने का?

अंग्रेज सेनापति हंसा। उसने कहाः कारण यह है कि हम हर युद्ध के पहले परमात्मा से प्रार्थना करते थे। परमात्मा से की गई प्रार्थना का परिणाम है कि हम जीते और तुम हारे।

जर्मन सेनापति ने कहाः यह तो हद को गई, प्रार्थना तो हम भी करते थे! हर युद्ध के पहले। प्रार्थना कारण नहीं हो सकती, क्योंकि हमने कभी प्रार्थना में कोई चूक नहीं की।

अंग्रेज ने कहाः लेकिन तुम किस भाषा में प्रार्थना करते थे?

जर्मन ने कहाः निश्चित, जर्मन में।

अंग्रेज बोलाः बस, बात साफ हो गई। परमात्मा को जर्मन आती है? परमात्मा अंग्रेजी बोलता है। वहीं तुम्हारी चूक है।

दुनिया में तीन हजार भाषायें हैं। हर भाषा का दावेदार सोचता है यही परमात्मा की भाषा है। होनी ही चाहिए; जो मेरी भाषा है वह परमात्मा की भाषा होनी चाहिए। आदमी का अहंकार ऐसा है कि उसकी भाषा परमात्मा की भाषा, उसका रंग परमात्मा का रंग, उसकी ऊंचाई परमात्मा की ऊंचाई, उसका चेहरा परमात्मा का चेहरा। चीनी जब परमात्मा बनाते हैं तो नाक चपटी होती है उसकी। स्वभावतः चीनी और उसकी लंबी

नाक बनायें, कोई अपना अपमान करेंगे? और जब नीग्रो उसकी प्रतिमा बनाता है तो उसके ओंठ बड़े मोटे होते हैं। अब नीग्रो और पतले ओंठ बनाये... ! और नीग्रो जब उसकी प्रतिमा बनाता है तो बाल घुंघराले होते हैं। स्वाभाविक।

हम अपनी प्रतिमा में परमात्मा को गढ़ लेते हैं। हम अपनी ही छाया में परमात्मा को गढ़ लेते हैं। हमारी भाषा उसकी भाषा। हमारा जीवन उसका जीवन। हमारी जीवन की शैली उसके जीवन की शैली। हमारा आचरण उसका आचरण। हमारा शास्त्र उसके द्वारा दिया गया शास्त्र। ये सब अहंकार के ही उपाय हैं। अहंकार पीछे के रास्ते से अपने को भर रहा है।

ये धार्मिक आदमी के लक्षण नहीं हैं। न तो हमारा चेहरा उसका चेहरा है, न हमारी भाषा उसकी भाषा है, न हमारा रंग उसका रंग है। उसका कोई रंग नहीं है और सब रंग उसके हैं। उसकी कोई भाषा नहीं और सब भाषायें उसकी हैं। वह कभी नहीं बोला और जो भी आज तक बोला गया है, वही बोला।

इतना विरोधाभास तुम्हें एक साथ समझने की क्षमता हो तो ही तुम यात्रा कर पाओगे। परिभाषा तो विरोधाभास से बचने का उपाय है। परिभाषा का अर्थ होता हैः साफ-सुथरी व्याख्या हो जाये तो हम चल सकें; दिशा का निर्देश हो जाये तो हम चल सकें।

सौ-सौ सांचे बना रहा तू,
किसी एक में मैं आ जाऊं!
यह तो ज्यों त्रिकोण के मुख में
वर्गाकार दंड को रखना!
यह तो जैसे कनक-कसौटी पर
हीरे का मोल परखना!
यह तो कठिन असंभव-सा है
जैसे गूंगे को पंचम स्वर!
मानो, कोई चला मापने
वामन अपने पद से अंबर!
तेरे ये सांचे सब सीमित,
मैं असीम किस भांति समाऊं!

नहीं, परमात्मा किसी परिभाषा में कभी समाया नहीं--अनुभव में जरूर आया है। अनुभव में खूब-खूब आया है! अनुभव में बाढ़ की भांति आया है। परिभाषा न मांगो, अनुभव मांगो! शब्द न मांगो, साक्षात मांगो। सिद्धांत न मांगो, शास्त्र न मांगो, स्वानुभूति मांगो।

लोक-लोक के द्वार खोल दो,
मैं कर सकूं तुम्हारा दर्शन!
तुम बैठे थे अंतर्तम में
जाने, कब से अंतर्वासी!
मैं तुमको पहचान न पाया;
तुम भी तो प्रभु, रहे उदासी!
कहां किसे मैं ढूंढ रहा था?

किसके लिये विकल था अब तक?
दो बूंदें उमड़ी आंखों में;
नत हो गया आप ही मस्तक!
पूछो मत, पूछो मत, मेरा
सुख क्या है? कैसा आनंद?
ईर्ष्या करो, तपो आजीवन;
समझो, मैं कितना स्वच्छंद!
आंसू से भीगी इच्छाएं
थीं, बन गयीं यज्ञ की ईंधन!

जैसे बिजली पकड़ ली गयी;
चमकी और हुई हो निश्चल!
जैसे पारावार प्रलय का,
राशि-राशि जल ही जल केवल!
यह अबाध उल्लास ज्योति का,
महा-हर्ष का झंझानिल है!
अग्नि-स्फुल्लिंग, छंद-गानों से
मुखरित जब हो रहा निखिल है!
सूर्य, चंद्र, नक्षत्र और ये
तारक-ग्रह जैसे अचपल हों!
जैसे दिवा-स्वप्न टूटा हो!
और नये ही दिग्मंडल हो,
अवलोकन करने दो मुझको
क्षण भर करो रहस्योदघाटन!

जिस दिन तुमको देखा, कोई
वस्तु देखने की न रही है;
कोई काम न कोई तृष्णा,
अपनी ही सम्पूर्ण मही है!
अहे अनिर्वच, क्या बतलाऊं?
कैसा रूप तुम्हारा है यह!
दिव, नीहार, धूम, विद्युत, या
तरल अग्नि का पारा है यह!
दिग्दिगन्त के रंध्र खोल दो;
लहराने दो ज्योति-समीरण!

लोक-लोक के द्वार खोल दो,

मैं कर सकूं तुम्हारा दर्शन!

प्रार्थना करो, परिभाषा न खोजो। पुकारो, परिभाषायें न बनाओ। जागो, खोजो। दूर नहीं है परमात्मा।

तुम बैठे थे अंतर्तम में

जाने, कब से अंतर्वासी!

भीतर ही बैठा है तुम्हारे। जिसकी तुम परिभाषा खोज रहे हो वह तुम्हारे भीतर बैठा है। जिसकी तुम परिभाषा खोज रहे हो वह परिभाषा खोजनेवाले में छिपा है। लौटो, आंखें पलटाओ।

कहां किसे मैं ढूंढ रहा था?

किसके लिये विकल था अब तक?

जिस दिन जानोगे उस दिन चौंकोगे, किसे खोजते थे? व्यर्थ ही खोजते थे, व्यर्थ ही विकल थे। उसे तो कभी खोया ही न था, क्षण-भर को उससे नाता न टूटा था।

दो बूंदें उमड़ी आंखों में;

नत हो गया आप ही मस्तक!

प्रार्थना पूरी हो जाती है--बस दो बूंदें आंखों में उमड़ आयें। मस्तिष्क परिभाषा मांगता है; हृदय प्रेम। मस्तिष्क शब्द गढ़ता है रूखे-सूखे; हृदय गीले भाव जगाता है, आंसुओं से भरे। और मनुष्य के पास उसकी पूजा, अर्चना के लिये और कुछ भी नहीं है, सिवाय आंसुओं के। मत तोड़ो फूल वृक्षों से, उन फूलों को तुम पत्थर की मूर्तियों पर चढ़ाते रहोगे, समय गवांते रहोगे। आने दो फूल तुम्हारी आंखों में, तुम्हारे आंखों के फूल झरने दो। वे आंसू ही, वे गीले आंसू ही तुम्हें उससे जोड़ पायेंगे। परिभाषा तो न हो सकेगी, लेकिन एक दिन उल्लास का अनुभव होगा, उत्सव होगा।

यह अबाध उल्लास ज्योति का,

महा-हर्ष का झंझानिल है!

अग्नि-स्फुल्लिंग, छंद-गानों से

मुखरित जग हो रहा निखिल है!

अगर तुम शांत होकर, मौन होकर उसे पुकारोगे, तुम्हारी आंखों में आर्द्रता होगी प्रार्थना की, तो तुम पाओगे एक विराट उत्सव चल रहा है। इसी उत्सव का दूसरा नाम है परमात्मा।

अहे अनिर्वच, क्या बतलाऊं?

कैसा रूप तुम्हारा है यह!

उस अनिर्वचनीय का रूप कोई बतला नहीं सका, कोई बतला नहीं सका! जाना है अनेकों ने और ऐसे लोगों ने जाना है कि जो बड़े धनी थे शब्दों के। जिनकी कुशलता बड़ी थी अभिव्यक्ति की, वे भी चुप रह गये, वे भी गूंगे हो गये।

अहे अनिर्वच, क्या बतलाऊं?

कैसा रूप तुम्हारा है यह!

दिव, नीहार, धूम, विद्युत या

तरल अग्नि का पारा है यह!

दिग्दिगंत के रंध्र खोल दो;

लहराने दो ज्योति-समीरण!

लोक-लोक के द्वार खोल दो,

मैं कर सकूं तुम्हारा दर्शन!

दर्शन मांगो, दृष्टि मांगो, परिभाषायें नहीं। मैं तुम्हें यहां परिभाषा देने को नहीं हूं। परिभाषा चाहिए, पंडितों के पास जाओ, वहां परिभाषाएं ही परिभाषाएं हैं। अनुभव मांगो यहां, दर्शन मांगो यहां, प्रतीति मांगो।

मैं तुम्हें नगद चीज देना चाहता हूं, उधार चीजें क्यों मांगते हो? मेरी परिभाषा किस काम पड़ेगी तुम्हारे? एक सूचना हो जायेगी, स्मृति में टंगी रह जायेगी। तुम्हारे जीवन का रूपांतरण ऐसे नहीं होगा। आग मांगो, कि जल जाओ उसमें, कि नये का जन्म हो, कि पुराने की मृत्यु।

दूसरा प्रश्नः जीसस, सुकरात और मंसूर जैसे साक्षात प्रेमावतारों के शरीर को जिस घृणापूर्ण ढंग से सूली, जहर और कत्ल दी गई--उससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि अस्तित्व बिल्कुल तटस्थ है?

अमृत सिद्धार्थ, अस्तित्व तटस्थ भी है और अत्यंत प्रीतिपूर्ण भी। तुम्हें विरोधाभासों को समझने की क्षमता जगानी ही होगी। और यह भी ख्याल रख लेना कि अस्तित्व इसीलिये तटस्थ है क्योंकि प्रीतिपूर्ण है। और तब तुम्हें मुश्किल हो जायेगी, क्योंकि तुम सोचते होः जो तटस्थ है वह प्रीतिपूर्ण कैसे होगा? अगर अस्तित्व प्रीतिपूर्ण है तो जीसस को बचा लेता? बचाना ही था। वही तो जीसस के विरोधी मांग कर रहे थे। वे कहते थे कि तुम अगर ईश्वर के बेटे हो तो देख लेते हैं, परीक्षा हुई जाती है। अगर तुम्हारा ईश्वर से नाता है, संबंध है, जैसा तुम कहते हो, दावा करते हो, तो चलो निर्णय हो जायेगा, सूली पर निर्णय हो जायेगा। अगर उतर आता एक हाथ आकाश से और बरस जाते फूल और सूली सिंहासन बन जाती... यही तो दुश्मन मांग रहे थे। वे कहते थेः ये प्रमाण दे दो। सूली लग गई, न फूल बरसे, न सूली सिंहासन बनी, न कोई आकाश से दिव्य हाथ आया, न कोई चमत्कार हुआ, न पहाड़ हिले, न सूरज अस्त हुआ, कुछ भी न हुआ, कुछ भी न हुआ। जैसे किसी साधारण आदमी को सूली दे दी हो, ऐसे ही जीसस को भी सूली लग गई और सब समाप्त हो गया। स्वाभाविक है कि लगे कि अस्तित्व बिल्कुल तटस्थ है, अस्तित्व को कुछ लेना-देना नहीं।

लेकिन थोड़े गहरे चलो। अस्तित्व तटस्थ है, क्योंकि प्रेमपूर्ण हैं। ऐसा मैं क्यों कहता हूं? अगर अस्तित्व प्रेमपूर्ण है, तो ही तुम्हारे जीवन में स्वतंत्रता हो सकती है। मगर स्वतंत्रता के लिये अस्तित्व का तटस्थ होना भी जरूरी है, नहीं तो स्वतंत्रता नष्ट हो जायेगी। अगर अस्तित्व हर कदम पर बाधाएं डालने लगे तो जीवन कारागृह हो जायेगा। जीवन कारागृह नहीं है। परमात्मा ने तुम्हें पूरी स्वतंत्रता दी है, तुम जो होना चाहो, उसकी स्वतंत्रता दी है--पापी या पुण्यात्मा, अच्छे या बुरे, तुम जो होना चाहो। एडोल्फ हिटलर से लेकर गौतम बुद्ध तक तुम जो होना चाहो, परमात्मा ने तुम्हें पूरी स्वतंत्रता दी है।

यह मनुष्य की गरिमा है, यह गौरव है। और यह परमात्मा की अनुकंपा है, अपार अनुकंपा है कि मनुष्य स्वतंत्र है। यह स्वतंत्रता दी ही इसलिए है कि अस्तित्व प्रीतिपूर्ण है। प्रेम ही तो स्वतंत्रता देता है और जो प्रेम स्वतंत्रता न दे सके, छोटा प्रेम है। परमात्मा का प्रेम बड़ा है, इतना बड़ा है कि तुम उसके विपरीत भी चले जाओ तो भी स्वतंत्रता है। इस प्रेम के बड़प्पन को समझो। इस प्रेम की विशालता को समझो।

तुम तो छोटे-छोटे प्रेम जानते हो। तुम तो ऐसे प्रेम जानते हो जो कि प्रेम नहीं हैं। पति जरा देर से आया सांझ घर कि पत्नी को संदेह है। इसको तुम प्रेम कहते हो? पत्नी पड़ोसी से हंसकर बात कर रही थी कि पति

संदिग्ध हो गया। इसको तुम प्रेम कहते हो? स्वतंत्रता इसमें नाममात्र को नहीं है। प्रेम के नाम पर दूसरे के गले में फांसी लगानी है। प्रेम के नाम पर कब्जा है, मालकियत है। प्रेम के नाम पर राजनीति है।

परमात्मा का प्रेम ऐसा प्रेम नहीं है कि जरा रात देर से लौटे कि परमात्मा खड़ा है सामने कि कहां रहे कि जरा-सी भूल-चूक की, कि खड़ा हो गया सामने कि तुमने ऐसा क्यों किया? परमात्मा का प्रेम विराट है, पहली बात। और उसी विराट प्रेम के कारण परमात्मा तटस्थ मालूम होता है। गलत हुआ होता अगर परमात्मा ने जीसस पर फूल बरसा दिये होते और सूली सिंहासन बन गई होती, गलत हुआ होता। क्योंकि फिर मनुष्य की स्वतंत्रता न रह जाती। फिर मनुष्य को अपने जीवन को अपने ढंग से जीने का अधिकार न रह जाता।

तुम जरा सोचो, अगर ऐसा हुआ होता तो दुनिया से सारे धर्म खो गये होते, सिर्फ ईसाइयत बचती। फिर बुद्धों का क्या होता, महावीरों का क्या होता, जरथुस्त्रों का क्या होता? फिर ये जो इतने विभिन्न धर्मों के फूल हैं और इतना वैविध्य है जगत में, यह सब खो गया होता--एक उदास ईसाइयत होती।

नहीं, परमात्मा ने बाधा नहीं दी। लोग जो कर रहे थे करने दिया। और इस तरह जीसस को भी एक अवसर दिया। जीसस के मन में भी इसी तरह का भाव था, एक क्षण को जीसस भी डगमगा गये थे। सूली जब लगी और हाथ पर जब खीले ठोंके गये तो जीसस ने भी आकाश की तरफ पुकार कर कहा थाः हे प्रभु, यह तू क्या दिखला रहा है? कहीं भीतर अचेतन में छुपी एक कामना रही होगी कि समय जब पड़ेगा तो परमात्मा काम आयेगा। मानवीय कामना है, कौन नहीं करेगा! समझ में आती है कि जब समय पड़ेगा तो परमात्मा काम आयेगा। लेकिन मैं परमात्मा से काम लूं अपने हिसाब से, इसमें अहंकार भी है; और परमात्मा मेरी अपेक्षा पूरी करे, मेरे ढंग से व्यवहार करे इसमें परमात्मा पर आरोपण भी है। इसमें उसकी ही मर्जी अंतिम है, ऐसा भाव नहीं है। क्षण-भर को जीसस के मन भी संदेह कंप गया, एक लहर दौड़ गई और जीसस ने कहाः हे प्रभु, तू मुझे क्या दिखला रहा है?

देखते हो, शिकायत हो गई!

पर जीसस बड़े संवेदनशील व्यक्ति थे, तत्क्षण समझ गये, एक क्षण में बात समझ में आ गई। वह जो लहर उठ गई थी जरा-सी संदेह की, पकड़ लिया उसे। समझ ली अपनी भूल, झुक गया सिर। और जीसस ने दूसरे जो शब्द कहे तत्क्षण, वे थेः हे प्रभु, तेरी जो मर्जी हो वही पूरी हो। मेरी मर्जी पर ध्यान न देना। मैं क्या जानूं कि क्या ठीक है? मेरी मर्जी का मूल्य क्या? तू जानता है क्या ठीक है। तू जो करे वही ठीक! मैं नतमस्तक हूं!

यह समर्पण। यह असली चमत्कार है। अगर परमात्मा ने फूल बरसा दिये होते, जीसस जीसस ही रह जाते, क्राइस्ट न हो पाते।

अब तुम समझो थोड़ा। अगर फूल बरस गये होते तो जीसस का अहंकार भर गया होता, जीसस ने कहा होता कि लो देख लो अब, अब देख लो सब, सारे विरोधी, कि कौन सच्चा है! अब यह कसौटी हो गई। जीसस का अहंकार प्रबल हो गया होता और वहीं भूल हो गई होती। जीसस खो गये होते, भटक गये होते।

पापियों से भी बड़ा अहंकार पुण्य का होता है। और इतना बड़ा पुण्य कि परमात्मा उतरे आकाश से बचाने अपने प्यारे को, तो अकड़ कैसी न हो गई होती! उस अकड़ में परमात्मा से संबंध ही जीसस का सदा के लिए टूट गया होता। लेकिन चमत्कार हुआ। परमात्मा ने कुछ भी न किया; इस न करने में चमत्कार है। मगर इसे देखने के लिये बड़ी गहरी आंख चाहिये, सिद्धार्थ। ऊपर-ऊपर से तो ऐसा ही दिखा कि परमात्मा ने बड़ी उदासी रखी, बिल्कुल तटस्थ रहा; जीसस मरे कि नहीं, कोई जैसे मतलब ही नहीं था। जरा भी बीच में आया नहीं। मगर और गहरे देखो। आया। बिना बीच में आये बीच में आया, जिसको लाओत्सु ने कहा हैः वह बिना

किये करना। बिना कृत्य के करना। कृत्य कुछ भी न किया और क्रांति घटी। जीसस को एक अवसर दिया कि तू अपनी आखिरी अपेक्षाएं भी छोड़ दे। तू आग्रह छोड़ दे। शिकायत का रेशा भी न रह जाये।

यह अवसर दिया जीसस को। यही असली घटना थी। यही महोत्सव है, जो जीसस के भीतर घटा। वे झुक गये। उस झुकने में जीसस क्राइस्ट हो गये, बुद्ध हो गये। उसी झुकने में वह महापर्व आ गया, समर्पित हो गये। बूंद सागर में गिर गई और सागर हो गई।

फिर यह भी ख्याल रखो कि तुम्हें जो मृत्यु मालूम पड़ती है वह परमात्मा के लिये मृत्यु नहीं है। तुम्हें लगती है अड़चन कि जीसस, सुकरात और मंसूर जैसे प्रेमावतारों को सूली दी गई, जहर पिलाया गया, हाथ-पैर काटे गये, गर्दनें काटी गईं, परमात्मा कैसे देखता रहा? यह तुम्हारा देखना और परमात्मा का देखना, तुम सोचते हो एक जैसा होगा? यह ऐसा ही है कि बच्चे ने अपने खिलौने की गर्दन तोड़ दी, बाप बैठा देखता रहा, कुछ भी न बोला। दूसरे बच्चे कहेंगेः यह बाप कैसा है! गर्दन तोड़ी गई और बाप बैठा देखता रहा! अब बाप जानता है कि खिलौना है और बच्चा आज नहीं कल गर्दन तोड़ेगा ही। खिलौने टूटने के लिए ही होते हैं। लेकिन छोटे बच्चे को तो खिलौना खिलौना नहीं है; उसे तो बड़ा जीवित मालूम होता है। छोटे बच्चे तो अपने खिलौनों को रात बिस्तर पर भी ले जाते हैं, उनको नहलाते भी हैं, उनको खिलाने की भी कोशिश करते हैं, घुमाने भी ले जाते हैं, उनसे बातचीत भी करते हैं। खिलौना गिर जाये तो उठाकर उसको पुचकारते हैं, समझाते भी हैं कि मत रो। छोटा बच्चा तो अपने खिलौनों को जीवित मानता है। हमारी भी बुद्धि उतनी ही है।

तुम जब जीसस को सूली लगते देखते हो, तब तुम सोचते हो जीसस को सूली लग रही है! जीसस को तो सिंहासन ही मिल रहा है। देह गिर रही है। देह तो मिट्टी की है, खिलौना है। परमात्मा की तरफ से देखने पर देह तो गिरेगी ही, आज नहीं कल। देह को कब तक बचाया जा सकता है? देह तो मरणधर्मा है। और अगर ऐसा समझो, तो फिर जीसस से बेहतर मरने का ढंग और क्या होगा? फिर सुकरात से बेहतर मरने का ढंग और क्या होगा? प्यारा ढंग चुना। मृत्यु भी बड़ी महत्वपूर्ण हो गई, क्योंकि जीसस की मृत्यु से ही जीसस का प्रभाव पड़ा जगत पर, जीसस की छाया पड़ी जगत पर। जीसस की मृत्यु ने ही मनुष्य को जीसस के प्रति आकर्षित किया।

सुकरात के जहर ने ही तो सुकरात के नाम को आज तक जिंदा रखा है। ऐसे भी मरता, खाट पर मरता, बीमारी से मरता, मरता तो ही; लेकिन जहर देकर मारा गया, यह बात मनुष्य की छाती पर खुद गई अमिट अक्षरों में, जो कभी मिट न सकेगी। सुकरात को अब भुलाया न जा सकेगा। सुकरात सदा-सदा याद रहेगा। शायद इससे सुंदर और मृत्यु हो भी नहीं सकती थी। सुकरात को कहा गया था... अदालत ने कहा था कि हम तुम्हें क्षमा कर सकते हैं; तुम जिसको सत्य कहते हो वह बोलना बंद कर दो तो हम तुम्हें क्षमा कर सकते हैं। लेकिन वायदा करना होगा कि तुम चुप रहोगे, अब यह सत्य की बातचीत बंद कर दोगे।

सुकरात ने कहाः बिना सत्य बोले जीने से सत्य बोलकर मरना बेहतर है। मृत्यु भी सत्य के काम आ जायेगी। मृत्यु भी सत्य की सेविका हो जायेगी। तुम जहर दो। तुम मुझे मारो। जीकर क्या करूंगा? अगर सत्य की उदघोषणा न कर सकूं, अगर सोयों को जगा न सकूं, अगर गड्ढे में गिरते को रोक न सकूं, अगर बीमार का उपचार न कर सकूं, तो जीकर क्या करूंगा? मुझे तो जीकर जो जानना था वह जान लिया, अब बांटने के लिये जी रहा हूं। अगर बांटना ही नहीं हो सकता तो यह फूल अभी गिर जाये। अगर सुगंध बांटनी ही नहीं है, तो इस फूल को बचाने से प्रयोजन भी क्या है?

नहीं; सुकरात ने कहा थाः सत्य बोलने का धंधा मैं बंद नहीं कर सकता, परिणाम कुछ भी हो।

तुम्हें लगता है सिद्धार्थ कि इस तरह से सूली लगी जीसस को, ईश्वर के प्यारे बेटे को; सुकरात को, सत्य के इतने बड़े प्रेमी को; मंसूर को, इतने बड़े ब्रह्मज्ञानी को! इस तरह से! तुम्हें अड़चन लगती है, क्योंकि तुम्हें अभी पता नहीं कि इस मरणधर्मा देह में अमृत छिपा है।

मंसूर को जरा भी अड़चन न थी। मंसूर, जब सूली लगी, तो आकाश की तरफ देखकर खिलखिलाकर हंसा था। भीड़ इकट्ठी थी। भीड़ में से किसी ने पूछा कि मंसूर, यह हंसने का वक्त है? तुम होश में हो? पागल तो नहीं हो गये हो? किसलिये हंस रहे हो?

मंसूर ने कहाः मैं इसलिए हंस रहा हूं कि यह भी खूब रही! तुम सोच रहे हो, मुझे मार रहे हो। तुम मुझे मारोगे क्या, तुम मुझे छू भी नहीं सकते। तुम्हारे अस्त्र मुझे छू भी नहीं सकते। तुम मुझे मारोगे क्या? और जिसे तुम मार रहे हो, उसे तो मैं खुद ही छोड़ चुका था। वह मैं हूं, ऐसी तो धारणा मैंने कब की त्याग दी थी। मैं देह तो हूं ही नहीं। जिस दिन मैंने, देह नहीं हूं, ऐसा जाना, उसी दिन तो यह उदघोष उठा मेरे भीतरः अनलहक, कि मैं परमात्मा हूं! जिस अपराध के लिये तुम मुझे मार रहे हो... ।

अपराध क्या था मंसूर का? यही कि उसने घोषणा कर दी कि मैं ईश्वर हूं। यही अपराध था मुसलमानों की नजर में कि कोई अपने को ईश्वर घोषित कर दे, यह कुफ्र हो गया! इस अपराध के लिये तुम मुझे मार रहे हो, मंसूर ने कहा कि मैंने कहा कि मैं ईश्वर हूं; मगर तुम्हें पता है कि यह अपराध मैं इसीलिए कर सका कि मुझे पता चल गया कि मैं देह नहीं हूं। जिस दिन जाना देह नहीं हूं, उसी दिन जाना अमृत हूं।

फिर किसी ने पूछा कि आकाश की तरफ देखकर क्यों हंस रहे हो? तो उसने कहा कि मैं इसलिये आकाश की तरफ देखकर हंस रहा हूं कि कह रहा हूं परमात्मा से कि तू किसी भी रूप में आ, मैं तुझे पहचान लूंगा। आज तू मौत के रूप में आया है, मुझे धोखा न दे सकेगा। मैं तुझे हर रूप में जानता हूं। मौत भी तू है।

उस परम दशा में जीवन और मृत्यु में कोई भी भेद नहीं है, कांटे और फूल में कोई भी भेद नहीं है। जो जानते हैं, उनकी भावदशा कुछ और होती है।

सितम-पर-सितम कर रहे हैं वोह मुझ पर।
मुझे शायद अपना समझने लगे हैं।।

जो नहीं जानते वे कुछ और सोचते हैं।

मुहब्बत नाम है ला हासिल औ न तमामी का।
मुहब्बत है तो दिल को फारिगे सूदो जियां कर ले।।

अपूर्व वचन हैः मुहब्बत नाम है ला हासिल औ न तमामी का। प्रेम है अपूर्णता और असफलता का नाम। तुमने कभी सोचा भी न होगा, कि प्रेम अपूर्णता और असफलता का नाम है! प्रेम हैः असफलता में भी सफलता जानना, अपूर्णता में भी पूर्णता जानना, मृत्यु में भी जीवन जानना। प्रेम हैः हार में भी जीत जानना। प्रेम हार का नाम है। जीत तो परिणाम है।

मुहब्बत नाम है ला हासिल औ न तमामी का।
मुहब्बत है तो दिल को फारिगे सूदो जियां कर ले।।

और अगर सच में तुम्हें प्रेम है तो अपने मन को लाभ-हानि के विचार से मुक्त कर लो। हानि-लाभ का भाव बना रहा तो कभी प्रेम न कर सकोगे। फिर मृत्यु में भी हानि नहीं है और जीवन में भी लाभ नहीं है। फिर असफलता में हानि नहीं है, सफलता में लाभ नहीं है। फिर फूलों की सेज पर मरे कि कांटों की सेज पर, भेद नहीं है। उस अभेद दशा का नाम प्रेम है। और प्रेम ही प्रार्थना है। प्रेम की दुनिया दीवानों की दुनिया है। ये मंसूर, ये

सुकरात, ये जीसस, इस जगत के बड़े-से-बड़े दीवाने हैं, बड़े-से-बड़े प्रेमी हैं। इनको समझने के लिए तुम्हें प्रेम के थोड़े पाठ सीखने पड़ेंगे।

.जरा खुलकर पुकार ए सूर! मज्जूबाने-उल्.फत को।

यह दीवाने कहीं बैठे न रह जायें बयाबां में।।

कयामत का दिन जब आयेगा... इस्लाम की धारणा है कि जब आखिरी कयामत का दिन आयेगा तो एक देवपुरुष उतरेगा और जोर से तुरही बजायेगा, क्योंकि सब जो मुर्दे कब्रों में लेटे हैं वे उठ जायें। एक तरह की सूचना मुर्दों को कि जाग जाओ। तुरही बड़ी भयंकर होगी, उसका तुमुल नाद होगा, दिल को दहला देने वाली होगी, नरसिंहा का नाद होगा। जरा खुलकर पुकार ऐ सूर! मज्जूबाने-उल्फत को। कवि कह रहा है कि जरा खुलकर बजा नरसिंहे को, क्योंकि बाकी लोग तो उठ जायेंगे, लेकिन यहां कुछ दीवाने भी सो रहे हैं, यहां कुछ प्रेमी भी सो रहे हैं, यह दीवाने कहीं बैठे न रह जायें बयाबां में। यहां ऐसे भी प्रेमी पड़े हैं कि जिनको फिकिर ही नहीं है, न जीवन की न मृत्यु की, न संसार की न कयामत की। जरा जोर से बजा तुरही को, नहीं तो यहां कुछ ऐसे लोग हैं, मंसूर जैसे कि वे मजे से लेटे ही रहेंगे। उन्हें पता ही न चलेगा कि कब तेरी तुरही बजी और कब तेरी तुरही समाप्त हो गई। उन्हें प्रलय का भी पता न चलेगा। सृष्टि का अंत आ गया, यह तुमुल-घोष होगा और वे अपनी मस्ती में पड़े रहेंगे, यहां ऐसे दीवाने भी हैं।

.जरा खुलकर पुकार ऐ सूर! मज्जूबाने-उल्फत को।

यह दीवाने कहीं बैठे न रह जायें बयाबां में।।

कहीं ऐसा न हो कि प्रलय आये और गुजर जाये और इनको पता ही न चले। मौत का क्या जीसस को पता चला होगा? मौत का क्या मंसूर को पता चला होगा? आई और गुजर गई। यही चमत्कार है।

अस्तित्व अत्यंत प्रेमपूर्ण है और इसलिये अत्यंत तटस्थ है। यह प्रीतिपूर्ण तटस्थता है। यह तटस्थता उपेक्षा की नहीं है। यह तटस्थता प्रीति की है। अस्तित्व इतना प्रेम करता है कि कैसे तुम्हारे जीवन में बाधा डाले, कैसे अड़चन डाले? इसीलिये परमात्मा की उपस्थिति बिल्कुल अनुपस्थिति जैसी है।

तुम थोड़ा सोचो, परमात्मा जगह-जगह उपस्थित हो, जैसा कि पंडित-पुरोहित तुम्हें समझाते हैं, कि वह सब तरफ से देख रहा है, तुम कुछ भी करो, कहीं भी जाओ, उसकी आंख तुम पर गड़ी हुई है, वह देख रहा है। वे तुमको डरवा रहे हैं, वे तुम्हें घबड़ा रहे हैं, वे तुम्हारे भीतर भय बैठा रहे हैं--कि परमात्मा देख रहा है, देखो, सम्हलकर करना कोई काम करते हो तो।

मैंने सुना है कि एक ईसाई संन्यासिन बाथरूम में भी कपड़े नहीं उतारती थी। पूछा किसी ने, क्यों? तो उसने कहा कि कहा नहीं है शास्त्रों में कि परमात्मा हर जगह देख रहा है। ... तो वह तो बाथरूम में भी देख ही रहा होगा। मगर उस मूर्ख को कोई कहे कि जो बाथरूम में देख रहा होगा वह तो कपड़े के भीतर भी देख ही रहा होगा, वह तो हड्डी-मांस-मज्जा के भीतर भी देख ही रहा होगा। पंडित-पुरोहितों ने तुम्हें खूब डरवाया है कि परमात्मा तुम पर आंखें गड़ाये है; जरा सावधान, ऐसा मत करना, वैसा मत करना।

लेकिन परमात्मा का प्रेम इतना विराट है, उसी विराट प्रेम के कारण वह उपस्थित है, मगर अनुपस्थित हो गया है। कहीं उसकी उपस्थिति बाधा न बन जाये, क्योंकि वह मौजूद हो तो कहीं ऐसा न हो कि तुम कुछ काम न कर सको जो तुम करना चाहते थे। अब परमात्मा सामने बैठा हो और तुम्हें धूम्रपान करना है, अब मुश्किल खड़ी हो जायेगी, अब अड़चन हो जायेगी। कैसे धूम्रपान करो? ऐसे तो कोई दूसरा आदमी भी बैठा होता है तो एकदम से धूम्रपान करने में अड़चन होती है। उस अड़चन को तो सुलझाने का उपाय है कि तुम पहले

उसको पेश करते हो आप सिगरेट पियें। वह कहे नहीं हां या कुछ, इसके बाद फिर तुम पीना शुरू करते हो। अब परमात्मा को सिगरेट उपस्थित करो, यह भी बात जमती नहीं।

मैं एक दफा यात्रा में था। पटना से लौटता था। मेरे डिब्बे में एक सज्जन और थे। अच्छे भले आदमी, डाक्टर थे बंबई के। अब उन्हें शराब पीनी थी। अब वे बड़ी जरा हैरानी में थे। रंग-ढंग से मैं साधु-संतों जैसा मालूम पड़ रहा था, तो उनको और जरा अड़चन थी। मैंने उन्हें जरा अड़चन में देखा। मैंने कहाः तुम फिकिर न करो। तुम ऐसा मानो कि मैं हूं ही नहीं। उन्होंने कहाः आपका मतलब? मैंने कहाः मैं तुम्हें कुछ अड़चन में देखता हूं। तुम कहो तो मैं दूसरे डब्बे में चला जाऊं।

नहीं-नहीं--उन्होंने कहा--कैसे आप... आप बैठें, कहीं जाने की जरूरत नहीं। फिर थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा कि आप ठीक ही कह रहे हैं। असल में मुझे शराब पीने की आदत है और बिना पीये यह चौबीस घंटे का सफर मैं न कर सकूंगा। आप पीयेंगे?

मैंने कहा कि मैं तो नहीं पीऊंगा, लेकिन आप मजे से पीयें, मुझे कोई अड़चन नहीं है। फिर भी उन्हें थोड़ी-सी दुविधा बनी रही। सज्जन-चित्त आदमी थे। उन्होंने सिगरेट निकाली। कहाः आप सिगरेट पीयेंगे? मैंने कहा कि सिगरेट मैं पीता नहीं। तो उन्होंने पान का बटुआ निकाला कि आप कम-से-कम पान लें। मैंने कहाः मैं पान भी नहीं खाता। तो उन्होंने जो बात कही, वह मुझे भूली नहीं। उन्होंने कहाः तो फिर आपसे मित्रता बनाने का कोई उपाय नहीं? तो मैंने कहाः फिर मैं तीनों पी लूंगा। अगर मित्रता का मामला हो तो शराब भी पीऊंगा, सिगरेट भी पीऊंगा, और पान भी खा लूंगा। अगर मित्रता का मामला हो! मगर इनकी कोई जरूरत नहीं, मित्रता है ही। मैं भर दूंगा तुम्हारी प्याली शराब से, और क्या करूं? मैं तुम्हारी सिगरेट जला दूंगा, और क्या करूं? मैं तुम्हारा पान तुम्हारे मुंह दे दूंगा, और क्या करूं? मित्रता इतने से ही हो जाये तो ठीक है और नहीं होती हो तो मैं तीनों लेने को भी तैयार हूं।

परमात्मा तुम्हारे सामने बैठा हो तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी, क्या करोगे? नहीं, उसने खूब उपाय खोजा है कि बिल्कुल तिरोहित हो गया है। चारों तरफ वही है। उसी ने तुम्हें घेर रखा है--भीतर भी वही, बाहर भी वही, लेकिन बिल्कुल अनुपस्थिति है। यह उसके प्रेम का प्रतीक है। तुम्हारे जीवन में बाधा न हो। तुम्हें पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। परमात्मा की अनुपस्थिति तुम्हारी स्वतंत्रता की आधारशिला है। वह जगह-जगह खड़ा मिल जाये, तुम्हारे जीवन से सारा गौरव, सारी गरिमा तिरोहित हो जायेगी। फिर तुम साधु भी हुए तो झूठे होओगे। नहीं, अभी तुम्हें असाधु भी होना हो तो परमात्मा कहता हैः हो लो, तुम्हारा हक है। और असाधु होकर असाधु की पीड़ा पाकर जब तुम साधु होओगे तो असली साधुता पैदा होती है--असली साधुता भय से पैदा नहीं होती--असाधुता के कष्ट, नर्क से पैदा होती है।

परमात्मा तटस्थ है, क्योंकि प्रेमपूर्ण है। और परमात्मा प्रेमपूर्ण है क्योंकि तटस्थ है।

परमात्मा के संबंध में सदा याद रखो। बार-बार तुम्हें याद दिलाता हूं कि वहां विरोधाभास समाप्त हो जाते हैं, वहां तटस्थता और प्रेम में विरोध नहीं रह जाता। भरपूर है उसकी तटस्थता प्रेम से, आपूर है। और उसका प्रेम बिल्कुल तटस्थ है। फिर तुम्हारी दृष्टि से जो मृत्यु है उसकी दृष्टि से मृत्यु नहीं है।

कौन कहता है कि मौत अंजाम होना चाहिए।

जिंदगी का जिंदगी पैगाम होना चाहिए।।

जिंदगी कहीं मौत पर समाप्त हो सकती है? कैसे? यह उल्टा हो कैसे जायेगा? जिंदगी मौत बन सकती है? असंभव है। जिंदगी तो और बड़ी जिंदगी बनती है। जिंदगी तो जिंदगी ही बन सकती है। आम के वृक्ष में आम

के फल लगते हैं, नीम के वृक्ष में नीम के फल लगते हैं। जीवन के वृक्ष में मृत्यु के फल लग कैसे सकते हैं? और अगर तुम्हें दिखाई पड़ते हों कि मृत्यु के फल लग रहे हैं, तो तुम्हारे देखने में कहीं भूल-चूक होगी।

मृत्यु सिर्फ परिधान का बदलना है, अपने वस्त्रों का बदलना है। वस्त्र जराजीर्ण हो जाते हैं तो आदमी बदल लेता है, लेकिन वस्त्रों की बदलाहट मृत्यु नहीं है।

कौन कहता है कि मौत अंजाम होना चाहिए।

मौत परिणाम नहीं है जीवन का।

कौन कहता है कि मौत अंजाम होना चाहिए।

जिंदगी का जिंदगी पैगाम होना चाहिए।

है भी। जिंदगी और बड़ी जिंदगी में प्रवेश करती जाती है। जिंदगी और बड़ी जिंदगी होती चली जाती है। तुम देह में सीमित नहीं हो। तुम देह में आवास कर रहे हो, मगर तुम देह ही नहीं हो। घड़ा टूट गया, इससे घड़े का जल थोड़े ही टूट जाता है। घड़े का जल मुक्त हो जाता है। बंधा था, अब मुक्त हो गया।

ऐसे ही जीसस का घड़ा टूट गया सूली पर। लोगों ने घड़ा फोड़ा और समझे कि जीसस को मार लिया। इतना आसान नहीं है। जीसस के साथ दो चोरों को भी सूली लगी थी, बीच में जीसस, एक तरफ चोर, दूसरी तरफ चोर। अपमान के लिये जीसस के, कि तुम्हें हम चोरों से ज्यादा नहीं गिनते। चोरों के साथ सूली दी गई थी। जीसस को तो पता है कि भीतर शाश्वत विराजमान है। उनके बाएं एक चोर है, दाएं एक चोर है; उनको पता नहीं। वे जरूर मर रहे हैं। वे जरूर पीड़ित हो रहे हैं। वे जरूर हैरान हो रहे हैं। उनका कष्ट असीम है। लेकिन उन दो चोरों में भी भेद है। एक चोर न तो जानता है कि आत्मा है, न मानता है कि आत्मा है। दूसरा चोर जीसस को देखता है, उनके चेहरे पर गुलाब के फूल जैसी लालिमा देखता है। मृत्यु के क्षण में भी! उनकी आंखों में गहरी शांति देखता है। उनके चारों तरफ प्रेम की आभा देखता है।

जीसस के अंतिम वचन थे परमात्मा से कि हे प्रभु, इन सबको माफ कर देना, जो लोग मुझे सूली दे रहे हैं, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं!

एक चोर जो कि आत्मा को मानता भी नहीं, जानता भी नहीं, वह तो हंस रहा है, वह तो जीसस की मजाक उड़ा रहा है। उसने तो जीसस से मरने के पहले कहा कि हम तो खैर चोर हैं, सो ठीक, सूली लग रही है, आपका क्या? आप तो बड़े संत, आप तो दावेदार थे कि आप ईश्वर के बेटे हो, इकलौते बेटे हो। आपका क्या हुआ? मर रहा है खुद लेकिन फिर भी अपना व्यंग्य किये जा रहा है। जीसस की मजाक उड़ा रहा है। वह यह कह रहा है कि ठीक हम को लग रही है सूली, वह तो हम चोर हैं, लगनी चाहिये, तुम्हें क्यों लग रही है? एक अर्थ में वह प्रसन्न है कि जीसस को भी लग रही है, क्योंकि तब बुरा और भला सब बराबर हो जाता है। मौत में न कोई पुण्य का भेद है न पाप का भेद है। झंझट सब खतम हो जाती है। आगे कुछ भी नहीं है। यह जीसस तक मर रहा है। उसके भीतर जो अपने जीवन के प्रति पश्चात्ताप होगा, वह भी इस कारण नहीं हो रहा है कि जब जीसस की भी यह गति हो रही है तो अच्छा करके भी क्या कर लिया? हमने ही बुरा किया तो कौन बुरा किया? फल तो बराबर हुआ जा रहा है, दोनों की मौत घट रही है।

मगर दूसरा चोर जीसस की शांति को देखा, पहचाना। उसने जीसस से कहा कि हे प्रभु, मैंने तो नहीं जानी आत्मा और मैंने तो नहीं जाना परमात्मा, न कभी प्रार्थना की, चूक ही गया; मगर यही क्या मेरा कम धन्यभाग कि आपकी छाया में मर रहा हूं! यही मेरा महापुण्य है!

जीसस ने उसकी आंखों में देखा और कहाः तू घबड़ा मत, तू बचा लिया गया है। क्या मतलब है जीसस का कि तू बचा लिया गया है? इस भाव में ही बचाव हो गया है। सारे पाप धुल गये इस भाव में ही।

सदगुरु के पास क्षणभर भी बैठ जाना स्नान है। गंगा में बैठने से शायद पाप न भी धुलें, क्योंकि गंगा आखिर जल ही है--बाहरी जल है; धूल-धवांस धुल जाये शरीर की, आत्मा की तो कैसे धुलेगी? लेकिन ऐसी गंगाएं भी हैं जहां आत्मा की धूल-धवांस भी धुल जाती है। जीसस ने कहाः तू फिकिर मत कर, तू बचा लिया गया है। मरने के आखिरी क्षण उस चोर ने कहा कि प्रभु, फिर कब दर्शन होंगे? जीसस ने कहाः आज ही! शरीर को गिर जाने दे। दर्शन तो हो ही गये और दर्शन तो जारी रहेंगे। आज ही दर्शन होंगे। गिरने दे शरीर को। संबंध जुड़ गया। दर्शन जारी रहेगा।

दोनों चोर... लेकिन एक अंधा और एक आंखवाला। एक मर कर फिर पैदा होगा। फिर चोर हो जायेगा; लेकिन दूसरे ने खूब सम्हाला, खूब कुशलता से सम्हाला। आखिर-आखिर गिरते-गिरते सम्हल गया, फिसलते-फिसलते सम्हल गया। सारी जिंदगी के पाप धुल गये। तुम्हारी तरफ से मत सोचो--जीसस, मंसूर, सुकरात की तरफ से सोचो।

गम एक इम्तहान था इन्सान के लिए।

जो लोग अहले-जौक थे, वोह मुसकरा दिए।।

जो पारखी हैं वे तो जिंदगी में जब दुख आता है तो मुस्कराते हैं, क्योंकि हर दुख परीक्षा है और हर दुख कसौटी है। और हर दुख निखारता है और हर दुख तपश्चर्या है। और हर दुख से गुजरकर तुम्हारे जीवन का कुंदन रोज-रोज शुद्ध होता जाता है। और जो व्यक्ति जीवन के परम दुख से गुजरा... फांसी परम दुख है, एक क्षण में सारे जीवन की पीड़ा इकट्ठी हो गई... उससे जो गुजरा, उस गुजरने में, उस पार होने में, उसने आखिरी परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।

तुम्हारी तरफ से देखने पर लगता है कि परमात्मा कुछ भी न बोला, चुप रहा, तटस्थ है। परमात्मा को जो करना था उसने किया। जो करने योग्य था किया। यह परीक्षा थी। यह परीक्षा जरूरी थी। जीसस, मंसूर, सुकरात इस परीक्षा से उत्तीर्ण हो गये--पताकायें फहराते परमात्मा में लीन हो गये होंगे! दुख जब आये तो ऐसे ही सोचना कि दुख निखारता है, कि दुख मांजता है, कि दुख से मंज-मंजकर ही वह घड़ी आती है जब सोने में सुगंध पैदा होती है।

तीसरा प्रश्नः क्या जीवन सच ही बस एक नाटक है? बात जंचती भी है और जंचती भी नहीं। ऐसा क्यों?

जीवन तब तक नाटक नहीं है जब तक तुम जागे नहीं। तुम तो ऐसे सोये हो कि नाटक तक को जीवन समझ लेते हो तो तुम क्या खाक जीवन को नाटक समझोगे?

देखा है सिनेमा-गृह में? जानते हो भलीभांति कि परदे पर कुछ भी नहीं है, धूप-छाया का खेल है, मगर आंखों में आंसू आ जाते हैं। कोई दुखांत दृश्य आ गया कि तुम जार-जार रोने लगते हो। और तुम जानते हो, फिर भी भूल गये। नाटक को जीवन समझ लिया! खैर फिल्म को जाने दो, फिल्म में तो कुछ न कुछ तस्वीरें दिखाई पड़ती हैं, भ्रांति हो जाती है; लोग उपन्यास पढ़ते हैं और कोई दुखांत दृश्य आ गया और आंखें गीली हो जाती हैं। और जानते हैं कि कागज पर स्याही के धब्बों के सिवाय कुछ भी नहीं है। मगर फिर भी भूल हो जाती है।

कभी भूत-प्रेत की कहानी पढ़ते-पढ़ते रात को डर नहीं लगा है? कहानी पढ़ रहे हो, जानते हो कहानी है, मगर जरा पत्ता खड़क गया बाहर, कि एक खरगोश भाग गया बगीचे में, कि बिल्ली ने छलांग लगा दी चौके में, कि छाती धक हो जाती है। अपना ही लंगोट जो तुमने सूखने डाल दिया है रस्सी पर, वही लगता है कि कोई आदमी हाथ फैलाये खड़ा है। भलीभांति पता है अपना ही लंगोट है, रोज इसी लंगोट को बांधकर जय हनुमानजी कर के व्यायाम करते हैं। अपना ही लंगोट है--मगर अब हनुमानजी भी काम नहीं आते। घबड़ाहट में पढ़ने लगे हनुमान-चालीसा, कि पता नहीं कौन खड़ा है हाथ फैलाये! किताब जो पढ़ रहे थे, उसका भूत-प्रेत, उसकी कथा, पकड़ ली मन को, डर गये। अब पेशाब लगी है, लेकिन स्नानगृह तक जा नहीं सकते, उतना रास्ता तय करने में घबराहट मालूम होती है।

तुम तो नाटक को जीवन समझ लेते हो! तो मैं समझाः तुम कहते हो, क्या जीवन सच ही मात्र एक नाटक है? जागोगे तो ही समझ पाओगे। सोये रहे तो नाटक भी सच है, जीवन का तो कहना ही क्या! जीवन तो इतना बड़ा नाटक है--सत्तर साल, अस्सी साल चलता है। सतत चलता है! मंच बड़ी है; पूरी पृथ्वी उसकी मंच है। और सारा जगत अभिनय कर रहा है। दर्शक भी अभिनेता हैं; अभिनेता भी दर्शक हैं। मंच ही मंच है।

कैसे समझ पाओगे? सोये-सोये न समझ पाओगे। ये तो जाग्रत व्यक्तियों के वक्तव्य हैं कि जगत नाटक है। तुम कहते होः बात जंचती भी और जंचती भी नहीं। जंचती इसलिये कि सत्य है, तो सत्य की जब चोट पड़ती है तो समझ में भी आता है कि बात तो ठीक है। और फिर जंचती भी नहीं क्योंकि नींद गहरी है। और जगत को नाटक मान लेने में तुम्हारे बहुत-से न्यस्त स्वार्थ टूटेंगे। तुम एक स्त्री के प्रेम में हो, दीवाने हो, स्त्री मिलनी ही चाहिए, नहीं तो जीवन बेकार गया! अब तुमसे कोई कहता हैः जगत नाटक है! तुम कैसे मानो? क्योंकि जगत नाटक तो वह स्त्री भी नाटक, प्रेम भी नाटक सब बेकार हो गया। तुम कहोगेः अभी रुको, मानेंगे बाद में। पहले ये स्त्री तो मिल जाये!

कोई कहता हैः जगत नाटक है। तुम्हें एक महल बनाना है। तुम कहते होः जरा रुको, महल तो बन जाने दो! नाटक ही सही, मगर महल तो बन जाने दो। फिर मान लेंगे। अभी मान लेंगे तो महल का बनना असंभव हो जायेगा। ... क्योंकि जिसने जगत को नाटक मान लिया उसकी वह जो आपाधापी थी वह जो महत्वाकांक्षा का ज्वर था, दौड़ थी, वह सब क्षीण हो जायेगी। वह जो दीवानापन था--धन इकट्ठा करने का, पद पर पहुंच जाने का, वह सब शिथिल हो जायेगा। तुम कहते होः इस चुनाव में तो लड़ लेने दो! एक बार तो कम-से-कम राज्य का मंत्री हो जाऊं, न सही केंद्र का, राज्य का ही सही, एक दफा तो हो जाऊं, फिर मान लूंगा नाटक! अभी सपना प्रीतिकर देखने की इच्छा हो रही है। अभी मत कहो कि सपना है!

इसलिये लोग कहते हैंः जब मौत करीब आयेगी तब मान लेंगे कि जगत माया है, नाटक है। बूढ़े अकसर इस तरह की बातें करने लगते हैं--नाटक, माया, लीला। मगर यही जिंदगी-भर उपद्रव करते रहे और अभी भी इन्हें मौका मिल जाये तो उपद्रव से चूकें नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन चला जा रहा था रास्ते से। नुमाइश भरी थी। भीड़-भाड़ थी। पहने चूड़ीदार पाजामा और अचकन और गांधीवादी टोपी और बिल्कुल पहुंचा हुआ भगत मालूम हो रहा था। एक सुंदर-सी स्त्री दिखाई पड़ गई। अब बूढ़ा हो गया है और कहता हैः जगत इत्यादि सब माया है! मगर जब एक सुंदर स्त्री दिखाई पड़ जाये तो ऐसे सिद्धांतों की बातों में कौन पड़ता है! एक धक्का दे लेने का मन हो ही गया। मन ही तो है, धक्का दे दिया। उस स्त्री ने भी चौंककर देखा। उम्र होगी कम-से-कम उसके पिता के बराबर--मुल्ला नसरुद्दीन की। कहा कि शर्म नहीं आती, बाल सफेद हो गये!

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि बाई, बाल तो सफेद हो गये, मगर दिल अभी भी काला है। और धक्का बालों ने थोड़े ही मारा है, धक्का तो दिल ने मारा है।

दिल जब तक काला है--काला अर्थात सोया है, गहन अंधकार में--तब तक तुम कुछ भी करो, जगत को तुम नाटक न मान सकोगे। बात जंचती है, क्योंकि बात में सत्य है। सत्य में हमेशा एक आकर्षण होता है। सत्य का एक सम्मोहन होता है। सत्य को सुनते ही बात जंच ही जाती है। क्योंकि क्या करोगे? सत्य सत्य है, उसका आघात पड़ता है। प्राण गवाही देते हैं। मगर बीच में तुम्हारा वासनाओं का बड़ा जाल है। वह जाल तुम्हें उलझाता हुआ कहता हैः होगा यह सत्य, लेकिन अभी समय नहीं आया--ये तो संन्यास की बातें हैं। यह तो बाद में, जब आदमी मरने लगता है तब।

गिरी यवनिका रंगमंच पर, क्या अवशेष रहा?
श्याम यवनिका पर विधि का अलिखित अभिलेख रहा!
नहीं रह गए सूत्रधार, नट-नटी और प्रेक्षक;
मैं भव को अनुभव की आंखों से बस देख रहा!

पार्श्वभूमि में दिखनेवाले जंगल-महल गए!
हुए अदृश्य दृश्य वे, जिनसे दिल थे दहल गए!
नट ने भेस उतार दिया, सिंगार नटी ने भी;
हुआ गया-आया, जिससे दस दर्शक बहल गए;

चली गई घर नटी, अलग हो सूत्रधार तक से;
जमुहाई ले रहा विदूषक, थक निज बक-झक से;
रंगमंच का राजा अब बन, जन सामान्य खड़ा;
रहा पसीना पोंछ विकट प्रतिनायक मस्तक से!
नाटक की माया-सी दुनिया आनी-जानी है!
यह जीवन रूपक है, जीवन रूपकहानी है!

जब यह बात कही जाती है, समझ में आती है। न समझना चाहो तो भी समझ में आती है। सत्य का अपना बल है। तुम लाख चाहो कि दो और दो पांच हों, लेकिन जब दो और दो चार हैं, ऐसा कहा जाता है तो सत्य का अपना बल है। बात एकदम समझ में आती है। दो और दो पांच हो भी कैसे सकते हैं? दो और दो चार ही हो सकते हैं। लेकिन तुम्हारे मन में अभी गणित फैला है, कि हो जाये कोई चमत्कार कि दो और दो पांच हो जायें।

तुम देखते हो, कैसी-कैसी कल्पनाएं तुम्हारे मन में चलती हैं कि रास्ते के किनारे चलते-चलते धन से भरी थैली मिल जाये! तुम जानते हो मिलती-करती नहीं, यह तो कई दफे सोच चुके हो। मगर मिल जाये, कौन जाने मिल ही जाये!

मन सपनों को मान लेने के लिए आतुर है। सत्य की भनकार मन की इस आतुरता के पार भी पहुंच जाती है, इसलिये बात जंचती भी है और नहीं जंचती है। यह तुम्हारे मन के विपरीत है, तुम्हारी आत्मा के अनुकूल है। इसलिये एक तुम्हारा अंतर्मन तो कहता है ठीक और तुम्हारे मन के जंजाल कहते हैंः नहीं-नहीं ऐसा कैसे हो

सकता है--जगत और नाटक! इतने लोग क्या पागल हैं? इतने लोग दौड़े चले जा रहे हैं तो क्या सब नासमझ हैं? जहां इतने लोग जा रहे हैं तो ठीक ही होगा, कुछ पाने को ही होगा।

लोग तो भीड़ को देखकर चलते हैं, जिस तरफ भीड़ जा रही है। धन की तरफ जा रही है तो धन की तरफ। पद की तरफ जा रही है तो पद की तरफ। जिस तरफ भीड़ जाती है, लोग चल पड़ते हैं। लोग अपने चलने से थोड़े ही चलते हैं--भीड़ चलाती है। तुम अपने वश से थोड़े ही जी रहे हो। लोगों ने तुम्हारे जीवन में आकांक्षाएं और वासनाएं दे दी हैं। कोई पड़ोस में कार खरीद लाया, कल तक तुम्हें कार खरीदने का ख्याल ही न था, अब यह पड़ोसी कार ले आया, अब अड़चन हुई।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने एक दिन उससे कहा कि अब हमें यह मोहल्ला बदलना पड़ेगा, क्योंकि पड़ोस के दो लोग और अच्छे मोहल्लों में चले गये हैं, उन्होंने ज्यादा कीमती मकान किराये पर ले लिये हैं। उनकी स्त्रियां मिल जाती हैं रास्ते पर तो बड़ी दयनीयता मालूम होती है।

तो मुल्ला की पत्नी ने कहाः हमें भी बदलना पड़ेगा। अभी मुल्ला की हैसियत बदलने की थी भी नहीं। मगर एक दिन वह बड़ा उत्साह से भरा हुआ आनंद-मस्त घर आया और उसने कहाः मस्त रहो, खुश हो जाओ! पत्नी ने कहाः क्या, कहीं कोई मकान खोज लिया? उसने कहाः मकान नहीं खोजा। इस मकान के मालिक ने किराया दुगना कर दिया। अब हम भी दुगना किराया चुकायेंगे। अब तुम कोई फिकिर न करो। अब कोई अपमान अनुभव न करो।

कोई कार खरीद ले तो तुम्हें कार खरीदनी है। कोई बड़ा मकान बना ले, तुम्हें बड़ा मकान बनाना है। कोई कुछ कर ले तो तुम्हें भी करना है। तुम बस जी रहे हो दूसरों को देख देखकर। दूसरे तुम्हें तुम्हारा जीवन दे रहे हैं। तुम्हारा जीवन उधार है, अनुकरण है। तुम कार्बन-कापी हो।

और जब कभी तुम सुनोगे कि जीवन नाटक है, तो समझ में तो आयेगा, क्योंकि नाटक ही तो तुम कर रहे हो। जब तुम्हें हंसना नहीं था, तुम हंसे। और जब तुम्हें रोना नहीं था तब तुम रोये। और तुम्हें पता है कि नाटक किया। और जिस मालिक को तुम चाहते हो कि गर्दन उतार दें इसकी, उसके सामने पूंछ हिलाते हो। जानते हो कि नाटक है। और तुम तुम्हारे सामने जो पूंछ हिलाता है उसको भी तुम जानते हो कि मौका मिल जाये तो यह गर्दन काटेगा। अभी पूंछ हिला रहा है, वक्त की बात है, वक्त-वक्त की बात है। तुम जानते हो कि सब नाटक चल रहा है। पत्नी से तुम कहते होः तुझसे मुझे बड़ा प्रेम है। और तुम्हें पता है कि तुम क्या कह रहे हो! प्रेम नाममात्र को नहीं है। प्रेम शब्द तुम्हारे ओठों पर बिल्कुल झूठा है। तुमने कभी किसी को प्रेम नहीं किया। तुमने अपने को ही प्रेम नहीं किया, तुम किसी को क्या प्रेम करोगे? लेकिन कहना पड़ रहा है। कहना जरूरी है। जिंदगी में सुगमता आती है। तुम अपने बच्चों से कह रहे हो कि हम तुम्हारे लिये मर रहे हैं। कौन मरता है? बच्चे मर जाते हैं, कोई मां-बाप आत्महत्या नहीं कर लेते हैं! हालांकि तुम कहे जा रहे हो कि हम तुम्हारे लिये मर रहे हैं। और ऐसा भी नहीं है कि प्रमाण तुम्हारे पास नहीं हैं। तुम मेहनत कर रहे हो, मजदूरी कर रहे हो, दुकान चला रहे हो और तुम कहते होः और किसके लिये, बच्चों के लिये! तो क्या तुम सोचते हो कि जिनके बच्चे नहीं हैं वे दुकानें नहीं चला रहे हैं, कुछ कम दुकानें चला रहे हैं। जिनके बच्चे नहीं हैं वे कहते हैंः हमारे बच्चे नहीं हैं, दुकानें न चलायें तो करें क्या? हमें अपने लिये कमाना होगा, कल बुढ़ापा आयेगा, कोई बच्चे तो हैं नहीं जो हमारी फिकिर करेंगे।

अब देखते हो मजा! जिनके बच्चे हैं वे कहते हैं अब हम रुकें कैसे! हमें कमाना पड़ेगा, बच्चे जो हैं! बच्चों के लिये कुछ तो इंतजाम कर दें! जिनके बच्चे नहीं हैं वे कहते हैं कि हम न कमाएं तो क्या करें, कल बुढ़ापा आयेगा,

बीमारी आयेगी, बच्चे तो हैं नहीं कि फिकिर करेंगे! धन होगा, बैंक में बैलेंस होगा तो जिंदगी चलेगी, नहीं तो मुश्किल हो जायेगी।

मेरे पास लोग आते हैं जो कहते हैं कि हम बच्चों से परेशान हैं। जिंदगी नष्ट हो गई। और लोग आ जाते हैं, रोते हैं कि बच्चे नहीं हैं, जिंदगी नष्ट हुई जा रही है। आदमी बड़ा अजीब मालूम होता है। बच्चे हों तो जिंदगी नष्ट हो रही है, बच्चे न हों तो जिंदगी नष्ट हो रही है! तुम देखोगे कब कि यह सब नाटक तुम फैलाये चले जाते हो? बहाने कुछ भी हों, मगर नाटक एक ही है। किसी तरह अपने को व्यस्त रखना है। उलझाये रखना है। किसी तरह अपने को अपना पता न चले, ऐसी मूर्च्छा बनाये रखनी है। फिर नशा चाहे बच्चों का हो, चाहे पद का हो, चाहे धन का हो, कोई न कोई नशा चाहिए।

नाटक कहने का अर्थ है कि तुम जिस तरह जी रहे हो, यह सत्य-जीवन नहीं है। तुम्हारे चेहरे पर मुखौटे हैं। तुम्हारे असली चेहरों का दूसरों को तो क्या खाक पता चलेगा, तुम्हें भी पता नहीं है। जब कोई झेन फकीरों के पास जाता है तो वे फकीर कहते हैंः एक बात खोज लो तो सब मिल जायेगा--अपना असली चेहरा खोज लो। और असली चेहरा जरा मुश्किल मामला है।

मैंने सुना हैः एक हिप्पी एक नाई की दुकान पर बाल बनवा रहा था। कोई आधा घंटा बाल बनाने के बाद नाई ने कहा कि भाई, क्या कभी तुम जल-सेना में नौकरी करते थे? उसने कहाः अरे, तुम्हें कैसे पता चला? उसने कहाः नहीं, तीन परतें बालों की काटने के बाद, यह जल-सेना की टोपी... टोपी मिली है। इससे मैंने सोचा कि शायद जल-सेना में काम करते रहे होगे।

तुम्हारे अगर चेहरे उघाड़े जायेंगे तो तुम बड़ी हैरानी में पड़ोगे--कौन-सी टोपी मिलेगी, कौन-से चेहरे मिलेंगे, क्या-क्या चीजें मिलेंगी बीच में। न मालूम कितना खोदना पड़ेगा, तब तुम्हें कहीं असली चेहरा मिलेगा।

ध्यान की प्रक्रिया असली चेहरे की तलाश है। पर मुखौटों पर मुखौटे... और ऐसे कस गये हैं, ऐसे चुस्ती से कस गये हैं कि तुम्हारे शरीर के हिस्से हो गये हैं। उन्हें छीलने में भी पीड़ा होगी। प्याज जैसे कोई छीलता है, ऐसे छीलना पड़ता है नाटक को। और जब सब छिलके निकल जाते हैं तब तुम्हारे हाथ में शून्य रह जाता है। वही तुम्हारा असली चेहरा है। तब तुम नाटक के पार हुए। शून्य में प्रविष्ट हुए कि नाटक के पार हुए, कि परदा गिरा, कि अब न तुम राम हो न रावण। अब तुम कोई भी नहीं हो। अब तुम शून्य हो गये। अब विश्राम की घड़ी आई। इसको ही मोक्ष कहा है।

मोक्ष का अर्थ हैः जीवन की सारी प्रवंचनाओं से जाग जाना; देख लेना सारी प्रवंचनाएं कि कहां-कहां धोखा कर रहा हूं। जरा पहचानना शुरू करो, कब-कब तुम मुखौटे ओढ़ते हो। जरा पहचानना शुरू करो। और तुम चकित होओगे कि चौबीस घंटे अकेले में भी बैठे होते हो तब भी तुम विश्राम में नहीं होते।

एक आदमी ने मुल्ला नसरुद्दीन के द्वार पर दस्तक दी। उसकी पत्नी भी उसके साथ थी। मुल्ला ने दरवाजा धीरे से खोला, जरा-सा खोला। बाहर खड़ा मित्र भी हैरान हुआ। मित्र से ज्यादा हैरान तो उसकी पत्नी हुई, क्योंकि मुल्ला बिल्कुल नंगा था। हैरानी की बात इतनी ही नहीं थी कि नंगा था, क्योंकि अपना-अपना घर है, कोई नंगा रहना चाहे क्या अड़चन! एक टोप भी लगाये हुए था। अब नंगा और टोप लगाये, यह और एक हैरानी की बात थी। पत्नी से न रहा गया। पत्नी ने कहाः और तो सब ठीक है, आपका घर है, आपको जैसे रहना हो रहें; मगर यह टोप?

मुल्ला ने कहाः अब यह न पूछो। इसके पीछे भी राज है। उसने कहाः आप बता ही दो, नहीं तो यह जिज्ञासा हमें खाये जायेगी, रात-भर सो भी न सकेंगे। मुल्ला ने कहाः नंगा इसलिये हूं कि इस समय घर मुझे मिलने कोई आता ही नहीं।

तो फिर टोप क्यों लगाये हो?

तो उसने कहाः कभी भूल-चूक से कोई आ ही जाये, इसलिये।

आदमी ऐसे-ऐसे इंतजाम करके रखा है। अकेले में बैठे हैं, कोई आता भी नहीं तो नंगे बैठे हैं। मगर शायद कोई आ ही जाये तो टोप तो लगाये रखो!

मुल्ला नसरुद्दीन से उसका एक मित्र कह रहा था कि कुछ लोगों से मैं बहुत परेशान हूंः आ जाते हैं और बहुत बोर करते हैं। पड़ोसी हैं, उनसे छुटकारा भी नहीं होता। शिष्टाचारवश उनको सुनना भी पड़ता है। और ऐसा बोर करते हैं! और वही-वही बातें सुना चुके हैं बहुत बार। तुम्हें मैंने कभी किसी से परेशान नहीं होते देखा, राज क्या है?

मुल्ला ने कहाः इसका एक राज है। मैं हमेशा अपनी टेबिल के पास एक छड़ी और अपनी टोपी रखता हूं। छड़ी और टोपी से क्या होगा? उस आदमी ने पूछा। रखे रहो छड़ी और टोपी, जिसको सताना है वह सतायेगा।

उसने कहाः इतना आसान नहीं है। जैसे ही मैं किसी आदमी को आते देखता हूं, जल्दी से टोपी लगाकर छड़ी उठा लेता हूं।

उस आदमी ने पूछाः मैं फिर भी नहीं समझा, इससे होगा क्या? टोपी लगाकर छड़ी भी उठा लोगे... !

उसने कहाः तुम समझे नहीं, बात सीधी-साफ है, इसके पीछे गणित है, इसके पीछे चाल है, इसके पीछे कूटनीति है। वह आदमी पूछता हैः कहीं जा रहे हैं, कहीं से आ रहे हैं? कोई छड़ी और टोपी लगाये बैठा है या खड़ा है, तो कहीं से आ रहे हैं कहीं से जा रहे हैं। तो मुल्ला कहता हैः अगर देखता हूं कि आदमी काम का है, तो कहता हूं बाहर से आ रहा हूंः बैठिये, विराजिये। और देखा कि आदमी बेकाम है; बोर करेगा तो कहता हूंः बाहर जा रहा हूं, नमस्कार!

तुम जरा सावधान रहना, कोई आदमी छड़ी रखे हो, टोपी लगाये हो तो पक्का मत समझ लेना कि वह आ रहा है कि जा रहा है। वह हो सकता है कि सिर्फ एक मुखौटा बनाये हुए है। वह तुमसे बचने की कोशिश कर रहा है।

हम एकांत में भी चेहरे बनाये रखते हैं। नाटक का इतना ही अर्थ है। और संसार नाटक है, यह तो तुम तभी जान पाओगे जब तुम समझ पाओगे कि तुम नाटकीय हो। और इस नाटक के कारण हमारा स्वभाव विकृत हो गया, हम विभाव में जी रहे हैं। कुछ थे कुछ हो गये। कुछ होना था, कुछ होकर समाप्त हुए जा रहे हैं।

प्याला पी रहा सुरा, प्यासा पीने वाला
प्याला पी रहा सुरा, प्यासा पीने वाला!
ढाली क्यों प्राणों की तन में तुमने हाला?
कंचन की चौकी पर बैठे ही रहे देव;
रिस-रिस कर, रीत गई मानस की मधुशाला!

प्यासे हैं मनोभाव, मरणोन्मुख हैं अभाव;
जीना क्यों संभव हो, रिसते यदि रहे घाव!

पूछ रहे मुझसे यों मेरे प्रभु अंतर्मय,

कैसे विपरीत हुआ मुझसे मेरा स्वभाव?

कहां हो गई है गांठ?

पूछ रहे मुझसे यों मेरे प्रभु, अंतर्मय, --

कैसे विपरीत हुआ मुझसे मेरा स्वभाव?

परमात्मा तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारा सत्य, तुम्हारी प्रामाणिकता है। मगर कैसे सब खो गया? तुम नाटक में प.ड़ गये। तुम नाटकीय हो गये। तुम अभिनय करने लगे। तुम भूल ही गये तुम क्या हो। और तुम कुछ-का-कुछ दिखाने लगे। और हर आदमी कुछ-का-कुछ दिखा रहा है।

तुम अपने में ही पहचानो। तुम दूसरों की फिकिर में मत पड़ जाना कि दूसरे क्या कर रहे हैं और क्या नहीं कर रहे हैं। तुम अपने में ही पहचानो। तुम अपने को ही जांचते रहो और तुम्हें जिंदगी की सारी नाटकीयता समझ में आ जायेगी, सारा प्रपंच समझ में आ जायेगा और तुम अपना नाटक छोड़ दो। बस तुम्हारे नाटक का गिर जाना ही संन्यास है। वही असली संन्यास है।

संन्यास का अर्थ हैः रह लिये नाटकीय बहुत, अब सरलता से जीयेंगे, सहजता से जीयेंगे। जैसे हैं वैसे ही जीयेंगे, अन्यथा न दिखायेंगे। हो जो परिणाम सो हो, अपनी प्रामाणिकता न खोयेंगे, किसी कीमत पर न खोयेंगे। हर मूल्य चुकायेंगे, मगर स्वभाव के विपरीत न जायेंगे।

और तुम चकित होओगे, शुरू-शुरू में अड़चन होगी, जरूर अड़चन होगी, क्योंकि तुमसे जिनके भी संबंध थे अब तक तुम्हारे नाटकीय रूपों से थे। जब तुम अपना नाटक छोड़ोगे तो सब संबंध अस्त-व्यस्त हो जायेंगे। तुम्हारे जो निकट प्रियजन हैं परिजन हैं वे सभी नाराज हो जायेंगे क्योंकि उनसे तुमने अब तक झूठे मुखौटे ओढ़कर नाते बनाये थे। किसी स्त्री से तुमने कहा था कि तेरे अतिरिक्त मुझे कोई सुंदर नहीं दिखाई पड़ता, बस तू ही है, तू ही मेरी नूरजहां, तू ही मेरी मुमताज महल, तू ही सब कुछ है! अब अगर तुमने नाटक छोड़े तो यह बात भी जायेगी। और जाते ही अड़चन शुरू होगी। क्योंकि उस स्त्री ने सारा नाता इसी आधार पर बनाया था। सत्य आयेगा तो असत्य के जो तुमने ताश के घर बनाये हैं, एक ही झोंके में गिरने लगेंगे। अब तुम यह न कह सकोगे, क्योंकि तुम जानते हो, तुम्हें और स्त्रियों में भी सौंदर्य दिखाई पड़ता है। कहते नहीं थे, छिपाते थे। दिखाई नहीं पड़ता था, ऐसा नहीं है। जिस आदमी को एक स्त्री में सौंदर्य दिखाई पड़ता है उसे और स्त्रियों में भी सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, क्योंकि सौंदर्य किसी एक पर समाप्त कैसे होगा? सौंदर्य का बोध एक पर समाप्त कैसे होगा? हां, जिसे अब कोई स्त्री-पुरुष ही नहीं दिखाई पड़ता, उसकी बात अलग लेकिन उसको फिर एक में भी मुमताज और एक में भी नूरजहां नहीं दिखाई पड़ेगी।

तुमने अगर अपना जीवन अब तक नाटकीय ढंग से बनाया था और ऐसे ही बनाया था, तो आज अचानक तुम सच्चे होने लगोगे तो सब तरफ से अड़चन आयेगी, सब तरफ से परेशानी आयेगी। यह परेशानी झेलनी पड़ेगी। इस परेशानी को मैं तपश्चर्या कहता हूं। तपश्चर्या का अर्थ धूप में खड़े होना, शीत में खड़े होना नहीं है। वह तो झूठी तपश्चर्या है। असली तपश्चर्या है अपने अब तक के बनाये गये नाटकीय मुखौटों को अलग करना और फिर जो परिणाम होने वाले हैं उनको झेलना। कष्ट होंगे, मगर हर कष्ट तुम्हारी चेतना की गहराई को बढ़ा जायेगा। और हर पीड़ा तुम्हारे जीवन को नई ऊंचाइयां दे जायेगी। और हर आग तुम्हें निखारेगी। और जल्दी ही तुम पाओगे कि नाटक कर-करके जीवन गंवाया था, अब नाटक छोड़कर जीवन पाया है।

आखिरी प्रश्नः प्रार्थना-शास्त्र का सार समझाइये!

प्रार्थना का कोई शास्त्र नहीं है। शास्त्र तो बुद्धि के होते हैं, हृदय का कोई शास्त्र नहीं होता। प्रार्थना भाव है, विचार नहीं है।

तो प्रार्थना के आंसू हो सकते हैं, प्रार्थना की मुस्कुराहट हो सकती है, प्रार्थना का नृत्य हो सकता है, प्रार्थना की तन्मयता हो सकती है, लेकिन प्रार्थना का कोई शास्त्र नहीं हो सकता। और अगर कोई प्रार्थना का शास्त्र बनायेगा तो वह बुनियाद से ही गलत होगा।

प्रार्थना तो प्रेम की सुवास है, इसका शास्त्र कैसे बनेगा?

तो पहली तो बातः प्रार्थना का कोई शास्त्र न है, न कभी होगा। प्रार्थना हो सकती है। और प्रार्थना उन्हीं के जीवन में होती है जिनका शास्त्रों से छुटकारा हो जाता है। जब तक शास्त्र तुम्हारी छाती पर बैठे हैं तब तक प्रार्थना का अंकुर नहीं निकल सकेगा, प्रार्थना का बीज नहीं टूटेगा। शास्त्रों ने ही तो सुखा डाला है तुम्हें। सिद्धांतों ने ही तो तुम्हें मरुस्थल बना दिया है--ऐसे मरुस्थल कि कहीं मरूद्यान भी दिखाई नहीं पड़ता। सब रूखा-सूखा हो गया है।

प्रार्थना तो आर्द्रता है, गीलापन है, रसमयता है। प्रार्थना का छंद होता है, शास्त्र नहीं होता। प्रार्थना की गीत-भंगिमा होती है, प्रार्थना की मुद्रा होती है। प्रार्थना की एक अंतस-दशा होती है, लेकिन उस अंतस-दशा को समझाने वाले कोई सिद्धांत नहीं हैं। प्रार्थना सिद्धांतों की पकड़ के बाहर है, सिद्धांतों के चमीटे में जो पकड़ में आ जाये उसे प्रार्थना मत समझना। फिर प्रार्थना न हिंदू होती, न ईसाई, न मुसलमान--प्रार्थना तो हार्दिक होती है।

जीवन की अंधियारी रात हो उजारी!
धरती पर धरो चरण तिमिर-तोम-हारी परमव्योमचारी!

चरण धरो, दीपंकर, जाए कट तिमिर-पाश!
दिशि-दिशि में चरण-धूलि छाए बनकर प्रकाश!
आओ, नक्षत्र-पुरुष, गगन-वन-विहारी--
धरा क्यों बिसारी?

आओ तुम, दीपों को निरावण करे निशा!
चरणों में स्वर्णहास बिखरा दे दिशा-दिशा!
पाकर आलोक, मर्त्यलोक हो सुखारी--
नयन हों पुजारी!

जीवन की अंधियारी रात हो उजारी!
धरती पर धरो चरण तिमिर-तोम-हारी परमव्योमचारी!

प्रार्थना तो पुकार है। प्रार्थना तो विरह की पुकार है। वह जो अदृश्य है उससे प्रार्थना है कि दृश्य हो जाओ। वह जो अचिंतनीय है उससे प्रार्थना हैः मेरे चिंतन पर छाया डालो। वह जो दूर है, उसे पास बुलाने का आग्रह है।

प्रार्थना विरह है। प्रार्थना रुदन है। प्रार्थना पुकार है। प्रार्थना शास्त्र तो कतई नहीं है। प्रार्थना आस्था है--विचार नहीं, संदेह नहीं।

मेरा मन मंत्र-लुब्ध
गहन-गुहा-द्वार बंद!
दूर कहीं मंत्र-दीप
जलता है मंद-मंद!

दीपक से दूर नयन,
नयनों की मंद दृष्टि!
जैसा मैं क्षुद्र, दिखी
वैसी ही ज्योति-सृष्टि!
चितवन भयभीत, इसे
अभय करो चिदानंद!

मेरे हित बंद सही
तुमको तो खुले द्वार!
तम-भ्रम को, मंत्रेश्वर,
हर लो कर कर-प्रसार!
अंधे को तुम न दिखो,
तुम को दिख रहा अंध!

मेरी अक्षमता के--
कारण तो हैं अनेक;
परिणति है प्रबल, और
दुर्बल मेरा विवेक!
अवगुन-गुन-जाल जटिल;
काटो, तो कटें फंद!

कारण से कर्म कठिन,
कर्मों का नहीं अंत!
सीमा मेरी असीम,
करुणा प्रभु की अनंत!
करुणामय शब्द-ब्रह्म,
मेरा अज्ञान--छंद!

मन को दो ज्योति-बोध;
देखूं मैं प्रणत-भाल--
पद-ताल साष्टांग प्रणत
उपकृत उदंड काल,
पद-रज को शीश धरे
अनुनय-नत दिग्गयंद।

प्रार्थना तो पुकार है कि मैं असहाय, मुझे सहारा दो! मेरे किये कुछ न हो सकेगा, तुम कुछ करो! प्रार्थना तो ऐसे है जैसे छोटा बच्चा रोये, भूखा बच्चा रोये। उठ भी नहीं सकता झूले से, इतना छोटा। इतना असहाय कि मां को खोज भी नहीं सकता। जानता भी नहीं कि मां कहां होगी, रोता है। बस वही रोना प्रार्थना है। ऐसे ही तो मनुष्य है--असहाय। इतना छोटा कि कहां खोजे उस विराट को, किस दिशा में जाये? न उसका पता है न ठिकाना है। लेकिन रो तो सकते हैं हम।

दीपक से दूर नयन,
नयनों की मंद दृष्टि!

इतना तो कह सकते हैं कि तुम इतने दूर हो, दीया इतने दूर है, प्रकाश इतना दूर है, कि मेरी आंखों को कुछ दिखाई नहीं पड़ता है सिवाय अंधेरे के।

दीपक से दूर नयन,
नयनों की मंद दृष्टि!

अभाग्य पर अभाग्य। एक तो दीया दूर, फिर आंखों की दृष्टि मेरी बहुत छोटी है। थोड़ी-सी दूर तक ही तो आदमी देख सकता है। चार कदम ही तो देख सकता है। देखने की क्षमता कितनी?

जैसा मैं क्षुद्र, दिखी
वैसी ही ज्योति-सृष्टि!

और मैं ही छोटा हूं, इसलिये जो भी मैंने देखा वह भी छोटा है। मेरी आंखें ही छोटी हैं। तुम विराट हो। तुम्हें देखने के लिये विराट आंख चाहिए। वैसी मेरे पास आंख नहीं है।

चितवन भयभीत, इसे
अभय करो चिदानंद!

और मैं कप रहा हूं और मैं डर रहा हूं।

चितवन भयभीत, इसे
अभय करो चिदानंद!

मेरे हित बंद सही,
तुमको तो खुले द्वार!

सुनते हो? समझो इसे--

मेरे हित बंद सही,
तुमको तो खुले द्वार!

मैं न आ सकूं, छोटा बच्चा न जा सके, मां तो आ सकती है! मैं न आ सकूं, तुम तो आ सकते हो! मेरे हित सब द्वार बंद हैं, समझ लो; मगर तुम्हारे लिये तो कोई द्वार बंद नहीं हैं।

मेरे हित बंद सही,

तुमको तो खुले द्वार!

तम-भ्रम को, मंत्रेश्वर,

हर लो कर कर-प्रसार!

अंधे को तुम न दिखो,

तुमको दिख रहा अंध!

मैं अंधा हूं। मुझे तुम नहीं दिखाई पड़ रहे। लेकिन तुम तो आंख ही आंख हो, मैं तो तुम्हें दिख रहा हूं। मैं तुम्हें न खोज पाऊं, लेकिन तुम मुझे खोज लो। तुम्हें क्या अड़चन है?

प्रार्थना इस बात का निवेदन है कि मैं तो नहीं खोज पा रहा हूं, तुम तो खोज सकते हो!

अंधे को तुम न दिखो,

तुमको दिख रहा अंध!

परमात्मा तुम्हें तब तक नहीं खोज सकता जब तक कि तुम निवेदन न करो। तुम्हारी स्वतंत्रता में बाधा नहीं डालेगा। इसलिये तुम निवेदन करो तो उसकी तरफ से हाथ आने शुरू हो जाते हैं। तुम्हारे निवेदन की ही कमी है।

मेरी अक्षमता के--

कारण तो हैं अनेक;

परिणति है प्रबल, और

दुर्बल मेरा विवेक!

अवगुन-गुन-जाल जटिल;

काटो, तो कटें फंद।

प्रार्थना का इतना ही सार है कि मेरे किये कुछ भी न हो सका। मेरे किये उलझन बढ़ी, जाल बढ़ा। मेरे किये तो जो सुलझा था वह भी उलझ गया। अब तुम सुलझाओ। मैं समर्पण करता हूं।

परिणति है प्रबल; और

दुर्बल मेरा विवेक!

मेरी अक्षमता के--

कारण तो हैं अनेक;

अवगुन-गुन-जाल जटिल;

काटो, तो कटें फंद।

तुम काटो तो कट जायें। और निश्चित कट जाते हैं, पुकारे भर कोई। भरपूर मन पुकारे। परिपूर्ण मन पुकारे। समग्रता से उठे आह, पहुंच जाती है उस तक। और उस तक एक बार भी तुम्हारा निवेदन पहुंच जाये तो रात टूटे, सुबह हो, तो आ जाये भोर।

भोर हो जायेगी, रात ढल जायेगी,

मुस्करा दो कि दुनिया बदल जायेगी!

आंख खोलो कि प्राची अरुण हो सके,
भैरवी की लहर भी तरुण हो सके!
स्नेह की ओस ठंडी हवा में सिहर
कामना के कमल के नयन धो सके!
मैं बटोही निशा का भ्रमाया हुआ,
मैं बटोही तिमिर का सताया हुआ!
दृष्टि-धनु पर किरण-शर चढ़ा छोड़ दो,
राह मेरी अंधेरी उजल जायेगी!
भोर हो जायेगी, रात ढल जायेगी!
मुस्करा दो कि दुनिया बदल जायेगी!

भावना के कुसुम मुस्कराने लगें,
प्यार की बेलियां लहलहाने लगें,
रूप की ज्वाल से गुदगुदा दो तनिक,
लालसा के मधुप गुनगुनाने लगें!
जिंदगी के विटप को प्रभा दो नई,
सांस के पल्लवों को हवा दो नई!
काल के व्योम में चहचहाती हुई
कल्पना कोकिला-सी निकल जायेगी!
भोर हो जायेगी, रात ढल जायेगी,
मुस्करा दो कि दुनिया बदल जायेगी!

ज्योति के शर चलाओ तिमिर-तोम में,
रूप के रवि! चढ़ो काल के व्योम में!
चेतना बन पलो सृष्टि के प्राण में,
चिर पुलक बन जगो देह में, रोम में!
तुम हंसो, प्राण मेरे करें आरती,
वंदना में उमड़ती रहे भारती;
हूं नयन-अंजली में लिये अश्रुजल;
देव! क्या अंजली यह विफल जायेगी!
भोर हो जायेगी, रात ढल जायेगी,
मुस्करा दो कि दुनिया बदल जायेगी।
अपनी अंजली में आंसू भरकर पुकारो।

प्रार्थना एक कला है, शास्त्र नहीं। प्रार्थना प्रेम की कला का ही नाम है; प्रेम की कला की पराकाष्ठा है। दो हिस्से हैं प्रार्थना के--पहला, कि मैं असहाय हूं, कि मैं अंधा हूं, कि मेरे लिये द्वार बंद हैं, कि मेरी सीमा है, कि मैं

क्षुद्र हूं, कि मेरे भटकाव के अनंत-अनंत कारण हैं, कि अनंत-अनंत कर्मों का जाल रुकावट है; दूसरा कि तुम आओ, कि तुम आ सकते हो। द्वार मेरे लिये बंद हैं, तुम्हारे लिये बंद नहीं। कि मैं भटक गया हूं, कि मैं बहुत दूर निकल गया हूं तुमसे, लेकिन तुम मुझसे दूर नहीं निकल गये हो। तुम्हारे बिना तो मैं जी ही कैसे सकूंगा? तुम्हीं तो मेरी श्वासों की श्वास हो, मेरे प्राणों के प्राण हो! मेरी पहचान भूल गई, मेरी प्रत्यभिज्ञा खो गई, तुम मेरे सामने भी खड़े हो जाओगे तो मैं पहचान न सकूंगा। मेरी विस्मृति गहरी है। मगर तुम्हारा स्मरण तो अपार है। तुम याद करो। मैं इतना ही कर सकता हूं कि रोऊं।

ज्योति के शर चलाओ तिमिर-तोम में,
रूप के रवि! चढ़ो काल के व्योम में!
चेतना बन पलो सृष्टि के प्राण में,
चिर पुलक बन जगो देह में, रोम में!
तुम हंसो, प्राण मेरे करें आरती,
वंदना में उमड़ती रहे भारती;
हूं नयन-अंजली में लिये अश्रु-जल;
देव! क्या अंजली यह विफल जायेगी!
भोर हो जायेगी, रात ढल जायेगी,
मुस्करा दो कि दुनिया बदल जायेगी!

आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

सहज-योग का आधारः साक्षी

आई ण अंत ण मज्झ णउ णउ भव णउ णि ब्वाण।
एहु सो परम महासुह णउ परणउ अप्पाण।। 7।।

घोरान्धारें चंदमणि जिम उज्जोअ करेइ।
परम महासुह एक्कु खणे दुरि आसेस हरेइ।। 8।।

जब्बे मण अत्थमण जाइ तणु तुट्टइ बंधण।
तब्बे समरस सहजे वज्जइ णउ सुद्द ण बम्हण।। 9।।

चीअ थिर करि धरहु रे नाइ। आन उपाये पार ण जाइ।
नौवा ही नौका टानअ गुणे। मेलि मेलि सहजे जाउण आणे।। 10।।

मोक्ख कि लब्भइ ज्झाण पविट्ठो। किन्तह दीवें किन्तह णिवेज्जं।
किन्तह किज्जइ मन्तह सेब्बं।
किन्तह तित्थ तपोवण जाइ। मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाइ।। 11।।

परऊ आर ण कीअऊ अत्थि ण दीअऊ दाण।
एहु संसारे कवण फलु वरूच्छडुहु अप्पाण।। 12।। ं

सुने हुए गीतों से मनहर मधुर अनसुना गीत,
आंखों-देखे से सुंदर अनदेखा मन का मीत!
जिसके मन में जितना कम अनदेखे का अनुराग,
उसके प्राणों में उतनी ही क्षीण हो चुकी आग!

तन से मन की शक्ति अधिक है, प्रबल देह से प्राण;
पृथ्वी से आकाश बड़ा है, जाने से अनजान!
जिसके प्राणों में जितना कम अनजाना आकाश,
उसका उतना ही कम सार्थक पृथ्वी पर आवास!

अगम कंदरा-क्रोड़ जल रहा जहां दीप निर्धूम;
सार्थक हैं वे नयन, सकें जो दीप-शिखा को चूम!

हैं प्रकाश के प्रति जो लोचन जितने स्नेह-विहीन,
हैं उतने ही दीन-हीन वह खंडित मुकुर मलीन!

वह पंचतल्ला पोत सदा धारावाहिक अविराम;
अगम शिखर से अगम सिंधु तक बहना इसका काम!
तिरता जाता पोत, प्राण का पाल बना आकाश;
दृग से जितना दूर नियामक, मन से उतना पास!

धर्म की खोज अज्ञात की खोज है; जो अब तक नहीं जाना, उसकी खोज है; जिसे अब तक नहीं पहचाना, उसकी खोज है। जिससे अब तक मिलन नहीं हुआ उससे मिलने की अभीप्सा का नाम धर्म है। जो जान लिया, वह संसार है; जो अभी नहीं जाना, वही परमात्मा है।

और परमात्मा अज्ञात ही नहीं है, अज्ञेय भी है। जान-जानकर भी जानने को शेष रह जाता है, ऐसा है। जितना उसमें कोई डूबता है उतनी ही गहराइयों के और द्वार खुल जाते हैं।

सुने हुए गीतों से मनहर मधुर अनसुना गीत,
आंखों-देखे से सुंदर अनदेखा मन का मीत!

जगत वह है जो आंख से दिखाई पड़ जाता है और परमात्मा वह जो आंख से दिखाई नहीं पड़ता और उसे देखना हो तो आंख बंद करनी पड़ती है। संसार को देखना हो तो आंख खोलने की जरूरत है, परमात्मा को देखना हो तो आंख बंद करने की जरूरत है।

धर्म की सारी कला आंख बंद करने की कला है। और आंख बंद करके ही वह दिखाई पड़ता है, क्योंकि वह तुम्हारे अंतर्तम में विराजमान है।

जिसके मन में जितना कम अनदेखे का अनुराग,
उसके प्राणों में उतनी ही क्षीण हो चुकी आग!

वह जीवित ही नहीं है, जिसको अनजान ने नहीं पुकारा, और जिसके प्राणों में अभीप्सा नहीं है--अज्ञेय के शिखरों को लांघ जाने की, अज्ञात सागरों में नाव छोड़ने की। जिसके मन में कोई आकांक्षा नहीं है, जो तट पर छोटे-से घर बसाकर बस गया है--सुरक्षा के घर, सुविधा के घर--और जिसने यात्रा छोड़ दी है सत्य के पथ की--वह आदमी जीवित ही नहीं है, या नाममात्र को जीवित है। उसके भीतर आग नहीं है; वह बुझी राख है। धार्मिक व्यक्ति प्रज्वलित हो उठता है, उसके भीतर एक आग है। और आग रोज सघन होती चली जाती है, त्वरा रोज बढ़ती चली जाती है। फिर उसके भीतर ऐसी लपट उठती है जो निर्धूम होती है।

धुआं कब उठता है? जब लकड़ी गीली होती है तब धुआं उठता है। जब लकड़ी बिल्कुल सूखी होती है तो धुआं नहीं उठता। धुआं आग से नहीं उठता, जैसा आमतौर से लोग सोचते हैं, धुआं लकड़ी में छिपे पानी के कारण उठता है; गीलेपन के कारण उठता है, आग के कारण नहीं। जितनी तुममें आग होगी, उतना ही तुम्हारे जीवन में धुआं कम होगा। लेकिन अभी तो धुआं-ही-धुआं है, आग तो कहीं दिखाई नहीं पड़ती। वासना ने तुम्हें बहुत गीला कर दिया है; ध्यान तुम्हें सुखा दे।

तपश्चर्या शब्द प्यारा है। विकृत हो गया--गलत लोगों के हाथ में पड़कर विकृत हो गया, अन्यथा शब्द बड़ा प्यारा है। तप का अर्थ होता हैः सूखना, सुखाना। तपश्चर्या का अर्थ होता हैः तुम्हारे भीतर का सारा गीलापन विदा हो जाये, तुम बिल्कुल सूखी लकड़ी हो जाओ। फिर जो आग प्रज्वलित होगी, निर्धूम होगी। फिर

तुम्हारी आंखें साफ होंगी। और वह जो दूर से दूर वह भी दिखाई पड़ेगा। और वह जो छिपा से छिपा है उसके चेहरे से भी घूंघट हट जायेंगे।

तन से मन की शक्ति अधिक है, प्रबल देह से प्राण;

पृथ्वी से आकाश बड़ा है, जाने से अनजान!

जिसके प्राणों में जितना कम अनजाना आकाश,

उसका उतना ही कम सार्थक पृथ्वी पर आवास!

व्यर्थ रहोगे पृथ्वी पर, अगर आकाश से अपरिचित रहे। अगर जाने में ही घूमते रहे तो कोल्हू के बैल हो। जाने में घूमना तो वर्तुलाकार घूमना है। अनजान की यात्रा ही, प्रतिपल अनजान की यात्रा ही, तुम्हें उसके निकट लायेगी--जो शाश्वत है। और तुम्हारे जीवन की ऊब चली जायेगी।

लोगों को देखते हो, कितने ऊबे हुए हैं! बोझ ढो रहे हैं पहाड़ों का छाती पर जैसे। न आंखों में चमक है जीवन की, न हृदय में धड़क है जीवन की, न कोई गीत उठता है, न कोई आनंद का पता चलता है। जी रहे हैं, क्या करें मजबूरी है। जी रहे हैं क्योंकि अभी मौत नहीं आई है। जी रहे हैं, मौत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह जीना राख जैसा जीना है। और अगर तुम्हारी जीभ पर राख का स्वाद फैल गया है तो कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह जीना जीना ही नहीं है, यह जीने का धोखा है। जब तक आकाश तुम्हें पुकारे न... ।

पृथ्वी में तुम गड़ाओ अपनी ज.ड़ें, मगर उठाओ अपनी शाखाओं को आकाश में। रहो--जो जान लिया गया--उसमें, लेकिन खोजते रहो अनजान को। यही मेरा अर्थ है, जब मैं कहता हूं कि संन्यस्त भी रहो और गृहस्थ भी। गृहस्थ का अर्थ होता हैः पृथ्वी। संन्यस्त का अर्थ होता हैः आकाश। और जैसे पृथ्वी और आकाश साथ-साथ हैं, ऐसे ही तुम्हारे भीतर भी दोनों बातें साथ-साथ घट रही हैं, तुम जानो या न जानो। देह तुम्हारी पृथ्वी का हिस्सा है, देह की ज.ड़ें पृथ्वी में हैं। और तुम्हारी आत्मा आकाश का हिस्सा है। तुम्हारे भीतर अपूर्व मिलन हो रहा है। तुम क्षितिज हो, जहां आकाश और पृथ्वी मिल रहे हैं। लेकिन तुम आकाश को भूल ही गये हो, बस तुम पृथ्वी ही पृथ्वी हो गये हो--मिट्टी ही मिट्टी, मृण्मय ही मृण्मय; चिन्मय का तुम्हें पता ही नहीं रहा।

अगम कंदरा-क्रोड़ जल रहा जहां दीप निर्धूम;

सार्थक हैं वे नयन, सकें जो दीप-शिखा को चूम!

प्रकाश को चूमना है। प्रकाश को आलिंगन करना है। उस आलिंगन से ही अर्थ पैदा होगा और काव्य जन्मेगा और तुम्हारे पैरों में घूंघर बंधेंगे। पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे! तुम भी नाच सकोगे। नाचना ही चाहिए। बिना नाचे गये तो व्यर्थ आये व्यर्थ गये। अवसर चूक गया।

अगम कंदरा-क्रोड़, जल रहा जहां दीप निर्धूम!

और दूर नहीं है वह अगम कंदरा! तुम्हारे ही हृदय की गुफा का नाम है। और वहां दीया जल रहा है--बिन बाती बिन तेल! वहां कोई धुआं नहीं है, ज्योति ही ज्योति है।

सार्थक हैं वे नयन, सकें जो दीप-शिखा को चूम!

हैं प्रकाश के प्रति जो लोचन जितने स्नेह-विहीन,

हैं उतने ही दीन-हीन वह खंडित मुकुर मलीन!

तुम्हारी आंखें अगर चमक खो दी हैं तो इसीलिये कि तुमने प्रकाश का प्रेम ही नहीं जगाया है। तुम्हारे भीतर प्रकाश का संस्पर्श ही नहीं हो रहा है। अंधेरे में रहोगे, अंधेरे ही अंधेरे में रहोगे, तो आंखें अंधी हो जायेंगी। ऐसे ही तो लोगों की आंखें हो गई हैं। जिनको सिर्फ पदार्थ दिखाई पड़ता है और परमात्मा नहीं, उनको आंख

वाला नहीं कहा जा सकता। पदार्थ तो कैमरे की आंख को भी दिखाई पड़ जाता है, उसमें कुछ खूबी नहीं है। उसकी तस्वीर तो कैमरा भी उतार लेता है। वह तो कैमरे की आंख भी समर्थ है। तुम्हारी आंख में और कैमरे की आंख में कुछ तो फर्क हो। और एक ही फर्क अर्थपूर्ण है, गरिमापूर्ण हैः तुम उसे देखने लगो जो पदार्थ में छिपा है, जो पदार्थ की ओट में छिपा है। नहीं तो आंखें तुम्हारी उदास ही रहेंगी; हृदय तुम्हारे टूटे ही रहेंगे; वीणा के तार तुम्हारे कभी सम्हलेंगे न; तुम्हारे भीतर अनाहद का नाद कभी उठेगा नहीं।

और सब तुम्हारे भीतर मौजूद है। तुम बीज हो परमात्मा के। मगर अभी बीज हो, संभावना हो। संभावनाओं को सत्य करना है। अभी तो एक स्वप्न हो, अभी सत्य नहीं है।

जो विटप के मूल में है,
डाल के फल-फूल में है,
कहो, लघु-आकार वह क्या चीज है?
--बीज है!

खेलता है खेल लुक-छिप कर,
अवनि के रेणु-कण से,
सीखता आरोह या अवरोह
नभ के वेणु-स्वन से!
रूप लघु, छाया बड़ी है,
विटप की काया खड़ी है।
किंतु छायाधार वह क्या चीज है?
--बीज है!

वास्तविक अतिशय विशद है,
सूक्ष्म सुपना!
बीज लघु जितना, बड़ा
वटवृक्ष उतना!
भूमिगत तम से निडर है,
दिख रहा विद्रुम-शिखर है,
मौन अक्षर-सार वह क्या चीज है?
--बीज है!

बीज से कुछ सीखो, क्योंकि तुम भी बीज हो। और तुम इस पृथ्वी पर सर्वाधिक बहुमूल्य बीज हो, क्योंकि तुमसे ही परमात्मा का फूल खिल सकता है। वह स्वर्ण-कमल तुम्हारी झील में ही खिलेगा। तुम पर एक बड़ा दायित्व है। तुम अगर बिना परमात्मा को जाने मर गये तो तुमने अपना दायित्व पूरा न किया। तुम बीज की तरह ही मर गये; टूटे नहीं, अंकुरित न हुए; फूले नहीं, फले नहीं। और परितोष, संतोष उसी को मिलता है--जो फूला, जो फला।

देखा है, फूल और फलों से जब वृक्ष लद जाता है, तो उसके आसपास कैसी परितोष की छाया होती है, कैसे आनंद का भाव होता है, परितृप्ति!

आदमी बांझ ही मर जायेगा? अधिक आदमी बांझ ही मर जाते हैं। जो होने को हुए थे बिना हुए मर जाते हैं। बीज से कुछ सीखो। बीज वृक्ष हो सकता है, लेकिन अगर ठीक भूमि न खोजे तो नहीं हो पायेगा। कंकड़-पत्थर जैसा ही रह जायेगा, मुर्दा। और भूमि खोजनी पड़ती है और भूमि में अपने को गला देना पड़ता है, मिटा देना पड़ता है। बीज जब मरता है तब वृक्ष होता है।

खोजो कोई स्थल--जहां तुम मर सको, मिट सको। खोजो कोई भूमि--जहां तुम अपने को समर्पित कर सको। जहां तुम झुक जाओ और अहंकार गल जाये, वहीं तुम्हारे भीतर से अंकुरण होगा--और वह अंकुरण सच्चा जीवन है! उस अंकुरण से तुम द्विज बनोगे, तुम्हारा दुबारा जन्म होगा। उसके पहले तुम द्विज नहीं हो, कोई भी द्विज नहीं पैदा होता। पहला जन्म मां-बाप से होता है, दूसरा जन्म स्वयं को स्वयं से ही देना होता है।

धरती पर भी जड़ जमती है,
जड़ हो यदि आकाश में!
बसती है आकाश-वासिनी
प्राणवायु हर श्वास में!
तन का जीवन शत वसंत
प्राणों की आयु अनंत है!
यहां क्षितिज की परिधि, परिधि के पार
अपार दिगन्त है!
खुलते रहते मृण्मय बंधन--
बंधने चिन्मय पाश में!
किसने बीज बो दिया जाने
अंतरिक्ष के क्रोड़ में?
नित नव शस्य उग रहे निशि-दिन
धरती के नौतोड़ में!
कट जाते हैं जन्म-जन्म
अनदेखे के विश्वास में!
धरती की मुसकान क्षणिक है,
धरती के आंसू अविरल,
प्रतिबिंबित मानस-नयनों में
आकुल अंतर, विश्व विकल!
जो न जीया है वही जीया है
धरती के इतिहास में!

प्यारा वचन है! --

जो न जीया है, वही जीया है
धरती के इतिहास में!

तुम जिसे जीवन कहते हो वह जीवन बिल्कुल व्यर्थ है। उस तरह जीने वाले तो जीये ही नहीं।

जो न जीया है, वही जीया है,

धरती के इतिहास में!

धन की दौड़ में, पद की दौड़ में, प्रतिष्ठा की दौड़ में, तुमने जीवन समझा है? ऐसे जो लोग जीये, जीये ही नहीं। जानने वालों से पूछो, जागों से पूछो। वे कहेंगेः ऐसे जो जीये वे जीये ही नहीं। फिर कौन जीया? जो बाहर के प्रति मरा और भीतर के प्रति जगा, वही जीया। जो परिधि पर नहीं जीया, केंद्र पर जीया--वही जीया।

जो अंतरात्मा में जीया वही जीया। जो अंतरात्मा में जीता है फिर बाहर तो ऐसे हो जाता है जैसे जल में कमल! नहीं कि बाहर नहीं जीता--उठता है, बैठता है, चलता है, फिरता है, सब करता है जो करना है; लेकिन अब न कोई आसक्ति है, न कोई आग्रह है, न कोई पकड़ है। अब अस्पर्शित जीता है। अब बाहर की कोई धूल उसके दर्पण को गंदा नहीं कर पाती। ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया, खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया! जीता है, लेकिन चादर मैली नहीं हो पाती। ज्यों की त्यों धर देता है।

यह तुम्हारी संभावना है। इस संभावना को पूरा करो। इस चुनौती को अंगीकार करो। मंदिर-मस्जिद जाने से तुम धार्मिक न हो जाओगे। इस चुनौती को स्वीकार करोगे तो धार्मिक होओगे।

सरहपा के सूत्र अति प्यारे सूत्र हैं; एक-एक शब्द को खूब गहनता से हृदय में उतारना।

आइ ण अंत ण मज्झ णउ णउ भव णउ णि ब्वाण।

एहु सो परम महासुख णउ पर णउ अप्पाण।।

"सहज शून्यावस्था का, समाधि का न तो आदि है न अंत है और न मध्य। न वहां जन्म है न निर्वाण। यह अलौकिक महासुख है। न इसमें पराये का भान रहता है, न अपना।"

समाधि है स्वर्ण-फूल। जब तक तुम समाधि न जान लो तब तक प्रयास रुके न। जब तक तुम समाधि न जान लो तब तक जीवन को दांव पर लगाये जाना, तब तक चले चलना है, तब तक नाव खेनी है--समाधि के तट तक नाव ले चलनी है। समाधि को बिना जाने जो गया, उसका आना-जाना व्यर्थ ही हुआ। उसने नाहक ही कष्ट झेले। उसने नाहक ही अनंत-अनंत रास्तों की धूल खाई, मंजिल पर पहुंचा ही नहीं।

समस्याओं में ही जीयेगा जो, समाधि को नहीं जानेगा। समाधि का अर्थ होता हैः परम समाधान।

सरहपा समाधि को कहते हैंः सहज शून्य अवस्था। सहज का अर्थ होता हैः तुम्हारे ही भीतर उमगी, तुम्हारे स्वभाव से ही निःसृत। असहज का अर्थ होता हैः ऊपर से थोपी गई। तुम्हारा जो व्यक्तित्व है अभी, ऊपर से थोपा गया, असहज है। यह तुम्हारे ही भीतर से नहीं आया है, यह समाज ने तुम्हें ओढ़ा दिया है। कोई हिंदू-घर में पैदा हो गया तो हिंदू है; मां-बाप ने एक आवरण ओढ़ा दिया। हिंदू-घर में पैदा हो गया तो वेद पढ़ता है, गीता पूजता है। और यही बच्चा जैन-घर में पैदा होता तो इसे कभी फिकिर न आती गीता की और वेद की और यह कभी हिंदू-मंदिर न जाता। यह जैन-मंदिर गया होता। इसने महावीर को पूजा होता। इसके मां-बाप ने इसे दूसरे कपड़े ओढ़ा दिये होते।

तुम जो हो अभी, उधार हो, नगद नहीं। कृत्रिम हो। दूसरों ने तुम पर कुछ रंग दिया है; अभी तुमने अपना रंग जाना नहीं। तुम्हारे चेहरे पर दूसरों ने मुखौटे लगा दिये हैं और आईनों के सामने खड़े होकर उन्हीं मुखौटों को देखकर तुम समझते हो यह तुम्हारा चेहरा है। यह तुम्हारा चेहरा नहीं है। तुम्हारा चेहरा और परमात्मा का चेहरा भिन्न ही नहीं है। तुम्हारा चेहरा वही है जो तुम जन्म के साथ लेकर आये थे--न जिसका कोई नाम था; न

जिसका कोई रूप था; न जो हिंदू था, न मुसलमान न ईसाई न बौद्ध; जो न शूद्र था न ब्राह्मण--जो बस था! शुद्ध होना! वह सहज है।

वह रूप या वह अरूप अब भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। कितने ही कपड़े पहना दिये गये हों, तुम्हारा स्वभाव अब भी उन कपड़ों के भीतर मौजूद है। तुम अपनी नग्नता में अब भी अगर जाग जाओ तो उसे जान लो जो तुम्हारी निजता है। मगर तुमने तादात्म्य कर लिया है। तुमने वस्त्रों को जोर से पकड़ लिया है। तुम कहते हो यही वस्त्र मैं हूं! और वहीं भूल हो गई है, वहीं चूक हो गई है।

तुमने अपने नाम को समझ लिया कि यह मैं हूं। नाम लेकर आये थे? कोई तो नाम लेकर आता नहीं है। तुमने अपनी भाषा को समझ लिया कि यह मैं हूं। भाषा लेकर आये थे? कोई भाषा तो लेकर आता नहीं। न कोई धर्म लेकर आता है, न कोई देश लेकर आता है। ये सब बातें सिखा दी गई हैं। ये तुम्हें तोतों की तरह रटा दी गई हैं। तुम तोते बन गये हो। और बड़े अकड़ रहे हो, क्योंकि तुम्हें वेद याद हैं, क्योंकि तुम्हें कुरान कंठस्थ है। तुम्हारी अकड़ तो देखो! और तुम्हें जरा भी होश नहीं है कि तुम जब आये थे, न कुरान थी तुम्हारे पास, न वेद थे तुम्हारे पास। तुम थे--एक कोरे कागज थे तुम! और जब तुम कोरे कागज थे तब तुम परमात्मा से जुड़े थे। जब से तुम्हारा कागज गूद दिया गया है तब से तुम समाज से जुड़ गये हो। तब से तुम अपने से टूट गये हो और भीड़ से जुड़ गये हो। तब से तुम भीड़ के हिस्से हो गये हो, तुम्हारी आत्मा खो गई है।

सहज का अर्थ होता है, जो तुम्हारा स्वभाव है; जो तुम्हें दूसरे से नहीं सीखना है, जो तुम्हें अपने भीतर तलाशना है; जिसका अन्वेषण भीतर ही करना है। उतरते जाओ पर्त-पर्त, छीलते जाओ अपनी पर्तों को, उस जगह तुम्हें पहुंचना है जहां "साक्षी" मिल जाये। इस शब्द को समझ लो तो तुम्हें सहज-योग की आधारशिला समझ में आ जायेगी।

तुम्हारे भीतर दो चीजें घट रही हैं। एक तो साक्षी है, जो सिर्फ देखता है, सिर्फ द्रष्टा है; द्रष्टा से भिन्न कभी कुछ भी नहीं है। और दूसरी तुम्हारी देह है, तुम्हारा मन है, तुम्हारे संस्कार हैं, तुम्हारे विचार हैं। ये सब तुम्हारे साक्षी के सामने से गुजरते हैं। मगर तुम इन्हें सिर्फ देखते नहीं, इनके साथ अपना राग-रंग बना लेते हो, इनके साथ आसक्ति निर्मित कर लेते हो। एक उदास बदली तुम्हारे चित्त पर से गुजरी, जैसे आकाश में से एक बदली गुजरती है। आकाश से गुजरती हुई बदली को देखकर तुम यह तो नहीं कहते हो कि मैं बदली हूं! अगर ऐसा कहोगे तो लोग तुम्हें पागल समझेंगे। मगर यही तुम कर रहे हो एक गहरे अर्थ में--यही पागलपन! तो जाननेवालों की नजरों में तो तुम पागल ही हो। तुम्हारे चित्त पर एक उदासी की बदली गुजरी, अभी क्षण पहले तो धूप थी, कोई बादल न था, क्षण पहले तो तुम मुस्करा रहे थे, बड़े आनंदित थे। फिर पड़ोसी ने कुछ कह दिया। दो शब्दों की भनकार--और तुम्हारे भीतर एक उदास बदली घिर गई! या किसी ने तुम्हें ऐसी नजर से देख लिया था जो तुम्हें भाया नहीं। या जो आदमी तुम्हें रोज नमस्कार करता था उसने नमस्कार न की आज। तुम्हारे चित्त पर एक छाया पड़ गई--एक उदास बदली घिर गई। अभी-अभी सूरज उगा था। अभी-अभी धूप थी, अब अंधेरा हो गया। अब तुम बोले कि मैं उदास हूं।

तुम भूल कर रहे हो। तुम यह उदास बदली नहीं हो। ना ही तुम धूप थे, न तुम छाया हो। पहले भूल की थी कि मैं धूप हूं कि मैं प्रसन्न हूं, कि मैं आनंदित हूं, कि मैं आनंद हूं--और अब कि मैं दुख हूं! फिर घड़ी बीतेगी और क्रोध आ जायेगा और घड़ी बीतेगी और प्रेम आ जायेगा।

और चौबीस घंटे तुम्हारे चित्त की राह पर बहुत-सी चीजें गुजरती हैं। यह तो बड़ा आवागमन है चित्त का! यह तो राह है जो चलती ही रहती है, दिन-रात चलती रहती है! इसमें हरेक यात्री के साथ तुम जुड़ जाते होः

और तुम्हें याद भी नहीं आता कि तुम सबसे भिन्न हो। दुख-सुख आते हैं चले जाते हैं। तुम न तो आते न जाते। न तुम्हारा कोई आना है न जाना है। दुख-सुख मेहमान बनते हैं क्षण-भर को, टिक जाते हैं तुम्हारे भीतर थोड़ी देर को, फिर विदा हो जाते हैं। तुम मालिक हो। तुम आतिथेय हो, ये तो सब अतिथि हैं--आते-जाते रहते हैं। तुम इनमें से किसी के साथ भी अपने को एक न करो। एक किया, तादात्म्य किया, भ्रांति हो गई।

बस चित्त की भावदशाओं के साथ तादात्म्य का हो जाना ही संसार है। और चित्त की भावदशाओं के साथ तादात्म्य का टूट जाना साक्षी का जन्म है। वही समाधि है।

तुम सिर्फ देखो। दुख आये तो देखो--और जानते रहो कि मैं देखनेवाला हूं, मैं दुख नहीं हूं। और तुम बहुत चौंकोगे। इस छोटे-से प्रयोग को उतारो जीवन में। यह कुंजी है। इससे अमृत के द्वार खुल जाते हैं। दुख आये, देखते रहो। जागे रहना, क्योंकि पुरानी आदत हो गई है, जन्मों-जन्मों की आदत हो गई है जल्दी से दुखी हो जाने की। कहना कि मैं देखनेवाला हूं, कि मैं तो सिर्फ दर्पण हूं, कि दुख की छाया बन रही है ठीक। इससे दर्पण दुखी नहीं होता। छाया गई, दर्पण फिर खाली हो जाता है। तुम दर्पण मात्र, द्रष्टा मात्र, साक्षी-मात्र। और फिर देखना, अचानक हैरान हो जाओगेः दुख की बदली है और तुम दुखी नहीं हो! दुख की बदली वहां है, तुम यहां हो; दोनों के बीच अनंत आकाश है! दोनों के बीच अनंत फासला है, जो कभी भरा नहीं जा सकता, कभी जोड़ा नहीं जा सकता। उदासी होगी और तुम उदास न होओगे, तुम सिर्फ निरीक्षण करोगे।

फिर खुशी भी आयेगी, अब खुश मत हो जाना। क्योंकि दुख को तो देखने की आदमी चेष्टा कर लेता है, क्योंकि दुखी तो कोई होना नहीं चाहता; लेकिन सुख... सुख को तो जल्दी से आलिंगन कर लेता है, सुख को तो जल्दी से ओढ़ लेता है। सुख के साथ भी यही करना। वह भी बादल है। वह भी आया-गया मेहमान है। ऐसे हर मेहमान के पीछे चलने लगोगे तो जिंदगी टूट जायेगी--टूट ही गई है। आये सुख, देखते रहना।

अगर तुम सुख और दुख दोनों को देख सको तो तुम्हारे भीतर जो अवस्था पैदा होगी, उस अवस्था का नाम सहज है, साक्षी है, समाधि है। पहले तो क्षण-भर को बनेगी यह बात, मगर क्षण-भर को बनी तो बन गई। पहले तो क्षण भर को झलक मिलेगी साक्षी की, मगर उतनी झलक ही काफी है। स्वाद एक बार आ जाये, बस तुम चकित हो जाओगे कि कितना अपूर्व रस बहता है उस क्षण में! कैसी अमृत की धार बरस जाती है! न दुख न सुख--उस अवस्था को सरहपा ने महासुख कहा है। न दुख न सुख! ख्याल रखना, महासुख शब्द से धोखे में मत पड़ जाना। शब्द का कोई उपयोग तो करना ही पड़ेगा। कोई उस अवस्था को आनंद कहता है, मगर उसमें भी वही भूल हो जाती है, क्योंकि तुम समझते हो आनंद यानी सुख ही सुख की महा राशि। सरहपा ने महासुख कहा है, इससे भूल में मत पड़ जाना। तुम्हारे सुख से महासुख का कोई संबंध नहीं है। महासुख तब अनुभव होता है जब सुख और दुख दोनों विदा हो जाते हैं।

बुद्ध का शब्द ज्यादा उचित है। बुद्ध शांति शब्द का उपयोग करते हैं--परम शांति! सब शून्य हो जाता है। एक निर्विकार दशा। कुछ उठता नहीं कुछ गिरता नहीं, कुछ आता नहीं कुछ जाता नहीं। एक सन्नाटा! एक अपूर्व शांति! मगर महासुख उसमें है। इसलिये सरहपा ठीक कहता है। सहज शून्य अवस्था का... ! और इस अवस्था को तुम जान लो तो तुम्हें पता चलेगाः न तो इसका कोई आदि है न अंत, न तो यह कभी शुरू होती और न कभी इसका कोई अंत होता। और स्वभावतः जिसका आदि न हो अंत न हो, उसका मध्य भी नहीं होता। यह शाश्वत है। यह सनातन है। यही है सनातन धर्म। हिंदू धर्म सनातन धर्म नहीं है--यही है सनातन धर्म! यह सहज, शून्य, समाधि! वहां न जन्म है न निर्वाण। वहां न कभी कोई जन्मता है न कोई मरता है। वहां समय ही नहीं है--कैसा जन्म कैसी मृत्यु! यह अलौकिक महासुख है।

यह अलौकिक है, पहली बात। इस लोक में तुमने जितने सुख जाने हैं उनसे इसका कोई भी संबंध नहीं है। इस लोक में जाने गये सुख और इस महासुख में कोई मात्रा का संबंध नहीं है--गुण-भेद है। यह कुछ और ही ढंग का सुख है। इस सुख को कहने के लिए कोई शब्द नहीं है, इसलिये किन्हीं न किन्हीं शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। लौकिक शब्दों का ही उपयोग करना पड़ता है। लेकिन शर्त लगाकर--अलौकिक महासुख! "अलौकिक" की शर्त लगा दी, ताकि तुम भूल न जाओ।

तुमने जो सुख जाने हैं वे ऐन्द्रिक हैं। एक सुख जाना है स्वाद का। एक सुख जाना है नाद का। एक सुख जाना है रूप का। तुमने जो सुख जाने हैं वे इंद्रियों के सुख हैं। वे बाहर से आये हैं। सुबह हुई, सुंदर सूरज निकला और तुम्हारी आंखें विमुग्ध हो गईं और तुम्हारे भीतर बड़ा सुख आया। मगर यह बाहर से आया है। यह सहज नहीं है। यह तुम्हारे भीतर नहीं जन्मा है। यह पराया है, विजातीय है। भोजन किया, स्वाद की प्रतीति हुई, सुख मिला यह भी बाहर से आया है।

वह महासुख बाहर से नहीं आता--भीतर ही आविर्भूत होता है। उसकी स्फुरणा भीतर ही होती है। वह नाद भीतर बजता हैः वह स्वाद भीतर उठता है। वह रूप भीतर सघन होता है। इंद्रियों से नहीं आता--अतीन्द्रिय है, अलौकिक है, और महा है। उसका कोई पारावार नहीं है। उसकी बाढ़ आती है। ऐसा रत्ती-रत्ती, टुकड़े-टुकड़े नहीं आता। आता है तो जैसे पूरा आकाश टूट पड़ता है। न इसमें पराये का भान रहता है, न अपना। और वहां सब मिट जाता है--न कोई तू न कोई मैं। सब विदा हो जाते हैं। वहां कौन तू कौन मैं।

मैं-तू का सारा खेल तो बाहर-बाहर है। बाहर तुम अलग हो, मैं अलग हूं। भीतर हम सब एक हैं। हम सभी एक हैं, ऐसा नहीं--वृक्ष और पशु और पक्षी भी वहां एक हैं। और ऐसा ही नहीं कि हम जो समसामयिक हैं, एक हैं--जो हमसे पहले हुए हैं वे और जो हमसे बाद में होंगे वे, सभी वहां एक हैं। एक ही है वहां। वहां एक ही सागर है। उसीकी सब तरंगें हैं। उसमें तरंगें उठती हैं गिरती हैं। पहले जो उठी थीं तरंगें, वे भी उसी सागर में उठी थीं; अब जो उठ रही हैं वे भी उसी में उठ रही हैं; आगे जो उठेंगी वे भी उसी में उठेंगी। और सागर एक है। उस महासुख के सागर को जिसने जान लिया वही विमुक्त है।

तो ख्याल रखनाः महासुख ऐसी अवस्था है जहां सुख नहीं दुख नहीं, क्योंकि सुख भी एक उत्तेजना है और दुख भी एक उत्तेजना है। वहां कोई उत्तेजना नहीं है।

न जाने किसलिए दोनों का साथ लाजिम था

खुशी भी हो गयी रुख़सत जहां मलाल गया

जिस दिन तुम्हारा दुख जायेगा, तुमने जो सुख जाना है वह भी चला जायेगा।

न जाने किसलिए दोनों का साथ लाजिम था

खुशी भी हो गई रुख़सत जहां मलाल गया

लेकिन तभी महासुख जन्मता है। तब तुम एक ऐसे अपूर्व अनुभव को उपलब्ध होते हो, जिसकी तुम्हें सदा से तलाश थी। ठीक-ठीक पता नहीं था तो भी तलाश उसी की थी। हम खोज उसी को रहे हैं। हम चाहे जानकर न खोज रहे हों, मगर हम खोज उसी को रहे हैं, क्योंकि हमने कभी किसी क्षण में उसे जाना है। मां के गर्भ में बच्चा उसका रस लेता है, स्वभाव में होता है; जैसे ही पैदा हुआ कि विभाव शुरू हुआ। हमने उसे सिखाना-पढ़ाना शुरू किया। हमने उस पर आरोपण शुरू किये। नौ महीने डूबा था एक सुख में।

अब छोटा बच्चा जो मां के पेट में था, उसकी इंद्रियां तो उसे कुछ भी नहीं दे रही थीं--न तो उसकी आंखें खुली थीं कि रूप देखता, न भोजन कर रहा था कि स्वाद देखता। उसकी सारी इंद्रियां सोई थीं, सारी इंद्रियां बंद

थीं। एक कली की भांति था, पंखुड़ियां बंद थीं। मगर पंखुड़ियों के भीतर सुवास तो थी! भीतर ही भीतर वह रस बह रहा था। भीतर ही भीतर आनंद की धारा थी। जन्मा--और हमने उसे सिखाना शुरू किया और हमने उसे कुछ का कुछ बनाना शुरू किया। हमने उसके कोरे कागज पर लिखाई शुरू की।

और हमारी भी मजबूरी है, लिखाई करनी पड़ेगी। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि लिखाई मत करो। लिखाई कुछ न कुछ तो करनी पड़ेगी। भाषा सिखानी पड़ेगी, नहीं तो बोलेगा कैसे? और भाषा सीख लेगा तो मौन खो जायेगा। और भाषा तो सिखानी ही पड़ेगी--आवश्यक बुराई है, बचा नहीं जा सकता, नहीं तो गूंगा रह जायेगा। जिंदगी का काम कैसे चलेगा? कमायेगा कैसे? दो रोटी-रोजी तो कमानी ही पड़ेगी। कुछ तो करना पड़ेगा। लोगों से बोलेगा कैसे? तो भाषा तो सिखानी ही पड़ेगी। लेकिन भाषा जैसे ही भर जायेगी वैसे ही भीतर का जो शून्य था वह खो जायेगा। यह सौदा महंगा है, मगर करना पड़ता है। और करना ही पड़ेगा।

इतना ही ध्यान अगर मां-बाप, समाज और परिवार रख सकें कि जब भाषा सिखाई जा रही हो तब एक कोने में उसे शून्य को बचाना भी सिखाया जा सके तो काम हो जाये। भाषा भी सिखाई जाये और उसको याददाश्त भी बनाये रखी जाये कि तू अपने भीतर के शून्य को बिल्कुल मत भूल जाना, चौबीस घंटे में कम-से-कम घंटे-भर को तू फिर शून्य हो जाना, तेईस घंटे भाषा एक घंटे शून्य हो जाना... और बच्चे जितनी जल्दी शून्य को सीख लेते हैं, कोई दूसरा नहीं सीख सकता, क्योंकि वे तो हैं ही शून्य में। भाषा सिखाने में अड़चन हो रही है। अभी शून्य तो हैं ही, अगर हम थोड़ा-सा शून्य बचा सकें बच्चे का तो हम उसका जितना हित करेंगे उतना हमारी पूरी शिक्षा से भी नहीं होने वाला है।

और फिर ऐसी चीजें तो हम न सिखायें जिन्हें बिना सिखाये चल सकता है। जैसे मैंने कहा भाषा तो सिखानी पड़ेगी, लेकिन हिंदू होना थोड़े ही सिखाना जरूरी है, मुसलमान होना थोड़े ही सिखाना जरूरी है। यह तो बिल्कुल व्यर्थ की सिखावन हैं। हां, उसे परमात्मा की खोज जरूर हम सिखायें और उससे कहें कि तू परमात्मा को खोजना। यह जो दिखाई पड़ रहा है इतने पर ही सब समाप्त नहीं हो जाता है; अनदिखाई पड़ने वाला भी कुछ है; अनजान भी कुछ है--तुम खोजना उसे। और अगर मां-बाप सच में अपने बच्चे को प्रेम करते हों तो कभी उसे मस्जिद भी ले जायेंगे कभी गुरुद्वारा भी, कभी गिरजा भी कभी मंदिर भी, क्योंकि पता नहीं तेरा मिलना उससे कहां जो जाये! तू सब जगह खोजना। सारे द्वार उसके हैं। संकोच मत करना। और जिद मत करना कि हम तो मंदिर में ही खोजेंगे कि मस्जिद में ही खोजेंगे।

अगर मां-बाप सच में बच्चों को प्रेम करते हों तो वे सारे मंदिरों के द्वार उसके लिये खुले रखेंगे। वे उससे कहेंगेः तू वेद भी पढ़ना, कुरान भी थोड़ी पढ़ना, गीता भी पढ़ना, धम्मपद भी। पता नहीं कहां किस कोने से वह किरण उतरे! पता नहीं तेरा तालमेल किस ढंग से उससे बैठ जाये! गुरुद्वारे में बैठे कि गिरजे में, कौन जाने! नानक की वाणी सुनकर बैठे कि कबीर की, कौन जाने! मुहम्मद के वचन सुनकर बैठे कि महावीर के, कौन जाने! हिंदू मत बनाना, मुसलमान मत बनाना। हां, धर्म की अभीप्सा देना और धर्म भी थोपना मत। यह मत कहना कि ईश्वर है, क्योंकि तब तुम आस्तिकता, थोपने लगे उसके ऊपर। इतना ही कहना कि कुछ अज्ञात है खोजना और जब खोजकर मिल जाये तो ही श्रद्धा करना, उसके पहले श्रद्धा भी मत करना।

बच्चे को ऐसा बल देना--खोज का बल, साहस, अभियान--कि बिना माने मत रुकना; लेकिन मानना तभी जब जान लो। उधार मानना मत कर लेना। फर्क समझ रहे हो? सिद्धांत मत देना, खोज देना। खोज की अभीप्सा देना। शास्त्र मत देना, प्यास देना। और तब एक दूसरे ढंग की दुनिया बन सकती है--अगर बच्चों के हृदय खुले रखे जायें और हम उन पर जबरदस्ती धर्मों का आरोपण न करें और जबरदस्ती धार्मिक बातें उन्हें न सिखा दें, बल्कि

उनका हाथ पकड़कर चलना सिखायें और फिर उनका हाथ छोड़ दें और उनसे कहें कि अब तुम अपने पैरों पर चलने लगे, अब तुम खोजो। अब तुम्हें कहीं कोई सदगुरु मिल जाये तो झुक जाना। फिर वह हिंदू हो कि मुसलमान कि ईसाई, फिकिर मत करना। काला हो कि गोरा, फिकिर मत करना। स्त्री हो कि पुरुष, फिकिर मत करना। अगर तुम्हें कभी कहीं कोई परमात्मा का प्यारा मिल जाये तो समझ लेना कि यही भूमि है, इसी में बीज को गिरा देना है, इसी में समाप्त हो जाना है, इसी में नया जन्म लेना है।

तलाश तो उसीकी चल रही है क्योंकि हमने उसे जन्म के पहले जाना था। और फिर हम उससे छूट गये हैं, छिटक गये हैं।

हुजूमे-रंजो-अलम में भी है खुशी की तलाश
मैं कर रहा हूं अंधेरे में रोशनी की तलाश

कितना ही दुख हो, दुख की अधिकता में भी हम सुख की ही तलाश कर रहे हैं--उसी महासुख की।

हुजूमे-रंजो-अलम में भी है खुशी की तलाश
मैं कर रहा हूं अंधेरे में रोशनी की तलाश

खोज तो उसीकी ही चल रही है। जो जानकर खोज करेंगे, जल्दी खोज लेंगे। जो ऐसे ही बिना जाने खोज करते रहेंगे, शायद जन्मों-जन्मों तक भटकते रहें और खोज न हो पाये। खोज को सचेतन बना लेना ही दीक्षा है। खोज के प्रति जागरूक हो जाना ही, सम्यक रूपेण खोज के प्रति होश से भर जाना ही संन्यास है।

"वह शून्य अवस्था ऐसी है कि न उसका आदि न अंत न मध्य। न जन्म है वहां न निर्वाण।"

सिंधु के उस पार जाने की लहर को क्या पड़ी है?
लहर है हर लहर जल की, लहर छोटी या बड़ी है!

जीव ब्रह्मानंद रस का कोष अंतर में छिपाए!
क्यों न अंतर्पुरुष सबका मगन-मन सहगान गाए!
कंठ घट का मुक्त, हर क्षण गीत की नूतन कड़ी है!

यहां का जीवन वहां के लिए पूर्वाभ्यास करता,
रंग के मिस ही सही, पर जीव नित-नव रास धरता!
बीतती है जो घड़ी, लाती निकट रस की घड़ी है!

ज्ञान से सह रहा है दुख, मान कर सुख को अनश्वर!
दिव्य की आराधना में कर दिए चैतन्य प्रस्तर!
इधर लौ, तो उधर लगती पुष्प-वर्षा की झड़ी है!

जीव नित आनंद-मंदिर में सतत आराधना-रत!
देव-प्रतिमा की मधुर मुसकान करती दिव्य स्वागत!
सिद्धि मंदिर द्वार पर कब से सधी पहरे पर खड़ी है!

कब से परमात्मा हमारी राह देख रहा है! दूर नहीं है बात, हमारा स्वभाव उसे अपने भीतर लिये हुए है! सिंधु के उस पार जाने की लहर को क्या पड़ी है? लहर को कहीं जाना नहीं है--इस पार या उस पार। लहर है हर लहर जल की, लहर छोटी या बड़ी है! हर लहर में सागर मौजूद है, इसे पहचानना, इसकी प्रत्यभिज्ञा करनी है।

जीव ब्रह्मानंद-रस का कोष अंतर में छिपाए!

क्यों न अंतर्पुरुष सबका मगन-मन सहगान गाए!

कंठ घट का मुक्त, हर क्षण गीत की नूतन कड़ी है!

सिंधु के उस पार जाने की लहर को क्या पड़ी है?

लहर है हर लहर जल की, लहर छोटी या बड़ी है!

इससे कुछ भेद नहीं पड़ता कि लहर छोटी है कि बड़ी, सारी लहरों के भीतर एक ही सागर लहरा रहा है। कहीं जाना नहीं है, ब्रह्मानंद तुम्हारे भीतर मौजूद है। जरा मुड़ो भीतर। और जरा तुम मुड़ो कि क्रांति घट जाये।

इधर लौ तो उधर लगती पुष्प-वर्षा की झड़ी है।

तुम्हारी लौ भर लग जाये भीतर की तरफ कि बरसने लगते हैं पुष्प।

बीतती है जो घड़ी, लाती निकट रस की घड़ी है!

फिर तो घड़ी-घड़ी रस का घट करीब आने लगता है।

सिद्धि मंदिर-द्वार कब से सधी पहरे पर खड़ी है!

जरा देखो भीतर! तुम जिसे खोज रहे हो वह वहां मौजूद है--और कब से मौजूद है! अनंत काल से मौजूद है! तुम्हारे भीतर है वह जिसकी खोज कर रहे हो। इसलिये सरहपा कहते हैं सहज-योग। नहीं है बाहर, भीतर है। नहीं पाना है भविष्य में, अभी उपलब्ध है।

फजूल पांव थकाने से फायदा क्या है?

अगर है शौके-बयाबां तो घर में पैदा कर।

लोग नाहक दौड़-धूप कर रहे हैं--कोई चला काबा, कोई चला काशी, कोई चला कैलाश। लोग नाहक दौड़-धूप कर रहे हैं।

फजूल पांव थकाने से फायदा क्या है?

अगर है शौके-बयाबां तो घर में पैदा कर।

अगर जरा भी हिम्मत है, सच में अभीप्सा है, रस है, लगाव है, प्रेम है परमात्मा से--तो तुम्हारे भीतर ही शून्य को पैदा कर लो। और सब हो जायेगा--काबा भी, काशी भी, कैलाश भी, सब वहां घटित हो जायेंगे।

वहां न जन्म है न निर्वाण। वहां महासुख है अलौकिक। न वहां पराया है कोई न अपना; न कोई मैं न तू।

होश किसी का भी न रख, जलवागहे-निया.ज में।

बल्कि खुदा को भूल जा सज्दा-ए-बेनिया.ज में।।

वहां अपने-पराये का तो होश अलग, परमात्मा तक का होश छूट जाता है। किसको ख्याल रह जाता है, ऐसा शून्य घटता है! इसीलिये सरहपा ईश्वर शब्द का उपयोग नहीं कर रहे हैं, क्योंकि उस परम अवस्था में इतना भी भेद कहां रहता है--कौन भक्त, कौन भगवान!

होश किसी का भी न रख, जलवागहे-निया.ज में। प्रेम के मंदिर में छोड़ो होश मैं का तू का। बल्कि खुदा को भूल जा सज्दा-ए-बेनिया.ज में। प्रेम की तल्लीनता में तो भक्त भगवान हो जाता है, भगवान भक्त हो जाता

है। प्रेम की तल्लीनता में न तो कोई पुजारी है, न कोई पूज्य है। वहां तो शून्य है। वहां तो शून्य का नाद बजता है। वहां तो शून्य का संगीत हैः न कोई बजाने वाला, न कोई वाद्य। इसलिये अलौकिक घड़ी है।

घोरान्धारे चंदमणि जिम उज्जोअ करेइ।

परम महासुह एक्कु खणे दुरि आसेस हरेइ।।

"जैसे घोर अंधकार में चंद्रमणि उजेला कर देती है, इसी तरह यह अपूर्व महासुख एक क्षण में ही संपूर्ण दुश्चरित्रों का नाश कर देता है।"

इस वचन को ख्याल में लेना, क्योंकि तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें कुछ और ही समझा रहे हैं। वे समझा रहे हैं कि जन्मों-जन्मों के कर्म हैं उनको जन्म-जन्म लगेंगे कटने में, जल्दी होनेवाला नहीं है कुछ। लेकिन सरहपा कहते हैंः एक क्षण में घटना घट जाती है, एक पल में! जैसे अंधेरा हजारों साल से घिरा हो तो क्या तुम सोचते हो दीया जलाओगे तो अंधेरा मिटेगा नहीं? वह कहेगा कि मैं हजारों साल पुराना अंधेरा हूं, मैं इतने जल्दी नहीं मिट सकता? हजारों साल तक दीये जलाओ तब मिटूंगा? दीया जला कि अंधेरा गया! अंधेरे को कहने का समय भी कहां बचता है! फिर हजार साल पुराना हो कि करोड़ साल पुराना हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अंधेरे के पुरानेपन का कोई अर्थ ही नहीं होता। अंधेरे की कोई पर्त-दर-पर्त थोड़े ही जमती है कि अब करो.ड़ों साल का अंधेरा है तो बहुत गहन हो गया है। क्षण-भर का अंधेरा कि अनंत काल का अंधेरा, प्रकाश के सामने बराबर है।

ऐसी ही वह क्रांति की घड़ी है। जिसके भीतर सहज का प्रकाश हो जाता है, शून्य का अनुभव, उसके सारे कर्म एक क्षण में कट जाते हैं। हमने किये, यह बात ही गलत है। हमने सपना देखा करने का। जैसे रात तुमने सपने देखे, चोर हो गये, चोरी की, हत्या की; या साधु हो गये और बड़ी तपश्चर्या की--और सुबह जब जागे तो हंसे, न तो तुम चोर हुए थे न तुम साधु हुए थे। तुम कुछ हो ही नहीं सकते, तुम सिर्फ साक्षी हो। तुम्हारे सारे कर्म भ्रांतियां हैं। तुम्हारे सारे कर्म नाटक हैं, इससे ज्यादा नहीं; अभिनय हैं। फिर चाहे राम बन जाओ रामलीला में और चाहे रावण बन जाओ, कुछ भेद नहीं पड़ता। नाटक ही है, अभिनय ही है। परदे के पीछे न रावण रावण है, न राम राम है। परदे के बाहर दर्शकों के सामने रामलीला चल रही है। इसलिये तो उसको लीला कहते हैं।

लीला का मतलब कि बस खेल है। ज्यादा मूल्य मत देना। ज्यादा अर्थ मत दे देना। बस खेल है। फिर सपना साधु का हो कि सपना असाधु का, सपना सपना है। जिस दिन जाग जाओगे उसी दिन अंत हो जायेगा। जब जागे तभी अंत हो गया सारे सपनों का।

मैं कर्ता हूं, वह स्वप्न का भाव है; मैं साक्षी हूं, यही जागरण की अवस्था है।

सरहपा कहते हैंः जैसे घोर अंधकार में चंद्रमणि उजेला कर देती है, इसी तरह यह अपूर्व महासुख एक क्षण में ही संपूर्ण दुश्चरित्रों का नाश कर देता है। अगर दुश्चरित्र सचमुच हुए होते तो फिर एक क्षण में नष्ट नहीं हो सकते थे। फिर तो समय लगता। अगर घाव सच में हों तो भरने में समय लगेगा। लेकिन घाव अगर भ्रांति ही हो तो जिस दिन भ्रांति मिट गई, उसी क्षण भर गया। अगर सांप सच ही रास्ते पर हो तो भगाने में समय लगेगा, मारने में समय लगेगा, लेकिन अगर रस्सी ही हो और सांप प्रतीत हुआ हो अंधेरे में, तो दीये के जलते ही समाप्त हो गया। था ही नहीं, इसीलिये समाप्त हो गया क्षण-भर में। जो नहीं था, वही क्षण भर में समाप्त हो सकता है। जो था, वह क्षण-भर में समाप्त नहीं हो जायेगा। जितने समय था, उतना ही लंबा समय लगेगा उसे समाप्त करने में। असली बीमारी हो तो इलाज करवाना पड़ेगा; नकली बीमारी हो तो किसी बाबा की विभूति से ठीक हो जायेगी। बीमारी नकली है, नकली इलाज काम कर जायेगा।

एक पागल आदमी को मेरे पास लाया गया एक बार। उसका पागलपन कोई बहुत बड़ा नहीं था, छोटा था, मगर मुश्किल में तो डाल ही दिया था उसको। उसको यह भ्रांति हो गई थी कि एक मक्खी उसके भीतर घुस गई है। वह मुंह खोलकर सोता है तो एक मक्खी भीतर चली गई। और वह भिन-भिन भिन-भिन उसके भीतर घूमती रहती है। कभी सिर में, कभी पेट में, कभी हाथ में, कभी पैर में। और कुछ पागलपन नहीं था उसको, बाकी सब काम करता सब करता। मगर यह एक झंझट थी उसको काम करते-करते ही बीच में ही पेट पकड़कर बैठ जाये कि पेट में, कि सिर पकड़कर बैठ जाये कि सिर में, अभी सिर में आ गई।

उसको डाक्टरों के पास ले जाया गया। उन्होंने सब तरह से उसकी परीक्षा की कि कहीं ऐसे कोई मक्खी घुसती है और ऐसे मक्खी घुस भी जाये तो मर जायेगी, ऐसे कहां घूमती रहेगी? ऐसे कोई स्थान थोड़े ही हैं कि सिर से चली गई पेट में और पेट से चली गई... कोई ऐसी सुरंगें थोड़े ही हैं। मगर वह माने ही न। वह कहे कि हम आपकी मानें कि अपने अनुभव को मानें? भन-भन करती है, आवाज साफ मालूम होती है। चलती-फिरती मालूम होती है, सरकती मालूम होती है।

उन्होंने कहाः यह सब तुम्हें वहम है। मगर वहम कहने से कोई वहम मिटता है? उसकी पत्नी थक गई, परेशान हो गई। मेरे पास... किसी ने कहा कि उनके पास ले चलो। मैंने कहाः यह भी बड़ी झंझट है। ऐसा मामला मेरे सामने अभी आया नहीं कोई, मगर कोशिश करते हैं। मैंने उस आदमी को कहा कि कहां है इस समय? तो उसने कहाः मेरे सिर में। तो मैंने उसके सिर में हाथ लगाया। और मैंने कहा कि भन-भन तो मुझे भी सुनाई पड़ती है। वह एकदम खुश हो गया। उसने मेरे पैर छुए। उसने कहा कि आप एक पहले आदमी हैं जिसमें थोड़ी बुद्धि है। नाहक फीस... ।

अपनी पत्नी से कहाः सुन! उन डाक्टरों को फीस देती फिरी, वैद्यों को फीस देती फिरी, समय खराब करती रही। ... मैं तेरे से कह रहा था कि मक्खी है। अब सुन!

पत्नी तो बहुत डरी जब मैंने... मैंने पत्नी को इशारा किया कि तू फिकिर मत कर। वह बहुत डरी कि मैंने और अब एक मुसीबत बढ़ा दी। अब यह कहेगा कि अब तो बिल्कुल पक्का ही हो गया। मैंने उससे कहा कि तू चुप रह, मुझे काम करने दे। लेकिन मेरी दोस्ती बन गई उस पागल से। और पागलों से पहले दोस्ती बनानी जरूरी होती है। तुम देखते न, संन्यास देता हूं! इलाज के पहले दोस्ती बना लेनी जरूरी होती है।

मैंने उसको कहा कि तू बिस्तर पर लेट, जरा मक्खी को घूमने दे सब तरफ, मैं देखूं कहां है, कहां किस तरफ से निकाली जाये। आंख बंद कर दी उसकी। उसकी आंखों पर एक टावल उढ़ा दिया और मैंने कहा कि तू शांति से लेटकर देखता रह कि कहां है और जब भी मैं पूछूं तो बताना कि यहां है, इस वक्त यहां है, इस वक्त यहां है, इस वक्त यहां है। वह बड़ा खुश हुआ। पहली दफा किसी ने उसको स्वीकार किया। उसका चित्त शांत हुआ। मैं भागा घर में कि कहीं से एक मक्खी पकडूं, क्योंकि जब तक उसके सामने मक्खी न पकड़ी जाये तब तक वह मानेगा नहीं, माननेवाला आदमी नहीं है। मैं बामुश्किल एक मक्खी पकड़ पाया। मक्खी को एक बोतल में बंद करके उसके पास बैठा। उससे पूछा अब कहां है, अब कहां है, अब कहां है। जब उसने कहा कि बिल्कुल इस वक्त गले के पास है। मैंने कहा कि तू अपना मुंह खोल और जोर से हवा को बाहर फेंक। उसने बड़े जोर से हवा को बाहर फेंका। और मैंने कहा, पकड़ी गई। उसकी आंख से परदा उठाया, कहा कि देख यह मक्खी है। उसने कहाः यह बोतल मुझे दो। अब मैं उन सब नालायकों को जाकर दिखाऊंगा! जिंदा मक्खी है! चलेगी नहीं तो क्या होगा?

मगर उसकी भीतर की मक्खी खतम हो गई! वह सब डाक्टरों को दिखाने गया। डाक्टरों ने भी कहा कि अब हम क्या करें यह! उनको भी पता नहीं कि राज क्या है, सिर्फ उसकी पत्नी जानती है। मैंने उसकी पत्नी को कहा कि कभी भूलकर मत बताना कि जो किया है मैंने, क्योंकि जिस दिन भी तूने बताया उसी दिन यह वापिस इसकी मक्खी भीतर आ जायेगी। सो वह भी चुप है, वह भी कुछ बोलती नहीं। पति कितना ही डींग मारता है, वह चुपचाप रहती है कि ठीक है। उसे पता है राज कि न कोई मक्खी थी, न कोई मक्खी कभी निकाली गई--एक भ्रांति थी।

भ्रांतियां क्षण में टूट जाती हैं। तुमने कोई संसार किया थोड़े ही है--सिर्फ सोचा है। इसलिये तो मैं नहीं कहता कि तुम जाकर जंगल चले जाओ, घर-द्वार छा.ेड दो। यह तो सपना बदलना होगा। इधर बाजार का सपना देखते थे, वहां जाकर गुफा का सपना देखने लगोगे; इससे भेद कहां पड़ेगा? चोर को सपने में समझा-बुझाकर साधु करवा दिया, वह मुनि हो गये; मगर इससे क्या होगा, सपने वहीं के वहीं हैं! पहले चोर थे, अब मुनि हो गये। साक्षी न पहले थे, न साक्षी अब हैं। तुम भेद को समझ लो ठीक से। साक्षी जो हुआ उसने ही राह पकड़ी परमात्मा की। और साक्षी होने के लिये जंगल जाना जरूरी थोड़े ही है। साक्षी तो कहीं भी हो सकते हो। साक्षी ही होना है तो जंगल के हुए कि बाजार के हुए; साक्षी ही होना है तो झोपड़े के हुए कि महल के हुए; साक्षी ही होना है--तो इससे क्या भेद पड़ता है किसके हुए? आग्रह क्या कि महल हो कि झोपड़ा हो? महल हो तो महल चलेगा और झोपड़ा हो तो झोपड़ा चलेगा। काम ही अलग हो गया।

लेकिन तुम्हारे साधु-संत तुम्हें समझा रहे हैं महल छोड़ो, झोपड़े में रहो; जैसे झोपड़ा सच है और महल झूठा है! वे समझा रहे हैं कि दो दफे भोजन न करो, एक दफे भोजन करो; जैसे दो दफे भोजन करना सपना है और एक दफे भोजन करना सत्य है! वे कह रहे हैं पत्नी छोड़ो, बच्चे छोड़ो। हां, शिष्य-शिष्याएं इकट्ठी करो चलेगा; जैसे कि पत्नी-बच्चे सपना हैं और शिष्य-शिष्याएं सपना नहीं हैं! और मजा यह है कि यही शिष्य-शिष्याएं किसी के पति-पत्नी हैं। यह बड़ा मजा है कि किसी का पत्नी होना सपना है और किसी की शिष्या हो जाना सपना नहीं है!

सब संबंध सपने हैं तो फिर जहां हो वहीं जाग जाओ, फिर भाग-दौड़ क्या करनी! कहीं आना-जाना क्या करना!

जंगल की तलाश न करो, साक्षी की तलाश करो, शून्य की तलाश करो। और वह तुम्हारे भीतर है; उसके लिये हिमालय नहीं जाना है।

यह न उम्मीदी यह बे यकीनी, यकीनो-उम्मीद की झलक हैं।
इन्हीं अंधेरों को पार करके यकीनी की रोशनी मिलेगी।।
ह.जार हो राख कल्बे-सागर, मगर इसी राख में है जौहर।
तलाश जब अहले-दिल करेंगे, शरर की दुनिया दबी मिलेगी।।

इसी राख के भीतर अंगारा दबा पड़ा है। न-उम्मीद न हो जाओ, उदास न हो जाओ, हताश न हो जाओ। यह न उम्मीदी यह बे यकीनी, यकीनो-उम्मीद की झलक हैं। इसी उदासी के भीतर सब पड़ा है। तुम्हारे भीतर सब पड़ा है। इन्हीं सपनों के भीतर सब पड़ा है। सपनों में दबा सत्य पड़ा है। इन्हीं अंधेरों को पार करके यकीन की रोशनी मिलेगी। इसी अंधेपन को तोड़ दोगे तो आस्था की आंखें मिल जायेंगी।

ह.जार हो राख कल्बे-सागर मगर इसी राख में है जौहर।
तलाश जब अहले-दिल करेंगे, शरर की दुनिया दबी मिलेगी।

कितनी ही राख हो, फिकिर न करो; इसी राख में कहीं दबा हुआ अंगारा है। जरा तलाश करोगे, मिल जायेगा। अंधकार घना है, अंधकार तोड़ना है। मगर अंधकार सिर्फ एक ही ढंग से तोड़ा जा सकता है कि भीतर की ज्योति से हमारा संबंध हो जाये। बाहर के अंधकार को बाहर की रोशनी से तोड़ा जा सकता है। लेकिन अंधकार तुम्हारे भीतर छा गया। भीतर के अंधकार को भीतर की रोशनी से ही तोड़ा जा सकता है।

चिरा.गे-हुस्न जलाओ बहुत अंधेरा है।

नकाब रुख़ से हटाओ बड़ा अंधेरा है।

अंधेरा बड़ा है। तुम अपने चेहरे से अगर नकाब उठा लो तो रोशनी हो जाये। अंधेरा बहुत घना है, लेकिन अगर प्रेम का दीया जल जाये तो रोशनी हो जाये। चिरा.गे-हुस्न जलाओ, बहुत अंधेरा है। तुम्हारे भीतर जो सौंदर्य छिपा है, उसको जरा प्रगट होने दो। वही है चंद्रमणि। तुम्हारे भीतर जो प्रेम दबा पड़ा है--वही है अंगारा! और तुम अपने को ओढ़े-ढांके बैठे हो, हटाओ इसे!

जिसे ख़िरद की .जबां में शराब कहते हैं।

वह रोशनी-सी पिलाओ, बड़ा अंधेरा है।

मस्ती पीनी है। उस मस्ती के पीने का नाम ही भजन है, कीर्तन है, ध्यान है। लेकिन अगर बिना मस्ती के हो तो सब क्रियाकांड है। और सरहपा क्रियाकांड के बहुत विरोधी हैं; जैसे कि सभी जानने वाले विरोधी रहे हैं, रहेंगे! जैसे किसी को तुम गले से लगाओ, गले से लगाने के लिए कोई प्रेम का होना जरूरी नहीं है। अभिनेता भी एक-दूसरे को गले से लगाते हैं मंच पर। तुम भी लगा लेते हो। तो आलिंगन क्रियाकांड हो गया अगर भीतर प्रेम नहीं है। और अगर भीतर प्रेम हो और फिर तुम किसी को गले से लगाओ तो बात कुछ और हो गई। अब तुम हड्डियों से हड्डियां ही नहीं लगा रहे हो, अब आत्मा से आत्मा भी निकट आ रही है। मगर ऊपर से देखने पर तो दोनों एक जैसे मालूम पड़ते हैं। चाहे कोई बिना प्रेम के गले लग रहा हो और चाहे कोई प्रेम से गले लग रहा हो, बाहर के दर्शक को तो दोनों एक-से मालूम होते हैं। तस्वीर उतारोगे, दोनों की तस्वीर एक-सी आयेगी, तस्वीर में कुछ भेद न पड़ेगा।

यही एक अड़चन है। मीरा भी नाची और जिस पुजारी को तुम सौ रुपये महीने पर रख लेते हो, वह भी आकर तुम्हारे मंदिर में नाच जाता है। मीरा ने भी आरती उतारी, मगर उस आरती में आत्मा के दीये जलते थे। और तुम्हारा पुजारी जिसे तुमने नौकर रख लिया है, वह भी आरती उतारता है। अगर तुम देख रहे हो तो जरा देर तक उतारता है; तुम अगर न देख रहे होओ तो जल्दी से फूंक-फांककर भागता है, क्योंकि और दूसरे के घर भी उसको उतारनी है। अभी और मंदिर पड़े हैं।

नौकरों से कहीं प्रार्थनाएं हुई हैं! और तुम खुद भी इसी तरह प्रार्थना करते हो। जिस दिन मतलब होता है उस दिन देखो, किस तरह पुकारते हो परमात्मा को! जिस दिन मतलब नहीं होता उस दिन जल्दी निपटा देते हो।

एक छोटे-से बच्चे से कोई पूछ रहा था कि तू रात प्रार्थना करके सोता है? वह बोला कि हां। और सुबह भी प्रार्थना करके उठता है? उसने कहा कि नहीं। तो उसने पूछाः यह कैसे? तेरी मां ने तुझे रात ही प्रार्थना करनी सिखाई है, सुबह नहीं? मां ने तो, उसने कहा, दोनों दफे सिखाई है, लेकिन रात मुझे डर लगता है सो मैं प्रार्थना करता हूं; सुबह मुझे किसी का डर नहीं लगता, तो क्यों प्रार्थना करूं?

छोटा बच्चा जो कहा रहा है वही बड़ों के भीतर भी छिपा है। ये बड़ी उम्र के बच्चे हैं, कुछ भेद नहीं है। जब जरूरत होती है तो मंदिर चले आते हैं। मुसीबत होती है तो हनुमान जी के मंदिर पहुंच गये--कि नारियल

चढ़ाऊंगा, कि ऐसा करूंगा, कि वैसा करूंगा। और पक्का मत समझना कि इनकी मुसीबत हल हो जाये तो ये याद ही रखेंगे।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन लौट रहा था यात्रा से, हज करके लौट रहा था। जहाज डूबने लगा, पानी का जहाज... पुराने जमाने की कहानी। बड़ी मुश्किल हो गई, ऐसा तूफान कि सारे लोग बस आखिरी नमाज करने बैठ गये। मुल्ला ने भी आखिरी नमाज की। अब सब जा ही रहा था तो उसने कहा कि हे प्रभु, अगर बचा ले तो सब दे दूंगा, मैंने वह जो नौ लाख की अटारी बनवाई है वह भी दे दूंगा।

और लोग भी चौंके सुनकर, क्योंकि वह नौ लाख की अटारी तो मुल्ला दीवाना था उसके पीछे। वह दे देगा उसको, दान कर देगा, यह किसी को भरोसा न आया, लेकिन अब ऐसे कठिन क्षण में परमात्मा को भी लालच-लोभ देना पड़ता है। कोई खुशामद यहीं थो.ड़ी चलती है, लोग सोचते हैं वहां भी चलती है। कोई रिश्वत यहीं थोड़े ही चलती है, लोग सोचते हैं वहां भी चलती है तो उसने सारा दांव लगा दिया। उसने कहा कि नौ लाख की अटारी देखते हो, जिंदगी लगा दी इसको बनाने में, दान कर दूंगा, गरीबों में बांट दूंगा! संयोग की बात, नाव बच गई। अब मुल्ला परेशान हुआ। लोग भी कहने लगे के मुल्ला सबने सुन लिया है और हज करके आ रहे हो, कुछ ख्याल करना। अब मुल्ला बड़ी मुश्किल में है। मन में तो होने लगा कि नाव डूब ही जाती तो अच्छा था। यह कहां की झंझट मोल ले ली! मगर कहा कि ठीक एक दफे किनारे पर पहुंच जायें फिर देखेंगे। किनारे पर पहुंचकर वह टाला-टूल करने लगा कि अब करेंगे, तब करेंगे। खोज-बीन में रहा कि कोई तरकीब निकाल लें। आखिर सारे गांव ने इकट्ठे होकर कहा कि भाई यह बात ज्यादती की है। गांव को भी ईर्ष्या तो हो ही रही थी, वह नौ लाख की अटारी देखकर सभी की छाती जली जा रही थी। ऐसा मौका कोई छोड़ना भी नहीं चाहता था कि अब इसकी ठीक से लानत-मलामत करो... या तो दान करो इसको या स्वीकार करो कि तुम अपराधी हो। परमात्मा को कहकर और मुकर रहे हो। मगर मुल्ला भी एक होशियार! उसने कहा कि दान करेंगे। कल सुबह अटारी नीलाम करते हैं और जो पैसा आयेगा गरीबों में बांट देंगे।

दूसरे दिन अटारी नीलाम हुई, मगर एक बड़ी हैरानी हुई, सारे गांव के लोग इकट्ठे हो गये देखने इसको। दूर-दूर से लोग खरीदने वाले आये। मुल्ला ने कहा कि यह रही अटारी! और अटारी के सामने बांध दी एक बिल्ली। लोगों ने पूछाः यह बिल्ली किसलिये? उसने कहा कि ये दोनों साथ ही बिकेंगे। बिल्ली के दाम नौ लाख रुपया और अटारी का दाम एक रुपया। लोगों ने कहाः हद कर रहे हो, बिल्ली के दाम नौ लाख रुपया! नौ लाख की अटारी है, तुमसे भूल हो रही है। उसने कहाः भूल मुझसे कुछ नहीं हो रही; जो मैं कह रहा हूं वह यह है। दोनों साथ जिसको खरीदने हों खरीद ले; नौ लाख की बिल्ली है, एक रुपये की अटारी। लोगों ने सोचाः हमें क्या मतलब कि बिल्ली में दाम लगे कि अटारी में, नौ लाख की अटारी मिलती है और एक रुपये की बिल्ली चलेगी। लोगों ने तो यह सोचा कि हमें क्या लेना-देना है खरीददारों ने खरीद ली। मगर गांव बड़ा हैरान था कि यह मामला क्या है! जब सब खरीद लिये, नौ लाख तो मुल्ला ने अपनी जेब में रखे और एक रुपया दान कर दिया।

देखते हो चालबाजियां, आदमी की बेईमानियां! परमात्मा को भी मौका आ जाये तो धोखा देने में वह छोड़ेगा नहीं। परमात्मा भी रह गया होगा सिर पीटकर। उसने भी सोचा होगाः वाह! वाह बड़े मियां! हमने भी न सोचा था कि ऐसी तरकीब निकाल पाओगे।

एक छोटे बच्चे को उसकी मां ने दो चवन्नियां दीं और कहा कि एक तो हनुमान जी के मंदिर में चढ़ा देना और एक तू रख लेना। वह चला, दो चवन्नियां उछालता हुआ बड़ी मस्ती में। एक चवन्नी गिरी जमीन पर सरकी और नाली में चली गई।

बच्चे ने कहा कि हनुमान जी, अपनी तुम सम्हालो। अब मैं तो नाली में कहां जाऊं, लेकिन आप तो सर्वव्यापी हैं, अंतर्यामी हैं, सर्वशक्तिमान हैं, सर्वव्यापक हैं। जाओ तुम अपनी सम्हालो, मैं अपनी सम्हालता हूं।

आदमी दुख में हो, परेशानी में हो, तो परमात्मा को याद कर लेता है, मगर उसमें भी चालबाजी उसकी कायम रहती है।

अंधेरा बहुत है, क्रियाकांड से नहीं मिटेगा, जीवंत मस्ती चाहिए।

जिसे ख़िरद की .जबां में शराब कहते हैं,

वह रोशनी-सी पिलाओ बड़ा अंधेरा है।

इन शब्दों से वही रोशनी पियो। ये मस्तों के वचन हैं। यह दीवानों की वाणी है।

जब्बे मण अत्थमण जाइ तणु तुट्टइ बन्धण।

तब्बे समरस सहजे वज्जइ णउ सुद्द ण बम्हण।।

"जिस क्षण यह मन अस्त या विलीन हो जाता है उस क्षण सारे बंधन टूट जाते हैं। उस समरस सहज अवस्था में कुछ भी भेद नहीं रहता--न शूद्र का न ब्राह्मण का।"

जहां मन अस्त हो जाता है या विलीन हो जाता है वहीं समाधि है।

मन क्या है? जो तुम्हें दूसरों ने दिया है, उसका जोड़ मन है। जो तुम हो, वह समाधि है। तुम्हारी समाधि दूसरों के द्वारा दिये गये कचरे में दब गई है। इस मन को विदा करो। जो भी तुम सोचते हो, मन है। जो भी तुम विचारते हो, मन है। लेकिन वह जो मन का भी साक्षी है, न तो सोचता न विचारता--वह तो सिर्फ देखता है। एक विचार उठा तुम्हारे भीतर, एक विचार उठा, अच्छा या बुरा कैसा भी हो, एक विचार उठा--तुम देखते हो उस विचार को उठते, उसको रूप लेते, उसको बनते, सघन होते, उसको जाते, विदा होते। वह देखने वाला तुम हो। और वह जो विचार है वह तो बाहर से आ रहा है।

तुम जानकर हैरान होओगे कि तुम जब किताब पढ़ते हो तभी विचार बाहर से आता है ऐसा नहीं; और जब कोई तुम्हारे मन में कोई विचार डाल जाता है तब विचार बाहर से आता है ऐसा नहीं--विचार बड़े परोक्ष मार्गों से भी आते हैं। कभी-कभी तुम बैठे होते हो शांत और अचानक उदासी घेर लेती है। कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। हो सकता है कोई उदास आदमी पास से गुजर गया, उसकी उदासी की तरंग तुम में प्रवेश कर गई। मन बहुत संवेदनशील है। वह प्रत्येक चीज को पकड़ रहा है। कभी तुम्हें ऐसा होता है कि किसी आदमी के पास जाते हो और जाते से ही प्रसन्न हो जाते हो; न उसने कुछ कहा, न कुछ बोला। किसी के पास जाकर अच्छा लगता है, बस उसके पास अच्छा लगता है और किसी का मिलना ही घब.ड़ाहट पैदा कर देता है। उनके दर्शन ही पर्याप्त होते हैं कि तुम्हारा दिन-भर खराब हो जाये। तुम जानते हो इस तरह के लोगों को कि उनसे मिलना हो जाये तो घंटे दो घंटे के लिये चित्त खिन्न हो जाता है। न उन्होंने तुम्हें गाली दी, न तुम्हारा अपमान किया, न कुछ बुरा किया, न कोई बुरी बात कही--बस मिल गये! रास्ते पर नमस्कार हो गई उनसे और कुछ हो जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रतिक्षण अपने विचारों को ब्राडकास्ट कर रहा है। जब तक रेडियो नहीं था तब तक तुम्हें ख्याल भी नहीं था कि तुम्हारे पास से विचारों की तरंगें गुजर रही हैं। अभी गुजर रही हैं। अभी रेडियो लगा दो यहां, तो अभी पता चल जाये कि दिल्ली के पागल दिल्ली में क्या कर रहे हैं! मगर रेडियो न लगाओ तो कुछ

पता नहीं चलता। रेडियो पकड़ता है जो मौजूद है उसको। वे तरंगें गुजर ही रही हैं। तुम्हारा चित्त भी सारी तरंगों को पकड़ता रहता है--अनजाने। तुम प्रतिपल तरंगों के प्र्‌भाव में हो। तुम उठो-बैठो, चलो-फिरो, लेकिन तुम तरंगों के सागर हो। जैसे मछली पानी में, ऐसे तुम तरंगों के सागर में हो। और तुम इतने बलशाली नहीं हो अभी। तुम अपने मालिक नहीं हो अभी, कि तुम जिस तरंग को लेना चाहो लो और जिस तरंग को न लेना चाहो न लो। वैसी मालकियत तो साक्षी की होती है--सिर्फ साक्षी की! तुम तो जल्दी से कुछ भी पकड़ लेते हो। कुछ भी कूड़ा-करकट तैरता हुआ हवा में आ जाता है और सिर तुम्हारा पकड़ लेता है। और न केवल तुम पकड़ लेते हो--तुम कहने लगते होः यह मेरा विचार! न केवल इतना कहते हो--तुम लड़ने-झगड़ने को राजी, मारने-मरने को राजीः यह मेरा विचार, कि तुमने मेरे विचार का खंडन कर दिया!

विचार किसी के नहीं होते। विचार तो सामूहिक हैं। विचार तो भीड़ के हैं। कोई विचार मौलिक नहीं होता। भूलकर भी मत सोचना कि कोई विचार तुम्हारा है। तुम तो निर्विचार हो।

"जिस क्षण यह मन अस्त या विलीन हो जाता है, उस क्षण सारे बंधन टूट जाते हैं।" बस इतनी-सी ही बात है। यह मन ही तुम्हें बांधे है। यह मन गया कि बंधन गये। यह मन ही तुम्हारी जंजीरें हैं। इस मन में ही तुम्हारा कारागृह है। यह मन ही है दीवाल, जिसके भीतर तुम बंद हो। इस मन के हटते ही खुला आकाश तुम्हारा है, सारा अस्तित्व तुम्हारा है।

और जब न कोई विचार रह जाये तो स्वभावतः समरस सहज अवस्था पैदा होती है। एक ही रस बहता रहता है--न सुख न दुख। एक ही स्वाद, एक ही सुगंध। कहो उसे परमात्मा की सुगंध या सत्य की सुगंध या निर्वाण की, पर एक ही। समरस! जरा भी विषम नहीं। एक ही स्वर गूंजता रहता है--ओंकार का नाद! फिर न कोई ब्राह्मण है न कोई शूद्र। फिर सारे भेद गिर गये। क्योंकि वे भी विचार के ही भेद हैं। तुम्हें बता दिया कि तुम ब्राह्मण हो, तो तुम ब्राह्मण हो गये। तुम्हें कोई बता देता बचपन से ही कि तुम शूद्र हो तो तुम शूद्र हो जाते। बताई गई बात है। लेकिन बताई गई बातों पर कितने उपद्रव चलते हैं!

यह बीसवीं सदी चल रही है और इस देश का दुर्भाग्य कि अभी भी यहां शूद्र जलाए जा रहे हैं--जिंदा जलाये जा रहे हैं! आदमियों को जिंदा जला रहे हो, सिर्फ एक लेबिल लगा दिया शूद्र का! आदमियों को कुओं पर पानी नहीं मिल रहा है, क्योंकि वे कुएं ब्राह्मणों के हैं! और ये देश अपने को धार्मिक देश कहता है। यह कैसा धार्मिक देश है? यह कैसा लोकतंत्र है? यह कैसी नपुंसक सरकार है? जिंदा आदमी जलाये जा रहे हैं और जूं नहीं रेंगती सरकार के ऊपर! यह बड़ी अमानवीय दशा है और मजा यह है कि मामला ही इतना-सा है कि सिर्फ लेबिल लगा दिया एक आदमी पर।

तुम देखते हो न, कोई आदमी आये और चंदन-मंदन लगाये, तुम जल्दी से झुककर पैर छू लेते हो, चाहे वह शूद्र हो! और अगर ब्राह्मण भी आकर कह दे कि मैं चमार हूं, तुम जरा सरक कर खड़े हो जाते हो। तुम्हें ब्राह्मण से और चमार से थोड़े ही मतलब है। तुम्हें मतलब सिर्फ शब्द से है। लेबिल पर्याप्त है। चीजों पर लेबिल लगाना हो तो ठीक है, क्योंकि चीजों पर लेबिल न हों तो बड़ी मुश्किल हो जाये। अब दुकान पर दवाइयां बेचनेवाले को लेबिल तो लगाने ही पड़ेंगे। तो चीजों पर तो ठीक है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने चौके में ढूंढ रहा है। उसकी पत्नी चिल्लाई कि तुम्हें आधा घंटा हो गया ढूंढते, तुम्हें अभी तक शक्कर का डब्बा नहीं मिला! उसने कहा कि मैं सारे डब्बे देख रहा हूं।

उसने कहा कि जिस डब्बे पर मिर्ची लिखी है वह शक्कर का डिब्बा है। अब जब मिर्ची लिखी हो तो बेचारा लेबिल से चल रहा है। मिर्ची लिखी है, इसलिये उसमें देख ही नहीं रहा है। डब्बों पर तो ठीक है, मिर्ची हो तो

मिर्ची लिखना चाहिये और शक्कर हो तो शक्कर लिखनी चाहिये; मगर आदमियों पर तो एक ही परमात्मा है--न तो कोई शूद्र है न कोई ब्राह्मण। आदमियों पर लेबिल मत लगाओ। आदमी कोई वस्तु नहीं है। आदमी कोई बाजार में बिकनेवाला सामान नहीं है। लेबिल मत लगाओ। आदमी से लेबिल हटा लो। यह समस्त समाधिस्थ पुरुषों ने कहा है, फिर भी तुम सुनते नहीं। और लेबिल लगाकर कितना उपद्रव मचाते हो!

मैं फकत इन्सान हूं, हिंदू-मुसलमां कुछ नहीं।
मेरे दिल के दर्द में तफरीके-ईमां कुछ नहीं।।

जो थोड़ा-सा भी जागेगा वह कहेगा कि न तो मैं मुसलमान हूं न हिंदू--मैं फकत इंसान हूं। इतना काफी है कि मैं मनुष्य हूं। मेरे दिल के दर्द में तफरीके-ईमां कुछ नहीं। मेरे मन में न कोई भेद-भाव हैं, न कोई पक्षपात हैं। और जो अभी इंसान भी नहीं है, वह धार्मिक कैसे हो सकेगा? और जो अभी इंसान भी नहीं है, वह तो परमात्मा की तरफ आंखें कैसे उठा सकेगा? लोगों को तुमने चीजें बना दिया है!

न हिंदू, न गबरू मुसलमां बनो।
अगर आदमी हो तो इंसा बनो।।
नहीं तो हलाकत में ढल जाओगे।
खुद अपने जहन्नुम में जल जाओगे।।

"न हिंदू, न गबरू मुसलमां बनो।" न तो अग्नि-पूजक बनो, न मुसलमान न हिंदू। अगर आदमी हो तो इंसा बनो। एक ही बात बनने जैसी हैः आदमी हो तो आदमी ही बन जाओ। आदमी ही नहीं बन पा रहे हो और तुम्हारे हिंदू-मुसलमान होने के भेद तुम्हें आदमी नहीं बनने दे रहे हैं। नहीं तो हलाकत में ढल जाओगे। बड़ा पतन होगा। खुद अपने जहन्नुम में जल जाओगे। जल ही रहे हो। अपने ही पैदा किये जहन्नुम में आदमी जल रहा है।

यह जमीन सब की है। यहां कोई झगड़े की जरूरत नहीं है। यह आकाश सब का है। यहां झगड़े की कोई जरूरत नहीं है। यहां सीमाएं बनाने की कोई जरूरत नहीं है। राष्ट्रों की कोई जरूरत नहीं है, मजहबों की कोई जरूरत नहीं है। और मजहबों और राष्ट्रों के विदा होते ही इस पृथ्वी पर गरीबी विदा हो जाये और इस पृथ्वी पर हिंसा विदा हो जाये और इस पृथ्वी से व्यर्थ के युद्ध विदा हो जायें। मगर वे भेद हमारी जान लिये ले रहे हैं।

सत्तर प्रतिशत मनुष्य का श्रम युद्धों की तैयारी में लग जाता है। आदमी भूखा है और सत्तर प्रतिशत श्रम, सत्तर प्रतिशत दौलत आदमी जो पैदा करता है वह मृत्यु की सेवा में लग जाती है। तीस प्रतिशत जीवन की सेवा में और सत्तर प्रतिशत मृत्यु की सेवा में। इस आदमी को पागल न कहोगे तो और क्या कहोगे! सौ प्रतिशत जीवन की सेवा में लगनी चाहिए, तो यह पृथ्वी आज स्वर्ग हो जाये।

नहीं तो हलाकत में ढल जाओगे।
खुद अपने जहन्नुम में जल जाओगे।।

और यह जहन्नुम बन गया है। जमीन पर जहन्नुम बड़ा होता जा रहा है। इतने बम, अब तो इकट्ठे हैं, और एटमबम, हाइड्रोजन बम कि अब यह जल्दी ही जलने की तैयारी है, अब ज्यादा देर न लगेगी। अब तो समय है कि हम सारे भेद छोड़ दें। इस सारी पृथ्वी को हम एक घर घोषित कर दें। घर यह हो ही गया है। टेक्नालाजी के हिसाब से पृथ्वी इतनी छोटी हो गई है कि अब तुम्हारी पुरानी बकवासें बंद करो।

अब तो हालत ऐसी है कि न्यूयार्क में नाश्ता करो, लंदन में भोजन लो और पूना में बदहजमी झेलो... इतना सब करीब हो गया है। अब इस बड़ी दुनिया को बड़ा मत कहो, बहुत छोटी हो गई है। इस छोटी दुनिया

में, इस छोटे-से घर में अब स्वर्ग उतर सकता है। मगर आदमी की पुरानी आदतें हैं, पुरानी मूढ़ताएं पीछा कर रही हैं। और बजाय स्वर्ग बनने के पृथ्वी नर्क बनती जा रही है।

चीअ थिर करि धरहु रे नाइ। आन उपाये पार ण जाइ।

नौवा ही नौका टानअ गुणे। मेलि मेलि सहजे जाउण आणे।।

"हे नाविक! चित्त को स्थिर कर सहज के किनारे अपनी नौका लिये चल। रस्सी से खींचता चल और कोई दूसरा उपाय नहीं है।"

हे नाविक! ... प्रत्येक व्यक्ति नाविक है अनंत का। प्रत्येक व्यक्ति माझी है अनंत का और प्रत्येक जीवन नौका है। हे नाविक! चित्त को थिर कर! बस करना इतना है कि चित्त की जो अथिरता है, यह जो चित्त में विचारों का जंजाल है, ये जो चित्त में विचारों की तरंगें हैं--ये विदा हो जायें। जैसे ही चित्त में विचारों की तरंगें न रहीं, चित्त न रहा। मन में तरंगें न रहीं, मन न रहा। शांत मन जैसी कोई चीज नहीं होती, समझ लेना। शांत मन का अर्थ ही होता हैः अमन। शांत मन का अर्थ ऐसा नहीं होता कि अब भी मन है और शांत है; जहां शांति आई वहां मन गया। मन अर्थात अशांति।

इसलिये जो व्यक्ति चित्त को थिर कर लेता है वह अचानक हैरान होकर पाता है कि चित्त के थिर होते ही चित्त गया। चित्त तो अथिरता का ही दूसरा नाम था। वह तो शोरगुल था। वह तो विचारों का ऊहापोह था। वह तो चित्त में चलते हुए विचारों की सतत धारा थी। सब ठहर गई।

"हे नाविक, चित्त को थिर कर सहज के किनारे!" बड़ा प्यारा वचन है। सहज के किनारे अपनी नौका लिये चल। और असहज मत बनना, यह सरहपा का मूलक स्वर है, मूल संदेश है, असहज मत बनना। तुम्हारे जीवन की सहजता मत खो देना।

अब एक आदमी सिर के बल खड़ा है, यह असहजता है। यह कोई साधना नहीं है, यह सिर्फ मूढ़ता है। अब सिर के बल खड़ा होना कृत्रिम है, असहज है। परमात्मा ने चाहा होता कि तुम्हें सिर के बल खड़ा करे तो उसने सिर के बल ही तुम्हें खड़ा किया होता। अब कोई आदमी उलटे-सीधे आसन कर रहा है, शरीर को इरछा-तिरछा कर रहा है; जैसे कि शरीर को इरछा-तिरछा करने से कोई समरसता उपलब्ध हो जायेगी! तुमने जिंदगी को कोई सर्कस समझा है? ठीक है, सर्कस में भर्ती होना हो तो शरीर को इरछा-तिरछा करना सीखो, उलटा-सीधा करना सीखो। मगर इससे कोई समरसता पैदा नहीं होगी। हां, शरीर चाहे स्वस्थ भी हो जाये, शरीर शायद बलिष्ठ भी हो जाये, शायद थोड़े वर्ष ज्यादा भी जिंदा रह जाओ, मगर जिंदा रहने से ही क्या होने वाला है? असली सवाल तो भीतर के शाश्वत को जानना है, ज्यादा दिन और कम दिन जिंदा रहने की बात नहीं है। जिंदगी शाश्वत है, इसको पहचानना है। सदा है; देह के भीतर भी है और देह के बाहर हो जाती है, तब भी है--इसे पहचानना है। इसके पहचानने के लिये केवल शरीर को उलटा-सीधा करोगे!

मगर इस तरह के कामों में लोग लगे हैं। अजीब-अजीब काम लोगों ने किये हैं! किसी ने कान फाड़ लिये हैं। कनफटे साधु! खूब मजा है! कोई नंगा खड़ा है; जैसे कि नग्न होने से कोई परमात्मा मिल जायेगा। कोई बाल लोंच रहा है, कि बाल लोंचने से कोई परमात्मा मिल जायेगा! कोई भूखा मर रहा है, भूखा मार रहा है। किसको तुम भूखा मार रहे हो? तुम परमात्मा को ही भूखा मार रहे हो, क्योंकि वही तुम्हारे भीतर है। कोई अपने को कोड़े मार रहा है। ईसाइयों में एक संप्रदाय है फकीरों का, जो रोज सुबह उठकर अपने को कोड़े मारते हैं और जो जितने ज्यादा कोड़े मारता है वह उतना बड़ा संत समझा जाता है। कई फकीरों ने आंखें फोड़ ली हैं क्योंकि आंख के कारण रूप दिखाई पड़ता है, तो आंख फोड़ लो। ये सब उलटे धंधे हैं।

सरहपा कहते हैंः सहज के किनारे... । जीवन को सहज प्राकृतिक रखना, जरा भी उलटा-सीधा मत करना। उलटा-सीधा किया कि चूक जाओगे। परमात्मा तो सहज ही मिल जायेगा।

"सहज के किनारे अपनी नौका को लिये चल। रस्सी से खींचता चल।"

यह अनुवाद एक अर्थ में ठीक है, एक अर्थ में ठीक नहीं भी है।

नौवा ही नौका टानअ गुणे। गुण के दो अर्थ होते हैंः या तो रस्सी या सदगुण। यहां रस्सी अर्थ नहीं हो सकता। सदगुण ही अर्थ होगा। रस्सी का कहां संबंध? यह सहज का किनारा, इस सहज के किनारे पर चित्त की, स्थिर चित्त की नाव, तो इसमें सदगुण की रस्सी।

सदगुण का क्या अर्थ होता है? सदगुण का अर्थ होता हैः जो तुम्हारे सत्य से आविर्भूत हो। झूठ मत जीना, पाखंड मत जीना। कुछ भीतर कुछ बाहर, ऐसे मत जीना। जैसे भीतर वैसे बाहर। जो व्यक्ति जैसा भीतर है वैसा बाहर है, ऐसा जीता है--वह सदगुणी है। फिर जैसे भी हो भीतर, फिकिर मत करना, वैसा ही बाहर जीना। तो यही एक रस्सी है जिससे तुम बांध सकते हो चित्त की नौका को। और दूसरा कोई उपाय नहीं है। और इतना तुम कर लो तो सब हो जाये।

इतना बुलन्द कर न.जरे-जलवा-ख्वाह को।

जलवे खुद आयें ढूंढने तेरी निगाह को।।

अपनी आंख को इतना ऊंचा करो कि उस परमात्मा का सौंदर्य खुद तुम्हें खोजता हुआ जाये। इतना बुलंद कर न.जरे-जलवा-खवाह को! जलवा देखने वाली नजर को बड़ा करो। चित्त को थिर करो। जलवे खुद आयें ढूंढने तेरी निगाह को। आते हैं! मैं गवाही हूं! आते हैं। जलवे खुद खोजते चले आते हैं। परमात्मा खुद खोजता चला आता है। तुम पात्र तो हो जाओ, परमात्मा बरस उठता है, हजार-हजार फूलों में तुम्हारे ऊपर।

मोक्ख कि लब्भइ ज्झाण पविट्ठो।

किन्तह दीवें किन्तह णिवेज्जं।।

किन्तह किज्जइ मन्तह सेब्वं।।

किन्तह तित्थ तपोवण जाइ।

मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाइ।।

"भला ध्यान करने से कहीं मुक्ति होती?" कीमती वचन है। ध्यान करने से मुक्ति नहीं होती, क्योंकि ध्यान करना नहीं है। ध्यान कृत्य नहीं है, ध्यान तो साक्षी-भाव है। ध्यान में हुआ जाता है, ध्यान किया नहीं जाता। ध्यान तो एक समझ है, ध्यान कोई कर्म नहीं है। ध्यान तो एक बोध है। तुम ध्यान थोड़े ही कर सकते हो। हां, ध्यान में हो सकते हो। ध्यान एक अंतर-अवस्था है, जहां चित्त थिर हो गया।

चीअ थिर करि धरहु रे नाइ। "हे नाविक! चित्त को थिर करो और सहज के किनारे अपनी नौका को लिये चलो।" सदगुण की रस्सी में बांधकर। ऐसी अवस्था में ध्यान अपने-आप फलित होता है। ध्यान कोई कृत्य नहीं है। लोग सोचते हैं ध्यान कृत्य है। उससे भ्रांति हो जाती है। तो लोग कहते हैं कि अब ध्यान करने बैठे हैं। कोई अपनी माला लिये है; माला भी फेरता जा रहा है, बीच में देखता भी जा रहा है कि दुकान पर कोई ग्राहक तो नहीं आ गया; कुत्ता भी भगाता जा रहा है, कि कुत्ता आ गया तो उसको भगाता है; बच्चों को भी इशारे करता जा रहा है कि स्कूल जाओ--और माला भी फेर रहा है! लोग दुकान पर ही बैठे रहते हैं और अपनी थैली में माला रखे रहते हैं और थैली में माला चलती रहती है। यह कृत्य हो गया कि कोई राम-राम, राम-राम, राम-राम जप

रहा है। कुछ लोग ऐसे जप रहे हैं कि और भी काम करते जाते हैं और राम-राम भी जपते जाते हैं। उनके ओंठ चलते ही रहते हैं यंत्रवत। ये सब कृत्य हैं।

ध्यान कृत्य नहीं है। ध्यान बोध है। ध्यान जाग्रत अवस्था है।

तो ध्यान का अर्थ साक्षी समझना। तब तक तो ठीक। अगर तुमने कृत्य समझा तो कृत्य ही तो हमें उलझाये है। फिर ध्यान का कृत्य उलझायेगा।

"भला ध्यान करने से कहीं मुक्ति होती है?" ख्याल रखना, "करने" पर जोर है। "दीपक दिखाने और नेवैद्य चढ़ाने और मंत्र-पाठ करने से क्या मुक्ति मिल सकती है?"

अब तुम इसी को ध्यान समझ रहे हो, कोई दीया दिखा रहा है भगवान को। अरे पागलो, भगवान का दीया तुम देखो! तुम भगवान को दीया दिखला रहे हो! कोई नेवैद्य चढ़ा रहा है, कोई मंत्रपाठ कर रहा है। चुप होओ! मौन होओ! मौन ही मंत्र है। और नेवैद्य तो तुम पर बरसेगा। फूल ही फूल गिरेंगे।

"तीर्थ-सेवन और तपोवन में जाने से और पानी में नहाने से कहीं मोक्ष लाभ होता है?"

तुमने मोक्ष को इतना सस्ता समझा है कि चले गंगा नहा आये, कि हज हो आये! ऐसे कहीं मोक्ष होता है? तुम्हारे कुछ भी करने से बंधन होता है। पुण्य भी बंधन बन जाते हैं, पाप तो बनते ही हैं बंधन। क्योंकि कृत्य मात्र बंधन है। कृत्य से जागो। और यह तुम करते रहे हो जिंदगी-भर, फिर भी तुम्हें होश नहीं आता।

जल के भी अंधे पतंगों को न कुछ अक्ल आई।

आज भी शमअ की है गर्मिए-बाजार वही।।

कितने पतंगे जल गये, मगर पतंगों को कुछ अक्ल आती नहीं और शमा का बाजार है कि अभी भी गर्म है, चल रहा है! अभी भी शमा जल रही है और पतंगे जल रहे हैं!

जल के भी अंधे पतंगों को न कुछ अक्ल आई।

आज भी शमअ की है गर्मिए-बाजार वही।।

कितने लोग आये और चले गये, पूजा-पाठ करते-करते सड़ गये, सिवाय व्यर्थता के कुछ भी न जाना; लेकिन फिर भी मंदिर-मस्जिद जिंदा हैं। आज भी शमअ की है गर्मिए-बाजार वही! फिर भी पंडित-पुजारी चल रहे हैं। फिर भी तीर्थ भर रहे हैं। फिर भी कुंभ मेला और चले करोड़ों लोग। जिनके पास खाने को नहीं है, पीने को नहीं है, वे भी किसी तरह जोड़-तोड़कर कुंभ मेला चले। जिंदगी-भर इकट्ठा करके गरीब मुसलमान चला हज करने। कितने लोग हज करके लौट आये और कितने लोग तीर्थ नहा आये और कितने गंगा में स्नान कर चुके, हुआ क्या? नहीं, कोई पूछता ही नहीं कि हुआ क्या। अंधों की एक जमात है।

परऊ आर ण कीअऊ अत्थि ण दीअऊ दाण।

एहु संसारे कवण फलु वरूच्छडुहु अप्पाण।।

"यदि परोपकार नहीं किया और न दान दिया, तो इस संसार में आने का फल ही क्या? इससे तो अपने आपका उत्सर्ग कर देना ही अच्छा है।"

सरहपा कहते हैं कि बजाय तीर्थों में व्यर्थ समय गंवाने के, कुछ बांट लो, कुछ कर सको दूसरों के लिये तो कर लो। बजाय गंगा में स्नान करने के, दान में स्नान करो--वही गंगा है। थोड़ा तुमसे कुछ हो सके औरों के लिए, तो करो। वही एकमात्र पुण्य है, क्योंकि तुम जो दूसरों के लिये करते हो वही परमात्मा तुम्हारे लिये करेगा। अगर तुमने दूसरों के रास्ते पर कांटे बिछाये तो तुम अपने रास्तों पर हजार गुने कांटे पाओगे। और तुमने अगर दूसरों के रास्ते पर फूल बिछाये तो तुम्हारे रास्ते फूलों से भर जायेंगे। तुम्हें वही मिलेगा जो तुम देते हो।

मकामे-इश्क को हर आदमी सीमाब क्या समझे?

यह है एक मर्तबा जो मावराये-आदमियत है।।

थोड़ा प्रेम जगाओ। प्रेम जग जाये तो तुम आदमी से ऊपर उठने लगे, क्योंकि प्रेम आदमियत से भी ऊपर है। थोड़ा प्रेम में जीयो।

बिखेरता है जो औरों की राह में कांटे

वह हाथ जख्म-रसीदा जरूर होता है

जो दूसरों के रास्तों पर कांटे बिखेरता है, वह हाथ भी जख्मी हो जाता है, ख्याल रखना। और जो दूसरे के रास्तों पर फूल बिखेरता है उसके हाथों में भी फूलों की गंध आ जाती है। तुम वही हो जाते हो, तुम जो दूसरों के लिये करते हो। तुम्हारा दूसरों के लिये किया गया ही तुम्हारे जीवन का सार बन जाता है।

मगर ख्याल रखना, पहले सरहपा ने कहाः चित्त शांत हो। सहज की नाव, सदगुण की रस्सी से बांधो। और फिर, भीतर उठेगा प्रेम। बांटना उसे। उस प्रेम के बांटने का नाम परोपकार है। नहीं तो परोपकार भी झूठा होगा, अगर सहज के किनारे न चले।

दयारे-इश्क है यह, जर्फे-दिल की जांच होती है।

यहां पोशाक से अन्दा.जए-इंसा नहीं होता।।

मुहब्बत तो बजाये खुद इक ईमां है अरे मुल्ला!

मुहब्बत करनेवाले का कोई ईमां नहीं होता।।

जो प्रेम जान लेता है फिर उसे और कोई धर्म की जरूरत न रही। मुहब्बत उसका धर्म है।

मुहब्बत तो बजाये खुद इक ईमां है अरे मुल्ला!

मुहब्बत करने वाले का कोई ईमां नहीं होता।।

प्रेम को पहचाना तो सब पहचाना।

इश्क-ही-इश्क है जहां देखो।

सारे आलम में फिर रहा है इश्क।।

इश्क माशू.क इश्क आशिक है।

यानी अपना ही मुब्तला है इश्क।।

कौन मकसद को इश्क बिन पहुंचा?

आरजू इश्क, मुद्दआ है इश्क।।

इश्क है तर्जे-तूर इश्क के तईं।

कहीं बंदा कहीं खुदा है इश्क।

वही है! प्रेम ही परमात्मा है और प्रेम ही उसका प्रेमी है।

इश्क है तर्जे-तूर इश्क के तईं।

कहीं बंदा कहीं खुदा है इश्क।।

ध्यान से प्रेम की ज्योति प्रगट होती है। बुद्ध ने कहा हैः जहां समाधि फली वहां प्रज्ञा का प्रकाश फैलता है, करुणा झरती है। तो पहले सहज को अनुभव करो, शून्य को अनुभव करो और फिर जो तुम्हारे पास है बांट दो। पूरी आत्मा को लुटाये चलो। जितना लुटाओगे उतनी आत्मा बढ़ती जाती है।

शम.अ इक मोम के पैकर के सिवा कुछ भी न थी।

आग जब तन में लगाई है तो जान आई है।।

शमा है ही क्या, सिर्फ मोम है।

शम.अ इक मोम के पैकर के सिवा कुछ भी न थी।

आग जब तन में लगाई है तो जान आई है।।

प्रेम की अग्नि जिसे पकड़ लेती है उसकी शमा जल जाती है। फिर तुम मोम ही नहीं हो, फिर तुम मिट्टी ही नहीं हो, फिर तुम मृण्मय ही नहीं हो--तुम्हारे भीतर चिन्मय की ज्योति जगी! फिर तुम जमीन ही नहीं हो, आकाश उतर आया! फिर तुम सीमा ही नहीं हो, असीम से तुम्हारा गठबंधन हुआ! असीम से तुम्हारी भांवर पड़ी!

परमात्मा को खोजने निकलो। उसे बिना खोजे सब खोज, और सब खोज व्यर्थ है।

सुने हुए गीतों से मनहर मधुर अनसुना गीत,
आंखों-देखे से सुंदर अनदेखा मन का मीत!
जिसको मन में जितना कम अनदेखे का अनुराग,
उसके प्राणों में उतनी ही क्षीण हो चुकी आग!
तन से मन की शक्ति अधिक है, प्रबल देह से प्राण;
पृथ्वी से आकाश बड़ा है, जाने से अनजान!
जिसके प्राणों में जितना कम अनजाना आकाश,
उसका उतना ही कम सार्थक पृथ्वी पर आवास!
अगम कंदरा-क्रोड़, जल रहा जहां दीप निर्धूम;
सार्थक हैं वे नयन, सकें जो दीप-शिखा को चूम!
हैं प्रकाश के प्रति जो लोचन जितने स्नेह-विहीन,
हैं उतने ही दीन-हीन वह खंडित मुकुर मलीन!
वह पंचतल्ला पोत सदा धारावाहिक अविराम;
अगम शिखर से अगम सिन्धु तक बहना इसका काम!
तिरता जाता पोत, प्राण का पाल बना आकाश;
दृग से जितना दूर नियामक, मन से उतना पास!

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

जीवन के मूल प्रश्न

पहला प्रश्नः परमात्मा कहां है, खोजें तो कहां खोजें?

खोजा कि चूके! खोजने में ही पहली भूल हो जाती है। खोजने का अर्थ हैः यह मान ही लिया कि परमात्मा खो गया है। परमात्मा कहीं खो सकता है? जो खो जाये वह परमात्मा होगा? खोजने चले कि चूक की शुरुआत हुई। जितना खोजोगे उतना खो जायेगा। खोजने से कभी किसी ने परमात्मा पाया नहीं है। यही तो उदघोषणा है सरहपा के सहज-योग की।

देखा तुमने, सरहपा ने परमात्मा का नाम भी उल्लेख नहीं किया! नाम उल्लेख करने तक में भूल हो जाती है, क्योंकि नाम उल्लेख किया कि लोग चले खोजने। परमात्मा वह है जो सब खोज छूट जाने पर मिलता है, खोज मात्र छूट जाये तो मिलता है। क्योंकि खोज का अर्थ हुआः चित्त तना हुआ है। खोज का अर्थ हैः वासना। खोज का अर्थ हैः इच्छा। खोज का अर्थ हैः अभी नहीं है, कभी होगा। खोज में समय आ गया। मैं यहां हूं और परमात्मा कहीं और है--खोज में फासला आ गया, अंतराल आ गया।

परमात्मा वहीं है जहां तुम हो। जहां परमात्मा है वहीं तुम हो। हम परमात्मा के सागर की मछलियां हैं। मछली सागर को खोजने निकलेगी तो बड़ी मुश्किल में पड़ जायेगी। कैसे खोज पायेगी?

खोजना नहीं है परमात्मा को--जीना है। और यही सहज-योग की अदभुत क्रांति है। परमात्मा है ही--पियो! परमात्मा है ही नाचो! परमात्मा में ही तुम हो, तुम्हारी श्वास-श्वास में रमा है--और तुम पूछते हो कि परमात्मा कहां है? कहां नहीं है? ऐसा कोई स्थान खोज सकते हो जहां परमात्मा न हो? जो सर्वव्यापक है उसका ही नाम परमात्मा है। दोहराते हो तोतों की तरह कि परमात्मा सर्वव्यापक है और फिर भी पूछते हो कि परमात्मा कहां है!

सर्वव्यापक का अर्थ हुआः वही बाहर, वही भीतर। सर्वव्यापक का अर्थ हुआः वही बोलने वाले में, वही सुनने वाले में। सर्वव्यापक का अर्थ हुआः जागो तो वही, सोओ तो वही। सर्वव्यापक का अर्थ हुआः सत्य भी वही, सपना भी वही। ब्रह्म भी वही, माया भी वही। भटको तो भी उसी में भटक रहे हो। उससे बाहर नहीं भटक सकते, उससे बाहर कोई स्थान नहीं है। उससे बाहर जाना भी चाहो तो कोई उपाय नहीं है।

जब तुम भ्रांतियों में पड़े हो तब भी तुम उसी में हो, क्योंकि भ्रांतियां भी उसी के सागर में उठी तरंगें हैं। इस बात को जो समझ ले वह सहज हो जाता है। उसकी सब खोज गई। अब कोई तीर्थ-यात्रा नहीं करनी है। अब तो जहां हैं वही तीर्थ है; जैसा है वैसे ही तीर्थ है। और फिर तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू होगा। आंखें जब वासना से रहित होंगी, खोज से शून्य होंगी, फिर तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू होगा। फिर वृक्षों में, चांद-तारों में और चांद में ही नहीं झील में बनते चांद के प्रतिबिंब में भी वही, क्योंकि और किसका प्रतिबिंब बनेगा?

जाग्रत पुरुष सदा से कहते रहे कि ब्रह्म और माया एक ही हैं। माया उसीकी ही ऊर्जा है, उसीकी ही शक्ति है, उसीकी छाया है। जो माया के विपरीत है उसे ब्रह्म का कोई पता नहीं है। जो माया का शत्रु है उसे ब्रह्म का कभी पता लगेगा भी नहीं। क्योंकि माया में वही रमा है, राम ही रमा है।

जिस दिन तुम्हें स्वप्न में भी सत्य की ही झलक, छांह दिखाई पड़ने लगेगी, उसी दिन क्रांति घट जायेगी। मगर तुम हो खोजी। खोजी का अर्थ होता है; चित्त। और जहां चित्त है वहां अड़चन है। खोज से चित्त निर्मित होता है--यह पाऊं वह पाऊं, धन पाऊं पद पाऊं।

तुम सोचते हो धन और पद को पाने की आकांक्षा अधार्मिक है और परमात्मा को पाने की आकांक्षा धार्मिक हैं? तो तुम भ्रांति में हो, बड़ी भ्रांति में हो। पाने की आकांक्षा मात्र ही चित्त की जन्मदात्री है। क्या तुम पाना चाहते हो, इससे जरा भी भेद नहीं पड़ता। तुम पत्थर पाना चाहते हो कि हीरा, कोई भेद नहीं पड़ता। तुम पृथ्वी पाना चाहते हो कि आकाश, कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम काशी जाना चाहते हो कि काबा, कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम्हें कुछ पाना है, कहीं जाना है, तो तुम्हारे भीतर उद्विग्नता होगी, तनाव होगा और तुम्हें भविष्य खींचेगा, भविष्य जो कि झूठ है; भविष्य जो कि नहीं है। जो है वह तो अभी है। तुम कहते होः कल, वहां। और जो है वह है यहां और है अभी।

चित्त तनाव है यहां और वहां के बीच। अभी और कभी के बीच जो तनाव है, उसका नाम चित्त है। जिस क्षण तुम्हारे मन में कुछ पाने का ख्याल नहीं उठता उसी क्षण मन भी गया। फिर आता है विश्राम, फिर आती है शांति। उसी शांति में दिखाई पड़ता है। था तो तब भी जब दिखाई नहीं पड़ता था। था तब भी, लेकिन अब दिखाई पड़ता है, क्योंकि आंख अब धुएं से भरी नहीं है।

नाव है या छांह शशि की, वह जलधि के नीर पर?
कब लगेगी ज्योति की वह नाव तम के तीर पर?
वह अछूती छांह शशि की मचलती हिल्लोलिनी?
ज्योति का अति क्षणिक चुंबन तृषित अधर अधीर पर?

स्वप्न या आदर्श या संकल्प, तुम कुछ भी कहो--
आभरण है किरण का वह फूल, तिमिर-शरीर पर!
मृत्तिका की पहुंच के उस पार क्या सब झूठ है?
टिके सीमा के न दृग क्या क्षितिज की जंजीर पर?

नयन साक्षर कहां पढ़ पाए, जिसे मन गुन रहा; --
सुरभि ने था लिख दिया जो छंद मंद समीर पर!
जो अगम है, हो सुगम वह; यह अतल की कामना;
मुखर हो लिख दी गई जो उदधि-उर गंभीर पर!

वह अलख का गीत क्या है, जिसे शशि लिखता रहा?
असीमा का प्यार, सीमा की असीमित पीर पर!
दिशाएं पखबाज, स्वर आकाश, गाता काल है,
चंद्र-रवि की वेणु-वीणा नखत के मंजीर पर!

नाव है या छांह शशि की वह जलधि के नीर पर?

कब लगेगी ज्योति की वह नाव तम के तीर पर?

देखी तुमने छांव चांद की झील पर, झील के नीर पर! वह भी उतनी ही सत्य है। छांव ही है, लेकिन समझ में आ जाये तो नाव जितनी सत्य है और तुम्हें पार ले जा सकती है। और पार जाने का अर्थ कहीं दूर जाना नहीं है। पार जाने का अर्थ पास आना है। और जरा तुम्हें विराम मिले तो दिखाई पड़ना शुरू हो जाये।

वह अलख का गीत क्या है, जिसे शशि लिखता रहा?

असीमा का प्यार, सीमा की असीमित पीर पर!

दिशाएं पखबाज...

तब सारी दिशाएं वाद्य हो जाती हैं।

दिशाएं पखबाज, स्वर आकाश, गाता काल है,

चंद्र-रवि की वेणु-वीणा नखत के मंजीर पर!

सारा जगत एक आह्लाद, एक उत्सव से भर जाता है, एक नाद से भर जाता है। सुनने को कान चाहिए--और जगत संगीत है। देखने को आंख चाहिए--और जगत सौंदर्य है। गुनने को शांत हृदय चाहिए--और सभी तरफ परमात्मा है। परमात्मा ही परमात्मा है। इस क्षण भी तुम परमात्मा से रत्ती-भर दूर नहीं हो। लेकिन अगर पूछा कि खोजने निकलेंगे, तो चूक शुरू हो गई। फिसले। अब बहुत मुश्किल हो जायेगी, कहां खोजोगे? कैसे खोजोगे?

खोजनेवाला चित्त पानेवाला चित्त नहीं है। खोजने-वाला चित्त खोता चला जाता है। कुछ चीजें ऐसी हैं जो बिना खोजे पायी जाती हैं; जिन्हें खोजा कि खोने का उपाय हो जाता है। जैसे नींद, रात नींद न आती हो, क्या करोगे? जो कुछ भी करोगे उससे नींद में बाधा पड़ेगी। अगर कुछ न किया तो नींद आ जायेगी। अगर पड़े ही रहे, प्रतीक्षा करते रहे, कि आये जब आये, तो जरूर आ जायेगी। लेकिन अगर उठे, व्यायाम किया तंत्र-मंत्र पढ़े, दौड़-धूप की, कुछ किया कि फिर नींद मुश्किल हो जायेगी, क्योंकि कृत्य तो बाधा बन जायेगा। नींद तो विश्रांति है।

परमात्मा ऐसे ही आता है जैसे नींद आती है। तुम नहीं खोजते परमात्मा को। तुम तो जरा शांत बैठ जाओ तो परमात्मा आ जाये; जैसे आ ही रहा है, मगर तुम्हारी अशांति की पर्त बीच में है और मिलन नहीं हो पाता! उसकी नाव तो तुम्हारे अंधेरे के किनारे लगने को तत्पर है।

नाव है या छांह शशि की वह जलधि के नीर पर?

कब लगेगी ज्योति की वह नाव तम के तीर पर?

वह लगने को ही है, लगना ही चाहती है। तुम्हारे अंधेरे तट पर उसकी नाव लगी ही है, मगर तुम्हारी आंखें दूर, बहुत दूर क्षितिज पर उलझी हैं। तुम उसे परलोक में खोज रहे हो; वह इसी लोक में मौजूद है। तुम उसे मृत्यु के बाद खोज रहे हो; वह जीवन है। और तुम उसे किसी अशरीरी आत्मा में खोज रहे हो; वह पदार्थ भी है और चेतना भी। सभी कुछ वही है।

सहज-योग की यह मूलभूत आधारशिला है कि परमात्मा खोजना नहीं है; खो जाने की कला सीखनी है और वह मिल जाता है। और विश्राम में तुम खो जाओगे। तनाव में ही तुम होते हो, इसलिये आदमी तना रहता है। एक तनाव छूटे तो दूसरा पकड़ लेता है। धन की दौड़ छूटे तो पद की, पद की दौड़ छूटे तो धर्म की; मगर कोई न कोई दौड़ जारी रहती है। दौड़ जारी रहे तो मन जीता है।

मन ऐसा ही है जैसे साइकिल पर पैडल मारना; जब तक पैडल चलाते रहोगे साइकिल चलती रहेगी, पैडल रुका कि गाड़ी रुकी! मन खोजता ही रहता है। वह कहता है कि कुछ खोजो, कुछ करो, क्या बैठो हो! और जो बैठ गया उसने पा लिया। जरा बैठना सीखो। खोज तो काफी रहे हो जन्मों-जन्मों से और खतरा यही है कि तुम अगर खोजोगे तो तुम्हें मार्गदर्शन देने वाले लोग भी मिल जायेंगे। इस जगत में यह अनिवार्य है।

अर्थ-शास्त्र का नियम है कि जिस बात की मांग होती है उसकी पूर्ति करने वाले लोग पैदा हो जाते हैं। तुम मांगो भर, कोई न कोई फैक्ट्री खोल देगा। तुम मांगो भर, कोई न कोई उत्पादक सामान बनाकर तैयार कर देगा।

जिस बात की मांग होगी उसकी पूर्ति करनेवाले मिल जायेंगे; उसका बाजार होगा तो बेचनेवाले मिल जायेंगे। तुमने पूछा ईश्वर को कहां खोजें और तुम्हें मिल जायेंगे मार्गदर्शक। उन्हें पता हो या न हो, इससे क्या अंतर पड़ता है?

मैंने सुना है, अमरीका में एक दुकान पर ऐसे हेयर-पिन बिकते थे जो अदृश्य... । स्त्रियां तो दीवानी थीं। अदृश्य हेयर-पिन दिखाई भी न पड़े किसी को और लगा भी है बालों में! कौन स्त्री न चाहेगी अदृश्य हेयर-पिन! भीड़ थी दुकान पर। एक स्त्री ने खरीदा। डब्बी खोली। अब दिखाई तो पड़ते नहीं थे। उसने पूछा कि हैं भी न? उस दुकानदार ने कहा कि अब आप से क्या छिपाना! (परिचित ही महिला थी।) तीन सप्ताह से नहीं हैं, मगर बिक्री जारी है।

अदृश्य चीजों की बिक्री बड़ी आसान होती और परमात्मा से ज्यादा अदृश्य क्या? इसलिये सदियों से बिक्री चल रही है। दुकानें हैं, दुकानदार हैं, पंडित-पुरोहित हैं, वे बेच रहे हैं अदृश्य परमात्मा। और चूंकि अदृश्य सामान है, किसी को दिखाई तो पड़ता नहीं, इसलिए कोई झंझट खड़ी कर सकता नहीं। और फिर उसको देने के ढंग भी इस तरह से बनाये गये हैं कि मिलेगा मरने के बाद। अब मरने के बाद कोई लौटता नहीं। इसलिये किसी को मिलता है कि नहीं मिलता, इसका भी कुछ पता चलता नहीं। और फिर आदमी को इतना घबड़ा दिया है कि वह सोचता है कि इंतजाम कुछ कर ही लेना चाहिए।। थोड़ा पुण्य कर लो, थोड़ा दान कर लो। और दान उसीको करना है, उसी पुजारी को, उसी पंडित को, उसी ब्राह्मण को--जो आश्वासन दे रहा है।

पंडित-पुरोहित आश्वासनों पर जीते हैं--उसी तरह जैसे राजनीतिज्ञ आश्वासनों पर जीते हैं। अब तुम देखते हो मजा, हर पांच साल में चुनाव होते हैं। राजनेता आकर आश्वासन देता है और तुम फिर मान लेते हो कि इस बार पूरे होंगे। कभी पूरे नहीं होते। कहीं आश्वासन पूरे करने को दिये जाते हैं? आश्वासन देनेवाले को आश्वासन पूरे करने से कोई प्रयोजन नहीं है; उसे वोट चाहिए। तुम बिना आश्वासन के वोट नहीं देते, तो तुम जैसा आश्वासन चाहो वैसा आश्वासन देने को वह राजी होता है। एक बार वोट तो दो, फिर पांच साल के लिये मामला टला। पांच साल बीतते-बीतते तुम भूल ही जाओगे। जिंदगी की समस्याएं ही इतनी हैं कि कौन आश्वासनों को याद रखता है! पांच साल बाद वह फिर आकर खड़ा हो जायेगा। तुम अपनी मांगों में इस तरह ग्रसित हो कि तुम यह भी नहीं देख पाते कि तुम्हें झूठे आश्वासन दिये जा रहे हैं और कभी पूरे नहीं होते, फिर भी तुम जागते नहीं।

मैंने सुना है, एक आदिवासी इलाके में राजनेता चुनाव का प्रचार करने आया था। आदिवासी सीधे-सादे लोग, नंग-धड़ंग, लंगोटी लगाये, मुश्किल से बैठे। मगर इकट्ठे कर लिया था गांव के सरपंच ने सबको तो राजनेता का व्याख्यान सुन रहे थे। राजनेता ने कहा कि भाइयो एवं बहनो! अगर मुझे तुमने वोट दिये तो तुम्हारे गांव में स्कूल खुलवा दूंगा। खूब ताली पिटी। आदिवासियों ने कहाः होया-होया! राजनेता बहुत प्रभावित हुआ।

ऐसे तो उसने बहुत जिंदाबाद-मुर्दाबाद की आवाजें सुनी थीं, मगर "होया-होया"... यह बिल्कुल नया ही मामला था! और इस भाव से आदिवासियों ने कहा था, ऐसी प्रसन्नता से कि वह समझा कि उसकी बड़ी स्तुति की जा रही है। जोश बढ़ गया राजनेता का, तो उसने कहा कि इतना ही नहीं कि स्कूल खुलवा दूंगा, अस्पताल भी खुलवा दूंगा। तब तो बिल्कुल धूम-धड़ाक मच गई। होया-होया! और जोर से। जोश राजनेता का बहुत बढ़ गया। उसने कहा कि ट्रेन भी चलवा दूंगा। फिर तो आदिवासी खड़े होकर ताली बजाकर नाचने लगे--होया-होया!

राजनेता की प्रसन्नता का कोई अंत नहीं। जोश इतना आ गया उसे कि उसने मुखिया से कहा गांव के कि जरा मुझे गांव में भ्रमण भी करवा दो, ये बड़े भले लोग हैं और इनकी सब मांगें पूरी कर दी जायेंगी। जो-जो आश्वासन मैंने दिये, पांच साल में तुम देखना, सब पूरे हो जायेंगे। जरा मैं गांव का एक चक्कर लगा लूं।

मुखिया उसे लेकर चला। छोटी पगडंडियां, रास्ते तो थे नहीं गांव में, जंगली गांव। पगडंडियों के पास ही लोग मल-मूत्र करते हैं तो मल-मूत्र के ढेर लगे हैं। मुखिया ने कहा कि नेता जी, जरा सम्हलकर चलना, कहीं होया-होया में पैर न पड़ जाये! तब राजनेता को अकल आई कि होया-होया का मतलब क्या है।

आदिवासी सीधे-सादे लोग! उनको तुम धोखा न दे सकोगे। वे समझ रहे हैं कि यह स्कूल होया-होया... ; अस्पताल और होया-होया; ट्रेन, बिल्कुल ही होया-होया। कुछ होनेवाला नहीं है। जब मुखिया ने कहा कि जरा बचकर चलना, नेता जी कहीं होया-होया में पैर न पड़ जाये, तब उसे अकल आई। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

राजनेता झूठे आश्वासनों पर जी रहा है। पंडित-पुरोहित सदियों से झूठे आश्वासन पर जी रहे हैं--स्वर्ग मिलेगा, बैकुंठ मिलेगा, बहिश्त मिलेगी। फिर तुम्हें जो चाहिये हो बैकुंठ में बहिश्त में, सबका तुम्हें इंतजाम कर देता है। जो चाहिये हर चीज मिल जायेगी। मगर मौत के बाद मिलेगा यह सब। तुम भी उससे राजी रहते हो, क्योंकि तुम भी परमात्मा की झंझट अभी नहीं लेना चाहते। तुम भी कहते हो कि अभी तो जो कर रहे हैं, यह पूरा कर लें, मौत के बाद परमात्मा भी मिल जायेगा।

यह संसार भी एक हाथ से सम्हाल लें, दूसरा भी दूसरे हाथ से सम्हाल लें।

तुम भी यही चाहते हो कि परमात्मा अभी न मिल जाये, क्योंकि अभी मिल जाये तो तुम्हारी जिंदगी बदलेगी। तुम्हें जिंदगी बदलनी ही पड़ेगी।

जरा सोचो कि परमात्मा आज मिल जाये तो कैसी अड़चन न आ जायेगी! तुम्हारी सारी योजनायें अस्त-व्यस्त हो जायेंगी। तुमने अब तक जो सब पुल बांध रखे थे सपनों के, धूल-धूसरित हो जायेंगे। तुम्हारे ताश के महल सब गिर जायेंगे। तुम्हारी कागज की नावें डूब जायेंगी। अगर परमात्मा आज मिल जाये तो तुम सोचते हो, कैसी मुसीबत न हो जायेगी! मैं तुमसे पूछता हूं कि अगर परमात्मा आज मिले, अभी मिलता हो, तो तुम ईमानदारी से हृदय पर हाथ रखकर कह सकोगे कि आज और अभी तुम उससे मिलने को राजी हो? तुम कहोगे कि इतने जल्दी नहीं। अभी दुकान भी चलानी है। अभी एक चुनाव भी लड़ना है। अभी बच्चे स्कूल में पढ़ रहे हैं। और अभी-अभी तो मेरी शादी हुई है। आप सिर्फ तरकीब बता दें परमात्मा के मिलने की कि कहां मिलेगा, कब मिलेगा, जब मुझे सुविधा होगी तब मैं खोज लूंगा।

इसलिये तुम पूछते होः परमात्मा कहां है? परमात्मा यहां है! और तुम पूछते हो कहां है! और तुम पूछते हो कि परमात्मा कैसे मिलेगा? परमात्मा मिला हुआ है! तुम कैसे उसे नहीं देख रहे हो, यही आश्चर्य है। तुम कैसे उसकी तरफ पीठ किये खड़े हो, यही आश्चर्य है। मगर तुम्हें भी राहत इसी में है कि फिर कभी मिले तो अच्छा। यह बिबूचन आज ही न आ जाये। और पंडित भी इससे प्रसन्न हैं कि तुम अभी नहीं चाहते, तुम कल चाहते हो।

कल तक की सुविधा उसको देते हो, इस बीच वह तुम्हारा शोषण कर लेता है। पंडित का काम भी चलता रहता है, तुम्हारी धार्मिकता भी चलती रहती है और जगत जैसा है वैसा का वैसा बना रहता है, उसमें रत्ती-भर, रंच-मात्र भेद नहीं करना पड़ता। यह बड़ी सुविधापूर्ण व्यवस्था है। पंडित पूजा करता रहता है, मंदिर-मस्जिदों में अजान और घंटनाद होता रहता है, आरती उतारी जाती रहती है और तुम अपने संसार की आपाधापी में लगे रहते हो, सब वैसा ही चलता चला जाता है। और एक मजा और मन में रख लेते हो भीतर ही भीतर कि मरने के बाद परमात्मा मिलेगा, कि इतना पुण्य किया कि इतना दान किया, कि इतने उपवास किये, व्रत किये, कि इतना मंत्र-जाप किया, कि इतनी माला फेरी। परमात्मा भी तय हो गया। न तो कुछ छोड़ना पड़ा, न कुछ परिवर्तित होना पड़ा, न किसी आग से गुजरना पड़ा। और पंडित ने तुम्हें सुविधा जुटा दी, उसने तुम्हें कल का आश्वासन दे दिया कि जरूर मिलेगा, कि तुम देखो जनेऊ पहनते हो न, जरूर मिलेगा; चुटइया बढ़ा रखी है न, जरूर मिलेगा; तिलक लगाते हो न, जरूर मिलेगा। उसने सस्ते आश्वासन दे दिये और तुम सस्ते आश्वासन से राजी हो गये। न तुम पाना चाहते हो न उसकी देने की क्षमता है।

परमात्मा को कोई दे सकता है? और जिसे पाना हो उसे क्षण-भर रुकने की आवश्यकता है? अभी आंख खोलो, इसी क्षण शांत हो जाओ--और फिर वही है।

दिशाएं पखवाज, स्वर आकाश, गाता काल है,
चंद्र-रवि की वेणु-वीणा नखत के मंजीर पर!

फिर ओंकार का नाद तुम्हें इसी क्षण सुनाई पड़ने लगे। सहज होओ। खोजने वाला सहज नहीं होता। वासना करने वाला सहज नहीं होता। छोड़ो सब वासना, साधारण हो जाओ। धार्मिक होने की भी अस्मिता मत बनाओ, वह भी अहंकार है। साधारण हो जाओ। इसलिये सरहपा ने नहीं प्रयोग किया परमात्मा शब्द का--सहज हो जाने को कहा है।

साधारण होकर जी लो, जैसे पशु जीते हैं, पक्षी जीते हैं, पौधे जीते हैं, चांद-तारे जीते हैं--ऐसे साधारण होकर जीओ। इतना जरूर भेद रहेगा तुममें पक्षी और पौधे में, कि तुम्हारी सहजता में एक चैतन्य रहेगा, एक बोध रहेगा, एक जागृति रहेगी। वही जागृति और तुम्हारी सहजता का मिलन हो जाये तो परमात्मा घट गया।

तुम परमात्मा हो! और तुम पूछते हो परमात्मा कहां खोजें! खोजनेवाले में छिपा है वह, जिसे तुम खोजना चाहते हो।

दूसरा प्रश्नः विरह का, प्रभु-विरह का कष्ट सहा नहीं जाता है।

फिर कुछ और होगा वह, प्रभु-विरह का कष्ट न होगा। क्योंकि प्रभु-विरह का कष्ट तो एक सौभाग्य है। वह कष्ट है ही नहीं। वह वरदान है, अभिशाप नहीं। वह तो केवल सौभाग्यशालियों को मिलता है, धन्यभागियों को मिलता है। वह तो बड़ी मीठी पीड़ा है, बड़ी मधुर!

जिन्होंने उसे जाना है वे ऐसा नहीं कहेंगे कि प्रभु-विरह का कष्ट नहीं सहा जाता। वे तो नाचेंगे। वे तो कहेंगेः यही क्या कम है कि हमारे भीतर उसकी विरह की अग्नि जली। अनंत हैं अभागे जिनके भीतर उसका भाव ही नहीं गूंजा। अनंत हैं अभागे, जिनके कानों में उसके स्वर का एक कण भी नहीं पड़ा, जिनकी आंखों में उसका रूप जरा भी दिखाई नहीं पड़ा, जो बिल्कुल अपरिचित जी रहे हैं--ऐसे अपरिचित कि उन्हें पता ही नहीं है कि परमात्मा भी है!

तुम धन्यभागी हो, अगर तुम्हारे भीतर खलबली मची है, अगर तुम्हारे भीतर प्यास उठी है। इसको तुम कष्ट न कहो। इसे कष्ट कहने में भूल हो जायेगी।

किसको होती हैं .अता इस शान की बरबादियां।

आशियां हम क्या बनाते, बिजलियां देखा किये।।

इतनी शानदार बरबादियां बहुत कम लोगों को उपलब्ध होती हैं। जो परमात्मा का दीवाना हो गया, यह एक शानदार बरबादी है। यह तो मृत्यु में नवजीवन का संचार है। यह तो कांटे में छिपा फूल है... ।

उस जुल्म पै कुर्बां लाख करम, उस लुत्फ पै सदके लाख सितम।

उस दर्द के काबिल हम ठहरे, जिस दर्द के काबिल कोई नहीं।।

धन्यभागी है वह, जिसके मन में पीड़ा उठी है; जिसके मन में ललक उठी है; जिसको बोध हुआ है इस बात का कि परमात्मा है; जिसके भीतर परमात्मा में डूब जाने की उमंग समाई है।

लेकिन अगर तुमने परमात्मा को भी कोई वस्तु समझा हुआ है और तुम उसे पाने के लिये आतुर हो रहे हो वस्तु समझकर, तो कष्ट होगा। तब तो वैसा ही कष्ट होगा जैसे किसी को मकान बनाना है और नहीं बना पा रहा है, तो अहंकार को चोट लगती है; कि किसी को कार खरीदनी है, नहीं खरीद पा रहा, अहंकार को चोट लगती है; कि किसी को कुछ और करना है और नहीं कर पा रहा है तो लगता है मैं भी नाकुछ, दो कौड़ी का आदमी हूं, इतना भी नहीं कर पा रहा!

अगर परमात्मा को भी तुमने कोई वस्तु समझा है, कोई अहंकार का आभूषण समझा है, तो कष्ट होगा। लेकिन परमात्मा कोई वस्तु नहीं है और न अहंकार का कोई आभूषण। परमात्मा तो एक मस्ती है। और निश्चित ही यह मस्ती ऐसी है कि शुरू तो होती है, अंत नहीं होती। तो परमात्मा के प्यारे तो सदा ही विरह की पीड़ा में जीते हैं, सदा ही क्योंकि मिल-मिलकर लगता है, और मिलने को है। विरह का अंत नहीं होता। ऐसा थोड़े ही है कि एक दिन पता चलता है कि मिल गया पूरा। परमात्मा के मिलने की शुरुआत होती है, पूरा तो परमात्मा कभी नहीं मिलता। हमारे हाथ बड़े छोटे हैं। हमारा हृदय बड़ा छोटा है। उतने बड़े आकाश को हम समा भी कैसे पायेंगे? हमारी गागर में सागर बनेगा कैसे? गागर भर भी जायेगी तो भी विराट सागर बाहर मौजूद रहेगा।

परमात्मा की प्यास ऐसी प्यास है कि जितना तुम पियोगे उतनी ही प्यास प्रज्वलित होती जायेगी। मगर यह कोई दुर्भाग्य नहीं, यह कोई पीड़ा नहीं यह मधुर पीड़ा है।

देख वफाए-इश्क का एक यही उसूल है।

लमहे करम के याद रख, साल जफा के भूल जा।।

वह जो क्षण-भर को रस बह जाता हो वह याद रख और वर्षों तक भी रस न आता हो और रेगिस्तान ही रेगिस्तान मालूम होता हो, उन वर्षों को भूल जाओ।

देख वफाए-इश्क का एक यही उसूल है।

लमहे करम के याद रख, साल जफा के भूल जा।।

यह तो भक्त की प्राथमिक साधना है कि वे छोटे-छोटे से क्षण भी जो आ जाते हैं--उसके आनंद के, उसकी लहर, उसकी बाढ़ के, उसकी रोशनी के--उन्हें ही भर याद रखता है। वे जो लंबी-लंबी रातें हैं, जो बिना उसके बीत जाती हैं और उसकी झलक नहीं मिलती, उन्हें तो वह याद ही नहीं रखता। उनका कोई मूल्य ही नहीं है।

बहा करे दिले-खूं-गुस्ता अश्क बन-बन कर

हमें भी जिद है कि हम मुस्कुराये जायेंगे

भक्त तो मुस्कुराये जाता है; यही क्या कम है कि उसे पाने की, उसमें लीन हो जाने की पीड़ा उठी है!

बहा करे दिले-खूं-गुस्ता अश्क बन-बन कर

हमें भी जिद है कि हम मुस्कुराये जायेंगे

भक्त को तो कांटे गिनने आते ही नहीं, फूल ही गिनना आता है। उसे कांटे धीरे-धीरे दिखाई ही नहीं पड़ते, फूल ही फूल दिखाई पड़ते हैं। फिर एक दिन तो कांटों में भी फूल दिखाई पड़ते हैं।

जब दिल पर छा रही हो घटाएं मलाल की।

उस वक्त अपने दिल की तरफ मुस्कुरा के देख।।

उदासी के क्षण आते हैं, बदलियां घिर जाती हैं, लेकिन तब भी मुस्कुरा कर देखने की कला भूल मत जाना। मुस्कुरा कर देखते ही बदलियां छट जाती हैं, सूरज निकल आता है।

हमने भी की थीं कोशिशें, हम न तुम्हें भुला सके।

कोई कमी हमीं में थी, याद तुम्हें न आ सके।।

जीस्त की राहतों में भी गम न तेरा भुला सके।

लब से हंसे ह.जार बार, दिल से मुस्कुरा न सके।।

कुफ्ल-सा .जबां पै था आंखों में कुछ नमी-सी थी।

होश नहीं कि दिल का भेद कह गये या छुपा सके।।

अपने ही शौक की ख़ता, अपनी ही आंख का कुसूर।

वह तो उठा चुका नकाब, हम न नजर उठा सके।।

परमात्मा तो सामने ही खड़ा है; अगर भूल हो रही है तो अपने से हो रही है।

अपने ही शौक की ख़ता, अपनी ही आंख का कुसूर।

वह तो उठा चुका नकाब, हम न न.जर उठा सके।

बस हम ही अपनी नजरें झुकाये खड़े हैं, जमीन में गड़ाये खड़े हैं। वह सामने खड़ा है और उसने अपना घूंघट भी उठा लिया है। सच तो यह है, उसके ऊपर घूंघट कभी रहा नहीं। हमारी आंख पर ही परदा है। हमारी आंख ही धुंधली है। परमात्मा तो प्रतिपल आने को आतुर है, हम ही लेने को तैयार नहीं हैं।

हमने भी की थीं कोशिशें, हम न तुम्हें भुला सके।

कोई कमी हमीं में थी, याद तुम्हें न आ सके।।

ख्याल रखना, कोई न कोई अपनी ही कमी, कोई न कोई अपनी ही बाधा दीवाल बनी है, लेकिन अकसर ऐसा हो जाता है कि अगर भक्त को समझ न हो और भक्ति अगर उधार हो तो वह शिकायतें करने लगता है। वह कहता है अब सहा नहीं जाता। अब विरह की बहुत पीड़ा हो गई। अब मिलना ही चाहिए।

उसकी फल पाने की आकांक्षा इतनी गहन है कि देख ही नहीं पाता कि मेरे प्रयास में कोई भूल होगी, कि मेरी प्यास में कोई भूल होगी, कि मेरा पात्र ही उल्टा रखा होगा।

अपने ही शौक की ख़ता, अपनी ही आंख का कुसूर।

वह तो उठा चुका नकाब, हम न न.जर उठा सके।।

जरा पहचानो, अपनी ही नजर की भूल पहचानो। कहीं चूक हो रही है। या तो तुम परमात्मा को किसी शक्ल में देखना चाहते हो तो चूक हो गई, फिर तुम न देख पाओगे। कोई चाहता है कि धनुष-बाण लिये हुए रामचंद्र जी दिखाई पड़ें, बस फिर तुम्हें कभी मिलना न हो पायेगा। और अगर कभी मिलना हो जाये तो समझ

लेना कि तुम्हारी कल्पना का ही जाल है। कोई चाहता है कि बांसुरी बजाते हुए कृष्ण मिलें। तुमने अपेक्षा आरोपित कर दी। तुम परमात्मा को वैसा न आने दोगे जैसा वह आना चाहता है। तुम उसे उसकी नग्नता में न आने दोगे; उसकी सत्यता में न आने दोगे; वह तुम्हारा लिबास ओढ़कर आये, वह तुम्हारा रंग-ढंग लेकर आये, वह तुम्हारी अपेक्षा पूरी करे, तो फिर विरह की रात्रि चलती रहेगी। फिर उसका कोई अंत नहीं है। फिर कोई सुबह नहीं होने वाली है। तुम्हारी धारणाएं बाधा डाल रही हैं। तुम परमात्मा की कोई धारणा न रखो मन में। अपनी सब धारणाएं छा.ेड दो। उससे कहोः जैसा तू है वैसा आ। नहीं हिंदू की तरह, नहीं ईसाई की तरह--तू जैसा है वैसा आ! मेरी कोई मांग नहीं है! मेरी कोई अपेक्षा नहीं है। तू जिस ढंग में आयेगा, अंगीकार है। तू जिस रंग में आयेगा, स्वीकार है। तेरा स्वागत है, तू आ। मैं तुझे हर रंग में और हर ढंग में पहचानने को राजी हूं। मैंने आंखें खोलकर रखी हैं। तू आ!

लेकिन कोई हिंदू है, कोई ईसाई है, कोई मुसलमान है--और यहीं अड़चन हैः धार्मिक तो कोई भी नहीं। तुमने बड़ा जाल खड़ा कर रखा है। तुम जरा देखो, तुमने अगर सोचा है कि पीतांबर पहने हुए कृष्ण आयें और अगर वे सफेद कपड़ों में खड़े हुए तो तुम्हें संदेह होने लगेगाः "अरे, कृष्ण महाराज और सफेद कपड़ा। पीतांबर?" तुम्हारी धारणा अनुकूल नहीं पड़ रही। तुमने मान रखा है धनुष-बाण लिये आएं। आज धनुष-बाण पिट गया, अब धनुष-बाण का कोई मूल्य है? कभी-कभी छब्बीस जनवरी को दिल्ली में आदिवासी लेकर पहुंच जाते हैं, और तो कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता धनुष-बाण लिये हुए। उनके भी किसी काम का नहीं है अब। वे भी रखे रहते हैं छब्बीस जनवरी के लिये। छब्बीस जनवरी को रंग-रोगन करके पहुंच जाते हैं दिल्ली धनुष-बाण लेकर। अब धनुष-बाण का क्या अर्थ रहा? अब क्या मूल्य है? और अगर अभी भी तुम्हारा परमात्मा धनुष-बाण लिये होगा तो थक गया होगा, बुरी तरह थक गया होगा। उसके कंधे भी दुखने लगे होंगे। तुम क्षमा करो उसे। उसे छुट्टी दो। उससे कहो कि अब तुम छोड़ो यह धनुष-बाण। मगर झगड़ा हो जाये, अगर परमात्मा धनुष-बाण छोड़ दे।

एक नगर में मैं मेहमान था, वहां एक दंगा हो गया, क्योंकि उस कालेज के लड़कों ने एक नाटक किया। आधुनिक रामलीला! झगड़ा हो गया इस पर, क्योंकि गांव के पंडित-पुरोहित बहुत नाराज हो गये। दकियानूसी बहुत नाराज हो गये। क्योंकि रामचंद्र जी और लक्ष्मण जी और सीता मैया सब आधुनिक वेशभूषा में! सीता मैया ऊंची एड़ी का जूता पहने! झगड़ा हो गया। वह तो मजाक था उनका बस, मगर मूढ़ों की तो कोई गिनती नहीं; इस देश में तो एक गिनो और हजार मिल जायें। झगड़ा हो गया, वहीं झगड़ा हो गया कि अपमान हो गया। धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंच गई। व्यंग्य भी समझना लोग भूल गये हैं। थोड़ा-सा हंसी-मजाक समझना भी भूल गये हैं। वहीं मारपीट हो गई। कुर्सियां तोड़ डाली गईं, मंच के पर्दे फाड़ डाले गये और लड़कों की पिटाई कर दी--कि सीता मैया को और ऊंची एड़ी का जूता! लेकिन व्यंग्य प्यारा था, अर्थपूर्ण था।

सब बदला जा रहा है, तो तुम सोचते हो परमात्मा नितनूतन, नया नहीं हो रहा होगा? फिर राम या कृष्ण या बुद्ध केवल परमात्मा की अनुभूतियां हैं। इन व्यक्तियों ने परमात्मा को जाना। ये खिड़कियां हैं, जिनसे परमात्मा देखा गया। लेकिन खिड़की की चौखट की पूजा करने मत बैठ जाना, नहीं तो आकाश तो भूल ही जायेगा, चौखट पकड़ में रह जायेगी। आकाश को देखो! खिड़की आकाश नहीं है; खिड़की से सिर्फ आकाश दिखा। राम से आकाश दिखा, कृष्ण से आकाश दिखा। अब खिड़की की पूजा करने से क्या होगा? आकाश देखो! वह जो राम में था विराट, वही विराट आयेगा--राम नहीं आयेंगे। वह जो कृष्ण में था विराट, वही विराट आयेगा--कृष्ण नहीं आयेंगे। लेकिन विराट को झेलने की क्षमता नहीं है।

अर्जुन चाहता था कि कृष्ण अपना विराट रूप दिखाएं और कथा है कि कृष्ण ने अपना विराट रूप दिखाया। और जब उसने विराट रूप देखा तो वह कंपने लगा। उसके हाथ से गांडीव छूट गया, थरथरा गया, पसीना आ गया। उसने कहा कि नहीं-नहीं, आप अपने वापिस उसी रूप में आइये, मेरे सखा के रूप में।

यह कथा प्रीतिकर है। तुम चाहते हो परमात्मा उस तरह से आये तो तुम्हें रुचिकर हो। मगर परमात्मा तो उसी तरह से आ सकता है जैसा है। अगर तुम्हें देर हो रही है उसे पाने में तो उसका कुल कारण इतना ही होगा कि तुमने बहुत-सी शर्तें लगा रखी हैं कि ये-ये शर्तें पूरी करो। और परमात्मा किसी की शर्त पूरी करने को बंधा नहीं है। परमात्मा और शर्त पूरी करेगा! तुम बेशर्त हो जाओ।

अपने ही शौक की ख़ता, अपनी ही आंख का कुसूर।

वह तो उठा चुका नकाब, हम न न.जर उठा सके।।

हिंदू की नजर नहीं उठ सकती और मुसलमान की नजर नहीं उठ सकती। नजर तो उसकी उठेगी जो न हिंदू है न मुसलमान है। हिंदू होना नजर पर पत्थर है, जैसे पलकों से पत्थर बंधा हो। नजर तो वह उठेगी जिस पर कोई पत्थर नहीं है, जिस पर कोई बोझ नहीं है; जो निर्भार है; जो बच्चे की तरह सरल और निर्दोष है। और जब वैसी नजर उठती है तो हैरान होकर पाया जाता है कि जिसे हम खोजना चाहते थे, जिसे हम पाना चाहते थे, वह सदा से मौजूद था; हम कभी भी पा लेते। इतने दिन न पाया तो अपनी ही नजर का कसूर था।

और फिर, उसकी पीड़ा जो झेलेगा उसे यह सत्य भी जल्दी ही दिखाई पड़ जायेगा--

फितरत यही अ.जल से है बर्के-जमाल की।

उसने जिसे तबाह किया तूर कर दिया।।

जिसे भी वह मिटाता है उसके ऊपर अमृत होकर बरस जाता है। जिसे वह मृत्यु देता है उसे परम जीवन देता है। फितरत यही अजल से है बर्के-जमाल की! उस परमात्मा के गौरव की, गरिमा की, उसके उत्सव की, उसके महोत्सव की। यह सदा से प्रथम से ही सचाई रही है।

फितरत यही अ.जल से है बर्के-जमाल की।

उसने जिसे तबाह किया तूर कर दिया।।

उसके हाथों मिट जाने से बड़ा कोई सौभाग्य नहीं। उसके हाथों मौत हो जाये, इससे बड़ा कोई धन्यभाग नहीं। क्योंकि जिसे वह मिटायेगा उसे वह बनायेगा। मिटने में बनना है। जैसे बीज टूट जाता है, मिट जाता है, तो वृक्ष हो जाता है। ऐसे ही तुम मिटो।

लेकिन तुम्हारी आकांक्षा यह है कि मैं भी रहूं और परमात्मा भी मिले। बस वहीं चूक हो रही है। मैं भी रहूं और परमात्मा भी मिले, ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। या तो तुम या परमात्मा; दो में से एक चुन लो। अगर तुम्हें अपने को बचाना है तो परमात्मा से तुम्हारा कभी संपर्क न हो पायेगा और अगर अपने को खोना है तो अभी संपर्क हो सकता है। जिन्होंने उसे चाहा, जिन्होंने थोड़ा समझा, जिन्होंने थोड़ा रस लिया है उसकी शराब का, जिन्होंने थोड़ा उसे चखा है, वे तो कुछ और कहते हैं। वे तो कहते हैंः उसका इंतजार भी इतना मधुर है, कि कौन फिकिर करता है मिलन की। प्रतीक्षा इतनी प्यारी है, कौन फिकिर करता है मिलन की! मिलन हो या न हो, किसे फिकिर पड़ी है! उसकी प्रतीक्षा इतनी प्यारी है!

कहीं वोह आके मिटा दें न इंतजार का लुत्फ।

कहीं कुबूल न हो जाये इल्त.जा मेरी।।

और कभी-कभी तो भक्त डरने लगता है कि कहीं ऐसा न हो कि मैं रोज-रोज प्रार्थना करता हूं कि आओ आओ आओ, कहीं वे आ ही न जायें! नहीं तो फिर जो मजा मैं ले रहा हूं इंतजार का, जो गदगद होकर राह देख रहा हूं, वह जो आंखें टिका रखी हैं प्रतीक्षा में, वह जो हृदय धक-धक होकर सुन रहा है पैरों की आहट--यह जो इतना सुख बरस रहा है, इसका क्या होगा!

कहीं वोह आके मिटा दें न इंतजार का लुत्फ।
कहीं कुबूल न हो जाये इल्त.जा मेरी।।

कहीं मेरी प्रार्थना स्वीकार न हो जाये, कभी-कभी यह डर आने लगता है। तो तुम कहते होः विरह का, प्रभु-विरह का कष्ट सहा नहीं जाता। नहीं, तुम समझे ही नहीं अभी। नहीं तो मस्त हो जाते। सहने न सहने की बात नहीं हैः यह तो बड़ा लुत्फ है। यह प्रतीक्षा तो बड़ी आनंदपूर्ण है। उसके पैरों की आहट सुनना कि अब आया, अब आया, कि द्वार पर हवा का धक्का लगा और लगा कि आ गया... कि सूखे पत्ते हवा ने उड़ाये और राह पर आवाज हुई और तुम दौड़े कि आ गया... कि चांद की छाया बनी झील में कि लगा उसकी नाव तिरी, कि वह आया। कि मेरे तम के किनारे पर उसकी नाव लगी, अब लगी!

ऐसी प्रतीक्षा गदगद भाव से की गई हो तो क्या तुम कह सकोगे कि सहा नहीं जाता? तुम तो कहोगे कि प्रभु और भी दे यह पीड़ा, क्योंकि यह पीड़ा मधुर है।

और यह पीड़ा निखारनेवाली है। इसी पीड़ा की अग्नि से जलकर तुम, इसी अग्नि से निकलकर तुम कुंदन बनोगे, शुद्ध स्वर्ण बनोगे। भक्त की भाषा सीखो। भक्त का सलीका सीखो। भक्त की शैली सीखो।

तीसरा प्रश्न : ओशो, हम भारतीय क्यों दार्शनिक प्रश्न ही पूछते हैं, जबकि पश्चिमी संन्यासी अपने जीवन से संबंधित प्रश्न पूछते हैं?

मुकेश भारती! दार्शनिक प्रश्न अकसर झूठे प्रश्न होते हैं। दार्शनिक प्रश्न अकसर जीवन के वास्तविक प्रश्नों को छिपाने का आयोजन होते हैं। दार्शनिक प्रश्न धोखे का आयोजन है।

तुम असली प्रश्न पूछने से डरते हो। और असली प्रश्न अहंकार का आभूषण नहीं बनते, नकली प्रश्न अहंकार का आभूषण बनते हैं।

कोई आया और उसने पूछा कि परमात्मा को कैसे पाऊं? अब इस प्रश्न में ही यह बात छुपी है कि मैं परमात्मा का खोजी हूं, कि मैं कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं हूं, कि मेरी तो परम खोज है, आत्यंतिक खोज। मैं तो ऊंची बातें करता हूं! मैं जिज्ञासु नहीं हूं, मुमुक्षु हूं! मोक्ष की ही मेरी अभीप्सा है, छोटी-मोटी क्षुद्र बातों में मैं नहीं पड़ता। मैं कोई छोटा ओछा आदमी नहीं हूं। मेरा प्रश्न देखो, मेरा प्रश्न बता रहा है कि मैं कौन हूं!

और असलियत अगर गौर से देखी जाये तो इसकी जिंदगी के प्रश्न अभी हल नहीं हुए। अभी कामवासना से यह कैसे मुक्त हो, हल नहीं हुआ है। मगर राम की बात उठा दी। अभी काम से मुक्त नहीं हुआ है, राम की बात उठा दी। राम की बात उठाने में ही मजा है, क्योंकि राम की बात से ही अहंकार को तृप्ति मिलती है। अब कोई आकर पूछे कि कामवासना से कैसे मुक्त होऊं, तो स्वभावतः अहंकार को चोट लगती है। जो चार लोग बैठे हैं वे सुनेंगे कि अरे हम तो समझते थे आप ब्रह्मचारी हैं और आप कहते हैं कामवासना से कैसे मुक्ति हो!

एक जैन मुनि मुझसे मिलना चाहते थे, तो मैंने कहाः ठीक है। लेकिन उन्होंने कहाः एकांत में मिलना है। मैंने कहाः एकांत की क्या चिंता? अच्छा ही होगा आपके भक्त भी सुन लेंगे कि क्या बात होती है।

मगर वे न माने। जब मैं उन्हें मिलने गया तो उन्होंने कहा कि अब बाकी लोग जायें। कोई तीस-चालीस आदमी इकट्ठे हो गये थे, फिर द्वार उनके एक भक्त ने अटका दिया। मैंने पूछा कि इनको हटाने की जरूरत क्या? उन्होंने कहाः आप समझे नहीं। मैं ऐसे प्रश्न पूछना चाहता हूं जो इनके सामने नहीं पूछ सकूंगा। इनके सामने तो आत्मा-परमात्मा और मोक्ष इत्यादि की ही बातें कर सकता हूं। सच तो यह है कि प्रश्न भी नहीं पूछ सकता इनके सामने, उत्तर दे सकता हूं, क्योंकि इनको मैं सिर्फ समझाता हूं, उपदेश देता हूं। ये तो बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे अगर मैं पूछूं कि कामवासना से कैसे मुक्त हुआ जाये, क्योंकि ये तो मानते हैं कि मैं मुक्त हो गया हूं। आप मेरी तकलीफ समझो।

वे आदमी ईमानदार थे। हिम्मत नहीं थी इतनी कि सबके सामने पूछते, मगर फिर भी ईमानदार थे। उन्होंने कहा कि मेरी तकलीफ... मुझे आत्मा परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं, चालीस साल मेरे खराब गये हैं। यह कामवासना मुझे खाये जा रही है। मुझे इससे छुटकारा दिलायें।

मैंने उनसे पूछा कि आप अपने संप्रदाय के आचार्य को ही क्यों नहीं पूछते हैं? वे आचार्य तुलसी के मुनि थे। तो मैंने कहाः आपके तो बड़े आचार्य हैं आचार्य तुलसी, उन्हीं से क्यों नहीं पूछते? उन्होंने कहाः कामवासना के संबंध में आपके सिवाय मैं किसी से पूछ नहीं सकता, क्योंकि कोई भी यह समझ नहीं पायेगा और कोई भी यह मानने को राजी नहीं होगा कि मैं अभी कामवासना से ग्रस्त हूं। और फिर, जो मेरी दशा है वही मेरे संप्रदाय के अन्य साधुओं की दशा है। उत्तर उनके पास भी नहीं है। वे भी इसी मुसीबत में हैं। एक चुप्पी साधी हुई है। बात ही मत करो इसकी।

पश्चिमी संन्यासी थोथा नहीं है; उसके जीवन के वास्तविक प्रश्न हैं। वह ईश्वर इत्यादि की बात नहीं पूछता कि ईश्वर को कैसे खोजें। वह नहीं पूछता कि मोक्ष कैसे मिले। वह नहीं पूछता कि कितने नर्क हैं और कितने स्वर्ग हैं। इन सब बातों में उसका रस नहीं है। वह जीवन के वास्तविक प्रश्न पूछता है। वह कहता है कि मैं क्रोध से उद्विग्न हो उठता हूं, क्रोध से मेरा कैसे छुटकारा हो? और मजा यह है कि क्रोध से छुटकारा हो जाये तो स्वर्ग उपलब्ध होता है और काम से छुटकारा हो जाये तो राम उपलब्ध हो जाता है। राम को पूछना नहीं होता।

मगर भारतीय मन की तो बड़ी बेचैनी हो गई। हजारों साल का अहंकार है भारत के चित्त पर, कि हम दार्शनिक, धार्मिक देश, यह पुण्यभूमि! जैसे कि और भूमियां अपुण्य भूमियां है। जैसे कई भूमियां हैं! भूमि तो एक ही है, इकट्ठी है। कहां भारत खतम होता है? पहले पाकिस्तान भी पुण्यभूमि थी, अब नहीं है। नक्शे पर लकीर खिंच जाती है, पुण्यभूमि खतम हो गई। पहले बंगला देश भी पुण्यभूमि थी, अब नहीं है। यह बड़ा मजा है! तो राजनेताओं के हाथ में है मामला कि क्या पुण्यभूमि होगी और क्या पुण्यभूमि नहीं होगी। कौन इसका निर्णायक है? नक्शे पर बदलाहट हो गई कि भूमि बदल गई। मगर यह अहंकार हमारे भीतर बड़ा गहरा है, हजारों सालों से हमने पाला है।

हमारे पास कुछ और है भी नहीं। धन नहीं है, समृद्धि नहीं है, शिक्षा नहीं है, स्वास्थ्य नहीं है, सब खो गया है। बस हमारे पास अब एक यह थोथी अकड़ रह गई है, इसलिये इसको हम छोड़ना भी नहीं चाहते, वही हमारे अहंकार का एकमात्र सहारा है। और तो हमारा सब खो ही गया है। अब एक ही बात बची है कि हम धार्मिक हैं। वह भी सिर्फ बात ही बात है; धार्मिक हम हैं नहीं। लेकिन इसको कैसे छोड़ें? जिसके पास सब कुछ खो गया हो, एक छोटा-सा आसरा बचा हो, वह उसी को उछालता है।

तो तुम पूछते हो कि हम भारतीय दार्शनिक प्रश्न ही क्यों पूछते हैं? तुम उछालते रहते हो बताने के लिये कि हम धार्मिक हैं। हम क्षुद्र बातें नहीं पूछते।

मेरे पास भारतीय आकर यह भी कह देते हैं कि आपके पश्चिमी संन्यासी व्यर्थ की बातें क्यों पूछते हैं। वे उन्हें व्यर्थ की बातें मालूम हो रही हैं। एक पश्चिमी संन्यासी पूछता है कि मेरे मन में बहुत अहंकार है, क्या करूं? यह व्यर्थ की बात मालूम हो रही है, क्योंकि हम तो माने ही बैठे हैं कि अहंकार! अहंकार तो हम में है ही नहीं! यह प्रश्न हम कैसे पूछें? हम तो ऊंची बात पूछते हैं। हम तो हवाई बात पूछते हैं। हम तो आकाशी बात पूछते हैं।

लोग मेरे पास आकर पूछते हैं पश्चिमी कि यह विचार की शृंखला नहीं टूटती, यह सतत बह रही है, कोई उपाय है? भारतीय आकर पूछता हैः सविकल्प समाधि क्या, निर्विकल्प समाधि क्या? निर्बीज समाधि क्या? सबीज समाधि क्या? अब मजा यह है कि मैं तुम्हें व्याख्या भी कर दूं कि निर्बीज समाधि क्या, वह तो निर्बीज शब्द में ही साफ है और निर्विकल्प समाधि क्या, वह भी निर्विकल्प शब्द में साफ है। वे शब्द पर्याप्त हैं, और परिभाषा की कोई जरूरत नहीं है। और कितने तो शास्त्र हैं तुम्हारे पास! सवाल यह नहीं है कि निर्विकल्प समाधि क्या है; सवाल यह है कि तुम विकल्पों से घिरे हो, इन विकल्पों के पार कैसे जाया जाये? असली सवाल निर्विकल्प समाधि की व्याख्या नहीं है, परिभाषा नहीं है। असली सवाल विकल्पों से घिरे चित्त को विकल्पों के पार ले जाने की सीढ़ी क्या है, साधन क्या है?

मगर यह स्वीकार करना कि मेरे चित्त में रोग हैं, काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है--भारतीय मन को अंगीकार नहीं होता है। ये तो शत्रु हैं, ये मैं कैसे मानूं कि मेरे भीतर हैं!

तो कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि दूसरे के संबंध में लोग पूछते हैं। एक आदमी आया! उसने कहा कि मेरे मित्र एक बड़ी अड़चन में पड़े हैं, आप कुछ सहायता करें! मेरे मित्र नपुंसक हो गये हैं। वे बड़े परेशान हैं।

मैंने इन सज्जन को कहा कि जरा मेरी तरफ देखो। उन्होंने देखा। मैं थोड़ी देर उनकी तरफ देखता रहा। तो वे थोड़ा घबड़ाये, थोड़ा परेशान हुए, थोड़े बेचैन हुए, इधर-उधर देखने लगे। मैंने कहा कि देखो, तुम अपने मित्र को क्यों नहीं भेज दिये? तुम्हारा मित्र आ जाता और कहता कि एक मेरे मित्र हैं जो नपुंसक हो गये हैं। मैंने कहाः तुम यह भी कहने की हिम्मत नहीं कर सकते हो, इतने नपुंसक हो गये हो क्या, कि यह तुम्हारी बीमारी है! यह तुम्हारे चेहरे पर लिखी है।

वे तो बहुत घबड़ा गये। नाराज ही हो गये कि आप कैसी बात करते हैं! यह मेरा सवाल नहीं है।

तो मैंने कहाः तुम अपने मित्र को लेकर आना और इतना पक्का है कि मैं यह हल कर दूंगा। यह सवाल हल हो जायेगा, क्योंकि सौ में से निन्यानबे प्रतिशत जो लोग नपुंसक होते हैं, सिर्फ मनोवैज्ञानिक रूप से होते हैं, शारीरिक रूप से नहीं होते, सिर्फ मानसिक रूप से हो जाते हैं। और अकसर ऐसा हो जाता है, जो पुरुष अपनी पत्नी के साथ नपुंसक होता है, वही वेश्या के साथ नपुंसक नहीं होता। असल में पत्नी से ऊब गया होता है, उस ऊब के कारण नपुंसकता आ गई होती है। तो मैंने कहा कि हल हो जायेगा मामला, लेकिन ईमानदारी से। या तो अपने मित्र को ले आओ... वह कौन मित्र है, मैं उसको देखना चाहता हूं, बिना उसे देखे कुछ हो नहीं सकता। या सच-सच कह दो।

इधर-उधर देखा। कहाः अब आप से क्या छिपाना? तकलीफ तो मेरी ही है। इतना भी साहस हम खो दिये हैं! अपनी तकलीफ भी नहीं बता सकते। सैद्धांतिक प्रश्न पूछते हैं। सोचते हैंः सैद्धांतिक प्रश्न पूछने से बात हल हो जायेगी। निर्विकल्प समाधि क्या है, यह समझने में शायद तुम्हें पकड़ में आ जायेगा सूत्र कि अपने विकल्पों से कैसे मुक्त हुआ जाये। नहीं, ऐसे पकड़ में नहीं आयेगा। क्योंकि जब तुम निर्विकल्प समाधि की व्याख्या पूछते हो तो मैं निर्विकल्प समाधि की व्याख्या करूंगा। उस व्याख्या से कुछ नहीं होने वाला। वह व्याख्या तो पतंजलि ने कर रखी है। उसमें अब कुछ जोड़ा नहीं जा सकता। परम व्याख्या हो चुकी। अब उसमें

कुछ सुधार करने की जरूरत नहीं है। आखिरी बात कही जा चुकी है। अब तो सवाल यह है कि उस तक पहुंचा कैसे जाये, वह व्याख्या मेरा अनुभव कैसे बने?

लेकिन तब तुम्हें जीवन के प्रश्न पूछने होंगे। यथार्थ, जो तुम्हारी वास्तविक अड़चन है, वही पूछनी होगी। वास्तविक अड़चन तुम नहीं पूछते हो, क्योंकि वास्तविक अड़चन पूछने से लगता है कि मैं भी कैसा गया-बीता आदमी हूं। मगर छिपाने से क्या होगा? तुम जो हो हो। और मेरी दृष्टि में, जो आदमी वास्तविक सवाल उठाता है वह गया-बीता आदमी नहीं है--वही आदमी है। जो झूठे सवाल उठाता है, व्यर्थ के शाब्दिक जाल उठाता है, जो कभी सीधा-सीधा सार्थक बात नहीं उठाता, यहां-वहां गोल-गोल घूमता है, पास-पास इर्द-गिर्द चक्कर मारता है, लेकिन केंद्र पर नहीं आता--वह आदमी व्यर्थ ही समय गंवा रहा है। मगर यही हालत है।

कामवासना तुम्हारी तकलीफ है और आकर पूछते हो कि ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ? गोल-गोल घूम रहे हो। कामवासना तुम्हारी तकलीफ है तो कामवासना क्या है, और कैसे इसके पार हुआ जाये, यही पूछो; ब्रह्मचर्य की बात मत उठाओ। मगर ब्रह्मचर्य शब्द बहुमूल्य है, कीमती है। उसकी बात ही उठाते से चारों तरफ प्रभाव छा जाता है कि यह देखो आदमी, ब्रह्मचर्य में इसका रस है! तुम छिपा रहे हो अपने घाव फूलों में। और फूलों में छिपाये घाव नासूर बन जाते हैं, याद रखना।

दार्शनिक लफ्फाजी मत करो। जीवन के तथ्यों को पकड़ो। और मैं तुम से यह नहीं कह रहा हूं कि दर्शन ने जो कहा है वह व्यर्थ है। जीवन के तथ्य पकड़ोगे तो एक दिन उस अनुभव तक भी पहुंच जाओगे, जरूर पहुंच जाओगे! मगर सीढ़ी चढ़नी पड़ेगी। अभी से आकाश की बात मत उठाओ। अभी तुम जमीन पर हो, तो जमीन की बात करो। जमीन का राज समझो। जो आदमी जमीन का राज समझ लेगा, जमीन का गुरुत्वाकर्षण समझ लेगा, वही आदमी गुरुत्वाकर्षण के पार हो सकता है। उसी समझ में से पार होने का रास्ता निकलता है। वह आदमी एक दिन आकाश में उठ जायेगा।

जिन लोगों ने पहली दफा हवाई जहाज बनाया, वे कुछ आकाश की बातें नहीं किये थे। जिन्होंने पहली दफा हवा में हवाई जहाज उठाया उन्होंने समझा जमीन का राज, कि जमीन का गुरुत्वाकर्षण कैसा है, कैसे चीजों को अपनी तरफ खींचता है, क्या उपाय हो सकता है इसके खिंचाव के पार जाने का। जो लोग चांद पर गये, उनके सामने सबसे बड़ा सवाल यही था कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बिल्कुल छूट जाये, इसके लिये क्या किया जाये? उसकी ही समझ पैदा हो गई कि चांद पर जाना आसान हो गया।

आकाश की बात करने से कोई आकाश नहीं जाता; जमीन को ठीक से समझ लेने से आकाश जाता है। आत्मा की बातें करने से कोई आत्मा को नहीं पाता; देह के राज को समझ लेने से, शरीर के रहस्यों को समझ लेने से आत्मा को जान पाता है।

तथ्यों को पहचानो, सत्य तक पहुंच जाओगे। मगर हम तथ्यों की बात ही नहीं करते। हम तो सीधे सत्यों की बात करते हैं। तब हमारी बातचीत कोरी बातचीत रह जाती है--दार्शनिक चर्चा, जो बिल्कुल व्यर्थ होती है, जिसका कोई मूल्य नहीं होता, किताबी होती है। इसलिये अकसर ऐसा हो जाता है कि जो एक के लिये बड़ा महत्वपूर्ण सवाल मालूम होता है, दूसरे के लिये बिल्कुल महत्वपूर्ण नहीं मालूम होता है।

एक जैन आकर पूछता है, निगोद यानी क्या? अब किसी और को इसका अर्थ है... निगोद? कोई हिंदू नहीं पूछता निगोद क्या, कोई सिक्ख नहीं पूछता, कोई मुसलमान नहीं पूछता, कोई ईसाई नहीं पूछता कि निगोद क्या। यह जैनों का शास्त्रीय शब्द है। निगोद है वह दशा, जहां आत्माएं संसार में प्रवेश करने के पहले इकट्ठी थीं। निगोद अंधकार की दशा है। अति अंधकार की--जैसे बच्चा जन्मने के पहले मां के गर्भ में होता है, नौ

महीने अंधकार में होता है। ऐसे ही सारी आत्मायें अनंत काल तक अंधकार में रही हैं; वह निगोद सारी आत्माओं का गर्भ है।

अब यह जैनों का पारिभाषिक हिसाब है। कोई स्थान तो बताना होगा कि आत्माएं कहां से आईं। जैन मानते नहीं कि परमात्मा है। जैन मानते नहीं कि परमात्मा ने आत्माओं को बनाया है, क्योंकि वे कहते हैं कि अगर आत्मा बनाई गई तो पदार्थ हो गई। ठीक ही बात कहते हैंः जो चीज बनाई जाये वह चैतन्य कैसे हो सकती है? और जो चीज बनाई गई, वह किसी दिन मिटाई भी जा सकती है, तो फिर आत्मा की शाश्वतता खंडित हो गई। तो फिर आत्मा का कोई मतलब ही न रहा। फिर बेकार की परेशानी हो गई सब। इसलिये आत्मा बनाई तो नहीं गई, फिर आई कहां से? तो अब उनको कोई उपाय खोजना पड़ेगा, परमात्मा की जगह उन्हें कोई सिद्धांत रखना पड़ेगा--निगोद।

अब उनसे कोई पूछे कि निगोद में आत्माएं कहां से आईं? आखिर कहीं से तो आई होंगी निगोद में भी। गर्भ में भी आत्मा आखिर तो कहीं से आती है, तो निगोद में आत्मा कहां से गई? मगर सभी दर्शन-शास्त्र एक जगह जाकर चुप हो जाते हैं, होना ही पड़ता है, क्योंकि सब लफ्फाजी है। अब उत्तर नहीं मिलता कि निगोद में कहां से गई। जैन मुनि नाराज हो जायेगा, अगर तुम पूछो कि निगोद में आत्मा कहां से आई? वह कहेगा यह अति प्रश्न है; जैसा कि याज्ञवल्क्य ने कहा था कि यह अति प्रश्न है, गार्गी। क्योंकि गार्गी ने पूछा थाः ब्रह्म को किसने सम्हाला हुआ है? पृथ्वी को आकाश ने सम्हाला हुआ है, आकाश को ब्रह्म ने सम्हाला हुआ है। गार्गी ने पूछाः हे याज्ञवल्क्य! ब्रह्म को किसने सम्हाला हुआ है? बस याज्ञवल्क्य नाराज हो गये। और उसने कहाः तेरा सिर गिर जाएगा! यह अति प्रश्न है!

अति प्रश्न का मतलब सिर्फ इतना ही होता है कि जिसका उत्तर तुम्हारे पास नहीं है। और सिर गिराने की धमकी देना, यह तो कोई अच्छा लक्षण नहीं हुआ। यह कोई चर्चा न हुई। यह तो सत्संग न हुआ, लट्ठ उठ गये, कि बस अब आगे पूछोगे तो सिर खोल देंगे।

हर दर्शनशास्त्र एक जगह जाकर रुक जाता है, क्योंकि दर्शनशास्त्र के सब उत्तर कृत्रिम हैं। कृत्रिम उत्तर आत्यंतिक तृप्ति नहीं दे सकते, तो थोड़ी दूर तक खींचो--इसको उसने सम्हाला, उसको उसने सम्हाला, लेकिन आखिर में थक ही जाओगे। फिर कहोगेः बस भाई अब चुप करो। अब यहां रुक जाओ। इसके आगे मत पूछो, क्योंकि यह तो पूछते ही रहोगे तो फिर बात का अंत ही नहीं हो पायेगा। बात का अंत तो करना ही होगा, नहीं तो शास्त्र शुरू तो हो जायेंगे, इति कैसे होंगे? उनका अंत कैसे होगा, समाप्ति कैसे होगी?

तो जैन कहता है निगोद। मगर निगोद में आत्माएं कहां से आईं, यह मत पूछो। यह पूछो तो झगड़ा हो जाये।

जब मैं विश्वविद्यालय में था तो जब भी कोई जैन मुनि आये तो मेरा काम यही था कि उससे ऐसे प्रश्न पूछ लेना है जिनके उत्तर न हों--जैन आये तो, हिंदू संन्यासी आये तो।

एक दफा तो ऐसा मजा हुआ कि एक हिंदू संन्यासी गांव में आये--बड़े प्रसिद्ध संन्यासी! जिन्होंने उनका आयोजन किया था वे मेरे पास आये प्रार्थना करने कि आप कृपा करके मत आना। मैंने कहाः क्यों? उन्होंने कहा कि बड़ा उपद्रव हो जाता है, सत्संग ही खराब हो जाता है। आप ऐसा प्रश्न उठाते हो कि जिसका उत्तर है नहीं। और वह हमारे साधु-संन्यासी नाराज हो जाते हैं। नाराज हो जाते हैं तो उनकी भद्द होती है, क्योंकि साधु-संन्यासियों को नाराज नहीं होना चाहिए।

मैंने कहाः प्रश्न वही पूछने योग्य हैं, जिनका उत्तर नहीं है। जिनका उत्तर है बंधा-बंधाया, तोतों की तरह रटा हुआ, उन प्रश्नों में क्या रखा है? वे तो सभी को मालूम हैं। क्या उनका सार है?

दार्शनिक प्रश्नों का कोई मूल्य नहीं है। या तो उनका उत्तर है, वह बंधा-बंधाया है; उनका कोई मूल्य नहीं है। या फिर उनका उत्तर ही नहीं है, तब भी कोई सार नहीं है।

पूछो जीवंत प्रश्न। पूछो जीवन की वास्तविकता से जुड़े प्रश्न। जीवन को सुलझाना है। आकाश की गुत्थियों में मत पड़ो। तुम्हारी छोटी-सी जिंदगी की जो गुत्थी है, उसे सुलझा लो। उसके सुलझते ही सारा अस्तित्व सुलझ जाता है।

इसलिये मैं तो तुम्हें सलाह दूंगा, मुकेश, कि भारतीय आदत छोड़ो। अच्छा हो मनोवैज्ञानिक प्रश्न पूछो, दार्शनिक प्रश्नों की बजाय, क्योंकि मनोविज्ञान तुम्हारी दशा है। वहां तुम हो। वहीं उलझन है। वहीं तुम्हारा रोग है। और जहां रोग है वहीं इलाज किया जा सकता है।

बुद्ध ने इस पर बहुत जोर दिया, लेकिन बुद्ध को तो हमने टिकने न दिया इस देश में। बुद्ध को तो हमने उखाड़ फेंका इस देश से। बुद्ध अकेले भारतीय थे, जिन्होंने दर्शनशास्त्र को गरिमा और महिमा नहीं दी--अकेले भारतीय! भारतीय मनीषियों में बुद्ध इसलिये महिमावान हैं कि उन्होंने दर्शनशास्त्र को दो कौड़ी का बताया। उनसे कोई दार्शनिक प्रश्न पूछता तो वे कहते थे कि ऐसा हुआ, एक बार एक आदमी को जंगल में तीर लग गया, किसी शिकारी का तीर लग गया। वह आदमी गिर पड़ा। गांव से वैद्य आया। वैद्य तीर निकालने लगा। वह आदमी दार्शनिक था, उसने कहाः रुको। पहले कुछ बातों के जवाब दो। पहले तो यह कि तीर सत्य है या माया? है भी कि सिर्फ भ्रांति है?

अब यह बड़ी झंझट की बात है कि तीर है भी या सिर्फ भ्रांति है! उस वैद्य ने कहा कि पहले तीर निकाल लेने दो, फिर तुम विवाद करना और विचार करना और दार्शनिकों से जाकर पूछ लेना। मैं वैद्य हूं, मैं कोई दार्शनिक नहीं हूं। तीर सच हो कि झूठ, एक बात पक्की है कि अगर तीर थोड़ी देर और रह गया तुम्हारे भीतर तो तुम मर जाओगे। इतना मैं कह सकता हूं कि तुम मरणशैया पर पड़े हो। मैं तीर निकालना जानता हूं, मुझे यह पता नहीं तीर सच है कि झूठ। इतना पता है कि यह तीर थोड़ी देर और रह गया तुम्हारी देह में तो तुम मर जाओगे, तुम्हारा खून विषाक्त हो रहा है। मुझे तीर निकाल लेने दो।

उस आदमी ने कहाः विषाक्त! तो क्या तीर विषभरा है? इसका क्या प्रमाण?

उस वैद्य ने कहा ये प्रमाण इत्यादि बाद में खोज लेना, क्योंकि अभी समय नहीं है। मर गये तो फिर कोई प्रमाण खोजने की सुविधा भी न रहेगी।

यह तीर किसने मारा है? उसने पूछा।

वैद्य ने कहा कि यह मैं कैसे जानूं कि किसने मारा है? किसी ने मारा हो, तीर लगा है, इसे निकाल लेने दो।

यह मित्र ने मारा है या शत्रु ने? वह दार्शनिक पूछने लगा।

दार्शनिकता भी एक तरह की बीमारी है, अंत-अंत तक पीछा करती है। वैद्य ने देखा कि यह तो बहुत संक्रामक दार्शनिक है। यह रोग बड़ा पुराना है। उसने चार आदमियों से कहा कि पकड़ो इसको और मैं तीर निकालता हूं। इसकी बकवास में समय खोना ठीक नहीं है।

बुद्ध कहते थेः तुम जब मुझसे आकर इस तरह के प्रश्न पूछते हो कि आदमी मरने के बाद बचता है या नहीं, स्वर्ग सात हैं कि तीन, मोक्ष कहां है, लोक में कि लोकातीत--तब मुझे यह कहानी याद आती है कि तुम मरे जा

रहे हो। जीवन का तीर तुम्हारी छाती में लगा है। और मैं वैद्य हूं, मैं यह तीर निकाल सकता हूं। मगर तुम व्यर्थ की बकवास कर रहे हो। तुम कहते हो कि जीवन सत्य है कि माया? और जीवन का तीर लगा है और तुम मृत्यु के बाद की बातें कर रहे हो। और तुम कहते हो कि परमात्मा का रूप कितना है, परमात्मा की कितनी भुजायें हैं, कितने सिर हैं, परमात्मा का कैसा रूप है? और मैं तुम्हारे तीर में उत्सुक हूं। तुम्हारा जीवन का तीर निकल आये, तुम्हारी उलझन कट जाये, तुम सुलझ जाओ, तुम्हारे भीतर समाधान हो, समाधि हो--फिर ये सारे उत्तर तुम खोज लेना खुद ही। और सच यह है कि जैसे ही समाधि मिलती है, कोई प्रश्न नहीं रह जाते, न कोई उत्तर की खोज रह जाती है। समाधि मोक्ष है। समाधि में जान लिया जाता है कि मृत्यु है ही नहीं--अमृत ही है।

समाधि अनुभव है परमात्मा का। फिर कोई पूछता नहीं कि कितने हाथ उसके। क्या बच्चों जैसी बात कर रहे हो! कितने सिर उसके? कहानियां गढ़ रहे हो! न उसके सिर हैं, न उसके हाथ हैं या सभी हाथ उसके हैं और सभी सिर उसके हैं। मगर समाधि फल जाये तो सारे उत्तर मिल जाते हैं। समाधि उत्तरों का उत्तर है।

मगर बुद्ध को तो उखाड़ फेंका इस देश ने। बुद्ध को तो जीने न दिया। बुद्ध की धारा को तो यहां बचने नहीं दिया। और कारण क्या था? कारण यही था कि इस देश की दार्शनिक परंपरा और बुद्ध ने तथ्यगत, व्यावहारिक, यथार्थगत उपदेश दिया। लोग तो बुद्ध के समय में जो पंडित थे, दार्शनिक थे, वह यही कहते थे कि बुद्ध को पता नहीं मोक्ष का, इसलिये वे कहते हैं यह प्रश्न ही बेकार है। पता ही नहीं है, इसलिये प्रश्न बेकार। पता नहीं है उन्हें कि मृत्यु के बाद क्या होगा, इसलिये उत्तर नहीं देते। और लोगों को यह बात जंची होगी कि ठीक है; पता होता तो उत्तर देते, पता है ही नहीं तो उत्तर कैसे देते?

और मैं तुमसे कहता हूंः बुद्ध उन थोड़े-से लोगों में से थे जिन्हें पता है। और पता है, इसलिये उत्तर नहीं देते, क्योंकि तुम व्यर्थ के उत्तरों में समय खराब कर रहे हो। तुम्हें उत्तर नहीं, औषधि चाहिये। मगर औषधि में कोई उत्सुक नहीं है।

जो बुद्ध के साथ इस देश ने किया वही यह देश मेरे साथ कर रहा है। मैं तुम्हें औषधि देना चाहता हूं। तुम सुनना चाहते हो ब्रह्मचर्य की महिमा और मैं बताना चाहता हूं तुम्हें काम की जकड़ तुम्हारे ऊपर। बस अड़चन शुरू हो गई। तुम यह सुनना ही नहीं चाहते। तुम ब्रह्मचर्य की महिमा सुनना चाहते हो; जैसे कि तुमने महिमा काफी नहीं सुन ली है! हजारों साल से सुन रहे हो, हुआ क्या है? कामग्रस्त हो मगर कामग्रस्तता का विज्ञान नहीं समझना चाहते। क्योंकि उसे समझने में ही यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि मैं और कामग्रस्त, कभी नहीं! मैं भारतीय हूं! पुण्यभूमि में पैदा हुआ हूं, मैं धार्मिक हूं!

कल जर्मनी से एक अखबार आया। बड़े सूझ-बूझ का संपादक होगा उस अखबार का। उसने खबर छाप दी है कि मैं जर्मनी आ रहा हूं और जर्मनी में मेरे लिए आश्रम की जगह खोजी जा रही है। और मैं जर्मनी इसलिए आ रहा हूं कि मोरारजी देसाई एंड कंपनी मुझे भारत में नहीं जीने देना चाहती। ... बड़ा खोजी होगा! अभी मैंने कुछ सोचा भी नहीं है जर्मनी जाने का, न कोई बात... । लेकिन कही है उसने पते की बात!

इस देश की यह आदत है पुरानी। यह देश व्यर्थ की बातें सुनने में बड़ा उत्सुक होता है। सार्थक कोई भी बात सुनने में इस देश को बड़ी पीड़ा होती है, क्योंकि इसके अहंकार को चोट लगती है। और फिर सदियों-सदियों तक हम जिस तरह की बातें सुनते रहे हैं उन्हीं को हम समझते हैं कि धर्म-चर्चा है।

मेरे पास पत्र आते हैं कि आप काम-शास्त्र पर क्यों बोले? ऋषि-मुनि तो सदा ब्रह्मचर्य पर बोलते हैं। मैं उनको कहता हूं कि मैं न कोई ऋषि हूं, न कोई मुनि हूं, मैं एक वैज्ञानिक हूं! तुम छोड़ो तुम्हारे ऋषि-मुनि की बात। तुम्हारे ऋषि-मुनि जानें और तुम जानो। मैं न किसी का मुनि हूं, न किसी का ऋषि हूं। मैं एक वैज्ञानिक हूं।

मैं एक चिकित्सक हूं। मैं औषधि देना चाहता हूं। मैं सच में ही इलाज करने को उत्सुक हूं। बीमारी का दार्शनिक विश्लेषण करने में जरा भी मेरा रस नहीं है; लेकिन बीमारी कैसे काटी जा सके, बीमारी के पार कैसे जाया जा सके... ? मैं तुम्हारे प्राणों में पड़ गई मवाद को निकाल देना चाहता हूं, हालांकि जब मवाद निकलेगी तो पीड़ा होगी। तुम नाराज हो जाओ पीड़ा से, तो फिर मवाद नहीं निकल सकती। और मवाद निकलेगी तो बदबू भी फैलेगी। लेकिन तुम बदबू भी नहीं फैलने देना चहते। तुम कहते होः इत्र छिड़क दो ऊपर से और रहने दो मवाद भीतर, बाहर मत निकालो। अब जो छिपा है उसे उघाड़ना क्यों?

मगर वह मवाद तुम्हारे भीतर बढ़ रही है, गहरी होती जा रही है। तुम सड़ते जा रहे हो।

यह देश बुरी तरह सड़ गया है। इस देश में अब जिंदा आदमी कम हैं, लाशें ही लाशें हैं। और दार्शनिक चर्चा चल रही है। मुर्दे इकट्ठे हैं और सत्संग कर रहे हैं। और सत्संग में ऐसी-ऐसी बातें होती हैं कि जिनका किसी से कोई संबंध नहीं, कोई लेना-देना नहीं।

मुकेश! यह पुरानी आदत है इस देश की और इस देश ने इस आदत के कारण बहुत गंवाया है। अब यह आदत छोड़ देनी चाहिए। अब हम पृथ्वी पर पैर गड़ाकर खड़े हों, हम जीवन के यथार्थ में अपनी जड़ें जमायें, ताकि आकाश में हमारी शाखायें उठ सकें। और जिस वृक्ष को आकाश में जितने ऊंचे जाना हो, उस वृक्ष को जमीन में उतनी ही गहरी जड़ें भेजनी पड़ती हैं। जो वृक्ष कहेगा कि मैं जमीन में जड़ें नहीं भेजना चाहता, मैं तो सिर्फ आकाश में उडूंगा, वह पागल है। वह वृक्ष बढ़ ही नहीं पायेगा। वह गिरेगा, बुरी तरह गिरेगा!

ऐसे ही हम गिरे हैं। हम धूल में पड़े हैं। हम चिल्लाये चले जाते हैं कि हम संसार का गौरव हैं; हालांकि कोई और नहीं कहता, हम ही कहते रहते हैं कि हम संसार का गौरव हैं। दूसरे लोग आकर देखकर हम पर दया करते हैं। हम संसार का गौरव नहीं मालूम होते उन्हें।

लेकिन यह बात जरूर सच है कि कुछ लोग हमारे बीच हुए थे, जो संसार का गौरव थे। लेकिन उन कुछ लोगों के कारण कोई सारा देश धार्मिक नहीं हो गया है। एक बुद्ध के होने के कारण कोई सारा देश धार्मिक नहीं होता, न एक महावीर के होने के कारण। ये तो इक्के-दुक्के लोग हैं। सच तो यह है कि बड़ा आश्चर्य यही है कि बुद्ध और महावीर जैसे लोग हम जैसे लोगों के बीच पैदा हो सके! अपवाद हैं वे। और अपवाद से सिर्फ नियम सिद्ध होता है, और कुछ भी नहीं। बुद्ध के होने से सिर्फ यही सिद्ध होता है कि बुद्धुओं की भी.ड़ है। उसमें एक आदमी कैसे बुद्ध हो गया, यही आश्चर्य है। और तुम्हारे भीतर जो महाबुद्धू है वह बुद्धुओं का ऋषि-मुनि हो जाता है। स्वभावतः, वह उनका अग्रणीय होता है, अग्रज। वह उनसे भी पहुंचा हुआ है।

इस देश को एक नई दिशा की जरूरत है, जो यथार्थवादी हो। मगर अगर यथार्थ की बात शुरू करो तो लोग गाली देते हैं। लोग मुझे गाली देते हैं। वे कहते हैं कि मैं नास्तिक हूं या कि मैं पदार्थवादी हूं, भौतिकवादी, चार्वाक हूं। अगर यथार्थ की बात करो तो तुम चार्वाक हो जाते हो। अब कौन चार्वाक होना चाहता है! इसलिए लोग यथार्थ की बात नहीं करते। लोग ब्रह्मचर्चा करते रहते हैं। ब्रह्मचर्चा करने से वे महाज्ञानी समझे जाते हैं।

मैं तुम्हें ब्रह्मचर्चा में नहीं डुबाना चाहता। मैं तुम्हें जीवन की वास्तविकता को सुलझाने के उपाय देना चाहता हूं। और वे सुलझ जायें जीवन की समस्याएं तो एक दिन ब्रह्म को तुम जान लोगे। ब्रह्म चर्चा से नहीं जाना जाता; तुम्हारे भीतर समाधि की अवस्था हो जाए, सब समाधान हो जाए, तो जाना जाता है। ब्रह्म जाना जा सकता है; उसका विचार-विमर्श नहीं करना होता है।

अब यह देखो भारतीय प्रश्न, प्रज्ञा ने पूछा हैः "श्री रामकृष्ण ने जीव के चार प्रकार कहे हैं--बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्य। ओशो, इसे समझाने की कृपा करें।"

अब प्रज्ञा को क्या पड़ी है--बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्य... क्या लेना-देना है? अभी प्रज्ञा को समझना चाहिए कि ईर्ष्या क्या है? अभी उसकी उम्र ईर्ष्या की है। अभी उसे समझना चाहिए कि वैमनस्य क्या है? अभी उसे समझना चाहिए कामवासना क्या है? अभी उसे समझना चाहिए क्रोध क्या है, लोभ क्या है? नहीं, उसको समझना है कि रामकृष्ण ने कहा कि बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्य, ये जीव के चार प्रकार हैं--यह समझना है! इनको समझकर क्या होगा? इससे कुछ हल नहीं होगा। इससे तेरे जीवन की प्रज्ञा, कोई भी वास्तविक स्थिति खुलेगी नहीं, कोई गांठ खुलेगी नहीं। इससे गांठें और उलझ सकती हैं, और अड़चन हो सकती है।

और ये शब्द तो साफ हैं, इनमें समझने जैसा कुछ नहीं है। बद्ध का अर्थः जो बंधे हैं। किसने बांधा है, यह समझो। बद्ध का अर्थ हैः जिनके प्राणों पर जंजीरें हैं; जिनकी चेतना मूर्च्छित है; जो कारागृह में पड़े हैं। अब क्या कारण हैं हमारी मूर्च्छा के? कौन-सी जंजीरें हमारे हाथों पर हैं? उन जंजीरें को हम कैसे तोड़ें? वे टूट जायें तो मुक्त का अनुभव हो जायेगा।

और मुमुक्षु का अर्थ होता हैः जो खोजे कि बंधनों की जड़, बंधनों का आधार कहां हैः किस बात से मैं बंधा हूं, क्यों बंधा हूं, कैसे इस बंधन के पार जा सकता हूं--जो इसकी मुमुक्षा करे, खोज करे, अन्वेषण करे। और जो इस अन्वेषण को सिर्फ बौद्धिक रूप से करे वह मुमुक्षु; जो इसको अस्तित्वगत रूप से कर ले, वह मुक्त। जो इन बंधनों को तोड़-तोड़कर जान ले कि एक निर्बंध दशा है--वह मुक्त।

शुरू-शुरू में जब अनुभव होता है मुक्ति का तो ऐसा लगता हैः मैं मुक्त! मैं की थोड़ी-सी रेखा शेष रह जाती है। उस थोड़ी-सी रेखा के मिट जाने पर मोक्ष की दशा बनती है। मुक्त का अर्थ होता है जरा-सी रेखा रह गयी, आखिरी छाया कि मैं मुक्त हूं। अभी मैं का थोड़ा-सा भाव रह गया। जब वह भाव भी विदा हो जाता है, तो मोक्ष।

ये तो शब्द सीधे-साफ हैं, इनमें अड़चन नहीं है। मेरे लिए ज्यादा विचारणीय यह है कि प्रज्ञा को यह प्रश्न क्यों उठा? अब रामकृष्ण ने क्या कहा, कहने दो। प्रज्ञा को यह प्रश्न क्यों उठा?

और प्रज्ञा को मैं जान रहा हूं, देख रहा हूं; प्रज्ञा यहां आश्रमवासिनी है। उसकी समस्याएं मुझे पता हैं। उन समस्याओं का इस प्रश्न से कोई संबंध नहीं है। मगर इतना अच्छा प्रश्न पूछा तो प्रज्ञा खुश हो रही होगी कि देखा, कितना ऊंचा प्रश्न पूछा! प्रश्न पूछने के लिए पूछ लिया है। लेकिन प्रज्ञा, तेरी जिंदगी से इसका क्या संबंध? तेरे यथार्थ में झांक, वहां तो अभी सब उपद्रव खड़े हैं! स्वाभाविक, उन सारे उपद्रवों के पार जाना है। और उन उपद्रवों को समझना होगा। अभी क्रोध को समझ, काम को समझ, लोभ को समझ, ईर्ष्या को समझ, हिंसा को समझ, घृणा को समझ।

लेकिन लोग ये प्रश्न पूछते ही नहीं, लोग बड़ी ऊंची बातें पूछते हैं! और ऊंची बातें पूछने से ऐसी भ्रांति हो जाती है कि हम ऊंची बातों में उत्सुक हैं।

तुम्हारी श्वासों की मधुवास
नहीं अब आयेगी फिर पास
मधुर मनुहारें स्वप्निल प्यार
फेन-शेष अब रीता ज्वार
फूल भी चुभते हैं बन शूल
हुए लोग सारे सपने धूल
अश्रु बहते हैं सारी रात

याद कर-कर के बीती बात

संजोया जो जीवन भर प्राण

हुआ अभिशाप वही वरदान

नाव-पतवार सभी प्रतिकूल

हुए लो सारे सपने धूल

जल्दी ही सब सपने धूल हो जाते हैं। जो पहले से सजग हो जाये और सपनों में न पड़े, या पड़े तो इतनी कुशलता से पड़े कि जब बाहर निकलना चाहे निकल आये, अन्यथा जिंदगी एक सपने से दूसरे और दूसरे से तीसरे में डोलती रहती है। और जब होश आता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। चिड़ियां चुग गयी खेत, फिर पछताये होत का... ।

अकसर ऐसा होता है कि लोग बुढ़ापे में जाकर, मरने के करीब पहुंच-पहुंचकर समझ पाते हैं कि जिंदगी के असली सवाल क्या थे--मगर अब हल कैसे करोगे, अब बहुत देर हो गयी। अब तो बस राम-राम जपो! राम-राम जपने से कुछ हल होता है! क्रोध भीतर भरा है, तुम राम-राम जपो, कैसे हल होगा? इतना ही हो सकता है कि राम-राम क्रोध में जपने लगो, और क्या होगा? ... कि राम-राम ऐसे बोलो जैसे पत्थर मार रहे कि छुरा भोंक रहे! तुमने देखा, राम-राम भी अलग-अलग ढंग से जपते हैं लोग।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह घर से बाहर जाता था कि उसकी पत्नी ने कहा कि सुनो, जरा नौकरानी को दो-चार लताड़ देते जाओ। उसने कहाः लताड़? और तू तो कहती थी कि नौकरानी बड़ी प्यारी है और बड़े ढंग से काम कर रही है! लता.ड़ की क्या जरूरत है?

उसने कहा कि ढंग से काम कर रही है, बड़ी प्यारी है। अभी तक जितनी नौकरानियां आयीं उनमें यह श्रेष्ठतम है। मगर आज जरा लताड़ देते जाओ, क्योंकि अगर वह क्रोध में रहती है, तो जिस दिन गलीचे और दरियां साफ करनी होती हैं अगर वह थोड़े क्रोध में होती है, तो अच्छी पिटाई करती है दरियों की और सफाई ठीक होती है। जरा लताड़ देते जाओ। आज दरियां साफ करनी हैं।

अब आदमी क्रोध में हो और दरी साफ करने का मौका मिले, तो तुम समझ सकते हो... कि फिर छोड़ेगा नहीं। आदमी शांत हो और दरी साफ करे, तो और बात होगी।

तुम्हारे कृत्य में तुम्हारी भाव-दशा समाविष्ट हो जाती है। जो आदमी क्रुद्ध है वह राम-राम भी क्रोध से जपेगा। तुम देख सकते हो, जो आदमी शांत है वह राम-राम भी शांति से जपेगा। तो राम-राम जपने से कुछ नहीं होता। जो आदमी कामवासना से भरा है वह एक सुंदर स्त्री को देखकर जोर-जोर से राम-राम जपने लगेगा। मगर समझ लेना कि वह दरी पीट रहा है! वह जोर-जोर से राम-राम कह रहा है, भीतर उफान आ रहा है। अब वह जोर-जोर से राम-राम कह रहा है; वह किसी तरह अपने को समझा रहा है। वह राम-राम कह कर अपने काम को दबा रहा है।

राम-राम से कुछ हल नहीं होने वाला है। हां, जिंदगी में समस्याएं हल हो जायें तो राम का आविर्भाव हो, अवतरण हो। यह तुम्हें उल्टी बात लगेगी, क्योंकि तुम को यही कहा गया है कि बस राम-राम जप लो सब ठीक हो जायेगा। मैं तुमसे कहता हूंः अगर ऐसा होता तो यह देश कभी का ठीक हो गया होता; राम-राम यहां सारे लोग जप रहे हैं। इतना सस्ता कहीं है जीवन, इतना आसान कहीं है जीवन कि राम-राम जपने से सब ठीक हो जायेगा! सब ठीक हो जाये, तो राम का अनुभव होता है। मैं तुम से दूसरी ही बात कहता हूं, बिल्कुल विपरीत बात कहता हूं। इसलिए मेरी प्रक्रिया भिन्न होगी।

यहां कोई तीस थैरेपी का आयोजन किया है। लेकिन किसी भारतीय को उन थैरेपी-ग्रुपों में नहीं भेज पाता। क्योंकि कोई भारतीय प्रश्न ही नहीं पूछता कि उसे भेजा जा सके। उन थैरेपी ग्रुपों में सिर्फ पश्चिमात्य लोगों को मुझे भेजना पड़ता है। चाहता हूं भारतीयों को भी भेजूं। मगर अब प्रज्ञा है, इसको वहां भे◌े◌ेजने से क्या फायदा होगा, क्योंकि थैरेपी ग्रुप में न तो चर्चा होगी बद्ध जीव की, न मुमुक्षु जीव की, न मुक्त जीव की, न मोक्ष की। प्रज्ञा को लगेगा क्या फिजूल की बातें यहां हो रही हैं! वहां क्रोध को उभारा जायेगा। वहां तुम्हारी आग की लपटों को पूरी तरह भड़काया जायेगा, ताकि तुम अपने क्रोध को पूरी नग्न दशा में देख लो।

प्रज्ञा वहां घबड़ा जायेगी। वह कहेगी यह क्या हो रहा है, यह तो अधर्म हो रहा है! क्योंकि वहां क्रुद्ध हो जाते हैं लोग इतने, तो थैरेपी के कमरों की दीवालों पर गद्दियां लगवानी पड़ी हैं। क्योंकि वे जब क्रुद्ध हो जाते हैं तो दीवालों को पीटने लगते हैं, दीवालों से सिर मारने लगते हैं। तो कहीं सिर फूट न जाये... तो गद्दियां दीवाल पर लगवानी पड़ी हैं। और कभी-कभी क्रोध की ऐसी दशा हो जाती है कि एक-दूसरे से जूझ जाते हैं। मगर यह क्रोध को पूरा का पूरा सतह पर लाने का प्रयोग है। यह सतह पर क्रोध आ जाये, तुम इसे ठीक-ठीक देख लो कि कितनी क्रोध की आग तुम में भरी पड़ी है; उसी देखने में, उसी अनुभव में तुम्हारे भीतर एक क्रांति घट जायेगी--तुम साक्षी हो जाओगे। और साक्षी होने में रूपांतरण है।

मगर भारतीय कैसे समझें? उनको लगता है कि ये तो बड़े उपद्रव हो रहे हैं। यह मार-पीट, हिंसा... । उनको लगता है कि अहिंसा सिखानी चाहिए, मैं तो हिंसा सिखा रहा हूं। मैं हिंसा नहीं सिखा रहा हूं; अहिंसा के आने का रास्ता बना रहा हूं। लेकिन अहिंसा के आने का रास्ता बनता ही तब है जब तुम्हारी हिंसा का धुआं पूरा का पूरा निकल जाये।

तंत्र के प्रयोग यहां चल रहे हैं। उन प्रयोगों में तुम्हारी कामवासना को पूरा का पूरा सतह पर ले आने की चेष्टा है, ताकि कुछ दबा न रह जाये, कुछ कुंठित न रह जाये। सब ऊपर उभर आये। उभर आये तो निकास हो जाये। चिकित्सा का एक अनिवार्य अंग हैः उभार। उसी चीज से मुक्ति होती है जिसका उभार हो जाये। जैसे कि तुम्हारे भीतर कोई बीमारी उबल रही है और अगर तुम्हें वमन हो जाये तो तुम एकदम हल्के हो जाते हो। क्यों हल्के हो जाते हो? वह जो कूड़ा-करकट पेट में पड़ गया था, वह जो जहर पेट में पड़ गया था, तुम्हारे शरीर ने उसे बाहर फेंक दिया, निर्भार हो गया। ठीक वैसा ही वमन कामवासना का भी होता है, क्रोध का भी होता है, लोभ का भी होता है।

लेकिन इस तरह की थैरेपी के चित्र कुछ लोगों ने चोरी से निकाल लिये हैं। वे अखबारों में छपते हैं और लोग सोचते हैं कि बड़ा उपद्रव हो रहा है! यह तो महाअधर्म हो रहा है! क्योंकि उन थैरेपी में कभी-कभी लोग वस्त्र फेंक देंगे, नग्न हो जायेंगे। उन थैरेपी में किसी तरह की सीमा नहीं रखनी पड़ती, ताकि कुछ भी दमन का मौका न रहे, सब उभरकर आ जाये। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जब सब उभरकर ऊपर आ जाता है, तो एकदम हलकापन आ जाता है। फिर ध्यान सुगम हो जाता है।

मैं भारतीयों को भी भेजना चाहता हूं उन चिकित्साओं में। लेकिन भारतीय तो प्रश्न ही नहीं पूछते। वे तो आकर कहते ही नहीं कि मुझे क्रोध सता रहा है। वे तो कहते हैं◌ः मोक्ष क्या है? वे तो यह कहते ही नहीं कि मैं कामवासना से पीड़ित हूं। वे तो कहते हैं कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया है। और उन्हें अगर मैं भेज दूं तो वे समझ ही न पायेंगे कि क्या हो रहा है। और जाकर सारे देश में प्रचार करेंगे कि बड़ा अनर्थ हो रहा है!

मैं सच में ही कुछ करना चाहता हूं यहां। सिर्फ बातचीत नहीं, कोई क्रांति करना चाहता हूं। तुम्हारा जीवन आमूल रूप से बदल देना चाहता हूं। तुम्हें एक नये तरह का अनुभव और एक नयी तरह की चेतना, एक

नया निखार देना चाहता हूं। मगर तब तुम्हें प्रामाणिक होना पड़ेगा। दार्शनिक होने से न चलेगा, वैज्ञानिक होना पड़ेगा।

अब मैं भारतीयों को इन चिकित्साओं में नहीं भेजता हूं, तो कुछ भारतीय यह समझते हैं कि हमें इनकी जरूरत ही नहीं है, इसलिये हमें नहीं भेजा जा रहा है, कि हम तो शुद्ध-बुद्ध हैं ही। यह तो पाश्चिमात्य लोगों को जरूरत है। ये हैं भ्रष्ट, इनकी शुद्धि की जरूरत है। हम तो नहाये बैठे हैं। इसलिये हमें नहीं भेजा जा रहा है।

क्षमा करना, यह कारण नहीं है। तुम्हें नहीं भेजा जा रहा है, क्योंकि तुम्हारी अभी वैज्ञानिक उत्सुकता भी नहीं है जीवन को रूपांतरित करने में। तुम लफ्फाजी में पड़े हो, तुम शाब्दिक जाल में पड़े हो। तुम होशियारी की बातें करते हो, तुम चालबाजी की बातें करते हो। तुम्हारे भीतर बड़ा गहरा पाखंड बैठा हुआ है। इसलिये तुम्हें नहीं भेजा जा रहा है। जैसे ही तुम पाखंड छोड़ने लगोगे वैसे ही तुम्हें भी मैं भेजने लगूंगा। जैसे-जैसे तुम्हारी क्षमता बढ़ेगी और तुम साहसी होओगे, तुम्हें भी भेजने लगूंगा। तुम तो अभी बहुत डर जाओगे। अगर किसी को मैं भेज दूं थैरेपी में, तो उसकी पत्नी आ जायेगी कि नहीं, पता नहीं थैरेपी में वह क्या करें!

एक मित्र को सिर में दर्द था सदा से, वर्षों से। उनको मैंने कहा कि तुम शिआत्सु नाम की जापानी मसाज यहां होती है, वह जाकर ले लो। वे लेने गये, उनकी पत्नी भी पहुंच गयी। जो लोग मसाज करते हैं उन्होंने मुझे खबर दी कि उनकी पत्नी की वजह से बड़ी झंझट है, वह वहां खड़ी ही रहती है छाती पर! उसकी पत्नी से पुछवाया। पत्नी ने कहा कि मुझे डर है, क्योंकि मसाज करनेवाली स्त्रियां हैं, तो मैं तो वहां मौजूद रहूंगी। मुझे अपने पति पर भरोसा नहीं है।

मसाज करनेवालों ने मुझे खबर दी कि जब पत्नी नहीं होती तो पति शिथिल होता है, हलका होता है। नब्बे प्रतिशत सिर दर्द तो पत्नी की गैर-मौजूदगी में ऐसे ही चला जाता है। दस ही प्रतिशत बचता है, बचता है वह मसाज से चला जाता है। पत्नी क्या आ जाती है कि तन जाता है पति, एकदम अकड़ जाता।

अब सचाई यह है कि नब्बे प्रतिशत वह पत्नी ही कारण है सिरदर्द का। फिर भी परिणाम हुआ, एक सात दिन की मसाज से, शिआत्सु से जन्म-भर का सिरदर्द चला गया।

अब पत्नी उत्सुक है करवाने को, लेकिन पति राजी नहीं है। क्योंकि मेरी व्यवस्था यह है कि स्त्रियों की मसाज पुरुष करें। पति राजी था, स्त्रियां उसकी मसाज कर रही थीं, उसने कोई इनकार नहीं किया था। लेकिन अब उसकी पत्नी की मसाज कोई पुरुष करे, इससे वह परेशान है। वह यह नहीं चाहता। अब पत्नी आतुर है, उत्सुक है, मगर पति... और पति तो परमात्मा है! पत्नी ज्यादा-से-ज्यादा खड़ी रही छाती पर और कुछ न कर पायी; मसाज तो हो ही गयी, लेकिन पति आज्ञा नहीं दे रहा है।

अब स्त्री और पुरुष के शरीर की ऊर्जाओं के भेद हैं। जब पुरुष स्त्री-शरीर की मसाज करता है, तो ऊर्जा गहरी प्रवेश करती है। क्योंकि पुरुष-ऊर्जा और स्त्री-ऊर्जा का मेल हो जाता है, एक संगीतबद्धता पैदा हो जाती है। अगर स्त्री ही स्त्री की मसाज करे तो उनकी ऊर्जा एक-दूसरे को विकर्षित करती है।

जैसे कि तुम चुंबक को देखते हो, ऋण-चुंबक को ऋण चुंबक के पास ले आओ, तो दोनों दूर हट जाते हैं। ऋण चुंबक के पास धन चुंबक को ले आओ तो दोनों पास आकर जुड़ जाते हैं। ऐसे स्त्री और पुरुष के ऋण और धन विद्युत हैं। उनका ऋण और धन चुंबक है। अगर स्त्री की मसाज पुरुष करे तो ही मसाज गहरी जा सकती है, नहीं तो गहरी नहीं जा सकती। और पुरुष की मसाज स्त्री करे तो ही मसाज गहरी जा सकती है, नहीं तो गहरी नहीं जा सकती। और मसाज इतनी गहरी जा सकती है कि तुम्हारे भीतर के गहरे से गहरे तल में भी जो तनाव हैं उनको मुक्त कर दे।

उन्हीं तनावों के कारण सिरदर्द था, वह सिरदर्द समाप्त हो गया। अब पति को अनुभव भी हो गया है कि मेरी तकलीफ दूर हो गयी। अब पत्नी की कुछ तकलीफें हैं, वे भी दूर हो सकती हैं। मगर पति राजी नहीं है। ऐसी हमारी भारतीय बुद्धि है!

तुम्हें समझ में नहीं आ सकता है कि मैं कैसी विपरीत परिस्थितियों में काम कर रहा हूं। सारी स्थिति विपरीत है। तुम्हारी सारी परंपरा रोग की पक्षपाती है। और तुमने रोग पर इतने रंग चढ़ा दिये हैं कि तुम रोग की पूजा कर रहे हो! और अगर आज उन रोगों को तोड़ा जाये, तो तुम्हारी धारणाएं टूटेंगी, तुम्हारी पुरानी चिंताएं टूटेंगी, तुम्हारी पुरानी परंपराएं टूटेंगी। और वह टूटना थोड़े-से ही साहसी लोग सह सकते हैं। और जो उतनी हिम्मत नहीं रखता, उसके जीवन में कोई सूरज ऊगने वाला नहीं है।

यह जीवन खो जायेगा। यह जीवन सदा खो जाता है। खो जाने के पहले इसे सुलझा लो।

मुझको दुखी किये जाती है!
सब आशाएं सूख चुकी हैं,
उजड़ चुका संसार प्रणय का,
चिता जल चुकी, राख उड़ चुकी,
मातम तक हो चुका हृदय का,
फिर भी एक उमंग न जाने,
क्यों कम्बख्त जिये जाती है!
मुझको दुखी किये जाती है!

मरते-मरते तक तुम किसी एक गहरी वासना में भरे ही रहते हो, वह छूट ही नहीं पाती। और वही वासना तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा उपद्रव है। उसी वासना का नाम कामवासना है। फिर सारी वासनाएं उसी से पैदा होती हैं--शेष वासनाएं--लोभ, क्रोध, सब कामवासना के ही रूप हैं।

लेकिन कामवासना मरते दम तक भरी रहती है। क्योंकि उसे हल करने का तुम्हें कोई मौका ही नहीं मिला। दबाने के तो सब संस्कार मिले हैं। दबाने के लिए तो सब शिक्षा मिली है। बहुत मिले उसकी निंदा करनेवाले, लेकिन उसे समझाने वाला कोई न मिला। दबा-दबाकर बैठे रहे उसकी छाती पर... मगर वह वैसा ही है जैसे कोई ज्वालामुखी के ऊपर बैठा हो। वह बैठा होना बिल्कुल झूठा है। मौत तुम्हें बड़ा उदास करेगी। तुम जिंदगी को बिना जाने गुजर गये।

फैल गयी बालों पर सफेदी, चौंक जरा करवट तो बदल
शाम से गाफिल सोनेवाले देख तो कितनी रात हुई!

रात-ही-रात में बीत रहा है सब। रात-ही-रात में बाल पक जाते हैं। रात-ही-रात में बुढ़ापा आ जाता है, रात-ही-रात में मौत आ जाती है। और तुम जिंदगी के सवाल पूछते ही नहीं। तुम रात में मीठी-मीठी कहानियां सुनना चाहते हो। तुम ऐसी कहानियां सुनना चाहते हो जो तुमको सांत्वना दें।

मैं चाहता हूं कि तुम्हें सत्य मिले, सांत्वना नहीं, संतोष नहीं--सत्य।

अपनी इच्छा के प्रलाप में, हाय, हृदय ने समझ लिया था
प्रेम सत्य है, अविनाशी है, इसको काल नहीं छू सकता!
हाय, अभागा समझ न पाया
यह है आनी-जानी छाया;

आशा छाया, जीवन छाया;

प्यार, दुलार, जवानी छाया;

जो कुछ हमें मिला है वह सब सपना-सा खो जाने को है!

आंखें, हाय, भूल जाने को, पागल दिल सो जाने को है!!

सब मिट जायेगा। इसके पहले कि सब मिट जाये, तुम्हारे भीतर साक्षी का जन्म हो जाना चाहिए। और साक्षी का जन्म जिस भांति हो, उन सारे प्रयोगों से गुजरने की हिम्मत होनी चाहिए। साक्षी जन्म जाये प्रज्ञा, तो तू समझ लेगी बद्धता क्या है, मुमुक्षा क्या है, मुक्ति क्या है, मोक्ष क्या है? बस एक साक्षी के जग जाने से सब समझ में आ जायेगा।

और साक्षी को जगाना हो, तो जीवन के यथार्थ के प्रति जागो। झूठे आकाशीय सपनों, सिद्धांतों में मत उलझे रहो। शास्त्रीय जिज्ञासाएं मत उठाओ, जीवंत जिज्ञासाएं उठाओ। अपनी वास्तविक समस्याएं मेरे सामने रखो। उन्हें सुंदर-सुंदर सिद्धांतों में मत छिपाओ।

मैं तुम्हारे घाव भर सकता हूं, लेकिन तुम फूलों में छिपाओगे उन्हें तो वे कैसे भरेंगे? वे नासूर बन जायेंगे। वे कैंसर भी बन सकते हैं।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

जीवन का शीर्षकः प्रेम

पहला प्रश्नः ओशो, आपका असहाय बालक रोता है।

आज अंतरीये करूं हूं आह्वान, नथी पूजा आयोजन

केवल आ मम तन-मन, तव दर्शन दान।

तरु! उतना काफी है। रो सके कोई, बस प्रार्थना पूरी हो जाती है। आंसुओं पर प्रारंभ है, आंसुओं पर ही अंत। शेष सब फूल पराये हैं, आंसुओं के फूल ही अपने हैं। शेष सब, जो भी आयोजन मनुष्य करता है, स्थूल हैं। स्थूल आयोजन की कोई आवश्यकता नहीं है। सूक्ष्म में भाव उठे, सूक्ष्म में तरंग जगे--आंसुओं में बहे कि गीतों में, नृत्य बने कि संगीत--पर मौलिक बात है अंतर्तम में उठे भाव। भाव उठा कि भक्ति हो गई।

शायद किसी को सुनाई भी न पड़े, जरूरी भी नहीं है कि आंख से आंसू प्रगट ही हों; आंख गीली हो जाये, उतना काफी है। आंख तक आंसू आयें, यह भी जरूरी नहीं है; हृदय गीला हो जाये, उतना काफी है।

हृदय की आद्रता प्रार्थना है।

हरम-ओ-दैर के कत्बे वोह देखे, जिसको फुर्सत है।

यहां हद्दे-नजर तक सिर्फ उनवाने-मुहब्बत है।।

मंदिर-मस्जिदों के शिलालेख वे लोग पढ़ें जिनके पास फिजूल समय है।

हरम-ओ-दैर के कत्बे वोह देखे, जिसको फुर्सत है।

यहां हद्दे-नजर तक सिर्फ उनवाने-मुहब्बत है।।

यहां तो जहां तक दिखाई पड़ता है वहां तक बस प्रेम ही प्रेम है। बस प्रेम ही जीवन का शीर्षक है। सिर्फ उनवाने-मुहब्बत हैः ऐसी भावदशा का नाम प्रार्थना है। फिर न कोई आयोजन करना होता है, न कोई अर्चना करनी होती, न पूजा के थाल सजाने होते हैं।

ये वृक्ष खड़े हैं चुपचाप; यह इनकी प्रार्थना है। पक्षी गाते हैं; वह उनकी प्रार्थना है। आकाश में बादल भटकते हैं; वह उनकी प्रार्थना है। सागर की तरफ दौड़ती हुई नदियां प्रार्थनारत हैं। यह सारा अस्तित्व प्रार्थना में लीन है। आयोजन तो कहीं भी प्रार्थना का नहीं हो रहा; आयोजन तो सिर्फ आदमी करता है और आदमी की भर प्रार्थना झूठी हो जाती है। आदमी मंदिर बनाता है, मूर्ति बनाता है, थाल सजाता है, मंत्र-पाठ करता है; ये सब झूठे हैं। प्रार्थना तो चल ही रही है--इन वृक्षों के सन्नाटे में, इन बूंदों की टपटप में। सारा अस्तित्व प्रार्थना में लीन है। एक आदमी को ही प्रार्थना का आयोजन करना होता है। सारा अस्तित्व प्रार्थना में डूबा ही हुआ है--अहर्निश, दिन और रात, प्रतिपल प्रार्थना चल रही है। परमात्मा में हैं हम, तो प्रार्थना के बाहर कैसे हो सकते हैं?

जो तुम्हें कुछ कहने का भाव आ जाये, कह देना; लेकिन कहने से प्रार्थना का कोई संबंध नहीं है, अनकही भी पूरी हो जाती है। हां, कहने का भाव आ जाये तो दबाना मत, रोकना मत; पीछे चाहे क्षमा मांग लेना परमात्मा से।

बक गया हूं जुनूं में क्या-क्या कुछ

कुछ न समझे खुदा करे कोई

प्रार्थना तो एक मस्ती है, एक जुनून है; लेकिन लोग तो प्रार्थना का कितना क्रियाकांड बना लिये हैं, कितना गणित बिठा लिये हैं! कितनी माला फेरनी, कितने नाम जपने हैं, कितने मंत्र-पाठ करने हैं, किस तरह पानी चढ़ाना--लोगों ने तो इतना हिसाब बना लिया है। हमारे पास एक शब्द हैः कुशल। तुम जानकर हैरान होओगे, "कुशल" शब्द प्रार्थना के तथाकथित शास्त्र से आया है। कुशल उस आदमी को कहते थे जो जंगल से जाकर प्रार्थना के लिये सुंदरतम कुश खोज लाये; जो श्रेष्ठतम कुश खोज लाये, क्योंकि कुशों से फिर पानी ढालेंगे। यह बात इतनी महत्वपूर्ण हो गई इस देश में कि कुश खोज लेने वाले जो व्यक्ति थे, जो कुशल कहलाता था... कुश लाना तो अब रहा नहीं, लेकिन कुशल शब्द शेष रह गया। अब किसी भी काम में जो होशियार है, उसको हम कुशल कहते हैं। किसी भी काम में जो होशियार है, उसको कुशल कहते हैं! लेकिन पैदा हुआ था वह, प्रार्थना का गणित बिठाने में जो कुशल था। उससे उस शब्द की यात्रा शुरू हुई थी।

अब प्रार्थना का कुशलता से कोई भी संबंध नहीं--प्रार्थना का संबंध है निर्दोषता से। कुशल तो कभी प्रार्थना न कर पायेगा, कुशल तो चालबाज है। गणित और परमात्मा का कोई संबंध नहीं जुड़ता। जहां गणित आया, संबंध टूट जाता है। गणित तो लेन-देन की दुनिया की बात है, हिसाब-किताब की दुनिया की बात है।

प्रेम का गणित से क्या लेना-देना है? प्रेम के रास्ते अनूठे हैं।

उनके तसव्वुरात का अल्लाह रे करम।

तनहा न एक लमहे को रहने दिया मुझे।।

उस परमात्मा के प्रेम में जो डुबकी मार लेता है उसका ध्यान सतत भीतर बहता ही रहता है। धुन बंध जाती है। सोओ तो भी धुन बंधी रहती है, टूटती नहीं। जैसे श्वास चलती रहती है ऐसी उसकी धुन चलती रहती है। जस पनिहार धरै सिर गागर! जैसे पनिहारिन सिर पर गागर लेकर चलती है तो हाथ का सहारा भी नहीं देती, सहेलियों से बात करती है, गीत गाती है, गपशप करती है, राह में आ गये लोगों से हंसी-ठिठोली कर लेती है--और चलती जाती है, मगर ध्यान उसका लगा रहता है गागर में! ध्यानपूर्वक सम्हाले रहती है। जैसे मां सोती है, आकाश में बादलों का गर्जन होता रहे, बिजलियां कौंधें, उसे सुनाई नहीं पड़ता, लेकिन उसका बच्चा जरा कुनमुना दे और उसे सुनाई पड़ जाता है। कैसे? ध्यान जुड़ा है! ध्यान का पतला-सा धागा बंधा है। प्रीति का धागा बड़ा सूक्ष्म है, लेकिन उतना काफी है।

उनके तसव्वुरात का अल्लाह रे करम! प्रभु के ध्यान की धारा बहती ही रहती है, यह भी उसकी अनुकंपा है। तनहा न एक लमहे को रहने दिया मुझे! एक क्षण को भी परमात्मा मुझे अकेला नहीं रहने देता; उसका ध्यान बंधा ही रहता है। और फिर ध्यान बंध जाये तो नर्क भी स्वर्ग है। फिर तुम्हें कोई नर्क नहीं भेज सकता। फिर तो नर्क में भी उसका ध्यान बंधा रहेगा। फिर तो विरह की रात्रि भी मिलन की रात्रि है, सुहागरात है। फिर तुम्हें उससे कोई दूर कर ही नहीं सकता, कोई उपाय ही नहीं है। मौत भी विदा न करेगी, क्योंकि मौत में भी ध्यान बंधा ही रहेगा।

शबे-हिजरां की सख्ती हो तो हो, लेकिन यह क्या कम है।

कि लब पै रातभर रह-रह के तेरा नाम आयेगा।।

फिर कितनी ही विरह की रात्रि लंबी हो, क्या फर्क पड़ता है? शबे-हिजरां की सख्ती हो तो हो! फिर विरह की कितनी ही चोट पड़ती रहे, क्या फिकिर? लेकिन यह क्या कम है कि लब पै रात-भर रह-रह के तेरा

नाम आयेगा। हो जाये लंबी रात विरह की, चिंता नहीं और हो जाये कठोर विरह की चोट, चिंता नहीं। जितनी होगी रात लंबी उतनी ही तेरी याद गहन होती जायेगी।

इंसान मुसीबत में हिम्मत न अगर हारे।

आसां से वो आसां है, मुश्किल से जो मुश्किल है।।

दुनिया की तरक्की है इस राज से बाबस्ता।

इंसान के कब्जे में सब कुछ है अगर दिल है।।

बस एक ही बात कर लेने की है कि तुम्हारा दिल उसके साथ धड़कने लगे, फिर नहीं कोई जरूरत है फिर किसी व्यवस्था-आयोजन की। इंसान मुसीबत में हिम्मत न अगर हारे। और यही मुसीबत का क्षण है, जबकि हम संबंध जोड़ नहीं पाते, जबकि हृदय उसके साथ धड़क नहीं पाता, जबकि हम दूर-दूर पड़ जाते हैं।

इंसान मुसीबत में हिम्मत न अगर हारे।

आसां से वो आसां है, मुश्किल से जो मुश्किल है।।

मुश्किल से मुश्किल बात जो है इस जगत में, वह परमात्मा से संबंध जोड़ना है। लेकिन वही सबसे आसान से आसान बात हो जाती है। बस एक ही बात कर लेनी हैः तुम्हारी धड़कनों में बस जाये वह।

कोई मुझे झंझोड़ रहा है!

उड़ने को प्राणों का पंछी

पिंजरे में सिर फोड़ रहा है!!

पिछली रात, फुहार, चांदनी,

हवा स्वप्न-से घोल रही है;

दूर कहीं अनुरागमयी--

अध-जगी फाख्ता बोल रही है,

घायल पंछी-सा कुछ मेरी

छाती में दम तोड़ रहा है!

कोई मुझे झंझोड़ रहा है!!

झंझोड़ने लगे उसकी याद तुम्हें, जैसे घायल पंछी फड़फड़ाने लगे पर--उड़ने को आतुर हो जाये पिंजड़े के बाहर!

कोई मुझे झंझोड़ रहा है!!

उड़ने को प्राणों का पंछी

पिंजरे में सिर फोड़ रहा है!!

बस प्रार्थना हो गई! यह भाव जगा कि मुक्त हो जाऊं, कि सारे बंधन तोड़ दूं--कि टूटना शुरू हो गये!

पिछली रात, फुहार, चांदनी,

हवा स्वप्न से घोल रही है;

दूर कहीं अनुरागमयी--

अध-जगी फाख्ता बोल रही है,

घायल पंछी-सा कुछ मेरी

छाती में दम तोड़ रहा है!

कोई मुझे झंझोड़ रहा है!!

उड़ने को प्राणों का पंछी

पिंजरे में सिर फोड़ रहा है!!

न तो मंदिर जाओ, न मस्जिद, न गुरुद्वारा। जहां बैठ जाओ वहीं मंदिर बन जाये, वही मस्जिद हो जाये, वही गुरुद्वारा। बस हृदय में याद को जगाओ।

गाता हूं नित सांझ सकारे!

तुम्हें देखने को अधीर जब

मैं निर्वासित हो जाता हूं,

संगीहीन अंधेरे के आकुल

क्रंदन में खो जाता हूं;

अपने प्यासे गीतों के तब

गीले अंचल फैलाता हूं,

इस आशा में, हाय, कि छू लूं

इन से ही प्रिय चरण तुम्हारे!

गाता हूं नित सांझ सकारे!!

गाओ! गुनगुनाओ! रोओ! नाचो!

गाता हूं नित सांझ सकारे!!

तुम्हें देखने को अधीर जब

मैं निर्वासित हो जाता हूं,

संगीहीन अंधेरे के आकुल

क्रंदन में खो जाता हूं;

अपने प्यासे गीतों के तब

गीले अंचल फैलाता हूं!

बस इतना पर्याप्त है। तुम्हारी प्यास से गीला आंचल हो, तुम्हारे आंसुओं की अंजली तुम्हारे आंचल में हो--बस पर्याप्त है। सब हो गया--सारी पूजा, सारी अर्चना सध गई। फिर न हो मंत्र, चलेगा; न हो शास्त्र, चलेगा; न हो मूर्ति, चलेगा। फिर कोई और आरती नहीं सजानी; हृदय का दीया जल जाये।

और फिर तुम्हें दोहरा दूंः यह सारा अस्तित्व प्रार्थनामय है, सिर्फ मनुष्य को छोड़कर। सिर्फ मनुष्य ही है जो पूछता हैः प्रार्थना कैसे करें? सारा अस्तित्व प्रार्थना कर रहा है। तुम जरा आंख खोलकर तो देखो! पहाड़ प्रार्थना में लीन हैं। आकाश प्रार्थना से भरा है। सागर प्रार्थना की ही गुंजार कर रहे हैं। सिर्फ आदमी पूछता हैः कैसे प्रार्थना करें? और "कैसे" में ही चूक हो जाती है। "कैसे" की कोई बात नहीं है।

कलियों में मुस्का-मुस्का कर

अलबेली सुकुमार मालती,
निज सौरभ के प्रेम-संदेसे
भेज भ्रमर से प्रीति पालती!

गेहविहीना कोकिल का रव
देख विजन कानन में रोता,
आम्रमंजरी सिहर-सिहर कर
देती आतुर प्रेम संदेसा!

रजनी अंचल में मुख ढक कर
स्वप्न विधुर प्रणयातुर अंबर,
अश्रुकणों में बिखरा जाता
प्रेम-संदेसे अवनि-वक्ष पर,

खद्योतों के छिन्न हार में
प्रेम-संदेसे गूंथ-गूंथ कर,
चक्रवाक का क्रंदन ले निशि--
ऊषा का अंचल देती भर!

आम्रमंजरी सिहर-सिहर कर
देती आतुर प्रेम संदेसा।
गेहविहीना कोकिल का रव
देख विजन कानन में रोता।

चारों तरफ चाहे कोकिल का क्रंदन हो और चाहे आम्रमंजरी से उठती हुई सुवास हो, यह सभी प्रभु-चरणों में समर्पित है। यह सभी उस प्यारे को पुकारा जा रहा है।

कलियों में मुस्का-मुस्का कर
अलबेली सुकुमार मालती,
निज सौरभ के प्रेम-संदेसे
भेज भ्रमर से प्रीति पालती!

यह जो मालती और भ्रमर के बीच घटना घट रही है, यह भक्त और भगवान के बीच घटी घटना का ही एक रूप है।

गेहविहीना कोकिल का रव
देख विजन कानन में रोता,
आम्रमंजरी सिहर-सिहर कर
देती आतुर प्रेम संदेसा!

ये सब प्रीति की ही अलग-अलग भाव-भंगिमायें हैं। लेकिन मनुष्य को एक गलत बात सिखाई गई है कि प्रेम और प्रार्थना विपरीत हैं। इससे ही अड़चन हो गई है। इससे तुम पूछते होः प्रार्थना कैसे करें? और तुम सब जानते हो कि प्रेम कैसे करें। मगर पंडितों ने समझाया है कि "प्रार्थना अलग ही बात है; अलग ही नहीं, उल्टी बात है। प्रेम छोड़ोगे तो प्रार्थना होगी।" बस यहीं चूक हो गई। यहीं से मनुष्य का भटकाव शुरू हुआ। अब मनुष्य लाख उपाय करे, समझ में नहीं आता कि प्रार्थना कैसे करूं।

प्रार्थना प्रेम का ही निखार है। प्रार्थना प्रेम पर ही रखी गई धार है। प्रार्थना... अगर प्रेम फूल है तो प्रार्थना सुवास है। और अगर प्रेम दीया है तो प्रार्थना ज्योति है।

एक बात तुम्हारे मन में साफ हो जाये कि प्रेम ही प्रार्थना है, फिर अड़चन न रह जायेगी। तुमने अपनी पत्नी को चाहा, वह भी प्रार्थना का एक ढंग है। और तुमने अपने बेटे को चाहा, वह भी प्रार्थना का एक ढंग है। और तुमने अपनी मां को चाहा, वह भी प्रार्थना का एक ढंग है। और तुमने अपने मित्र को चाहा, वह भी प्रार्थना का एक ढंग है। यद्यपि बहुत दूर उठना है प्रार्थना को अभी; जैसे बीज से सुगंध दूर है, ऐसे ही तुम्हारे प्रेम से प्रार्थना दूर है। मगर बीज में ही छिपी है। अभी बीज टूटे, अंकुर बने, वृक्ष हो, वर्षों लगेंगे, फिर फूल खिलेंगे, फिर सुवास उठेगी--मगर बीज में सुवास छिपी थी!

कीचड़ में कमल छिपा है। और जिन्होंने कीचड़ का इनकार कर दिया, वे कमल से वंचित रह जायेंगे। कीचड़ का त्याग कर दिया, फिर वे पूछेंगेः कमल कहां से लायें? और फिर कमल उन्हें मिलेगा नहीं। फिर वे झूठे कमल बनायेंगे। फिर वे कमल की तस्वीरों की पूजा करेंगे।

परमात्मा के नाम पर तस्वीरों और मूर्तियों की पूजा हो रही है और परमात्मा चारों तरफ मौजूद है--कहीं तुम्हारे बेटे की शकल में, कहीं तुम्हारे पति की शकल में, कहीं तुम्हारे भाई की शकल में, कहीं तुम्हारे मित्र, पड़ोसी की शकल में! परमात्मा सब तरफ मौजूद है। तुम अपने प्रेम को सब दिशाओं से प्रार्थना में रूपांतरित करो। प्रेम की सब धारायें प्रार्थना के सागर में गिरने दो। फिर अड़चन नहीं रह जाती।

तरु! कुछ और आवश्यक नहीं है। तूने पूछाः "आपका असहाय बालक रोता है।"

बस पर्याप्त है। असहाय होने का भाव और असहाय अवस्था से उठा रुदनः प्रार्थना पूरी हो गई। इसके पार और कोई प्रार्थना न है, न आवश्यक है।

दूसरा प्रश्नः मनुष्य या तो काम-भोग की अति में चला जाता है या फिर उसके विपरीत काम-दमन की कुंठा में। इस विषय में सहज-योग की दृष्टि क्या है--इसे हमें समझाने की कृपा करें।

योग चिन्मय! मनुष्य के संबंध में क्यों पूछते हो? मनुष्य यानी कौन? मनुष्य को कहां खोजोगे? मनुष्य तो केवल एक हवाई शब्द है। कहीं राम मिलेगा, कहीं रहीम मिलेगा, मनुष्य कहीं भी न मिलेगा। कहीं अ, कहीं ब, कहीं स; मनुष्य कहीं भी नहीं मिलेगा। मनुष्य तो एक कल्पित शब्द है। और जब भी हम कल्पित शब्दों के संबंध में प्रश्न पूछने लगते हैं तब यथार्थ से दूर हो जाते हैं।

मनुष्य के संबंध में न पूछो, स्वयं के संबंध में पूछो। क्यों पूछते हो मनुष्य या तो काम-भोग की अति में चला जाता है या फिर इसके विपरीत काम-दमन की कुंठा में? जैसे कि यह तुम्हारा प्रश्न नहीं है! पूछ रहे हो किसी मनुष्य के संबंध में; इससे तुम्हारा कोई लेना-देना नहीं है! पूछने के लिए पूछ लिया है। तो अगर पूछने के

लिए पूछ लिया है--व्यर्थ है; और या फिर तुम्हारा प्रश्न है। तो सीधा पूछना चाहिये कि क्यों मैं काम-भोग की अति में चला जाता हूं या फिर इसके विपरीत काम-दमन की कुंठा में?

प्रश्न तुम्हारा होना चाहिये, तो ही तो तुम्हें उत्तर दे सकूं; नहीं तो मिलेगा जब यह मनुष्य मुझे तब इसे उत्तर दे दूंगा। यह तुम्हारा प्रश्न तो है नहीं।

ख्याल रखोः प्रश्नों को जितना यथार्थ बना सको उतना अच्छा है। और प्रश्न तुम्हारे होने चाहिये। तुम्हें क्या चिंता मनुष्य की? मनुष्य से तुम्हें लेना-देना क्या है? पड़ने दो मनुष्य को काम-दमन में या काम-भोग में, तुम्हारा क्या प्रयोजन है? तुम तो बाहर हो! तुम तो इस झंझट में नहीं हो! यह तुम्हारी पीड़ा तो नहीं है। तुम चिकित्सक के पास यह तो जाकर नहीं पूछतेः मनुष्य को टी.बी. क्यों हो जाती है, कि मनुष्य को ऐसा क्यों हो जाता है वैसा क्यों हो जाता है? कि क्या करें कि मनुष्य को टी.बी. न हो? चिकित्सक भी थोड़ा हैरान होगा। पूछेगाः मनुष्य कहां है? किस मनुष्य की बात कर रहे हो? तुम्हें कोई तकलीफ हो तो उसका उपचार हो सके, तो निदान हो सके, चिकित्सा हो सके, विश्लेषण हो सके। मगर मनुष्य... मनुष्य कहीं भी नहीं है।

मनुष्य तो एक तरकीब है आदमी की। जो बात हम सहज अपने संबंध में नहीं पूछना चाहते, वह हम मनुष्य के संबंध में पूछते हैं। जिन बातों को हम टालना चाहते हैं... ।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैंः "हमें मनुष्यता से बहुत प्रेम है।" मनुष्यता से! मनुष्यता को कैसे आलिंगन करोगे? मनुष्यता का हाथ में हाथ कैसे पकड़ोगे? मनुष्यता से प्रेम बड़ी होशियार तरकीब है, बड़ी चालबाज बात हो गई यह। मनुष्य जो तुम्हारे पड़ोस में रहता है, उससे नहीं है; मनुष्य जो तुम्हारे घर में रहते हैं, उनसे नहीं है--मनुष्यता! मनुष्यता से प्रेम के नाम पर तुम चाहो तो जितने मनुष्यों की हत्या करना चाहो कर सकते हो। यही हुआ है सदियों में।

लोग धर्म के नाम पर आदमी को मार रहे हैं। मनुष्यता के नाम पर आदमी को मार रहे हैं। शांति के नाम पर, स्वतंत्रता के नाम पर, लोकतंत्र के नाम पर, साम्यवाद के नाम पर। नामों के बहाने हैं। और नाम इतने ऊंचे हैं कि लगता है कि अगर लाख-दो लाख आदमी मर भी गये इतनी ऊंची बात में, तो हर्ज क्या है?

अडोल्फ हिटलर आसानी से तो नहीं मार सका लाखों लोगों को, मगर एक बड़ा शब्द, सिद्धांत, उसके नाम पर मार सका। स्टेलिन लाखों लोगों की हत्या कर सकता था। एक आदमी की हत्या भी बिना कारण करोगे तो तुम्हें पीड़ा होगी। लेकिन मजे से कर सका... साम्यवाद!

दुनिया के धर्मों ने इतनी हत्या की है जमीन पर कि सारी जमीन लाशों से भर दी है, लहू-लुहान सारा मनुष्य का इतिहास कर दिया है। धर्मों ने, जिनसे शांति की अपेक्षा होती है... मगर ऊंचे शब्द! ऊंचे शब्दों में यथार्थ छिप जाते हैं। शब्द परदे बन जाते हैं।

चिन्मय, यह तुम्हारा प्रश्न है। पूछना चाहिए सीधा-सीधा, ईमानदारी से कि "मैं काम-भोग की अति में चला जाता हूं या फिर इसके विपरीत काम-दमन की कुंठा में।" तब कुछ आसान बात हो जायेगी। तब कहीं से शुरू किया जा सके। तब कुछ उपचार हो सके। और इस सब की जड़ में काम-दमन है। इन दोनों की जड़ों में--काम की अति और काम-दमन की कुंठा दोनों की जड़ों में--काम-दमन है।

पशु-पक्षी कोई भी अति काम में नहीं जाते। यह होता ही नहीं। क्यों? क्योंकि मौलिक दुर्घटना अभी नहीं घटी। किसी ने उन्हें काम के विपरीत नहीं समझाया है इसलिये काम को दबाया नहीं है। काम को दबाओ कि काम की ऊर्जा इकट्ठी होती है। जिस चीज को भी दबाओगे उस की ऊर्जा इकट्ठी होती चली जाती है। जैसे कि केतली को चढ़ा दिया तुमने चूल्हे पर और चाय होने लगी गरम और अब केतली में भाप इकट्ठी होने लगी, और

उसके ढक्कन को दबाये चले जाओ, कहीं से भी भाप निकलने न दो तो दुर्घटना होगी, विस्फोट होगा। किसी की हत्या भी हो सकती है। घर में आग भी लग सकती है। जो आसपास हैं, खतरनाक है वह केतली उनके लिये, उनका जीवन भी ले सकती है।

रोज तुम जीवन-ऊर्जा पैदा कर रहे हो। फिर उस जीवन-ऊर्जा को दबाने का आयोजन चल रहा है। भाप केतली में पैदा हो रही है और भाप को दबाने की कोशिश चल रही है। कब तक दबाओगे? एक सीमा आ जायेगी कि दबा न सकोगे। जब दबा न सकोगे, पेन्डुलम घूम जायेगा दूसरी अति पर। फिर एकदम से तुम पागल की तरह काम-भोग में लग जाओगे। फिर जब काम-भोग में पागल की तरह लगोगे तो जल्दी ही टूट जाओगे, जल्दी ही विषादग्रस्त हो जाओगे। चित्त खिन्न हो जायेगा। उदासी छा जायेगी। लगेगा सब असार है। चित्त में इतनी असारता मालूम होगी, इतनी व्यर्थता मालूम होगी काम की, कि फिर तुम दमन में लग जाओगे कि चलो वापिस। बस अब सिलसिला जारी रहेगा। यह तुम्हारे जीवन-भर जारी रहेगा। लेकिन शुरुआत दमन से होती है। अगर दमन का भाव चला जाये तो अति अपने-आप विदा हो जाती है।

कामवासना का दमन नहीं करना है, कामवासना को ऊर्ध्वरेतस बनाना है। ऊर्जा तो है; अगर तुमने दबाया तो विस्फोट होगा। इसलिये ऊर्जा का कोई सृजनात्मक उपयोग करना जरूरी है। और दबाने वाले सृजनात्मक उपयोग नहीं करते। तुम जानकर चकित होओगे कि अगर तुम संगीत में डूब जाओ, अगर तुम एक दो घंटे वीणा बजा लो हृदयपूर्वक, तो तुम्हारे मन में दिनों तक कामवासना पैदा नहीं होगी। क्योंकि जो ऊर्जा कामवासना में पैदा होती थी वह संगीत बनकर प्रगट हो गई। अगर तुम चित्र बनाओ या मूर्ति गढ़ो, अगर तुम किसी भी ऐसे कार्य में अपने को पूरा संलग्न कर दो कि उसको करते समय भूलना हो जाये अहंकार का, बिल्कुल भूलना हो जाये... ।

यह सूत्र समझना। कामवासना में भी जो रस मिलता है थोड़े से क्षण-भर को, वह अहंकार को भूलने के कारण मिलता है। सूत्र हैः अहंकार का भूलना। अहंकार बोझ है। अहंकार झूठ है--बड़े से बड़ा झूठ। उसको खींचने में बड़ी तकलीफ हो रही है। उसको बनाये रखने में पीड़ा हो रही है। उसे भुलाना चाहता है आदमी कभी-कभी, तो कभी शराब पीकर भुलाता है, कभी कामवासना में उतरकर भुलाता है। कोई रास्ते खोजता है कि किसी तरह यह भूल जाये। मगर यह भुलाव क्षण-भर को होता है, फिर याद आयेगी।

जो व्यक्ति जीवन को सृजनात्मक बना लेता है... फिर सृजन किस बात का, इससे भेद नहीं पड़ता--तुम चाहे भोजन ही पकाओ, लेकिन भोजन पकाना सिर्फ काम न हो, सृजनात्मक हो। तुम उसमें अपने को पूरा डुबा दो। तुम अपने को विस्मृत कर दो। कोई भी ऐसा काम तुम्हारे जीवन में चाहिए, जिसमें तुम अपने को विस्मरण कर पाओ। और जैसे-जैसे यह काम की गहराई बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे कामवासना अपने-आप क्षीण होती जाएगी और तुम्हारे भीतर ऊर्ध्वगमन शुरू हो जाएगा।

अगर कोई व्यक्ति गीत गा सके, नाच सके, सितार बजा सके, कि बांसुरी बजा सके कि कोई भी कार्य कर सके ऐसा कि जिसमें घंटों बीत जायें और अपना होश न आए, अहंकार निर्मित न हो, तो महीनों तक के लिए कामवासना विदा हो जाएगी। और एक बार तुम्हें यह सूत्र हाथ में लग जाए तो तुम चकित हो जाओगे कि कामवासना कोई पाप नहीं है--तुम्हारे भीतर ऊर्जा है, महत ऊर्जा है, जिससे बहुत कुछ पैदा हो सकता है। इस जगत में जो भी सुंदर हुआ है पैदा, फिर चाहे वह ताजमहल हो, चाहे खजुराहो के मंदिर हों, चाहे अजंता-एलोरा की गुफायें हों... !

तुम्हें पता है कि अजंता-एलोरा की गुफाएं बौद्ध भिक्षुओं ने बनाई हैं! तल्लीन हो गए होंगे। खजुराहो, कोणार्क, पुरी, भुवनेश्वर के मंदिर तंत्र-साधकों ने बनाए हैं, सहज-यानियों ने बनाए। डूब गए होंगे। वर्षों लगे होंगे। जीवन पर जीवन लग गए होंगे। एक पीढ़ी में भी नहीं बना पाए होंगे, अनेक पीढ़ियां लग गई होंगी तांत्रिकों की। मगर डूबे रहे, रसलीन! और उसी रसलीनता में कामवासना से मुक्त हो गए।

ताजमहल सूफी फकीरों की कल्पना है। बनवाया तो एक सम्राट ने, मगर जिन्होंने योजना दी, वे सूफी फकीर हैं। जिन्होंने निर्माण किया, वे भी सूफी फकीर हैं। इसलिए ताजमहल को अगर तुम पूर्णिमा की रात घड़ी-दो-घड़ी शांत बैठकर देखते रहो तो अपूर्व ध्यान लग जायेगा। सूफियों के हस्ताक्षर हैं उस पर। आकृति ऐसी है कि डुबा दे ध्यान में।

लाखों बुद्ध की प्रतिमायें बनीं, किसने बनाईं? यह दुकानदारों का काम नहीं है। यह तकनीशियनों का काम भी नहीं है। ऐसी प्रतिमायें बुद्ध की बनीं कि जिनके पास बैठ जाओ... पत्थर हैं, मगर पत्थर में इतना भर दिया, पत्थर में ऐसी आकृति दी, ऐसा रंग दिया, ऐसा रूप दिया, ऐसा भाव दिया, कि पत्थर के पास भी बैठ जाओ तो तुम्हारे भीतर कुछ थिर हो जाए।

चीन में एक मंदिर है--दस हजार बुद्धों का मंदिर। उसमें दस हजार बुद्ध की प्रतिमायें हैं। सदियों में बना। भिक्षु बनाते ही रहे, बनाते ही रहे, बनाते ही रहे। यह काम-ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन है।

लेकिन इस देश में एक भ्रांति फैल गई कि संन्यासी को कुछ करना नहीं चाहिए, उसे कुछ निर्माण भी नहीं करना चाहिए। संन्यासी का तो कुल काम इतना है कि वह सेवा ले, लोगों से सेवा ले, खुद कुछ भी न करे। लोग उसके पैर दबायें बस इतनी ही उसकी कृपा बहुत है। ये संन्यासी कामवासना को न दबायेंगे तो क्या करेंगे? और जब कामवासना दबायेंगे तो आज नहीं कल फूटेगी, पीछे के दरवाजों से निकलेगी।

योग चिन्मय के मन में इस पुराने संन्यास से छुटकारा नहीं होता। यहां भी वह काम में लगे हैं, मगर डूबते नहीं हैं। घड़ी देखकर काम करते हैं। यहां जो डूबे हैं उनको घड़ी की कोई चिंता नहीं रह गई है। ... काम ऐसा करते हैं कि करना पड़ रहा है, मजबूरी है। आश्रम के हिस्से हैं तो कुछ काम करना पड़ेगा; लेकिन ऐसा नहीं है कि डूब जायें, कि न दिन देखें न रात, कि काम का रस हो, कि काम एक सृजनात्मकता, कि जो भी करने को दिया गया है वह तुम्हारी साधना है। इस तरह नहीं। साधना की तरह नहीं कर पा रहे हैं। वह पुराना जो भारतीय मानस है कि संन्यासी को तो बस ध्यान इत्यादि कर लिया बहुत, कि थोड़ा योगासन इत्यादि कर लिए बहुत, बस पर्याप्त हो गया।

फिर ऊर्जा इकट्ठी होगी। फिर इस ऊर्जा का क्या करोगे? फिर अड़चन आयेगी। अगर कामवासना में डूबोगे तो अति हो जाएगी। अति होती ही तब है जब किसी चीज का दमन हो गया हो। जैसे किसी ने कुछ दिन उपवास किया हो, फिर भोजन शुरू करेगा तो अति होगी। वह ज्यादा भोजन करेगा। लेकिन जो आदमी रोज सम्यक भोजन करता रहा है, वह अति नहीं करेगा। अति की कोई जरूरत नहीं है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि छोटे बच्चे भी, अगर उनको शक हो कि मां समय पर भोजन देगी कि नहीं देगी, तो अति कर देते हैं, ज्यादा दूध पी जाते हैं, ज्यादा खाना खा लेते हैं। लेकिन अगर पक्का भरोसा होता है बच्चे को कि समय पर भोजन मिलेगा, जब जरूरत होगी तब मिलेगा, तो ज्यादा खाना तो दूर, वह खाने की फिकिर ही छोड़ देता है, कि जब जरूरत होगी तब। मां उसके पीछे फिरती है कि थोड़ा खाना खा ले, मगर उसे कोई फिकिर नहीं, क्योंकि आश्वस्त है।

तुम जानकर चकित होओगे कि समृद्ध घरों के बच्चों के पेट बड़े नहीं पाओगे, लेकिन गरीब घर के बच्चों के पेट बड़े पाओगे। क्यों? गरीब घर के बच्चों के पेट तो बिल्कुल सिकुड़े होने चाहिए, बड़े नहीं होने चाहिए। लेकिन गरीब घर के बच्चे ज्यादा खाना खा जाते हैं। वह गरीबी का लक्षण है--वह जो बड़ा पेट है। वह बता रहा है कि पता नहीं कल भोजन मिले कि नहीं; सांझ भोजन मिले कि नहीं; अभी जब मिला है तो जितना करना है कर लो। वह अति कर रहा है। वह भूख का लक्षण है।

अति हो जाती है दमन से। तो एक दफा अगर तुमने कामवासना को दबाया... और दबाओगे नहीं तो क्या करोगे, क्योंकि कहीं सृजनात्मक किसी कृत्य में उसे लगाना नहीं है, सृजनात्मक होना नहीं है। तो इकट्ठी होती जायेगी। फिर एकदम से अति होगी। विक्षिप्त ढंग से अति होगी। और जब अति होगी तो थकोगे। अति होगी तो ऊर्जा अकारण बहेगी। अति होगी तो पीछे तुम खाली रह जाओगे, रिक्त, थोथे, चली हुई कारतूस जैसे। फिर मन में विषाद पकड़ेगा। फिर वे पुरानी भारतीय धारणायें फिर जोर मारेंगी कि देखो ऋषि-मुनि कह गये हैं कि कामवासना से बचना; नहीं बचे, अब भोगो। अब बिल्कुल हो गए खाली, अब रिक्त; अब जीवन बिल्कुल बेस्वाद मालूम पड़ता है। ऋषि-मुनि ठीक कहते थे।

फिर इकट्ठी करोगे। और जब ऊर्जा बहुत बढ़ जाएगी तब मन कहेगा कि यह तुम क्या कर रहे हो? अब यह केतली फूटने के करीब आ रही है। अब फ्रायड और जुंग और एडलर ठीक कहते हैं कि कामवासना का निष्कासन होना चाहिए, निकास होना चाहिए। तो अब करो निकास। जब कामवासना दबा लोगे तो जुंग, फ्रायड और एडलर याद आयेंगे और जब कामवासना अतिशय से बह जाएगी तब सब ऋषि-मुनि तुम्हें याद आयेंगे। अब तुम फंस गए एक द्वंद्व में। अब इस द्वंद्व से तुम्हारा बाहर होना मुश्किल हो जाएगा।

इस आश्रम के जो अंतःनिवासी हैं उनके लिए मैं फिक्र कर रहा हूं यही कि उनका सारा जीवन एक सृजनात्मक जीवन बन जाए। संन्यासी बहुत दिन जी लिया असृजनात्मक ढंग से। उसकी आदत खराब हो गई है। वह काहिल, सुस्त, अपाहिज हो गया है। कुछ करना ही भूल गया वह। खाली बैठे रहना और व्यर्थ की बातें करते रहना--ब्रह्मचर्चा इत्यादि--वही उसका काम हो गया है। उस कारण वह अड़चन में पड़ा है।

मगर चिन्मय को समझ नहीं आ रही। इतने दिन यहां रहकर भी जो थोड़े-से लोग काम में पूरी तरह नहीं डूबे हैं, उनमें से वह अग्रणीय हैं।

फिर ये उलझाव खड़े होते रहेंगे और सीधा पूछोगे नहीं; पूछोगे कि मनुष्य... अब मनुष्य को क्या उत्तर दिया जाए? कौन है मनुष्य? उसके बाबत जानकारी होनी चाहिए, तभी उत्तर दिया जा सकता है। मैं जो भी उत्तर दे रहा हूं वे उत्तर तभी सार्थक होंगे जब उन उत्तरों को किसको दिया गया है तुम्हें याद हो, नहीं तो अड़चन होगी। ये उत्तर हवा में नहीं दिये जा रहे हैं। ये कोरे थोथे उत्तर नहीं हैं। इनका संदर्भ है।

और तुमने पूछा कि इस विषय में सहज-योग की दृष्टि क्या है? जहां दृष्टि होगी वहां असहज हो जाती है बात। सहज-योग की कोई दृष्टि नहीं है। दृष्टि का मतलब ही हैः असहज। सहज-योग तो कहता हैः जैसे हो ठीक हो। प्राकृतिक हो, बिल्कुल ठीक हो। नैसर्गिक हो, बिल्कुल ठीक हो। जब भूख लगे भोजन कर लेना और जब नींद आए तो सो जाना।

सहज-योग की कोई दृष्टि नहीं है, यही तो उसकी सहजता है। जब दृष्टि आती है, अड़चन शुरू हो जाती है। अभी भी तुम दृष्टि पूछ रहे हो। तुम पूछ रहे हो कि बता दें दृष्टि--"दबायें कि भोगें? सहज-योग की क्या दृष्टि है?" अब दो ही दृष्टियां हो सकती हैं--या तो दबाओ या भोगो। सहज-योग की कोई दृष्टि नहीं है। इसलिए न दबाने का सवाल है न भोगने का सवाल है। जो सहज तुम्हारे भीतर उठे उसे जियो, स्वीकार करो, अंगीकार करो। जो

भी उठे बेशर्त अंगीकार करो। दृष्टि को लाने का मतलब ही यह होता है कि तुमने स्वभाव के ऊपर सिद्धांत लादना शुरू कर दिया।

कोई पशु-पक्षी नहीं पूछता कि दृष्टि क्या है। मगर तुम देखते हो पशु-पक्षियों को, कितने सुंदर हैं, कितने सम्यक हैं, कितने स्वाभाविक हैं!

एक महाकवि वाल्ट विटमेन ने जंगल में पशु-पक्षियों को देखकर एक कविता लिखी। उस कविता में लिखा कि इन पशु-पक्षियों को देखकर मैं ईर्ष्या से भर गया हूं--इतने सहज, इतने सुंदर, इतने समतुल, इतने संगीतपूर्ण! जरा भी अति नहीं! इतनी सहजता!

अब तुम थोड़ा सोचो कि यह कैसी मनुष्य की दयनीय अवस्था है! मनुष्य के पास चेतना है, इस जगत में सर्वाधिक बोध है--और पशु-पक्षियों से ईर्ष्या करने की हालत आ गई है, कि मन होता है कि पशु-पक्षी ही होते तो अच्छा था! यह हालत कैसे पैदा हो गई? यह किसने पैदा करवा दी? ये कौन हैं लोग जिन्होंने आदमी के मन में जहर घोल दिया?

और मैं तुम्हें याद दिलाऊं कि ये तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु तुम्हारे मन में जहर घोलने का कारण हैं। मगर तुम तो उनकी बातों को अमृत मानकर बैठे हो। तुम तो पंडित-पुरोहितों के पीछे अंधे की तरह चले जा रहे हो--अंधों के पीछे अंधे!

सहज-योग की कोई दृष्टि नहीं है। यही तो सहज का अर्थ होता हैः कोई दृष्टि नहीं! जो स्वाभाविक है, सुंदर है, स्वीकार है, स्वागत-योग्य है। जब जो तुम्हारे भीतर उठता हो उसे चुपचाप अंगीकार करना; दृष्टि लाये तो अड़चन आएगी। दृष्टि कहेगीः यह ठीक नहीं है, मत करो। यह ठीक है, इसे जरा ज्यादा करो। यह गलत है, इससे बचो।

सहज-योग कहता हैः जो है जैसा है--परमात्मा का दान है, परमात्मा की देन है, परमात्मा की भेंट है। तुम उसे अंगीकार करो।

तुम बहुत डरोगे। तुम्हारा डर आयेगा--तुम्हारी दमन की धारणाओं के कारण--कि इसमें तो खतरा है, इसमें कहीं अति न हो जाये! अति से बचने का यही उपाय हैः होगी अति कुछ दिन, शुरू-शुरू में अति होगी, मगर उसका जुम्मा सहज-योग का नहीं है, उसका जुम्मा तुम्हारे दमन करवाने वाले लोगों का है। शुरू-शुरू में अति होगी। कुछ दिन तक अति होने देना, ठीक है।

किसी शाखा को पकड़कर अगर वृक्ष की तुम नीचे झुका लो और फिर छोड़ो तो शाखा थोड़ी देर तक कंपेगी, कंपती रहेगी; मगर हर कंपन के साथ कंपन छोटा होता जायेगा। पहले बहुत बड़े-बड़े झोले लेगी, हिचकोले लेगी; फिर छोटे झोले लेगी; फिर और छोटे; फिर और छोटे; फिर और छोटे। धीरे-धीरे धीरे-धीरे एक घड़ी आयेगी, तुम पाओगेः शाखा अपनी सम अवस्था में आ गई है।

ऐसी ही चित्त की दशा है। तुम्हारा चित्त खूब खींचा-ताना गया है, इधर खींचो उधर खींचो। तुम्हारे भीतर बड़े कंपन पैदा हो गये हैं। तो जब छोड़ दोगे सब खींचना, तो थोड़ी देर तक तो कंपन जारी रहेंगे, क्योंकि अनंत-अनंत जन्मों से तुम्हारे चित्त पर गलत संस्कार हैं।

सभी संस्कार गलत होते हैं। संस्कार मात्र गलत होते हैं। सभी दृष्टियां गलत होती हैं। दृष्टि-शून्यता सच होती है। दृष्टि-शून्यता ठीक होती है। दृष्टियों से मुक्त हो जाने पर दर्शन उपलब्ध होता है। दृष्टि का मतलब होता

हैः एक खास पक्षपात है। दृष्टि-मुक्ति का अर्थ होता हैः अब कोई पक्षपात नहीं है। जो है वैसा है। न हमें बदलने की कोई इच्छा है, न अन्यथा करने की कोई इच्छा है।

जरा सोचो, जरा ध्यान करो! काश तुम ऐसा अपने को छोड़ पाओ तो थोड़े दिन कंपन होंगे, उनसे घबड़ाना मत, क्योंकि वह स्वाभाविक है। इतने दिन तक शाखा को खींचा गया है, दबाया गया है, अब एकदम से छोड़ी गई है तो कंपेगी। लेकिन वह कंपन हितकर है। शाखा क्यों कंपती है छोड़ने पर? जानते हो, उसका वैज्ञानिक अर्थ क्या है? तुमने शाखा को पकड़कर जो दमन किया था शाखा की ऊर्जा का, वह ऊर्जा शाखा फेंक रही है कंपकर। हिल-हिलकर शाखा उस ऊर्जा को निष्कासित कर रही है। जब सारी ऊर्जा फिंक जायेगी, शाखा ठहर जायेगी। तुमने एक पत्थर हाथ में लिया और फेंका आकाश की तरफ। कितने दूर जायेगा? उतने ही दूर जायेगा, जितनी ऊर्जा तुमने पत्थर में ठोंस दी। तुमने जो ऊर्जा पत्थर में डाल दी, उसके कारण जायेगा। हो सकता है पचास फीट जाये। इसका अर्थ हुआ कि तुमने पचास फीट तक फेंकने लायक ऊर्जा अपनी उस पत्थर में डाल दी थी; वह विजातीय थी। वह पत्थर की अपनी नहीं थी, उसका स्वभाव नहीं थी। पचास फीट जाकर उसने उस ऊर्जा से छुटकारा पा लिया। जैसे ही ऊर्जा से छुटकारा हो गया, पत्थर गिर जायेगा वापिस अपने स्वभाव में।

ऐसे ही तुम्हारे चित्त को बड़ी धारणाओं, दृष्टियों, पक्षपातों से लाद दिया गया है। मेरा सारा श्रम यही है तुम्हारे साथ कि किसी तरह तुम अपने स्वभाव में आ जाओ। और स्वभाव में आने के लिये सबसे पहली बात है सहज-योग कीः जो है जैसा है उसे स्वीकार कर लो। ठीक है, वैसा ही ठीक है। अन्यथा करने की जरा आकांक्षा न रहे।

और दूसरी बातः कंपन होंगे। अति भी होगी। जागरूक रहकर उस अति को झेल लेना। वह अति तुम्हारे विपक्ष में नहीं है। उस तरह दबाई गई ऊर्जा अपना निष्कासन कर लेगी। इतना ही ख्याल रखना, फिर दमन करने में मत लग जाना। नहीं तो सिलसिला जारी रहेगा। फिर द्वंद्व के बाहर कभी न हो पाओगे।

और जो भी ऊर्जा तुम्हारी रोज निर्मित होती है--भोजन से निर्मित होती है, चलने-फिरने से निर्मित होती है, श्वास से निर्मित होती है--उस ऊर्जा का सृजनात्मक उपयोग करो। कुछ करो, जिसमें तुम अपने को पूरा डुबा दो!

अब यहां दोनों तरह के लोग हैं मेरे आश्रम में। जिन्होंने अपने को पूरी तरह डुबा दिया है, उनके फूल खिले जा रहे हैं और जो अपने को नहीं डुबा रहे हैं, चालबाजी कर रहे हैं, उनके फूल नहीं खिलेंगे और वे धीरे-धीरे अपने-आप पीछे पड़ते जायेंगे। वे धीरे-धीरे दूर पड़ते जायेंगे।

मेरे पास होने का एक ही उपाय है कि तुम बेशर्त भाव से डुबकी मार जाओ। यह जो झील मैं यहां बना रहा हूं ऊर्जा की, इसमें तुम पूरी तरह डुबकी मार जाओ। बचाने को है भी क्या? चालबाजियां अगर जारी रखीं, अगर चित्त का गणित चलाकर रखा, तो ठीक है, चलाये रखना; मगर उससे सिर्फ तुम खुद ही धोखा खा रहे हो, कोई और धोखा नहीं खा रहा है। मेरी कोई हानि नहीं है, न यहां और लोगों की कोई हानि है तुम्हारे उस तरह रहने और जीने से। तुम्हीं चूकोगे। फिर तुम पछताओगे। बुरी तरह पछताओगे! क्योंकि ऐसे अवसर मुश्किल से आते हैं। तुम्हें दमन करवाने वाले पंडित-पुरोहित तो लाखों मिल जायेंगे; तुम्हारे जीवन को सृजनात्मक क्रांति देने वाला कभी-कभार मिलेगा।

तीसरा प्रश्नः ओशो!

कौन आया मेरे मन के द्वारे पायल की झनकार लिये!
आंख न जाने दिल पहचाने मूरतिया कुछ ऐसी
याद करूं तो याद न आये सूरतिया ये कैसी
पागल मनवा सोच में डूबा एक अनोखा प्यार लिये!
कौन आया मेरे मन के द्वारे पायल की झनकार लिये!

वीणा! एक ही है आने को। वही आता है। रूप हों अनेक, रंग हों अनेक--वही आता है! वही आता है मधुमास की तरह, वही आता है पतझड़ की तरह। वही आता है मरुस्थल की तरह, वही आता है बसंत की तरह। वही एक कभी सन्नाटे की तरह, कभी आंधियों की तरह। कभी आकाश से बरसती धूप में और कभी घिरी हुई बदलियों की बूंदाबांदी में। मगर आता एक ही है। कोई और है ही नहीं आने को। वही आने वाला है और वही उसका स्वागत करने वाला है। वही अतिथि है, वही आतिथेय है। उस एक का ही नाम परमात्मा है। और जब समझ में आनी शुरू हो जाती है बात तो बड़ा आश्चर्य होता है कि इतने दिन हम कैसे जी लिये बिना परमात्मा के, जबकि वही था! जिससे भी मिले थे उसी से मिले थे। जिससे भी बोले थे उसी से बोले थे। जो भी आया था उसमें वही आया था और द्वार दस्तक दे गया था। हम पहचाने क्यों न?

बे तुम्हारे मैं जी गई अब तक।
तुमको क्या खुद मुझे यकीन नहीं।।

फिर यकीन भी नहीं आता कि तुम्हारे बिना कैसे जी गई, जीवन कैसे संभव हुआ! और एक दिन ऐसा हो जाता है कि परमात्मा वह है, ऐसा भी नहीं कह सकते; परमात्मा यह! ऐसा भी नहीं कह सकते कि तू, बल्कि मैं! मैं और तू का फासला भी गिर जाता है।

यह कैसी बेखुदी है लिख गया हूं।
मैं अपने नाम के बदले तेरा नाम।।

तब... तब जीवन में आनंद की, अमृत की वर्षा होती है।

दैरो-काबे की जियारत तो फकत हीला है
जुस्तजू तेरी लिये फिरती है घर-घर मुझको

और उसी की खोज चल रही है, फिर चाहे तुम काबा जाओ और चाहे काशी।

दैरो-काबे की जियारत तो फकत हीला है। ये तो सब बहाने हैं। फकत हीला! जुस्तजू तेरी लिये फिरती है घर-घर मुझको। कहीं भी जाओ, खोज उसी की चल रही है। जब तुम धन खोजते हो तो भी उसी को खोजते हो, क्योंकि वही परमधन है और जब तक वह न मिलेगा, धन न मिलेगा। कितना ही धन मिल जाये, धन न मिलेगा; तुम निर्धन के निर्धन रहोगे।

और जब तुम पद खोजते हो तब तुम उसी को खोज रहे हो, क्योंकि वही परमपद है। और जब तक वह न मिल जाये तब तक तुम किसी भी पद पर पहुंच जाओ, तुम दो कौड़ी के हो, दो कौड़ी के रहोगे। कुर्सी पर कितनी ही ऊंची रख दो दो कौड़ियां, इससे क्या होता है? राष्ट्रपति की कुर्सी पर दो कौड़ियां रख दो, कौड़ी-कौड़ी है; कोई मूल्य में फर्क नहीं पड़ जायेगा। इससे कुछ भेद पड़नेवाला नहीं है। तुम कौवे को बिठाल दो सोने के पिंजड़े में, मगर जब आवाज उठेगी तो वही कांव-कांव--कुछ भेद न पड़ेगा। कोयल न हो जायेगा कौवा सोने का पिंजड़ा

कुछ भी न कर पायेगा। पद पर पहुंचकर भी तुम वही के वही रहोगे जो तुम थे, क्योंकि जब तक परमपद न मिल जाये तब तक कोई पद मिलता नहीं।

दैरो-काबे की जियारत तो फकत हीला है

जुस्तजू तेरी लिये फिरती है घर-घर मुझको

और जो यह समझ लिया, वह तो कहेगा--

मुझे तमाम जमाने की आरजू क्यों हो?

बहुत है मेरे लिए एक आरजू तेरी

एक तेरी अभीप्सा काफी है; सारी अभीप्साओं को उंडेल देता है फिर एक ही अभीप्सा में।

तुम जो याद आये तो सारी कायनात।

एक भूली-सी कहानी हो गई।।

फिर तो सारा जगत एक कहानी जो कहीं पढ़ी हो और भूल-भाल गई हो, ऐसा हो जाता है। जैसे कोई फिल्म में देखा हो या कोई सपने में पढ़ी हुई, सपने में सुनी हुई बात हो।

तुम जो याद आये तो सारी कायनात।

एक भूली-सी कहानी हो गई।।

परमात्मा याद आना शुरू हो तो शेष सब अपने-आप असार होने लगता है। तुम्हें बार-बार कहा गया है परमात्मा खोजो। और तुम्हें बार-बार यह भी कहा गया है कि संसार छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूंः संसार मत छोड़ो, परमात्मा ही खोजो। परमात्मा को खोज लोगे, संसार छूट जाता है। उतना काफी है। दीया जला लो, अंधेरा समाप्त हो जाता है। दो बातें जो कहता है... जो तुमसे कहे कि भाई दीया जलाओ और अंधेरे को धक्के लगाकर बाहर निकालो, समझ लेना कि वह पागल है, उसे कुछ पता नहीं है। न उसका दीया जला है और न उसका अंधेरा कटा है, नहीं तो ऐसी बात कह सकता था कि भाई दीया जलाओ और अंधेरे को धकाकर बाहर निकालो, कि भाई दीया जलाओ और अंधेरे को देख-देखकर पहचान-पहचानकर कोने-कोने से घर के बाहर निकल दो! जो ऐसा कहे, समझ लेना कि अंधा है। जिसने भी तुमसे कहा है परमात्मा को खोजो और संसार को त्यागो, वह अंधा है, उसे कुछ पता नहीं। परमात्मा को पाते ही संसार अपने-आप तिरोहित हो जाता है। पता ही नहीं चलता, एक भूली-सी कहानी हो जाती है।

यह चर्ख, यह खुर्शीद, ये अंजुम, यह कमर

यह कौसे-कुजह, यह दश्त, यह सब्जए-तर

यह सरो, यह साहिल, ये शगूफे, यह शफक

तुम होते तो काहे को भटकती यह नजर

इतनी भटकती रही चांद-तारे, फूल, सौंदर्य... न मालूम कहां-कहां भटकती रही। तुम होते तो काहे को भटकती यह नजर! आकाश, सूर्य, नक्षत्र, चंद्रमा, इंद्रधनुष, मार्ग, हरियाली, सुंदर पेड़, नदी-तट, फूल-पत्ते, ऊषा संध्याकालीन सौंदर्य, कल्पनाओं में, वार्तालापों में, चित्ताकर्षक ढंगों में, न मालूम कहां-कहां न्यौछावर होते रहे! प्रेम-भरी गुप्त बातों में।

यह चर्ख, यह खुर्शीद, ये अंजुम, यह कमर

यह कौसे-कुजह, यह दश्त, यह सब्जए-तर

यह सरो, यह साहिल, यह शगूफे, यह शफक

तुम होते तो काहे को भटकती यह नजर

तखैयुल में जगमगा रहे हो
छुप-छुप के यूं जला रहे हो
आओ-आओ मेरे मुकाबिल
पीछे खड़े मुस्करा रहे हो

यह फूल-सा लहजा, यह रसीली आवाज
यह तेरे तकल्लुम का दिल-आवेज अंदाज
यह लोच, यह नर्मी, यह घुलावट, यह कशिश
सद्के तेरे इक लफ्ज पै सौ राजो-नियाज

एक बार उसकी भनक भर पड़ जाये कि सब न्यौछावर हो जाता है। सद्के तेरे इक लफ्ज पै सौ राजो-नियाज! उसकी एक झलक मिल जाये कि संसार अपने-आप व्यर्थ हो जाता है। तुम होते तो काहे को भटकती यह नजर! उसकी पहचान, उसकी प्रत्यभिज्ञा पर्याप्त है। जरा प्रेम जगाओ।

हजारों बार दुहराया गया है लफ्ज उल्फत का
मैं तेरे सामने इस लफ्ज को दुहरा नहीं सकता

और तब तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। प्रेम से ही परमात्मा मिलता है, लेकिन परमात्मा से तुम यह न कह सकोगे कि तू मुझे प्रेम से मिला। क्योंकि प्रेम शब्द का तो तुमने इतना दुरुपयोग किया है। कहां-कहां नहीं कहते फिरे, किस-किस से नहीं कहते फिरे। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि मुझे मेरे मकान से बहुत प्रेम है। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं मुझे आइसक्रीम से बहुत प्रेम है। प्रेम जैसा शब्द तुम कहां-कहां नहीं जोड़े फिरे!

हजारों बार दुहराया गया है लफ्ज उल्फत का
मैं तेरे सामने इस लफ्ज को दुहरा नहीं सकता
मुझे वहशी बना देती हैं जब यादें मुहब्बत की
मेरे दिल को तेरे सिवा कोई बहला नहीं सकता
तेरी हमदर्द नजरों से मिला ऐसा सकूं मुझको
कि मैं ऐसा सकूं मरकर भी शायद पा नहीं सकता
मगर मैं जिंदगी-भर दोस्त तेरे गीत गाऊंगा
और ऐसे गीत जो दुनिया में कोई गा नहीं सकता।

जब परमात्मा की झलक मिलेगी तो तुम्हारे भीतर गीतों के फव्वारे उठेंगे। पूछा वीणा तूने--

"कौन आया मेरे मन के द्वारे पायल की झनकार लिये!
आंख न जाने दिल पहचाने मूरतिया कुछ ऐसी
याद करूं तो याद न आये सूरतिया ये कैसी
पागल मनवा सोच में डूबा एक अनोखा प्यार लिये!
कौन आया मेरे मन के द्वारे पायल की झनकार लिये!"

वही आया है! पहचानो, जागो! उसके अतिरिक्त और आने को कोई है ही नहीं।

चौथा प्रश्नः काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे मनोविकारों एवं अहंकार, मूर्च्छा जैसी अवस्थाओं के ऊपर उठने के लिए बुद्ध, महावीर और सारे भारतीय संतों ने ध्यान-जागरण, भजन-कीर्तन, सत्संग जैसे उपाय ही कहे हैं। पर आप क्यों, क्या जानकर भारतीय मित्रों के लिए अन्य उपायों के साथ थैरेपी-ग्रुप (समूह-मनोचिकित्सा) जैसे नये उपाय भी जोड़ रहे हैं--कृपा करके समझायें।

नरेन्द्र! समय बुद्ध पर चुक नहीं गया है। परमात्मा की यात्रा जारी है। परमात्मा किसी तीर्थंकर, किसी पैगंबर पर समाप्त नहीं हो गया है। फूल खिलते रहेंगे, नई सुगंध बिखरती रहेगी।

लेकिन तुम्हारे मन लकीर के फकीर हो जाते हैं। तुम तो बस पकड़कर बैठ जाते हो। और तुम्हारी इस पकड़ के कारण नया प्रभात जब होता है तो तुम देख ही नहीं पाते; नया बुद्ध जब आता है तो तुम पहचान ही नहीं पाते। तुम तो पुराने बुद्ध की प्रतिमा से ऐसे भरे होते हो कि नए बुद्ध की प्रतिमा तुम्हारी समझ में नहीं आती। तुम तो पुराने ही बुद्ध को बार-बार देखना चाहते हो। तुम ऐसे दकियानूस हो कि तुम चाहोगे कि बस बुद्ध उसी की तरह जैसे आयें वही के वही आते रहें।

जरा सोचो तो, यह दुनिया, कितनी ऊब से न भर गई होती, अगर यहां बस एक ही तरह के बुद्धपुरुष आते रहते! बस समझ लो कि बुद्ध ही, गौतम बुद्ध बार-बार आते रहते, यह दुनिया कितनी ऊब से न भर गई होती! यह दुनिया बड़ी सुंदर है। कभी कृष्ण आते हैं, तो बुद्ध से कृष्ण का क्या लेना-देना? कभी कृष्ण को किसी वृक्ष के नीचे ध्यान करते देखा है? कोई प्रतिमा है कृष्ण की कि वृक्ष के नीचे सिद्धासन में बैठे हों। हां नाचते जरूर देखा है। पूरे चांद की रात, वृक्षों के तले, बांसुरी बजाते जरूर देखा है। और फिर महावीर हैं, उनका ढंग और, उनका रंग और। और फिर क्राइस्ट हैं और फिर मुहम्मद हैं, फिर मंसूर हैं, मूसा हैं, जरथुस्त्र हैं, लाओत्सु हैं, च्वांगत्सु हैं, कबीर हैं, नानक हैं, सरहपा हैं। ये अलग-अलग ढंग... मगर तुम्हारी जिद कि तुम चाहते हो कि बस एक टकसाल में आने चाहिये बुद्ध। तो जरा हेर-फेर हुआ कि बस तुम अड़चन में पड़े।

तुम जरा गौर से तो देखो, दुबारा कभी भी कोई बुद्धपुरुष दोहराया नहीं गया है। गौतम बुद्ध दो बार नहीं होते, बस एक बार। और न जीसस दो बार होते हैं, बस एक बार। और न महावीर दो बार होते हैं, बस एक बार। इससे तुम्हें कुछ बात समझ में आती है कि नहीं, कि परमात्मा रोज नये रूप लेता है, रोज नये आविर्भाव होते हैं?

सागर में लहरें उठती हैं, एक-सी दो लहर कभी उठती देखीं? सागर रोज-रोज नई-नई लहरें उठाता है, नये-नये गीत गाता है। तुम एक जैसे दो कंकड़ ही सारी पृथ्वी पर खोजकर नहीं पा सकते हो, दो जुड़वां भाई भी बिल्कुल एक जैसे नहीं होते, तो दो बुद्धपुरुष तो कैसे एक जैसे होंगे?

कुछ मैं ही अनूठी बात नहीं कह रहा हूं। जिन्होंने कृष्ण को पूजा था और जब बुद्ध आये होंगे तो उन्होंने भी पूछा होगा कि कृष्ण तो बांसुरी बजाते थे, बांसुरी कहां है? और जिन्होंने महावीर को पूजा उन्होंने जरूर बुद्ध से पूछा है; इसके तो प्रमाण हैं, क्योंकि दोनों समसामयिक थे। जो महावीर को पूजते थे उन्होंने बुद्ध से पूछा है कि आपने वस्त्र क्यों नहीं त्यागे?

इसलिये जैन बुद्ध को उस ऊंचाई पर नहीं मानते जिस ऊंचाई पर महावीर को मानते हैं। महावीर तीर्थंकर हैं। महावीर भगवान हैं। बुद्ध--महात्मा! अभी पहुंचते-पहुंचते हैं, थोड़ा फासला है। पहुंच जायेंगे।

महात्मा हैं, भगवान नहीं! क्यों? बस वह एक चादर महात्मा को भगवान बनने से रोक रही है। बुद्ध एक चादर ओढ़े हुए हैं। चादर! अड़चन आ रही है नहीं तो वे भी भगवान हो जायें। भगवान तो दिगंबर होते हैं!

और यह सदा होता रहा। यह तो एक देश के उदाहरण ले रहा हूं; अगर दूसरे देशों के उदाहरण लो तो और मुश्किल हो जाये। जीसस से क्या मेल है बुद्ध का? जरा भी मेल नहीं है। दोनों की प्रक्रिया अलग, जीवन का कोण अलग, जीवन को दिया गया संदेश अलग।

जीसस के पास खबर आई कि लजारस मर गया, तो जीसस भागे गये, उसकी कब्र से लजारस को उठा लिया और जिंदा कर दिया। तुम सोच सकते हो बुद्ध को ऐसा करते? बुद्ध के पास भी ऐसी घटना घटी। एक स्त्री का बेटा मर गया। एक ही बच्चा था उसका। पति मर चुका था। वही उसकी आंख का तारा था। वह रोती घूमने लगी। लोगों ने कहाः हम तो क्या करेंगे, लेकिन बुद्ध गांव में हैं, तू उनके पास क्यों नहीं जाती? शायद महा करुणावान हैं, कुछ दया करें।

वह स्त्री उस बच्चे को लेकर गई, बुद्ध के चरणों में रख दिया। अब जरा सोचो, जीसस के चरणों में रखा होता तो जीसस ने जैसे लजारस को कहा था, लजारस उठ और लजारस उठ गया था--ऐसा ही वे इससे भी कहते कि उठ और बात खतम हो गई होती। लेकिन बुद्ध ने क्या किया? बुद्ध ने उस स्त्री से कहा कि ठीक, तेरा बेटा जाग जायेगा, उठ आयेगा; मगर एक काम तू पहले कर। थोड़े-से बीज मुझे चाहिये सरसों के।

उसने कहा कि सरसों के बीज! आपको पता है, यह गांव सरसों की ही खेती करता है। यह सारे गांव के खेत-खलिहान सरसों से ही भरे हैं। कितने चाहिये? अभी ले आती हूं।

बुद्ध ने कहा कि बस एक मुट्ठी-भर बीज, काफी हो जायेंगे। लेकिन एक बात ख्याल रखनाः उस घर से मांगकर लाना, जिस घर में कभी कोई मरा न हो।

वह स्त्री तो इतनी खुशी में थी कि उसका बेटा जी जायेगा, कि उसे होश ही कहां था! वह भागी। इस घर गई उस घर गई, गांव-भर में सारे घर-द्वार खटका डाले, लेकिन सभी ने कहा कि तुम्हें जितना सरसों चाहिये, बोरों से भरवा दें, गाड़ी लदवा दें, गाड़ियों के ढेर लगवा दें; मगर हमारे सरसों के बीज काम न आयेंगे, हमारे घर में तो बहुत लोग मर चुके हैं। बुद्ध ने शर्त ऐसी लगाई है कि हम मानते नहीं कि तुझे कोई ऐसा घर मिल सकेगा जहां कोई मरा न हो।

सांझ होते-होते उस स्त्री को होश आया कि यह तो बुद्ध ने खूब मजाक किया। कहां ये बीज मिलेंगे? सभी घरों में कोई-न-कोई मर चुका है। मरा ही है, पिता मरा है, नहीं तो पिता का पिता मरा है, मां मरी है, नहीं तो मां की मां मरी है, कोई-न-कोई मरा ही है। असल तो बात यह है कि घर में जिंदा जितने लोग हैं, उससे कई गुना लोग मर चुके हैं।

तुम जरा सोचो तो, तुम हो, तुम्हारी पत्नी है, बच्चा है, तीन जन हो; लेकिन तुम जिस धारा से आये हो तुम्हारे पिता, उनके पिता, उनके पिता, उनके पिता... बाबा आदम तक लौटो; फिर तुम्हारी मां और उनकी मां और उनकी मां और उनकी मां... और मैया हव्वा तक लौटो। कितने लोग मर चुके हैं! और तुम तीन बचे हो कुल। मृत्यु की कितनी लंबी शृंखला है! अनंत लोग मर चुके हैं, तब कहीं तुम तीन हो। और तुम तीन भी अभी गये तभी गये। कोई ज्यादा देर टिकोगे नहीं।

सांझ होते-होते उसे गणित समझ में आ गया। उसे हंसी भी आई कि मैं भी कैसी पागल हूं! जब सभी को मर जाना है तो कोई मेरा बेटा बच थोड़े ही जायेगा। सभी को मरना है तो फिर अभी मरे कि कब मरे, क्या फर्क पड़ता है! आज मरा कि कल मरा, क्या फर्क पड़ता है! फिर अच्छा ही हुआ कि मेरा बेटा मेरे सामने मर गया।

दुख मुझे उठाना पड़ा। अगर मैं मरती तो मेरे बेटे को दुख उठाना पड़ता। कोई न कोई तो मरता। अच्छा ही हुआ कि मैंने दुख उठाया, मेरा बेटा तो शांति से मर गया।

लौटी, बुद्ध के चरणों में गिर पड़ी। बुद्ध ने कहाः कहां हैं वे बीज? उसने कहाः आप छोड़ें वह बात। आपने भी खूब मजाक किया। यह भी कोई वक्त था मजाक करने का? मेरा बेटा मर गया... !

मगर अब वह हंस रही थी और उसने कहा कि मुझे दीक्षा दें, क्योंकि मुझे यह बात समझ में आ गई, यहां तो मृत्यु ही मृत्यु है। इस मृत्यु के सागर में हम कैसे अमृत का अनुभव कर लें, इसका उपदेश दें।

उसने बेटे की लाश की तरफ देखा भी नहीं। बुद्ध ने उसे दीक्षा दे दी। वह संन्यासिनी हो गई।

अब जरा तुम सोचो फर्क। अगर कोई ईसाई मौजूद हो तो बुद्ध से कहेगाः यह क्या कर रहे हैं आप? जीसस ने तो लजारस को जिंदा किया था! तो आप फिर असली बुद्ध नहीं हैं, नहीं तो जिंदा करके दिखलायें। और अगर कोई बौद्ध जीसस के सामने मौजूद होता और जीसस को देखता लजारस को उठाते तो कहताः रुको! बुद्ध ने कहा था सरसों के बीज। यह तुम क्या कर रहे हो? ये कोई बुद्धों के लक्षण हैं? अब मुर्दों को जिलाने से फायदा भी क्या है? फिर मरेगा। एक बार मरकर झंझट मिट गई, अब तुम दुबारा मरवाओगे। और भ्रांति पैदा करोगे लोगों में। बजाय लजारस के परिवार को संदेश दो, कि यहां तो मृत्यु सभी की घटनी है, इसलिये जल्दी से जल्दी अपने भीतर जो छुपा है उसको पहचान लो, कहीं मौत उसके पहले न आ जाये।

तुम दोनों में कोई तालमेल देखते हो? तुमने कभी दो बुद्धपुरुषों में तालमेल देखा है? लेकिन तुम्हारी मांग सदा यही रही है। और तुम्हारी मांग के कारण दुनिया में बहुत नकलची पैदा हो गये हैं। तुम्हारी मांग के कारण महावीर जैसे दिखाई पड़ने वाले न मालूम कितने मुनि हैं, जो नंगे खड़े हैं; जो सिर्फ इसलिए नंगे खड़े हैं कि जब तक वे नंगे न खड़े हो जायें तुम मानोगे नहीं कि वे ज्ञानी हैं। और कुछ नहीं है उनके पास, सिर्फ नंगापन है। सिर्फ नंगे खड़े हैं, क्योंकि इसी से तुम्हारा समादर मिलता है; इसी से तुम्हारा सम्मान मिलता है; इसी से तुम उनके चरणों में झुकते हो।

मेरी कोई आकांक्षा तुम्हारे सम्मान पाने की नहीं है, न तुम्हारा समादर पाने की है। मैं किसी बुद्धपुरुष को पुनरुक्त करने को नहीं हूं। मैं अपने ढंग से जिऊंगा। मैं अपनी बात कहूंगा। इसलिये ये तो तुम अपेक्षाएं छोड़ ही दो, यह बार-बार नाम मेरे सामने मत उठाया करो कि बुद्ध-महावीर और ऋषि-मुनि। तुम मुझे उबाये दे रहे हो बार-बार बुद्धपुरुष और ऋषि-मुनियों के नाम उठा-उठाकर। उनका वे जानें। कहीं तुम्हारा उनसे मिलना हो जाये तो उनसे पूछ लेना कि आप सामूहिक मनोचिकित्सा क्यों नहीं करते?

मैं अपने ढंग से जिऊंगा। मैं अपनी कोटि स्वयं हूं। मैं किसी की पुनरुक्ति नहीं हूं और न मुझे रस है।

फिर, समय बदल रहा है। रोज समय बदलता है। जो उस दिन की जरूरत थी वह बुद्ध ने किया होगा। जो आज की जरूरत है, वह मैं करूंगा। उस दिन की यह जरूरत न थी। लोग सरल थे। लोग सीधे-सादे थे। लोग ग्राम्य थे।

अब तुम थोड़ा समझो। अगर एक लकड़हारा, जो जंगल में रोज लकड़ी काटता है, यहां आये, तो मैं उसे सक्रिय ध्यान करने को नहीं कहूंगा, क्योंकि वह दिन-भर सक्रिय ध्यान करता है। वह काटता है लकड़ी। तुमने देखा, अगर तुमको क्रोध आये जरा जाकर थोड़ी लकड़ियां काटना, बड़ा हलकापन लगेगा उसके बाद। एकदम शांति छा जायेगी; जैसे कि सब दुश्मन काट डाले! वह लकड़ी काटने में उसकी सारी हिंसा निकली जा रही है; उसके सारे भीतर का रोष निकला जा रहा है, क्रोध निकला जा रहा है। अगर लकड़हारा यहां आये तो उसे मैं सक्रिय ध्यान करने को नहीं कहूंगा। मैं तो उसे कहूंगाः विपस्सना करो, शांत बैठो, मौन बैठो।

एक डाक्टर के पास एक आदमी आया। डाक्टर ने उसकी नब्ज देखी, थर्मामीटर लगाकर उसका तापमान लिया। सिक्खड़ ही होगा डाक्टर। इस तापमान से भी कुछ समझ में नहीं आया और नब्ज देखने से भी कुछ समझ में नहीं आया। अभी नया-नया होगा। उस आदमी ने कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन तुम रोज कम-से-कम मील-भर पैदल चलने लगो, तो स्वास्थ्य ठीक हो जायेगा। मील-भर पैदल चलना जरूरी है।

वह आदमी हंसने लगा। डाक्टर ने पूछाः तुम हंसते क्यों हो? उसने कहाः मैं पोस्टमैन हूं। आप यह सलाह किसी और को देना। सुबह से शाम तक पैदल ही चल रहा हूं, अब और एक मील चलवाओगे? मुझे कुछ विश्राम की तरकीब बतलाओ। मैं थका-मांदा हूं।

अब जो तरकीब औरों पर काम कर गई होगी एक मील चलो, वह इस पर काम नहीं करेगी, पोस्टमैन पर कैसे काम करेगी?

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन डाक्टर के घर गया। डाक्टर ने कहा कि देखो नसरुद्दीन, तुम्हें अपनी जीवन-चर्या बदलनी होगी। भोजन में ये-ये चीजें छोड़ दो। और शराब एक बार से ज्यादा सप्ताह में नहीं पीना और सिगरेट... बस दो सिगरेट रोज, इससे ज्यादा नहीं।

नसरुद्दीन तीन सप्ताह के बाद आया, जैसा कि डाक्टर ने कहा था आना। उसकी हालत और भी खराब थी। पहले तो खुद ही चलता हुआ आया था, अब उसको दोनों बेटे उसको हाथ का सहारा देकर लाये। डाक्टर ने कहा कि नसरुद्दीन तुम्हारी हालत तो और भी खराब हो गई, मालूम होता है तुमने मेरी सलाह नहीं मानी। उसने कहा तुम्हारी सलाह मानने का परिणाम है। शराब तो ठीक, किसी तरह मैं पी गया, मगर वे दो सिगरेटें रोज मेरी जान लिये ले रही हैं। मैंने कभी जिंदगी में सिगरेट पी नहीं। अब जो आदमी सिगरेट पी रहा हो एक पैकेट, उससे कहो कि दो पीना, ठीक है। मगर जिसने कभी पी ही न हो... । नसरुद्दीन समझा कि यह इलाज है, दो पीना ही पड़ेंगी। ... "वे दो सिगरेट तो मेरी जान लिये ले रही हैं। डाक्टर साहब, कुछ और इलाज बतायें। शराब तो किसी तरह पी गया, ठीक है; मगर ये दो सिगरेट... खांस-खांसकर मर जाता हूं।"

इलाज अलग होंगे। व्यक्तियों पर निर्भर करेगा। बुद्ध जिन लोगों से बात कर रहे थे वे और थे। खेत में काम करनेवाले किसान थे, लकड़हारे थे, मजदूर थे, बड़ी संख्या भोले-भाले लोगों की थी। उन भोले-भाले लोगों के पास रेचन करने को कुछ था भी नहीं। रेचन की जरूरत तो तब पड़ती है जब कुछ दबाया हो।

मनोचिकित्सा की जरूरत तो आज के आदमी को है, क्योंकि आज का आदमी इतना दबाये बैठा है, इतना सुसंस्कृत हो गया है कि उसकी संस्कृति इतनी उसकी छाती पर पत्थर की तरह पड़ गई है, कि उसको हटाना जरूरी है। रेचन की आवश्यकता है। ज्यादा आदमी ने भोजन कर लिया है; उसका भोजन उसके शरीर से बाहर फेंक देने की जरूरत है, क्योंकि ज्यादा भोजन जहर बना जा रहा है। मनुष्य जितना सुसंस्कृत हो गया है उतनी मुश्किल हो गई है।

अब तुम समझ लो जरा थोड़ा। तुम्हारा शरीर बना था कि दिन में कम-से-कम पंद्रह-बीस मील चल सको, कि दस-पचास वृक्ष काटना कठिन न हो, कि पत्थर तोड़ सको। क्योंकि जंगल में आदमी को बड़ी कठिनाई में जीना पड़ा था। ... कि जंगली जानवरों से लड़ सको, कि सिंह से मुकाबला हो जाये तो न तो उस वक्त बंदूकें थीं और न तलवारें थीं, कि हाथ, नंगे हाथ से तुम सिंह से भी जूझ सको। तुम्हारे शरीर का पूरा रसायन-शास्त्र तो इतना सब करने के लिये बना है। लेकिन आज स्थिति बिल्कुल बदल गई है। न तो जंगली जानवरों से लड़ते हो तुम। एकाध किसी मुहम्मद अली की बात छोड़ दो, लेकिन बाकी सब न जंगली जानवर से लड़ते हो, न पत्थर तोड़ते हो, न लकड़ी काटते हो। एक दफ्तर में बैठे दिन-भर टेबिल पर काम कर रहे हो, कि टिकटें बेच रहे हो,

कि दफ्तर के सामने बैठे मक्खियां मार रहे हो, कि फाइल यहां से वहां रख रहे हो। और तुम्हारा पूरा रसायन शरीर का उतनी ऊर्जा पैदा करता है, उतना श्रम करने की क्षमता पैदा करता है। वह सारी क्षमता तुम्हारे भीतर चक्कर काटने लगती है। वह सारी क्षमता तुम्हारे भीतर रोग बन जाती है, विष बन जाती है। उसके निष्कासन की जरूरत है। मनोचिकित्सा में उसका निष्कासन होता है।

फिर तुम इतने सुसंस्कृत हो गये हो कि न तो तुम्हारी हंसी असली है और न तुम्हारा रोना असली है। कहीं कोई मर जाता है तो तुम झूठे आंसू भी गिरा देते हो और कहीं हंसना पड़े तो तुम झूठी हंसी भी हंस देते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन फ्रांस गया। वहां एक फ्रेंच मित्र के घर में कोई चुटकुले सुनाने लगा। सारे फ्रांसीसी जो भोजन पर आये थे, लोट-पोट होने लगे, खूब हंसने लगे। मुल्ला उनसे भी ज्यादा लोट-पोट होने लगा। गृहपति ने कहा कि नसरुद्दीन, हमें यह पता ही नहीं था कि तुम फ्रेंच भाषा भी समझते हो! उसने कहाः "फ्रेंच भाषा नहीं समझता, लेकिन मुझे आप लोगों पर विश्वास है कि जब आप सब हंस रहे हो तो जरूर हंसी की कोई बात होगी। मगर उन्होंने कहाः तुम हम सब को भी मात किये दे रहे हो; हम तो हंस ही रहे हैं, तुम तो लोट-पोट कर रहे हो। उसने कहाः जब हंस ही रहे हैं तो फिर कंजूसी क्या करनी! और भरोसा मुझे पक्का है कि जरूर कोई बात ऐसी हो ही रही होगी।

मगर यह हंसना तो झूठा होगा। भरोसे से हंस रहे हो कि जरूर व्यंग्य की कोई बात कही गई होगी! तुम्हारी हंसी झूठ, तुम्हारा रोना झूठ।

मनोचिकित्सा में तुम्हारे सत्य उभारे जाते हैं; तुम्हारी प्रामाणिकता को तुम्हारे धरातल पर लाया जाता है। और तुम्हारे चित्त में इतने तनाव हैं कि तुम्हारा चित्त एक गुत्थी हो गया है। ऐसे तनाव बुद्ध जिन लोगों से बात कर रहे थे उनके चित्तों में नहीं थे। मैं बीसवीं सदी के आदमी के साथ बात कर रहा हूं। मुझे बीसवीं सदी के ढंग की बात करनी होगी। नहीं तो मैं तिथि-बाह्य मालूम होऊंगा, मेरा कोई अर्थ नहीं होगा।

इसलिये तुम्हारे पंडित-पुरोहित बिल्कुल ही व्यर्थ हैं क्योंकि वे बात दोहरा रहे हैं, अभी भी बैठे हैं कृष्ण की गीता लिये। मैं भी गीता पर बोलता हूं, लेकिन तुम ध्यान रखनाः बोलता वही हूं मैं जो मुझे बोलना है; कृष्ण तो बस बहाना हैं। अब सरहपा पर बोल रहा हूं। अगर तुम्हारा कहीं सरहपा से मिलना हो जाये तो सरहपा कहेंगेः यह मैंने कहा ही नहीं। सरहपा यह कह भी कैसे सकते हैं? यह मैं कह रहा हूं! सरहपा तो केवल एक बहाना हैं, एक निमित्त। प्यारे लोग हैं! इन प्यारे लोगों के नामों को मैं फिर दोहरा देना चाहता हूं, ताकि भूल न जायें। ये बड़े प्यारे चरण-चिह्न हैं, ये मिट न जायें, पुंछ न जायें। कोई इनकी याद दिलाता रहे।

मगर जो मैं कह रहा हूं वह तो मैं ही कह रहा हूं। सरहपा के कंधे पर बंदूक रखकर, लेकिन बंदूक मैं ही चला रहा हूं। तुम यह मत सोचना कि मैं सरहपा की कोई व्याख्या कर रहा हूं। उस तरह का कचरा काम करने में मुझे कोई रस नहीं है। मैं तो सरहपा के द्वारा अपनी व्याख्या करवा रहा हूं, अगर तुम ईमानदारी की बात पूछो। सरहपा के शब्द प्यारे हैं, उनका उपयोग किये ले रहा हूं; मगर उन पर रंग मैं अपना डालता हूं। और मुझे ज्यादा फिकिर इस बात की नहीं है कि सरहपा के शब्दों का ठीक वही अर्थ रहे जो सरहपा ने किया था। मुझे ज्यादा फिकिर इस बात की है कि वैसा अर्थ हो जैसा तुम्हारे काम आ जाये। मुझे तुम्हारी फिकिर है, सरहपा की बहुत फिकिर नहीं है। इसलिये पंडित मुझसे नाराज भी हैं।

कबीर-पंथ के जो प्रथम सबसे बड़े महंत हैं, उनका कुछ दिन पहले पत्र मुझे मिला कि आप कबीर पर बोले, यह बात तो अच्छी है, मगर आपने ऐसी बातें कहीं हैं जो कि हम सोच ही नहीं सकते कि कबीर ने कहीं हों। आपको कम-से-कम किसी कबीर-पंथी से पूछ तो लेना था।

मैं कबीरपंथी से पूछूं! मुझे कबीर मिल जायें, उनसे न पूछूं। मुझे जो कहना है वही कहूं। कबीरपंथी से मुझे क्या लेना-देना? मैं कबीर को बीसवीं सदी के वस्त्र पहनाऊंगा। वो कहते हैं कि झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया! खूब बीनी तुमने! अब पोलिएस्टर पहनो! अब चदरिया वगैरह बीनने की जरूरत नहीं है; वह तो मिल में बीनी जा रही है। और अगर तुम अपनी चदरिया को, साधारण हाथ से कती चदरिया को ज्यों का त्यों रख गये तो पोलिएस्टर को ज्यों का त्यों रख जाना और भी आसान होगा।

मैं कबीर पर जब बोल रहा हूं तो मैं कबीर को बीसवीं सदी में बुलवा रहा हूं। इस भेद को ठीक से समझ लेना। और तुम जब यह कहने लगते हो कि बुद्ध ने ऐसा किया महावीर ने वैसा किया, तो तुम नाहक बुद्ध-महावीर को बीच में उलझाते हो। किया होगा। उनकी वे जानें। मैं वही करूंगा जो मुझे सम्यक मालूम हो रहा है। मैं अपने ही ढंग से जीऊंगा, किसी और के ढंग से नहीं जी सकता। यह किसी का अनुकरण नहीं है। इसलिये तुम ऋषि-मुनियों को बार-बार बीच में मत लाया करो। वे प्यारे थे, जब थे, मगर आज के संदर्भ में उनका बहुत अर्थ नहीं रह गया है और अगर आज भी तुम उनको खींचे जाओगे तो दुर्घटनाएं होंगी।

यहां ऐसा रोज अनुभव में आता है। अभी कुछ दिन पहले एक व्यक्ति आया थाइलैंड से। वह तीन साल तक वहां थाइलैंड में, बौद्ध साधना करता रहा और उसने मुझे आकर कहा कि मैं तो ऊब गया, थक गया, बुरी तरह थक गया। और वह तो सब दमन ही दमन है। यहां आपकी बातें सुनीं तो मुझे समझ में आया कि मैंने तीन साल गंवाये। मैंने कहा कि इतनी जल्दी निर्णय मत लो, तुमने जो सीखा है वह काम पड़ेगा। गंवाये नहीं। सिर्फ उसके पहले कुछ और करना जरूरी था, वह उन्होंने नहीं करवाया, क्योंकि वे करवा नहीं सकते थे। वे तो सिर्फ लकीर के फकीर हैं। वे तो बुद्ध ने जो करवाया था उतना ही करवा रहे हैं।

अब किसी पाश्चिमात्य को... यह व्यक्ति हालैंड से था... किसी पाश्चिमात्य को सीधा बिठाल दो सिद्धासन पर तो छह महीने तो उसको सिद्धासन पर बैठने में लग जाते हैं सीखने में। पैरों में दर्द होता है, क्योंकि कभी जमीन पर बैठा नहीं। अब लकीर के फकीर यह तो मान ही नहीं सकते कि कुर्सी पर बैठकर भी ध्यान हो सकता है। यह पागलपन की बात है। कुर्सी पर बैठकर ध्यान हो सकता है। कोई अड़चन नहीं है। मगर छह महीने उसके पैर ही की मालिश करवाते रहे, उसके पैर मुड़वाते रहे। जब तक पद्मासन न लग जाये, पूर्ण पद्मासन... एक पैर ही चढ़े उतने से तो अर्ध पद्मासन होता है; जब दोनों पैर एक-दूसरे के ऊपर चढ़ जायें... । अब वह किसी हालैंड के आदमी के दोनों पैर ऊपर चढ़वाना एक-दूसरे के, कठिन काम तो है। वह बेचारा लेकिन सच्चा खोजी था। उसने कहा कि ठीक है जो होगा होगा, टांग ही टूटेंगी तो टूट जायेंगी, मगर... । छह महीने वह कहता है कि मुझे सिर्फ यह पद्मासन में ही लग गये। मैंने सोचा था पद्मासन क्या आ जायेगा सब मिल जायेगा। फिर बैठ गये पद्मासन में और कुछ न मिला। तो बड़ी हैरानी हुई कि छह महीने बिल्कुल बेकार गये। फिर श्वास पर ध्यान रखवाना शुरू किया, वह भी मैंने किया। लेकिन भीतर उबाल भरा हुआ है, हजारों चीजें भरी पड़ी हैं और तुम श्वास पर ध्यान रखे हो। तो वे हजारों चीजें मिट नहीं जायेंगी, वे दब जायेंगी। फिर-फिर उभरकर आयेंगी।

मैंने उससे कहा कि तू पहले कुछ मनोचिकित्साओं में से गुजर। पहले रेचन कर डाल। तेरे भीतर जो कचरा है, उसे निकाल बाहर फेंक दे। और तूने जो भी सीखा है, दोनों काम आ जायेंगे, फिकिर मत कर। पद्मासन भी काम आ जायेगा और विपस्सना, श्वास पर ध्यान करना भी काम आ जायेगा। लेकिन उसके पहले कुछ जरूरी है जो करना आवश्यक है। दो हजार साल में बुद्ध के पीछे जो मनुष्य के चित्त पर न मालूम कितनी धूल जम गई, उसको तो साफ करो! फिर बुद्ध की प्रक्रिया काम आ सकती है।

और यही हुआ। जब आठ-दस मनोचिकित्सा के प्रयोगों से वह गुजर गया, उसने कहाः आपने ठीक कहा था। अब जब मैं पद्मासन में बैठता हूं तो जो हल्कापन, जो शांति मुझे मिलती है, वह मैंने कभी सोची ही नहीं थी। थाइलैंड में तीन साल बैठकर नहीं मिली और अब जब मैं श्वास को देखता हूं तो बात ही बदल गई है। अब कोई दमन नहीं है। अब श्वास को देखना बिल्कुल निर्भार है, फूल जैसा हल्का हो गया है।

महावीर ने जो साधा, बुद्ध ने जो साधा, उसे भी तुम साध सकोगे; मगर पहले तो इन पच्चीस सौ साल में जो कचरा तुम पर इकट्ठा हो गया है, उसकी सफाई हो जाना जरूरी है। मनोचिकित्सा एक तरह की सफाई है, एक तरह का स्नान है।

तुम पूछते होः "काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे मनोविकार एवं अहंकार, मूर्च्छा जैसी अवस्थाओं से ऊपर उठने के लिये बुद्ध, महावीर और सारे भारतीय संतों ने ध्यान-जागरण, भजन कीर्तन, सत्संग जैसे उपाय ही कहे हैं। पर आप क्या जानकर भारतीय मित्रों के लिये अन्य उपायों के साथ थैरेपी-ग्रुप (समूह-मनोचिकित्सा) जैसे नये उपाय भी जोड़ रहे हैं? कृपा करके समझाइये।"

पहली तो बातः मैं भारतीय नहीं हूं। मैं इस पृथ्वी का हूं। यह सारी पृथ्वी मेरा घर है। मैं उतना ही भारतीय हूं जितना मैं जापानी हूं, जितना मैं चीनी हूं। मैं इस पूरी पृथ्वी को एक मानकर चल रहा हूं। मेरी दृष्टि में राष्ट्र समाप्त हो गये हैं, राष्ट्रों की सीमाएं विलीन हो गई हैं। इसलिये तुम यह "भारत" शब्द को बार-बार उठाने की चेष्टा छोड़ दो; मेरे लिये इसका कोई मूल्य नहीं है। यह सिर्फ एक औपचारिक बात है; नक्शे की बात है। लेकिन मैं भारतीय हूं नहीं--उस अर्थ में भारतीय नहीं हूं जिस अर्थ में विवेकानंद भारतीय हैं। उन्हें लगता है भारत कुछ खास, विशिष्ट धर्मभूमि, पुण्यभूमि।

मैं राष्ट्रवादी नहीं हूं। राष्ट्रवाद रोग है! और संसार काफी तड़फ लिया है इस रोग से। अब यह राष्ट्रवाद जाना चाहिए। मैं अंतर्राष्ट्रीय हूं। मेरे लिये गीता उतनी ही अपनी है जितनी बाइबिल और जितना कुरान। मैं न हिंदू हूं, न मुसलमान, न ईसाई। जीसस से मुझे उतना ही प्रेम है जितना कृष्ण से। और लाओत्सु से मेरा उतना ही लगाव है जितना पतंजलि से। मैं सारे जगत की जो आध्यात्मिक संपदा है उसकी वसीयत की घोषणा करता हूं। सारे जगत की आध्यात्मिक संपदा की वसीयत मेरी है। इसलिये कोई मुसलमान मुझसे यह न कहे कि मैं कुरान पर क्यों बोला? कुरान मेरा है! कोई हिंदू मुझसे यह न कहे कि मैं गीता पर क्यों बोला? गीता पर बोलने के लिये मेरा हिंदू होना जरूरी नहीं है। जैसे हिमालय को और हिमालय के सौंदर्य की प्रशंसा करने के लिये मेरा भारतीय होना जरूरी नहीं है, और आल्प्स पर्वत के सौंदर्य की चर्चा करने के लिये मेरा फ्रांसीसी होना जरूरी नहीं है--उसी तरह गीता, कुरान, ताओ-तेह-किंग या धम्मपद, इनकी चर्चा करने के लिये मेरा किसी देश से आबद्ध होना आवश्यक नहीं है। सारे जगत की संस्कृति मेरी है। सारे जगत के जाग्रत पुरुष, वे दीये कहीं भी जले हों, किसी ढंग के रहे हों, उनकी ज्योति मेरी है। इस बात को तुम कभी भूलना मत।

मैं यहां एक अनूठा प्रयोग कर रहा हूं, जैसा कभी नहीं किया गया है। यह मनुष्य-जाति के इतिहास में पहली घटना है, जहां सारे धर्म एक साथ डूब रहे हैं, लीन हो रहे हैं। और बिना किसी प्रयास के! यहां बैठकर हम दोहराते नहीं कि अल्लाह ईश्वर तेरा नाम, सबको सन्मति दे भगवान! यह हम दोहराते नहीं, मगर यह घटना घट रही है। यहां अल्लाह और ईश्वर एक के ही नाम हैं, इसे कहने की जरूरत नहीं है--हुए ही जा रहे हैं एक। यहां किसी को पता नहीं चलता कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, कौन ईसाई है, कौन यहूदी है, कौन सिक्ख है। यहां सब इकट्ठे हैं।

और सारे जगत की संपदा मेरी है। मैं आध्यात्मिक संपदा का अपने को हकदार घोषित करता हूं। उसमें मैं जरा भी कुछ छोड़ने को राजी नहीं हूं। क्यों उसे छोटा करूं? पूरा मनुष्य-जाति का अतीत इतिहास मेरा है। और यही मैं चाहता हूं कि तुम्हारा भी हो जाये। इसलिये तुम ये बातें ही छोड़ दो--भारतीय, गैर-भारतीय। तुम्हें यह फिकिर ही मिट जानी चाहिए। ये चमड़ी के रंग और ढंग, इन पर तुम ध्यान न दो। ये आदतें गलत हैं। ये संस्कार ओछे हैं। इनको विदा करो।

मनुष्यता एक है और यह पृथ्वी एक हो जाये, तो शांति हो, तो सौमनस्य हो, तो एक भाईचारा हो, एक प्रेम जगे और इस जगत के न मालूम कितने कष्ट अपने-आप समाप्त हो जायें।

फिर यहां ध्यान, भजन-कीर्तन, सत्संग सब चल रहा है। लेकिन साथ कुछ और भी चल रहा है। कुछ मुझे भी जोड़ने दोगे मनुष्य की आध्यात्मिक संपदा में या नहीं? कुछ मुझे भी उस संपदा को दान करने दोगे या नहीं? थोड़े से चित्र मुझे भी भरने दो! थोड़े रंग मुझे भी भरने दो! यह जो आध्यात्मिक जगत का गौरवशाली गीत है, उसमें एक कड़ी मेरी भी जुड़ जाने दो!

और तुमसे भी मैं यही आशा करता हूं कि कुछ जोड़कर जाना। इस जगत को जैसा पाया था वैसा ही मत छोड़ देना। थोड़ा सुंदर कर जाना। थोड़ा प्रीति से भर जाना। थोड़ा प्रार्थनापूर्ण कर जाना। कुछ देकर जाना, तो ही तुम सार्थक हो। थोड़ी सुवास छोड़ जाना, तो ही तुम जीये, तो ही तुम ठीक अर्थों में जीये। अन्यथा तुम व्यर्थ जीये।

आखिरी प्रश्नः क्या प्रेम जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है?

प्रेम सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है, मगर प्रेम कोई घटना नहीं है। प्रेम ही जीवन है, शेष सब मृत्यु है। जिसने प्रेम जाना उसने जीवन जाना। जिसने प्रेम नहीं जाना उसने सिर्फ मरना जाना। उसका जीवन सिर्फ एक लंबा आत्मघात है--आहिस्ता-आहिस्ता किया गया। वह रोज-रोज मरता है, और कुछ भी नहीं करता।

प्रेम कोई घटना नहीं है जो जीवन में घटती है--प्रेम जीवन का ही दूसरा नाम है। और जिस दिन तुम्हारे भीतर यह बोध आ जाता है कि प्रेम जीवन का दूसरा नाम है, तुम्हारे भीतर परमात्मा नाचने लगता है।

फजा पैदा नहीं करती, कहीं दीवाना बरसों से

नहीं उठता कोई पैगंबर वीराना बरसों से।

प्रेम खो गया है, इसलिये कोई पैगंबर पैदा नहीं हो सकता। प्रेम खो गया है, इसलिये कोई दीवाना ही पैदा नहीं होता। लोग बिना प्रेम के जी रहे हैं, इसलिये महावीर पैदा हों तो कैसे हों? लोग बिना प्रेम के जी रहे हैं, मंसूर पैदा हों तो कैसे हों?

तू इंतिजार में अपने यह मेरा हाल तो देख।

कि अपनी हद्दे-नजर तक तड़प रहा हूं मैं।

जलाले-मश्रबे-मंसूर, ऐ मआ.जअल्ला।

किसी ने फिर न कहा आज तक खुदा हूं मैं।

मंसूर क्या गया, दुनिया उदास हो गई! मंसूर क्या गया, दीवाने मर गये! जलाले-मशरबे-मंसूर... उस मंसूर की महिमा जितनी कहो थोड़ी है, क्योंकि हे प्रभु! किसी ने फिर न कहा आज तक खुदा हूं मैं! कितना समय

हो गया, किसी ने घोषणा की थी अनलहक की! कितनी सदियां बीत गईं तब लोगों ने कहा था, अहं ब्रह्मास्मि! आज इतनी सामर्थ्य नहीं रह गई। आज किसी में इतने जोर का जुनून नहीं, इतना दीवानापन नहीं।

क्यों ऐसा हुआ? प्रेम मर गया है। यह तो प्रेम की प्रज्वलित अग्नि ही कह सकती है--अनलहक! अहं ब्रह्मास्मि! यह तो वे ही कह सकते हैं जिनके भीतर अहं बिल्कुल नहीं रहा। जिनके भीतर जरा भी अहं रह गया है, वे अहं ब्रह्मास्मि नहीं कह सकते; उनकी जबान लड़खड़ा जायेगी; उनके पैर थरथरा जायेंगे; उनकी आंखों में अपराध-भाव आ जायेगा।

प्रेम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रेम से बहुमूल्य कुछ भी नहीं। प्रेम जीवन का निचोड़ है, सार है।

बता ऐ वुसअते-कौन मकां! इसको कहां रक्खे।

जरा सा दर्द लेकर आये हैं, हम उनकी महफिल से।।

प्रेम है परमात्मा की महफिल की प्रतीति, कि यह परमात्मा की मजलिस जमी है, कि उसकी महफिल है, कि यह परमात्मा का सत्संग चल रहा है। उस बैठक में से, जो दर्द पैदा हो जाता है, जो मीठी पीड़ा पैदा हो जाती है, प्रभु की प्रतीति से जो एक मीठा दर्द प्राणों में फैल जाता है, वह छोटा-सा दर्द है--और बहुत बड़ा भी! वह इतना छोटा है कि तुम्हारे हृदय में समा जाता है और इतना बड़ा कि सारे अस्तित्व में भी समा नहीं सकता है।

इसलिये पूछा जा रहा हैः बता ए वुसअते-कौन मकां! हे विस्तार, हे आकाश के विस्तार, मुझे कोई जगह बताओ, इसको कहां रक्खें? जरा-सा दर्द लेकर आये हैं हम उनकी महफिल से! आकाश भी छोटा है उस दर्द को रखने के लिए। और हृदय भी काफी बड़ा है। ऐसा अदभुत वह दर्द है प्रेम का!

जो जौके-इश्क दुनिया में न हिम्मत आ.जमा होता

यह सारा कारवाने-जिंदगी .गाफिल पड़ा होता।।

ये तो सिर्फ प्रेमी थे कि उन्होंने पुकार दे दी, नहीं तो सारी दुनिया सोई पड़ी होती। यहां जो थोड़ा-सा जागरण दिखाई पड़ता है, वह कुछ पागल प्रेमियों के गीतों के कारण। कुछ पागलों ने हिम्मत की। जो जौके-इश्क दुनिया में न हिम्मत आ.जमा होता। वह तो प्रेम है, जो कि हिम्मत आजमाता है, जो कि दुस्साहस करता है। यह सारा कारवाने-जिंदगी गाफिल पड़ा होता। यह जिंदगी का यात्री-दल, यह कारवां बिल्कुल मूर्च्छित पड़ा होता।

तुम में जो थोड़ी-सी जान है, तुम्हारी आंखों में जो थोड़ी-सी चमक है, वह इस जगत में हुए थोड़े से प्रेमियों का दान है। उन थोड़े-से प्रेमियों ने तुम्हारी आंख में चमक दे दी है, और तुम्हारे प्राणों में थोड़ी-सी ज्योति जला दी है।

लफ्जों के परिस्तार खबर ही तुझे क्या है?

जब दिल से लगी हो तो खमोशी भी दुआ है।

और प्रेमी जानता है कि प्रेम कोई शब्दों की बात नहीं। फिर तो चुप्पी भी पर्याप्त है।

दीवाने की तहकीर से क्यों देख रहा है।

दीवाना मुहब्बत की खुदाई का खुदा है।।

वह जो प्रेम का जगत है, उस प्रेम के जगत में प्रेम का दीवाना ही परमात्मा है।

चलते हुए दो काबा, फिरते हुए दो मंदिर।

चमकी तेरे कदमों पर तकदीरे-जबींसाई।।

और जब भी कोई प्रेम से भर गया है, तो उसके दो पैर नहीं हैं...

चलते हुए दो काबा, फिरते हुए दो मंदिर।

चमकी तेरे कदमों पर तकदीरे-जबींसाई।।

आदमी कितना छोटा है और कितना बड़ा! आदमी बड़ा विरोधाभास है।

न फर्माओ, नहीं है आदमी में ताबे-नज्.जारा

संभल जाओ अब उठती है निगाहे-नातवां मेरी।।

मत कहो कि आदमी में परमात्मा को देखने की क्षमता नहीं है। न फर्माओ, नहीं है आदमी में ताबे-नज्जारा। मत कहो कि आदमी में परमात्मा को देखने की क्षमता नहीं है। संभल जाओ अब उठती है निगाहे-नातवां मेरी। मेरी निर्बल आंख तुम्हें देखने को उठती है, अब संभल जाओ। यह बड़ा विरोधाभासी वक्तव्य है! आदमी की छोटी-सी आंख है, मगर परमात्मा को समा लेती है, इतनी बड़ी है। आदमी बिल्कुल निर्बल है, मगर उसकी निर्बलता ही उसका बल है। निर्बल के बल राम!

संभल जाओ, अब उठती है निगाहे-नातवां मेरी! प्रेमी कहता है परमात्मा से कि सम्हल जाओ! अब मेरी कमजोर नजर उठती है। मैं दूर तक देख नहीं सकता, लेकिन अब मेरी नजर उठती है और मैं तुम्हें देखकर रहूंगा। यह मेरी छोटी है नजर। मेरे हाथ बड़े छोटे हैं, मगर तुम्हें छूकर रहूंगा। ये मेरे हाथ बड़े छोटे हैं, मगर तुम्हें आलिंगन में बांधकर रहूंगा।

दिल और तूफाने-गम, घबराके मैं तो मर चुका होता।

मगर इक यह सहारा है कि तुम मौजूद हो दिल में।।

आदमी छोटा है आदमी की तरह; लेकिन दिल में जो परमात्मा मौजूद है उसकी पहचान आ जाये तो आदमी से बड़ा फिर क्या है! और प्रेमी जमीन पर जीता है, लेकिन आकाश को देखता है; जिंदगी जीता है, मगर जिंदगी के पार खोज उसकी जारी रहती है।

कौन जाने आस्मां से उनको क्या उम्मीद थी।

मरते-मरते भी जो सूए आस्मां देखा किये।

और प्रेमी तो... मरते-मरते भी आंख उसकी आकाश में अटकी रहती है। रहता जमीन पर है और जमीन छूता भी नहीं। आकाश से उसका लगाव है, विराट से उसके संबंध हैं। उसकी भांवर पड़ गई विराट से।

प्रेम से बड़ा कुछ भी नहीं है, क्योंकि प्रेम में न केवल प्रेमी समा जाता है, प्रीतम भी समा जाता है! प्रेम में परमात्मा समा जाता है। प्रेम से बड़ा कुछ भी नहीं है।

प्रेम को महिमा दो और प्रेम को जगाओ। बीज तुम्हारे भीतर है। बीज वृक्ष बन सकता है। थोड़ी हिम्मत करो, चुनौती स्वीकार करो।

न फर्माओ, नहीं है आदमी में ताबे-नज्जारा।

संभल जाओ अब उठती है निगाहे-नातवां मेरी।।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

फागुन पाहुन बन आया घर

पहला प्रश्नः तालमुद का वचन हैः "जो तुझे आदिष्ट है, उससे परे भी, उससे ऊपर भी, तू पवित्र आचरण कर।" कृपा करके इस वचन का आशय हमें कहिये।

नरेन्द्र! आदिष्ट का अर्थ होता हैः जो श्रेष्ठ पुरुषों ने तुमसे कहा है। लेकिन जो दूसरे ने तुमसे कहा है वह उधार होगा। तुम्हारे निज अनुभव में उसकी कोई जड़ें न होंगी। वह आचरण तो बनेगा, अंतःकरण नहीं। तुम चल पड़ोगे।

बुद्ध कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे, कोई कारण नहीं है कि गलत कहें। बुद्ध के वक्तव्य पर बुद्ध की प्रामाणिकता की छाप है, उनके हस्ताक्षर हैं। जो बुद्ध के प्रेम में पड़ गया, जो उनकी आभा से परिचित हुआ, वह उनकी बात मानकर चलेगा। लेकिन फिर भी यह बात तो बाहर से आई है; भीतर से नहीं उमगी है। यह तुम्हारी आत्मा का फूल नहीं है। यह फूल तुम बाजार से खरीद लाये हो। इसकी तुमने माला बना ली है। इसे तुमने गले में डाल लिया है। लेकिन यह फूल तुम्हारी अपनी आत्मा की बगिया में नहीं खिला है।

इसलिये तालमुद कहता है... आदिष्ट ठीक है। आदिष्ट यानी जिसका आदेश दिया गया है, उसका अनुसरण करो, पर उतने पर ही जीवन की परिसमाप्ति न समझ लेना। उसके पार भी एक आचरण है। वही आचरण धर्माचरण है। आदिष्ट से बनती है नीति; अनुभव से बनता है धर्म। अनुकरण से बनती है नीति; आत्मसाक्षात से बनता है धर्म। शास्त्र कहते हैं, सदगुरु कहते हैं; तुम मानते हो और चलते हो। मगर मान्यता मान्यता है, विश्वास है, ऊपर-ऊपर है। जरा-सी संदेह की किरण आ जायेगी और सब नष्ट हो जायेगा। जरा-सा संदेह का कांटा चुभ जायेगा और गैल भटक जायेगी। तुम्हारी राह को चुका देने में अड़चन नहीं है, कोई भी चुका दे सकता है। कोई भी संदेह तुम्हारे भीतर डाल दे सकता है। क्योंकि श्रद्धा अभी तुम्हारा स्वयं का अनुभव नहीं है, तुम्हारी बुनियाद नहीं है कोई। तुमने मंदिर तो बना लिया, लेकिन बिना आधार के बना लिया है, अधर में बना लिया है। यह गिरेगा। न होने से अच्छा है; मगर यह वास्तविक मंदिर नहीं है।

फिर, नीति सामाजिक घटना है, इसलिये अलग-अलग समाजों में अलग-अलग नीति होती है। दुनिया में हजारों तरह के समाज हैं और हजारों तरह की नीतियां हैं। जो एक की नीति है, दूसरे के लिये अनीति हो सकती है। जो एक के लिए सदाचरण है, दूसरे के लिए असदाचरण हो सकता है। नीति की कोई आत्यंतिक मूल्यवत्ता नहीं है; सामाजिक उपयोगिता है। इसलिये नैतिक होने के लिये कोई आस्तिक होना भी आवश्यक नहीं है। नास्तिक की भी नीति होती है। आखिर रूस कोई अनैतिक देश नहीं है; सच तो यह है कि तथाकथित धार्मिक देशों से कहीं ज्यादा नैतिक है। नास्तिक भी किन्हीं नीति के नियमों को मानकर चलेगा--चलना ही पड़ेगा। जहां एक से ज्यादा लोग हैं वहां कोई-न-कोई नियम जरूरी हो जायेंगे। नहीं तो जीना असंभव हो जायेगा।

नीति का उतना ही अर्थ है, जितना रास्ते पर नियम है बायें चलो, उसका। अमरीका में लोग दायें चलते हैं, भारत में लोग बायें चलते हैं; कुछ भेद नहीं है। नियम विपरीत हैं, मगर कोई-न-कोई नियम मानकर चलना होगा। सब नियमों के भीतर एक नियम स्वीकृत है कि जहां एक से ज्यादा लोग हों वहां नियम की जरूरत है। नहीं तो अड़चन होगी। अगर कोई बायें चले, कोई दायें चले, कोई बीच में चले, तो रास्ते पर दुर्घटनाएं ही

दुर्घटनाएं हो जायेंगी। लेकिन बायें चलो, इसका कोई आत्यंतिक मूल्य नहीं है। ऐसा नहीं है कि तुम बायें चले तो स्वर्ग जाओगे। बायें चले तो जल्दी स्वर्ग न जाओगे, दुर्घटना से स्वर्ग न जाओगे, इतना ही तय है। एकदम स्वर्गीय न हो जाओगे। लेकिन बायें चलने से कोई स्वर्ग पहुंच जाओगे, ऐसा मत समझ लेना कि मैं जिंदगी-भर बांये चला तो मैं हकदार हो गया स्वर्ग का। बायें चले तो टांग नहीं टूटी। बायें चले तो रिक्शे के नीचे नहीं आये। बायें चले तो बस के नीचे नहीं पड़े। इतना ही लाभ है। स्वर्ग नहीं मिल जायेगा। और यह भी मत सोचना कि कभी कोई अगर दायें चल गया तो नरक चला जायेगा। न तो दायें चलने से कोई नरक जाता है न बायें चलने से कोई स्वर्ग जाता है, लेकिन जीवन की सुविधा हो जाती है।

सुविधा के लिये नीति है। धर्म सुविधा के लिये नहीं है, सत्य के लिये है। इसलिये नैतिक व्यक्ति का जरूरी नहीं है धार्मिक होना। धार्मिक व्यक्ति जरूर नैतिक होगा, लेकिन नैतिक व्यक्ति आवश्यक रूप से धार्मिक नहीं होता। कोई आवश्यकता नहीं है। नैतिक व्यक्ति न माने ईश्वर को, न माने आत्मा को, तो भी नीति को मानकर चलेगा।

धार्मिक व्यक्ति कौन है फिर? वह--जिसके आदेश बाहर से नहीं आते; जिसके आदेश उसकी अंतरात्मा से उठते हैं; जिसकी अंतरवाणी जाग गई है; जिसकी भीतर की हृदय-तंत्री बज उठी है; जिसके भीतर का नाद जग गया है और अब जो उस नाद के अनुसार जीता है।

यह तालमुद का वचन प्यारा हैः "जो तुझे आदिष्ट है उससे परे भी, उससे ऊपर भी तू पवित्राचरण कर!" आचरण तभी पवित्र होता है जब आदिष्ट से परे उठ जाओ; जब नीति-नियम से परे उठ जाओ; जब नियम तुम्हारे लिए कर्तव्य ही न हों, बल्कि जीवन की सहजता हो जाये। उसी को सरहपा सहज-योग कह रहे हैं। एक तो होता है कि ऐसा चलने से लाभ होगा, ऐसा करने से समाज में प्रतिष्ठा मिलेगी। जीवन सुविधापूर्ण रहेगा। अड़चन कम पैदा होगी। ज्यादा सुरक्षा होगी, सम्मान मिलेगा, सत्कार मिलेगा। एक तो ऐसा आचरण होता है; वही नीति का आचरण है।

मां-बाप अपने बच्चों को समझाते हैं कि नीति से चलो, ताकि समाज में प्रतिष्ठा रहे। मगर प्रतिष्ठा क्या है? अहंकार का आभूषण है। शिक्षक स्कूल में समझाते हैंः "ज्ञान अर्जित करो, क्योंकि धनी का धन छिन जाये, मगर ज्ञानी का ज्ञान नहीं छिनता।" मगर यह तो लोभ ही हुआ। छिनने के डर से ज्ञान अर्जित करो! "ज्ञानी की प्रतिष्ठा वहां भी है"--शिक्षक स्कूलों में समझाते हैं--"जहां सम्राटों की भी प्रतिष्ठा न हो। सम्राट भी विद्वान की प्रतिष्ठा करते हैं।" मगर यह सब तो अहंकार को फुसलाना है; यह तो बच्चे के अहंकार को गुदगुदाना है। यह तो उसे अहंकारी बनाने का उपाय है।

सारी नीति अहंकार पर खड़ी होती है; और धर्म, निर-अहंकार पर। इसलिये धर्म और नीति एक अर्थ में विपरीत हैं। तुम चौंकोगे यह जानकर कि धर्म और नीति विपरीत हैं--इस अर्थ में विपरीत हैं कि धर्म अहंकार पर खड़ा नहीं होता। धर्म यह नहीं कहता कि करुणा करो, क्योंकि इससे स्वर्ग मिलेगा। धर्म कहता हैः करुणा करो, क्योंकि करुणा करना आनंदपूर्ण है। मिलेगा की बात ही नहीं है, भविष्य की बात ही नहीं है, फल की बात ही नहीं है। करुणा में ही रस है।

जो ध्यान में उतरा है, करुणा करेगा ही। इसलिये नहीं कि करुणा करने से कुछ मिलेगा, बल्कि इसलिये कि कुछ मिल चुका है जो करुणा में बहेगा। उसके भीतर ध्यान में आनंद को जन्माया है। अब आनंद बांटने की आकांक्षा पैदा होती है--वैसे ही जैसे फूल खिलता है तो सुवास लुटती है। कोई फूल सुवास को लुटाता नहीं। फूल

खिला कि सुवास लुटी। ऐसे ही ध्यान हुआ कि करुणा बंटी। भीतर चित्त शांत हुआ कि तुम्हारे आसपास शांति की सुगंध फैलने लगेगी। भीतर ध्यान की बदली सघन हुई कि प्रेम की बूंदाबांदी शुरू हो जायेगी।

यह अपने से होगा। इसे साधना नहीं पड़ता। इसलिये यह सहज है। नीति साधनी पड़ती है; धर्म सहज है। नीति को पकड़-पकड़कर आरोपित करना होता है; जबरदस्ती थोपना होता है; आग्रहपूर्वक अपने को अनुशासनबद्ध करना होता है। क्योंकि नीति में लाभ है; नीति के विपरीत जाने में हानि है। नीति में सम्मान है; अनीति में अपमान है। ऐसा सोच-विचारकर गणित बिठाकर चालबाज आदमी नीति को आयोजित कर लेता है।

इसलिये अकसर एक चकित कर देने वाली बात अनुभव में आती है कि जिनको तुम अपराधी कहते हो वे तुम्हारे तथाकथित सम्मानित व्यक्तियों से ज्यादा सीधे-सरल लोग होते हैं। तुम उनकी आंखों में झांको तो तुम पाओगे कि तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्माओं से उनकी आंखें ज्यादा निर्मल हैं। क्यों? उनकी आंखों में वैसी ही निर्मलता है जैसी पशुओं की आंखों में है। उन्होंने जबर्दस्ती कुछ नहीं थोपा है; जो हुआ है होने दिया है। उनके भीतर बुराई की सहजता है। इसे समझना। वे पशु के तल पर जी रहे हैं। वहां बुराई सहज है। फिर एक बुद्धों का तल है, वहां अच्छाई सहज है। और पशुओं और बुद्धों के बीच में मनुष्य का तल है; वहां बुराई भी असहज है, भलाई भी असहज है।

मनुष्य के तल पर बड़ा तनाव है। एक हिस्सा पीछे खींचता है कि बुराई की सहजता पा लो। शराब पीने में एक तरह की सहजता है; विस्मरण हो गया चिंताओं का सब, छूट गये झंझट मन के, घड़ी-भर को मस्ती छा गई। तुम देखते हो, शराब पीने वाले लोग अकसर मिलनसार होंगे। जो शराब नहीं पीते हैं, तुम उन्हें उतना मिलनसार न पाओगे। उनमें कोई बुराई ही नहीं है तो उसकी वजह से अकड़ होगी।

मुल्ला नसरुद्दीन डाक्टर के पास गया और कहा कि मेरे सिर में बड़ा दर्द रहता है, जैसे कोई चीज मुझे जोर से सिर को बांधे हुए है, कोई अदृश्य लोहे का घेरा मेरे सिर को जकड़े हुए है! यह दर्द मिटता ही नहीं। यह जिंदगी-भर से मैं तड़प रहा हूं। कोई उपाय बतायें।

डाक्टर ने परीक्षा की और पूछाः शराब पीते हो? मुल्ला ने कहाः नहीं, कभी नहीं।

"सिगरेट पीते हो?"

मुल्ला ने कहाः "नहीं।"

"पान खाते हो?"

"नहीं।"

"सुंघनी सूंघते हो?"

"नहीं।"

"पराई स्त्रियों के पीछे चक्कर काटते हो?"

मुल्ला ने कहाः क्या बातें कर रहे हो फिजूल की? मैं धार्मिक आदमी हूं!

डाक्टर ने कहाः तब मैं समझ गया, यह तुम्हारी धार्मिकता का ही अदृश्य गोल लोहे का घेरा तुम्हारे सिर को कसे हुए है। यही तुम्हारे दर्द का कारण है। तुम्हारा अहंकार का आभामंडल बहुत चुस्त है। थोड़ी-बहुत भूल-चूकें करो तो थोड़े हल्के हो जाओ।

यह डाक्टर ने बात पते की कही। जो आदमी थोड़ी भूल-चूकें करता है, वह दूसरे को भी भूल-चूकें करते पाता है तो क्षमा कर सकता है। जो आदमी भूल-चूक करता ही नहीं, वह किसी को क्षमा भी नहीं कर सकता। इसलिये तुम्हारे साधु-संत कठोर हो जाते हैं, अति कठोर हो जाते हैं। करुणा की बात, लेकिन व्यक्तित्व कठोर हो

जाता है। अपने को क्षमा नहीं करते, दूसरे को कैसे करेंगे? अपने पर इतने कठोर हैं तो तुम पर तो और भी ज्यादा कठोर हो जायेंगे। जब अपने को ही सता रहे हैं तो वे किसको छोड़ेंगे? उनका चित्त दूसरे को दंडित करने के लिये बड़ा आतुर और लालायित रहता है। मौका भर मिल जाये उन्हें तुम्हारी कुछ भूल पकड़ लेने का--छोटी-छोटी भूलें, मानवीय भूलें--कि किसी ने पान खा लिया है, कि बस पर्याप्त हो गया नरक जाने के लिये! पागल हो गये हो, कहीं पान खाने से कोई नरक गया है! कि किसी ने धूम्रपान कर लिया तो वह नरक चला गया है!

लेकिन एक बात तुम्हें समझ में आ जायेगी कि जो लोग नीति को मानकर चलते हैं उनके चित्त अकड़ जाते हैं, अस्मिता और अहंकार से भर जाते हैं। साधारणतया जिसको तुम अपराधी कहते हो, कभी जेल-घर में जाकर देखो, तो तुम पाओगे सरल लोग, सीधे लोग। शायद इसलिये भूल कर बैठे। बुराई की एक सहजता पाओगे। या फिर बुद्धों में तुम्हें सहजता मिलेगी--भलाई की सहजता। मध्य में दोनों के आदमी है--अटका हुआ, त्रिशंकु की भांति लटका हुआ। एक हिस्सा पीछे खींचता है कि लौट आओ पशु के जगत में, क्योंकि वहां सरलता थी; एक हिस्सा आगे खींचता है कि चलो बढ़ो बुद्धों के जगत में, क्योंकि वहां सरलता है। मगर जहां मनुष्य है वहां खिंचाव ही खिंचाव है। जो नीति को मानकर चलेगा, खिंचावों से कभी मुक्त नहीं होगा, तनावों से मुक्त नहीं होता; नीति उसके चित्त को और तनती चली जाती है।

मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि नीचे गिर जाओ, पशु के तल पर चले जाओ। क्योंकि वस्तुतः गिरने के कितने ही उपाय करो गिर न पाओगे, लौट-लौट आना पड़ेगा। जीवन का एक परम नियम हैः जो जान लिया गया जान लिया गया, उससे लौटने का अब कोई उपाय नहीं है। जो जान लिया उसे अनजाना नहीं किया जा सकता। आदमी आदमी हो गया है, पशु को पीछे छोड़ आया है। चेष्टा करके कभी क्षण-दो-क्षण को पशु हो जाये, मगर फिर वापिस लौट आयेगा। अब मनुष्य से पीछे जाने की कोई सुविधा नहीं है। अब तो सहजता पानी हो तो पशुओं में नहीं पाई जा सकती, अब तो परमात्मा में ही पाई जा सकती है। उस सहजता को ही कहा है तालमुद ने, आदिष्ट के ऊपर उठ जाना।

बुद्ध किसी उपनिषद को मानकर थोड़े ही चलते हैं, कि किसी वेद को मानकर चलते हैं। बुद्ध का तो अपना वेद है; अपने ही भीतर उपनिषद जगा है, उसी के अनुसार चलते हैं। इसलिये तनाव नहीं होता, द्वंद्व नहीं होता। जब तुम किसी और की मानकर चलते हो तो दो हो जाते हैं व्यक्तिः एक तो तुम जो चलना नहीं चाहते, जबरदस्ती चलाते हो अपने को; और एक, जो तुम्हें चला रहा है। तुम्हारे भीतर द्वंद्व स्वाभाविक है।

हम छोटे बच्चों को ही द्वंद्व देना शुरू कर देते हैं। छोटा बच्चा अभी खेलना चाहता है, लेकिन पिता ने कहा मत खेलो, शांत बैठो; तो शांत बैठा है। तुमने कभी किसी छोटे बच्चे को शांत बिठाकर देखा? बैठा रहेगा शांत, हाथ-पैर हिलायेगा, सिर अकड़ायेगा, मुंह बनायेगा, करवट बदलेगा। तुमने कहा है शांत, तो बैठा है शांत; मगर उसके प्राण आतुर हैं दौड़ने को, भागने को, नाचने को। अभी ऊर्जा अतिशय है। अभी बाढ़ है ऊर्जा की। अभी वह कैसे बूढ़ों की तरह शांत बैठ जाये? उसके भीतर तुमने द्वंद्व पैदा कर दिया। वह भीतर तो नाचना चाहता है, कूदना चाहता है, दौड़ना चाहता है, तितलियां पकड़ने को निकल जाना चाहता है, वृक्षों पर चढ़ना चाहता है, छप्पर पर खड़े होकर आकाश के तारे तोड़ लेना चाहता है। और तुमने कहा शांत बैठो, तो बैठा है शांत; भीतर-भीतर कुढ़ रहा है; भीतर-भीतर विपरीत हुए जा रहा है तुम्हारे; भीतर-भीतर सोच रहा है कि कैसे छुटकारा हो यहां से। तुमने उसके भीतर दो व्यक्ति पैदा कर दियेः एक, जो बाहर से शांत बनकर बैठा है, परिधि पर; और एक केंद्र पर, जो अभी उछलना-कूदना चाहता है। बस तुमने आदमी के भीतर तनाव का सूत्र डाल दिया। अब जिंदगी-भर यही होगा। उसे करना कुछ है; लोग कहते हैं कुछ करो। वही करेगा, जो लोग कहते हैं। पत्नी कहती

है ऐसा करो तो वैसा करेगा। दफ्तर में कोई कहता है ऐसा करो, तो वैसा करेगा। राजनेता कहता है ऐसा करो तो वैसा करेगा। अब यह जिंदगी-भर थप.ेडे ही खायेगा। यह आदिष्ट को मानकर चलेगा। यह बड़ा आज्ञाकारी रहेगा। और इसको, जितनी आज्ञाकारिता दिखलायेगा उतना सम्मान मिलेगा। वह सम्मान खुशामद है आज्ञा की। वह सम्मान इसको फुसलाना है।

जो तुम्हारी आज्ञा मानता है, तुम उसको बड़ा समादृत करते हो। तुम कहते होः अहा, मनुष्य हो तो ऐसा हो। तुम आज्ञाकारी को सम्मान देकर, उसकी स्तुति करके रिश्वत दे रहे हो। और आज्ञाकारी तुम्हारी रिश्वत के जहर से भरता जा रहा है। यह पर्याप्त नहीं है। इससे वह आदमी तो भला रहेगा, किसी की बुराई उससे होगी नहीं, लेकिन उसकी आत्मा कुढ़ती रहेगी, जलती रहेगी--नरकाग्नि में। उसके जीवन में कभी तुम फूल खिलते न देखोगे, उसके जीवन में बसंत न आयेगा।

इसलिये तुम्हारे तथाकथित धार्मिक आदमी, जो धार्मिक नहीं हैं मात्र नैतिक हैं, सदा उदास और गंभीर और लंबे चेहरोंवाले मालूम पड़ते हैं। उनके लंबे चेहरे, उनकी उदासी, उनकी गंभीरता ऊपर से थोपी गई है। वे कभी हंसे नहीं हैं। वे कभी नाचे नहीं हैं। वे कभी हंसेंगे भी नहीं। वे कभी नाचेंगे भी नहीं। वे जगत पर एक बोझ हैं। यद्यपि उनसे कभी कोई बुराई न होगी। वे किसी की चोरी न करेंगे। वे किसी की हत्या न करेंगे। मगर किसी की चोरी न करना और किसी की हत्या न करना नकारात्मक हैं।

तालमुद में जहां यह वचन है कि जो तुझे आदिष्ट है उससे परे भी, उससे ऊपर भी तू पवित्राचरण कर, यह वचन उन दस आज्ञाओं के संबंध में है जो यहूदियों के नियम हैं--टेन कमांडमेंट्स। उन दस आज्ञाओं में यही बताया गया है ऐसा न करो, ऐसा न करो, ऐसा न करो। वे नकारात्मक हैं। आज्ञायें सदा नकारात्मक होती हैं। आज्ञायें कभी विधायक नहीं हो सकतीं। सब नियम नकारात्मक होते हैंः ऐसा न करो... । तो ऐसा न करोगे तो तुमसे कुछ बुराई तो न होगी, यह तो सच है; लेकिन क्या इतना ही जीवन काफी है कि तुमसे कोई बुराई न हो? तो फिर मरने में और जीने में फर्क क्या हुआ? मरे हुए आदमी से भी बुराई नहीं होती। जो मर गया, वह सदा के लिये भला है। अब उससे कभी बुरा न होगा।

तुमने मुर्दों को कभी बुराई करते देखा? मुर्दों को कभी धूम्रपान करते देखा? मुर्दों को कभी तुमने किसी की जेब काटते देखा? मुर्दे तो सदा के लिये भले हो गये।

इसलिये तुमने एक मजे की बात देखी होगीः जैसे ही कोई आदमी मर जाता है, लोग उसकी प्रशंसा करने लगते हैं। मुर्दों की लोग प्रशंसा करते हैं! आदमी मर जाये, बस तत्क्षण प्रशंसा शुरू हो जाती है।

फ्रांस के बड़े विचारक रूसो का एक दुश्मन था, जिससे जिंदगी-भर उसका विवाद चलता रहा और दोनों ने एक-दूसरे को खूब खंडन-मंडन किया। जानी दुश्मन थे। एक-दूसरे का चेहरा नहीं देखते थे। और रास्ते पर अगर मिल जाते थे तो मुंह बचाकर निकल जाते थे या बगल की गली में सरक जाते थे, ताकि आमना-सामना न हो। दुश्मन के मरने की खबर आई। किसी ने आकर खबर दी कि रूसो, पता है तुम्हें, तुम्हारा दुश्मन मर गया है? तो रूसो ने कहाः अगर यह खबर सच है तो मैं यह कह सकता हूं कि वह आदमी महान था। अगर यह खबर सच है। प्रोवाइडेड इट इज ट्रू। तो मैं कह सकता हूं कि, ही वा.ज ए ग्रेट मैन। कि बड़ा आदमी था वह। मगर एक बात पक्की हो जाये कि मर गया हो। अगर न मरा हो तो फिर मैं यह नहीं कह सकता।

मरे आदमी की हम प्रशंसा करने लगते हैं। एक गांव में एक आदमी मरा--राजनेता था गांव का। गांव-भर उससे परेशान था, जैसा नेताओं से लोग परेशान हैं। मरा, तो गांव का नियम था कि जब कोई मर जाये तो उसकी प्रशंसा में कुछ व्याख्यान दिया जाये मरघट पर। कोई व्याख्यान देने को राजी नहीं, क्योंकि बहुत लोगों ने

सिर मारा कि कोई एकाध बात तो खोज लें उसकी जिंदगी में जिसकी प्रशंसा हो सके। कोई बात ही न मिले, बात हो तो मिले! गांव-भर उसकी नस-नस से परिचित था। गांव-भर प्रसन्न था कि वे विदा हो गये। यह बड़ा ही अच्छा हुआ। यद्यपि लोग उदासी का ढोंग रचे बैठे थे, मगर अंदर प्रसन्न हो रहे थे। कोई प्रशंसा में बोलने को खड़ा न हो। गांव का नियम यह था कि जब तक प्रशंसा में बोला न जाये, तब तक अर्थी में आग नहीं लगाई जा सकती।

आखिर गांव का एक पंडित खड़ा हुआ। उसने कहाः "भाइयो! नेता जी तो मर गये, मगर अपने पांच भाई छोड़ गये हैं। वह उन पांच भाइयों का स्मरण करो। उन पांच भाइयों के मुकाबले नेता जी देवता पुरुष थे।" इस तरह उसने प्रशंसा की। सीधी तो प्रशंसा का कोई उपाय नहीं था। उन पांच भाइयों के मुकाबले! क्योंकि वे उनसे भी पहुंचे हुए उपद्रवी हैं। उन पांच के मुकाबले नेता जी देवता पुरुष थे! प्रशंसा हो गई, लोग जल्दी से झपटकर आग लगाये। छुटकारा हो!

मरते ही सभी लोग स्वर्गीय हो जाते हैं, चाहे वे दिल्ली में ही मरें, तो भी स्वर्गीय हो जाते हैं! फिर नरक कौन जाता होगा? फिर तो नरक खाली पड़ा होगा, अगर दिल्ली में मरनेवाले लोग स्वर्ग चले जाते हैं। नहीं, लेकिन जो मर गया उसकी हम प्रशंसा करते हैं। यह शिष्टाचार है। अब किसी को, कोई मर गया है, उसको नारकीय तो नहीं कहता। सभी मरनेवालों को हम स्वर्गीय कहते हैं। यह शिष्टाचार है, लेकिन शिष्टाचार के पीछे एक बहुत महत्वपूर्ण बात छिपी हैः मुर्दा आदमी अब बुरा नहीं कर सकता। अब किसी का बुरा नहीं कर सकता, इसलिये बेचारे की अब क्या बुराई करो? अब तो बुराई करने के पार हो गया।

जिनको तुम तथाकथित धार्मिक कहते हो, वे मुर्दा लोग हैं, उनसे किसी की बुराई नहीं होती, यह तो सच है; मगर उनके जीवन में उत्सव नहीं है, तो उनका जीवन नकारात्मक है।

ऐसा ही समझो कि कोई किसी गुलाब की झाड़ी की प्रशंसा में कहे कि इस झाड़ी में एक भी कांटा नहीं है। क्या तुम समझोगे यह पर्याप्त है? गुलाबों की झाड़ी की प्रशंसा कि इस झाड़ी में एक भी कांटा नहीं? प्रशंसा तो तब होगी जब कोई कहे इस झाड़ी में कैसे प्यारे फूल खिले हैं! नैतिक व्यक्ति ऐसा होता है, जिसकी झा.ड़ी में कांटा नहीं है और धार्मिक व्यक्ति ऐसा होता है जिसकी झाड़ी में फूल खिले हैं। इस भेद को स्पष्ट समझ लो। धार्मिक व्यक्ति नाचता है, आनंद-मग्न होता है। धार्मिक व्यक्ति मस्त होता है, मदमस्त होता है! धार्मिक व्यक्ति वह है जिसके जीवन में बसंत आ गया; जिसके जीवन में सुरभि उठी; जिसके जीवन में ज्योति जली। इतना ही काफी नहीं है कि कांटे नहीं हैं; जब तक फूल न हों तब तक तृप्त मत हो जाना।

तालमुद का यही अर्थ हैः जो तुझे आदिष्ट है वह तो करो, लेकिन उतने से ही तृप्त मत हो जाना। उतने से मंजिल नहीं आ जाती। उससे परे भी, उससे ऊपर भी तू पवित्र आचरण कर। उसके परे क्या है? क्योंकि आदिष्ट में तो सारे शास्त्र आ गये, सब बाइबिलें, सब वेद, सब धम्मपद, सब कुरान आ गये। आदिष्ट का मतलब हैः जो-जो आदेश दिये गये हैं आज तक, वे सब आ गये। उससे परे क्या है? उससे परे तुम्हारी अंतरात्मा है। उससे परे तुम्हारा ध्यान का जगत है। उससे परे तुम्हारे जीवन का केंद्र है।

आदिष्ट तो परिधि को छूता है। जैसे किसी के चेहरे पर हमने रंग रंग दिया; आदिष्ट तो बस मुखौटा बनाता है, लेकिन भीतर तुम्हारी आत्मा को तो कोई नहीं रंग सकता। जब तक कि तुम्हारी आत्मा ही अपने रंग बिखेरने न लगे, जब तक कि तुम्हारी आत्मा में ही इंद्रधनुष न जन्मे--तब तक कोई बाहर से तो नहीं रंग सकता। तुम्हारी आत्मा तक किसी के हाथ नहीं पहुंच सकते, कोई तूलिका नहीं पहुंच सकती, तुम्हीं पहुंच सकते हो, बस केवल तुम्हीं पहुंच सकते हो!

दूर-वीक्षण-यंत्र से तुम व्योम को ही देखते हो?
एक ग्रह यह भूमि भी तो है।
कभी देखो इसे भी यंत्र के बल से।

न समझो यह कि धरती तो
हमारी सेज है, उत्संग है, पथ है,
उसे क्या चीर कर पढ़ना?
यहां के पेड़-पौधे, फूल, नर-नारी
सभी हर रोज मिलते हैं।

अरे, ये पेड़-पौधे, फूल-फल, नर-नारी
किसी प्रच्छन्न लौ के आवरण हैं।
जानते हो, बीज है वह कौन
ये जिसकी त्वचाएं हैं?
ज्ञात है वह अर्थ जो इन अक्षरों के पार भूला है?

दूर पर बैठे ग्रहों की नाप, यह भी शक्ति ही है।
किंतु, नापोगे नहीं गहराइयां
जो छिपी हैं पेड़-पौधे में, मनुज में फूल में?

ला सको तो ज्योतिषी! लाओ मुकुर कोई।
नहीं वह यंत्र केवल क्षेत्रफल, आकार या घन नापने वाला।
किंतु वह लोचन सुरभि से, रंग से नीचे उतर कर
पुष्प के अव्यक्त उर में झांकने वाला।

तुम भी एक फूल हो। तुम्हारे फूल के ठीक अंतर-हृदय में कोई सुवास छिपी है। उसमें झांको, उसको परखो। वहां पहुंचो। उस अंतर्यात्रा पर निकलो। तब वह पवित्र आचरण प्रगट होगा, जो समस्त आदेशों से ऊपर है। तब तुम स्वयं शास्त्र बनोगे। तब तुम स्वयं सत्य की एक अभिव्यक्ति होओगे।

मैं अपने संन्यासियों को निश्चित ही तालमुद के इस वचन की याद दिला देना चाहता हूं। यह वचन महत्वपूर्ण है। मैं चाहता हूं कि जो तुम मुझे सुन रहे हो, जो तुम मेरे साथ चल रहे हो, मेरी ही सुनकर, मेरी ही मानकर मत चलते रहना। मेरी तो इतनी मानो जितने से तुम अपनी जान सको, बस। मेरी इतनी मानो जिससे तुम अपनी अंतरात्मा में प्रवेश कर सको, बस। मेरी अंगुलियों के इशारों को समझो और अपने भीतर डुबकी मारो। वहां तो तुम्हीं को जाना पड़ेगा। वहां तुम्हीं जा सकते हो, कोई और नहीं जा सकता। और उस अनुभव के बाद तुम्हारे जीवन में एक प्रकाश होगा, एक आभा होगी, एक आनंद होगा, एक पवित्रता हेगी, एक निर्दोषता होगी। वही धर्म है। और वैसा व्यक्ति ही परमात्मा को जान पाता है।

नैतिक सुविधा से जीता है; सत्य का उसे कभी कोई पता नहीं चलता। धार्मिक को बड़ी असुविधाएं झेलनी पड़ती हैं, लेकिन उसे सत्य का अनुभव होता है। और सत्य के अनुभव के लिये सारी असुविधाएं झेल लेने जैसी हैं। क्यों धार्मिक को असुविधा झेलनी पड़ती है? क्योंकि बहुत बार ऐसा होगा कि तुम्हारी अंतरात्मा का जो उदघोष है वह आदिष्ट के विपरीत पड़ जायेगा, तब अड़चन शुरू होगी। उस समय अपनी ही सुनना। फिर सारे शास्त्र व्यर्थ हैं। फिर सारी मान्यताएं व्यर्थ हैं। फिर तुम्हें जो भी कीमत चुकानी पड़े, चुकाना। अपनी ही सुनना। जब तुम्हारी भीतर की अंतरात्मा आवाज देने लगे, और जब अंतरात्मा की आवाज पैदा होती है तो तत्क्षण पहचान ली जाती है, कि परमात्मा तुम्हारे भीतर बोलने लगा। इतनी प्रामाणिक होती है, इतनी स्वसंवेद्य होती है, इतनी स्व-आलोकित होती है कि तुम भूल में कभी न पड़ोगे। ऐसी भूल कभी नहीं होती कि पता नहीं यह मेरे मन की ही बात हो, मेरी आत्मा की न हो! नहीं, ऐसी भूल कभी नहीं होती। तुम्हें मन की बातों का पता है। जब आत्मा की आवाज गूंजती है तो तुम्हें ऐसी मालूम ही नहीं होती कि मेरी आवाज है; तुम्हें मालूम होती है कि सारा अस्तित्व मेरे भीतर बोला। वह ध्वनि आलोकित होती है, आंदोलित कर जाती है, रोएं-रोएं को कंपा जाती है। जिस दिन वैसी आवाज गूंजती है--इल्हाम कहो उसे, जैसा मुहम्मद ने कहा, या प्रेरणा कहो, या जो भी शब्द तुम देना पसंद करो--जब तुम्हारे भीतर से अनंत बोलता है तब स्वभावतः तुम बहुत-से सामाजिक नियमों के विपरीत पड़ जाओगे। क्योंकि सामाजिक नियम तो सामाजिक सुविधा-असुविधा को सोचकर बनाये गये हैं और अंधों ने ही बनाये हैं। तुम्हारे पास जब अपनी आंखें आ जायेंगी तब थोड़ी मुश्किल होगी। आवश्यक नहीं है कि तुम अंधों से टकराओ। जहां तक बन सके, मत टकराना, क्योंकि उनका कोई कसूर भी नहीं है। लेकिन अगर टकराहट मजबूरी ही हो जाये तो अंतरात्मा की आवाज को झुठलाना भी मत। क्योंकि उसे कोई भी कीमत पर छोड़ना नहीं है; फिर चाहे सब खोना पड़े तो सब दांव पर लगा देना।

काढ़ लो दोनों नयन मेरे,
तुम्हारी ओर अपलक देखना तब भी न छोडूंगा।
तुम्हारे पांव की आहट इसी सुख से सुनूंगा,
श्रवण के द्वार चाहे बंद कर दो।

चरण भी छीन लो यदि,
तुम्हारी ओर यों ही रात-दिन चलता रहूंगा।
कथा अपनी तुम्हारी सामने कहना न छोडूंगा,
भले ही काट लो तुम जीभ, मुझको मूक कर दो।

भुजाएं तोड़ कर मेरी भले निर्भुज बना दो,
तुम्हें आलिंगनों के पाश में बांधे रहूंगा।
हृदय यदि छीन लोगे,
उठेंगी धड़कनें कुछ और होकर तीव्र मानस में।

जला कर आग यदि मस्तिष्क को भी क्षार कर दोगे,
रुधिर की वीचियों पर मैं तुम्हें ढोता फिरूंगा।

जिसने भीतर की आवाज सुनी है, उसके हाथ भी कट जायें तो उसके आलिंगन में बाधा नहीं पड़ती। उसके पैर भी कट जायें तो भी उसकी यात्रा अवरुद्ध नहीं होती। उसकी जीभ भी काट लो तो भी परमात्मा की प्रार्थना जारी रहती है--उसके मौन में, उसके शून्य में। जिसके भीतर अंतरात्मा जगी उसके भीतर अब सारे आदेशों का आदेश आ गया--अपना आदेश आ गया! फिर सब दांव पर लगाने का साहस चाहिए। जिनमें इतना साहस होता है वे ही धार्मिक हो पाते हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो,

कोरा कागज था यह मन मेरा
लिख लिया नाम जिस पे तेरा
चैन गंवाया मैंने, निंदिया गंवाई
सारी-सारी रात जागूं दूं मैं दुहाई
नैना कजरारे मतवाले, ये न जानें
खाली दर्पण था यह मन मेरा
देख लिया मुख जिसमें तेरा
कोरा कागज था यह मन मेरा।

वीणा! कागज कोरा हो तो इससे बड़ी और कोई बात नहीं, क्योंकि कोरे कागज पर ही वेद उतरते हैं। सिर्फ कोरे कागज पर उपनिषदों का जन्म होता है, कुरानें अवतरित होती हैं सिर्फ कोरे-कागजों पर। जिसने चित्त को कोरा कागज बना लिया, बस उसने सब पा लिया। वहीं तो अड़चन है। वहीं कठिनाई है। तुम्हारे चित्त के कागज इतने गुदे पड़े हैं, इतनी लिखावटें, इतने हाथों से लिख दी गई हैं कि अब उन पर कुछ परमात्मा लिखना भी चाहे तो अंकित न हो सकेगा; अंकित हो भी जाये तो समझ में न आ सकेगा कि क्या लिखा गया है।

मन को कोरा बनाना पहला कदम है परमात्मा की यात्रा में। वही तीर्थ है। जिसने मन को कोरा बना लिया, तीर्थ पहुंच गया। उसका काबा आ गया। अब कहीं जाना नहीं है। अब तो इसी कोरे मन में परमात्मा उतरेगा।

लेकिन मन को कोरा करने में बड़ी अड़चन है। कोई मन हिंदू है तो कोरा नहीं है। कोई मन मुसलमान है तो कोरा नहीं है। कोई मन जैन है तो कोरा नहीं है। कोई मन कम्यूनिस्ट है तो कोरा नहीं है। मन का कोई भी पक्षपात हुआ, कोई भी धारणा हुई, कोई भी दृष्टि हुई, कोई भी दर्शन-शास्त्र हुआ--कि मन कोरा नहीं है। फिर मन गुदा है, न मालूम कितने शब्दों से भरा है। और सब शब्द उधार, सब बासे, सब पराये, दूसरों से लिये हुए, अपना अनुभव कोई भी नहीं। अपना अनुभव तो कोरे मन में जगता है।

तुम्हारे चित्त में इतना शोरगुल है कि अगर परमात्मा अपना इकतारा बजाये भी तो सुनाई पड़ेगा? नक्कारखाने में तूती की आवाज होगी। कहां सुनाई पड़ेगा? जैसे भरे बाजार में एक कोयल बोलने लगे, किसको सुनाई पड़ेगा? लोगों के चित्त इतने उपद्रव से भरे हैं कि परमात्मा बहुत बार आता है तुम्हारे द्वार तक, दस्तक देकर लौट जाता है, तुम उसकी दस्तक सुनते नहीं। बहुत बार तुम्हें झंझोड़ देता है, मगर तुम सोये हो गहरी तंद्रा में; तुम जागते नहीं, तुम और करवट लेकर दुबारा नया सपना देखने लगते हो।

तुम जरा कोरे हो जाओ तो उसका बादल घिरे, बरसे जिस अमृत की तलाश तुम कर रहे हो, वह अमृत बरसने को आतुर है। तुम्हीं तलाश नहीं कर रहे हो, अमृत भी तुम्हारी तलाश कर रहा है। प्यासा ही सरोवर नहीं खोज रहा है, सरोवर भी प्यासे की राह देख रहा है, क्योंकि जब प्यासे की प्यास बुझती है तो प्यासे की ही प्यास नहीं बुझती, सरोवर भी सार्थक होता है। यह बात खूब मन में संजोकर रख लेना।

तुम्हीं नहीं खोज रहे परमात्मा को, परमात्मा भी तुम्हें खोज रहा है। जिस दिन मिलन होगा, तुम्हीं आनंदित नहीं होओगे, परमात्मा भी नाच उठेगा। इसलिये कथाएं हैं कि जब बुद्ध को ज्ञान हुआ तो बेमौसम फूल खिल गये। ये तो प्रतीक हैं, काव्य-प्रतीक। ये इतना ही बताते हैं कि सारा अस्तित्व आनंदमग्न हो गया--बेमौसम फूल खिल गये, कि सूखे वृक्षों में हरे पत्ते आ गये, कि देवताओं ने आकाश में दुंदुभी बजाई, कि आकाश से फूल झरे, झरते ही चले गये।

नहीं, कोई फूल दिखाई पड़ने वाले झरे हैं, नहीं कोई सूखे वृक्षों पर पत्ते आये हैं, नहीं बेमौसम कोई फूल खिले हैं--इनको तुम ऐतिहासिक तथ्य मत समझ लेना, अन्यथा भूल-चूक हो जायेगी। और जो इस तरह की बातों को इतिहास समझ लेता है वह बुद्ध को भी झुठला देता है। उसके जीवन में धीरे-धीरे बुद्ध भी एक कहानी और कथा हो जाते हैं--परिकथा, एक मिथ, एक पुराण। उनका यथार्थ खो जाता है।

ये काव्य-प्रतीक हैं। प्यारे प्रतीक हैं, लेकिन कविताएं इतिहास नहीं हैं। कविताएं कुछ कहती हैं, जरूर कुछ कहती हैं--कुछ अलौकिक कहती हैं। मगर कविताएं लौकिक यथार्थ के संबंध में कोई प्रमाण नहीं हैं। अदृश्य के संबंध में संकेत हैं, लेकिन उनको निचोड़कर तुम अगर इतिहास बनाने लगोगे तो मुश्किल हो जायेगी। इतना ही अर्थ है, इतना ही अभिप्राय है कि बुद्ध को जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तो सारा अस्तित्व आनंद-मग्न हो गया। इसको कैसे कहें? ... देवताओं ने दुंदुभियां बजाईं, कि फूल आकाश से झरे, झरते ही गये, कि बेमौसम फूल आ गये, कि सूखे वृक्ष हरे हो गये। यह कहने का एक ढंग है, एक लहजा--और सुंदर और प्यारा।

मन जब कोरा हो गया बुद्ध का तो आकाश बरसा। जब तक बुद्ध विचारों से भरे रहे, तब तक यह घटना न घटी; जब निर्विचार हो गये, तब।

इसलिये समस्त धर्मों का मौलिक संदेश एक ही हैः निर्विचार हो जाओ। मगर कैसे तुम निर्विचार होओ? तुम तो उन्हीं शास्त्रों को अपने सिर में भरे बैठे हो जो कहते हैं कि निर्विचार हो जाओ।

एक पंडित कुछ वर्ष हुए मुझे मिलने आये। मैं काशी विश्वविद्यालय में मेहमान था। बड़े पंडित हैं। पतंजलि के योग-सूत्रों पर उन्होंने बड़ी भारी व्याख्या लिखी है। मैंने उनसे पूछाः निर्विचार साधा? वे थोड़े चौंके। ऐसा उनसे किसी ने पूछा न होगा। लोगों ने पूछा होगा उनसे कि पतंजलि की निर्विकल्प समाधि का क्या अर्थ है और वह उन्होंने समझाया होगा। मैंने उनसे पूछाः आपको निर्विकल्प का अनुभव हुआ? इधर-उधर देखने लगे। कहा कि नहीं। आपसे कैसे झूठ बोलूं? निर्विकल्प का मुझे अनुभव नहीं हुआ है।

और मैंने कहाः पतंजलि पर जिंदगी हो गई व्याख्या करते आपको, आपको पतंजलि से इतना भी संकेत नहीं मिला कि निर्विचार होना है, निर्विकल्प होना है? वही तो सार है।

कहाः वह तो सार है, मगर मैंने इस तरह कभी नहीं सोचा। मैं तो नये-नये अर्थ निकालता रहा, नई-नई व्याख्याएं करता रहा, पतंजलि के लिये नये-नये समर्थन खोजता रहा। पाश्चात्य मनोविज्ञान से, विज्ञान से, सबसे मैंने समर्थन खोजकर व्याख्याएं लिखीं।

लेकिन मैंने कहाः निर्विचार कब होओगे? यह तो उलटी ही बात हो गई। अब पतंजलि ही तुम्हारे लिये विचार बन गये। अब यही पतंजलि के शब्द तुम्हारे चित्त में घूमते रहते हैं दिन-रात, तुम इन्हीं पर नई-नई

व्याख्याएं, नई-नई सूझ की कलमें लगाते रहते हो। मगर निर्विचार कब होओगे? पतंजलि से कब छुटकारा पाओगे?

बुद्ध का बहुत अदभुत वचन हैः अगर मैं तुम्हें राह में मिल जाऊं तो तलवार उठाकर मेरे दो टुकड़े कर देना।

सदगुरु यही कहते रहे हैं कि हम इशारा कर रहे हैं निर्विचार का, कहीं ऐसा न हो कि तुम हमारे ही विचार पकड़ लो!

मन कोरा हो जाये... कोरे मन का अर्थ हैः न हिंदू न मुसलमान न ईसाई न जैन न बौद्ध। कोरे मन का अर्थ हैः न अब वेद है मन में, न कुरान है, न बाइबिल है। कोरे मन का अर्थ हैः अब कोई पक्षपात नहीं, कोई बदली नहीं। खाली आकाश! निर्विचार, निर्विकल्प! बस क्रांति की घड़ी आ गई। मंदिर के द्वार खुलने का क्षण आ गया। अब घिरेंगे मेघ--तुम्हारे विचार के नहीं। परमात्मा सघन होगा तुम्हारे ऊपर।

बुद्ध ने इस अवस्था को धर्म-मेघ-समाधि कहा है। धर्म का बादल तुम्हारे ऊपर घिरेगा और अमृत की वर्षा होगी। बस वीणा! मन कोरा कागज हो, तो वर्षा हो जाये।

धरा की भींगती चूनर खनकते रिमझिमी पायल,
लहर जाता क्षितिज के छोर तक हर प्राण कर घायल!

विरह सावन उमड़ आया मचलती स्नेह की बदली
सजल आकाश के दृग में चमकती रूप की बिजली,
भटकती वायु बन बोझिल पिलाकर मोह की मदिरा
मचल गाता हृदय में नित प्रणय का सिंधु-मधु-लहरा;

मलय का मधुमयी झोंका, विहग कुल का मधुर कलरव,
सिहर जाता विपिन के छोर तक हर प्राणकर पागल।

पपीहा स्वाति की निर्मम बदलियां निरख सकुचाता
सजल संगीत पल पल श्वास से सौ बार दुहराता,
कुसुम दल का उनींदापन मुखर अलि का थिरक चुंबन
पिघलती सांझ की अमराइयों में गंध-मधु-नर्तन,
भटकती कुंज में कोकिल, मयूरी थिरकती बन-बन,
फहर सुधि द्वार तक जाता सुभग सौगात का आंचल।

खिले विश्वास के सरसिज, विहंसते धूलकण में तृण
धरा से झांकते अंकुर, स्वरों में मूल आकर्षण
उमड़ती भाव की गंगा, लहराती साध की यमुना,
बहक जाती तरी निःश्वास की लख सावनी सपना;
बिखरता रूप-रंग-सौरभ, बहारों का खिला शतदल,

बरस जाता निमिष में खोल पलकें बावरा बादल।

एक क्षण में वर्षा हो जाती है। बरस जाता निमिष में खोल पलकें बावरा बादल! जैसे बाहर बादल बरसते हैं, ऐसे ही भीतर भी बादल बरसते हैं। जितना बड़ा आकाश बाहर है इतना ही बड़ा आकाश भीतर है। पर कोरे हो जाओ तो उसका मुख दिखाई पड़ जाये।

तूने कहा वीणाः देख लिया मुख जिसमें तेरा, कोरा कागज था यह मन मेरा।

कोरे हो जाओ तो चारों तरफ मौजूद है। कोरे हो गये कि तुम दर्पण हो गये। फिर उसे खोजने कहीं जाना नहीं पड़ता। वह आया ही हुआ है। अतिथि आया ही हुआ है, लेकिन आतिथेय बेहोश है, मूर्च्छित है। बादल बरसने को तत्पर हैं, लेकिन तुम्हारा पात्र उल्टा रखा है। बरसे भी तो व्यर्थ जाये।

तुम अपने अहंकार से इतने भरे हो कि तुम्हारे भीतर खाली जगह ही नहीं है। परमात्मा प्रवेश भी पाना चाहे तो कहां स्थान है तुम्हारे भीतर? तुम तो स्वयं ही सिंहासन पर बैठे हो। तुमने तो अपने अहंकार को ही सिंहासन पर बिठा दिया है। खाली करो सिंहासन! रिक्त करो सिंहासन! कोरा करो कागज!

तीसरा प्रश्नः बस, एक प्रार्थना है कि आपके पास जो आग है, उसमें पूरी-पूरी जल जाऊं और खो जाऊं।

समाधि, जलना शुरू हो गया है, खोना शुरू हो गया है। खोना शुरू हो गया है, इसलिए तो और खोने की आकांक्षा जगी है। जलना शुरू हो गया है, जलने का रस आना शुरू हो गया है। इसलिए तो पूरे-पूरे जल जाने की अभीप्सा जगी है।

जो इस आग को पहचान लेंगे--स्वाद से; दूर से देखेंगे तो घबड़ा जायेंगे। और अनेक लोग हैं जो दूर से ही इस आग को देख रहे हैं। शायद दूर से स्वयं भी नहीं देख रहे हैं; दूसरों ने दूर से देखा है, उनकी बातें सुन-सुनकर देख रहे हैं।

जो इस आग को अनुभव से देखेंगे, पास आकर देखेंगे, थोड़े निकट, वे निश्चित ही जल जाने को आतुर होंगे, क्योंकि यह जलना ऐसा है जैसे नया जीवन उपलब्ध होता है। और मिटे बिना तो पाया नहीं जा सकता।

धन्यभागी वही हैं जो स्वयं को गंवा देंगे, क्योंकि वही स्वयं को पा लेने का उपाय है।

जब कोई तामीर बेतखरीब हो सकती नहीं।

खुद मुझे अपने लिए बरबाद होना चाहिए।।

इस जगत में बिना मिटाये कुछ भी नहीं बनता। जब कोई तामीर बेतखरीब हो सकती नहीं, जब कोई चीज बन ही नहीं सकती बिना मिटाये, बिना विध्वंस के सृजन होता ही नहीं है... खुद मुझे अपने लिए बरबाद होना चाहिए... तो फिर एक सूत्र समझ लोः मिटना होगा तुम्हें, अगर स्वयं को पाना है। जलना होगा तुम्हें, अगर ज्योतिर्मय हो जाना है।

बीज मिटता है तो वृक्ष होता है और नदी मिटती है तो सागर हो जाती है। जिस घड़ी तुम मिटने को राजी हो गये, उसी घड़ी तुम्हारे भीतर परम का आविर्भाव हो जाता है। वह फिर कभी नहीं मिटता।

तुम तो क्षणभंगुर हो, पानी के बबूले हो; बचे भी तो कितनी देर बचोगे?

ज्यादा देर बच न सकोगे। यहां बचने का कोई उपाय नहीं है। मौत तो आ ही जायेगी। मौत तो मिटा ही जायेगी। और जब मौत मिटा ही देती है तो फिर अपने ही हाथ से छलांग क्यों न लगा लेनी। जो स्वयं मर जाता है वही ध्यान को उपलब्ध हो जाता है। समाधि आत्ममरण है।

और ख्याल रखना, मरने से कोई शारीरिक मरने की बात नहीं है। शरीर तो बहुत बार मरा है और फिर-फिर तुम वापिस आ गये। इस बार अहंकार को मर जाने दो कि फिर वापिस आना न होगा। फिर तुम सुगत हो जाओगे। जो ठीक-ठीक चला गया, फिर वापिस नहीं आता।

सुगत बुद्ध का एक नाम है, उसका अर्थ होता हैः जो ठीक-ठीक चला गया। इतने ठीक-ठीक चला गया कि फिर वापिस नहीं आता है।

यहां जीवन में कुछ पकड़ने जैसा है भी तो नहीं। कैसे लोग पकड़ लेते हैं इंद्रधनुषों को, यह भी आश्चर्य की बात है! कैसे मृग-मरीचिकाओं में भटकते रहते हैं, यह भरोसा नहीं आता कि कैसे यह चमत्कार घटता है!

पल छिन में धूप कहीं छांव!
खिड़की से दीख रहा खुला आसमान
मेघों के छितराए तिरते जलयान,
गलियों का कोलाहल करता संकेत
सागर को नाप रहा लहरों का पांव।
पल छिन में धूप कहीं छांव।।
फूलों पर बैठ अलि ऊंघ रहा आज
सपन गीत गाता ले भावों का साज,
पल में उड़ जाता फुर फहराके पंख
गंध-हीन फूल बना सपनों के गांव।
पल छिन में धूप कहीं छांव।।
प्राणों की गागर से सांसों की गंध।
रीत गयी बिन पूछे तब का संबंध,
अंतर्मन पूछ रहा उनका घर-द्वार
बिन पूछे उनको बह जाये किस ठांव।
पल छिन में धूप कहीं छांव।।

क्षण-क्षण में सब बदलता है यहां। अभी सुबह, अभी सांझ। अभी जन्म, अभी मौत। अभी बसंत था, आ गया पतझड़। अभी बाढ़ थी नदी में, अब सब सूख गई धार। अभी जवानी, अभी बुढ़ापा। अभी सुख, अभी दुख। अभी सफलता, अभी असफलता।

पल छिन में धूप कहीं छांव!
सागर को नाप रहा लहरों का पांव।
पल छिन में धूप कहीं छांव।

इस जगत में पकड़ने योग्य कुछ है भी तो नहीं। सागर की लहरों पर देखी है झाग, सुबह के सूरज में चमकती झाग, ऐसी लगती है जैसे हीरे-मोती हों! हाथ में लोगे, पानी रह जायेगा। इससे ज्यादा इस जगत में कुछ है भी नहीं। यहां जो जीने की आकांक्षा रखते हैं वे सिर्फ मरते हैं।

समाधि, यह शुभ है कि तुझे जलने का भाव उठ रहा है कि पूरे जल जायें। यहां जो मर जाते हैं--स्वेच्छा से, वे ही शाश्वत जीवन को जान पाते हैं।

जीसस ने कहा हैः अपने को बचाना मत, अन्यथा खो दोगे। जीसस ने कहा हैः धन्यभागी हैं वे जो अपने को खो देते हैं, क्योंकि फिर वे कभी भी खो न सकेंगे; वे अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं।

यहां एक ही चीज थिर है; उसको एक तरफ से देखो तो उसका नाम ध्यान है, दूसरी तरफ से देखो तो उसका नाम प्रेम है। शेष सब अथिर है। इस जगत में एक ही चीज थिर है। अगर भक्तों की नजर से देखो तो उसका नाम प्रेम है; अगर ज्ञानियों की नजर से देखो तो उसका नाम ध्यान, साक्षी है। मगर वह एक ही घटना है। क्योंकि जहां ध्यान घटता है वहां प्रेम की धारा बह जाती है और जहां प्रेम की धारा बहती है वहां ध्यान घट जाता है। वे दोनों साथ-साथ आते हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

मैं नहीं चिर हूं
न तुम हो
प्राण का अस्तित्व शिव से सत्य है
प्रस्फुटित आनंद मन का
सुभग सुंदर है
फूल नश्वर है!
हंसी पागल पंखुड़ियों की
सरस मधु-गंध कलियों की
तरल चिर है
किन्तु
फूल नश्वर है।
दीप की अभिव्यक्ति लौ से दूर है,
शलभ देता प्राण का उत्सर्ग
गाता प्रणय का संगीत
लौकिक देह-बल्ली को
जलाता ज्योति में
स्नेह-क्रीड़ा में निरत
वह सिसकनों में भर रहा स्वर है!
स्नेह ही चिर है!

वह जो पतंगा जल जाता है दीपक पर, उसकी देह तो जल जाती है। देह तो निश्चित जल जाती है। देह तो जल्दी ही पड़ी रह जायेगी राख होकर, मगर जिस प्रेम ने उसे जलाया वह प्रेम शाश्वत है। वह प्रेम बच जाता है।

संन्यास प्रेम की यात्रा है या कहो ध्यान की यात्रा है। वही संन्यासी है जो मेरी आग में मर जाने को पतंगा होकर आ गया है।

तुम जानते हो, गैरिक वस्त्र अग्नि के प्रतीक हैं! तुम उनमें मर जाओ, पूरी तरह, जैसे हो वैसे--तो तुम्हें जैसे होना चाहिये वैसे स्वरूप का आविर्भाव हो।

तूने पूछाः एक ही प्रार्थना है कि आपके पास जो आग है, उसमें पूरी-पूरी जल जाऊं और खो जाऊं। यह होना शुरू हो गया है। नहीं तो यह प्रश्न ही नहीं उठता। प्रश्न भी समय पर उठते हैं। प्रश्नों का भी अपना क्षण होता है। तुझे रस लग गया मिटने का तो फिर अब ज्यादा देर नहीं है। जिसे मिटने में रस आने लगा, उसे कौन

रोक सकता है? उसे इस जगत की कोई शक्ति नहीं रोक सकती। जिसे अपने अहंकार को गला देने में रस आने लगा, उसे अब कोई नहीं रोक सकता। तुम्हारे अहंकार की पूर्ति में तो हजार लोग बाधाएं डाल सकते हैं, लेकिन तुम्हारे निर-अहंकार की पूर्ति में कोई बाधा नहीं डाल सकता। यह बड़े मजे की बात है!

संसार में कुछ पाना हो तो लोग बाधा डाल सकते हैं, लेकिन परमात्मा में कुछ पाना हो तो कोई बाधा नहीं डाल सकता, कोई की सामर्थ्य नहीं है बाधा डालने की। परमात्मा के साथ तुम्हारा सीधा संबंध है। तुम्हारे और परमात्मा के बीच में कोई खड़ा नहीं रह सकता--कोई पर्वत, कोई पहाड़। हां, संसार में कुछ पाना हो तो हजार अड़चनें हैं। धन कमाना हो तो हजारों लोग धन कमाने निकले हैं। उन सबसे प्रतियोगिता होगी। जरूरी नहीं कि तुम जीतो। बहुत संभावना तो हारने की है। बड़ा पद पाना है।

अब यह साठ करोड़ का देश है। किसी को राष्ट्रपति होना है, तो एक ही व्यक्ति राष्ट्रपति हो सकता है और साठ करोड़ प्रतियोगी हैं। होना तो सभी को है। एक हो पायेगा। बड़ी बाधाएं होंगी। बड़ा उपद्रव होगा। बड़ी छीन-झपट, गलाघोंट प्रतियोगिता होगी। बहुत इसमें मरेंगे, बहुत इसमें टूटेंगे, बहुत इसमें उखड़ेंगे, बहुत विषादग्रस्त हो जायेंगे, बहुत हताश हो जायेंगे, तब कोई एकाध पहुंच पायेगा। लेकिन पहुंचते-पहुंचते वह भी इतना कुट-पिट चुका होगा, इतनी पिटाई हो चुकी होगी उसकी कि पहुंचकर भी किसी मतलब का नहीं होगा--मुर्दे की भांति पहुंच पायेगा।

पहुंचते-पहुंचते लोग मर ही जाते हैं। प्रधान-मंत्री होते-होते कोई साठ साल का हो जाता है, कोई सत्तर साल का, कोई अस्सी साल का। होते-होते जिंदगी हाथ से निकल गई होती है और इतना संघर्ष कि उस संघर्ष में प्राणों में जो भी गरिमापूर्ण है, सब मर जाता है। और इतनी वीभत्स प्रतियोगिता, इतनी घृणित प्रतियोगिता, कि जो भी मानवीय है उसकी तो सांसें कभी की घुट गई होती हैं। पहुंचते-पहुंचते आदमी आदमी नहीं रह जाता।

इस जगत में सफल होना विफल होना है, क्योंकि सफलता के लिये जो आत्मा देनी पड़ती है वही तुम्हारी विफलता है। मुफ्त तो कुछ मिलता नहीं; आत्मा बेचो और ठीकरे इकट्ठे कर लो। लेकिन परमात्मा के जगत में बात बिल्कुल भिन्न है। वहां कोई प्रतियोगी ही नहीं है। वहां कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वहां तुम अकेले हो। वहां तुम नितांत अकेले हो। वह यात्रा अकेले की है। कोई बाधा नहीं है। सिर्फ एक बाधा रहती हैः वह तुम्हारी ही है।

और समाधि, वह बाधा तेरी टूट गई है। तुम डरो मरने से, बस उतनी बाधा है। तुम भयभीत रहो, उतनी बाधा है। वह भय चला गया है। अब भय की जगह तेरे मन में मिटने की प्रार्थना उठ रही है। और सभी प्रार्थनाएं, सच्ची प्रार्थनाएं मिटने की ही प्रार्थनाएं हो सकती हैं। बस, प्रार्थना उठी तो पूर्ति होने में देर नहीं है।

चौथा प्रश्नः सिद्ध सरहपा ने महासुख की बात कही। महासुख क्या है?

पहले तो समझें कि सुख क्या है? सुख तुम्हें कभी-कभी मिला है, इसलिये सुख को समझना आसान भी होगा। फिर समझें कि दुख क्या है। क्योंकि दुख तो तुम्हें बहुत मिला है। सुख-दुख दोनों समझ में आ जायें तो महासुख की समझ आ सकती है।

सुख क्या है? एक क्षण भर को अहंकार का मिट जाना सुख है। तुम चौंकोगेः अहंकार का मिट जाना सुख! हां, जब भी तुमने सुख जाना है, सोचना अब, विचारना अब, ध्यान करना उन क्षणों का। जब भी तुमने सुख जाना है, अहंकार मिट गया है; वह पक्की कसौटी है। सांझ सूरज को डूबते देखा, पहाड़ों पर सूरज की लालिमा छा गई, बादलों पर रंगीन रंग फैल गये, पक्षी अपने नीड़ों को लौटने लगे, सांझ का सौंदर्य, उतरती रात की

गरिमा! किसी पहाड़ी एकांत में तुमने सांझ के सूरज को डूबते देखा, तुम चकित भाव-विभोर हो उठे। सुख की एक पुलक आई और गई। एक लहर आई और तुम नहा गये।

यह कैसे हुआ? सूरज का सौंदर्य इतना प्यारा था, आकाश के रंग ऐसे अनूठे थे, पहाड़ों की शांति इतनी गहरी थी, पक्षियों का नीड़ों को लौटना, उनकी चहचहाहट, सब तुम्हारे हृदय को इस भांति से तरंगित कर दिये कि तुम एक छंद में बंध गये। तुम उस पर्वतीय एकांत में डूबते हुए सांझ के सूरज के साथ, आकाश के साथ एक हो गये। लीन हो गये। एक क्षण को अहंकार विस्मृत हो गया। एक क्षण को तुम भूल गये कि मैं हूं। सूरज इतना था कि तुम एक क्षण को भूल गये कि मैं हूं। बादलों में रंग ऐसे थे कि एक क्षण तुम्हें याद न रही कि मैं हूं। लौटते पक्षी, सांझ का सन्नाटा, पहाड़ का एकांत... तुम भूल गये एक क्षण को, इस शराब में डूब गये एक क्षण को! तुम्हें याद ही न रही कि मैं हूं। बस उसी घड़ी एक लहर उठी। इसी लहर का नाम सुख है।

फिर जल्दी ही तुम वापिस लौट आते हो, क्योंकि सूरज कितनी देर तक सुंदर रहेगा! यहां तो सब पल-छिन का मामला है। अभी था अभी गया। अभी डूब गया। रात गहरी होने लगी। तुम चौंककर उठ आये। लौट पड़ने का समय आ गया। रात अंधेरा हो रहा है, सांप हो, बिच्छू हो, जंगली-जानवर हों! पहाड़ का मौका। तुम वापिस लौट आये। अहंकार फिर अपनी जगह खड़ा हो गया... शंकित, भयभीत। सुख की जो क्षण-भर को झलक मिली थी, खो गई।

ऐसे ही सुख मिलता है। कभी संगीत को सुनते समय... किसी ने वीणा बजाई और तुम तल्लीन हो गये और तुमने कहाः बड़ा सुख मिला! या अपनी प्रेयसी से मिलना हुआ, उसका हाथ हाथ में लेकर बैठे, सांझ के उगते पहले तारे को देखते रहे और तुमने कहाः बड़ा सुख मिला! लेकिन सुख का कोई संबंध न तो सूरज से है न सांझ के तारे से है, न प्रेयसी के हाथ से है, न संगीत से है! अगर तुम समझोगे तो इन सब के बीच तुम एक ही बात पाओगे कि बहाना कोई भी हो, बात एक ही घटती है तुम्हारे भीतरः अहंकार भूल जाता है। और यह तुम्हें समझ में आ जाये तो फिर महासुख को समझने में ज्यादा देर न लगेगी।

महासुख का अर्थ हुआः अहंकार सदा को भूल जाये; भूला सो भूला, फिर लौटे ही न। दुख का अर्थ होता हैः अहंकार। जितना ज्यादा अहंकार होता है उतना ज्यादा दुख। अहंकार की मात्रा से दुख की मात्रा नापी जाती है। इसलिये तुम अहंकारी को बहुत दुखी पाओगे; निर-अहंकारी को उतना दुखी नहीं पाओगे।

तुम खुद ही सोचो। जब भी तुम्हारा अहंकार बहुत सघन होकर तुम्हें पकड़ लेता है कि मैं हूं, कि मैं कुछ खास हूं, तो फिर छोटी-छोटी बातें दुख देने लगती हैं। कोई आदमी जो तुम्हें रोज नमस्कार करता था आज उसने नमस्कार नहीं की; यही छाती में छुरे की तरह चुभ जाती है बात कि अच्छा, तो यह अपने को क्या समझने लगा! इसको मजा चखाकर रहूंगा! इसे बता कर रहूंगा कि मैं कौन हूं!

तुम जहां भी, जब भी अहंकार से भर जाते हो, अड़चन होती है। तुम कभी परदेस गये? तुम कभी विदेश-यात्रा को गये? तुम कभी ऐसी जगह गये, जहां तुम्हें कोई भी न जानता हो? वही यात्रा का सुख है। यात्रा का सुख यात्रा में नहीं है। यात्रा का सुख कश्मीर में नहीं है और नेपाल में नहीं है। यात्रा का सुख इस बात में है कि वहां तुम्हें कोई जानता नहीं है। इसलिये अकड़ने का कोई कारण नहीं है। अकड़ने से सार भी क्या है? वहां कोई नमस्कार भी नहीं करता, कोई कारण नहीं है दुख मानने का। वहां तुम कुछ भी नहीं हो। वहां तुम नाकुछ हो। इसलिये तुम्हें थोड़ा सुख मिलता है। यात्रा का यही सुख हैः थोड़ी देर के लिये तुम नाकुछ हो जाते हो। जो समझ लेते हैं, वे अपनी ही जगह नाकुछ हो जाते हैं। इतनी दूर जाने की क्या जरूरत? वे घर में बैठे-बैठे ही नाकुछ हो जाते हैं।

शून्य में मिलता है सुख। अहं में मिलता है दुख। अहंकार कांटा है। अहंकार पीड़ा है। शून्य संगीतपूर्ण है। लेकिन तुम कभी सोचते ही नहीं इस बात को। तुम्हारा सुख, तुम्हारे सुख के बहुत-से अनुभव, उन सबका निचोड़ निकालो, उन सबका मूल बिंदु खोजो।

सुख क्या है? बतला सकते हो?
पंडुक की सुकुमार पांख या लाल चोंच मैना की?
चरवाहे की बंसी का स्वर?
याकि गूंज उस निर्झर की जिसके दोनों तट
हरे, सुगंधित देवदारुओं से सेवित हैं?
सुख कोई सुकुमार हाथ है,
जिसे हाथ में लेकर हम कंटकित और पुलकित होते हैं?

अथवा है वह आंख
बोलती जो रहस्य से भरी प्रेम की भाषा में?
या सुख है वह चीज स्पर्श से जिसके मन में
कंपन-सा होता, आंखों से
मूक अश्रु ढल कर कपोल पर रुक जाते हैं?

सुख कहां पर वास करता है?
सुख? अरे, यह ज्योतिरिंगन तो नहीं है
जो द्रुमों की पत्तियों की छांह में दिन भर छिपा रहता?

याकि सौरभ पुष्प के उर का?
कि कोई चीज ऐसी जो
हवा में नाचती है रात को नूपुर पहन कर?

सुख! तुम्हारा नाम केवल जानता हूं।
मैं हृदय का अंध हूं;
मैंने कभी देखा नहीं तुमको।
इसलिये प्यारे! तुम्हें अब तक नहीं पहचानता हूं।

पर, कहो, तुम, सत्य ही, सुंदर बहुत हो?
पुष्प से, जल से, सुरभि से
और मेरी वेदना से भी मधुर हो?

तुमने जानकर भी सुख जाना नहीं है। अंधे की तरह कभी सोचा कि सांझ का डूबता सूरज सुख दे रहा है। कभी सोचा कि प्रेयसी से मिलन हुआ, सुख मिल रहा है। कभी सोचा मित्र घर आया है इसलिये सुख मिल रहा है। कभी सोचा सुस्वादु भोजन से। कभी सोचा इससे, कभी सोचा उससे। मगर तुमने कभी मूल बात न पकड़ी।

जब भी सुख मिला हो, किसी घड़ी में, तब एक बात अनिवार्य रूपेण घटती हैः अहंकार मिट जाता है। तो फिर अहंकार का मिट जाना ही सुख है; न तो सुख है सूरज का डूबना न उगना।

सुख क्या है? बतला सकते हो?

पंडुक की सुकुमार पांख या लाल चोंच मैना की?

चरवाहे की बंसी का स्वर?

या कि गूंज उस निर्झर की जिसके दोनों तट

हरे, सुगंधित देवदारुओं से सेवित हैं?

नहीं! सुख तो वह घड़ी है जब तुम नहीं हो। मैं सुखी हूं, ऐसा वाक्य भाषा की दृष्टि से सही है, अनुभव की दृष्टि से सही नहीं है, क्योंकि जहां सुख होता है वहां मैं नहीं होता। सुख होता है तो मैं नहीं होता। मैं होता है तो सुख नहीं होता। इसकी क्षणभर को झलक मिलती है तो उसका नाम सुख है और फिर झलक खो जाती है। महीनों-बरसों के लिये, उस अंधेरे का नाम दुख है। और जब यह झलक थिर हो जाती है, यह तुम्हारा स्वभाव बन जाती है--उस घड़ी का नाम महासुख है।

सरहपा ने महासुख शब्द का ऐसा ही प्रयोग किया है, जैसे उपनिषद आनंद का करते हैं। लेकिन क्यों सरहपा ने आनंद शब्द का प्रयोग न किया, महासुख का क्यों किया? उसके पीछे भी कारण है। जब आनंद शब्द का हम उपयोग करते हैं तो ऐसा लगता है कि हमारे सुख का और आनंद का कोई संबंध नहीं है। उससे एक भ्रांति पैदा होती है, जैसे हमारा सुख और आनंद दो अलग ही लोक हैं, इनके बीच कोई सेतु नहीं है। उस सेतु को निर्मित करने के लिये सरहपा ने आनंद शब्द का उपयोग नहीं किया, महासुख का उपयोग किया, ताकि तुम्हें यह याद रहे कि तुम दूर कितने ही होओ, लेकिन जुड़े हो।

तुम्हारा सुख कितना ही क्षणभंगुर क्यों न हो, उसी महासुख की एक तरंग है। और यह बात महत्वपूर्ण है, क्योंकि अगर तुमसे कोई भी संबंध नहीं है उस महासुख का तो तुम उसे पाओगे कैसे? किस धागे को पकड़कर चलोगे उसकी तरफ? और यही सहज-योग का दान है।

सहज-योग कहता हैः मनुष्य अभी जहां है वहीं से परमात्मा से जुड़ा है; जरा पहचानने की बात है; जरा गैल पकड़ लेने की बात है। रास्ता है; एक अदृश्य सेतु हमें जोड़े हुए है। हम सुख को तो जानते हैं, तो फिर महासुख हमसे बहुत दूर नहीं है, विजातीय नहीं है। हम सुख जानते हैं तो महासुख भी जान सकते हैं। हमने बूंद जानी है तो सागर को भी जान लेंगे, क्योंकि सागर बूंदों का जोड़ है, और क्या है? ऐसे ही महासुख सुखों का जोड़ है, और क्या है? सुख होगी बूंद, महासुख होगा सागर। जो भेद है सहज-योग की दृष्टि से, वह मात्रा का है, गुण का नहीं है।

बस यही सहज-योग का क्रांतिकारी उदघोष है।

शरीर-सुख में और आत्म-सुख में भी जो भेद है वह मात्रा का है--सहज-योग के अनुसार--गुण का नहीं है। बाहर के सुख में और भीतर के सुख में भी जो संबंध है, जो भेद है, वह मात्रा का है। भीतर का महासुख है, बाहर का बिल्कुल छोटा-सा सुख है; मगर दोनों जुड़े हैं एक से।

मनुष्य की गरिमा की घोषणा है यह। और मनुष्य कितना ही नीचे गिरा हो, इस बात की खबर है कि तुम जहां हो वहीं से सीढ़ी लगी है।

तुम, हो सकता है, बिल्कुल नीचे के पायदान पर हो सीढ़ी के; मगर यह उसी सीढ़ी का पायदान है, जिस सीढ़ी के आखिरी पायदान पर परमात्मा है। यही तंत्र की घोषणा है। सहज-योग तांत्रिक है।

जब मैंने कहा कि संभोग और समाधि दोनों जुड़े हैं, तो वह तंत्र की धारणा को ही प्रस्तावना देनी थी। तंत्र यही कहता है कि संभोग में जो सुख जाना जाता है, वह एक बूंद है और समाधि में जो सुख जाना जाता है, वह एक सागर है, अनंत सागर! मगर दोनों में जोड़ है। दोनों जुड़े हैं।

क्षुद्रतम में भी वही विराट मौजूद है। अणु में भी वही विराट मौजूद है। तुमने अपना द्वार खोला, तुम्हारे छोटे-से द्वार से जो आकाश दिखाई पड़ता है, वह विराट आकाश ही है। उन दोनों में कोई मौलिक भेद नहीं है।

सुख को थोड़ा समझो। सुख को थोड़ा जीयो। सुख को थोड़ा पहचानो। जहां सुख मिलता हो उन घड़ियों में अपने को ले जाओ।

यौवन पकता है निमग्न अपने ही रस में।
कला सिद्ध होती जब सुषमा की समाधि में
विपुल काल तक कलाकार खोया रहता है।
वह सब होगा पूर्ण; एक दिन तुम चमकोगे
जैसे ये नक्षत्र चमकते हैं अंबर पर।

बनो संत-से चारु कि जैसे यूनानी थे
जो अदृश्य हैं देव उन्हें पूजा सन्मन से।
और मर्त्य मनुजों से भी मत आंख चुराओ।

परिभाषा मत पढ़ो; न दो उपदेश किसी को;
गुरु से मिले न ज्ञान, भ्रांतियां और सघन हों,
तब जा पूछो बात कहीं एकांत प्रकृति से।

अगर शास्त्र उलझन में डाल देते हों, अगर गुरुओं की बातें सुनकर कुछ समझ में न आता हो और समझ उलझ जाती हो, तो अच्छा हो चले जाओ प्रकृति में। पूछो झरनों से। पूछो वृक्षों की हरियाली से। पूछो केतकी, जुही, बेला के फूलों से। पूछो बदलियों से, चांद-तारों से। चले जाओ एकांत में। परिभाषा मत गढ़ो बैठकर मत सोचने लगो। बैठकर कुछ नहीं होगा। सोचने से कुछ नहीं होगा। जानने चलो, परिभाषा मत गढ़ो, न दो उपदेश किसी को।

अकसर ऐसा हो जाता है, खुद पता न हो तो आदमी दूसरे को समझाने लगता है। दूसरे को समझाने से ऐसी भ्रांति होती है कि मुझे पता होगा और जब दूसरे समझने लगते हैं और मानने लगते हैं कि हां तुम जानते हो, तो आदमी खुद भी मानने लगता है, कि जब इतने लोग मानते हैं कि मैं जानता हूं तो इतने लोग गलत कैसे हो सकते हैं? एक बड़ा धोखा पैदा होता है। तुम लोगों को समझाकर, अपने को समझा लेते हो कि मैं जानता हूं। न तो परिभाषा गढ़ो। अपनी मनगढ़न्त परिभाषा का कोई अर्थ नहीं है। अनुभव से आने दो परिभाषा। और न दूसरों को समझाने बैठ जाओ।

परिभाषा मत गढ़ो; न दो उपदेश किसी को;

गुरु से मिले न ज्ञान...

अगर न मिल सके गुरु से ज्ञान... । पहली तो बात गुरु मिल सके गुरु न मिल सके, शायद, मिल भी जाये गुरु तो शायद तुम समझ न पाओ वह क्या कह रहा है। शायद उतनी सामर्थ्य तुममें न हो कि किसी मनुष्य के सामने झुक जाओ, क्योंकि मनुष्य के सामने झुकने में अहंकार बड़ी बाधा लाता है। अपने ही जैसे मनुष्य के सामने झुकना अहंकार को बड़ा कष्टपूर्ण हो जाता है। तो चले जाओ एकांत में, किसी वृक्ष के पास झुक जाना; उसमें तो उतनी अड़चन नहीं होगी! किसी झरने के पास झुक जाना। चले जाओ एकांत में। घुटने टेक देना पृथ्वी पर। सिर लगा देना पृथ्वी पर। अगर मंदिरों की चौखट पर सिर पटकने में संकोच लगता है कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और मंदिरों की चौखट पर सिर पटके, तो चले जाओ एकांत में। पृथ्वी पर सिर रख देना। आकाश के तारों से बातें कर लेना। शायद तुम्हें सुख की पुलक मिलने लगे।

गुरु से मिले न ज्ञान, भ्रांतियां और सघन हों,

तब जा पूछो बात कहीं एकांत प्रकृति से।

प्रकृति परमात्मा का प्रगट रूप है। प्रकृति से जो मिलता है, वह सुख है। परमात्मा के प्रगट रूप से जो मिलता है, वह सुख है। और, परमात्मा के अप्रगट रूप से जो मिलेगा, वह महासुख। प्रकृति से क्षण-भर को मिलता है; परमात्मा से शाश्वत मिलता है। पर दोनों एक ही धागे में जुड़े हैं।

इसलिये ठीक ही किया सरहपा ने कि सुख और महासुख शब्द का प्रयोग किया, आनंद का प्रयोग नहीं किया। शब्दों के प्रयोग में भी बड़े अर्थ होते हैं।

पांचवां प्रश्नः ओशो, विश्वास तो नहीं होता था कि कृष्ण के साथ लोग नाचे होंगे। आपके आश्रम को देखकर भरोसा आया है कि ऐसा भी कभी हुआ होगा।

हम खुदा के कभी कायल ही न थे,

तुम्हें देखा तो खुदा याद आया।

सीताराम! धर्म जब भी जीवित होता है तब नाचता हुआ होता है; जब मर जाता है तब गुरु-गंभीर हो जाता है। धर्म जब जीवित होता है तो हंसता हुआ होता है। धर्म जब जीवित होता है तो आंखों में आंसू भी आनंद के ही आंसू होते हैं।

धर्म जब जीवित होता है तो पैरों में घूंघरु बंधते हैं, बांसुरी पर टेर उठती है, एकतारा बजता है। क्योंकि धर्म के जीवित होने का एक ही अर्थ हो सकता हैः उत्सव। धर्म के जीवित होने का एक ही अर्थ हो सकता हैः यौवन।

धर्म जब युवा होता है तो कृष्ण जैसे लोग पैदा होते हैं; धर्म जब सड़ जाता है, मर जाता है, तो फिर पंडित-पुरोहित लाश के पास बैठकर लाश की दुर्गंध को ढांकने के लिए चंदन इत्यादि का लेप करते रहते हैं। फिर लाश को कैसे सुंदर बनाया जाए, लाश को कैसे सड़ने न दिया जाए, लाश को कैसे सुरक्षित रखा जाए--यही उनकी चिंतना हो जाती है।

और, जीवित तो धर्म कभी-कभी होता है, क्योंकि कृष्ण जैसा व्यक्ति ही कभी-कभी होता है। मुर्दा धर्म की लंबी परंपराएं होती हैं; कृष्ण तो कभी-कभी घटते हैं। मनुष्य अधिकतर तो मुर्दा धर्मों के साथ रहता है। इसलिए

अकसर ऐसा हो जाता है, जब भी कृष्ण घटित होंगे तभी सारा मुर्दा धर्म और उसकी परंपरा उनके विपरीत खड़ी हो जाएगी। कृष्ण जीवित कभी स्वीकार नहीं हो सकते, क्योंकि तुम करीब-करीब मुर्दा जी रहे हो। तुम से मुर्दा धर्म का तो संबंध हो जाता है, जीवित धर्म के साथ तुम नहीं नाच पाते।

तुम नाचना ही भूल गए हो। तुम प्रेम भूल गए हो। तुम प्रेम की भाषा भूल गए हो। इसलिए तुम्हारे चर्च हैं, गुरुद्वारे हैं, गिरजे हैं, मंदिर हैं--सब बाहरी आयोजन तो वहां हो रहा है, भीतर की आत्मा नहीं है। सुंदर पिंजड़े हैं, पक्षी कभी का उड़ गया है, या कि मर गया है। अब पूजा चल रही है। और लोग बड़ी गुरु-गंभीरता से पूजा कर रहे हैं।

यहां तुम्हें देखकर कठिनाई होगी। अगर समझोगे तो ही समझ पाओगे। अगर थोड़ी संवेदनशीलता होगी तो ही समझ पाओगे। नहीं तो तुम हैरान होकर लौटोगे।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः आश्रम ऐसा नहीं होना चाहिए, कि जहां लोग नाच रहे हैं, कि गले मिल रहे हैं, कि प्रसन्न हैं, कि हंस रहे हैं। आश्रम तो गुरु-गंभीर होना चाहिए, कि लोग झाड़ों के नीचे झोपड़े बनाकर बैठे हैं, उदास, माला फेर रहे हैं, कि उनके चेहरों पर मुर्दगी है, कि जीवन में उनके निषेध है, नकार है।

इंग्लैंड से कुछ दिन पहले एक टेलीविजन कंपनी ने आश्रम की फिल्म बनायी है। पता नहीं सरकार को पता नहीं चला या क्या हुआ, वह फिल्म बन भी गई, वह फिल्म इंग्लैंड में प्रदर्शित भी हुई। अब न मालूम कितने पत्र वहां से आए हैं! उन सारे पत्रों में एक बात जरूर स्मरण की गई है और वह यह--"कि आश्रम हंसता हुआ भी हो सकता है! लोग नाचते हुए भी हो सकते हैं, खिलखिलाते हुए भी हो सकते हैं! यह हमारे ख्याल में ही नहीं था।" न मालूम कितने लोगों ने लिखा है कि हम उत्सुक हैं आने को। पृथ्वी पर कोई एक जगह तो है, जहां लोग हंसते हैं; जहां परमात्मा जीवन-विरोधी नहीं है; जहां परमात्मा जीवन का ही नाम है।

शायद मोरारजी देसाई इसीलिए परेशान हैं कि इस आश्रम की फिल्में न बनें, देश के बाहर प्रदर्शित न हों, क्योंकि जो तुम नहीं समझ सकते हो वह सारी दुनिया समझ लेगी। क्योंकि तुम तो बहुत जड़ हो गए हो, परंपरा का बोझ इतना है तुम्हारे ऊपर... ।

लेकिन पश्चिम से परंपरा का बोझ हट गया है। पश्चिम में धर्म की परंपरा खंडित ही हो गई है। पश्चिम में तो ईश्वर से लोग छुटकारा ही पा लिए हैं। और ईश्वर से छुटकारा हुआ तो उसके साथ-ही-साथ उसके पंडित-पुरोहितों से छुटकारा हो गया है, उसके चर्च-मंदिरों से छुटकारा हो गया है। पश्चिम नास्तिक है। नास्तिक का मतलब यह है कि अब परंपरा का, धार्मिक परंपरा का कोई कूड़ा-करकट नहीं है।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मुझमें पश्चिम से आनेवाले लोग बड़ी संख्या में उत्सुक हो रहे हैं, जबकि भारतीय कभी आते भी हैं तो दर्शक की भांति। लेकिन पश्चिम से कोई आता है तो तत्क्षण डुबकी मार लेता है। कारण क्या होगा? उसके पास परंपरा का पक्षपात नहीं है। वह कोई अपेक्षा लेकर नहीं आता। वह यह मानकर नहीं आता कि झोपड़ों में बैठे हुए होने चाहिए लोग, तो ही आश्रम सच्चा है। वह यह मानकर नहीं आता कि लोग उदास होने चाहिए, सूखे होने चाहिए, उपवास करते हुए होने चाहिए। वह यह मानकर नहीं आता, इसलिए उसे कोई अड़चन नहीं होती। वह तत्क्षण जुड़ जाता है। जब कोई भारतीय आता है तो वह हिसाब पहले से रखकर आया है; उसके पास सब मापदंड तय हैं; उसने निर्णय ही ले लिया है कि धर्म कैसा होना चाहिए। धर्म का उसे कुछ पता नहीं है और निर्णय ले लिया है। और जिस धर्म का उसे पता है, वह सिर्फ सड़ी हुई लाश है। पांच हजार साल पहले कृष्ण को उसने देखा होता तो शायद समझता।

अब तो हालत बड़ी अड़चन की है, जो धार्मिक है वह भी नहीं समझता कृष्ण को। और जो नास्तिक है भारत में, वह तो समझेगा ही कैसे?

कल मैं सरिता में एक लेख पढ़ रहा था। सरिता में लेख है कृष्ण के खिलाफ, कि वे हजारों स्त्रियों के प्रेम में पड़े। और यह तो ठीक है, मगर वे कुब्जा नाम की तीन जगह से तिरछी, आड़ी-टेढ़ी स्त्री के प्रेम में भी पड़ गए। खिलाफ और भद्दा लेख है। कोशिश यह बताने की की गई है कि यह सब लम्पटता है। उस पर मुकदमा चल रहा है अदालत में। जिन पंडितों ने अदालत में, विपरीत में वक्तव्य दिए हैं; उनकी बातें और मूढ़तापूर्ण हैं। वे लीपा-पोती करने की कोशिश करते हैं। वे समझाने की बात करते हैं कि नहीं ऐसा इसका मतलब नहीं है, ऐसा इसका अर्थ नहीं है। मगर दोनों की चेष्टा एक ही है मेरे देखे। दोनों में से कोई, जैसे कृष्ण हैं, वैसा स्वीकार करने को राजी नहीं है। क्यों अड़चन है? कृष्ण भोजन करते हैं तो तुम्हें अड़चन नहीं है, स्नान करते हैं तो अड़चन नहीं है; अगर किसी स्त्री से प्रेम हो गया है तो तुम्हें अड़चन है? कृष्ण का न होगा तो किसका होगा?

लेकिन हम डर गए हैं, हम कंप गए हैं। हम तो मानते हैं प्रेम सांसारिक है, प्रेम तो बात ही गलत है। प्रेम और परमात्मा, ये तो विपरीत मामले हैं।

तो कृष्ण के विपरीत जो हैं, जैसे सरिता का लेखक और सरिता का संपादक, उनका तर्क भी वही है कि यह कैसा भगवान! और जो पक्ष में हैं वे केवल सुरक्षा कर रहे हैं। उनको भी भीतर तो शक है कि ऐसा भगवान नहीं हो सकता। इसलिए यह व्याख्या ठीक नहीं है। इसलिए व्याख्या को तोड़-मोड़ करो, यहां-वहां से जमाओ। और संस्कृत भाषा में सुविधा है, एक शब्द के बहुत अर्थ होते हैं, उसको इरछा-तिरछा किया जा सकता है, चालबाजी की जा सकती है। हालांकि कहानी बिल्कुल साफ है और कहानी में कोई न तो एतराज होने की जरूरत है न छिपाने की कोई जरूरत है। कृष्ण का प्रेम है। अनेकों से हुआ, अड़चन क्या है? परमात्मा प्रकृति के प्रेम में है, इतना ही तो अर्थ हुआ! अगर परमात्मा प्रकृति के प्रेम में नहीं है तो प्रकृति हो ही न। परमात्मा अनंत रूपों को प्रेम कर रहा है, इसलिए तो अनंत रूप प्रगट हो रहे हैं, नहीं तो अनंत रूप प्रगट न हों। परमात्मा आह्लादित है। कृष्ण उस आह्लाद के एक प्रतीक हैं। इसलिए जब हिंदू हिम्मतवर थे तो उन्होंने कृष्ण को पूर्णावतार कहा।

यह जानकर तुम हैरान होओगे कि हिंदू पुराण एक अदभुत बात कहते हैं। वे कहते हैं कि यह कुब्जा नाम की जो दासी थी कंस की, यह पहले जन्म में जब कृष्ण राम की तरह पैदा हुए थे क्योंकि वे भी विष्णु का ही अवतार हैं, तब भी मौजूद थी। बड़ी सुंदरी थी! और राम से उसकी अनुरक्ति हो गई थी। किस की न हो जाए! राम जैसा व्यक्ति दिखाई पड़े तो कौन मोहित न हो जाए! सिर्फ अंधे शायद मोहित न हों! इसमें कुछ आश्चर्य की तो बात नहीं कि कोई सुंदरी स्त्री राम पर मोहित हो गई थी। मोहित होने में कोई पाप तो नहीं। वह इतनी दीवानी हो गई कि एक रात पहुंच ही गई राम के महल। राम और सीता सो रहे हैं। उसने जाकर राम को आहिस्ते से हिलाया। राम ने आंख खोली। उन्होंने कहा कि तू क्षमाकर और वापिस जा, कहीं सीता न जग जाए! वही पुरानी कथा, पति-पत्नी का उपद्रव, कहीं सीता न जग जाए! राम भी डरे हुए हैं कि कहीं सीता न जग जाए! मगर उसने कहा कि मैं निवेदन करने आई हूं कि मुझे आपसे बहुत लगाव हो गया है, मैं क्या करूं?

तो राम ने कहा कि अगले जन्म में जब मैं कृष्ण होऊंगा... अभी तो मैं मर्यादा पुरुषोत्तम हूं, अभी तो एक पत्नी-व्रत को मानता हूं, अभी तो आदिष्ट के हिसाब से चल रहा हूं, जब अगले जन्म में कृष्ण होऊंगा, तब तू कुब्जा के नाम से पैदा होगी और जब मैं आऊंगा द्वारिका, तू मेरे मामा कंस के घर दासी होगी, तब तेरा आमंत्रण स्वीकार कर सकूंगा।

सीता तो जग गई। सुन ही रही होगी पड़ी-पड़ी, यह सब हो रहा था जो। और नाराज भी हुई, क्योंकि यह कोई बात हुई! यह तो ऐसे ही हुआ कि आज एकादशी है, आज हम शराब न पियेंगे, कल पियेंगे। यह कोई बात हुई! यह तो बात साफ जाहिर हो गई कि राम कह रहे हैं कि अगले जन्म में, अभी इस जन्म में तो फंस गए हैं, यह एकादशी है, एक पत्नी-व्रत ले लिया, मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं! अभी बाई तू जा! अगले जन्म में जब मैं कृष्ण के रूप में पैदा होऊंगा... ।

सीता इतनी नाराज हो गई। उन्होंने कहा कुब्जा को कि तू सुंदरी तो होगी क्योंकि राम ने तुझे आशीष दिया, लेकिन मैं तुझे अभिशाप देती हूं कि तू तीन जगह से तिरछी होगी। इसलिए वह कुब्जा हुई। इसलिए वह तीन जगह से आड़ी-टेढ़ी हुई।

मगर एक बात मजे की है इस कथा में, कि राम को मर्यादा अनुभव होती है, कि राम को सीमा का बोध है, कि राम सीमित हैं। जिन्होंने यह कहानी लिखी होगी----ऐसा हुआ या नहीं हुआ, यह सवाल नहीं है... जिन्होंने पुराण में यह कथा जोड़ी वे बड़े हिम्मतवर लोग रहे होंगे, एक बात तो जाहिर वे कह रहे हैं कि राम की सीमा है, कृष्ण की सीमा नहीं है! राम तक को कहना पड़ा कि जब मैं कृष्ण की तरह आऊंगा, जब मैं पूर्णावतार होऊंगा, जब मैं परमात्मा का पूरा उल्लास लेकर प्र्रगट होऊंगा, सब रंगों में! अभी तो मैं एक रंग का हूं, जब मैं सातों रंगों का होऊंगा, तब।

बड़े हिम्मत के लोग रहे होंगे तब! जीवित धर्म था तो कृष्ण को उन्होंने पूर्णावतार कहा। राम को अंशावतार कहा। अगर कमजोर लोग होते तो राम को पूर्णावतार कहते, और कृष्ण को तो अवतार भी नहीं कहते, अंशावतार की भी बात कहने की जरूरत नहीं है। लेकिन कृष्ण को पूर्णावतार कह सके जो लोग, उस समय देश जिंदा रहा होगा। परंपरा की बहुत पकड़ न रही होगी। लोगों के शास्त्र सिर पर ज्यादा नहीं बैठ गए होंगे। अभी मुर्दा धर्म का बहुत बोझ नहीं हुआ होगा। अभी जिंदगी ताजी थी, लोग युवा थे। कृष्ण को भी स्वीकार कर सके!

अब एक मुर्दा देश है। उसमें कोई विपक्ष में लिखता है, उसकी भी नजर वही है कि अगर कृष्ण के जीवन में ऐसा उल्लेख हुआ है, अगर यह सच है तो कृष्ण का जीवन फिर धार्मिक जीवन नहीं है। क्यों? प्रेम का धर्म के जीवन से कोई संबंध नहीं? तुम प्रेम को धार्मिक न होने दोगे? तुम धर्म को प्रेमपूर्ण न होने दोगे? तुम धर्म और प्रेम को दुश्मन की तरह ही मानकर चलते रहोगे?

और जो पक्ष में हैं उनमें भी कुछ भेद नहीं। वे कोशिश करते हैं लीपा-पोती करने की। वे कहते हैं कि नहीं इसका ऐसा अर्थ नहीं, इसका वैसा अर्थ नहीं, यह ठीक नहीं, आलोचना करनी ठीक नहीं, वह तो भगवान हैं, उनके लिए सब ठीक है। इसके बड़े गहरे अर्थ हैं, वे कहते हैं, इसके साधारण अर्थ नहीं। हालांकि कुछ गहरे अर्थ बता नहीं पाते हैं कि क्या गहरे अर्थ हैं। मगर दोनों की बात एक संबंध में एक ही है कि कृष्ण को ऐसा नहीं होना चाहिए।

मैं इसलिए उल्लेख कर रहा हूं कि आज देश इतना मर गया है कि यहां आस्तिक और नास्तिक दोनों मुर्दा हैं। जीवन का उल्लास धर्म का सबूत है। और धर्म जब भी होता है तब वह अपूर्व प्रेम की वर्षा अपने साथ लेकर आता है।

मधुमय कंपन ले तन-मन में
फागुन पाहुन बन आया घर।
जीवन की असीम मुसकानें

संचय कर निस्पंद हृदय में,
इंद्रधनुष का बिखराने रंग
लाया फागुन घोल मलय में;
श्रांत पथिक की आशाओं का--
स्वप्न संजो फागुन आया घर!
दुर्गमतम निःश्वासों का फल
निर्वासित होकर हृत्तल से,
सरल हास का सौरभ बिखरा
पोत रहा रोली करतल से
परिमालय अनुराग दृष्टि में--
सृष्टि मधुर फागुन लाया घर!
स्नेहमयी चंदन-सी शीतल
जीवन की लघु परिभाषा यह,
क्षितिजपार के निर्मित नभ से
प्रतिध्वनि आती है अब रह रह,
विश्वासों के अधर-पात्र में
सप्तरंग फागुन लाया भर!

जब भी आता है धर्म, जीवंत, सतरंगा होता है, पूरा इंद्रधनुष होता है। एक स्वर नहीं होता, पूरे सातों स्वर होते हैं। लेकिन आदमी की छाती छोटी पड़ गई है। आदमी बहुत सिकुड़ गया है, विस्तार भूल गया है। खासकर इस देश में हम इतने सिकुड़ गए हैं कि हम अपने ही हाथों अपनी फांसी लगा लिए हैं। हमारी सांसें रुंधी जा रही हैं। हमारा जीवन कठिन हुआ जा रहा है। मगर फिर भी हम जिद्द किए जाते हैं कि हम ऐसे ही जियेंगे। फांसी ही हमारे जीने की शैली हो गई है।

सीताराम! तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम इस आश्रम को, इस आश्रम के नृत्य को, इस आश्रम के गीत-हंसी को, मुस्कुराहट को देखकर भी विचलित नहीं हो गए, भाग नहीं गए, दुश्मन नहीं हो गए। नहीं तो मैं एक दोस्त पैदा करता हूं और हजार दुश्मन पैदा होते हैं। तुम भाग्यशाली हो। तुम्हारे पास थोड़ा हृदय है--थोड़ा विस्तीर्ण हृदय है। इसलिए तुम आंख खोलकर देख पाए। जो तुमने देखा है, जो तुम देखने के लिए राजी हो सके हो, वह तुम्हारे जीवन को बदलने वाला भी सिद्ध होगा।

जो बसंत को पहचान ले वह बसंत के रंग में रंग जाता है। यहां बंसत आया है। डूबो इसमें! रंग जाओ इसमें! ऐसी घड़ी इतिहास में कभी-कभी होती है। मुर्दा धर्म तो सदा उपलब्ध होते हैं, जीवंत धर्म कभी-कभी उपलब्ध होता है--जब राख नहीं होती, अंगार होते हैं। लेकिन अंगार तो कुछ थोड़े-से साहसी लोगों को ही आकर्षित कर पाते हैं। नहीं तो ऐसा उल्टा खेल चलता रहता है।

मोरारजी देसाई की कल मैंने एक किताब देखी, गीता पर किताब लिखी है। मोरारजी देसाई कृष्ण को समझ कैसे सकते हैं? गीता पर क्या खाक किताब लिखेंगे! मैंने गीता पर बहुत किताबें देखी हैं। इस देश में जिसको भी लिखना आता है वही गीता पर किताब लिख देता है। तृतीय श्रेणी की इतनी टीकायें गीता पर हैं, मगर मोरारजी देसाई ने उन सबको मात कर दिया! वह तृतीय श्रेणी में भी नहीं आती। एकदम कचरा है। गीता

का नाम उसके साथ जोड़ना अपमानजनक है। कृष्ण की पहचान मोरारजी देसाई को क्या हो सकती है? और अगर मोरारजी देसाई को कृष्ण की पहचान हो जाए, तो फिर सभी मुर्दों को हो जाएगी।

कृष्ण एक जीवंत धर्म हैं। धर्म--अपनी समग्रता में, अपने सब रंगों में! कृष्ण के साथ धर्म कोई नैतिकता नहीं है। कृष्ण के साथ धर्म अस्तित्व है, संपूर्ण अस्तित्व है। समग्र स्वीकार है। वही मेरी दृष्टि भी है--समग्र स्वीकार की।

निश्चित ही हम एक छोटा-सा विश्व बनाने जा रहे हैं--गैरिक संन्यासियों का--जो नाचेगा, जो आह्लादित होगा, जो उत्सव मनायेगा। नाच ही जिसकी पूजा होगी, उल्लास ही जिसकी अर्चना होगी। मस्ती के फूल परमात्मा के चरणों पर चढ़ाने का आयोजन हो रहा है।

तुम समझ सके, तुम नाराज न हो गए; तुम्हारे पास अभी जिंदा आत्मा है--तुम सौभाग्यशाली हो! --ठीक ही तुमने कहाः "हम खुदा के कभी कायल ही न थे, तुम्हें देखा तो खुदा याद आया!" अब डूबो! अब सब होश-हवास छोड़कर डूबो। अब हिसाब-किताब छोड़कर डूबो। नाचो तुम भी! बहुत दिन हो गए, नहीं नाचे। रास फिर हो! फिर बांसुरी बजे! फिर हम परमात्मा को पुकार सकें पृथ्वी पर।

परमात्मा को खोजना एक बात है; वह व्यक्तिगत खोज है। परमात्मा को पुकारना पृथ्वी पर दूसरी बात है; वह सांघिक खोज है। इसीलिए संन्यासियों का यह समुदाय पैदा किया जा रहा है। व्यक्तिगत खोज से आदमी परमात्मा तक पहुंच जाता है, लेकिन जब तक अनंत आत्माएं नाचकर उसे पुकारें न तब तक परमात्मा पृथ्वी पर नहीं आ पाता। दोहरे काम करने हैं। प्रत्येक संन्यासी को परमात्मा को खोजना है--व्यक्तिगत रूप से; और समूहगत रूप से एक इतनी बड़ी चुंबकीय शक्ति पैदा करनी है कि इस पृथ्वी से जहां से परमात्मा का संबंध करीब-करीब विच्छिन्न हो गया है, उसे हम फिर उतार लायें। फिर जगत धर्ममय हो। हो सकता है। अथक चेष्टा और प्रयास चाहिए। और मेरे पास धीरे-धीरे लोग इकट्ठे हुए जा रहे हैं; साहसी, जो वैसी चेष्टा करने को तैयार हैं, जो वैसे अभियान पर जाने को तैयार हैं।

निजामे-मैकदा साकी! बदलने की जरूरत है।
हजारों हैं सफें जिनमें न मै आई न जाम आया।।

इस जगत का जो ढंग है, सलीका है, बदलने की जरूरत है। निजामे मैकदा साकी! मधुशाला के नियम बदलने की जरूरत है।

निजामे-मैकदा साकी! बदलने की जरूरत है।
हजारों हैं सफें जिनमें न मै आई न जाम आया।।

यहां कितने लोग हैं, जिनकी प्याली खाली की खाली पड़ी है, जिनमें न कभी कोई शराब आई है न कोई उत्सव उतरा!

निजामे-मैकदा साकी! बदलने की जरूरत है।
हजारों हैं सफें जिनमें न मै आई न जाम आया।।
बहार आते ही खूं रेजी हुई वोह सहने गुलशन में।
खिजल कांटे थे यूं फूलों को जोशे इंतकाम आया।।
न जाने कितनी शमाएं गुल हुई कितने बुझे तारे।
तब इक खुरशीद इतराता हुआ बालाए-बाम आया।।

बहुत-से तारों को बुझना पड़ेगा और बहुत-सी शमों को गुल होना पड़ेगा, तब चांद उगेगा। तैयारी करो!

न जाने कितनी शमाएं गुल हुईं कितने बुझे तारे।

तब इक खुरशीद इतराता हुआ बालाए-बाम आया।।

बुलाना है परमात्मा को--उसके सूरज को, उसके चांद को, उसकी रोशनी को! इसके लिए बहुत-से लोगों को अपनी आहुति दे देनी पड़ेगी। बहुत-से लोग मिटें परमात्मा की राह पर, तो परमात्मा की वर्षा इस पृथ्वी पर हो सकती है। और ऐसी वर्षा बहुत जरूरी हो गई है, अन्यथा आदमी बचेगा नहीं।

आने वाले पच्चीस वर्ष मनुष्य के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होने वाले हैंः या तो परमात्मा उतरेगा और आदमी बचेगा; अगर परमात्मा नहीं उतर सकता, अगर हम नहीं उसे अपनी आत्माओं में समा सकते, तो आदमी के भी बचने की अब कोई उम्मीद नहीं है। फांसी बहुत कस गई है। आदमी आत्मघात करने को तत्पर है। या तो परमात्मा को पुकारो, या बचने का कोई उपाय नहीं।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

तरी खोल गाता चल माझी

पहला प्रश्नः आपने इस प्रवचनमाला का शीर्षक दिया है--सहज-योग। क्या सहज और योग परस्पर-विरोधी नहीं लगते?

आनंद मैत्रेय! विरोधी लगते ही नहीं, विरोधी हैं। लेकिन जीवन का कोई भी परम सत्य बिना विरोधाभास के प्रगट हो ही नहीं सकता। जीवन बना है विरोधों से--अंधेरा और प्रकाश, दिन और रात, स्त्री और पुरुष, ऋण विद्युत-धन विद्युत, जन्म-मृत्यु।

जीवन की संरचना विरोधों से है। इसलिए विरोधी विरोधी ही नहीं हैं, एक-दूसरे के परिपूरक भी हैं। दिन भर श्रम किया खूब तो गहरी नींद सो सकोगे। श्रम और विश्राम विरोधी हैं, पर जिसने श्रम किया है वही गहरा विश्राम कर सकेगा। और जिसने श्रम नहीं किया वह गहरा विश्राम भी न कर सकेगा। तो विरोधी विरोधी ही नहीं हैं, एक-दूसरे के परिपूरक भी हैं। और जिसने रात्रि गहरा विश्राम किया है वही सुबह जागकर फिर श्रम में संलग्न हो सकेगा। जो रात-भर विश्राम नहीं कर सका वह सुबह श्रम में भी न लग सकेगा।

जीवन को गौर से देखो। सभी तरफ तुम विरोध पाओगे। वृक्ष को ऊपर जाना है तो जड़ों को नीचे जाना पड़ता है। जितना वृक्ष ऊपर जाएगा उतनी ही जड़ें पाताल की तरफ नीचे जाएंगी। अगर वृक्ष सिर्फ ऊपर-ही-ऊपर जाना चाहे, सोचे कि जड़ों को नीचे भेजना तो बड़ी विरोधी बात है, मुझे ऊपर जाना है तो जड़ों को नीचे क्यों भेजूं, जड़ों को भी ऊपर ले चलूं--तो फिर वृक्ष कभी भी ऊपर न जा सकेगा। नीचे जानेवाली जड़ों में ही ऊपर उठी हुई शाखाओं के प्राण हैं।

जब जीवन के विरोधाभास परिपूरक दिखाई पड़ने लगें तब समझना कि तुम्हारे पास तीसरी आंख का जन्म हुआ। यह तीसरी आंख समस्त विरोधों को जोड़ देती है, दो आंखों को एक कर देती है।

सहज-योग जीवन के इसी विरोधाभास को संयुक्त कर लेने का नाम है। सहज का अर्थ हैः अक्रिया, अकर्म, विश्राम। योग का अर्थ हैः श्रम, क्रिया, यत्न, प्रयास। लेकिन दोनों मिल जाने चाहिए, दोनों संयुक्त हो जाने चाहिए। और जहां भी शब्द और शून्य का मिलन होता है वहीं महासंगीत है। जहां योग का और सहज का मिलन हो जाता है वहां जीवन में परम का अवतरण हो जाता है।

लाओत्सु ने इसी को वू-वे कहा है। वू-वे का अर्थ होता हैः अकर्म के द्वारा कर्म, या कर्म के द्वारा अकर्म।

बुद्ध ने छह वर्ष तक अथक योग साधा, फिर वे सहज को उपलब्ध हुए। फिर एक दिन थक गए, साध-साधकर थक गए, खूब सोचा खूब विचारा, जो-जो विधियां संभव थीं कीं। जिसने जो बताया वही किया। सब मार्गों पर चले। मगर मंजिल न मिली सो न मिली। एक दिन थक गए, हताश, सब व्यर्थ हो गया। ऐसी प्रतीति साफ हो गई। उस क्षण योग छूट गया, प्रयास छूट गया। उसी रात निर्वाण घटा। उसी रात समाधि फली।

अब सवाल है कि क्या यह रात्रि बिना छह वर्ष के श्रम के आ सकती थी? तब तो तुम भी आज की रात निर्वाण को उपलब्ध हो जाओ। यह रात्रि विशिष्ट थी। इस रात्रि की विशिष्टता क्या थी? यह छह वर्ष के श्रम के बाद आई थी। यद्यपि यह भी सच है कि इस रात्रि को तुम छह वर्षों का निष्कर्ष नहीं कह सकते हो। यह छह वर्षों के कारण नहीं आई थी, क्योंकि छह वर्षों के कारण आती होती तो श्रम तो बहुत किया था, श्रम के दिनों में

ही आ जाती। श्रम के दिनों में नहीं आई--आई विश्राम में। मगर विश्राम बिना श्रम के संभव नहीं है। तो श्रम भूमिका बनती है विश्राम की।

बुद्ध थक गए। उस थकान में चिंतन भी गया, विचार भी गया, योग भी गया, सब समाप्त हो गया। उस रात्रि बिल्कुल सहज हो गए, जैसे पशु सहज होते हैं--सिर्फ एक भेद के साथ कि पशुओं को कोई बोध नहीं है, बुद्ध को पूरा बोध है, होश है। उसी रात परम घटना घट गई।

बुद्ध ने सहज को जाना, लेकिन सहज तक पहुंचना एक लंबी यात्रा थी। श्रम से अश्रम में पहुंचे। इसलिए बुद्ध की प्रक्रिया को सहज-योग कहा जा सकता है। सरहपा बुद्ध की परंपरा का ही हिस्सा है। सरहपा भी एक बुद्ध है।

जो लोग तर्क से जीते हैं उन्हें बड़ी कठिनाई हो जाती है। वे कहते हैंः या तो योग या सहज, दोनों कैसे साथ? तर्क एकांगी होता है--और वही तर्क की भ्रांति है, वही तर्क की व्यर्थता है। तर्क एकांगी होता है। तर्क कहता हैः या यह या वह। तर्क के सोचने का ढंग ही यही हैः एक को चुन लो। लेकिन तर्क से अस्तित्व नहीं चलता।

यह बिजली जल रही है; इस बिजली में ऋण और धन दोनों जुड़े हैं। तर्क कहेगा ऋण ही ऋण से जमा लो या धन ही धन से जमा लो, ऋण-धन दोनों को क्यों जमाना? ये तो विपरीत हैं। मगर बिजली तर्क की नहीं सुनती। बिजली द्वंद्वात्मक है; द्वंद्व से ही जन्मती है। द्वंद्व में ही घर्षण है। जैसे दो चकमक के पत्थर कोई टकराए और आग पैदा हो जाए। तुमसे कोई कहे एक ही चकमक पत्थर से क्यों नहीं पैदा कर लेते हो?

स्त्री और पुरुष के मिलन से जीवन का प्रवाह होता है, बच्चे का जन्म होता है। पुरुष ही पुरुष निपटा लें, कि स्त्रियां ही स्त्रियां निपटा लें, नहीं यह हो सकेगा। और पुरुष और स्त्री विपरीत हैं।

ऐसा ही योग पुरुष है, सहज स्त्री है। योग है श्रम; सहज है विश्राम। योग है आक्रमक, सहज है स्वीकार। योग जाता बाहर की तरफ; सहज जाता भीतर की तरफ। योग सक्रियता है; सहज निष्क्रियता है। जो सिर्फ योग ही योग साधेगा विक्षिप्त हो जाएगा; क्योंकि उसे विश्राम न मिल सकेगा। उसे सहज की छाया न मिल सकेगी; वह धूप ही धूप में जिएगा, जल मरेगा। और जो सहज ही सहज साधेगा वह सुस्त हो जायेगा, आलसी हो जाएगा, अकर्मण्य हो जाएगा, निस्तेज हो जाएगा। छाया ही छाया में रहेगा, धूप न मिलेगी, तो जीवन कैसे विकसित होगा? धूप भी चाहिए और छाया भी चाहिए। दोनों चाहिए, दोनों का दान है जीवन को।

ऐसा हुआ, एक किसान बहुत परेशान हो गया। हर वर्ष कुछ गड़बड़ कभी कुछ... कभी बाढ़ आ जाए, कभी आंधी तूफान आ जाएं, कभी पाला पड़ जाए, कभी ओले गिर जाएं, कभी वर्षा कम कभी वर्षा ज्यादा। किसान थक गया। एक दिन उसने परमात्मा से कहा कि तुम्हें किसानी नहीं आती। तुमने कभी किसानी की है? तुमने कभी कृषि-शास्त्र को समझा? इधर मेरी जिंदगी बीत गई और तुम्हारी भूल-चूकें देखते-देखते थक गया हूं। एक वर्ष मुझे मौका दे दो, मैं तुम्हें दिखाऊं कि खेती कैसी होती है!

पुराने दिन की कहानी है। परमात्मा उन दिनों बहुत करीब हुआ करता था। इतने फासले न थे, सीधी-सीधी बात हो जाती थी। फासले आदमी ने खड़े कर लिए, अब सीधी बात करनी मुश्किल है। सीधी बात श्रद्धा में हो सकती है। उस किसान ने बड़ी श्रद्धा से आकाश की तरफ मुंह उठाकर कहा था कि एक दफा मुझे, इस साल मुझे मौका दे दो। जिंदगी-भर मैंने तुम्हें मौका दिया और तुम हमेशा जो भी किए, उसमें कोई तुक नहीं है कोई तर्क नहीं है। खेत लहलहा रहा है, खड़ा है कि पाला पड़ गया, कि ओले गिर गए, कि ज्यादा वर्षा हो गई कि कम वर्षा हो गई। कोई नाप-तौल होना चाहिए।

परमात्मा ने कहाः ठीक है, आने वाले वर्ष तू सम्हाल। और आने वाले वर्ष किसान ने सम्हाला और तर्क से सम्हाला। न तो ज्यादा वर्षा हुई, न ओले पड़े, न तूफान, न आंधी, न झंझावात उठे। सब बड़ा शांति से चला। और खेत भी ऐसे बढ़े कि किसान की छाती न फूली समाए। इतने बड़े पौधे कभी हुए न थे। दुगने, आदमी छिप जाए उनमें, इतने बड़े पौधे! कोई बाधा ही न आई थी। किसान ने कहाः अब दिखाऊंगा परमात्मा को! इसको कहते हैं फसल! और बालें बड़ी-बड़ी! और किसान को लगता था कि गेहूं के दाने भी होंगे तो दुगने-तिगने बड़े होंगे। दिखाऊंगा परमात्मा को कि तुम जिंदगी हो गई, यही उपद्रव करते। पूछ लेते उनसे जो जानते हैं।

फिर फसल कटी और किसान छाती पीटकर रोने लगा। बालें तो बड़ी थीं, मगर उनमें दाने न पड़े थे। और उसने परमात्मा से पूछा कि यह माजरा क्या है? परमात्मा ने कहाः तूने शीतलता दी, शांति दी, पर तूफान न दिए। बिना तूफानों के दाने कैसे पड़ सकते हैं? बिना पीड़ा के प्रसव कैसे? तूने सब सुविधा दे दी, मगर सुविधा-सुविधा में जीवन का जन्म ही न हुआ। तूने एक ही चकमक से आग पैदा करने की कोशिश की। इससे पौधे बड़े हो गए, मगर व्यर्थ। तूफान भी चाहिए और आंधी भी चाहिए और पाला भी और कभी ओले भी और कभी ज्यादा वर्षा भी और कभी ज्यादा धूप भी--ताकि चुनौती रहे। ये बालें लड़ ही न पायीं। इनका संघर्ष ही न हुआ। इनके जीवन में द्वंद्व ही न आया।

तुम देखते हो न, धनपतियों के बेटे अकसर बहुत बुद्धिमान नहीं हो पाते! और कारण इतना ही होता है कि न तूफान, न आंधी, न पाला। सब सुविधा, सब सुरक्षा, तो चैतन्य को जगने का अवसर नहीं मिलता। चैतन्य जगता है, जैसे चकमक से आग पैदा होती है। द्वंद्व चाहिए। द्वंद्व का स्वीकार चाहिए।

इसलिए मैंने इसे सहज-योग कहा है। योग जोड़ना ही होगा। श्रम तो तुम्हें करना ही होगा। इतना ही ध्यान रहे कि श्रम मंजिल नहीं है, मार्ग है। मंजिल तो सहज है। मंजिल तो स्वभाव है। पहुंचना तो विश्राम में है। इसलिए जो भी तुम कर सको उस विश्राम को पाने के लिए करना और यह भी ध्यान रखना कि तुम्हारे करने से सीधा-सीधा वह मिलेगा नहीं; लेकिन तुम्हारे करने से ही वह अवसर निर्मित होता है जिसमें विश्राम के फूल खिलते हैं।

उदाहरण के लिए, तुम ध्यान के लिए कितना ही श्रम करो ध्यान नहीं होगा; लेकिन तुम्हारा किया हुआ श्रम रास्ता बनाएगा जिसमें से ध्यान एक दिन उतर आएगा। अकसर ऐसा होता है कि जब तुम ध्यान करने बैठते हो तब ध्यान नहीं होता; लेकिन बैठते रहो, बैठते रहो, बैठते रहो एक दिन अचानक तुम पाओगे, तुम ध्यान करने बैठे भी नहीं थे और ध्यान घटा! हो सकता है, तुम बगीचे में काम करते थे कि सुबह घूमने निकले थे, कि अकेले बैठे थे, कुछ भी न कर रहे थे, घर में कोई भी न था, सन्नाटा था--और अचानक एक ज्योतिपुंज ने तुम्हें घेर लिया। और अचानक तुम्हारे भीतर ऊर्जा छलांगें लेने लगी। और अचानक अतिथि आ गया द्वार पर। अचानक तुमने उसकी दस्तक सुन ली। पहली दफे उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ी, नाद पैदा हुआ। और तुम चौंकोगे, क्योंकि अभी तुम ध्यान करने बैठे ही न थे। लेकिन तुम जो ध्यान करने बैठे हो बहुत बार, उसके बिना यह घटना नहीं घटने वाली थी। और बहुत बार बैठे और नहीं घटी।

ऐसा समझो कि राह पर तुम्हें एक आदमी दिखाई पड़ा और तुम्हें लगा कि चेहरा तो पहचाना मालूम पड़ता है, नाम भी जबान पर रखा मालूम पड़ता है, मगर नहीं आता, नहीं आता याद। बहुत तुमने चेष्टा की। बहुत सिर मारा। पहचाना पक्का मालूम होता है। एक-एक रेखा चेहरे की परिचित है, एक-एक झुर्री परिचित है। उसकी चाल पहचानी हुई है। उसकी आवाज पहचानी हुई है। उसका नाम जबान पर रखा है। मगर नहीं आता। तुमने बहुत हाथ-पैर मारे और नहीं आया, नहीं आया। फिर तुमने कहा, जाने भी दो, क्या करोगे? कोई उपाय

नहीं है। उस दुविधा का तुम ख्याल करो, जब कभी ऐसा हो जाता है कोई चीज जबान पर रखी मालूम पड़ती है और नहीं आती, तब कैसी तुम संकट की अवस्था में हो जाते हो! मालूम है कि मालूम है और फिर भी नहीं मालूम। फिर तुम थक जाते हो। उस दशा में ज्यादा देर नहीं रह सकते। वह दशा बड़ी बेचैनी की है। तुम छोड़-छोड़कर अखबार पढ़ने लगे कि अपना हुक्का उठा लिया, कि निकल गए बाहर, कि बगीचे में चले आए, कि फूलों को देखने लगे और अचानक इधर हुक्का गुड़गुड़ाया कि उधर एकदम से नाम याद आया! लेकिन जब तुम याद कर रहे थे तब न आया और अब आया। तो क्या तुम सोचते हो तुमने कभी याद ही न किया होता तो भी आता? फिर तो कैसे आता?

इस विरोधाभास को ठीक से समझ लोः जिसने याद किया है, खूब मेहनत की है याद करने की और नहीं याद आ सका, क्योंकि जितना उसने श्रम किया उतना चित्त तनता गया, तनावग्रस्त हो गया। तनावग्रस्त चित्त संकीर्ण हो जाता है। संकीर्ण चित्त में से कुछ भी उठ नहीं सकता, जगह नहीं रह जाती। फिर उसी स्थिति को उसने विश्राम दे दिया। चला गया बगीचे में, अपना हुक्का गुड़गुड़ाने लगा कि अखबार पढ़ने लगा, कि बच्चे के साथ खेलने लगा। चित्त का विश्राम आया, तनाव गया, चित्त की संकीर्णता मिटी, चित्त जरा विराट हुआ--और तत्क्षण अचेतन से उठी लहर और चेतन नहा गया उस लहर में! याद आ गई।

मैडम क्यूरी ने तीन वर्ष तक गणित के सवाल को हल करने की कोशिश की और न कर पायी। वही हुआ जो बुद्ध के साथ हुआ था। वही हुआ जो सभी के साथ सदा हुआ है। उस पर सब दारमदार था। वह सवाल हल हो जाए तो एक बड़ी वैज्ञानिक उपलिब्ध होगी। उसी सवाल के हल हेने पर मैडम क्यूरी को नोबल पुरस्कार मिला। मगर तीन साल सारी बुद्धिमता लगा दी, कुछ हल न हुआ और एक सांझ... ।

ये कहानियां बिल्कुल एक जैसी मालूम होती हैं और इनके पीछे एक ही सूत्र है। एक सांझ थक गई। उसने उस सवाल को छोड़ ही दिया उस सांझ कि अब नहीं। बहुत हो गया, तीन साल खराब हो गए, यह नहीं होना है मालूम होता है। ऐसा सोचकर उस रात वह सोयी और बीच रात सपने में उठी। नींद में ही, सपने में ही सवाल का उत्तर आ गया था। गई टेबल पर नींद में और टेबल पर जाकर सवाल का जवाब लिखकर वापस बिस्तर पर सो गई। सुबह जब उठी और अपनी टेबल साफ करती थी तो चकित हुईः उत्तर मौजूद था! यह आया कहां से, उसे तो याद भी नहीं रही थी! कमरे में कोई दूसरा व्यक्ति था भी नहीं और होता भी तो मैडम क्यूरी जिसको तीन साल में हल नहीं कर पायी उसको दूसरा व्यक्ति कौन हल कर लेता! कमरे में कोई था भी नहीं। ताला भीतर से बंद था, रात जब वह सोयी थी। ताला अभी भी बंद था। कमरे में कोई आ नहीं सकता। फिर उसने गौर से देखा, हस्ताक्षर थोड़े अस्त-व्यस्त थे लेकिन उसी के हैं। तब उसने याद करने की कोशिश की आंख बंद करके, तो उसे याद आया कि उसने एक सपना देखा था रात कि सपने में वह उठी है और कुछ लिख रही है। तब उसे पूरी बात याद आ गई। यह उत्तर उसी के भीतर से आया है। तीन साल तक सतत श्रम करने से नहीं आया है। आज की रात क्यों? तीन साल योग सधा, आज की रात सहज फला। मगर उस योग की खाद है, उस खाद से ही सहज फूल खिलता है।

इसलिए मैंने सहज-योग कहा। विरोधाभासी है। है ही नहीं, दिखाई ही नहीं पड़ता--वस्तुतः है। आभास ही नहीं है, विरोध ही है। सहज और योग में विरोध है। सहज विश्राम है, योग श्रम है; मगर श्रम से ही विश्राम पर पहुंचा जाता है। जैसे जीवन मृत्यु में ले जाता है ऐसे ही श्रम विश्राम में ले जाता है।

श्रम करना, पर ध्यान रखना विश्राम का। बस उतनी स्मृति बनी रहे। श्रम को ही सब न समझ लेना, नहीं तो योग में ही अटक जाओगे, और सहज को ही सब मत समझ लेना, नहीं तो यात्रा शुरू ही नहीं होगी, आलस्य में ही पड़े रह जाओगे। ये दोनों पंख चाहिए ताकि तुम उ.ड़ सको। ये दोनों पैर चाहिए, ताकि तुम चल सको।

इसलिए तुम्हें समस्त विश्व के संतों के वचनों में विरोधाभासी वक्तव्य मिलेंगे। जीसस ने कहा हैः जो बचाएगा मिट जाएगा। जो मिट जाएगा, वही बच रहता है। और जीसस ने कहा हैः जो अंतिम है वह प्रथम हो जाएगा और जो प्रथम है वह अंतिम पड़ जाएगा। और जीसस ने कहा हैः धन्यभागी हैं वे जो दीन हैं, दुर्बल हैं, क्योंकि परमात्मा का राज्य उन्हीं का है। इस देश में भी हमने कहा हैः दुर्बल के बल राम! निर्बल के बल राम!

जानते हैं लोग कि ऐसे भी क्षण होते हैं जीवन में जब हार जीत हो जाती है। उसी को हम प्रेम का क्षण कहते हैं। वही प्रेम का जादू हैः जहां हार जीत हो जाती है।

हार ही अब तो हृदय की,
जीत होती जा रही है!

वे अधूरे स्वप्न ही जो,
हो नहीं साकार पाए।
एक प्रिय वरदान ले फिर,
इन दृगों में आ समाए।
साधना ही अब हृदय की,
मीत होती जा रही है!
हार ही अब तो हृदय की,
जीत होती जा रही है!
खो दिया अस्तित्व मैंने,
अब किसी का पा सहारा।
हार कर भी कह रहा मन,
मैं न हारा, मैं न हारा।
आज जीवन से मुझे कुछ,
प्रीत होती जा रही है!
हार ही अब तो हृदय की,
जीत होती जा रही है!

बंधनों में बंध गया है,
स्वयं ही उन्मुक्त जीवन।
मुक्ति से प्यारा मुझे है,
कल्पना का मधुर बंधन।
वेदना उर की अमर,
संगीत होती जा रही है!

हार ही अब तो हृदय की,

जीत होती जा रही है!

हार जीत हो जाती है, ऐसा प्रेम का जादू है। और योग सहज हो जाता है, ऐसी समझ की कीमिया है।

दूसरा प्रश्नः भक्त प्रभु-विरह में कभी रोता है कभी हंसता है, यह विरोधाभास कैसा?

वैसा ही जैसा मैंने अभी तुम्हें सहज-योग के लिए कहा। रोने और हंसने में विरोध दिखाई पड़ता है, है भी, पर गहरे में जोड़ भी है। यहां गहरे में सब विरोध जुड़े हैं, संयुक्त हैं। जो दो शाखाएं आकर वृक्ष की अलग हो गई हैं, वे ही नीचे इकट्ठी हैं। किसी अतल गहराई में आंसुओं में और मुस्कुराहटों में तादात्म्य है।

और भक्त की दशा सभी भंगिमाओं से गुजरती है। कभी रोता है जरूर, कभी हंसता है। कभी आकाश बादलों से घिरा होता है और बड़ी उदासी होती है और सूरज के कहीं दर्शन नहीं होते; और कभी आकाश से सूरज का सोना बरसता है, बदलियों का कोई पता नहीं होता, निरभ्र आकाश होता है, आनंद की मस्ती होती है। कभी भक्त डूब जाता है विरह की पीड़ा में और कभी मिलन के आनंद में नाच उठता है। कभी रोता है, कभी हंसता है।

भक्ति के बहुत पहलू हैं और भक्त सभी पहलुओं से गुजरता है--कभी उदास, कभी उत्फुल्ल; कभी हारा-थका, कभी बड़ा उत्साहित, बड़े उन्माद में; कभी बिल्कुल टूटा, जैसे अब जी ही न सकेगा; और कभी ऐसे जैसे अमृत जीवन मिल गया है! ये सारी भाव-भंगिमाएं हैं। ये सब परमात्मा की प्रार्थनाओं के अलग-अलग ढंग हैं। लेकिन भक्त एक तरकीब जानता है कि सभी उसी को समर्पित कर देता है। उदासी भी तो उसी की और उत्साह भी तो उसी का, जीवन भी उसी का, मृत्यु भी उसी की। तो भक्त सभी कुछ उसी पर समर्पित करता जाता है। आती तो बड़ी अदभुत अनुभूतियां हैं। और ऐसा ही नहीं कि बाहर से... जैसा तुमने बाहर से पूछा है कि भक्त विरह में रोता है कभी हंसता है, यह विरोधाभास कैसा? ऐसा ही नहीं कि तुम्हें विरोधाभास मालूम होता है; भक्त को भी भीतर से यह लगता है कि मामला क्या है, मैं पागल तो नहीं हो गया हूं! और कभी-कभी तो ऐसा होता है, आंखों से आंसू झरते हैं और ओंठों पर मुस्कुराहट होती है। कभी ऐसा होता है कि रोता है और नाचता भी है। कभी दोनों साथ-साथ ही घटते हैं। तब तो भक्त बिल्कुल ही पागल मालूम होता है। इसलिए भक्तों को लोगों ने दीवाना समझा है।

िं.जदगी अपनी जब इस शक्ल से गु.जरी या रब!

हम भी क्या याद रखेंगे कि खुदा रखते थे।।

कभी तो बड़े उदास, बड़े दुख और विषाद के दिन होते हैं।

िं.जदगी अपनी जब इस शक्ल से गु.जरी या रब!

हम भी क्या याद रखेंगे कि खुदा रखते थे।।

एक-एक क्षण बिताना मुश्किल हो जाता है। एक-एक क्षण महासंकट हो जाता है। बीतेगा कैसे यह क्षण, यह समझ में नहीं आता है--इतना दुख का बोझ होता है, इतनी विरह की प्रज्वलित अग्नि होती है! भक्त तड़फा जाता है, जैसे मछली तड़फ जाए कोई सागर के बाहर फेंक दे उसे तट पर, तो लेकिन बस ये घड़ियां आती हैं, चली जाती हैं।

यह वहम हो कि हकीकत, सुकूं इसी से है दिल को।

समझ रहा हूं कि तू बेकरार मेरे लिए है।।

भगवान दिखाई भी नहीं पड़ता भक्त को। ऐसे क्षण होते हैं जब बड़ी अंधेरी अमावस की रात होती है। मगर इतने से ही बड़ा सुकूं होता है, बड़ी शांति होती है, बड़ी तसल्ली होती है। यह वहम हो कि हकीकत... और फिर लोग कुछ भी कहें। लोग कहते हैं कि यह सब वहम है, कि भ्रम है, कि तेरे मानसिक प्रक्षेपण हैं।

यह वहम हो कि हकीकत, सुकूं इसी से है दिल को।

समझ रहा हूं कि तू बेकरार मेरे लिए है।।

दिखाई नहीं पड़ता परमात्मा कहीं, लेकिन भक्त को ऐसी प्रतीति होती है कि परमात्मा उसके लिए बेकरार है, जैसे वह परमात्मा के लिए बेकरार है। और तब उसे बड़ी शांति भी मिलती है। तब उदास से उदास रात भी अचानक सुबह हो जाती है। तब अमावस से अमावस एकदम से पूर्णिमा हो जाती है। फिर भक्त इसकी भी फिकिर नहीं करता कि यह वहम है कि हकीकत है।

उनकी बेजा भी सुनूं, आप बजा भी न कहूं।

आखिर इन्सान हूं मैं भी, कोई दीवार नहीं।।

फिर कभी जूझ भी बैठता है परमात्मा से। और भक्त ही जूझ सकता है, क्योंकि प्रेमी ही लड़ सकता है। औरों की तो सामर्थ्य क्या?

उनकी बेजा भी सुनूं, आप बजा भी न कहूं।

आख़िर इन्सान हूं मैं भी, कोई दीवार नहीं।।

तो नाराजगी में कभी पूजा भी नहीं करता, द्वार-दरवाजे बंद कर देता है परमात्मा के। कभी प्रार्थना भी नहीं करता और हजार तरह की शिकायतें भी उठती हैं।

न शाख में यह कहीं सूख जायें फूल मेरे।

जो तोड़ना हो तो अब तोड़ इंति.जार न कर।।

आखिर सीमा होती है एक!

या यही कह दे कि राहत तेरी किस्मत में नहीं।

मुझको देना है तो दे आज, कयामत में नहीं।।

आखिर प्रतीक्षा भी कब तक? और फिर जानता भी है, समझता भी है--

उनसे शिकवा फजूल है सीमाप

काबले इल्तिफाक तू ही नहीं

शिकायत क्या करूं, यह भी जानता है। मेरी पात्रता क्या है! अभी मैं उनकी करुणा के योग्य भी कहां हूं!

आजुरदा इस कदर हूं सराबे-ख़याल से।

जी चाहता है तुम भी न आओ ख़याल में।।

तंग आके तोड़ता हूं, ख़याले तिलस्म को।

या मुतमइन करो कि तुम्हीं हो ख़याल में।।

कभी ऐसा परेशान हो जाता है याद करते-करते, याद करते-करते, रोते-रोते जार-जार हो जाता है, कि कहता हैः इतना थक गया हूं, इतना व्यथित हो गया हूं... आजुरदा इस कदर हूं सराबे-ख़याल से... तुम्हारे ख्याल में, तुम्हारे ध्यान में, तुम्हारी स्मृति में इस तरह व्यथित हो गया हूं कि अब तो जी चाहता है तुम भी न आओ ख्याल में। मगर बस यह क्षण-भर को बात टिकती है और दूसरे ही क्षण कहता है--

तंग आके तोड़ता हूं, ख़याले-तिलस्म को।

या मुतमइन करो कि तुम्हीं हो ख़याल में।।

मुझे विश्वास दिला दो कि यह तुम्हीं हो जो मेरे ख्याल में आए। और नहीं तो तोड़ दूंगा ये सारे विचारों के तिलिस्म को। अगर तुम नहीं हो तो कुछ भी नहीं है।

क्या कहीं भूल गया मुझको बनाने वाला

कि मेरी बात बिगड़ती ही चली जाती है।

क्या कभी मौत के तेवर नहीं इसने देखे।

िं.जदगी है कि अकड़ती ही चली जाती है।।

हजार रंग हैं भक्ति के। हजार ढंग हैं भक्ति के। सारी ऋतुएं हैं भक्ति की। कभी बसंत है और कभी पतझड़। और कभी वर्षा है और कभी धूप। और कभी सर्दी है और कभी गर्मी।

ह.जार ऐश की सुबहें निसार हैं जिस पर।

मेरी हयात में ऐसी भी इक शबे-.गम है।।

और भक्त यह भी कहता है गौरव से, कि तेरी याद में जो रात बीती, तेरे विरह में जो रात बीती, वह कुछ ऐसी है कि हजार ऐश की सुबहें निसार हैं जिस पर--कि सुख की, सफलता की, विलास की, वैभव की, हजार सुबहें उस एक रात पर निसार हैं, जो तेरी याद में बीती। क्योंकि तेरी याद पीड़ा तो देती है, मगर पीड़ा बड़ी मधुर है। तेरी याद तिक्त भी बहुत है, मादक भी बहुत है। शराब है न, तिक्त! स्वाद तो कुछ शराब के ढंग का नहीं होता। अनुभव कुछ और होता है, स्वाद कुछ और होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बहुत परेशान थी उसकी शराब पीने की आदत से। सब उपाय कर चुकी। कोई और उपाय न सूझा तो उसने आखिरी उपाय किया। मुल्ला गया है शराब-घर, वह भी पहुंच गई। बुर्के में रहने वाली स्त्री। उसने सोचा कि यह आखिरी चोट होगी, शराब-घर में पहुंच जाए। उसने बुर्का उलट दिया और जाकर मुल्ला की टेबिल के पास की कुर्सी लेकर बैठ गई। मुल्ला तो थरथरा गया, लोग क्या कहेंगे, यह तो हद हो गई! स्त्रियां शराब-घर में! पर्दानशीं स्त्रियां शराब-घर में! मगर मुल्ला कुछ यह कह भी नहीं सकता कि तू यहां कैसे आयी, क्योंकि यही तो उसकी पत्नी उससे जिंदगी भर से कह रही है वहां मत जाओ। और पत्नी ने कहा कि आज मैं भी पीऊंगी। और इसके पहले कि मुल्ला उसे रोके या रोक सके उसने तो ली और बोतल उंडेल दी गिलास में और लेकर पहला घूंट चखा। चखते ही गिलास रख दिया और मुंह में जो शराब गई थी, थूक दी और कहा कि अरे, इतनी तिक्त, इतनी कड़वी! मुल्ला ने कहाः और तू सदा यही समझती थी कि हम मजा कर रहे हैं! अब समझी?

स्वाद तो तिक्त है। विरह का स्वाद तो तिक्त है। शराब जैसा ही है विरह, लेकिन अनुभव बड़ा मादक है, बड़ा आह्लादकारी है।

भला मेरी यह हिम्मत थी कि तुमसे अर्जे-दिल करता।

जबीने बेसिकन देखी तो कुछ कहने की ताब आई।।

मुझे धोखा न देती हों कहीं तरसी हुई न.जरें।

तुम्हीं हो सामने या फिर वही तस्वीरे-ख्वाब आई।।

भक्त के अनुभव भक्त ही समझ सकते हैं। दूसरों को तो सब सपने की बातें हैं, कि मानसिक खेल है। भला मेरी यह हिम्मत थी कि तुमसे अ.र्जे-दिल करता... कि अपने हृदय की बात तुमसे कहता कि अपनी शिकायत कि अपनी प्रार्थना कि अपनी मांग तुम्हारे सामने रखता।

भला मेरी यह हिम्मत थी कि तुमसे अ.र्जे-दिल करता।

जबीने बेसिकन देखी तो कुछ कहने की ताब आई।।

तुम्हारा मस्तक देखा और चिंता-रहित देखा और तुम प्रसन्न मालूम हुए और तुम ऐसे लगे कि यह घड़ी है कि अभी कह दूं। मुझे धोखा न देती हों कहीं तरसी हुई नजरें। यही कहना है मुझे कि मेरी आंखें इतनी तरस गई हैं तुम्हें देखने के लिए कि कहीं ऐसा न हो कि तरसी नजरें मुझे धोखा दे रही हों।

मुझे धोखा न देती हों कहीं तरसी हुई न.जरें।

तुम्हीं हो सामने या फिर वही तस्वीरे-ख्वाब आई।।

कहीं फिर मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा हूं... । क्योंकि भक्त बहुत बार सपना भी देख लेता है। जिसकी तुम निरंतर याद करते हो वह सपने में भी प्रगट हो जाता है। जिसकी तुम बहुत-बहुत याद करते हो, वह दिन में भी खुली आंखों से भी मौजूद हो जाता है; लेकिन होता सपना ही है।

भक्त सपनों में से गुजरता है। सपनों से गुजर-गुजरकर, सपनों की पर्त उघाड़-उघाड़कर एक दिन सत्य का आविर्भाव होता है। और बड़ी मुश्किल में होता है भक्त, क्योंकि परमात्मा इतने करीब मालूम होता है उसे। वे तो कैसे समझेंगे जो जानते ही नहीं कि परमात्मा है? वे भी कैसे समझेंगे जो मानते हैं कि परमात्मा है लेकिन बहुत दूर है, अभी घटने वाला नहीं है, जन्मों-जन्मों में कभी घटेगा, मृत्यु के बाद कभी घटेगा, परलोक में कभी घटेगा!

खूब पर्दा है कि चिलमन से लगे बैठे हैं।

साफ छुपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं।।

और चिलमन से लगे बैठे हैं, ऐसा भक्त को दिखाई पड़ता है। दिखाई भी पड़ रहे हैं--झीने पर्दे में से, चिलमन में से झलक भी मालूम हो रही है।

खूब पर्दा है कि चिलमन से लगे बैठे हैं।

सा.फ छुपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं।।

तो भक्त की पीड़ा है, भक्त का आनंद भी है।

न.जर का इक इशारा चाहिये अहले-मुहब्बत को।

ज.बीने-शौक झुक जाये जिधर कहिये, जहां कहिए।।

बस राह देखता है कि तुम्हारा इशारा हो जाए, कि गर्दन उतारनी हो तो गर्दन उतार दूं। रोता है, लेकिन जानता है कि मेरे रोने की भी क्या समार्थ्य!

ऐ .गमे-इश्क तेरे .जर्फ में कुछ आग भी है?

अपने से ही पूछता है--

ऐ .गमे-इश्क तेरे जर्फ में कुछ आग भी है?

आंसुओं से तो इलाजे-तपिशे-दिल न हुआ।।

दग्ध हृदय की चिकित्सा आंसुओं से तो हो नहीं सकी, रो तो मैं खूब लिया, रो तो मैं खूब चुका। अब अपने से ही पूछता है कि मेरे हृदय-पात्र! तुझमें कुछ आग भी है? आग हो तो अब जल।

ऐ .गमे-इश्क तेरे जर्फ में कुछ आग भी है?

आंसुओं से तो इलाजे-तपिशे-दिल न हुआ।।

बहुत रो लिया, मगर आग खोजता है अपने हृदय में। और मिल जाती है एक दिन आग। विरह ही तो धीरे-धीरे सघन होकर आग बन जाता है, प्रगाढ़ होते-होते प्रज्वलित हो उठता है। उसी प्रज्वलित अग्नि में भक्त समाहित हो जाता है, जैसे पतंगा जल जाए शमा पर। और पतंगे की मृत्यु ही उसकी मुक्ति है। भक्त का मर जाना ही उसका मोक्ष है। भक्त जब मर जाता है, फिर न आंसू हैं न हंसी है, न नाच है न गीत है, न दुख है न सुख है। भक्त जब मर जाता है तब महासुख है, शाश्वत सुख है। जहां अहंकार गया वहां परमात्मा ही बचता है; भक्त नहीं बचता, भगवान ही बचता है। उस घड़ी के आने के पहले तो सभी भाव-भंगिमाओं से भक्त को गुजरना पड़ता है।

भक्त का जगत बड़ा रंगीन है। ज्ञानी का जगत बहुत रंगीन नहीं है; उसमें एक ही रंग है, ज्ञानी का जगत इकतारा है; उसमें एक ही स्वर उठता है, एक ही तार है। भक्त के वाद्य पर सब तार हैं। भक्त के पास सभी तरह के वाद्य हैं। भक्त तो समस्त वाद्यों के बीच उठने वाला समवेत स्वर है। भक्त तो सातों रंग लिए हैं--इंद्रधनुष है।

भक्ति की वैविध्यता को समझो। ज्ञानी के पास बहुत रंग नहीं होते। इसलिए ज्ञानी इस जगत को कोई सुंदर काव्य नहीं दे सके। ध्यानी इस जगत को कोई सुंदर संगीत नहीं दे सके। भक्तों ने दिए संगीत। भक्तों ने दिए गीत। भक्तों ने दी मूर्तियां और पत्थरों को सजीव कर दिया! पत्थरों में प्राण डाल दिए। पत्थरों से गीत उठने लगे।

भक्तों ने इस जगत को बहुत सौंदर्य दिया है, क्योंकि भक्त के पास वैविध्य है। और विविधता में ही रस की धारा बह सकती है। ज्ञानी तो होता है मरुस्थल जैसा; भक्त होता है बगीचे जैसा, जिसमें सब तरह के फूल खिलते हैं, सब गंधें उठती हैं।

गुम कितने कारवां हुए ईमां के नूर में।

अच्छे रहे जो सायाए-उल्.फत में आ गये।।

वोह दिल फिर उसके बाद न तारीक हो सका।

जिसमें दीये वोह अपनी नजर से जला गये।।

गुम कितने कारवां हुए ईमां के नूर में! बड़ा अदभुत वचन है। धर्मांधता के तथाकथित प्रकाश में कितने यात्रीदल भटक नहीं गए हैं। तथाकथित प्रकाश में अनेक यात्रीदल भटक गए हैं। गुम कितने कारवां हुए ईमां के नूर में! कोई हिंदू के प्रकाश में, कोई मुसलमान के प्रकाश में, कोई ईसाई के प्रकाश में। कहने को प्रकाश हैं और यात्रीदल भटक गए हैं। प्रकाश में भटक गए हैं। भरे-दिन भरी-दुपहरी में भटक गए हैं।

गुम कितने कारवां हुए ईमां के नूर में।

अच्छे रहे जो सायाए-उल्फत में आ गये।।

लेकिन धन्यभागी हैं वे जो अंधेरे में आ गए प्रेम के! अगर ये प्रकाश हैं, ये मंदिर-मस्जिदों में जलने वाले दीए अगर दीए हैं, तो प्रेमी का फिर इन दीयों से कुछ लेना-देना नहीं। प्रेमी तो कहता है; फिर हम भले, हमारे प्रेम के अंधेरे में भले। हमारे प्रेम का अंधेरा तुम्हारे प्रकाश से बेहतर है, क्योंकि तुम्हारे प्रकाश में हमने यात्रियों को भटकते देखा है और हमारे अंधेरे में हमने यात्रियों को पहुंचते देखा है।

गुम कितने कारवां हुए इमां के नूर में।

अच्छे रहे जो सायए-उल्फत में आ गये।।

वो दिल फिर उसके बाद न तारीक हो सका।

जिस दिल में परमात्मा के प्रेम का दीया जला है, वहां फिर कभी अंधेरा नहीं हुआ है; बाकी तो सब जो बाहर से उधार दीए लेकर चल रहे हैं, भटके हैं--और भटकेंगे और लोगों को भी भटकायेंगे।

वोह दिल फिर उसके बाद न तारीक हो सका।

जिसमें दिये वोह अपनी न.जर से जला गये।।

भक्त तो उसकी आंख को ही दीया मानता है। जब तक उसकी आंख से आंख न मिल जाए तब तक मानता है अंधेरा ही अंधेरा है। और भक्त प्रेम के इस अंधेरे को पसंद करता है बजाए शास्त्रों के उजेले के, क्योंकि शास्त्रों में सिर्फ लोग भटक गए हैं, शास्त्रों के वनों में भटक गए हैं, शब्दों के जाल में भटक गए हैं।

प्रेम एकमात्र उपाय है। अगर जाना हो परमात्मा तक, अगर पहुंचना हो परमप्रिय तक, तो प्रेम का दीवानापन स्वीकार करो। प्रेम का अंधेरा स्वीकार करो, क्योंकि प्रेम की अमावस भी एक दिन पूर्णिमा बनने में समर्थ है। और तथाकथित शास्त्रों की रोशनी सिर्फ तुम्हें उलझाए रखती है, रोशनी का धोखा देती रहती है। भक्त तो दीवाने होते हैं। उनके तो अपने ही ढंग हैं, अपनी ही शैली है।

संगे-दर सर पै है, दर पर नहीं अब सर मेरा।

अहले-काबा मेरे सिज्दों का सलीका देखें।।

वे जो जानकार हैं मंदिर-मस्जिदों के, जरा मेरा ढंग भी देखें, मेरा सलीका भी देखें! हमने परमात्मा के पत्थर पर, उसकी चौखट के पत्थर पर सिर नहीं रखा है--उसके चौखट के पत्थर को ही सिर पर रख लिया है! हम क्या सिर कहीं पटकें, हम तो उसको सिर पर लिए चल रहे हैं!

संगे-दर सर पै है, दर पर नहीं अब सर मेरा।

अहले-काबा मेरे सिज्दों का सलीका देखें।।

और वे जो जानकार हैं, काबे के मंदिरों के, मस्जिदों के, शास्त्रों के, वे जरा प्रेमियों की शैली भी देखें, प्रेमियों की भाव-भंगिमाएं भी देखें, प्रेमियों के तौर-तरीके भी देखें! प्रेमियों का अदभुत दीवाना शिष्टाचार भी देखें! प्रेमी के रहने के ढंग और, जीने के ढंग और। दीवानगी उसके जीने का सार है। मगर दीवाने ही हैं, जो अतियों को जोड़ पाएं। और दीवाने ही हैं जो विरोधों को जोड़ पाएं। और दीवाने ही हैं जो आंसुओं में और मुस्कुराहटों में सेतु बना लें। दीवाने ही हैं, जो जीवन और मृत्यु को एक जान पाएं। तार्किक वंचित रह जाते हैं; प्रेमी जान लेता है। प्रेम तर्क नहीं है। और जो तर्क से भरे हैं वे प्रेम से वंचित रह जाते हैं। वे अभागे हैं। धन्य है वह, जो प्रेम के जगत में पागल हो सकता है, क्योंकि परमात्मा उसी का है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, जाति-बिरादरी वालों ने मुझे छोड़ दिया है। यहां तक कि पंचायत बिठायी और चार व्यक्तियों ने मिलकर मुझे पीटा भी। संन्यास, बाल, दाढ़ी और गैरिक का त्याग करो--ऐसा कहकर मुझे पीटा गया--तथाकथित ब्राह्मणों और पंडितों द्वारा। न तो मैं उन्हें समझ सका, न वे मुझे समझ सके।

ओशो, ऐसा क्यों हुआ? अपने ही पराये क्यों हो गये हैं?

कृष्णानंद, ऐसा ही होना था, ऐसा ही होता है। इसमें कुछ आश्चर्यजनक नहीं हुआ है। जब भी कोई व्यक्ति भीड़ से भिन्न होने लगे तो भीड़ नाराज हो जाती है, क्योंकि तुम्हारी भिन्नता भीड़ के जीवन पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर देती है। अगर तुम सही हो तो वे गलत हैं। अगर वे सही हैं तो तुम्हें गलत होना ही चाहिए। भीड़ बरदाश्त

नहीं करती उस व्यक्ति को जो अपनी निजता की घोषणा करे। भीड़ तो भेड़ों को चाहती है, सिंहों को नहीं। और संन्यास तो सिंह-गर्जना है, सिंहनाद है।

संन्यास का तो अर्थ ही यह है कि अब मैंने छोड़ दिए रास्ते पिटे-पिटाए; लकीर का फकीर अब मैं नहीं हूं। अब चलूंगा अपनी मौज से, अपनी मर्जी से! अब खोजूंगा परमात्मा को अपने ढंग से, अपनी शैली से। सम्हालो तुम अपनी परंपराएं, मेरी अब कोई परंपरा नहीं। मैं अपनी पगडंडी खुद चलूंगा और बनाऊंगा।

संन्यास का अर्थ है कि मैं सत्य की खोज में व्यक्ति की तरह चल पड़ा; किसी भीड़ का अंग नहीं। हिंदू नहीं अब मैं, मुसलमान नहीं अब मैं, ईसाई नहीं अब मैं, जैन नहीं अब मैं। अब सारे धर्म मेरे हैं और कोई धर्म मेरा नहीं।

और तब सारे, जिनको तुम अपने समझते थे, तत्क्षण पराए हो जाएंगे। सबसे पहले वे ही पराए हो जाएंगे, क्योंकि सबसे पहले उन्हीं के साथ तुम्हारा संघर्ष शुरू हो गया। ऐसा नहीं कि तुम उनसे लड़ने चले हो, मगर तुम्हारी यह भाव-भंगिमा, तुम्हारी यह निजता की घोषणा, उनकी आंखों में अपराध हो जाएगी।

कृष्णानंद! उन्होंने वही किया, जिसकी अपेक्षा थी। तुम्हें अपेक्षा नहीं थी इसकी--इसलिए तुम चौंके, इसलिए तुम आश्चर्यचकित हुए। भीड़ सदा से यही करती रही है। और जिनको तुम जाति-बिरादरी वाले कहते हो, उनसे तुम्हारा नाता क्या था? सांयोगिक नाता था। नदी-नाव संयोग। संयोग की बात थी कि तुम एक घर में पैदा हुए, वह घर एक जाति का था, एक बिरादरी का था। मान्यता की बात थी। और सबसे पहले वे ही नाराज होंगे, क्योंकि उन्होंने यह न सोचा था कि तुम और इतनी कूवत, तुम और इतनी जुर्रत कर सकोगे। यह बगावत है। यह विद्रोह है।

अपनी कूवत आ.जमाकर अपने बाजू तोलकर।

अर्शि-ए-हस्ती में उड़ना है तो उड़ पर खोलकर।।

आकाश में जो उड़ने चला है अपने पंख खोलकर, उसने घोषणा कर दी--अपनी कूवत की, अपनी बाजू की, अपने बाजुओं की।

अपनी कूवत आ.जमाकर अपने बाजू तोलकर।

अर्शि-ए-हस्ती में उड़ना है तो उड़ पर खोलकर।।

जीवन के आकाश में तो वे ही उड़ सकते हैं, अन्यथा तो लोग सरकते रहते हैं जमीन पर। भीड़ तो उन्हीं की है। और भीड़ तुम्हें बरदाश्त न करेगी। और जब भीड़ तुम्हें चोट पहुंचाए तो परेशान न होना। स्वीकार कर लेना इसे। यह स्वाभाविक है। यह तुम्हारे साथ ही हुआ है, ऐसा नहीं है; यह सभी के साथ हुआ है। यह तो उनके साथ भी हुआ है... जीसस जैसे पुरुषों के साथ भी हुआ है।

जीसस अपने गांव में गए और उनके गांव ने उन्हें पहाड़ पर ले जाकर, धक्का देकर मार डालने का आयोजन किया। उनके ही गांव ने, उनके ही लोगों ने... । उसी दिन जीसस का प्रसिद्ध वचन प्रगट हुआ। जीसस ने कहाः "पैगंबर अपने ही गांव में अपने ही लोगों द्वारा नहीं पूजे जाते।" फिर जीसस दुबारा अपने गांव नहीं गए। कोई सार भी न था।

एक बार एक पटेल ने तीर्थयात्रा करने का फैसला किया। उसने यह भी फैसला किया कि सारी यात्रा पैदल ही करूंगा। जिस समय वह घर से चलने को हुआ, उसने देखा कि जहां उसके साथी-संगाती और रिश्ते-नाती उसे विदा दे रहे हैं, वहीं उसका पालतू कुत्ता भी विह्वल होकर उसकी ओर देख रहा है। उसने सोचा, जब

पदयात्रा ही करनी है तो क्यों न इस कुत्ते को भी साथ ले लिया जाए। और सबकी राय लेकर उसने अपनी यात्रा में कुत्ते को भी साथी बना लिया। एक से दो भले!

तीर्थयात्रा के दौरान पटेल जहां-जहां ठहरता, वहां-वहां गांव वाले उसका सत्कार करते, उसे मालाएं पहनाते तथा अच्छी आवभगत करते। इस आवभगत का कुछ अंश कुत्ते को भी मिलता। कहीं-कहीं लोग उसे भी मालाएं पहना देते और खाने को पकवान देते। यात्रा कई महीनों चलती रही और एक दिन धूमधाम से उसका समापन हो गया।

पटेल ने यात्रा का समापन-समारोह किया। लोगों ने पटेल के चरण छुए और उसके साथ-साथ कुत्ते को भी आदर दिया। समारोह की समाप्ति के बाद उस कुत्ते से उसी की गली के दूसरे कुत्तों ने यात्रा के समाचार पूछे। खास सवाल यह कि यात्रा के दौरान मालिक ने तो उसे कोई कष्ट नहीं दिया?

यात्री कुत्ते ने आंखों में आंसू भरकर कहाः भैया! मालिक ने तो मेरी बहुत सेवा की। सारे रास्ते उसने ध्यान रखा कि कहीं मैं भूखा न रह जाऊं, कहीं बिछड़ न जाऊं। मेरी जरूरतों को वह अपनी जान पर भी खेलकर पूरी करता रहा। कष्ट मुझे मालिक से नहीं हुआ, अपनी ही बिरादरीवालों से हुआ। जहां-जहां जिस-जिस गांव से मैं गुजरता वहां-वहां उस-उस गांव के कुत्ते मुझ पर टूट पड़ते और मेरी जान के प्यासे हो जाते। अगर मालिक साथ न होता तो ये बिरादरीवाले मुझे न तो जिंदा छोड़ते न तीर्थयात्रा का पुण्य लेने देते।

सब कुत्तों ने बिरादरी की निंदा के अपराध में उस कुत्ते को जाति से बाहर कर दिया... । क्योंकि बिरादरी की निंदा तो कोई सुन सकता नहीं।

पंडित-पुरोहित, तुम्हारे प्रियजनों ने तुम्हें मारा-पीटा, उन्होंने तुम्हारा त्याग कर दिया है, तुम सौभाग्यशाली हो। इससे उन्होंने स्वीकृति दी है कि तुम्हारा संन्यास सच्चा है।

लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन हैः ज्ञानी बोले और अज्ञानी नाराज न हों तो समझना कि ज्ञानी ने कुछ कहा ही नहीं। ज्ञानी बोले, अज्ञानी हंसें न, तो समझना ज्ञानी ने जो कहा वह सत्य नहीं है। ज्ञान की बात कही जाए, अज्ञानी तो उसे मूढ़ता की बात समझेगा ही। उन्होंने तुम्हें मारा-पीटा, उन्होंने एक बात स्वीकार कर ली, तुम्हारी विशिष्टता स्वीकार कर ली। उन्होंने मान लिया कि कुछ तुम्हारे जीवन में हुआ है। वे तुम्हारे जीवन से उसे पोंछ देने का आतुर हो गए। तुम्हारे जीवन ने उनको अपने जीवन के संबंध में सोचने को विवश कर दिया। और सोचना कोई भी नहीं चाहता। सोचना बड़ा कष्टपूर्ण मालूम होता है। कौन झंझट में पड़े सोचने की! सब चुपचाप चलता था, सब ठीक-ठाक चलता था, आप आ गए संन्यास लेकर! जिंदगी चली जाती थी, एक रौ में बही जाती थी। आप गैरिक वस्त्र पहनकर खड़े हो गए। उन सारे लोगों को चौंका दिया। यह तो अब उनकी आत्मरक्षा का सवाल है। उन्होंने तुम पर हमला नहीं किया है। तुम्हारी मौजूदगी ने उनको इतना दहला दिया कि आत्मरक्षा में उन्होंने हमला किया है। यह आक्रमण नहीं है, यह सिर्फ आत्मरक्षा है। वे यह कह रहे हैं कि हम तुम्हें पाठ सिखाएंगे, हम तुम्हें रास्ते पर लाएंगे। तुम रास्ते पर आ जाओगे तो वे बड़े खुश होंगे! उनके रास्ते पर! तो उनके आनंद का अंत न होगा। वे शायद तुम्हारा स्वागत-समारोह भी करें, भोज इत्यादि का भी आयोजन करें। जिन्होंने पीटा है वे ही शायद भोज इत्यादि भी दें।

लेकिन, अगर तुम अपनी राह पर चलते रहे तो उनका विरोध बढ़ता ही जाएगा। क्योंकि तुम्हारी मौजूदगी चिंता का कारण है। कहीं तुम ठीक ही तो नहीं हो, यही चिंता है। हो सकता है तुम ठीक हो और वे गलत हैं, ऐसा संदेह उनके मन में जगा है। उस संदेह को छिपाने के लिए वे मारपीट कर रहे हैं, शोरगुल मचाएंगे। हंसना, आनंद से उसे स्वीकार कर लेना, ताकि उनका संदेह और गहरा हो। अगर तुम आनंद से उनके

विरोध को स्वीकार कर लोगे तो तुम उनके भीतर से और भी संदेहों को जगा दोगे कि जब जो व्यक्ति हमारे मारने-पीटने पर भी इतना प्रसन्न है और जरा भी परेशान नहीं है, तो जरूर उसे कुछ हुआ है--कुछ, जो मूल्यवान है!

यही रास्ता है उनको चुनौती देने का। तुम अपना ध्यान करना। तुम अपनी मस्ती में मस्त रहना! जल्दी ही... एक सीमा तक विरोध जाएगा, लेकिन हर चीज की सीमा है और उस सीमा के बाद विरोध ही तुम्हारे प्रति सन्मान में भी बदल सकता है। सब कुछ तुम पर निर्भर है कि क्या तुम धैर्य रख सकोगे। और संन्यासी को धैर्य तो सीखना ही होगा, क्योंकि संन्यासी को जीना होगा समाज में।

मेरा संन्यासी भगोड़ा नहीं है, नहीं तो आसानी थी। तुम भाग जाते हिमालय, उनको भी तकलीफ न होती, तुमको भी तकलीफ न होती। लेकिन तुम वहीं रहोगे, यही तकलीफ है। दुकान पर बैठोगे, बाजार में काम करोगे, तुम्हारी पत्नी होगी, बच्चे होंगे, तुम्हारा घर-द्वार होगा! यही तकलीफ है। वे तुमसे यही कह रहे हैं कि अगर संन्यास लेना है तो हिमालय चले जाओ, सब छोड़-छाड़ दो। फिर सब ठीक है; तुमने उनकी परंपरा का अनुसरण किया।

मैंने जानकर अपने संन्यासी को कहा है कि तुम छोड़ना मत, क्योंकि छोड़ना अब पिटी-पिटाई बात हो गई, अब उसका कोई मूल्य नहीं, वह दो कौड़ी की बात हो गई, जब पहले-पहल लोगों ने छोड़ा था तो उसमें मूल्य था, क्योंकि तब छोड़नेवाले पीटे गए थे।

तुम समझना मेरी बात को। एक दिन, जब पहली दफा छोड़ा था संन्यासियों ने घरों को, परिवारों को, तो वे पीटे गए थे। अब तो वह स्वीकृत हो गई बात। अब उसमें कोई सार नहीं है। इसलिए मैंने तुमने कहाः छोड़ना मत, बाजार में ही रहना, वहीं ध्यान करना, वहीं जीवन को जीना। अब फिर अड़चन मैंने पैदा कर दी परंपरा को। लक्ष्य वही है। छोड़नेवाला भी लीक को छोड़कर जा रहा था, लेकिन अब छोड़नेवाले की लीक बन गई। अब हम छोड़नेवाले की लीक को भी तोड़ रहे हैं। छोड़नेवाले को एक सुविधा थी। हट ही गया समाज से। फिर कभी-कभार आता दो-चार दस साल में तो समाज को उससे ज्यादा अड़चन नहीं होती थी। दिन-दो-चार दिन रुकेगा... तीन दिन से ज्यादा एक जगह रुकने का संन्यासी को आयोजन भी नहीं था... दिन-दो-दिन रुकेगा, चला जाएगा। उससे कुछ जीवन में व्यवधान नहीं पड़ता था।

अब मेरा संन्यासी वहीं पैर जमाकर खड़ा रहेगा। वह जीवन में व्यवधान डालेगा। वह जो उनका चलता हुआ ढर्रा है उसमें हर जगह अड़चन खड़ी हो जाएगी। इसलिए वे नाराज होंगे, यह स्वाभाविक है। चिंता न करो। इस नाराजगी को, उनके विरोध को साधना का अंग समझो। इसे चुनौती मानो। और इसमें अपनी शांति को थिर रखो। अब जब वे तुम्हें मारें-पीटें तो शांत बैठ जाना। और उनकी मारपीट सह लेना। ऐसे शांत बैठे रहना, जैसे परमात्मा फूल बरसा रहा है। उनको अनुभव करने देना तुम्हारी शांति का, तुम्हारे खिले हुए आनंद का और तुम्हारे अनुग्रह के भाव में जरा भी भेद न पड़े। तुम उन्हें धन्यवाद ही देना। जल्दी ही रूपांतरण होगा। उनमें से कुछ की आंखें खुलनी शुरू हो जाएंगी। उनमें से कुछ रात के अंधेरे में, एकांत में, तुमसे मिलने भी आने लगेंगे। वे ही जो तुम्हें मार रहे हैं, जिज्ञासु भी हो सकते हैं। आखिर मारने के द्वारा उन्होंने एक बात तो जाहिर कर दी कि तुम्हारी उपेक्षा नहीं की जा सकती। बस यही महत्वपूर्ण बात है। जो उपेक्षा नहीं कर सकता उसे या तो घृणा करनी होगी या प्रेम करना होगा। और घृणा से किसी को भी रस नहीं मिलता। इसलिए कोई कितनी देर तक घृणा कर सकता है। तुम अगर धीरज रखो तो घृणा अपने-आप प्रेम में रूपांतरित हो जाती है।

यह सारी मनुष्य-जाति के बगावतियों का अनुभव है कि घृणा प्रेम में रूपांतरित हो जाती है, तुम बस धीरज रखो। तुम्हारे अभी अपने जो थे पराये हो गए हैं, क्योंकि वे अपने थे ही नहीं, सिर्फ दिखावा था। अब पहली दफे तुम्हें अपने मिलेंगे। अब तुम धीरज रखो। अब पराये भी अपने हो जाएंगे। थोड़े ही लोग मिलेंगे, लेकिन उन थोड़े लोगों के साथ एक मैत्री होगी, एक रस बहेगा, एक मस्ती होगी, एक सत्संग जमेगा।

रुकना नहीं है, चाहे कुछ भी हो, रुकना नहीं है। यात्रा जारी रखनी है।

तरी खोल गाता चल माझी
अभी किनारा दूर है!

निर्मम निःश्वासों के पल का
चंचल पंख न फैलाओ,
परिचयहीन व्यथा-सांसों का
हीरक-कण मत बिखराओ,
विस्मृत सपनों के क्षण तो
रह रह आते-जाते रहते
विस्मय-क्रीड़ा के विनिमय-पल
नयनों में है मधु भरते!
सुरभि घोल सांसों में माझी
गा, तट अभी सुदूर है।

तरी खोल गाता चल माझी
अभी किनारा दूर है!

मगर गीत ही गाकर यात्रा पूरी करनी है। कोई तुम्हारे संन्यास में बाधा नहीं डाल सकता है। न तो मारने से संन्यास मारा जा सकता है, न काटने से काटा जा सकता है। और जो मारने से मर जाए और काटने से कट जाए, वह संन्यास ही नहीं; समझना वह दो कौड़ी की बात थी। उसका कोई मूल्य नहीं था। वे तुम्हें कसौटी दे रहे हैं, परीक्षा दे रहे हैं।

नयन के अश्रु रुक जाते,
अधर की आह रुक जाती!
न रोके से मगर आकुल,
हृदय का गान रुकता है!
विकट उत्तुंग शिखरों से,
जलद की राह रुक जाती!
न जीवन दान देने का,
मगर अरमान रुकता है!

युगों से तृषित चातक

प्यास अपनी रोकता आया!
जलद को देख पर उसका,
नहीं आह्वान रुकता है!

मिलन की चाह रुक जाती,
न अंतर्दाह रुक पाती!
किसी के रोकने से कब,
शलभ-बलिदान रुकता है!

लहरियां सिंधु की हिय--
ज्वाल को बरबस छिपा लेती।
न उनके रोकने पर,
विकल तूफान रुकता है!

नयन के अश्रु रुक जाते,
अधर की आह रुक जाती!
न रोके से मगर आकुल,
हृदय का गान रुकता है!
यह संन्यास तो हृदय का गीत है। यह रुकेगा नहीं!
नयन के अश्रु रुक जाते,
अधर की आह रुक जाती!
न रोके से मगर आकुल,
हृदय का गान रुकता है!
यह संन्यास तो परवाने का प्रेम है शमा से। यह रुक नहीं सकता।
मिलन की चाह रुक जाती,
न अंतर्दाह रुक पाती!
किसी के रोकने से कब,
शलभ-बलिदान रुकता है!

पतंगा कभी रुका है? लाख रोको, चल पड़ा ज्योति की तरफ, तो चल पड़ा। संन्यास तो ज्योतिर्मय की खोज है। तमसो मा ज्योतिर्गमय! यह तो परवानों की यात्रा है। अब इसके रुकने का कोई उपाय नहीं है। और इसलिए धन्यवाद करना उनका जो रोकते हैं, क्योंकि उनके रोकने से ही तुम्हारे भीतर कोई चीज संगठित होगी, मजबूत होगी।

याद करो उस किसान को, जिसकी मैंने अभी तुमसे कहानी कही। आएं आंधी, आएं तूफान, वर्षा हो ज्यादा कि धूप पड़े गहन, कि ओले बरसें, कि बिजलियां कड़कें--उन सबसे ही गेहूं का दाना पनपता है, जन्मता

है। जिसके जीवन में बिजलियां न चमकीं, बादल न गरजे, उसके जीवन में कभी भी आत्मा का प्रारंभ नहीं होता। उसकी आत्मा सोई ही रह जाती है।

चौथा प्रश्नः क्या यह अच्छा नहीं होगा कि पृथ्वी पर एक ही धर्म हो? इससे भाईचारे में बढ़ोतरी होगी और हिंसा, वैमनस्य और विवाद बंद होंगे।

यह कैसे हो? इतने ढंग के लोग हैं, इतने रंग के लोग हैं! यह कैसे हो सकता है कि एक धर्म हो? कोई ध्यान करेगा--बुद्ध की भांति, और कोई नाचेगा कृष्ण की भांति।

धर्म तो भिन्न-भिन्न होंगे, क्योंकि लोग भिन्न-भिन्न हैं। इतने प्रकार के लोग हैं। परमात्मा ने इतना वैविध्य रचा है! तुम तो ऐसी बात कर रहे हो जैसे एक ही किस्म का फूल हो दुनिया मेंः बस गुलाब ही गुलाब हों, न जुही, न चमेली, न केतकी। दुनिया बड़ी उदास हो जायेगी--गुलाब ही गुलाब! और गुलाब बड़ा प्यारा है, लेकिन गुलाबा का प्यारापन तभी है जब केतकी भी है और केवड़ा भी है और जुही भी है और चमेली भी है और मधुमालती भी है और रजनीगंधा भी है। गुलाब के फूल का रस और आनंद तभी है जब इतने वैविध्य की पृष्ठभूमि है। जरा सोचो एक जगह जिसमें गुलाब ही गुलाब हैं, कौन देखेगा गुलाब को? गुलाब का सारा मजा ही चला जाएगा। घास-पात हो जाएगा। गऊएं चरेंगी, भैंसें चरेंगी। और क्या करोगे?

आखिर कोहिनूर हीरे का मूल्य क्या है? यही न कि वह विशिष्ट, अपने ढंग का अलग है। सारे जगत में कोहिनूर ही कोहिनूर हों, रास्तों के किनारे पड़े हों, कंकड़-पत्थरों की तरह, तो क्या मूल्य होगा? फिर क्या तुम सोचते हो, इंग्लैंड की महारानी कोहिनूर को अपने ताज में लगाएगी? कोई मूल्य ही न रह जाएगा, कंकड़-पत्थर हो गया। कोहिनूर की इतनी कीमत क्यों है, क्योंकि अकेला है, अद्वितीय है, विशिष्ट है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी शीघ्र ही विवाहित होनेवाली पत्नी को हीरे की अंगूठी भेंट की। स्त्री बड़ी खुश हुई। उसने अंगूठी पहनी और कहा कि मुल्ला, हीरा असली है न? मुल्ला ने कहाः अगर असली नहीं है तो मेरे तीन रुपये बेकार गए।

तीन रुपये में कहीं असली हीरे मिलते हैं? तीन रुपये में तो आजकल नकली हीरे भी नहीं मिलते। यह तो नकल की भी नकल होगा। मगर मुल्ला सोच रहा है कि तीन रुपये खर्च किये... तो कह रहा है कि तीन रुपये बेकार गए अगर असली न हो! असली हीरे इतने सस्ते नहीं मिलते। और जितनी विशिष्ट होती है कोई चीज उतनी मूल्यवान होती है।

फिर, वैविध्य में मूल्य होता है। इस जगत में अगर एक ही एक स्वर हो तो बड़ी ऊब पैदा हो जाए। मुल्ला नसरुद्दीन सीखता था सितार बजाना, मगर बस वह एक ही रें रें... रें रें... करता रहता। बस एक ही तार को घिसता ही रहता, घिसता ही रहता, घिसता ही रहता। उसके पड़ोस के लोग परेशान हो गए, पत्नी परेशान हो गई, बच्चे परेशान हो गए। एक दिन सारे मोहल्ले के लोग इकट्ठे हुए। उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन, हमने बहुत बजानेवाले देखे हैं, मगर तुम अदभुत हो... बस यह रें रें रें रें एक ही स्वर! एक ही तार को घिसते-घिसते तुम थक नहीं जाते? हम सब थक गए हैं। और तार भी बजाओ, कुछ और स्वर भी उठाओ! हमने बहुत बजानेवाले देखे, वे तो काफी हाथ बदलते हैं।

मुल्ला ने कहा कि वे खोज रहे हैं अपना स्वर, मुझे मिल गया है! उनकी अभी तलाश चल रही है, मैंने पा लिया है, अब क्यों खोजूं?

जगत को तुम गौर से देखो, यहां सभी चीजें विविध हैं। यहां हर चीज अनूठी है। यहां अनंत धर्म होने ही चाहिए, क्योंकि यहां अनंत ढंग के लोग हैं। लेकिन अनंत धर्म होने का अर्थ यह नहीं है कि वे लड़ें ही। आखिर जुही को प्रेम करनेवाला गुलाब को प्रेम करनेवाले का सिर तो नहीं काट देता। और गुलाब को प्रेम करनेवाला यह तो नहीं कहता कि जब तक तुम गुलाब को प्रेम न करोगे तब तक तुम्हारा स्वर्ग नहीं हो सकता। गुलाब को प्रेम करनेवाला अगर यह कह देता है कि मुझे जुही नापसंद है, तो जुही को माननेवाले लट्ठ लेकर खड़ा नहीं हो जाता कि हमारी धार्मिक भावना को चोट पहुंच गई, धार्मिक जजबात को चोट पहुंच गई। यह मर्जी-मर्जी की बात है। किसी को गुलाब रुचा है, किसी को कमल रुचा है, किसी को कुछ और रुचा है। इसमें किसी की क्या भावना को चोट पहुंचनी चाहिए? तो तुम्हारी भावना ही गलत है, जिसको चोट पहुंच जाती है।

भावना निजी बात है। तुम्हारी भावना का तुम्हारे भीतर सम्मान है, ठीक है। किसी को किसी और चीज का रस है, वह भी ठीक है।

लोग आनंदित हों, लोग प्रभु-समर्पित हों--किस बहाने होते हैं, किस निमित्त होते हैं, इससे क्या भेद पड़ता है? कोई गीता को पढ़कर मस्त हो गया, बस मस्ती की बात है। कोई कुरान को गुनगुनाते-गुनगुनाते रस में डूब गया, बस रस में डूब जाना बात है।

लेकिन तुम कहते होः क्या यह अच्छा नहीं होगा कि पृथ्वी पर एक ही धर्म हो? नहीं, यह अच्छा बिल्कुल नहीं होगा। जगत बहुत दरिद्र हो जाएगा। जरा सोचो, बस कुरान ही कुरान जगत में, न कोई गीता, न कोई धम्मपद, न ताओ-तेह-किंग, न वेद, न उपनिषद। जरा सोचो, बस बाइबिल ही बाइबिल... हरेक आदमी बाइबिल लिए चला जा रहा है। बड़ी उदास हो जाएगी दुनिया, बड़ी बेरौनक हो जाएगी। धर्म तब एक जीवंत घटना न रह जाएगी--मुर्दा हो जाएगा धर्म। मंदिर भी चाहिए गांव में, मस्जिद भी चाहिए, गुरुद्वारा भी चाहिए, गिरजा भी चाहिए। इन सबसे जिंदगी में रस आता है। इनसे जीवन में अनेक रंग आते हैं। ये सब सुंदर हैं। और तुम्हारे मन में यह ख्याल है कि इससे भाईचारे में बढ़ौतरी होगी, अगर एक धर्म होगा और हिंसा-वैमनस्य और वाद-विवाद बंद होंगे--तो तुम गलती में हो।

आदमी जब तक लड़ना चाहता है, नए-नए बहाने खोज लेगा। लड़नेवाले को बहाने चाहिए। लड़ाई असली चीज है।

तुम्हें पता है, भारत उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले एक था! हिंदू-मुसलमान लड़ते थे। बड़ा दंगा-फसाद था। सोचा कि चलो दोनों अलग हो जाएं, पाकिस्तान हिंदुस्तान बन जाए, दंगा-फसाद कम हो जाएगा। तब तक कभी हिंदू हिंदू से न लड़े थे और मुसलमान मुसलमान से न लड़े थे, क्योंकि हिंदू मुसलमान से लड़े रहे थे तो लड़ाई का मजा तो आ ही रहा था। हिंदू हिंदू से क्यों लड़ें? जैसे ही हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा हो गया, बड़े आश्चर्य की घटनाएं घटनी शुरू हो गईं। गुजराती-मराठी में विरोध हो गया। उत्तर-भारतीय दक्षिण-भारतीय में विरोध हो गया। हिंदीभाषा गैर-हिंदीभाषी में छुरेबाजी होने लगी। नए बहाने हैं। कोई भी बहाना काफी है। बंबई गुजरात में रहे कि महाराष्ट्र में... करो छुरेबाजी। बंबई वहीं की वहीं है, मगर आदमी छुरेबाजी करने लगे। एक जिला कर्नाटक में रहे कि महाराष्ट्र में... करो छुरे बाजी।

पाकिस्तान में भी वही हुआ। बंगाली मुसलमान पंजाबी मुसलमान से लड़ने लगा। पाकिस्तान दो हिस्सों में टूट गया। अभी भी पंजाब में पंजाबी मुसलमान और सिंधी मुसलमान में झगड़ा है। यह कभी किसी ने सोचा ही नहीं था कि पंजाबी मुसलमान और सिंधी मुसलमान में झगड़ा होगा, पंजाबी मुसलमान और बंगाली मुसलमान में झगड़ा होगा! दोनों कुरान को मानते, दोनों एक ही मस्जिद में जाते, दोनों का एक पैगंबर है--मगर

एक बंगाली बोलता है और एक पंजाबी बोलता है और झगड़ा हो गया। और देखा बंगला देश में कितना भयंकर रक्तपात हुआ! मुसलमानों ने मुसलमानों को भून डाला। तुम सोचते थे कि मुसलमान हिंदू का ही झगड़ा होता है, तो तुम गलती में हो। और जैसा पाकिस्तान में हुआ कि बंगला देश अलग हुआ तो मुसलमानों ने मुसलमानों को भून डाला, कभी तुम्हारे देश में होगा तो तुम भी देख लेना, हिंदू हिंदू को भून डालेंगे। जरा दक्षिण उत्तर भारत से अलग होने की कोशिश तो करे, फिर तुम देखना किस तरह हिंदू हिंदुओं को भून डालते हैं! फिर तुम इसकी बिल्कुल फिक्र न करोगे कि ये उसी मंदिर में जाते हैं, उसी गीता को मानते हैं। फिर कौन फिक्र करता है!

झगड़े के लिए तो आदमी बहाने खोज लेगा। राजनैतिक विचारधाराओं के झगड़े शुरू हो जाएंगे। आखिर फासिस्ट और कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट, ये भी लड़ते हैं और काटते हैं। इससे कुछ हल न होगा। समझ आनी चाहिए। धर्म एक हो जाएं तो दूसरे बहानों से झगड़ा होगा। आदमी किसी भी बात से लड़ सकता है। तुम चकित होओगे जानकर कि ऐसी छोटी बातों पर आदमी लड़ते हैं... समझ लो कि एक गांव में दो फुटबाल की टीम हैं, उसमें भी झगड़ा हो जाता है। एक फुटबाल की टीम को माननेवाले दूसरी फुटबाल की टीम को माननेवालों को छुरे भोंक देते हैं। और भेद क्या है उनमें... कि एक हरी ड्रेसवाली टीम को मानता है, एक नीली ड्रेसवाली टीम को मानता है। और जब दोनों की प्रतियोगिता होती है टीमों की, तो दोनों के भक्त इकट्ठे हो जाते हैंः फिर मारपीट होनी है, झगड़ा होना है।

कैसी क्षुद्र बातों पर झगड़े होते हैं! जरा गौर से देखो तो तुम एक बात समझ जाओगे कि आदमी झगड़ना चाहता है, वह असली बात है। बहाने कोई भी हो सकते हैं। कोई धर्म से झगड़ा नहीं हो रहा है; आदमी के भीतर झगड़े की वृत्ति है, धर्म निमित्त बन जाता है।

तो धर्म एक हो जाए, इससे झगड़ा नहीं मिट जाएगा। फिर झगड़े मिटाने के लिए धर्म एक करना हो तो पहले तो बहुत झगड़ा करना पड़ेगा, तब एक हो पाएगा, यह भी सोच लो। पहले तो बड़ी मारधाड़ होगी। वही तो हो रही है। मुसलमान भी तो कोशिश यही कर रहे हैं कि एक ही धर्म हो जाए और यही ईसाई कोशिश कर रहे हैं कि एक ही धर्म हो जाए और यही कोशिश बौद्धों की है कि एक ही धर्म...। सभी यही तो कोशिश कर रहे हैं, जो तुमने पूछा। कोशिश अलग नहीं है, उनकी कोशिश एक ही है; हालांकि सबके मन्तव्य अलग हैं। मुसलमान चाहता है कि सारी दुनिया में एक धर्म रह जाए--इस्लाम, बस; एक ईश्वर, एक पैगंबर, एक ही उसका धर्म, दुनिया में सब शांति हो जाएगी। मगर तुम गलती में हो। शिया सुन्नी से लड़ते हैं, छुरेबाजी होती है। हत्याएं होती हैं, आगजनी होती है।

और पहली तो बात है यह कि एक धर्म हो कैसे जाए, कोई पांच हजार साल से यही तो कोशिश चल रही है कि एक धर्म हो जाए। उस एक धर्म की कोशिश में कितनी हत्या हुई है! कौन करेगा एक? और एक करने पर अगर तुम्हें एक भी आदमी ऐसा मिल गया जिसने कहा कि मैं सम्मिलित नहीं होता इसमें, फिर तुम उसका क्या करोगे? इतनी बड़ी दुनिया, चार अरब आदमी हैं, एक आदमी ने कह दिया कि मैं सम्मिलित नहीं होता इसमें, फिर उसका क्या करोगे? ... मारो उसको! काटो उसको!

फिर, सारे लोग धार्मिक हैं भी नहीं। अब जैसे रूस है, चीन है; ये तो अब नास्तिक देश हैं। ये तो कहते हैं कि धर्म होना ही नहीं चाहिए, तभी एकता हो पाएगी। एक धर्म नहीं, धर्म होना ही नहीं चाहिए। उनका भी एक ख्याल है। वे कहते हैंः धर्म की वजह से झंझट होती है, झंझट ही छोड़ दो। सब धर्मों को विदा कर दो। मगर मजा यह है कि चीन में माओ की किताब की वैसी ही पूजा होती है जैसे कि मुसलमान कुरान की करते हैं और हिंदू गीता की करते हैं। तुम जानकर हैरान होओगे कि माओ की लाल किताब बाइबिल के बाद दुनिया में

सर्वाधिक छपी किताब है! और रूस में मार्क्स की किताब का उसी तरह सम्मान है, दास कैपिटल का, जैसे हिंदुस्तान में गीता का और अरब में कुरान का। वही सम्मान!

और ख्याल रखना, न तो सम्मान के लिए कोई कुरान को पढ़ता है, न सम्मान के लिए कोई वेद को पढ़ता है और न कोई दास कैपिटल को पढ़ता है। मैं बहुत कम्युनिस्टों को जानता हूं, जिन्होंने दास कैपिटल कभी पढ़ी ही नहीं; मगर वैसे ही जैसे कोई हिंदू वेद को पढ़ता है? चतुर्वेदी भी कहां चार वेद को जानते हैं? बस चतुर्वेदी नाम के हैं। दास कैपिटल, नाम भर याद है उन्हें। दास कैपिटल में क्या लिखा है, इसका उन्हें कुछ भी पता नहीं है। न हिंदुओं को पता है कि वेद में क्या लिखा है। चौंक जाओगे तुम अगर तुम्हें बताया जाए कि वेद में क्या लिखा है, जैसे कम्युनिस्ट चौंक जाएगा कि दास कैपिटल में क्या लिखा है। ये किताबें अब पूजा की हो गई हैं। अब इन पर झगड़े शुरू होंगे। क्रेमलिन उसी तरह पूजा का स्थान बन गया है जैसे काबा और जैसे काशी और जैसे गिरनार और जैसे जेरूसलम। कोई फर्क नहीं है।

फिर कौन करेगा एक? कैसे करेगा कोई एक? किसको यह हक है एक कर देने का? नहीं, इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। भाईचारा अनेकता में होना चाहिए, तभी भाईचारा है! विविधता में होना चाहिए, तभी भाईचारा है। सारे धर्म जिएं और सारे धर्म मजे से जिएं और सारे धर्म एक-दूसरे को जीने में सहायता दें, तभी भाईचारा है। भाईचारा बड़ी और बात है। भाईचारा मन से लड़ाई की वृत्ति का विदा हो जाना है। बाहर की कोई रूपरेखा बदलने से भाईचारा नहीं पैदा होगा--अंतरात्मा बदलनी चाहिए।

और फिर मेरी नजर में तो, जितना वैविध्य हो उतना अच्छा। मैं तो चाहता हूंः और धर्म हों। मैं तो असल में ऐसा चाहता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना धर्म हो। चार अरब आदमी हैं तो चार अरब धर्म होने ही चाहिए। इससे कम से काम नहीं चलेगा। और तब दुनिया में बड़ी सुगंध होगी।

वुसअते-ब.ज्मे जहां में हम न मानेंगे कभी।
एक ही साकी रहे, और एक पैमाना रहे।।

इतने बड़े विस्तृत जगत में यह बात बेहूदी है कि एक ही साकी रहे, एक ही पैमाना रहे। नहीं, यह हम न मानेंगे।

वुसअते-ब.ज्मे जहां में हम न मानेंगे कभी।
एक ही साकी रहे, और एक पैमाना रहे।।

इतने विस्तार, इतने बड़े आकाश में, इतने अनंत अस्तित्व में एक ही साकी और एक ही मयखाना और एक ही पैमाना... तो जिंदगी बड़ी ओछी हो जाएगी।

सब की अपनी-अपनी राहें
सब राहों से मिलकर बनता
राजमार्ग वह
जिस पर युग के चरण बढ़ रहे!
बढ़ते चरणों को मत रोको
जीवन का सागर असीम है।
जीवन-सत्य नहीं सीमित है
एक व्यक्ति में।

बढ़ते चरणों को मत रोको
जीवन का सागर अगाध है,
जीवन-सत्य नहीं सीमित है
एक दृष्टि में!

रंग-बिरंगे फूल यहां खिलने दो,
रंग-बिरंगे फूलों से
सजती वह थाली,
जो करती जीवन का अर्चन
जो महान है!
जीवन-सत्य नहीं सीमित है
एक रंग में!

सब को अपना सृजन-गीत
मुक्त गाने दो!
सब गीतों से मिलकर बनता
महाराग जो
वंदन करता है जीवन का
जो विशाल है!
जीवन-सत्य नहीं सीमित है
एक गीत में!

जीवन-सत्य को कभी भी सीमित मत करो--न एक गीत में, न एक गीता में! न एक रंग में, न एक ढंग में, न एक शैली में। यह मनुष्य की हिंसात्मक वृत्ति है, जो चाहती है कि दूसरे भी मेरे ढंग से चलें; जो चाहती है, जैसे मैं जगत को देखूं वैसे ही दूसरे भी देखें। यह कोई अच्छे आदमी का लक्षण नहीं है। यह कोई सदपुरुष का लक्षण नहीं है कि मैं जैसा मैं देखता हूं वैसा ही सब देखें; और अगर न देखें तो आंखें फोड़ दो उनकी।

एक मुसलमान खलीफा ने अलग्जेंड्रिया पर हमला किया। अलग्जेंड्रिया में उस समय दुनिया का सबसे बड़ा पुस्तकालय था। उस पुस्तकालय में इतनी किताबें थीं कि कहते हैं कि उस पुस्तकालय के नष्ट होने से जितनी जगत की हानि हुई है और किसी चीज से नहीं हुई है। उस पुस्तकालय में इतने हस्तलिखित ग्रंथ थे कि आग लगा दी खलीफा ने तो छह महीने तक आग जली, तब बुझी। उस पुस्तकालय में उन सभ्यताओं का सारा उल्लेख था जो खो गई हैं। अतलांतिस नाम के महाद्वीप का उल्लेख था, जो सागर में डूब गया। उस पुस्तकालय में अतीत के सारे रहस्यों का संग्रह था, जो सदियों-सदियों में खोजे गये हैं और फिर आदमी भूल जाता है। वह मनुष्य की बड़ी अपार संपदा थी, लेकिन जिस खलीफा ने उसको आग लगाई, वह तुम्हारे जैसा रहा होगा। उसने एक हाथ में मशाल ली और एक हाथ में कुरान लिया और पुस्तकालयाध्यक्ष के पास जाकर कहा कि मैं तुमसे यह पूछता हूं कि तुम्हारे इस पुस्तकालय में जो है, क्या वह वही है जो कुरान में है? अगर तुम्हारा उत्तर हो कि हां वही है जो कुरान में है, तो फिर इस पुस्तकालय की कोई जरूरत नहीं, कुरान काफी है। और मैं इसे आग लगा

दूंगा। और अगर तुम कहो कि इस पुस्तकालय में वह भी है जो कुरान में नहीं है, तब तो इस पुस्तकालय की बिल्कुल ही जरूरत नहीं है, क्योंकि जो कुरान में नहीं है वह तो निश्चित ही गलत होगा; अगर वह सही होता तो कुरान में होता ही। तब भी मैं इस पुस्तकालय को आग लगा दूंगा। बोलो तुम क्या कहते हो?

जरा सोचो, वह अध्यक्ष क्या कहे? दो ही उत्तर संभव थे--एक कि जो कुरान में है वही पुस्तकालय में है। खलीफा कहता हैः तो आग लगा दूंगा। या दूसरा कि जो कुरान में है उससे बहुत कुछ भिन्न इस पुस्तकालय में है। तब भी खलीफा कहता है कि तब तो और भी जल्दी आग लगा दूंगा। कोई उत्तर नहीं था। अध्यक्ष की आंख से आंसू गिरते रहे। और क्या उत्तर दे सकता था? इस तरह के मूढ़ व्यक्तियों को क्या उत्तर दिए जा सकते हैं? आग लगा दी गई। छह महीने में आग बुझी और मनुष्य-जाति की अपार संपदा नष्ट हो गई।

नहीं, यह धार्मिक व्यक्ति का लक्षण नहीं है। धार्मिक व्यक्ति तो आह्लादित होगा कि कोई कुरान में मस्त होता है कोई गीता में कोई बाइबिल में। मस्ती दुनिया में बनी रहे! किस बोतल से तुम पीते हो... पीनेवाले बने रहें। किस प्याली में तुम पीते हो, इससे क्या लेना-देना है, पीनेवाले बने रहें। यह मधुशाला चलती रहे। यहां से लोग परमात्मा के निकट पहुंचते रहें। कोई पूरब से, कोई पश्चिम से, कोई पैदल चलकर, कोई बैलगाड़ी पर, कोई आकाश से उड़कर--कैसे तुम आते हो तुम जानो, तुम्हारी मौज, अपना वाहन तुम तय करो; मगर लोग परमात्मा तक आते रहें, बस इतना ही जरूरी है। न तो एक दृष्टि में सब समाता है, न एक गीत में सब समाता है, न एक रंग में। अस्तित्व विराट है। इस विराट को छोटा न करो।

अलग-अलग हों दीप
मगर है सबका एक उजाला
सबके सब मिल काट रहे हैं
अंधकार का जाला
किसी एक के भी अंतर का
स्नेह न चुकने पाये
तम के आगे ज्योतिपुंज का
शीश न झुकने पाये।

बस इतना ही ख्याल रहे। इतना सदभाव पैदा हो। एक धर्म से कुछ भी न होगा--सदभाव पैदा हो। आज धर्म का झगड़ा है, कल संगीत का झगड़ा ले लोगे कि हम तो शास्त्रीय संगीत में मानते हैं, आधुनिक संगीत में नहीं। फिर कहोगेः एक ही संगीत हो। फिर कल भाषा का झगड़ा होगा और कहोगेः एक ही भाषा हो। और कल झगड़ा होगा कि लोगों की लंबाइयां किसी की कम किसी की ज्यादा हैं, एक ही लंबाई हो। और फिर झगड़ा होगा कि किसी की नाक लंबी, किसी की चपटी, किसी के बाल ऐसे, किसी के वैसे, किसी के सफेद बाल, किसी के काले बाल और किसी के और रंग के, इन सबको एक करना होगा। तुम करोगे क्या? ऐसे तो तुम आदमी को मिटा डालोगे।

नहीं, स्वीकार करो मनुष्य को उसकी अद्वितीयता में। और प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान करो--रंग उसका काला हो कि गोरा, मस्जिद जाता हो कि मंदिर, जरा भी भेद न करो। और इससे कभी बाधा न डालो कि तुम्हारा अपना पक्षपात क्या है। तुम्हारा पक्षपात तुम्हारी निजी बात है। तुम्हारा लगाव क्या है। तुम्हारा लगाव तुम्हारी बात है। इसे दूसरे पर थोपो मत और न कभी इतने झुको कि दूसरा तुम पर अपना लगाव थोप दे। एक-एक व्यक्ति की निजता का सम्मान बढ़ना चाहिए तो भाईचारा होगा। तो धर्म भी बने रहेंगे, भाषाएं भी बनी

रहेंगी, गीत भी अलग-अलग होते रहेंगे--और फिर भी एक महागान पैदा होगा! अलग-अलग पगडंडियां, और सब मिलकर एक राजपथ निर्मित हो सकता है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, क्या कभी मेरी पूजा-प्रार्थना भी स्वीकार होगी? मैं अति दीन और दुर्बल हूं, कामी, लोभी, अहंकारी... सब पाप मुझ में हैं।

इस बात का स्वीकार कि सब पाप मुझ में हैं, धर्म की शुरुआत है। यह पहला कदम है। यह पहली सीढ़ी है। यह शुभ है स्वीकार कर लेना कि मैं पापी हूं। इस स्वीकार से ही परमात्मा से संबंध जुड़ जाता है।

तुम्हारे पाप कितने होंगे? उसकी करुणा बहुत बड़ी है! तुम्हारे पाप भी छोटे-छोटे हैं। उसकी करुणा के सागर के सामने तुम्हारे पापों का क्या मूल्य है? बह जाएंगे तिनकों की तरह। लेकिन स्वीकार हो तो बह जाएंगे, छिपाया तो बच जाएंगे। जिसने अपने पापों को छिपाया उसके पाप बचेंगे और बढ़ेंगे।

यह तो ऐसा ही है कि जैसे तुम चिकित्सक के पास जाओ और अपने घावों को छिपाओ, तो छिपाए घाव और बढ़ जाएंगे, नासूर बन जाएंगे उनमें मवाद पड़ जाएगी, सड़ जाएंगे। चिकित्सक को तो सब उघाड़ कर बता देना होता है।

ऐसे ही परमात्मा परम चिकित्सक है। तुम उसके सामने उघाड़ दो--तुम्हारा काम, तुम्हारा लोभ, तुम्हारा अहंकार। उसे सब पता ही है। छिपाने का कोई प्रयोजन भी नहीं है। तुम कह दो कि मैं ऐसा हूं और जैसा भी हूं मुझे अंगीकार करो। बुरा-भला जैसा हूं, तुम्हारी चरण-रज मुझे भी ले लेने दो।

और, तुम पूछते हो कि क्या कभी मेरी पूजा-अर्चना भी स्वीकार होगी?

स्वीकार से तुम्हारा क्या अर्थ है? क्या तुम चाहते हो तुम्हारी पूजा-अर्चना का कुछ प्रतिफल मिले? कोई पुरस्कार मिले? कोई प्रमाण मिले? तो तुम गलती में हो। तो तुमने पूजा-प्रार्थना अभी जानी नहीं। पूजा-प्रार्थना का फल पूजा-प्रार्थना में ही है। प्रार्थना में ही पूजा का फल है। प्रार्थना में ही पुरस्कार है। बाहर नहीं। फलाकांक्षा छोड़ो।

तुम अगर कुछ मांग रहे हो तो बड़ी भूल से भरे हो। मांगना नहीं परमात्मा से। दे तो धन्यवाद देना और मांगना मत। और तब बहुत बरसेगा। और मांगा तो संबंध टूट गया, क्योंकि जब भी कोई परमात्मा से कुछ मांगता है तो वह यह कह ही रहा है कि मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है, मुझे मेरी मांग से प्रयोजन है, मैं तुम्हारा उपयोग करना चाहता हूं, तुम्हारा शोषण करना चाहता हूं। चूंकि तुम्हारे बिना नहीं मिलेगा, इसलिए तुमसे मांग रहा हूं। तुम्हारे बिना मिल सकता तो सीधा ही ले लेता।

परमात्मा का अपमान है, जब भी तुम कुछ मांगते हो। और ख्याल रखो, धर्म की अत्यंत महत्वपूर्ण बुनियादी बात यह है कि धर्म किसी फल की दौड़ नहीं है, फल के पीछे दौड़ नहीं है। धर्म किसी मंजिल की तलाश नहीं है। धर्म है यात्रा को मंजिल बना लेना; प्रार्थना को ही पुरस्कार बना लेना।

ऐ चश्मे-इंत.जार! यह आलम है, दीदनी
सदियों का फासिला मेरी शामो-सहर में है
लाखों तसल्लियां हैं, मगर सूरते-सुकूं
मेरी न.जर में है, न दिले-चारागर में है
ऐ दोस्त! मेरी सुस्तरवी का गिला न कर,

मेरे लिए तो खुद मेरी मंजिल सफर में है

जिस दिन तुम्हारी मंजिल सफर में हो जाती है; जिस दिन यात्रा ही तुम्हारा गंतव्य हो जाती है; जिस दिन तुमने पूजा की वही तुम्हारा आनंद था--और उसके पार तुम्हारी कोई मांग नहीं और तुम धन्यवाद देते हो परमात्मा को कि तूने आज पूजा का अवसर दिया उसके लिए अनुगृहीत हूं, क्योंकि न मालूम कितने अभागे लोग हैं जिन्होंने आज पूजा नहीं की होगी; जिन्हें होश ही नहीं पूजा का; या जिन्हें होश भी है तो अभी कल पर टालते जाते हैं। अनेक हैं जिन्हें समय नहीं या समय भी है तो व्यर्थ के कामों में उलझाये रखते हैं। अनेक हैं जिन्होंने सोचा कि यह जिंदगी ऊपर-ऊपर की बस सब कुछ है, जिन्हें भीतर की कोई तलाश नहीं, कोई प्यास नहीं। मैं धन्यभागी हूं कि तूने मुझे आज पूजा का अवसर दिया; मैं धन्यभागी हूं कि तूने मुझे अवसर दिया कि मेरी आंखें मैं आकाश के तारों की तरफ उठा सकूं।

मांगो मत, मांगने से सब अड़चन हो जाती है। मांगनेवाला धार्मिक है ही नहीं। मांगनेवाले में और संसारी में कोई भेद नहीं है। संसारी भी मांग रहा है और फिर संन्यासी भी मांगे तो फिर भेद न रह जाएगा। संन्यासी तो जो मिला है उसका धन्यवाद देता है और संसारी वह है जो मिला है उसकी तो बात ही नहीं करता; जो मिलना चाहिए उसकी आकांक्षा करता है। संसारी आकांक्षा में जीता है; संन्यासी आभार में।

एक कोताह-न.जर, एक जरा दूर-अन्देश।

फर्क कुछ .जाहिदो-मैनोश की नीयत में नहीं।।

वह जो शराबखाने में शराब पी रहा है उसमें और वह जो जाकर मंदिर-मस्जिद में प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभु बहिश्त में जहां शराब के चश्मे बहते हैं, मुझे बुला, जल्दी बुला--इन दोनों में क्या फर्क है? एक यहां शराब मांग रहा है, एक वहां शराब मांग रहा है। एक कोताह-नजर... एक की दृष्टि जरा ओछी है, एक जरा दूर-अंदेश... दूसरा जरा दूर तक देख रहा है, परलोक तक देख रहा है। भेद क्या है? एक का लोभ जरा छोटा है, एक का लोभ जरा बड़ा है। एक कहता है यहीं कुल्हड़-भर मिल जाए, चलेगा; दूसरा कहता है, इतने से हमारा दिल राजी नहीं होगा, हमें तो झरने के झरने चाहिए।

एक कोताह-न.जर, एक जरा दूर-अन्देश।

फर्क कुछ .जाहिदो-मैनोश की नीयत में नहीं।।

वह तुम्हारे तथाकथित तपस्वी और तुम्हारे तथाकथित भोगी की दृष्टि में कोई फर्क नहीं है। जिसने मांगा वह भोगी--और जिसने धन्यवाद दिया, वह त्यागी! जो मिला है, इतना है, उसके लिए धन्यवाद दो। कितना मिला है! यह स्वर्णिम अस्तित्व! यह मधुमय अस्तित्व! एक-एक सांस इतनी बहुमूल्य है! यह जीवन, यह वर्षा, ये हरे वृक्ष, यह बूंदाबांदी का संगीत! ये वृक्षों से बहती हुई हवाओं का नृत्य! यह क्षण! एक-एक क्षण इतना मूल्यवान है, इसके लिए धन्यवाद कब दोगे?

प्रार्थना धन्यवाद होनी चाहिए। प्रार्थना तभी होती है, जब मात्र धन्यवाद की सुवास उसमें होती है।

जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर!

शलभ के अनुराग ने ही,

दीप को जलना सिखाया।

वर्त्तिका का त्याग ही तो,

तिमिर में आलोक लाया।

ज्योति उज्जवल जागरित है,

नेह का उपहार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।
एक प्रिय सुधि को संभाले,
एक आशा के सहारे।
फिर रही सरिता दसों-दिशि,
निज तृषित आंचल पसारे।
खो कहीं अस्तित्व देंगे,
प्राण पारावार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।
अश्रु ही प्यारे उन्हें,
जिनको न विधि मुसकान देता।
शाप ही लेते संजो,
जिनको न विधि वरदान देता।
मन नहीं फूला समाता,
स्नेह की मनुहार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।
हो भले ही या न हो,
पूजन कभी स्वीकार मेरा।
छीन सकता कौन है पर,
अर्चना-अधिकार मेरा।
साध कुछ बाकी नहीं है,
यह अमर अधिकार पाकर।
जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।
प्रार्थना की तुम्हें सूझ आयी, अब और क्या चाहिए? मिल गए सब पुरस्कार! बरस गया स्वर्ग!
हो भले ही या न हो,
पूजन कभी स्वीकार मेरा।
कौन चिंता करता है अब पूजन को स्वीकार करने की!
हो भले ही या न हो,
पूजन कभी स्वीकार मेरा।
छीन सकता कौन है पर,
अर्चना-अधिकार मेरा।
वही बात बड़ी है--अर्चना का अधिकार; अर्चना का अवसर; अर्चना का बोध।
छीन सकता कौन है पर,
अर्चना अधिकार मेरा।
साध कुछ बाकी नहीं है,

यह अमर अधिकार पाकर।

जो समझते हैं वे प्रार्थना से कुछ मांगते नहीं; उनकी प्रार्थना में मांग नहीं होती। वे प्रार्थना में प्रार्थी नहीं बनते। वे प्रार्थना में सिर्फ आनंदमग्न होते हैं, उत्सव मनाते हैं जीवन का। जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर!

उसने पुरस्कार दे ही दिए हैं; तुम उसके बिना एक क्षण नहीं हो सकते। वह बरसा ही रहा है तुम पर जीवन। वह तुम्हारी जीवन-वर्तिका को जला रहा है। वही तो जल रहा है तुम में। वही तो चल रहा है तुम में। वही तो बोल रहा है तुम में। वही तो सुन रहा है तुममें। उसके अतिरिक्त कोई यहां है नहीं। और तब फिर आंसू भी प्यारे हो जाते हैं।

अश्रु ही प्यारे उन्हें,

जिनको न विधि मुसकान देता।

फिर कौन फिकिर करता है मुसकान की! आंसू भी मुस्कुराने लगते हैं, जब धन्यवाद की यह समझ आ जाती है।

शाप ही लेते संजो,

जिनको न विधि वरदान देता।

वे अभिशाप को भी सजा लेते हैं, छाती से लगा लेते हैं। वे अभिशाप को भी सिर-माथे रख लेते हैं।

शाप ही लेते संजो,

जिनको न विधि वरदान देता।

मन नहीं फूला समाता,

स्नेह की मनुहार पाकर।

जल रहा दीपक किसी के, प्यार का आधार पाकर।

उसी के प्यार का आधार तो तुम्हारे दीपक को जला रहा है। अब और न मांगो। अब यह मत कहो कि क्या कभी मेरी पूजा-प्रार्थना भी स्वीकार होगी! स्वीकार हो ही गई। स्वीकार पहले हो गई, तब तो तुम पूजा कर सके, तब तो तुम प्रार्थना कर सके। उसने तुम्हें पहले ही पुकार लिया, तभी तो तुम पुकार सके। उसने तुम्हें पहले ही चुन लिया, तब तो तुम झुक सके; अन्यथा तुम्हारी सामर्थ्य कहां थी?

और मत समझो अपने को दीन और दुर्बल। इतना बड़ा अधिकार तुम्हारा है। प्रार्थना का, और क्या चाहिए? और कैसा बल चाहिए? इसी अधिकार में तो सारा मोक्ष छिपा है। यही अधिकार का बीज तो एक दिन मोक्ष बन जाएगा। मत चिंता करो दुर्बलता की और मत चिंता करो काम की, लोभ की, अहंकार की। तुम प्रार्थना में डूबो--अहंकार भी जाएगा, काम भी जाएगा, लोभ भी जाएगा। उल्टी बातें मत करो। तुम यह मत कहो कि पहले लोभ जाए, काम जाए, अहंकार जाए, तो मैं प्रार्थना करूंगा। तब तो प्रार्थना कभी न हो सकेगी।

मैं तुम्हें कुछ और ही कहता हूं। मैं उल्टी ही बात कहता हूं। मैं कहता हूंः प्रार्थना करो, अहंकार भी जाएगा, लोभ भी जाएगा, मोह भी जाएगा; ये शर्तें नहीं हैं, जो प्रार्थना करने के लिए पहले पूरी करनी हों। यह तो वैसा ही पागलपन हो जाएगा कि कोई कहे कि पहले अंधेरा हटाओ, फिर दीया जलेगा।

नहीं-नहीं पहले दीया जलाओ, अंधेरा तो दीए के जलते ही मिट जाता है।

आज इतना ही।

ग्यारहवां प्रवचन

खोलो गृह के द्वार

वढ़ अणं लोअअ गोअर तत्त पंडित लोअ अगम्म।
जो गुरुपाअ पसण तंहि कि चित्त अगम्म।। 1।।

सहजें चित्त विसोहहु चंग।
इह जम्महि सिद्धि मोक्ख भंग।। 2।।

सचल णिचल जो सअलाचर।
सुण णिरंजण म करू विआर।। 3।।

हंउ जग हंउ बुद्ध हंउ णिरंजण।
हंउ अमणसिआर भवभंजण।। 4।।

तित्थ तपोवण म करहु सेवा।
देह सुचिहि ण स्सन्ति पावा।। 5।।

देव म पूजहू तित्थ ण जावा।
देव पूजाहि ण मोक्ख पावा।। 6।।

सिद्ध सरहपा की परंपरा में चौरासी सिद्ध हुए। चौरासी प्रतीक है चौरासी कोटि योनियों का। चौरासी के प्रतीक का अर्थ है कि प्रत्येक योनि अधिकारी है मोक्ष की। पत्थर भी एक दिन मुक्त होगा, देर-अबेर। भेद है तो समय का। लंबी यात्रा करनी होगी पत्थर को। पत्थर में और मनुष्य में अस्तित्वगत भेद नहीं है, सिर्फ चैतन्य का भेद है। पत्थर सोया है गहरी निद्रा में, मनुष्य थोड़ा-सा जागा है, बुद्ध पूरे जाग गये हैं।

बुद्ध की प्रतिमायें पत्थर की बनाई गईं। इस पृथ्वी पर सबसे पहले बुद्ध की ही प्रतिमायें बनाई गईं। और क्यों पत्थर की बनाई गईं? उसके पीछे छिपा हुआ राज है। इसलिए पत्थर की बनाई गईं कि पत्थर इस जगत में सबसे सोई हुई चीज है और बुद्ध इस जगत में सबसे जाग्रत चैतन्य हैं। दोनों के बीच सेतु बनाया, दोनों के बीच संबंध जोड़ा। पत्थर से लेकर बुद्ध तक एक का ही विस्तार है। पत्थर में भी वही छिपा है जो बुद्ध में प्रगट होता है। पत्थर की प्रतिमा का यही संकेत है।

इन चौरासी सिद्धों की संख्या में यही बात बतायी है कि प्रत्येक योनि अधिकारी है सिद्धावस्था की। यहां कोई भी नहीं है जो सिद्ध होने से वंचित रह सके, यदि निर्णय करे सिद्ध होने का। अगर कोई रोकेगा तो तुम स्वयं ही अपने को रोक सकते हो। इसलिए महावीर ने कहा हैः तुम्हीं हो अपने मित्र और तुम्हीं हो अपने शत्रु। सिद्ध होने से अपने को रोका तो शत्रु और सिद्ध बनने में सहयोग दिया तो मित्र। और कोई दूसरा न तुम्हारा

मित्र है और न कोई दूसरा तुम्हारा शत्रु है! तुम ही हो अपने नर्क, तुम ही हो अपने स्वर्ग। दोनों तुम्हारे हाथ में हैं। चुनाव तुम्हारा है। निर्णायक तुम हो। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है।

और फिर यदि तुमने दुख चुना हो, नर्क चुना हो, तो नाहक दूसरों को दोष मत देना। स्मरण रखना कि यही मैंने चाहा है। जो चाहा है वही तुम्हें मिला है।

इस जगत में बिना चाहे कुछ मिलता ही नहीं। तुम जो चाहते हो वही मिल जाता है। हो सकता है चाह में और मिलने में वर्षों का अंतर हो, कि जन्मों का अंतर हो, पर याद रखना जब भी कुछ तुम्हें मिले तो कहीं न कहीं तुमने चाह के बीज बोये होंगे, अब फसल काट रहे हो। भूल गये हो शायद कि कब ये बीज डाले थे। स्मरण भी नहीं आता। मगर फसल है तो प्रमाण है कि बीज तुमने बोये थे और कभी भी जीवन-यात्रा पर मोड़ लिया जा सकता है। किसी भी क्षण तुम लौट पड़ सकते हो। कोई रोक नहीं रहा है। हर क्षण तुम संसार की राह, संसार के मार्ग को छोड़कर, मोक्ष के मार्ग पर गतिमान हो सकते हो।

इन्हीं चौरासी सिद्धों की परंपरा में तिलोपा भी हुए। अब कुछ दिन हम तिलोपा के साथ चलेंगे। सरहपा और तिलोपा, ये दो नाम चौरासी सिद्धों में बड़े अपूर्व हैं।

तिलोपा का भिक्षु नाम थाः प्रज्ञाभद्र। लेकिन अपने गुरु विजयपाद के आश्रम में तिल कूटने का काम ही करते रहे, सो उनका मूल नाम लोग धीरे-धीरे भूल ही गये। फिर तिल्लोपाद या तिलोपा कहने लगे।

यह बात भी बड़ी सोचने जैसी है। तिल कूटने वाला व्यक्ति तिलोपा एक दिन इतना बड़ा सिद्ध हो गया कि आज उसके गुरु विजयपाद का नाम सिर्फ उसी के कारण स्मरण किया जाता है, अन्यथा विजयपाद को कोई जानता भी नहीं। विजयपाद को लोग भूल ही गये होते अगर तिलोपा न होता। तिलोपा के फूल ने विजयपाद के वृक्ष को भी शाश्वत कर दिया और तिलोपा तिल कूटते-कूटते सिद्धावस्था को उपलब्ध हो गया।

मैंने तुम्हें बहुत बार चीन की एक प्रसिद्ध कहानी कही है, कि एक युवक गुरु के पास पहुंचा और उसने कहा कि मुझे भी जानना है, मुझे भी सत्य जानना है। गुरु ने कहाः सत्य जानना है या सत्य के संबंध में जानना है? शिष्य ने क्षण-भर सोचा, गुरु के पैर पकड़े और कहाः जब आ ही गया आपके पास, तो सत्य के संबंध में क्यों जानूंगा, सत्य ही जानूंगा! फिर गुरु ने कहाः बात थोड़ी कठिन है। सत्य के संबंध में जानना आसान है, सत्य को जानना कठिन। क्योंकि सत्य के संबंध में जानना तो जानकारी है, पांडित्य है; सत्य को जानना तो प्रज्ञा के दीये को प्र्ज्वलित करना होगा, तो जीवन को रूपांतरित करना होगा। फिर तू सोच लेः सत्य के संबंध में जानना है कि सत्य जानना है?

उस युवक ने कहाः अब तक तो मैंने कभी इस पर विचार न किया था कि इन दोनों में भेद है, मगर अब तुम्हें देखकर भेद साफ हो गया। पंडित मैंने बहुत देखे हैं, सत्य के संबंध में जाननेवाले बहुत देखे हैं। और अब तक तो सोचता था कि यही जानना है; आज तुम्हें देखकर सारी भ्रांतियां टूट गईं; आज रोशनी पहली दफा देखी; अब तक तो अंधेरे देखे थे। अब तो सत्य ही जानना है। जैसा तुमने जाना वैसा ही जानना है। और कीमत जो भी हो मैं चुकाने को तैयार हूं। ये मेरे प्राण लेने हों तो प्राण ले लो।

गुरु ने कहाः फिर तब तू ऐसा कर, आश्रम में पांच सौ भिक्षु हैं, इनके चावल कूटने का काम सम्हाल ले। और अब दुबारा मेरे पास मत आना। चावल कूट सुबह से सांझ तक। थक जा तो सो जा। सुबह नींद खुले तो फिर चावल कूट। चावल ही कूटता रह। अब न कुछ और सोचना, न कुछ विचारना, न किसी वाद-विवाद में पड़ना। तेरी यही साधना। और अब लौटकर मेरे पास मत आना। जब जरूरत होगी, मैं खुद आ जाऊंगा।

ऐसे बारह वर्ष बीत गये, युवक चावल ही कूटता रहा, चावल ही कूटता रहा। थोड़ा सोचो, रोज सुबह उठ आना, मुंह अंधेरे, जब कोई न जागे, चावल कूटने में लग जाना... क्योंकि जल्दी ही भिक्षु जागेंगे, उनका नाश्ता तैयार होगा। और रात देर तक चावल कूटते रहना, बड़ा आश्रम पांच सौ भिक्षुओं का इंतजाम! और जब थक जाये तो वहीं सो जाता था, उसी कोठरी में जिसमें चावल कूटता था। और सुबह जब आंख खुल आए तो उठकर वहीं चावल कूटना शुरू कर देता था। थोड़े दिन तक पुराने विचार चलते रहे, लेकिन जब विचारों को नया-नया, रोज-रोज भोजन न मिले, तो अपने-आप क्षीण हो जाते हैं, अपने-आप दुर्बल हो जाते हैं, अपने-आप निष्प्राण हो जाते हैं। चावल ही कूटना, चावल ही कूटना... विचार की सुविधा भी कहां थी? धीरे-धीरे विचार क्षीण होते गये, लीन होते गये। वर्ष-दो-वर्ष के बाद तो बस चावल कूटना, चुपचाप, मौन, और चित्त खो गया!

बारह वर्ष बीत गये। बारह वर्ष बीतने के बाद गुरु ने एक दिन घोषणा की कि अब मेरी मृत्यु करीब आती है और मुझे एक व्यक्ति चुनना है जो इस आश्रम का प्रधान होगा मेरे जाने के बाद। तो यह मैंने व्यवस्था खोजी है कि जिस व्यक्ति को भी अनुभव हो गया हो वह मेरे दरवाजे पर रात चार पंक्तियां लिख जाये--ऐसी पंक्तियां, जिसमें उसका सारा अनुभव समाहित हो।

बहुत लोगों ने सोचा। जो प्रधान पंडित था आश्रम का, उसने चार पंक्तियां जाकर लिखीं। प्यारी पंक्तियां लिखीं। पंडित शब्दों के धनी होते हैं, शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं। उसने बड़ी सार बातें लिख दीं। उसने लिखा कि मन एक दर्पण है, जिस पर विचार की, विकार की, वासना की धूल जम जाती है। धूल को झाड़ देना ध्यान है। और जिसकी धूल झड़ गई और दर्पण निर्मल हो गया, वही मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।

बात तो कही पते की। बात तो कह दी कहने योग्य, लेकिन गुरु जब सुबह उठा और उसने ये पंक्तियां लिखी देखीं द्वार पर, तो उसने कहा कि यह किस नासमझ ने मेरी दीवाल को गूदा है? पंडित भी डर के कारण दस्तखत नहीं कर गया था। उसने भी होशियारी रखी थी। रखनी ही पड़ी थी। पता तो उसे भी था कि मुझे अभी पता नहीं है। यह तो सब शास्त्रों का निचोड़ था। ऐसा दर्पण जैसा चित्त उसका भी अभी हुआ नहीं था। अभी धूल जमी ही थी। जमी थी ही नहीं, खूब जम गई थी। जितने शास्त्र बढ़ते गये थे उतनी धूल जमती गई थी। दर्पण तो न मालूम कहां धूल के अंबार में कहीं खो गया था। यह तो शास्त्रों का सार लिख दिया था, यह अपनी प्रतीति न थी, अपना साक्षात न था। यह अपना अस्तित्वगत अनुभव न था। वह स्वयं इसका गवाह न था। ऐसा ज्ञानियों ने कहा है। पढ़ा-लिखा आदमी था। तोते की तरह था। सुंदर शब्द जानता था। सुंदर पंक्तियां रची थीं उसने। इसलिए दस्तखत नहीं कर गया था डर के कारण। उसने सोचा था... मन तो चालबाज होता है, चालाक होता है... उसने सोचाः अगर गुरु प्रशंसा करेगा तो मैं घोषणा कर दूंगा कि मैंने लिखी हैं और अगर गुरु कहेगा कि नहीं, ये पंक्तियां ठीक नहीं, तो मैं चुप ही रह जाऊंगा, बोलूंगा ही नहीं कि मैंने लिखी हैं।

मन सदा बेईमान है। और जितना मन पंडित हो जाता है उतना ही ज्यादा बेईमान हो जाता है। साधारण लोग इस जगत की साधारण-सी बेईमानियां करते हैं, पंडितों के चित्त परमात्मा तक के साथ बेईमानियां करने लगते हैं। गुरु के साथ भी पंडित शिष्य बेईमानी कर गया। सारा आश्रम चकित था, क्योंकि सारे आश्रम के लोगों को लगा कि पंक्तियां सुंदर हैं। इससे श्रेष्ठ और क्या अभिव्यक्ति होगी, धर्म को सार में कह दिया! चार पंक्तियों में कहना था, निचोड़ रख दिया सारे शास्त्रों का। सारे बुद्धों का वचन यही तो है कि चित्त निर्मल हो जाये, निर्दोष हो जाये, कि चित्त का दर्पण धूल-रहित हो जाये; फिर जानने को और क्या है? उसी दर्पण में सत्य की प्रतिछवि बनती है, परमात्मा पहचाना जाता है।

वचन तो ठीक थे, लेकिन गुरु कठोर है। और लोगों को यह बात अच्छी न लगी, क्योंकि और लोग भी पंडित थे, छोटे-मोटे पंडित थे। वह बड़ा पंडित था, बाकी छोटे थे। जंची नहीं लोगों को गुरु की बात। किसी ने तो कहा कि बुढ़ापे में सठिया गया है। किसी ने कहा कि जरूरत से ज्यादा अपेक्षा। बड़े-बड़े बुद्ध भी इससे सुंदर और क्या कहे हैं? यह बात चली, खूब गरमागरम चर्चा थी। चावल कूट रहा था वह बारह वर्ष पहले आया हुआ व्यक्ति, दो भिक्षु उसके पास से गुजरते थे यही चर्चा करते। उनकी बात सुनकर वह हंसने लगा। इन बारह वर्षों में किसी ने उसे हंसते भी नहीं देखा था। उन दोनों युवकों ने पूछाः तुम हंसे क्यों? इसलिए पूछा क्योंकि वह कभी हंसा नहीं, किसी से कुछ बोला नहीं। लोग तो उसको भूल ही गये थे। उसकी कोई गिनती ही नहीं थी आश्रम में। चावल कूटता था, कौन उसकी गिनती करता था। वहां बड़े ज्ञानी थे, बड़े पंडित थे, बड़े साधक थे, योगी थे। कौन इस चावल कूटनेवाले को पूछता था! इसकी तो गिनती कोई साधुओं में थी भी नहीं, भिक्षुओं में थी भी नहीं। यह नाममात्र का भिक्षु था। इसका कुल काम चावल कूटना था, न कभी इसे किसी ने शास्त्र पढ़ते देखा, न कभी किसी ने इसे ध्यान करते देखा। वे दोनों उसकी हंसी सुनकर हैरान हुए और उन्होंने कहाः तुम पागल तो नहीं हो? तुम हंसे क्यों?

उस चावल कूटनेवाले ने कहाः मैं हंसा इसलिए कि गुरु ठीक कहते हैं। ये चारों पंक्तियां कूड़ा-करकट हैं। इनका दो कौड़ी मूल्य नहीं।

तो उन युवकों ने पूछा कि क्या तुम कह सकते हो चार पंक्तियां, जो इनसे श्रेष्ठ हों? क्या तुम लिख सकते हो?

उसने कहाः लिख तो मैं न सकूंगा, क्योंकि मैं पढ़ा लिखा नहीं हूं। लेकिन कह सकता हूं तुम अगर लिख दो तो मैं अभी चलने को तैयार हूं।

वह युवक गया। उसने चार पंक्तियां बोलीं, किसी दूसरे ने दीवाल पर लिख दीं, उसने अपने दस्तखत भी करवा दिये, यद्यपि वह दस्तखत भी कर नहीं सकता था। उसने चार पंक्तियां कौन-सी लिखीं? उसकी पंक्तियां बड़ी अदभुत हैं, झेन साहित्य के इतिहास में बेजोड़ हैं! उसने लिखवायाः मन का कोई दर्पण नहीं, धूल जमेगी कहां? जो ऐसा जान लेता है वही सिद्ध है। मन का दर्पण ही नहीं है तो विचार की धूल जमेगी कहां? जिसने ऐसा जाना, उसने ही सत्य जाना।

और उसने कहा कि लिख दो मेरा नाम भी। और जब गुरु ने ये पंक्तियां देखीं तो गुरु आधी रात उस युवक के पास आया, उसे सोते से जगाया और कहा कि यह सम्हाल मेरा डंडा... झेन गुरु अपना डंडा ही वसीयत में देते हैं। ... और यह मेरा चोगा। मगर भाग जा, अभी आधी रात है, जितने दूर निकल सके निकल जा इस आश्रम से। तू मेरा वसीयतदार है, पर मैं जानता हूं इस आश्रम में इतने पंडित हैं वे तेरी हत्या कर देंगे। वे बरदाश्त न कर सकेंगे कि चावल कूटनेवाला और महाज्ञानी हो जाये! तू भाग जा। जितने दूर भाग सके, निकल जा पहाड़ों में। तेरे पास मेरी संपदा है। तूने पा लिया। चावल कूट-कूटकर पा लिया!

चावल कूटते-कूटते ध्यान जम गया। कोई भी कृत्य ध्यान बन जाता है। यहां इस आश्रम में ख्याल रखना इस बात का। तिल कूटते-कूटते प्रज्ञाभद्र "सिद्ध तिलोपा" हो गये। यहां इस आश्रम में जब संन्यासियों को कोई काम दिये जाते हैं तो स्मरण रखना इस बात काः कोई काम न तो छोटा है न बड़ा है। अब "कृष्णा" है, गेहूं ही बीनती रहती है; "मंजु" है, चावल ही बीनती रहती है। अब कभी भी इनमें से कोई तिल्लोपाद हो जाये तो हैरान मत होना। यह मत सोचना कि गेहूं बीनने वाला कोई कैसे सिद्ध हो गया।

क्या तुम करते हो, इसका मूल्य नहीं है; किस भांति करते हो, इसका मूल्य है। अगर गेहूं भी बीने, आनंदमग्न हो, शांत चित्त से, समर्पित हो, ध्यानपूर्वक, बोध को रखते हुए, तो बस गेहूं बीनते-बीनते ही सारे जगत की पहेलियां सुलझ जायेंगी। यह मत सोचना किसी दिन अगर "संत" या "दयाल" पहरा देते-देते और ज्ञान को उपलब्ध हो जाएं... अगर पहरा देना भी जागरूक होकर किया है। और पहरा देना हो तो जागरूक होकर ही किया जा सकता है।

जब किसी सदगुरु के पास तुम हो तो जीवन के सारे छोटे-मोटे कृत्य भी बड़ी महिमा से गौरवान्वित हो जाते हैं। तिल कूट-कूटकर प्रज्ञाभद्र, सिद्ध तिलोपा हुआ और उसने जो वचन कहे वे अपूर्व हैं।

सूत्र--

वढ़ अणं लोअअ गोअर तत्त पंडित लोअ अगम्म।

जो गुरुपाअ पसण तंहि कि चित्त अगम्म।

"जो तत्व, जो सत्य मूढ़जनों के लिए अगोचर है वह पंडितों के लिए भी अगम्य है।" सुनते हो! मूढ़ में और पंडित में जरा भेद नहीं, रंच-भर भेद नहीं! और अगर कोई भेद हो तो समझना कि पंडित मूढ़ से भी महामूढ़ होता है। क्योंकि मूढ़ को तो कम-से-कम यह पता होता है कि मैं मूढ़ हूं, इससे एक विनम्रता होती है, एक निरहंकारिता होती है। जानता है कि मेरी क्या पात्रता, मेरी क्या योग्यता! पंडित अपात्र ही नहीं है, जहर-भरा पात्र है। मूढ़ तो सिर्फ अपात्र है, लेकिन खाली है। पंडित अपात्र ही नहीं है, कुपात्र है, जहर-भरा पात्र है। मूढ़ पर तो ज्ञान की वर्षा होगी तो भर जायेगा। पंडित पर तो ज्ञान की वर्षा होगी तो भी न भर पायेगा, क्योंकि वह तो पहले से ही भरा हुआ है। उसमें तो भरने को जगह ही नहीं है।

इसलिए ध्यान रखनाः जो लोग सत्य की यात्रा पर चले हैं, वे अगर अज्ञानी हों तो उतना हर्ज नहीं, लेकिन पंडित तो नहीं ही होने चाहिये। पापी हों, चलेगा; पंडित हों, नहीं चल सकता है। पापी क्षमा मांग सकता है और क्षमा किया जा सकता है। लेकिन पंडित क्षमा ही नहीं मांग सकता, तो क्षमा तो कैसे किया जा सकता है? पापी झुक जाता है, जानता ही है कि मैं पापी हूं। पंडित झुक नहीं सकता, उसकी अकड़ भयंकर है।

इस जगत में धन की भी अकड़ इतनी नहीं होती और पद की भी इतनी अकड़ नहीं होती, जितनी पांडित्य की अकड़ होती है। पांडित्य इस जगत में अहंकार का जितना बहुमूल्य आभूषण है, उतनी कोई और चीज नहीं। इसलिए तो तुम ब्राह्मण में एक अकड़ देखते हो। उसकी अकड़ क्या है? उसके पास है क्या? शब्द हैं, थोथे शब्द हैं, जो उसने सीख लिए हैं तोतों की भांति, जिन्हें वह दोहराता जाता है ग्रामोफोन के रिकार्ड की भांति।

तिलोपा का यह वचन बड़ा महत्वपूर्ण है। तिलोपा कहते हैंः वढ़ अणं लोअअ गोअर तत्त पंडित लोअ अगम्म। मूढ़ के लिए जो अगोचर है वह पंडित के लिये भी अगम्य है। मूढ़ और पंडित में जरा भी भेद नहीं कर रहे हैं। और तुम ऐसा मत सोचना कि तिलोपा कोई ब्राह्मण-विरोधी थे। तिलोपा ब्राह्मण थे! मगर गुरु के आश्रम में, जब विजयपाद ने उन्हें तिल कूटने का काम दे दिया, तो तिलोपा ने यह नहीं कहा कि मैं ब्राह्मण, पंडित और तिल कूटूं! यह काम नीची जातियों से लो, मैं इसके लिए नहीं बना हूं! नहीं गुरु ने कहा तिल कूटो, तो तिलोपा तिल कूटता रहा। और तिल कूटते-कूटते एक दिन सिद्ध हो गया। ऐसा कूटा तिल, इस ढंग से कूटा तिल, इस प्रेम से, इस आनंद से, इस ध्यान से, ऐसी समाधि से कूटा तिल, कि तिल कूटते-कूटते ही सब विसर्जित हो गया। भीतर शून्य का जन्म हो गया।

ठीक कहते हैं कि जो तत्व मूढ़जनों के लिए अगोचर है, वह पंडितों के लिए भी अगम्य है। "सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान व्यक्ति को होता है, जिस पर कि सदगुरु प्रसन्न होते हैं।" सुनते हो! गुरु ने कहा कि

तिल कूटो और न मालूम कितने वर्षों तक तिलोपा से तिल कुटवाया, फिर भी तिलोपा कहते हैं कि जिस पर सदगुरु प्रसन्न हो जाये। यह भी अनुग्रह है उसका कि उसने तिल कूटने की आज्ञा दी। उसने आज्ञा दी, यही अनुग्रह है। उसने कुछ काम सौंपा, यही अनुग्रह है, यही उसकी प्रसन्नता है। उसने इस योग्य माना यही क्या कम है! साक्षात्कार सत्य का तो उसी पुण्यवान व्यक्ति को होता है। पांडित्य से नहीं होता सत्य का साक्षात्कार--गुरु के प्रसाद से होता है। और गुरु का प्रसाद किसको मिलता है? उसको ही जो अहंकार को समर्पित करता है।

तो मूल बात यह हुई कि जो व्यक्ति अहंकार को छोड़ देता है उसे सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। गुरु तो अहंकार छोड़ने की सिर्फ एक प्रक्रिया है--एक निमित्त, एक बहाना, बस एक बहाना। तुम्हें कठिनाई होगी बिना गुरु के अहंकार छोड़ने में, इसलिए गुरु की जरूरत है। अगर तुम बिना गुरु के अहंकार छोड़ सको तो गुरु के बिना भी घटना घट जायेगी। मगर अति कठिन है। गुरु के रहते भी अहंकार नहीं छूट पाता, तो अकेले में तुम कैसे छोड़ पाओगे? तुम्हें कोई बहाना चाहिए। किसी के चरणों में रखने का मौका हो तो सिर तुम रख दो। कोई चरण ही न हों तो तुम सिर कहां रखोगे?

मगर मैं तुम्हें याद दिला दूंः अगर तुम सिर कहीं भी झुका लो, जहां तुम्हारा सिर झुका, वहीं सत्य तुममें प्रविष्ट हो जाता है। सत्य मिलता उन्हें है जो विनम्र हैं। फिर विनम्रता कहां से सीखी, इससे भेद नहीं पड़ता। लेकिन सौ में निन्यानबे मौकों पर यह करीब-करीब असंभव है बिना गुरु के अहंकार को छोड़ देना। और जो बिना गुरु के छोड़ दे सकते हैं, शुभ है। लेकिन अकसर तो ऐसा हो जाता है कि बिना गुरु के अहंकार छोड़ना तो मुश्किल है, अहंकार के कारण ही कुछ लोग मान लेते हैं कि हम तो बिना गुरु के ही अहंकार छोड़ देंगे। इसलिए यह कोई चकित होने की बात नहीं कि कृष्णमूर्ति जैसे प्रज्ञावान पुरुष के पास तुम्हें इस पृथ्वी के सारे अहंकारी इकट्ठे मिलेंगे, क्योंकि कृष्णमूर्ति कहते हैंः गुरु की कोई जरूरत नहीं। कृष्णमूर्ति कहते हैंः गुरु के बिना ज्ञान हो जायेगा। और बिल्कुल ठीक कहते हैं। जरा भी गलत नहीं है बात। क्योंकि मौलिक बात समर्पण है किसके प्रति यह बात अर्थहीन है। अगर बिना किसी के प्रति निवेदित भी समर्पण हो सके, सिर्फ तुम अपने अहंकार की भूल भर समझ लो, अपने ही भीतर जागकर अपने अहंकार की भूल समझ लो और अहंकार को गिर जाने दो, तो घटना घट जायेगी। क्योंकि घटना घटती है अहंकार के गिरने से।

कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं। मगर जो लोग सुनने के लिए इकट्ठे होते हैं वे गलत समझते हैं। वे कुछ का कुछ समझते हैं। वे इसलिए इकट्ठे होते हैं कृष्णमूर्ति के पास कि यहां झुकने की कोई जरूरत ही नहीं। न कोई गुरु है न कोई शिष्य है। तो जिनको भी झुकने में अड़चन है वे सभी कृष्णमूर्ति के आसपास इकट्ठे हो जाते हैं। फिर वर्षों बीत जाते हैं, न वे झुकते न क्रांति घटित होती। सुनते हैं कृष्णमूर्ति को और सुन-सुनकर अहंकार को सजाते हैं।

सौ में एक व्यक्ति बिना गुरु के पहुंच सकता है और जो बिना गुरु के पहुंच सकता है उसको हम अपवाद मान लें, उसको हमें नियम के भीतर मानने की कोई जरूरत नहीं। वह तो पहुंच ही जायेगा, उसकी बात ही क्या करनी! कृष्णमूर्ति उसी एक व्यक्ति की बात कर रहे हैं और वह एक व्यक्ति ख्याल रखना, कृष्णमूर्ति के पास जायेगा भी नहीं। क्योंकि कृष्णमूर्ति के पास भी क्यों जायेगा? अगर बिना ही गुरु के हो सकता है, इतनी जिसकी क्षमता है समझने की, वह इस बात को समझने के लिये कृष्णमूर्ति के पास थोड़े ही जायेगा। अगर यह बात भी कृष्णमूर्ति के पास जाकर समझनी है तो गुरु की जरूरत तो हो ही गई। यह तो वह समझ ही लेगा। यह तो वह अपने से ही समझ लेगा। यह तो उसकी सहज अनुभूति होगी। उसके ही अंतर्तम में उठेगा यह भाव। वह तो कृष्णमूर्ति को सुनने जायेगा नहीं। जिसके लिये कृष्णमूर्ति बोल रहे हैं, वह उन्हें न कभी सुनने गया है न कभी सुनने जायेगा। और निन्यानबे प्रतिशत लोग जो सुनने जायेंगे, उनके लिये कृष्णमूर्ति बोल नहीं रहे हैं। इसलिये

कृष्णमूर्ति के पचास सालों का श्रम बिल्कुल पानी में बह गया है। उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। जिस एक के लिये बोलते हैं वह तो आयेगा नहीं। वह आयेगा ही क्यों? और जो आते हैं वे तो गुरु की ही तलाश में आये हैं। मगर यह बात सुनकर बड़ा उनका अहंकार प्रफुल्लित हो जाता है कि चलो, सुनो भी, समझो भी, ज्ञान भी इकट्ठा करो और झुकना भी नहीं। अब तक सारे सदगुरुओं ने कहा हैः गुरु बिन ज्ञान नहीं। तो तुम यह मत सोचना कि कृष्णमूर्ति उनके विपरीत कह रहे हैं। सदगुरुओं ने निन्यानबे प्रतिशत लोगों का ध्यान में विचार रखा है। वे एक प्रतिशत के लिए नहीं बोले हैं, उसके लिए बोलने की कोई जरूरत ही नहीं है। जो अपने से पहुंच जायेगा उसको निर्देश भी क्या देना है? जो अपने से नहीं पहुंच सकते हैं, उन्हीं के लिये निर्देश देना है।

इसलिये जगत के सारे सदगुरुओं ने कहाः गुरु के बिना ज्ञान नहीं होगा। वे निन्यानबे प्रतिशत के लिये बोले। कृष्णमूर्ति कहते हैंः गुरु के बिना ज्ञान होगा। वे एक प्रतिशत के लिये बोलते हैं। और सुननेवाले जो आते हैं, वे निन्यानबे प्रतिशत से आते हैं। इसलिए कृष्णमूर्ति बोले चले जाते हैं सुननेवाले सुनते चले जाते हैं, कोई परिणाम घटता हुआ कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। न कहीं कोई रोशनी पैदा होती, न कहीं कोई समाधि के मेघ घिरते, न कहीं कोई अमृत की वर्षा होती।

"जो तत्व, जो सत्य मूढ़जनों के लिए अगोचर है वह पंडितों के लिए भी अगम्य है।" इसलिए जानकारी से धोखा मत खा जाना। कितना तुम जानते हो शास्त्रों को, इससे यह मत सोचने लगना कि तुमने सत्य को जान लिया। कितना ही पांडित्य हो, तुम अज्ञानी हो, यह बात न भूले, तो ही तुम कभी पहुंच पाओगे। यह बात अगर भूल गई तो आंख ऐसी बंद होगी कि फिर खुलना मुश्किल हो जायेगी।

जर्मनी का एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ जब भी कोई उसके पास संगीत सीखने आता था तो उससे पूछता था कि तुमने पहले और कहीं संगीत तो नहीं सीखा है? तुम संगीत के संबंध में कुछ जानते तो नहीं हो? तुमने कुछ अभ्यास तो नहीं किया है? अगर कोई कहता कि मैंने कोई अभ्यास नहीं किया है, तो वह एक फीस बताता और अगर कोई कहता कि मैंने काफी अभ्यास किया है, दस वर्षों से श्रम कर रहा हूं, तो उससे दुगनी फीस मांगता। चौंकाने वाली बात थी। कि यह कौन-सा तर्क है, कौन-सा गणित है! जिन लोगों ने अभ्यास किया है उन से दुगनी फीस मांग रहे हो! तो स्वभावतः वे लोग एतराज करते कि हम दस साल मेहनत करके आये हैं, हमसे दुगनी फीस और जो बिल्कुल कुछ नहीं जानता, कोरा का कोरा है, उससे आधी! तो वह संगीतज्ञ कहता थाः हां, क्योंकि पहले मुझे तुम जो जानते हो उसे मिटाना पड़ेगा। वह श्रम अलग है। उसका भी तो तुम्हें मूल्य चुकाना होगा। जो कुछ भी नहीं जानते, उनके साथ श्रम आधा है, उनसे मैं सीधी ही शुरुआत कर सकता हूं।

यह संगीतज्ञ जरूर कुछ जानता था, कुछ गहरी कुंजी इसके हाथ में थी। पंडितों के साथ बहुत सिरपच्ची करनी पड़ती है और व्यर्थ। यहां तो पंडित आ जाते हैं तो उनको हम बाहर से ही समझा-बुझाकर विदा कर देते हैं। उनके साथ कौन समय खराब करे! समय थोड़ा, समय बहुमूल्य। यह समय तो उन्हीं के लिये है जो पीने को आतुर हैं। पंडित तो सोचकर आया है, कि मैं तो जानता ही हूं। पहले इसकी जानकारी गिराओ; पहाड़ों जैसी जानकारी है, इसके पहाड़ खोदो। और पहाड़ खोदोगे तो यह कुछ तुमसे प्रसन्न नहीं होगा, यह नाराज होगा। यह बहुत नाराज होगा। क्योंकि उन्हीं पहाड़ों में तो इसने अपनी प्रतिष्ठा बनाई है। वे पहाड़ तो इसकी संपदा हैं। उन्हीं पहाड़ों के कारण तो इसकी अकड़ है और तुम उन्हें तोड़ो और यह छोटा होने लगे, क्योंकि जैसे-जैसे पहाड़ कटेगा ज्ञान का, यह छोटा होने लगेगा। और छोटा तो कोई अपने को मान नहीं सकता।

एक सर्द सुबह की बात, एक हाथी धूप ले रहा है। एक चूहा भी उसे देखने चला आया। उसने चारों तरफ उसके चक्कर लगाये, फिर उसने ऊपर सिर उठाकर हाथी से कहा कि भाई तुम्हारी उम्र कितनी? हाथी ने कहाः

मेरी उम्र दो साल। था तो दो साल का ही बच्चा, लेकिन हाथी तो हाथी। चूहा कुछ सोच विचार में पड़ गया। हाथी ने पूछा कि और भाई तुम्हारी उम्र कितनी? तो चूहे ने कहा कि उम्र तो मेरी भी दो ही साल है, मगर मेरी तबियत जरा ठीक नहीं रहती।

चूहा भी यह मान तो नहीं सकता कि मैं चूहा हूं... तबियत मेरी जरा ठीक नहीं रहती!

दो गधे धूप में खड़े थे। एक गधा बड़ा प्रसन्न हो रहा था, दुलत्ती झाड़ रहा था और लोट रहा था। दूसरे ने पूछा कि बड़े आनंदित हो, बड़े मस्त हो, बात क्या है? सदा तुम्हें उदास देखा, आज बड़े आनंदमग्न हो रहे हो! बात क्या है?

उसने कहा कि बस अब मजा ही मजा है, आ गई सौभाग्य की घड़ी जिसकी प्रतीक्षा थी। दूसरे गधे ने पूछा कि हुआ क्या, कुछ कहो भी! पहेली न उलझाओ और सीधी-सीधी बात कहो।

उसने कहाः बात यह है कि मैं जिस धोबी का गधा हूं, उसकी लड़की जवान हो गई है। दूसरे गधे ने कहाः लेकिन उसकी लड़की जवान होने से तुम क्यों मस्त हो रहे हो? उसने कहाः तू सुन तो पहले पूरी बात। जब भी लड़की कुछ भूल-चूक करती है तो धोबी गुस्से में आ जाता है और कहता है कि देख अगर तूने ठीक से काम न किया तो गधे से शादी कर दूंगा। अब बस दिन-दो दिन की बात है। किसी भी दिन, जिस दिन लड़की ने कोई बड़ी भूल की और धोबी गुस्से में आ गया... और तुम तो जानते ही हो मेरे मालिक को कि कैसा गुस्से में आता है कि जब मुझ पर गुस्से में आ जाता है तो ऐसे डंडे फटकारता है... कि जिस दिन भी जोश में आ गया उस दिन यह शादी हुई ही हुई है। अब सौभाग्य का दिन आ गया। मगर तुम उदास न होओ, बारात में तुम्हें भी ले चलेंगे।

गधे भी सपने देखते हैं! मूढ़ भी बड़ी-बड़ी ज्ञान की राशियां इकट्ठी कर लेते हैं। उन राशियों को जब तुम काटोगे, तब पीड़ा होगी, अड़चन होगी, दुख होगा। तो पंडित बचाने की कोशिश करेगा, जद्दो.जहद करेगा, सुरक्षा के उपाय करेगा। इसलिये व्यर्थ समय जाया होता है।

जो सत्य की तलाश में निकले हैं, उन्हें पांडित्य को तो गिरा ही देना चाहिये। उन्होंने जो जाना है, सब कचरा है। क्योंकि जब तक स्वयं नहीं जाना तब तक जो भी जाना कचरा है। स्वयं के साक्षात पर ही भरोसा करना। उसी पर श्रद्धा करना। उसी की अथक खोज करनी है। खोदते चले जाना है उस घड़ी तक जब तक कि अपना ही जीवन-जलस्रोत न मिल जाये।

"जो तत्व, जो सत्य मूढ़जनों के लिये अगोचर है वह पंडितों के लिए भी अगम्य है।"

"सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान व्यक्ति को होता है जिस पर कि सदगुरु प्रसन्न होते हैं।"

फिर कैसे होगा सत्य का साक्षात्कार? तिलोपा कहते हैंः जिस पर सदगुरु प्रसन्न हो जाये। सदगुरु तो प्रसन्न ही रहता है। इस बात के कहने का क्या अर्थ है कि जिस पर सदगुरु प्रसन्न हो जाये? सदगुरु यानी प्रसन्नता। तो फिर यह शर्त कैसी? सदगुरु तो ऐसे--जैसे सूरज निकला; अब कुछ ऐसा थोड़े ही कि सूरज किसी पर प्रसन्न होगा, उसके घर पर रोशनी होगी और किसी पर अप्रसन्न होगा, उसके घर पर अंधेरा रहेगा। नहीं, लेकिन अर्थ है। सूरज तो निकल आया, तुम्हारे द्वार पर खड़ा है, मगर तुम आंख खोलो तब न। तुम तो आंख बंद किये बैठे हो। तो तुम्हारे लिये तो अभी भी रात है। दिन तो उनके लिये है जिन्होंने आंख खोली। और आंख तो उनकी ही खुलती है, जो अहंकार के घूंघट को हटा देता है। और जब आंख खुलेगी तभी तो तुम जानोगे कि सदगुरु प्रसन्न हुआ। सदगुरु तो प्रसन्न ही है। सदगुरु तो प्रसाद ही है। प्रकाश के अतिरिक्त और सदगुरु कुछ दे भी नहीं सकता। उसके चारों तरफ तो उत्सव की ही तरंग है। मगर उनके लिये ही उत्सव की तरंग है जो नाचने का साहस कर सकें; जो उस तरंग के साथ लीन हो सकें, तल्लीन हो सकें, लयबद्ध हो सकें। तत्क्षण तुम्हें सदगुरु की

प्रसन्नता का अनुभव होगा। उसका प्रसाद तुम्हारी तरफ बहने लगा। उसकी रोशनी की धारा तुम्हारी तरफ आने लगी।

और सदगुरु तुम्हें देता थोड़े ही है कुछ, सिर्फ तुम्हारे चारों तरफ अपनी प्रकाश की धारा को ऐसा आंदोलित करता है कि तुम्हारे भीतर सोया हुआ प्रकाश उसके आघात में सजग हो जाता है। सदगुरु कुछ और थोड़े ही करता है; सदगुरु का काम वही है जो अलार्म घड़ी का। सुबह तुम नींद में पड़े हो, अलार्म की घंटी बजने लगी, जोर से घंटी बजने लगी। अलार्म की घंटी से तुम्हें जागरण थोड़े ही मिलता है। जागरण तो तुम्हारे भीतर से आता है, लेकिन अलार्म की घंटी वातावरण पैदा कर देती है बाहर, कि उसकी उत्तेजना में तुम्हारे भीतर जो जागरण सोया था रातभर, वह फिर उठ आता है, तुम फिर सजग हो जाते हो।

सदगुरु कुछ देता नहीं। सत्य कोई वस्तु तो नहीं है कि कोई दे देगा। सत्य का कोई हस्तांतरण नहीं होता। लेकिन फिर भी सदगुरु एक अनिवार्य परिस्थिति पैदा कर देता है, जिसमें कि तुम सोये न रह सकोगे। सिर्फ उन्हीं लोगों पर सदगुरु सार्थक नहीं हो पाता, जिन्होंने सोये रहने की जिद ही कर रखी है। तो फिर अलार्म भी क्या करेगा? तुमने अगर जिद ही कर रखी है सोये रहने की, तो तुम करवट लेकर फिर सो जाओगे। और अगर तुमने जिद बहुत गहरी कर रखी है सोये रहने की तो अलार्म बजता रहेगा और तुम भीतर एक सपना देखोगे कि अहा, शिव जी के मंदिर में घंटी बज रही है! तुम एक सपना देख लोगे कि शिव जी के मंदिर में घंटी बज रही है, यह तुमने तरकीब निकाल ली अलार्म से बचने की। अब तुम्हें यह ख्याल ही नहीं उठता कि अलार्म बज रहा है और जागना है। शिव जी के मंदिर में घंटी बज रही है। भोलेबाबा का नाम लेकर तुम फिर करवट लेकर सो गये। तुमने बाहर के अलार्म को भीतर का सपना बना लिया।

तो जिसे सोये ही रहना है वह सदगुरु के पास आकर भी... सदगुरु की सारी चेष्टाओं का परिणाम इतना ही होगा उस पर कि उससे वह जानकारी इकट्ठी कर लेगा और पंडित होकर लौट जायेगा। सदगुरु के पास से तुम पंडित होकर भी लौट सकते हो।

जिस आदमी ने झेन गुरु के द्वार पर लिखा था कि मन एक दर्पण है, दर्पण पर विचार की धूल जम जाती है, धूल को झाड़ दो तो धर्म उपलब्ध हो जाता है--वह भी उसी सदगुरु के पास वर्षों से था। और जिस चावल कूटनेवाले ने लिखा कि मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूल जमेगी कहां, जिसने ऐसा जान लिया वही सिद्ध है--वह भी उसी सदगुरु के पास था। लेकिन दोनों अलग-अलग ढंग से रहे होंगे। एक को तो मिल गई प्रसन्नता गुरु की और दूसरे को केवल जानकारी हाथ पड़ी।

सदगुरु तो लुटाता है, लेकिन कुछ हैं जो कंकड़-पत्थर ही बीन लेंगे, कुछ हैं जो हीरे-जवाहरातों से भर जायेंगे। हीरे-जवाहरात तुम्हारे भीतर हैं। बाहर के सदगुरु के संघात में तुम्हारे भीतर की संपदा प्रगट होनी चाहिए। तो सार्थक हुआ संग-साथ। तो सत्संग हुआ। और अगर तुमने बाहर के शब्द इकट्ठे कर लिये भीतर, भीतर की संपदा तो वैसी पड़ी रही, इस संपदा पर तुमने बाहर से शब्दों के और-और ढेर लगा दिये, तो तुम जैसे आये थे, उससे भी ज्यादा बुरी स्थिति में जाओगे।

पंडित मत हो जाना गुरु के पास, नहीं तो चूक गये--चूक गये प्रसाद!

खोलो गृह के द्वार, मुंदे वातायान खोलो,

मैं जीवन का सूर्य तुम्हारे घर आता हूं।

धूप रोकनेवाले सब आवरण हटा दो।

लिये आ रहा फूलों का स्वर्णिम विकास मैं,

लिये आ रहा हूं सुगंध उन्मुक्त बिपिन की;
लिये आ रहा स्वर्णातप अपनी मयूख का,
लिये आ रहा हूं शीतलता मैं हिमकण की।

उठो, उठो, उपधानों पर से शीश उठाओ,
पलक खोल कर देखो, कैसी लाल विभा है।
मैं जीवन का सूर्य तुम्हारे द्वार खड़ा हूं,
धूप रोकनेवाले सब आवरण हटा दो।

दारु-सद्म-से निज उर के वातायन खोलो,
वातायन जो बहुत दिनों से बंद पड़े हैं।
और मुझे छितराने दो अपने मंदिर में
आभा, आतप, ओस, पुष्प औ" गंध बिपिन की।

खोलो गृह के द्वार, मुंदे वातायन, खोलो,
मैं जीवन का सूर्य तुम्हारे घर आता हूं।
धूप रोकनेवाले सब आवरण हटा दो।

सदगुरु की उपस्थिति तो सूर्य की उपस्थिति है। मगर तुम आंख बंद किये रहो तो सूर्य व्यर्थ हो जाता है। या तुम अपने द्वार-दरवाजे बंद रखो, परदे डाले बैठे रहो, तो सूर्य व्यर्थ हो जाता है। सूर्य को व्यर्थ करना, सार्थक करना तुम्हारे हाथ में है।

झुको, खुलो, आवरण हटाओ, तो सूर्य सार्थक हो जाये। और मजा यह है कि अगर तुम आवरण हटाओ तो सूर्य कुछ और नहीं करता, सूर्य की मौजूदगी कैटेलिटिक एजेंट हो जाती है। सूर्य की मौजूदगी तुम्हारे भीतर सोये हुए महासूर्य को जन्म दे देती है। गुरु से शिष्य तक कुछ जाता नहीं बस गुरु की मौजूदगी में शिष्य के भीतर कुछ घटता है। गुरु को देखकर तुम्हें याद आ जाती अपने भीतर छिपे गुरु की। गुरु के बोध को देखकर तुम्हारा बोध तिलमिला उठता है। गुरु की अग्नि को देखकर तुम्हें स्मरण आता है कि मैं राख में क्यों खो गया हूं; मेरे भीतर भी अंगारा है। गुरु तुम्हें आत्म-स्मरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देता है।

खोलो गृह के द्वार, मुंदे वातायन खोलो,
मैं जीवन का सूर्य तुम्हारे घर आता हूं।
धूप रोकनेवाले सब आवरण हटा दो।

अज्ञानी को पता नहीं है, ज्ञानी को झूठा पता है। दोनों भटके हैं। किसी ऐसे व्यक्ति का संग-साथ अनिवार्य है, जो अज्ञानी भी न हो और तथाकथित ज्ञानी भी न हो; जो जानता हो, अपने निज से जानता हो; जो किन्हीं अतीत के बुद्धों को न दोहरा रहा हो, जो स्वयं बुद्ध हो; जो अतीत के बुद्धों को गवाही दे रहा हो अपनी कि हां तुम भी ठीक थे, मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि तुम भी ठीक थे।

इस भेद को समझ लेना। पंडित कहता हैः गौतम बुद्ध ने ऐसा कहा, तो ठीक ही कहा होगा, क्योंकि गौतम बुद्ध ने कहा है। वेद में लिखा है तो ठीक ही लिखा होगा, क्योंकि वेद के मनीषियों ने लिखा है; द्रष्टाओं ने,

ऋषियों ने लिखा है। कुरान में कहा है तो ठीक ही कहा होगा क्योंकि परमात्मा मुहम्मद से बोला है। मगर पहले तो तुमने यह मान लिया कि परमात्मा है। यह भी मान्यता हुई। पता नहीं, है या नहीं। फिर तुमने यह मान लिया कि मुहम्मद से बोला है। पता नहीं मुहम्मद से बोला है या नहीं बोला। और कौन जाने मुहम्मद को भ्रांति हो कि परमात्मा मुझसे बोला है! फिर जो बोला गया है वह तो इन्हीं मान्यताओं पर आधारित है कि परमात्मा बोला मुहम्मद से बोला, इसलिए ठीक ही होगा फिर परमात्मा ही बोला हो, मुहम्मद से ही बोला हो तो भी जरूरी क्या है कि परमात्मा ठीक ही बोलेगा? इसका प्रमाण क्या है? इसका आधार क्या है?

इसलिए बुद्ध ने कहा हैः मेरी बातों को इसलिए मत मान लेना कि मैं कह रहा हूं। मेरी बातों को तभी मानना जब वे तुम्हारे अनुभव के द्वारा प्रमाणित हों। मैं तुमसे कुछ कह रहा हूं, इसे तब तक मत मान लेना जब तक कि तुम्हारी ध्यान की क्षमता ही गवाही न दे दे कि हां ठीक है। किसी और कारण से मत मानना, क्योंकि और सब कारण संदिग्ध हैं। और सब कारणों पर पक्का भरोसा नहीं किया जा सकता है। पक्का भरोसा तो सिर्फ अपनी ही अनुभूति का किया जा सकता है।

पंडित कहता है कि बुद्ध ने कहा, ठीक ही कहा होगा। इतने सच्चरित्र व्यक्ति थे, क्यों गलत कहेंगे? लेकिन यह भी तो हो सकता है, खुद ही गलती में पड़े हों। गलत जानकर न कहा हो, खुद ही भ्रांति खा गये हों। आखिर अच्छे से अच्छे चरित्र का व्यक्ति भी कभी-कभी सांझ के अंधेरे में रस्सी में सांप देख लेता है। अच्छे से अच्छे चरित्र का व्यक्ति, जिसका जीवन सब तरह से कसा गया है, जिसके कभी कोई झूठ नहीं बोला, जिसने कभी कोई बेईमानी नहीं की, चोरी नहीं की, जिसके बाबत सभी सहमत हैं कि वह सज्जन है, उसको भी रात अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी सांप जैसी मालूम पड़ जाती है। तो क्या करोगे? बुद्ध अच्छे व्यक्ति थे, मगर जो उन्होंने सत्य के संबंध में कहा है, धुंधलके में धोखा खा गये हों, कौन जाने!

पंडित कहता है कि वेद कहते हैं, इसलिये ठीक होगा; कुरान कहती है, इसलिए ठीक होगा; बाइबिल कहती है, इसलिये ठीक होगा। प्रज्ञापुरुष इसलिये नहीं कहते कि कुरान कहती है, बाइबिल कहती है, वेद कहता है, बुद्ध कहते हैं, महावीर कहते हैं। जो स्वयं बुद्ध हैं वे कहते हैंः मैंने जाना है और मैंने अपने जानने से पाया है कि वेद ठीक कह रहे हैं। मैं गवाह हूं। बुद्ध ठीक कह रहे हैं, मैं गवाह हूं। कुरान ठीक कह रही है, मैं गवाह हूं।

लेकिन प्रज्ञापुरुष यह भी कहेंगे कि तुम भी तभी मानना जब तुम गवाह हो जाओ, मेरे जैसे जब तुम भी गवाह हो जाओ, उससे पहले नहीं। अपनी ही अनुभूति का भरोसा करना। पराई अनुभूतियों का जो भरोसा करता है उसका जीवन उधार होता है, नगद नहीं होता। और सत्य नगद अनुभव है।

पंडितों से सावधान! शास्त्रों के जानकारों से सावधान! किसी सदगुरु को खोजो, जिसने जाना हो स्वयं। क्योंकि उसकी सन्निधि में तुम्हारे भीतर भी क्रांति घट सकती है, जैसे एक कोयल बोले और दूसरी कोयल के कंठों में गुदगुदी हो जाये! जैसे कोई गीत गाता है और तुमने नहीं देखा कि तुम्हारे भीतर भी गुनगुन होने लगती है! कि कोई नाचता है तो तुम्हारे पैर भी थिरकने लगते हैं! कि कोई सुंदर वाद्य बजाता है तो तुम अपने हाथ से अपने कुर्सी पर ही ताल देने लगते हो। यह तुमने देखा कि नहीं? यह कैसे घट रहा है? कोई तबला बजा रहा है कि मृदंग ठोंक रहा है, इससे तुम्हारे हाथ ताल क्यों दे रहे हैं? तुम्हारे हाथ का उसकी मृदंग के बजने से क्या संबंध है? कोई वीणा बजा रहा है, तुम्हारा सिर क्यों डोल रहा है? तुम क्यों मस्त हो गये हो? क्योंकि वीणा के बजने से कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है। वीणा बजे तो सिर हिलना ही चाहिये, ऐसा नहीं है, क्योंकि अनेकों के नहीं हिलते। और अगर तुम भी तय कर लो कि नहीं हिलाना है तो नहीं हिलेंगे। कोई मृदंग बजाये तो इससे पैर तुम्हारे थाप देने लगें, यह कोई अनिवार्य नहीं है; यह कोई कार्य-कारण का सिद्धांत नहीं है। बजाता रहे कोई

मृदंग, तुम्हें अगर नहीं पैर हिलाना तो नहीं हिलाओगे। लेकिन मृदंग के बजने से कभी-कभी पैर हिलते हैं, हाथ से थाप पड़ती है, गर्दन मस्ती में झूमने लगती है। क्या हो रहा है?

बस ऐसी ही घटना सदगुरु के साथ घटती है, सत्संग में घटती है। उसकी मृदंग बज उठी है, तुम्हें भी अपनी मृदंग की याद आ जाती है। तुम्हारे हाथों में भी सिरहन दौड़ जाती है। तुम्हारे भीतर भी विद्युत का प्रवाह होता है। उसकी वीणा बज रही है; उसकी बजती वीणा के तार तुम्हारी वीणा के तारों को हिला देते हैं, जिसकी तुम्हें याद ही न थी। वह नाच उठा है। उसके घूंघर बज रहे हैं। तुम्हारे पैरों में भी घूंघर बांधने की अभिलाषा जग जाती है। तुम्हारे भीतर भी स्मरण आता है कि पैर तो मेरे पास भी हैं, नाच तो मैं भी सकता हूं; अगर यह व्यक्ति नाच सकता है तो मैं क्यों नहीं नाच सकता? उसी हड्डी-मांस-मज्जा का मैं भी बना हूं और उसी प्रकृति से मैं भी आया हूं, उसी स्रोत से मेरा आगमन हुआ है।

कौन, कहां, किस दिशि में प्रच्छन्न
कोई मुझको तनिक बता दे?
बस तनिक! कोई जरा-सी
अंगुली उठा दे!
कौन, कहां, किस दिशि में प्रच्छन्न
कोई मुझको तनिक बता दे?

श्वासों की राहों पर चलता
उर में दीपक सा नित जलता,
दुख में आंसू बन कर ढलता
पल पल परिवर्तन बन छलता
मेरे अकुलाते कानों को
उसका कुछ संदेश सुना दे!

सघन तिमिर में क्षीण प्रकाशा
अमित निराशा में मृदु आशा,
क्षण क्षण गिरते का विश्वासा
जो है भाग्य-खेल का पासा,
मेरे विकल दृगों को कोई
उसका शुभ दर्शन करवा दे!

पथ-दर्शक पाथेय वही है
अंतिम जीवन-ध्येय वही है,
प्यासे उर का पेय वही है
गद्य वही है, गेय वही है,
उस सूनेपन के सरगम की

कोई मृदु झंकार सुना दे!

खोज कहां उसको पाऊंगी
या निज को खोती जाऊंगी?
कौन साधना होगी ऐसी
जिसमें मैं भी खो जाऊंगी?
कौन पंथ पहुंचता उस तक
इतना कोई भेद बता दे!

दुनिया की दुविधा के धागे
उसके उलझे कदम के आगे,
मेरे कुंठित भाव अभागे
कह कब, नई चेतना जागे?
जिसके बल पर चरण बढ़ चलें
मुझको मंजिल तक पहुंचा दे!

बस थोड़ा-सा, तनिक-सा इशारा, एक किरण, एक भनक--और शिष्य के भीतर सोया हुआ प्राण जागने लगता है, आंदोलन शुरू हो जाता है! एक बीज हृदय में पड़ जाये तो हृदय अपनी सारी संपदाओं को लेकर अनंत-अनंत फूलों से भर जाता है, अनंत-अनंत दीये जल उठते हैं। बस कोई एक याद तो दिला दे--जरा-सी, तनिक-सी याद!

"सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान व्यक्ति को होता है जिस पर कि सदगुरु प्रसन्न होते हैं।"

सहजें चित्त विसोहहु चंग। इह जम्महि सिद्धि मोक्ख भंग।।

"सहज की साधना से तू चित्त को अच्छी तरह विशुद्ध कर ले। इसी जीवन में तुझे सिद्धि प्राप्त होगी, और मोक्ष भी।"

सदगुरु सदा ही सहज होने का संदेश देता है। सहज का अर्थ होता हैः कृत्रिम आवरण, आचरण मत ओढ़ो। झूठे पाखंडों में मत पड़ो। मुखौटे मत लगाओ। जीवन की जैसी सचाई है, नग्न, उसे स्वीकार करो और आनंदमग्न-भाव से उसे जीयो। तुम जैसे हो सुंदर हो। तुम जैसे हो प्रभु को अंगीकार हो। ऐसे ही, बिल्कुल ऐसे ही! तुम्हें रंग-रोगन नहीं लगाना है। तुम्हें चेहरे को पोतना नहीं है। जीवन को नाटक का मंच न बनाओ। जीवन को सरलता से जीयो--अकृत्रिम, निष्कपट। जैसे भी हो बुरे-भले, जरा भी भय न खाओ। जैसे भी हो उसके हो। जैसे भी हो उसके बनाये हो। जैसे भी हो उस पर उसके हस्ताक्षर हैं। होगा कसूर तो उसका होगा। तुम नाहक अपने को और सुंदरतर, और श्रेष्ठतर, और शिवतर बनाने की चेष्टा में न लगो, क्योंकि वे सब चेष्टायें अहंकार की ही चेष्टायें हैं। यह कौन है जो तुम्हारे भीतर कहता है मुझे श्रेष्ठ होना चाहिये, कि मुझे साधु होना चाहिये, कि मुझे संत होना चाहिये? यह कौन है जो तुम्हारे भीतर तुमसे कहता है कि तुम ऐसे होओ कि सारा जगत तुम्हें पूजे? यह अहंकार ही है जो तुम्हारे भीतर बोल रहा है। और अहंकार बड़े शास्त्रों के उद्धरण देता है। अहंकार शास्त्रों का बड़ा ज्ञाता है। यह कहता हैः "देखो, किताबों में लिखा है ऐसा होना चाहिये। सत्यवादी बनो, राजा हरीशचंद्र जैसे!" राजा

हरीशचंद्र को वह सहज बात थी और तुम्हारे लिये असहज हो जायेगी। तुम राजा हरीशचंद्र नहीं हो। तुम जो हो वही हो। राजा हरीशचंद्र के लिये जो सहज था तुम्हारे लिये असहज हो जायेगा।

महावीर नग्न खड़े हो गये; वह उनके लिये सहज था। तुम नग्न खड़े होओगे; वह तुम्हारे लिये अभ्यास होगा, सहज नहीं। जबर्दस्ती आरोपित करोगे अपने पर। तुम्हारी नग्नता में कपट होगा, नाटक होगा, असत्य होगा, पाखंड होगा।

जो कृष्ण के लिये सहज है वह तुम्हारे लिये सहज नहीं है और जो तुम्हारे लिये सहज है वह कृष्ण के लिये सहज नहीं होगा।

सहज का अर्थ होता हैः अपने स्वभाव को परखो और अपने स्वभाव के अनुसार चलो। नहीं कोई आदर्श थोपो अपने ऊपर। सिद्धों का यह अदभुत संदेश है कि अपने ऊपर आचरण न थोपो और कोई आदर्श निर्मित न करो। आदर्श ने ही लोगों को पाखंडी बनाया हुआ है। जितने बड़े आदर्श उतना बड़ा पाखंड। क्योंकि उन आदर्शों को पूरा तो किया नहीं जा सकता। जैसे गुलाब जुही बनना चाहे, जुही बन तो सकता नहीं, तो अब एक ही उपाय है कि गुलाब अपने गुलाबपन को ढांक ले और बाजार से जुही के प्लास्टिक के फूल खरीद लाए और अपने गुलाबपन के ऊपर जुही के फूल थोप दे, मगर वे जुही के फूल झूठे हैं।

तुम जो हो उसी को निखारो, कुछ और होने की कोशिश न करो। यही मेरी देशना भी है। मैं समस्त आदर्शों के विपरीत हूं। मैं तुम्हें कोई आदर्श नहीं दे रहा हूं। इसलिये आदर्शवादी जब यहां आ जाते हैं तो बहुत चौंकते हैं। वे कहते हैंः आप अपने संन्यासियों को कोई आदर्श दें, कोई आचरण का नियम दें, कोई मर्यादा दें।

मैं कौन हूं किसी को नियम, मर्यादा, आदर्श, आचरण देने वाला? मैं तो सिर्फ बोध देता हूं, ताकि बोध को लेकर तुम, परमात्मा ने तुम्हें जैसा बनाया है वैसे जी सको समग्रता से।

मैं तुम्हें पूर्णता का कोई लक्ष्य नहीं देता, बल्कि समग्रता की प्रतीति देता हूं। इन दोनों में बड़ा भेद है। पूर्णता का लक्ष्य होता है--बहुत दूर, ऊपर... ऐसा होना चाहिये मनुष्य को। समग्रता का अर्थ होता हैः जैसा मनुष्य है, उसमें ही पूरा लीन हो जाना चाहिये। तुम जो हो बस वही। कोई नाच सकता हो तो नाचे समग्रता से। अब लंगड़े-लूले भी नाचने की कोशिश करें तो गिरेंगे, चारों खाने चित गिरेंगे, और हाथ-पैर तोड़ लेंगे। कोई गा सकता हो तो गाये, लेकिन कौवे अगर कोयल की तरह गाना चाहेंगे तो जहां होंगे वहीं तिरस्कृत होंगे।

एक कौवा भागा जा रहा था। एक कोयल ने पूछा कि चाचा, कहां भागे जा रहे हो, बड़ी तेजी में हो! उस कौवे ने कहा कि मैं पूरब की तरफ जा रहा हूं। यहां के लोग बेहूदे हैं, नासमझ हैं, शास्त्रीय संगीत समझते ही नहीं। मैं जब भी शास्त्रीय संगीत छेड़ता हूं, बस लोग भगाते हैं, ताली बजाने लगते हैं कि हटो, भागो! मैं पूरब की तरफ जा रहा हूं। मैंने सुना है कि पूरब के लोग शास्त्रीय संगीत के बड़े पारखी हैं। मैं तो अब पूरब में ही जाकर अपना गीत गाऊंगा।

कोयल ने कहाः चाचा, जैसी तुम्हारी मर्जी। जहां जाना हो जाओ, मगर ख्याल रखो, लोग सब जगह एक जैसे हैं और तुम्हारा शास्त्रीय संगीत कहीं भी पसंद नहीं किया जायेगा। अच्छा तो यही हो कि तुम इसे संगीत समझना छोड़ो। अच्छा तो यही हो कि तुम जैसे हो वैसा अपने को स्वीकार करो।

और ध्यान रखना, तुम जैसे हो जरूरी नहीं कि दूसरे तुम्हें वैसा स्वीकार करें। इसलिए जो सबसे बड़ा प्रश्न है साधक के लिये यही है कि जब दूसरे स्वीकार न करें तो क्या करें? क्योंकि हमारी आम आकांक्षा तो यही होती है कि सब हमें स्वीकार करें। उसी आम आकांक्षा के कारण तो हम झूठे हो जाते हैं। क्योंकि लोग जिसको स्वीकार

करते हैं हम वैसा ही अपने को दिखलाने लगते हैं। क्योंकि हमारे मन में बड़ी गहरी आकांक्षा है कि दूसरे सम्मान दें, सत्कार दें।

संन्यासी वही है, जो कहता हैः न मुझे सत्कार चाहिये न सम्मान चाहिये, न मुझे अपमान की चिंता है। मैं तो जैसा हूं, वैसा ही जीऊंगा। तुम सम्मान दो तो ठीक, तुम अपमान दो तो ठीक; वह तुम्हारा प्रश्न है, तुम्हारी समस्या है, मेरा उससे कुछ लेना-देना नहीं। न मैं तुम्हारे सम्मान से प्र्रसन्न होऊंगा और न तुम्हारे अपमान से अप्रसन्न होऊंगा। मैं तुम्हारे सम्मान-असम्मान के सिक्कों को कोई मूल्य ही नहीं देता। तुम मुझे चालित न कर सकोगे। और तुम मेरे मालिक न हो सकोगे।

यही तो सिक्के हैं, जिनके आधार पर दूसरे हमारे मालिक हो जाते हैं। लोग कहते हैंः हम सम्मान देंगे, अगर हमारी बात मानकर चलो। स्वभावतः आखिर सम्मान लेना चाहते हो तो कुछ चुकाना भी पड़ेगा। और जब तुम उनकी बात मानकर चलोगे, झूठे हो जाओगे। जिसे सहज होना है उसे इस बात को समझ ही लेना होगा कि न अब मुझे दूसरों से सम्मान चाहिये, न अपमान का भय होगा। अब तो मैं जैसा हूं, हूं; इसकी ही घोषणा करूंगा। इस सहज भाव से चित्त शुद्ध होता है।

तिलोपा कहते हैंः सहज की साधना से तू चित्त को अच्छी तरह विशुद्ध कर ले। क्यों चित्त विशुद्ध हो जाता है सहज की साधना से? क्योंकि जहां पाखंड नहीं है। वहां शुद्धि है। जहां जबरदस्ती कोई चीज आरोपित नहीं की गई है, जहां विजातीय भीतर नहीं लाया गया है, वहां शुद्धि है।

शुद्ध का क्या अर्थ होता है? तुम दूध में पानी मिला देते हो, उसको अशुद्ध क्यों कहते हो? क्या तुम समझते हो अशुद्ध पानी मिला दिया, इसलिये? तो शुद्ध पानी मिला दो, बिल्कुल शुद्ध से शुद्ध पानी गंगाजल या डिस्टिल्ड वाटर ले आओ, क्योंकि गंगाजल का आज-कल कोई खास भरोसा नहीं है, डिस्टिल्ड वाटर तुम दूध में मिला दो तो क्या फिर दूध अशुद्ध नहीं होगा। दूध तो फिर भी अशुद्ध होगा। शुद्ध जल शुद्ध दूध में मिलाने से भी अशुद्ध होता है। क्यों? और तुम यह मत सोचना कि सिर्फ दूध ही अशुद्ध होता है, पानी भी अशुद्ध हो रहा है। हालांकि पानी की कोई कीमत नहीं, इसलिये कोई फिकिर नहीं करता; नहीं तो पानी भी अशुद्ध हो रहा है, दूध भी अशुद्ध हो रहा है। यह बड़ा अजीब गणित है। दो शुद्ध चीजें मिल रही हैं और दोनों अशुद्ध हो गईं! अशुद्ध का अर्थ होता हैः विजातीय। दूध दूध है, पानी नहीं है। इसलिये तुम कितना ही शुद्ध पानी डालो, तुमने विजातीय डाल दिया, तुमने दूध की स्वाभाविकता नष्ट कर दी। और पानी भी अशुद्ध हो गया, क्योंकि तुमने पानी की स्वाभाविकता भी नष्ट कर दी।

अशुद्धि का अर्थ होता हैः मेरे स्वभाव से भिन्न को थोप लेना। शुद्धि का अर्थ होता हैः अपने स्वभाव में जीना। जैसा मैं हूं वैसा ही जीना। रंचमात्र समझौते न करना। और जो समझौता नहीं करता वही संन्यासी है। चाहे प्राण जाएं तो जाएं, मगर समझौता नहीं करता। न खुद समझौता करता है, न दूसरे पर दवाब डालता है कि कोई दूसरा उससे समझौता करे।

ख्याल रखनाः जब भी तुम दूसरे पर दवाब डालोगे कि वह मुझसे समझौता करे, तुम्हें उससे समझौता करना पड़ेगा। मालिक अपने गुलामों के गुलाम हो जाते हैं। होना ही पड़ता है, क्योंकि जिससे भी तुमने समझौते का रिश्ता बनाया उसके साथ समझौते करने पड़ेंगे। तुम्हें भी थोड़ा झुकना पड़ेगा, उसे भी थोड़ा झुकना पड़ेगा। यह तो लेन-देन से चलेगा काम। और मुश्किल हो जायेगी, दोनों अशुद्ध हो जाओगे।

लेकिन लोग अच्छे-अच्छे नामों में अशुद्धियां छिपाते हैं। तुम महावीर बनने की कोशिश मत करना, अन्यथा अशुद्ध हो जाओगे। और तुम बुद्ध बनने की कोशिश मत करना अन्यथा अशुद्ध हो जाओगे। तुम तो तुम

ही बनने का भाव रखना। और तुम्हें तुम्हीं रहना हो तो कोशिश की कोई जरूरत नहीं--तुम हो ही! बस इसकी उदघोषणा कर देनी है। और कोई भी कीमत हो, इसको जीना है। तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जाये।

यह चित्त शुद्ध करने की सहज-योग की अपनी प्रक्रिया है। तुमने बहुत और बातें सुनी होंगी, चित्त कैसे शुद्ध होता है। कोई कहता हैः चित्त शुद्ध होता है जब तुम कामवासना छोड़ोगे। कोई कहता हैः चित्त शुद्ध होगा, जब तुम लोभ छोड़ोगे। कोई कहता हैः चित्त शुद्ध होगा, जब तुम आसक्ति छोड़ोगे। सहज-योग बड़ी अदभुत बात कह रहा है। सहज-योग कह रहा हैः चित्त शुद्ध है, तुम सिर्फ विजातीय मत डालो। यह कोई काम, लोभ, मोह इत्यादि छोड़ने का सवाल नहीं है; इतना ही है कि पाखंड छोड़ दो। जो तुमने ऊपर से ओढ़ लिये हैं वस्त्र, वे फेंक दो। मुखौटे लगा दिये हैं, गिरा दो। और तुम शुद्ध हो। यह शुद्धि की बड़ी और धारणा है।

इसलिये तुम जानकर हैरान होओगे, ये अदभुत सिद्ध हुए चौरासी, मगर इनका कोई संप्रदाय नहीं बन सका। क्यों? क्योंकि तालमेल ही न बैठा लोगों का इनकी बातों से। लोगों ने तो समझा कि ये तो बड़ी खतरनाक बातें हैं। लोगों ने इन चौरासी सिद्धों की परंपरा को कभी भी सामान्य जीवन पर छाया नहीं डालने दी।

मैं तुमसे फिर एक सिद्ध की भाषा बोल रहा हूं। लोग विरोध करेंगे, पंडित विरोध करेंगे, पुरोहित विरोध करेंगे, राजनेता विरोध करेंगे, समाज के अग्रणी विरोध करेंगे, सब तरफ से विरोध होगा। क्योंकि मैं जो भाषा बोल रहा हूं वह सिद्धों की भाषा है। मैं तुमसे यही कह रहा हूं कि तुम अपनी निजता को गौरव दो, गरिमा दो। तुम्हें परमात्मा ने जैसा बनाया है, बस वैसे ही जीयो, बेशर्त! और जरा भी इंच भर भी यहां-वहां हिलना-डुलना मत। और तुम चित्त की विशुद्धि को उपलब्ध हो जाओगे। और जहां चित्त विशुद्ध है वहां परमात्मा उपलब्ध है।

और तिलोपा कहते हैं कि इस जीवन में ही तुझे सिद्धि प्राप्त होगी और मोक्ष भी। और वे यह नहीं कहते कि मरने के बाद। यहीं, अभी! सच्चा धर्म नगद होता है। सिर्फ नकली धर्म उधार होते हैं, वे कहते हैंः मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा। अब कौन मरने के बाद की बात देख आया! कोई मरकर कहता भी नहीं कि क्या मिला, क्या नहीं मिला। मरने के बाद का आश्वासन! इससे बड़ी जालसाजी कोई और हो सकती है? लोगों से तुम कह रहे हो उपवास करो, भूखे मरो, शरीर को सड़ाओ-गलाओ, कांटों पर सोओ, क्योंकि मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा; अभी नर्क में जीयो--भूख में, प्यास में, धूप में। अभी सड़ाओ अपने को, गलाओ, क्योंकि मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा! और कैसे मूढ़जन हैं कि हाथ की आधी रोटी मरने के बाद जो पूरी रोटी मिलेगी उसके लिये छोड़ देते हैं। यह कोई समझदारी तो नहीं। यह कोई जीवन का अर्थपूर्ण गणित तो नहीं। और कितना बड़ा जाल चल रहा है। और ऐसे धोखे पर भी कितने धंधे चल रहे हैं! कितने मंदिर, कितने मस्जिद, कितने गुरुद्वारे! सारा जाल इस पर है कि मरने के बाद यह हो जायेगा।

मैं सूरत में मेहमान था। एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि आपको पता है, यहां हमारा एक संप्रदाय है। इस संप्रदाय में बड़ी अजीब धारणा है! उस संप्रदाय के प्रमुख सूरत रहते हैं। धारणा यह है कि कोई भी आदमी मर जाये, वह जो धर्म-प्रमुख हैं उनको दान कर जाता है और धर्म-प्रमुख चिट्ठी लिख देते हैं। परमात्मा के नाम, चिट्ठी लिख देते हैं कि इस आदमी ने लाख रुपये दिये, इसका ख्याल रखना। जोग लिखी इत्यादि इत्यादि...। और वह आदमी जब मर जाता है तो उसकी छाती पर वह चिट्ठी रखकर उसको कब्र में रख देते हैं। वह लाख रुपये दे गया, वह तो मिल गया पुरोहित को और एक चिट्ठी पड़ी हाथ मुर्दे के, जो पता नहीं कहीं जायेगा भी कि नहीं जायेगा और जायेगा भी तो चिट्ठी कैसे ले जायेगा?

मैंने उनसे कहा कि तुम एकाध कब्र खोदकर तो देखो, चिट्ठियां वहीं की वहीं पड़ी हैं। तो तुम्हें पक्का हो जायेगा कि चिट्ठी कहीं नहीं गई, चिट्ठी यहीं पड़ी है।

उन्होंने कहाः यह बात तो हमें ख्याल में ही न आई। मगर कब्र खोदना ठीक बात नहीं है।

यह तुम्हारी मर्जी, पर मैंने कहा, तुम कब्रें खोद कर देख लो, सब चिट्ठियां मिल जायेंगी तुम्हें वहीं। आदमी अपने शरीर को नहीं ले जा सका, चिट्ठी ले जायेगा?

मगर धोखे चल रहे हैं। मरने के बाद... ! सच्चा धर्म कहता हैः अभी, यहीं। मैं तुमसे कहता हूंः आनंद यहां उपलब्ध है। नृत्य यहीं हो सकता है और अभी हो सकता है। तुम कल पर क्यों टाल रहे हो? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम भी दुख के साथ इतने जुड़ गये हो कि तुम्हें भी यह भरोसा नहीं आता कि आज हो सकता है। तुम्हें भी यही पक्की बात लगती है कि मरने के बाद होगा। तुम दुख के इतने आदी हो गये हो कि जो तुम्हें सुख की बात कहता है, लगता है झूठ ही कहता होगा। सुख और हो सकता है कहीं?

तुम्हारी दुख की आदत तुम्हें शोषण का शिकार बनाती है। तुम्हारी आदत कि सुख अभी हो नहीं सकता, मरने के बाद हो तो हो--रास्ता मिल गया पंडित, पुरोहित, मौलवी को, कि तुम्हें स्वर्ग के बाद के सुंदर सपने दिखा दे और तुम्हें लूटता रहे।

तिलोपा कहते हैंः इसी जीवन में तुझे सिद्धि प्राप्त होगी, और मोक्ष भी। न तो मोक्ष कोई भौगोलिक अवस्था है कि कहीं और... न सिद्धि का मृत्यु से कोई अनिवार्य संबंध है। सिद्धि है तुम्हारी सहज अवस्था का आविर्भाव। तो अभी हो सकता है। और मोक्ष क्या है? आचरण, आदर्श, पाखंड, इन सबसे मुक्ति। तुम्हारे भीतर की स्वतंत्रता की उदघोषणा मोक्ष है। वीणा मौजूद है, शायद तार थोड़े उलझें हों तो सुलझा लो; कि तार थोड़े ढीले हों तो कस लो; कि ज्यादा कसे हों तो थोड़े ढीले कर लो। किसी सत्संग में बैठकर अपनी वीणा को सम्हल जाने दो--और गीत उठेगा!

मैंने गीत कहां गाया है?
अपने ही नीरस जीवन में,
मैंने नव उल्लास भरा है!
अपने सूने प्राण-विपिन में,
प्रिय! मैंने मधुमास भरा है!
अपने ही वीणा के उलझे,
तारों को बस सुलझाया है!
मैंने गीत कहां गाया है?

नहीं मुझे संकोच कि मेरी,
भाषा में कुछ जान नहीं है!
नहीं मुझे संकोच कि भावों
पर सुंदर परिधान नहीं है!
नहीं जगत के लिये लिखा है,
अपना ही मन बहलाया है!
मैंने गीत कहां गाया है!

तुमने ही मेरी खुशियों को,
आंसू पी जाना सिखलाया!
तुमने ही अंतर के स्वर को,
ओंठों पर आना सिखलाया!
तुमने जो कुछ सिखलाया था,
मैंने उसको दोहराया है!
मैंने गीत कहां गाया है?
तुम जरा सम्हल जाओ, परमात्मा तुमसे गीत गाये!
अपने ही नीरस जीवन में,
मैंने नव उल्लास भरा है!
नाचो! उमंग से भरो, उत्साह से भरो!
अपने सूने प्राण-विपिन में,
प्रिय! मैंने मधुमास भरा है!
भीतर उठेगा बसंत! बाहर की ऋतुएं वृक्षों पर आती हैं, तुम्हारी ऋतु भीतर आनेवाली है।
अपने ही वीणा के उलझे,
तारों को बस सुलझाया है!
मैंने गीत कहां गाया है?

गीत गाना ही नहीं पड़ता, बस तार सुलझ जायें कि गीत गाया जाता है! कोई अपूर्व, कोई अनजान हाथ, कोई अलौकिक हाथ तुम्हारी वीणा पर अपनी अंगुलियों को छेड़ देता है।

यहीं है सिद्धि, यहीं है मुक्ति। और जो यहां नहीं है वह कहीं भी नहीं है। और जो यहां है वह सब जगह है। जिसने जीते-जी जीवन का अर्थ समझा, वह मरते-मरते भी जीवन का अर्थ समझेगा। मरकर भी जीवन का अर्थ समझेगा। जो तुम मृत्यु के बाद पाना चाहते हो उसे आज पा लो, तो ही मृत्यु के बाद पा सकोगे, क्योंकि तुम तो तुम ही रहोगे। कौआ पूरब से पश्चिम जाये कि पश्चिम से पूरब जाये कांव-कांव ही करता रहेगा। तुम तो तुम ही रहोगे। मरने से ही क्या हो जायेगा? यही मन, यही अहंकार, यही रोग, यही बीमारियां लेकर तुम नई देह में प्रवेश कर जाओगे। नहीं, कुछ भी न होगा मरने से।

मृत्यु नहीं, जीवन को बदलना है। और जीवन को बदलना है किसी और के आदर्श को मानकर नहीं, अपने स्वभाव को स्वीकार करके।

"जितने सब आचार-व्यवहार हैं वे या तो सचल हैं या निश्चल।"

सचल णिचल जो सअलाचर।

"किंतु शून्य निरंजन सकल विकल्पों से रहित है। उसका विचार नहीं करना चाहिये; विचार से वह परे है।"

सुण णिरंजण म करू विआर।।

तिलोपा कहते हैं कि आचार-व्यवहार तो विचार की बात है, सोच-विचार की, सामाजिक नीति-व्यवस्था की। जो बात एक जगह आचरण है, दूसरी जगह अनाचरण है। जो बात एक जगह अच्छी समझी जाती है, दूसरी जगह बुरी समझी जाती है। जो एक जाति में शुभ है वही दूसरी जाति में अशुभ है।

एक किताब परसों आई मेरे पास। कीड़े-मकोड़ों को कैसे भोजन बनाया जाये, इस संबंध में। सब कीड़े-मकोड़े! चींटियों पर कैसे चाकलेट चढ़ाकर खाया जाये। और तितलियों को कैसे सुखाकर और तला जाये। किताब का नाम ही हैः बटर फ्लाई, बटर फ्लाई! विवेक उस किताब को पढ़ने लगी तो उसे बहुत घबड़ाहट हुई। उसका नाम ही ऐसा है... अंग्रेजी में तो बटर फ्लाई तब कहते हैं जब तुम्हारे पेट में हड़बड़ी मच जाये, तब कहते हैं कि बटर फ्लाई, पेट में बटर फ्लाई पैदा हो गई। अब जब उसने पढ़ा, विवेक ने, कि बटर फ्लाई को कैसे सुखाओ और कैसे तलो और कैसे-कैसे उसके ऊपर चाकलेट चढ़ाओ, तो उसके पेट में गड़बड़ होने लगी। उसने कहाः यह तो बहुत खतरनाक किताब है! क्या ऐसे लोग भी हैं जो तितली खाते हैं और चींटे और चींटियें और इनको इकट्ठा करके कैसे सुस्वादु ढंग से बनाया जाये... ।

मैंने उसे कहा कि दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे खाने वाले लोग न हों। चीन में लोग सांप को खाते हैं। सिर काट देते हैं और फिर सांप की सब्जी बनाते हैं। सांप! बिच्छू को भी नहीं छोड़ते! बिच्छू भी जब तला जाता है तो बड़ा कुरमुरा हो जाता है। सारी दुनिया में सब चीजों को खानेवाले हैं। मैंने विवेक को कहा कि तू तो इंग्लैंड में रही, अंडे खाते वक्त तुझे कभी बेचैनी नहीं हुई, मांसाहार करते वक्त तुझे कभी बेचैनी नहीं हुई। तब वह चौंकी कि अब सोच में आता है। सात साल यहां शाकाहारी रहने के बाद अब सोच में आता है कि मैं कैसे अंडे खा सकी, कैसे मांसाहार कर सकी! लेकिन जो मांसाहार करता है उसको यह समझ में नहीं आता कि चींटे खाने में क्या अड़चन है। जो चींटे खाता है वह नहीं मान सकता कि अंडा खाना ठीक बात है।

तुम भी कहोगे कि यह सांप-बिच्छू खाना तो जरा जंचता नहीं, मछली इत्यादि ठीक है। मगर जो सांप-बिच्छू खानेवाले हैं, हो सकता है मछली खाना पसंद न करें। सारे जगत में इतने आचरण हैं और सब अपने आचरण को ठीक मानकर चलते हैं और दूसरे के आचरण को भूल मानते हैं।

तिलोपा कहते हैंः "जितने सब आचार-व्यवहार हैं या तो सचल हैं या निश्चल। किंतु शून्य निरंजन सकल विकल्पों से रहित है।"

तुम आचार-विचारों में मत उलझो। तुम तो उसकी तलाश करो, जो तुम्हारे भीतर है और शून्य है। उस शून्य निरंजन को खोजो, जो समस्त विकल्पों से रहित है; जिसका न कोई पक्ष है, न कोई धारणा है, न कोई नीति है, न कोई अनीति है; जहां न पुण्य है न पाप है। तुम तो उस साक्षी को खोजो जो सब का देखनेवाला है। करने की बात में तो बहुत विकल्प हैं, देखने की बात में कोई विकल्प नहीं है, इस बात को ख्याल में लेना। कोई आदमी रोटी खा रहा है, कोई अंडा खा रहा है, कोई मछली, कोई सांप। खाने में तो बड़े विकल्प हैं, लेकिन देखने वाला एक ही है। चाहे मछली खाओ चाहे सांप, देखने वाला द्रष्टा एक ही है।

अब दो तरह के लोग हैं दुनिया में। कुछ लोग यही बदलते रहते हैं कि क्या खायें, क्या न खायें। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे।

एक क्वेकर ईसाई मेरे पास मेहमान हुआ। सुबह, जैसा स्वाभाविक था, मैंने उससे पूछा कि आप दूध लोगे, चाय लोगे, काफी लोगे? उसने कहाः "दूध! आप दूध पीते हैं!" वैसे ही समझ लो कि तुम चीन गये और किसी के घर मेहमान हुए और उसने कहा कि आप सुबह-सुबह नाश्ते में बिच्छू लेंगे कि सांप? तो तुम्हारी क्या गति हो जाये! तुम एकदम चौंककर खड़े हो जाओगे बिच्छू-सांप, मजाक कर रहे हो! यह कोई खाने की चीज है, यह कोई नाश्ता है? ... मगर सांप में बड़े विटामिन हैं! नाश्ते जैसा नाश्ता है!

उसने मुझसे ऐसा पूछा कि दूध! एक क्षण को तो मैं भी सकते में आ गया कि बात क्या है, दूध! फिर मुझे ख्याल आया कि क्वेकर दूध नहीं पीते क्योंकि दूध को वे खून मानते हैं। है भी खून। इसलिए तो दूध पीने से खून

बढ़ जाता है। मां के स्तन से मां का खून दो हिस्सों में बंट जाता है। उसके लाल कण अलग हो जाते हैं और सफेद कण दूध बन जाते हैं। खून में दो हिस्से हैं सफेद और लाल कण के। मां अपने बच्चे को अपना खून ही तो पिला रही है! क्वेकर कहते हैंः दूध! बहुत बुरी बात है, यह तो मांसाहार जैसा ही है; खून हुआ कि मांस हुआ, बराबर है। क्वेकर दूध नहीं पीते, दही नहीं खाते, मक्खन नहीं खाते, घी नहीं खाते।

अब भारतीय चित्त तो बड़ी मुश्किल में पड़ जायेगा; दूध तो सात्विक आहार है! दूध से सात्विक और क्या है भारत में? तो जो आदमी सिर्फ दूध ही दूध पीता है, दुग्धाहारी, उसकी तो लोग पूजा करते हैं। और वे सज्जन सिर्फ खून ही खून पीते हैं, दुग्धाहारी नहीं कहना चाहिये उनको--रक्ताहारी!

मैं रायपुर में था तो वहां एक आश्रम ही है, दूधाधारी आश्रम उसका नाम है; उसमें दूध ही दूध पीना पड़ता है। जब मैं उनके महंत को मिला, मैंने उनसे कहाः यह क्या पाप करवा रहे हो, दूध ही दूध, यह तो खून ही खून है! वे मुझसे बोलेः आप कैसी बातें कर रहे हैं! दूध और खून! दूध तो ऋषि-मुनि सदा से पीते रहे हैं। मैंने कहाः ऋषि-मुनि ऋषि-मुनियों की जानें। अब कौन ऋषि-मुनियों की फिकिर करे, सचाई तो सचाई है।

दूध तो रक्त है। तब तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। खाओगे क्या, पियोगे क्या? जीयोगे कैसे? लेकिन कुछ इसी में लगे रहते हैं--इसी आचरण-व्यवहार में लगे रहते हैं। फिर तुम्हारे ऋषि-मुनि दूध पीते रहे, चीन के ऋषि-मुनि खाते रहे सांप को, छोड़ा नहीं ऋषि-मुनियों ने भी!

एक झेन फकीर की प्रसिद्ध कहानी है कि एक मेहमान घर आया है फकीर के और भोजन बना और जब मेहमान आया तो सांप कटे। और जब उस झेन फकीर ने अपना भोजन का कौर उठाया तो बहुत चकित हुआ, क्योंकि सांप को जब बनाते हैं सब्जी तो उसका मुंह काटकर अलग कर देते हैं, क्योंकि उसके मुंह में तो जहर की ग्रंथि होती है, खतरनाक है। उसने पहला ही कौर उठाया कि उसके हाथ में सांप का मुंह आया। तो जिस भिक्षु ने भोजन बनाया था... आश्रम था तो भिक्षु ही भोजन बनाते थे, उसने भिक्षु को बुलाया और कहाः यह क्या है? मगर भिक्षु भी एक अद्भुत भिक्षु था। उसने जल्दी से उसे हाथ में लिया, खा गया। कहाः धन्यवाद, आपने मेरी याद की! खा गया उसको! गुरु बहुत प्रसन्न हुआ। यही किया जा सकता था, और तो क्या?

तो ऋषि-मुनि भी सांप खा रहे हैं। तो ऋषि-मुनियों से कुछ नहीं होगा। और अब ऋषि-मुनि हैं कहां?

एक मां अपने बेटे को कह रही थी कि तू जल्दी उठा कर, सुबह देर तक सोया रहता है, ऋषि-मुनि सदा जल्दी उठते हैं। उस बेटे ने कहा कि नहीं उठते। मुझे पक्का मालूम है ऋषिकपूर नौ बजे के पहले नहीं उठता और दादामुनि अशोककुमार, वे तो दस बजे उठते हैं।

अब तो ऋषि-मुनि भी बदल गये। अब तुम कहां ऋषि-मुनियों की बात छेड़ रहे हो? मगर क्या खाओगे, क्या पियोगे? कुछ तो खाओगे, कुछ तो पियोगे। सांस लेने में भी हिंसा हो रही है। क्योंकि न मालूम कितने कीटाणु एक सांस में मर जाते हैं, लाखों!

तो आचार-व्यवहार पर सहज-योग का कोई जोर नहीं है। सहज-योग कहता है कि आचार-व्यवहार जैसा जहां उचित हो चला लेना, उसकी बहुत चिंता मत करना। इसलिये रामकृष्ण मछली खाते रहे, क्योंकि बंगाली और मछली न खाये... । बंगाल में और मछली न खाओ... ! तो जीसस मांसाहार करते रहे और शराब भी पीते रहे। वह स्वीकृत अंग था।

सहज-योग कहता है कि जहां हो, जो सुविधापूर्ण है, जैसा है आचार-व्यवहार लोगों का, और जिसमें तुम बड़े हुए हो, वैसे ही चलाये जाना; उसका कोई मूल्य बहुत नहीं है। असली मूल्य तो किसी और बात का है--वह है शून्य निरंजन सकल विकल्पों से रहित! वह जो तुम्हारे भीतर साक्षी है उसको जगाओ। मछली खाओ कि दूध

पियो, मगर साक्षी को जगाये रहो। जानते रहो कि मैं द्रष्टा हूं; मैं खानेवाला नहीं हूं, पीनेवाला नहीं हूं। मैं केवल द्रष्टा हूं, मैं कर्ता नहीं हूं।

और इस निरंजन का, इस सकल विकल्पों से रहित साक्षी का विचार करने मत बैठ जाना कि बैठकर सोच रहे हैंः अहं ब्रह्मास्मि, कि मैं साक्षी हूं! विचार मत करना इसका, इसका अनुभव करना। क्योंकि वह सकल विचारों से परे है, उसका विचार नहीं करना चाहिये। वह विचार से परे है।

हंउ जग हंउ बुद्ध हंउ णिरंजण।

बड़ा क्रांतिकारी उदघोष हैः "मैं जगत हूं, मैं बुद्ध हूं, और मैं ही निरंजन हूं!"

हंउ जग हंउ बुद्ध हंउ णिरंजण।

हंउ अमणसिआर भवभंजण।।

"मैं ही मानसिक अकर्ता हूं। और सबका, सब भव का भंजन करनेवाला भी मैं ही हूं।" यह जो भीतर तुम्हारे साक्षी बैठा है, यह जो तुम्हारा आत्यंतिक "मैं", तुम्हारी आत्मा है, यह सब कुछ है; बस इसके प्रति तुम जागो, इसको जगाओ। मैं जगत हूं... और तब तुम पाओगे यही तुम्हारा जगत है। मैं ब्रह्म हूं, मैं बुद्ध हूं, मैं निरंजन हूं, मैं ही सत्य हूं। अनलहक, जो मंसूर ने कहा। और अहं ब्रह्मास्मि, जो उपनिषदों ने कहा। इस घोषणा को और भी गहरा कर दिया तिलोपा ने।

वियोगी हरि ने अपनी प्रसिद्ध किताब संत-सुधा-सार में इस वचन के संबंध में लिखा है कि अद्वैतवादियों की भांति तिलोपा ने भी कहा हैः मैं जगत हूं, मैं बुद्ध हूं और मैं ही निरंजन हूं! वियोगी हरि की बात से मैं राजी नहीं हूं। अद्वैतवादी इतनी हिम्मत नहीं करते। वे तो इतना ही कहते हैं कि मैं ब्रह्म हूं, अहं ब्रह्मास्मि। वे यह नहीं कहते कि मैं माया भी हूं। वह हिम्मत तो सिर्फ सिद्ध कर सकता है। भेद समझ लेना। वियोगी हरि को भेद साफ समझ में नहीं आया। उन्होंने तो वही उदघोषणा अहं ब्रह्मास्मि की समझी कि वही उदघोषणा यह भी है। "हंउ जग" किसी ब्रह्मवादी ने किसी अद्वैतवादी ने यह नहीं कहा कि मैं जगत भी हूं। इतना तो कहा कि मैं ब्रह्म हूं। ब्रह्म के साथ एक हो जाने में कौन अड़चन है! कौन नहीं हो जाना चाहता! मीठा-मीठा गप्प, कड़वा-कड़वा थू! लेकिन सिद्ध मीठे को भी गप्प कर जाते हैं, कड़वे को भी गप्प कर जाते हैं। सिद्ध की छाती बड़ी है। अद्वैतवादी की छाती उतनी बड़ी नहीं है।

हंउ जग हंउ बुद्ध हंउ णिरंजण।

"मैं जगत, मैं बुद्ध और मैं ही निरंजन। मैं ही मानसिक अकर्ता हूं।"

बस अकर्ता को जान लो तो तुम सब जान लोगे। साक्षी-भाव को पहचान लो तो तुम सब पहचान लोगे।

"भव का भंजन करनेवाला भी मैं ही हूं।" और जिस दिन तुमने साक्षी को जाना उसी दिन सारे भव का भंजन हो गया। हो गये पार सारे स्वप्नों के।

तित्थ तपोवण म करहु सेवा।

देह सुचिहि ण स्सन्ति पावा।।

"न तीर्थ सेवन करो, न तपोवन को जाओ। तीर्थों में स्नानादि करने से मोक्ष-लाभ होने का नहीं।" अगर स्नान करना हो तो साक्षी-भाव में करो। वही तीर्थ है, वही गंगा है। वहीं मुक्त होओगे, वहीं शुद्ध होओगे। व्यर्थ न भटको बाहर।

देव म पूजहू तित्थ ण जावा।

देव पूजाहि ण मोक्ख पावा।।

"न देव-प्रतिमा की पूजा करो, न तीर्थयात्रा। देवाराधन में तुम्हें मोक्ष मिलने का नहीं।"

पत्थरों को मत पूजो, चैतन्य को जगाओ। न देव-प्रतिमा की पूजा करो, न तीर्थयात्रा। बाहर की यात्राओं से भीतर कैसे पहुंचोगे? बाजार भी बाहर है, मंदिर भी बाहर है; तुम भीतर हो। किसी को मारा तो बाहर और किसी की पूजा की तो बाहर; और तुम भीतर हो। देवाराधन से तुम्हें मोक्ष मिलने का नहीं। बाहर से छूटो, भीतर आओ। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है।

मैं चेतना के अतल अम्बुधि की लहर,
मैं जागरण का सत्य शिव सुंदर प्रहर,
मैं ज्ञान के आलोक की चेतन किरण,
मैं सृजन-शक्ति अनंत का अलोक कण!
मृत्तिका की देह है मेरा न कारागार,
स्वप्न जीवन मरण भी मेरे नहीं व्यापार,
मैं किसी के हाथ की मादक स्वरों की बीन,
सृष्टि के तागे सम-असम स्वर जिसमें हुए सब लीन!

स्मरण करो, स्मरण करो--कौन हो तुम? तुम साक्षी मात्र हो। तुमने बहुत दृश्य देखे हैं--अच्छे, बुरे, सफलता-असफलता के, दुख के सुख के। तुमने अंधेरे देखे हैं, रोशनियां देखी हैं। यश देखे हैं, अपमान देखे हैं। तुमने जवानी देखी, बुढ़ापा देखा, बचपन देखा। तुमने स्वास्थ्य देखा, बीमारियां देखीं। तुमने सब देखा है, सिर्फ एक तुम्हारे देखे के बाहर रह गया है--देखने वाला। अब उसको देख लो। उसको पहचानते ही मोक्ष, उसको पहचानते ही सिद्धि। और वह तुमसे जरा भी दूर नहीं, वह तुम ही हो।

हंउ जग हंउ बुद्ध हंउ णिरंजन।

तिलोपा की इस उदघोषणा के साथ हम कुछ दिन चलेंगे, ध्यान करेंगे। जागना। जगाना भीतर जो सोया है।

खोलो गृह के द्वार, मुंदे वातायन खोलो
मैं जीवन का सूर्य तुम्हारे घर आता हूं।
धूप रोकनेवाले सब आवरण हटा दो।

लिये आ रहा फूलों का स्वर्णिम विकास मैं,
लिये आ रहा हूं सुगंध उन्मुक्त विपिन की;
लिये आ रहा स्वर्णाताप अपनी मयूख का,
लिये आ रहा हूं शीतलता मैं हिमकण की।

उठो, उठो, उपधानों पर शीश उठाओ,
पलक खोल कर देखो, कैसी लाल विभा है।
मैं जीवन का सूर्य तुम्हारे द्वार खड़ा हूं,
धूप रोकनेवाला सब आवरण हटा दो।

दारु-सद्म-से निज उर के वातायन खोलो,
वातायन जो बहुत दिनों से बंद पड़े हैं।
और मुझे छितराने दो अपने मंदिर में
आभा, आतप, ओस, पुष्ट औ" गंध विपिन की।

खोलो गृह के द्वार, मुंदे वातायन खोलो,
मैं जीवन का सूर्य तुम्हारे घर आता हूं।
धूप रोकनेवाले सब आवरण हटा दो।
आज इतना ही।

बारहवां प्रवचन

प्रेमः कितना मधुर, कितना मदिर

पहला प्रश्नः मैंने मांगा कुछ, और मिला कुछ और। मांगी मन की मृत्यु--मिली मन की मगनता!

मेरे मन में ज्ञान-योग का महत्व ज्यादा है, परंतु अब प्रेम-भक्ति के भाव भी सघन हो रहे हैं। यहां बीस दिनों से प्रवचन, सक्रिय और कुंडलिनी ध्यान में एवं आश्रम-संगीत में भी भाग लेता हूं। परिणाम-स्वरूप शांति एवं शून्यता के अलावा रस-लीनता बढ़ती जाती है। मन एवं शरीर जैसे रस के सरोवर में डूब गये हों!

यह सब क्या है--बताने की कृपा करें।

आनंद मनु! जो मांगा वही मिला। मांगते समय मांगनेवाले को भी शायद पता नहीं होता कि क्या मांग रहा है; यह तो मिलने पर ही ठीक-ठीक पता चलता है।

बीज बोते समय पता भी कैसे हो कि कैसे फूल लगेंगे, कैसे फल आयेंगे, कैसे वृक्ष होंगे? यह तो जब फूल लग जाते हैं तभी पता चलता है। बीज के साथ तो हमारी अभीप्सा होती है, प्रार्थना होती है, लेकिन फूल के साथ हमने जो चाहा था, जो सपना देखा था वह सत्य बनता है।

तुम कहते होः "मैंने मांगा कुछ, और मिला कुछ और।" ऐसा कभी होता ही नहीं। जो मांगते हो वही मिलता है। तुम कहते होः "मांगी मन की मृत्यु, मिली मन की मगनता।" जो भी मन की मृत्यु मांगेगा उसे मन की मगनता ही मिलती है, क्योंकि मन की मगनता ही मन की मृत्यु है। मन की मृत्यु है तुम्हारा जीवन। जब तक मन है तब तक तुम नहीं। जब तक मन है तब तक तुम जीवित ही कहां हो? तब तक एक थोथा जीवन है, एक झूठा जीवन है, एक बोझ है, एक भार है, जो ढोते हो। तब तक तो मृत्यु ही मृत्यु है जब तक मन है। तब तक तुम्हारा पूरा जीवन जन्म से लेकर मरण तक मृत्यु की ही एक धीमी-धीमी यात्रा है। आहिस्ता-आहिस्ता मरने का नाम ही तुमने जीवन समझ लिया है।

जब तुम मन की मृत्यु मांगोगे तो तुमने मृत्यु की मृत्यु मांग ली, क्योंकि मन यानी मृत्यु। मन मरा तो मृत्यु मर गई। फिर है जीवन, फिर है महाजीवन, फिर है शाश्वत जीवन। अमृत के द्वार खुलते हैं फिर। फिर है मगनता, फिर है नृत्य, उत्सव। फिर प्रभु के धन्यवाद में जीवन सिवाय आनंद के और कुछ भी नहीं है।

तुमने जो मांगा था वही मिला है, यद्यपि तुम्हें साफ-साफ नहीं था कि तुम क्या मांग रहे हो। और ऐसा अकसर हो रहा है। ऐसा अकसर अधिक लोगों के जीवन की यही कथा है। कोई धन मांगता है, मिलती है निर्धनता--और तब वह छाती पीटता है और सोचता है मैंने मांगा था धन। लेकिन धन ने कभी किसी को धनी किया? अगर धन धनी करता होता तो इस जगत में जिनके पास धन है वे आनंद-मगन हो गये होते। तो फिर बुद्ध राजमहल क्यों छोड़ते? फिर महावीर नग्न क्यों खड़े होते?

नहीं, धन में धन नहीं है। इसलिए जिन्होंने धन मांगा उन्होंने अनजाने निर्धनता मांग ली है। और जब निर्धनता टूट पड़ेगी, उनकी मांग जब पूरी होगी, तब वे छाती पीटकर रोयेंगे और वे कहेंगेः क्या मांगा और क्या मिला!

जिन्होंने पद मांगा है, उन्होंने हीनता मांग ली है, दीनता मांग ली है। क्योंकि पद पर होने से कोई कभी शक्तिशाली नहीं हुआ है। शक्तिशाली तो केवल वे ही हुए हैं जो ना कुछ हो गये। जिन्होंने शून्य मांगा उन्हें शक्ति मिली और जिन्होंने शक्ति मांगी उन्होंने केवल रिक्तता के अतिरिक्त कुछ भी न पाया।

तुमने सुख मांगा, मिला कहां? मिलता तो दुख है। तब तुम्हारी समझ में तर्क नहीं आता, जीवन का गणित नहीं आता। तुम कहते होः मैंने सुख मांगा, सुख की सारी चेष्टा भी की और मिला दुख। लेकिन सुख तुम जिसे कहते हो वह दुख का ही दूसरा नाम है। तुम्हें अभी असली सुख का पता ही नहीं। तुमने नकली सुख मांगा; ऊपर-ऊपर सुख, भीतर-भीतर दुख होगा। तुमने मृगमरीचिका मांगी। दूर से सुहावने लगेंगे वे ढोल, पास आने पर हाथ कुछ भी न लगेगा, हाथ खाली के खाली रह जायेंगे।

अधिक लोगों के जीवन का यही अनुभव है कि उन्होंने कुछ मांगा और कुछ मिला। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूंः तुम जो मांगते हो वही मिलता है। कभी तुम्हारी मांग गलत होती है, तो तुम्हें जो मिलता है वह गलत होता है और कभी तुम्हारी मांग सही होती है तो चाहे दुनिया-भर को लगे कि तुम गलत मांग रहे हो... । अब जैसे कि तुमने मन की मृत्यु मांगी, देखने पर तो लगेगाः यह भी कोई मांग हुई? मांगना था अमृत जीवन, मांगना था महाजीवन, मांगना था आत्मज्ञान। मांगी मन की मृत्यु! यह कोई मांगना है?

लेकिन मन की मृत्यु जो मांगता है उसे ही मिलता है आत्मज्ञान। और जो आत्मज्ञान मांगता रहता है, उसे कभी कुछ नहीं मिलता। क्योंकि आत्मज्ञान की मांग तो मन को ही मजबूत कर जाती है। जो शाश्वत जीवन को मांगता है वह तो मृत्यु से भयभीत है। और जो मृत्यु से भयभीत है वह कैसे शाश्वत जीवन जान सकेगा? जो कहता है मैं सदा-सदा रहूं, वह तो डरा हुआ है। उसे तो पता है कि मरना होगा। वह मरने के खिलाफ मांग कर रहा है। वह जीवन के विरोध में मांग कर रहा है। वह जीवन के विपरीत जाना चाहता है। वह नदी में उल्टी धारा में तैरना चाहता है। हारेगा, थकेगा, टूटेगा। लेकिन जिसने कहा कि ले लो यह मन, ले लो यह जीवन, इससे न कुछ मिला है न कुछ मिल सकता है, छीन लो मुझसे मेरी ये सारी आकांक्षायें। ... इन आकांक्षाओं में परमात्मा की आकांक्षा भी सम्मिलित है। इन आकांक्षाओं में मोक्ष की आकांक्षा भी सम्मिलित है। ... छीन लो मुझसे मेरी सारी आकांक्षायें, दग्ध कर दो मेरे वासना के बीज को। ... जिसने ऐसा मांगा उसके जीवन में अमृत बरस जाता है।

और तुम कहते हो कि ज्ञान-योग का महत्व मेरे मन में ज्यादा है। ज्ञान-योग अकसर सिर में ही अटका रह जाता है। ज्ञान-योग सिर्फ जानकारी बनकर समाप्त हो जाता है। जब तक तुम्हारा हृदय न छू लिया जाये, जब तक तुम्हारा हृदय गदगद न हो, रस-विभोर न हो, तब तक कहां ज्ञान? ज्ञान के नाम पर कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लोगे, जानकारियों का संग्रह बढ़ा लोगे। जानकारियों के पहाड़ भी हों तुम्हारे पास तो भी रत्ती-भर ज्ञान नहीं होता।

ज्ञान से कहीं ज्ञान होता है? ध्यान से ज्ञान होता है; प्रेम से ज्ञान होता है। जिसने प्रेम जाना उसने परमात्मा जाना। और जो शास्त्रों में ही खोजता रहा वह घूरे पर बैठा रहा। कुछ लोग घूरे पर बैठकर खोजते रहते हैं धन को--किसी का पैसा पड़ा हो, किसी का गहना कचरे में आ गया हो। शायद घूरे पर बैठे-बैठे कोई एकाध पैसा, कोई एकाध गहना कभी मिल भी जाये, मगर शास्त्रों के घूरे पर बैठनेवाले को उतना भी नहीं मिलता; वहां कुछ भी नहीं है। जो हृदय के द्वार खटखटाता है, वह पाता है।

अच्छा ही हुआ कि यहां तुम पागलों की इस दुनिया में आ गये, नाच सके, गा सके, संगीत में डूब सके, ध्यान कर सके, मेरी अटपटी बातें सुन सके। धन्यभागी हो! रस जगा है, इसे भूल मत जाना। यह अभी छोटा-सा

अंकुर है, पौधा है। इसे सम्हालना, इसे प्राणों की खाद देकर सम्हालना। इसे बचा सको तो एक दिन तुम्हारे जीवन में मुक्ति का फल भी लगेगा। वह मगनता की ही अंतिम पराकाष्ठा है।

लेकिन अकसर तो जो लोग ज्ञान में उत्सुक होते हैं, प्रेम में उत्सुक होते ही नहीं। उनको तो प्रेम पागलपन मालूम पड़ता है। वे तो कसमें खा लेते हैं कि प्रेम की झंझट में हमें नहीं पड़ना है। वे तो सोचते हैं कि ज्ञान पर्याप्त है। वे तो ज्ञान का गणित ही बिठालते-बिठालते समाप्त हो जाते हैं। ज्ञान का गणित कभी बैठता ही नहीं। प्रेम की रसायन न हो, तो ज्ञान का गणित कभी बैठता ही नहीं। और प्रेम की रसायन हो, तो ज्ञान का गणित एकदम बैठ जाता है। प्रेम के आधार पर तो ज्ञान का मंदिर भी खड़ा हो सकता है। लेकिन प्रेम का आधार न हो तो निराधार मंदिर खड़ा नहीं हो सकता।

तुम कितना ही साज-सामान इकट्ठा करते रहो, साज-सामान पड़ा रहेगा, मंदिर कभी बनेगा नहीं। जोड़नेवाला तत्व ही नहीं है, ईटें इकट्ठी करने से क्या होगा? सीमेंट भी चाहिये न! प्रेम सीमेंट है, जो ईटों को जोड़ देती है।

तुम्हारे हाथ जोड़नेवाला तत्व लगा है, यह छिटक न जाये। ख्याल रखना जितनी बहुमूल्य चीजें होती हैं उतने आसानी से छिटक जाती हैं। व्यर्थ की चीजें तो चिपकी रह जाती हैं, बहुमूल्य चीजें छिटक जाती हैं। क्योंकि बहुमूल्य को सम्हालकर रखने में बड़ा प्रयास करना होता है। उसे बचाना हो तो सतत जागरूकता चाहिये।

यह जो तुम्हारे भीतर थोड़ी-सी रस की बूंद पड़ी है, यह सागर हो सकती है, अगर सम्हाला।

बहुत लोगों ने धर्म को मात्र थोथा ज्ञान बना लिया है। उन्होंने कसमें खा ली हैं कि वे प्रेम की झंझट में न पड़ेंगे। कारण भी हैं। जीवन में जिसको उन्होंने प्रेम करके जाना, उसने इतना कष्ट दिया है कि अब वे प्रेम शब्द से भी चौकन्ने हो जाते हैं। कहते हैं न, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगता है। उनके जीवन में जिसे उन्होंने प्रेम करके समझा था उससे सिवाय पीड़ा के कुछ भी न पाया। प्रेम ने कांटे ही कांटे बो दिये, कमल कभी खिले नहीं। प्रेम के नाम से चिंतायें और चिंतायें और विषाद और विफलतायें... । प्रेम ने ऐसी अंधेरी रात दे दी और ऐसे दुखस्वप्न दिये कि प्रेम शब्द सुनते ही वे चौंक जाते हैं। उन्होंने कसमें खा लीं कि हम कभी प्रेम ही न करेंगे।

मगर ख्याल रखना, प्रेम करना ही पड़ेगा। और जब प्रेम की घड़ी आ जाये तो सब कसमें छोड़ देना, भय मत करना। क्योंकि यह कोई और ही प्रेम है। इसे तुमने जाना ही नहीं। जिसे तुमने जाना था वह प्रेम नहीं था। इसीलिये कष्ट पाया। प्रेम कहीं कष्ट देता है? प्रेम बड़ा मधुमय है, प्रेम तो मदिर है। प्रेम से ज्यादा मदमस्त करनेवाली कोई मदिरा नहीं है। हां, तुमने गलत जगह खोजा होगा। तुमने व्यक्तियों में खोजा। पुरुषों ने स्त्रियों में खोजा, स्त्रियों ने पुरुषों में खोजा, मां-बाप ने बच्चों में खोजा, बच्चों ने मां-बाप में खोजा, भाई-बहन में खोजा, मित्रों में खोजा। तुम गलत जगह खोजते रहे।

अब कोई अगर रेत से तेल निचोड़ना चाहे और तेल न निचुड़े, तो रेत का कोई कसूर है? रेत में तेल है ही नहीं। तुम जिनके सामने प्रेम का भिक्षापात्र फैलाकर खड़े हुए थे, वे भी तो भिखारी थे तुम जैसे ही! वे भी तुम्हारे सामने भिक्षापात्र फैलाये थे। दो भिखारी एक-दूसरे के सामने भिक्षापात्र फैला दें, क्या मिलेगा? कैसे मिलेगा? मालिक के पास ही मिल सकता है... या मालिक! उस परमात्मा से ही प्रेम हो सकता है, उसकी तरफ आंखें उठाओ। और तुम्हारी आंख थोड़ी-सी उठी, आंख की कोर में थोड़ी-सी प्रकाश की किरण पड़ी है, छोड़ो पुरानी कसमें!

साकी की निगाहों में तो मुजरिम न बनूंगा

टूटेंगे तो टूटें मेरे तौबा के इरादे

वे तुमने जो कसमें खा रखी हैं प्रेम न करने की, अब टूटती हों तो टूट जाने दो।

साकी की निगाहों में तो मुजरिम न बनूंगा

टूटेंगे तो टूटें मेरे तौबा के इरादे

तुमने बहुत बार कसमें खा ली होंगी कि अब प्रेम नहीं, अब प्रेम नहीं, बहुत कष्ट पा लिया। मगर जिससे तुमने कष्ट पाया वह प्रेम था ही नहीं।

मैं समझता था कि अब रो न सकूंगा ऐ जोश

दौलते-सब्र कभी खो न सकूंगा ऐ जोश

इश्क की छांव भी देखूंगा तो कतराऊंगा

काबा-ए-अक्ल से बाहर न कभी जाऊंगा

आबरू इश्क के बाजार में खोते हैं कहीं

जिन्से-हिकमत के ख़रीदार भी रोते हैं कहीं

चुभ सकेगा न मेरे दिल में इशारा कोई

नोके-मि.जगां पे न दमकेगा सितारा कोई

अब न याद आयेगा रंगे-लबो-रुख़्सार कभी

दिल में गूंजेगी न पा.जेब की झंकार कभी

अब कभी मुझसे न रूठा हुआ दिल बोलेगा

अब तसव्वुर किसी घूंघट के न पट खोलेगा

अब पयाम आयेगा फूलों का न गुलशन से कोई

अब न झांकेगा महो-साल के रौ.जन से कोई

लेकिन अफसोस कि ये संगे-य.कीं टूट गया

दामने-सब्र मेरे हाथ से फिर छूट गया

जल उठी रूह में फिर शम्मअ सनमख़ाने की

ख़ाके-परवाना में आग आ गई परवाने की

जिससे रातें कभी रोशन थीं वो जुगनू जागा

चश्मे-ख़ू बस्ता में सोया हुआ आंसू जागा

अक्ल की धूप ढली, इश्क के तारे निकले

बर्फ महताब से पिघली तो शरारे निकले

प्रेम से तो कसम खा ही लेनी पड़ती है, क्योंकि प्रेम तो हमारा गलत ही है। और जिनके सामने हमने अपने मदिरा-पात्र किये थे वे साकी नहीं थे। उनके पास मदिरा देने को नहीं थी। वे खुद ही प्यासे थे--हम जैसे ही प्यासे थे। वे भी साकी की तलाश में थे।

मैं समझता था कि अब न रो सकूंगा ऐ जोश... तो बहुत बार यह ख्याल आ जाता है कि रो-रोकर भी क्या पाया? आंसू गिरा-गिराकर भी क्या मिला? तो आदमी तय कर लेता है...

मैं समझता था कि अब रो न सकूंगा ऐ जोश

दौलते-सब्र कभी खो न सकूंगा ऐ जोश

... अब अपने धीरज को न कभी खोऊंगा। अब कभी अधैर्य न करूंगा। अब कभी कुछ चाहूंगा नहीं, मांगूंगा नहीं। अब आंखों को सम्हालकर रखूंगा, अब रोऊंगा नहीं, अब कभी दिल गीला न करूंगा।

इश्क की छांव भी देखूंगा तो कतराऊंगा

काबा-ए-अक्ल से बाहर न कभी जाऊंगा

अब तो अक्ल के काबा से, अक्ल के तीर्थ से कभी बाहर न निकलूंगा। अब तो ज्ञान में ही रहूंगा, अब प्रेम के पागलपन में कभी न उतरूंगा।

इश्क की छांव भी देखूंगा तो कतराऊंगा

काबा-ए-अक्ल से बाहर न कभी जाऊंगा

आबरू इश्क के बा.जार में खोते हैं कहीं

अब समझदार हो गया हूं; अब प्रेम के बाजार में अपनी इज्जत गंवाने जानेवाला नहीं हूं। अब इतना दीवाना मैं कभी न बनूंगा।

आबरू इश्क के बाजार में खोते हैं कहीं

जिन्से-हिकमत के ख़रीदार भी रोते हैं कहीं

जो दार्शनिक विचारों से भरे हुए लोग हैं, जिनके पास दार्शनिक बुद्धि है, जिन्होंने दार्शनिकता सीखी है, ज्ञानयोगी हैं जो... जिन्से-हिकमत के ख़रीदार भी रोते हैं कहीं... कहीं समझदार, पंडित, ज्ञानी रोते हैं?

चुभ सकेगा न मेरे दिल में इशारा कोई

नोके-मि.जगां पे न दमकेगा सितारा कोई

अब न याद आयेगा रंगे-लबो रुख़सार कभी

दिल में गूंजेगी न पा.जेब की झंकार कभी

अब कभी मुझसे न रूठा हुआ दिल बोलेगा

अब तसव्वुर किसी घूंघट के न पट खोलेगा

खा ली थी कसम कि अब नहीं कोई घूंघट उठाऊंगा। मगर एक घूंघट है जो उठाना पड़ेगा उठाना ही पड़ेगा! परमात्मा का घूंघट तो उठाना ही पड़ेगा। उस परमप्रिय या परमप्रेयसी की पाजेब की झंकार तो सुननी ही पड़ेगी।

अब पयाम आयेगा फूलों का न गुलशन से कोई

अब न झांकेगा महो-साल के रौ.जन से कोई

लेकिन अफसोस कि ये संगे-यकीं टूट गया

यह विश्वास-रूपी पत्थर टूट गया।

लेकिन अफसोस कि ये संगे-यकीं टूट गया

दामने-सब्र मेरे हाथ से फिर छूट गया

और वह जो धीरज और तथाकथित ज्ञान का आंचल पकड़ रखा था वह हाथ से छूट गया। ... अफसोस नहीं है यह, यह सौभाग्य की बात है।

लेकिन अफसोस कि ये संगे-यकीं टूट गया

दामने-सब्र मेरे हाथ से फिर छूट गया।

जल उठी रूह में फिर शम्मअ सनमख़ाने की

अब उस प्यारे के मंदिर की शमा फिर जल उठी, मेरी रूह फिर पुकारी जाने लगी।

जल उठी रूह में फिर शम्मअ सनमख़ाने की
ख़ाके-परवाना में आग आ गई परवाने की

और वह जो राख होकर गिर गया था, वह परवाना फिर से जीवित हो उठा है। वह जो प्रेम सोचा था कि गया, गया नहीं था, कहीं छिपकर बैठ रहा था।

जल उठी रूह में फिर शम्मअ सनमख़ाने की
ख़ाके-परवाना में आग आ गई परवाने की
जिससे रातें कभी रौशन थीं वो जुगनू जागा
चश्मे-ख़ूबस्ता में सोया हुआ आंसू जागा
अक्ल की धूप ढली, इश्क के तारे निकले
बर्फ महताब से पिघली तो शरारे निकले

यह सौभाग्य की घड़ी है जब अक्ल की धूप ढल जाती है, और प्रेम की छाया आती है, प्रेम की रात्रि आती है और आकाश में तारे उगते हैं।

इस घड़ी को चूक मत जाना, यह घड़ी कभी-कभी, बामुश्किल आती है, क्योंकि इस जगत में अक्ल के मंदिर और मस्जिद तो बहुत हैं, प्रेम की मधुशालायें बहुत कम हैं। कभी किसी बुद्ध के पास, कभी किसी कृष्ण के पास, और कभी किसी जीसस के पास मधुशाला होती है प्रेम की। वहां आनंद की शराब ढाली जाती है और पीयी जाती है और पिलायी जाती है। फिर तो सदियों तक उनके नाम के पीछे सिद्धांतों की चर्चा होती रहती है। शराब की चर्चा होती है। शराब शब्द दोहराया जाता है फिर। लेकिन न शराब ढाली जाती; न शराब पीयी जाती, न पिलायी जाती। शास्त्रों में शराब की चर्चा है। सत्संग वहां है जहां शराब अभी ढलती हो।

अच्छा हुआ आनंद मनु कि रसलीनता बढ़ रही है, पियो और। जितना पी सको उतना पियो। जी भर के पियो!

सर्द मीना का तसव्वुर, सुर्ख़ पैमाने की याद
ऊद की खुशबू में फिर आई है मैख़ाने की याद
गोशा-ए-दिल में पछाड़ें खा रही है देर से
मस्त झोंकों में जुनूं के रक्स फर्माने की याद
आई है रह-रहके गिरती बिजलियों के रूप में
एक शब पर्दा उठाकर उनके दर आने की याद

परमात्मा ने, परम प्रेमी ने, परम प्रेयसी ने तुम्हारा द्वार खटखटाया है, सुनो। उसने तुम्हारा पर्दा उठाया है, स्वागत करो! उसे भीतर आने दो।

जाने दो सारा ज्ञान, दो कौड़ी का है सारा ज्ञान। क्योंकि असली ज्ञान तो प्रेम में ही पकता है। एक ज्ञान है, जो स्मृति है और एक ज्ञान है जो प्रेम है। स्मृति का ज्ञान किसी मूल्य का नहीं--उधार और बासा। प्रेम से जो ज्ञान जन्मता है वही है नगद, वही है सच्चा क्योंकि वही है तुम्हारा। तुम्हारे भीतर जन्मता है। तुम्हारे भीतर उसका गर्भाधान होता है वह तुमसे ही पैदा होता है।

दूसरा प्रश्नः जहां सिद्ध सरहपा और सिद्ध तिलोपा के नाम सुदूर तिब्बत, चीन और जापान में उजागर नाम हैं, वहां अपने ही जन्म के देश में वे उजागर न हुए--इसका क्या कारण हो सकता है?

यह देश पांडित्य से पीड़ित देश है। इस देश का बड़े से बड़ा दुर्भाग्य यही है कि इस देश की छाती पर पांडित्य का बोझ है। भारी बोझ है, सदियों पुराना बोझ है! इसलिए जब भी कोई सरहपा, कोई तिलोपा, कोई कबीर, कोई गोरख आवाज देता है तो पंडितों के शोरगुल में खो जाती है। और पंडित बड़ी संख्या में हैं, सरहपा तो कोई कभी एक होगा। पंडितों की तो बड़ी जमात है, और जब सरहपा जैसा व्यक्ति कुछ कहता है तो स्वभावतः पंडितों के विपरीत जाती है उसकी बात। जायेगी ही... । पंडितों के पास सिद्धांत हैं, तर्कजाल हैं। और जब सरहपा बोलता है तो सत्य बोलता है। सत्य का तर्क से क्या लेना-देना? सत्य का सिद्धांतों से क्या लेना-देना? सत्य का सूरज निकलता है तो सिद्धांतों की रात टूटने लगती है। सत्य का सूरज निकलता है तो सिद्धांतों के बादल बिखरने लगते हैं। घबड़ाहट फैल जाती है।

और पंडितों के न्यस्त स्वार्थ हैं। वही उनकी रोजी है। वही उनका जीवन है। सरहपा जैसे लोग उनके पैर के नीचे की जमीन खींच लेते हैं। यह बरदाश्त नहीं किया जा सकता। पंडित बड़ा शोरगुल मचाते हैं। सरहपा की आवाज खो जाए शोरगुल में, इसकी पूरी चेष्टा करते हैं।

आनंद मैत्रेय, तुम तो कम-से-कम यह मत पूछो, क्योंकि तुम तो यह रोज यहां होते देख रहे हो। मेरी आवाज को दबा देने की सब तरह से कोशिश की जा रही है, हर कोशिश की जा रही है। मेरी आवाज लोगों तक न पहुंच सके, या पहुंचे तो इतनी विकृत होकर पहुंचे कि उन्हें समझ में ही न आ सके, या वे कुछ का कुछ समझें, इसकी सारी चेष्टा की जा रही है। यह तो यहां घट रहा है। तुम सरहपा की क्यों पूछते हो? यह कोई सैद्धांतिक चिंतन की बात ही नहीं है तुम्हारे लिए; यह तुम्हारे सामने घट रहा है; यह तुम्हारे साथ घट रहा है। मेरी आवाज दूर-दूर के देशों में सुनी जा रही है। तुम जानकर हैरान होओगे, यूनानी भाषा में किताबें अनुवादित हो रही हैं, अंग्रेजी में, जर्मन में, स्पेनिश में, डच में, इटालियन में, फ्रेंच में, डेनिश भाषा में, जापानी में, सारी दुनिया की भाषाओं में किताबें अनुवादित हो रही हैं, लेकिन भारतीय भाषाओं में नहीं--बंगाली में नहीं, तमिल में नहीं, तेलगु में नहीं, पंजाबी में नहीं, उर्दू में नहीं। यूनान में अनुवादित हो रही हैं और जापान में अनुवादित हो रही हैं और फ्रांस में अनुवादित हो रही हैं और हालैंड में अनुवादित हो रही हैं और इंग्लैंड, जर्मनी, इटली, स्पेन, मैक्सिको, ब्राजील, डेनमार्क और अमरीका में अनुवादित हो रही हैं। यह तुम्हें थोड़ा हैरान करनेवाली बात मालूम होती है, मगर होनी नहीं चाहिए। यह तो घट रहा है, फिर घट रहा है। यही बार-बार घटता रहा है। तिलोपा को तिब्बत में लोग जानते हैं, बड़े आदर से जानते हैं। जगत में जो थोड़े-से बुद्धपुरुष हुए हैं, उनमें तिलोपा एक हैं--और बहुत ज्योतिर्मय! और जापान में भी जानते हैं और चीन में भी जानते हैं और कोरिया में भी। सारा एशिया जानता है, सिवाय भारत को छोड़कर।

क्या हुआ? यह कैसा दुर्भाग्य? भारत के सिर पर पांडित्य बहुत चढ़कर बैठ गया है। बड़े शास्त्र और उन शास्त्रों को दोहराने वाले तोते इतने हैं कि उन तोतों के बीच में जब कोई आदमी सीधा-सीधा हृदय से बोलता है तो तोते नाराज हो जाते हैं। क्योंकि तोतों को साफ दिखाई पड़ने लगता है, अगर इस आदमी की आवाज सुनाई पड़ गई लोगों को तो हमारी आवाज का क्या होगा? हम तोतों का क्या होगा? सारे पंडित इकट्ठे हो जाते हैं।

अब तुम चकित होओगे कि मेरे खिलाफ हिंदू, मेरे खिलाफ मुसलमान, मेरे खिलाफ जैन, मेरे खिलाफ बौद्ध--जो आपस में सब एक-दूसरे के दुश्मन हैं, लेकिन मेरे विरोध में सब इकट्ठे हो जाते हैं। मेरे खिलाफ अगर

जनसंघी हो, चलो समझ लो कि ठीक है; लेकिन कल मैंने देखा कि कम्युनिस्ट पार्टी ने प्रस्ताव किया है कि मुझे भारत में जमीन या आश्रम बनाने का कोई सहारा सरकार को नहीं देना चाहिए, कम्युनिस्ट पार्टी ने। जनसंघी और कम्युनिस्ट पार्टी इस मामले में सहमत हो जायेंगे। बड़े आश्चर्य की बात मालूम पड़ती है, मगर नहीं होना चाहिए आश्चर्य की, क्योंकि यही सदा होता रहा है। यह आवाज ऐसी है!

अंधों के जगत में प्रकाश की बात करनी हो तो बड़ी खतरनाक है; वे तुम्हारी आंख फोड़ देंगे। क्योंकि उनको अपनी आंखें सुधार करना तो बहुत लंबा और महंगा काम मालूम पड़ता है, लेकिन तुम्हारी आंखें फोड़ देना ज्यादा आसान मालूम पड़ता है।

कहां यह देहर कुहना और कहां जौके-जवां मेरा

कोई दुनिया नई होती, कोई आलम नया होता

यह बड़ी पुरानी सड़ी-सड़ाई दुनिया है। कहां यह देहर कोहना और कहां जौके-जवां मेरा। और जब भी सत्य बोलता है तो कहां सत्य की नई-नई ताजी जबान, जैसे सुबह की ओस, कि सुबह की पहली किरण और कहां यह सड़ी-गली दुनिया! इसमें मेल नहीं बैठ पाता। कोई दुनिया नई होती, कोई आलम नया होता! कोई नई दुनिया हो, कोई नया आलम हो, तो सत्य की नई आवाज पहचानी जा सके, पकड़ी जा सके।

मगर ऐसा तो अब तक नहीं हो सका और संदिग्ध है कि कभी हो सकेगा। क्योंकि दुनिया की आदत सड़े होने की हो गई है। जितना पुराना सत्य हो उतना ज्यादा लोग अंगीकार करते हैं, जबकि सत्य नितनूतन होता है। लोग झगड़ा करते हैं कि किसकी किताब ज्यादा पुरानी है। हिंदू कहते हैं हमारे वेद सबसे ज्यादा पुराने। इतिहासज्ञ मानते हैं कि तीन हजार साल या ज्यादा से ज्यादा पांच हजार साल से ज्यादा पुराने नहीं हैं, लेकिन हिंदू इससे राजी नहीं हैं। बाल गंगाधर तिलक ने लिखा है कि कम से कम नब्बे हजार वर्ष पुराने हैं, कम से कम! वैज्ञानिक इतिहासज्ञ कहते हैं कि ज्यादा से ज्यादा तीन हजार, बहुत खींचो तो पांच हजार। लेकिन लोकमान्य तिलक कहते हैं कि नब्बे हजार कम से कम। क्यों, इतना आग्रह क्या है पुराना खींचने का? धारणा यह है कि जितना पुराना सत्य होगा उतना ही बहुमूल्य, क्योंकि इतने दिन से लोग मान रहे हैं तो कुछ होगी ही बात तभी मान रहे हैं।

लेकिन जैन कहते हैं कि ऋग्वेद से भी ज्यादा पुराने हम हैं, क्योंकि ऋग्वेद में हमारे पहले तीर्थंकर का नाम उल्लेख है। बात तो पते की कहते हैं। क्योंकि जब ऋग्वेद में हमारे पहले तीर्थंकर का नाम उल्लेख है तो हमारा पहला तीर्थंकर ऋग्वेद से पुराना होना ही चाहिए। और इतने सम्मान से नाम उल्लेख है कि ऋग्वेद के समसामयिक होते तो इतना सम्मान नहीं मिल सकता था। समसामयिक को तो हम सम्मान देना जानते नहीं, सिर्फ अपमान देना जानते हैं। तो बात में वजन है। जरूर पुराने हो चुके होंगे जब ऋग्वेद लिखा गया। इतने पुराने हो चुके होंगे कि लोग आदर देने लगे होंगे। लोग आदर ही पुराने को देते हैं, ख्याल रखना। तो बात तो ठीक है। तब तो फिर जैन धर्म हिंदू से भी पुराना धर्म है।

मगर यही दावे औरों के भी हैं। जितना पुराना हो सके उतना पुराना करो। क्यों? क्योंकि पुराने की साख है। जैसे दुकानों की साख होती है न, पुरानी दुकान, साख भी बिकती है बाजार में! सिर्फ साख के लाखों रुपये मिल सकते हैं, सिर्फ पुराने नाम के, क्योंकि यह दुकान पुराने दिन से चल रही है इतने दिन से चली है तो इस बात का प्रमाण है कि कुछ बल होगा तभी चली है।

मगर असत्य सत्य से बहुत ज्यादा पुराने हैं। सच तो यह है असत्य सदा ही पुराने होते हैं। असत्य नए हो ही नहीं सकते। नया तो केवल सत्य हो सकता है, क्योंकि सत्य ही जीवंत होता है। असत्य मुर्दा होते हैं।

परमात्मा रोज नया है। परमात्मा न पांच हजार साल पुराना है न पचास हजार साल पुराना है। परमात्मा प्रतिपल नया है, नितनूतन है। यही तो उसकी शाश्वतता है कि वह कभी पुराना नहीं पड़ता। उस पर कभी धूल नहीं जमती। उसका दर्पण सदा ही दमदमाता रहता है बिना धूल के। परमात्मा की ज्योति के पास कभी धुआं इकट्ठा नहीं होता सदियों का। उसकी ज्योति निर्धूम है।

तिलोपा बोले होंगे, ऐसे जैसे मैं तुमसे बोल रहा हूं। यही हुआ होगा जो मेरे साथ हो रहा है। कुछ आश्चर्य न होगा कि मेरे जाने के बाद भारत में लोग मुझे भूल जाएं और भारत के बाहर लोग याद रखें। कुछ आश्चर्य न होगा। यहां के मंदिर-मस्जिद सत्य को कभी भी स्वीकार न कर सकेंगे। और मंदिर-मस्जिद के सामने ही तुम सत्य की मधुशाला खोलो तो अड़चन तो होगी ही।

खुदा के हाथ है बिकना न बिकना मै का ऐ साकी!

बराबर मस्जिदे-जामअ के हमने तो दुकां रख दी

अब जामा मस्जिद के सामने दुकान रखकर बैठोगे शराब की तो झंझट तो आने ही वाली है। और ये सब शराब के दुकानदार हैं--तिलोपा, सरहपा, कबीर, गोरख। सभी जानने वाले तुम्हारे लिए मस्त होने का एक संदेश लेकर आए हैं। मगर यहां सब जानने वाले हैं। यहां सभी को भ्रांति है। रास्ते के किनारे बैठा भिखमंगा भी जानता है कि वेद में क्या है, उपनिषद में क्या है! कुछ भी न जानता हो, लेकिन दो-चार शब्द तो उसे भी याद हैं; वह भी कह सकता हैः अहं ब्रह्मास्मि! तत्वमसि! ऐसे-ऐसे वचन तो उसे भी याद हैं।

कल मैंने एक घटना पढ़ी कि एक गांव के चौपाल में चर्चा चलती थी। रामायण की बात उठ गई, तो गांव का पंडित बोलाः "अरे बा में का है। एक थो राम, एक रावण। बा ने बा की तिरिया हर लई। बा ने बा को राजान्ना। तुलसी ने रचदओ पोथन्ना!" लीजिये चार पंक्तियों में और रामायण समाप्त! सब तो कह दिया अब, बचा और क्या कहने को!

इस देश के पास पिटे-पिटाये शब्द इकट्ठे हो गए हैं, थोथे! और इस देश को यह भ्रांति हो गई है कि हम धार्मिक हैं, पुण्यभूमि है!

और जब भी सत्य आएगा तब इस देश की जमी हुई आधारशिलाएं हिलने लगेंगी। जब भी सत्य आएगा तब तुम्हारे स्तंभ कंपने लगेंगे। तुम अपना मकान बचाओगे कि सत्य को सम्हालोगे?

चीन और तिब्बत में तिलोपा और सरहपा को सम्मान मिल सका, क्योंकि चीन और तिब्बत में पांडित्य का ऐसा बोझ कभी नहीं रहा। सारा एशिया बुद्ध को स्वीकार कर सका, सिर्फ भारत को छोड़कर, क्योंकि बुद्ध की बात ताजी थी, नई थी। और एशिया के विराट चित्त में कहीं कोई बोझ नहीं था, कोई भारी बोझ नहीं था। सरलता से लोग बुद्ध को समझ सके। यहां समझना मुश्किल हो गया। यहां से तो हमने जड़ें ही काट दीं बुद्ध की।

और सरहपा-तिलोपा बुद्ध की परंपरा में ही आते हैं। ये भी बुद्धपुरुष हैं--उसी धारा के, उसी धारा में उठी लहरें हैं! मौजूद जब थे तब तो कुछ प्रेम करने वाले उनके आस-पास इकट्ठे जरूर हो गये थे। मौजूद जब थे, जब उनकी ज्योति जलती थी, तो लोग लाख इनकार करते रहें तो भी ज्योति के पास कुछ परवाने तो आ ही जायेंगे, कुछ प्राण तो आंदोलित हो ही जायेंगे। लेकिन जैसे ही तिलोपा विदा होते हैं देह से, वैसे ही हमारा गहन अंधकार वापिस घिर जाता है। इस देश का बड़े से बड़ा दुर्भाग्य है, कि यह देश नया होने की कला भूल गया। और इस बात का हम गौरव करते हैं। हम निरंतर इस बात को दोहराते हैं, हमारे राजनेता इस बात को दोहराते हैं कि आज यूनान कहां है, मिस्र कहां है, बेबीलोन कहां है, असीरिया कहां है? खो गईं सारी सभ्यतायें, लेकिन हम! हम अभी भी हैं!

न तो मिस्र खो गया है, न यूनान खो गया है। कोई खो नहीं गया, लेकिन हां, वे रोज नए होते चले गए हैं। उन्होंने नए-नए आवरण ले लिए, नए वस्त्र अंगीकार कर लिये। हम अपने पुराने ही वस्त्रों को पकड़े बैठे हैं। सड़ गये हैं पुराने वस्त्र वे हमें भी सड़ाये डाल रहे हैं। हम दीन-हीन हो गए हैं। मगर हम अपने वस्त्रों को पकड़कर बैठे हैं। हम छोड़ नहीं सकते। हमारे बाप-दादे भी इन्हीं को पहनते थे, उनके बाप-दादे भी इन्हीं को पहनते थे।

हम अतीतोन्मुख हैं। हम पीछे की तरफ नजर लगाए हुए हैं। जिंदगी चलती है आगे की तरफ और हमारी आंखें पीछे की तरफ। हम ऐसे ड्राइवर हैं, जिसकी गाड़ी तो आगे की तरफ जा रही है लेकिन जो देख पीछे की तरफ रहा है। तो अगर हम रोज गड्ढों में गिरते हैं और रोज दुर्घटना हो जाती है तो आश्चर्य नहीं है। देखना भी आगे होगा।

भविष्य की तरफ देखो। पीछे तो उड़ती धूल है अब, जहां से तुम गुजर चुके। उसी धूल का गुणगान मत करते रहो।

जब भी कोई सदगुरु जागेगा, जीयेगा, तो वह तुम्हारी आंखों को भविष्य की तरफ मोड़ना चाहता है। और तुम्हारी गर्दन को लकवा लग गया है; वह पीछे देखने की आदी हो गई है, वह आगे देख ही नहीं सकती। हमारे सब स्वर्णयुग अतीत में थे, हो चुके। रामराज्य हो चुका, अब क्या होना है। जो अच्छा घटना था घट चुका, अब क्या घटना है! आगे तो बस कलियुग, और गहन कलियुग है!

यह उदास-निराश सभ्यता है। इसके प्राणों में अब कोई भी जीने की आतुरता नहीं रह गई। यह मरणधर्मी सभ्यता है। इसलिए जब भी कोई जीवंत व्यक्ति पैदा होता है, तुमसे उसके तालमेल नहीं बैठ पाते। हां, कुछ हिम्मतवर लोग उसके पास इकट्ठे हो जाते हैं, मगर कुछ इस बड़ी भीड़ में। जैसे ही दीया बुझ जाएगा, वे थोड़े-से लोग जैसे सागर में शक्कर खो गई, ऐसे खो जायेंगे।

वे ही समझ सकते हैं सरहपा-तिलोपा को, जो समझने के लिए ही तत्पर हैं; जो सारे पक्षपात छोड़ने को राजी हैं। प्रेमी समझ सकते हैं, ज्ञानी नहीं समझ सकते। पंडित नहीं समझ सकते। सत्य के खोजी समझ सकते हैं। शास्त्रों से बंधे लोग नहीं समझ सकते। जिनकी अभीप्सा मुक्त है और जिनकी धारणायें मुक्त हैं और जो कहते हैं अभी हमें पता नहीं है, हम जानना चाहते हैं--वे ही समझ सकते हैं। और तब जरूर तिलोपा जैसे व्यक्ति की अंगुलियां तुम्हारे हृदय की वीणा को छेड़ दे सकती हैं। मगर तुम्हें आना पड़ेगा अपनी वीणा को लेकर उनके पास।

मुसकान, पुष्प, चुंबन, सुगंध से भरो प्रमन
सुरभित, प्रसन्न; मादक निशीथ का मंद पवन।
मन की तरंग पर दीप धरो,
रस का प्रकाश फैलाओ री!
आओ, बरसाओ अलस-दृष्टि से
अंग-अंग पर अमृत, चमेली-जुही
कुसुम-रज, केसर, चंद्रविभा, चंदन।

मैं विरह-विकल,
मैं श्रांत, क्लांत,
मैं मूर्च्छित हरियाली, मुझको दो वारिधार।

मैं बजने को हूं विकल, दसों अंगुलियों से

मोहिनी! झंकृत करो, झंकृत करो तार।

जब कोई प्राणों से ऐसा पुकारता है कि हे प्रिय, कि हे प्रीतम! झंकृत करो, झंकृत करो तार! मैं बजने को हूं विकल, दसों अंगुलियों से! झंकृत करो, झंकृत करो तार! जब कोई इतनी प्रार्थना, इतने समर्पण से किसी जाग्रत पुरुष के पास आता है तो वीणा बजती है। लेकिन जो अपने अहंकार से भरे हैं, जो सोचते हैं कि वे पहले से ही जानते हैं; वे तो आयें क्यों? प्रयोजन क्या आने का? उनका अहंकार उन्हें कैसे आने देगा?

इस देश का सौभाग्य था कि यहां अनंत बुद्ध पैदा हुए और एक दूसरी दृष्टि से देखो तो इस देश का दुर्भाग्य है। काश, वे बुद्धपुरुष कहीं और पैदा हुए होते तो शायद हमने उन्हें थोड़ा सम्मान भी दिया होता! क्योंकि जितना जो निकट होता है उससे हम उतने ही दूर हो जाते हैं। जितना जो दूर होता है उसको जानने की हमारी आतुरता भी उतनी ही सघन होती है।

इस संबंध में ही सुमित्रा ने पूछा हैः ओशो आप कहते हैं कि बुद्ध जहां रहते हैं उनके आस-पास के सूखे हुए वृक्ष भी हरे-भरे हो जाते हैं, मगर ये पूनावासी क्यों सूखते जा रहे हैं? जब हजारों मील दूर काठमांडू वाले सिर्फ आपकी आवाज सुनकर अपने को रोक नहीं पाते हैं, वे आनंद से पूछते हैं कि क्या ओशो यहां नहीं आयेंगे? मैं तो सिर्फ इतना ही कह पाती हूं कि ओशो यहां हैं। यद्यपि इतने से ही उनका मन तो नहीं भरता। आशीष ओशो ध्यान केंद्र में रोज नए-नए पत्ते ही नहीं, फूल भी नए-नए खिल रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? इस पर प्रकाश देने की कृपा करें।

सुमित्रा! यही होता रहा है, यही सदा का नियम है। पूना का दुर्भाग्य कि मैं यहां हूं। जब तक मैं यहां हूं तब तक पूना के लोगों से मेरा संबंध न जुड़ सकेगा। मैं यहां से हटूं तो थोड़ा संबंध जुड़े। संकोच है आने में। इस मधुशाला के द्वार पर प्रवेश करने की भी हिम्मत चाहिए। ... लोग देख लेंगे तो क्या कहेंगे कि आप और वहां! भय है कि फिर लौटकर क्या उत्तर देंगे बाजार में भीड़ को, घर में परिवार को? पत्नी आये तो डरती आती है कि लौटकर पति को उत्तर क्या देगी? पति आये तो डरता आता है कि लौटकर पत्नी को उत्तर क्या देगा, कि आप और वहां!

फिर, पूना महाराष्ट्र की काशी है; यहां पंडित ही पंडित हैं! एक तो पंडित और फिर महाराष्ट्रियन... एक तो करेला और नीम चढ़ा! तो और अड़चन हो जाती है। ... तो बड़ी अकड़ है। अकड़ को न छोड़ें तो यहां आने का उपाय नहीं। अकड़ छोड़ सकते नहीं।

और कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि अकड़ भी न हो... सभी पंडित हैं भी नहीं... अकड़ भी न हो, तो भी जो पास ही उपलब्ध है, तो आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, कभी हो आयेंगे, जल्दी क्या है!

लंदन में एक सर्वे किया गया। कि लंदन का जो टावर है, उसे देखने दुनिया-भर से लोग आते हैं; लंदन में कितने लोग हैं जिन्होंने उसे नहीं देखा? दस लाख आदमियों ने लंदन में उसे नहीं देखा था। लंदन का टावर, जिसे देखने सारी दुनिया से लोग आते, दस लाख आदमी लंदन में ही रहते हैं जिन्होंने नहीं देखा! जो मनोवैज्ञानिक यह सर्वे कर रहे थे, उन्होंने उन लोगों से पूछा कि क्यों? तो लोगों ने कहा कि कभी भी देख लेंगे, जल्दी क्या है?

दूसरे महायुद्ध में जब हिटलर लंदन पर बम फेंकने की आयोजना करने लगा और बम गिरने लगे और यह खबर फैल गई कि उसकी नजर लंदन के टावर को गिरा देने की है, तो हजारों लोग जो जिंदगी-भर से लंदन में रहे थे और टावर नहीं देखा था, वे टावर देखने पहुंच गए। कतारें लग गईं। पूछा टावर के अधिकारियों ने कि आज अचानक इतने लोग क्यों? तो उन्होंने कहा, हमने खबर सुनी है कि हिटलर बम गिराने वाला है; गिर जाये बम, उसके पहले देख लेना जरूरी है। हम तो यहीं रहते हैं तो कभी भी देख लेते, यह ख्याल था; मगर अब जब बम ही गिरने वाला है, तो अब देख लेना उचित है।

मैं जबलपुर वर्षों रहा। जबलपुर में इस जगत का, इस पृथ्वी का एक सुंदरतम स्थल है--भेड़ाघाट। मेरे हिसाब में शायद पृथ्वी पर इतनी सुंदर कोई दूसरी जगह नहीं है। दो मील तक नर्मदा संगमरमर की पहाड़ियों के बीच से बहती है। दोनों तरफ संगमरमर की पहाड़ियां हैं। एक तो संगमरमर की पहाड़ी... हजारों ताजमहल का सौंदर्य इकट्ठा! फिर बीच से नर्मदा का बहाव। बड़ा अपूर्व जगत है! मैं अपने एक वृद्ध प्रोफेसर को, जिन्होंने मुझे पढ़ाया था, दिखाने ले गया। वे आनंद से रोने लगे। बूढ़े हो गए थे। अब तो जा भी चुके दुनिया से। जब मैं उन्हें नाव में बिठाकर अंदर ले गया तो वह कहने लगे कि यह जो मैं देख रहा हूं, यह सच में है? क्योंकि मुझे लगता है सपना। नाव को, उन्होंने कहा कि किनारे लगाओ मांझी, मैं इन संगमरमर की पहाड़ियों को छूकर देखना चाहता हूं कि ये सच में हैं? पूर्णिमा की रात में इतना ही जादू हो जाता है।

भरोसा नहीं आता कि इस पृथ्वी पर इतना सौंदर्य हो सकता है! लेकिन जबलपुर में ऐसे हजारों लोग हैं, जो तेरह मील दूर भेड़ाघाट देखने नहीं गये। उनके घरों में मेहमान आते हैं जो भेड़ाघाट देखने के लिए आते हैं। मगर उनको ख्याल नहीं आया कि देखने जाना है। इतने पास है, कभी भी देख लेंगे। जो पास होता है, उसे कभी भी देख लेंगे।

तुम्हें अगर भरोसा न हो तो तुम चैतन्य और चेतना से पूछना। बंबई मैं वर्षों रहा। जिस मकान में मैं रहा, वुडलैंड में, उसी में चेतना और चैतन्य रहते थे, उसी मकान में रहते थे, मगर मुझे मिलने कभी आए नहीं। एक ही मकान में थे। सोचा होगाः कभी भी मिल लेंगे। और फिर डर भी रहा होगा कि वुडलैंड के और दूसरे रहने वाले लोग, पता चल जाए उन्हें कि उस दीवाने के पास ये भी जाने लगे, तो झंझट होगी। फिर जब मैं बंबई छोड़ दिया तब वे यहां आए और तब ऐसे डूबे कि फिर लौटे ही नहीं बंबई। फिर संन्यस्त होकर यहीं रह गए। फिर भूल ही गए बंबई, छोड़ दिया सब धंधा, छोड़ दिया सब काम-धाम। इतनी हिम्मत दिखाई, पूना में आ गया तो। और बंबई में थे तो इतनी भी हिम्मत नहीं थी कि मुझसे मिल लेते। ऐसा मनुष्य का मन है।

जबलपुर जो मुझे कभी मिलने नहीं आए, वे अब यहां मिलने आते हैं। अब यहां आकर वे मुझे पत्र लिखते हैं कि हम जबलपुर से हैं, इसलिए हमसे तो आपको मिलना ही पड़ेगा। मैं उनको पूछता हूं, जबलपुर में कहां थे? मैं जबलपुर कोई बीस साल था; जबलपुर तुम कभी मिलने नहीं आए, न मैंने तुम्हें कभी देखा, न तुम्हें मैं जानता हूं। आज तुम यहां दावेदार होकर आते हो! वे पत्र लिखते हैं कि हम तो जबलपुर से हैं, इसलिए हमें तो विशेष मिलने का मौका मिलना ही चाहिए।

ऐसा ही अदभुत जगत है यह! ... तो सुमित्रा, काठमांडू के लोग सौभाग्यशाली हैं। इतने दूर हैं कि उनके मन में आतुरता आती होगी, प्रेम जगता होगा, यहां दौड़ आने का भाव होता होगा।

सुमित्रा दौड़ी आती है। वृद्ध है, उम्र हो गई, मगर भागी आती है। सब तकलीफें झेलकर काठमांडू से यहां आना, इसलिए उसको स्वाभाविक सवाल उठा है कि आप कहते हैं कि जहां बुद्ध होते हैं वहां सूखे वृक्ष भी हरे-भरे हो जाते हैं।

मैंने ठीक ही कहा है; इन वृक्षों के संबंध में कहा था, आदमियों के संबंध में नहीं कहा था। वृक्ष तो तू देख कितने हरे-भरे हैं! पूना के आदमियों के संबंध में मैंने कुछ नहीं कहा है। और न बुद्ध के ही जीवन में कहानी है। ऐसा तो है कि जब बुद्ध गुजरते थे कहीं से तो सूखे वृक्ष हरे हो जाते; मगर बुद्धू ज्ञानी हो जाते थे, ऐसा कहीं नहीं है; कि मूढ़ों को कुछ बोध आ जाता था, ऐसा किसी कथा में उल्लेख नहीं है। असमय में फूल खिल जाते थे वृक्षों में, यह तो है; लेकिन असमय में किन्हीं के भीतर ध्यान का कमल खिल जाता था, ऐसा नहीं है।

वृक्ष सीधे-सरल हैं, भोले-भाले हैं; आदमी जैसे जटिल नहीं हैं। वृक्ष न तो ब्राह्मण हैं न पंडित हैं, न चतुर्वेदी न त्रिवेदी न द्विवेदी।

एक मित्र मुझे पत्र लिखते थे। कुछ भूल हो गई। मैं समझता था वे द्विवेदी हैं, तो उत्तर में मैं उनको द्विवेदी लिख देता था। वे थे त्रिवेदी। आखिर उन्होंने एक बार मुझे लिखा कि मुझे बार-बार द्विवेदी लिखते हैं, इससे मुझे दुख होता है; मैं त्रिवेदी हूं। तो मैं उन्हें चतुर्वेदी लिखने लगा। मैंने कहा कि पुराना सब हिसाब पूरा हो जाए। चलो तुम चारों वेद के जाननेवाले सही।

वृक्ष इतने मूढ़ नहीं हैं; कौन द्विवेदी, कौन त्रिवेदी, कौन चतुर्वेदी! न हिंदू हैं वृक्ष, न मुसलमान, न ईसाई। न उन्हें कुरान से कुछ लेना, न धम्मपद से कुछ लेना। वृक्ष तो सीधे-सादे हैं; भोले-भाले हैं। परमात्मा में हैं। इसलिए वृक्ष हरे हो गए होंगे और उनमें फूल भी लग गए होंगे, इस पर भरोसा आता है। यह कहानी कितनी ही असंभव मालूम पड़े, संभव हो सकती है, लेकिन अगर एक भी ऐसा उल्लेख होता कि बुद्ध निकले और एक बुद्धू बैठा था और वह एकदम से ज्ञानी हो गया, तो मैं न मानता। यह तो मैं मान सकता हूं कि वृक्ष में फूल आ गए होंगे; हो सकता है। क्योंकि वृक्षों को मैं भी जानता हूं और आदमियों को भी मैं जानता हूं। आदमियों ने तो पत्थर मारे बुद्ध को। यह हो सकता है कि वृक्ष का फल टपकने-टपकने को हो और वृक्ष ने रोक लिया हो कि नीचे बुद्ध बैठे ध्यान कर रहे हैं, कहीं चोट न लग जाए। यह हो सकता है। मगर आदमियों ने पत्थर मारे। आदमियों ने चट्टानें सरकाई पहाड़ों से कि बुद्ध जहां नीचे ध्यान कर रहे हैं, चट्टान की लपेट में आ जायें। कहते हैं, चट्टान ऐसा बचाकर निकल गई। आते-आते बचाकर निकल गई।

पागल हाथी छोड़ा बुद्ध के ऊपर, आदमियों ने! और कहते हैं, जब हाथी बुद्ध के पास आया तो सिर झुकाकर खड़ा हो गया। पागल हाथी में भी इतना बोध है, मगर छोड़ने वालों की क्या कहो! और जिसने छोड़ा था वह कोई दूर का आदमी न था, बुद्ध का चचेरा भाई था, देवदत्त। चचेरे भाई को सर्वाधिक पीड़ा थी, क्योंकि दोनों एक साथ बड़े हुए, समान उम्र के थे। फिर बुद्ध को इतनी प्रतिभा मिल गई, बुद्ध को ऐसी महिमा, बुद्ध ऐसे ज्योतिर्मय! और देवदत्त वैसा का वैसा रहा। ईर्ष्या जगी। बुद्ध के परिवार के लोगों में ईर्ष्या जगी, गांवों के लोगों में ईर्ष्या जगी, स्वजन प्रियजनों में ईर्ष्या जगी। जो निकट थे उनमें ईर्ष्या जगी। जो दूर थे उनमें ईर्ष्या नहीं जगी। जो दूर थे वे तो पास आना चाहे। जो पास थे वे दूर होने लगे। ऐसे मनुष्य के जीवन की व्यवस्था है।

फिर मैं जो सिखा रहा हूं, वह कुछ ऐसा है... कि कसूर मेरा है। कसूर सरहपा और तिलोपा, कसूर बुद्ध और महावीर का है। लोगों का क्या कसूर है? लोग तो जैसे हैं वैसे हैं। जो उन्हें बदलना चाहते हैं, कसूर होगा तो उन्हीं का होगा।

मैं जो बातें कह रहा हूं, वे अंगारे हैं। जो दग्ध होना चाहते हैं, केवल वे ही अपनी झोली फैलाकर उन अंगारों को ले सकते हैं। जो जल जाने को तैयार हैं, सिर्फ परवानों के लिए ये बातें हैं, सबके लिए नहीं।

इसलिए ऐसा भी मत सोचो कि पूना में कोई भी नहीं आ रहा है। परवाने तो आ गए हैं, परवाने यहां मौजूद हैं। परवाने तो थोड़े ही होंगे।

इस बात को भी ख्याल में रख लेना, काठमांडू में दस पच्चीस लोग इकट्ठे होते हैं, नाचते हैं, गीत गाते हैं, तो तुम्हें लगता है काठमांडू में इतने लोग उत्सुक हो रहे हैं! दस-बीस-पच्चीस लोग पूना में भी उत्सुक हैं। पूरा पूना उत्सुक नहीं है, पूरा काठमांडू भी उत्सुक नहीं है। इसलिए यह अनुपात भी ख्याल में रखना। फिर मैं काठमांडू में मौजूद नहीं हूं, इसलिए जो मुझमें उत्सुक हैं वे मुझमें उत्सुक हैं, शेष मेरे दुश्मन नहीं हैं। जहां मैं मौजूद होऊंगा वहां तो बंट ही जाना पड़ेगा लोगों को; या तो मित्र या शत्रु, बीच में नहीं रह सकते। बीच में रहने का कोई उपाय नहीं है। ये मेरे जैसे आदमियों का भाग्य ही नहीं है कि कोई आदमी बीच में रह सके; उसे या तो मित्र हो जाना पड़ेगा या शत्रु हो जाना पड़ेगा; या तो मेरे प्रेम में पड़े या मेरे प्रति घृणा से भर जाए; मुझसे संबंध तो जोड़ना ही पड़ेगा।

अब इसमें फर्क पड़ जाता है। काठमांडू में या रंगून में या टोकियो में जो मुझे प्रेम करते हैं, वे मुझे प्रेम करते हैं, शेष को मुझसे कोई संबंध नहीं है, कुछ लेना-देना नहीं है। यहां पूना में जहां मैं मौजूद हूं वहां एक भी व्यक्ति तटस्थ नहीं रह सकता; या तो प्रेम या घृणा, कोई न कोई नाता मुझसे बनाना ही पड़ेगा। मैं इतना मौजूद हूं कि कुछ न कुछ नाता बनाना ही पड़ेगा। यहां कोई व्यक्ति तुम्हें पूना में ऐसा नहीं मिलेगा जो कहे हमें कुछ लेना-देना नहीं, न हम पक्ष में हैं न हम विपक्ष में। ऐसा आदमी नहीं मिलेगा। यह स्वाभाविक है।

फिर, जो मैं कह रहा हूं, वह बात ही आग की है।

मेरा कुफ्रे-मुहब्बत है फरो.गे-जाद-ए-ईमां।

वोह शमऐ-दैर हूं मैं रोशनी जिसकी हरम तक है।।

मेरा कुफ्रे-मुहब्बत है। मैं तो प्रेम का धर्म सिखा रहा हूं। मैं तो कुछ और ही धर्म सिखा रहा हूं। जिसको कि तथाकथित धार्मिक लोग कुफ्र कहेंगे, मुझे तो काफिर कहेंगे। क्योंकि मैं परमात्मा नहीं सिखा रहा हूं, प्रेम सिखा रहा हूं। क्योंकि मैं जानता हूं जिसने प्रेम सीख लिया उसे परमात्मा मिल ही जाता है, परमात्मा की बात ही उठानी व्यर्थ है। और परमात्मा की बातों में जो उलझ गया उसके जीवन में कभी प्रेम ही पैदा नहीं हो पाता, तो परमात्मा कैसे मिलेगा?

मेरा कुफ्रे-मुहब्बत है फरोगे-जाद-ए-ईमां। और जो मैं सिखा रहा हूं, वह न तो हिंदू का है न मुसलमान का है न ईसाई का है; वह सारे धर्मों की सीमाओं के पार है। सारे धर्मों की जो सार-वस्तु है वह मैं कह रहा हूं। और सार को तो कितने लोग पहचानते हैं? असार से परिचय है। हिंदू सोचता है जनेऊ पहन लिया तो वह हिंदू हो गया है। जनेऊ से क्या हिंदू का लेना-देना है? कि चोटी बढ़ा ली तो हिंदू हो गया। चोटी से क्या हिंदू का लेना-देना है? कि मुसलमान सोचता है कि खतना हो गया तो मुसलमान हो गया। खतने से क्या मुसलमान का लेना-देना है?

क्षुद्र और असार बातों को लोग समझ लेते हैं धर्म। इसलिए जब तुम कभी सार की बात करो तो उनकी निन्यानबे प्रतिशत बातों की तो बात होती ही नहीं। वे निन्यानबे प्रतिशत बातें उनके जीवन में बड़ी महत्वपूर्ण हो गई हैं। तो जब भी कभी धर्म की कोई बात कही जाएगी, वह न तो हिंदू होगी, न मुसलमान, न ईसाई। सभी नाराज हो जायेंगे।

वोह शमऐ-दैर हूं मैं रोशनी जिसकी हरम तक है। मैं मंदिर का ऐसा दीया हूं जिसकी रोशनी मस्जिद तक पड़ रही है, मस्जिद तक जा रही है। वोह शमऐ-दैर हूं मैं रोशनी जिसकी हरम तक है। जिनको दिखाई पड़ेगा, वे तो चकित हो जायेंगे कि मुझमें मंदिर और मस्जिद एक हो गये हैं, कि मैं दीया तो मंदिर का हूं लेकिन मेरी

रोशनी मस्जिद पर पड़ रही है। लेकिन जो लोग नहीं समझ पायेंगे... और कम ही लोग समझ पायेंगे। नासमझ ज्यादा हैं, उनकी भीड़ है। वे मेरी प्रेम की बातें और मेरी प्रेम की उपासना से बड़े परेशान होंगे।

परिस्तारे-मुहब्बत की मुहब्बत ही शरीअत है।

यह जो प्रेम की उपासना है; इसके लिए कुछ और चाहिए नहीं; इसकी कोई और शैली नहीं होती; इसका कोई और क्रियाकांड नहीं होता।

परिस्तारे-मुहब्बत की मुहब्बत ही शरीअत है।

किसी को याद करके आह कर लेना इबादत है।।

मैं तो छोटी-सी बात कर रहा हूं--सूत्र की बात--आधारभूत, बीज की बात। परिस्तारे-मुहब्बत की मुहब्बत ही शरीअत है। बस मुहब्बत ही उसकी शैली है। मुहब्बत ही नियम है, मुहब्बत ही अनुशासन है। किसी को याद करके आह कर लेना इबादत है। बस काफी है, तुम्हारी आंख से दो आंसू टपक गए प्रेम के, कि तुम्हारी आंखें उठीं आकाश की तरफ आनंदमग्न, कि तुम नाच लिए क्षण भर को, कि तुम डूब गए इस विराट अस्तित्व के सौंदर्य में--बात हो गई। न पढ़ी कुरान, न पढ़े वेद के मंत्र--और बात हो गई! बिना बात किए बात हो गई। इसे कितने लोग समझ पायेंगे? थोड़े ही लोग समझ पायेंगे। और जो समझ पायेंगे उन्हें बड़ी वेदना से गुजरना होगा, क्योंकि प्रेम असह्य वेदना में ले जाता है।

प्रेम अग्नि है। जैसे सोना तपाया जाता है आग में, सुमित्रा ऐसे ही प्रेम की आग में तपना होता है।

वह तो सोने को हम आग में डाल देते हैं। अगर सोने को खुद ही आग में गिरने की स्वेच्छा से चुनाव की सुविधा हो तो कोई सोना आग में न गिरे, भाग ही खड़ा हो कि हमें नहीं पड़ना आग में। उसे क्या पता कि आग में पड़ने से ही परिष्कार है!

दो, निरंतर टीस दो, छोड़ो न मुझको,
मांस में यों ही शलाकाएं चुभाओ,
देह को यों ही रहो धुनती, तपाती, ऐंठती
मेरी मनोरम वेदने!

हर टीस, हर ऐंठन नया कुछ स्वाद लाती है;
तोड़ कर पपड़ी हृदय में ताजगी भरती,
और आत्मा को चुभन देकर जगाती है।

तुम्हारे श्याम पंखों की कड़क-सी फड़फड़ाहट पर
उमंगों की उड़ानें और भी ऊपर पहुंचती हैं;
व्यथा से चीखता तन, किन्तु आत्मा गीत है गाती,
जलाती आग जो तुम वह
किसी खरतर अनल का ताप पीकर शांत हो जाती।

दिवस निस्तेज थे जो
अब नयी कुछ रौशनी उनमें दमकती है,

भुवन जो शुष्क था उसमें, न जाने,
विभा यह किस अलभ सौंदर्य की क्षण-क्षण चमकती है
सभी कुछ दिव्य है, नूतन प्रखर है
चतुर्दिक प्रेरणा निर्माण की लहरा रही है;
चुभन है, टीस है, अथवा मुझे तंत्री बना कर,
रगों की तांत पर कोई परी कुछ गीत गा रही है।

वेदना को जो समझेंगे और वेदना में से जो गुजरेंगे वे हैरान हो जायेंगे। वेदना निखारती है, मांजती है। और प्रेम करोगे तो वेदना में पड़ना ही पड़ेगा। प्रेम सस्ता सौदा नहीं है। और लोगों ने धर्म को बहुत सस्ता बना रखा है। प्रेम महंगा सौदा है; प्राणों से कीमत चुकानी होती है। जो चुका सकते हैं; वे ही मेरे पास आयेंगे।

शमा जल गई है, परवानों को निमंत्रण दे दिया गया है; अब जो परवाने होंगे, आयेंगे। तुम औरों की चिंता भी मत करो सुमित्रा। उनकी मौज, उनकी स्वतंत्रता। अगर उन्हें मुझे घृणा करनी है तो उन्हें घृणा करने दो। अगर उन्हें मेरा अपमान करना है तो उन्हें अपमान करने दो। उन्हें अगर मुझसे शत्रुता रखनी है तो शत्रुता रखने दो। उनकी फिकिर ही न लो। उनके संबंध में चिंतन करके समय गंवाओ भी मत। जब उनकी घड़ी आयेगी, जब उनका समय पकेगा, जब उनके जीवन में परमात्मा की पुकार सुनाई पड़ेगी... अगर मैं यहां हुआ तो मेरी आवाज खींच लेगी उन्हें, अन्यथा किसी और की। कोई और शमा उनके जीवन को बदलने का कारण बनेगी।

मगर सब ऋतु आने पर ही होता है। तुम जो मेरे पास आ गए हो, आकस्मिक नहीं है। तुम्हारी ऋतु आ गई। तुम तैयार हो, इसलिए आ गए हो। जो तैयार नहीं हैं, जब तैयार होंगे, तब आ जायेंगे। मैं नहीं रहा तो कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई और होगा। जब भी कोई सत्य को खोजना चाहता है तो कोई न कोई मार्गदर्शक उपलब्ध हो जाता है। जब भी शिष्य तैयार होता है, गुरु प्रगट हो जाता है।

चौथा प्रश्नः मैं टूटता हूं। मैं डूबता ही जा रहा हूं। आपकी शरण आया हूं। ओशो, मेरा स्वीकार करो।

वेदांत सागर! और भी टूटना है, और भी बिखरना है, और भी डूबना है। मिट ही जाना है। मरण को अंगीकार करो। इस मन को तो तोड़ ही डालना है। इसे तो बिल्कुल ही समाप्त कर देना है। तभी तुम जानोगे कि तुम कौन हो।

और बहुत-सी असफलतायें मार्ग में मिलेंगी, और बहुत-से कष्ट भी। मंजिल आये, इसके पहले मार्ग में न मालूम कितने कांटे हैं। मार्ग कंटकाकीर्ण है। घबड़ा न जाना।

मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूंगा।
आज जीवन में हुआ असफल भले ही!
एक पल को साधना की भावना सोई नहीं,
और जाऊं हार, ऐसी बात भी कोई नहीं,
मैं नहीं सुनसान राहों पर थकूंगा
दूर, बेहद दूर हो मंजिल भले ही!
मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूंगा
आज जीवन में हुआ असफल भले ही!

आज छाया है अमावस-सा अंधेरा सब तरफ,

पर, अभी कल मुसकराएगा सबेरा सब तरफ,

मैं न मन की पंगु दुविधा में रुकूंगा

पास में चाहे न हो संबल भले ही!

मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूंगा

आज जीवन में हुआ असफल भले ही!

बहुत बार हार हाथ लगेगी। हार-हारकर ही तो कोई जीतने की कला सीखता है। मिट-मिटकर ही तो कोई हो पाता है। बहुत बार हाथों में कांटे चुभेंगे। जो फूल बीनने चला है, उसे कांटों से चुभने की तैयारी रखना ही चाहिए।

जल्दी न करो। अधैर्य न करो। चलते चलो।

हिम्मत न हारो!

कंटकों के बीच मन-पाटल खिलेगा एक दिन

हिम्मत न हारो!

यदि आंधियां आएं तुम्हारे पास

उनसे खेल लो,

जितनी बड़ी चट्टान वे फेंकें तुम्हारी ओर

उसको झेल लो!

तुम तो जानते हो

आजकल बरसात के दिन हैं;

गगन में खलबली है,

दौर-दौरा है घटाओं का,

तुम्हारे सामने अस्तित्व हो उनका सदाओं का!

लरजती बिजलियां;

माना,

तुम्हारे सामने हो खेल

आतिशबाजियां नाना!

निरंतर राह पर चलते रहोगे तो

तुम्हारा लक्ष्य तुमसे आ मिलेगा एक दिन!

हिम्मत न हारो!

कंटकों के बीच मन-पाटल खिलेगा एक दिन!

हिम्मत न हारो!

हारने का तो कोई कारण ही नहीं है। हार तो जीत की सीढ़ी है।

तुम कहते होः "मैं टूटता हूं, मैं डूबता ही जा रहा हूं।" जरा भी भय न करो। मूर्तिकार मूर्ति को बनाता है तो छैनी उठाकर तोड़ता है पत्थर को। काश, पत्थर को होश होता तो चिल्लाने लगता कि मत काटो मुझे, मत

तोड़ो मुझे। वह तो भला है कि पत्थर को कुछ होश नहीं; टूट जाने देता है अपने अंगों को, भंग हो जाने देता है। और एक दिन उभरती है प्रतिमा बुद्ध की, कि जीसस की।

ऐसे ही तुम भी जब आते हो तो एक अनगढ़ पत्थर हो। मुझे उठाने दो छैनी, मुझे चलाने दो हथौड़ा। मुझे तोड़ने दो तुम्हें। बीच में ही भाग मत जाना।

हिम्मत न हारो! घटना घटेगी। अगर टिके रहे, अगर रुके रहे, तो एक दिन तुम्हारे भीतर भी बुद्ध की प्रतिमा प्रगट होगी। सभी के भीतर बुद्ध की प्रतिमा छिपी है। हर पत्थर के भीतर छिपी है। बस जरा-सा व्यर्थ का असार हिस्सा तोड़ देना है। वही तुम्हारा मन है। वही तुम्हारी तृष्णा है, वासना है। उसे जरा काट देना है। काटना पीड़ादायी है, क्योंकि कितने जन्मों से हमने उसे अपना माना है; आज अचानक छोड़ते, विदा करते अड़चन होती है, बेचैनी होती है, घबड़ाहट होती है।

और तुम कहते होः "प्रभु, मेरा स्वीकार करो!" वह तो मैंने किया है। मैंने उनका भी स्वीकार किया है। जिन्होंने मुझे स्वीकार नहीं किया है। मेरी तरफ से स्वीकार पूर्ण है। अड़चन आयेगी, तुम्हारी तरफ से आयेगी, मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं, कोई बाधा नहीं। मैं तो तुम्हें दूर की यात्रा पर ले जाने को तत्पर हूं। पुकारे चला जाता हूं। मैंने तो स्वीकार किया ही है। तुम स्वीकार कर सको, वहां अड़चन आती है। और स्वाभाविक है कि अड़चन तुम्हें आये, क्योंकि टूटना तुम्हें पड़ेगा। अंग भंग तुम्हारे होंगे। पीड़ा तुम्हें झेलनी पड़ेगी।

हिम्मत न हारो!
कंटकों के बीच मन-पाटल खिलेगा एक दिन,
हिम्मत न हारो!

पांचवां प्रश्नः ओशो, जो सब का देखनेवाला है और सबके अंदर में ही रहता है, फिर भी जानने में क्यों नहीं आता? वह सर्व का द्रष्टा और साक्षी जो है, वह कैसे जानने में आता है? कृपया समझायें।

बालकृष्ण चैतन्य, इसीलिये वह जानने में नहीं आता क्योंकि वह सबका जाननेवाला है। तुम्हारे भीतर जो जानने वाला तत्व है वही वह है। उसे तुम कैसे जानोगे? और किससे जानोगे? जिसको भी तुम जानोगे वह तुम नहीं हो। जो भी तुम जान लोगे, जान लेना कि यह मैं नहीं हूं। यही तो नेति-नेति की प्रक्रिया है। जो भी जान लिया जाये, कहनाः नेति, यह मैं नहीं। मैं तो जाननेवाला हूं। मैं जाना जा नहीं सकता। मैं विषय नहीं हो सकता ज्ञान का, मैं तो ज्ञाता हूं। मैं दृश्य नहीं हो सकता, मैं तो द्रष्टा हूं।

द्रष्टा को कैसे दृश्य करोगे? और दृश्य अगर द्रष्टा को कर दोगे तो वह फिर किसके सामने दृश्य होगा? यह तो ऐसे ही है जैसे कि तुम एक चमीटे से उसी चमीटे को पकड़ने की कोशिश करो, पागल हो जाओगे। जरा कोशिश करना एक दिन, चमीटे से उसी चमीटे को पकड़ने की कोशिश करना। पगलाने लगोगे। थोड़ी ही देर में घबड़ाने लगोगे। अपनी आंख से अपनी ही आंख को देखने की कोशिश करना। मुश्किल में पड़ जाओगे। सबको तो देख लेती है आंख, अपने को नहीं देख सकती, कैसे देखेगी अपने को? और अपने को देख लेगी तो तत्क्षण जो देख लिया गया, उससे भिन्न हो गई। आंख को तो केवल तुम दर्पण में देख सकते हो। मगर दर्पण में जो तुम देखते हो वह आंख की केवल छांई है, परछांई है, आंख नहीं है।

इसलिये आत्मज्ञान तो प्रेम में ही होता है; प्रेम दर्पण है। जिससे तुम प्रेम करते हो वह दर्पण बन जाता है। उसमें तुम्हें अपनी प्रतिछवि दिखाई पड़ जाती है। मगर वह छांई है। ख्याल रखना, दर्पण में तु्मने जो देखा है वह केवल छाया मात्र है। प्रेम में स्वयं ही छाया मात्र दिखाई पड़ती है।

लेकिन बस प्रेम निकटतम है, जो ज्ञान के आता है; और इसके बाद फिर कोई और ज्ञान नहीं है। अगर तुमने आंख बंद करके अपने को देखना चाहा, तुम अपने को कभी न देख सकोगे।

"आत्मज्ञान" बड़ा विरोधाभासी शब्द है। आत्मज्ञान का वस्तुतः अर्थ वैसा नहीं है जैसा शब्द का है। आत्मज्ञान का अर्थ होता हैः जहां जानने को कुछ भी न बचा, देखने को कुछ भी न बचा, कोई दृश्य न रहा, कोई विषय न रहा; जहां सब विषय-वस्तु खो गई; जहां सिर्फ देखनेवाला बचा। ऐसा नहीं कि तुम इसको देख लोगे; मगर जहां सिर्फ देखनेवाला बचा उसकी अनुभूति होगी, उसकी अंततः प्रतीति होगी, कि अब अकेला मैं ही बचा, अब बस मैं ही हूं, अब कुछ दिखाई नहीं पड़ता। इस शून्य अवस्था में आत्मज्ञान घटता है।

मगर आत्मज्ञान शब्द से भ्रांति में मत पड़ जाना, क्योंकि आत्मज्ञान से ऐसा ही लगता है कि जैसे हम और किसी को जानते हैं ऐसे ही आत्मा को भी जानेंगे; जैसे वृक्ष दिखाई पड़ रहा है, ये स्तंभ दिखाई पड़ रहे हैं, ये लोग दिखाई पड़ रहे हैं, ऐसे ही एक दिन हम भीतर बैठे-बैठे देखेंगे--यह रही आत्मा! तो तुम गलती में हो। आत्मा को तुम कभी भी इस तरह न देख पाओगे।

आत्मज्ञान का इतना ही अर्थ है कि देखने को कुछ भी न रहेगा, तो देखने की जो क्षमता है वह स्वयं की प्रतीति करेगी। प्रतीति! सिर्फ एहसास! सिर्फ हल्की-हल्की अनुभूति। तुम पकड़ न लोगे झपटकर कि यह रही आत्मा, कि मिल गये। किसको मिलोगे? वहां दो नहीं हैं, वहां एक है। कौन जानेगा? किसके द्वारा जाना जायेगा?

तुम पूछते होः "जो सब का देखनेवाला है और सबके अंदर में ही रहता है, फिर भी जानने में क्यों नहीं आता?" इसीलिए! इसीलिए जानने में नहीं आता है!

नित हृदय-गति में निरंतर
धड़कनों से कौन हो तुम?
प्राण पर मेरे अंधेरा
छा रहा दुख की घटा का,
आज तो दुर्लभ बना है
देखना तेरी छटा का
श्वास के स्वर में निरंतर
सरगमों से कौन हो तुम?

चिर व्यथा के विकट पथ में
थक रहे पद आज मेरे,
और खोजे मिल न पाते
धूमिल से पद-चिहन तेरे,
शांत से, विश्रांति में गति-
से निरंतर कौन हो तुम?

मिट न पाते आज मुझसे
सबल सुधि के चित्र तेरे,
अश्रु बनकर ढुलक जाते
हृदय के ये रत्न मेरे
आज अविरल यातना में
सांत्वना से कौन हो तुम?

श्वास भी परिहास करते
आज थकते जा रहे हैं,
सघन तम में पंथ पर
पद अब भटकते जा रहे हैं,
चिर-निराशा के तिमिर में
आस दीपक कौन हो तुम?

अश्रु तेरी अर्चना को,
ढुलक जाते नित अजाने
पीर-दीपों से दिवाली
उर उगा है अब मनाने
मौन दीपक की शिखा में
उजाले से कौन हो तुम?
नित हृदय-गति में निरंतर
धड़कनों से कौन हो तुम?

उसकी तो सिर्फ ऐसी हल्की-हल्की प्रतीति होगी, आभास होगा। लेकिन तुम उसे देख न पाओगे। तुम उसे हाथ में पकड़ न पाओगे। वह अपरिहार्य-रूपेण द्रष्टा है और दृश्य नहीं हो सकता है। इसलिये क्या करें? फिर क्या करें? एक ही काम किया जा सकता हैः दृश्य को विदा करो। जो-जो दृश्य है उसे विदा करते जाओ। दृश्य-पटल पर कोई दृश्य न रह जाये।

कभी तुमने ख्याल किया कि तुम सिनेमा गये फिल्म देखने, फिल्म चली, सफेद कोरे पर्दे पर धूप-छाया का खेल शुरू हुआ, तुम तल्लीन हो गये। जब तुम फिल्म को देखने में पूरे तल्लीन हो जाते हो, जब कथा तुम्हारे प्राणों को पकड़ लेती है, तब तुम्हें अपनी याद नहीं रह जाती... तब तुम भूल जाते हो कि मैं देखनेवाला हूं। तब दृश्य ही सब कुछ हो जाते हैं, द्रष्टा शून्य हो जाता है। द्रष्टा की विस्मृति हो जाती है, दृश्य सब कुछ हो जाते हैं। अगर दृष्य कोई दुखांत होता है, तुम्हारी आंखों से झर-झर आंसू टपकते हैं। अगर दृश्य कोई उत्तेजक होता है तो तुम कुर्सी को छोड़कर रीढ़ सीधी करके बैठ जाते हो। अगर दृश्य कोई भयानक होता है तो तुम्हारे मुंह से आवाज तक निकल जाती है। लेकिन फिर फिल्म समाप्त हुई, पर्दा फिर कोरा हो गया, धूप-छाया का खेल विलीन हो गया। तब तुम ख्याल करना, एकदम से चौंककर तुम्हें ख्याल आता है अपना, कि अरे फिल्म खतम हो गई, अब

घर चलें। उठे तुम। इस दो घंटे तक तुम बिल्कुल भूल गये थे कि तुम हो कोई और तुम्हारा घर भी है कोई, कि पत्नी घर राह देखती होगी। सब भूल गये थे। न कोई चिंता थी न कोई फिकिर थी। तुम ही न थे तो कैसी चिंता कैसी फिकिर! अब सब लौट आया एकदम से। होश आया। अपना होश आया। आंखें साफ करके चल पड़े घर की तरफ।

यह जगत एक चित्र-कथा है। यहां तुमने और सब देखा है मगर और सबको देखने में अपने को भूल गये हो, अपनी याद नहीं रही है। क्षीण-सी भी याद नहीं रही है।

संन्यास का इतना ही अर्थ हैः अपनी याद को जगाओ। अब धीरे-धीरे द्रष्टा को सजग करो। और जैसे-जैसे द्रष्टा जगेगा वैसे-वैसे जगत का पट शून्य होता जाएगा। समाधि की अवस्था का अर्थ इतना ही होता है कि जहां दृश्य सब खो गये और द्रष्टा अकेला रह गया। पर्दे पर कुछ भी नहीं है अब, फिल्म खतम हो गई, अब घर जाने के सिवा कुछ भी न बचा। यह घर जाती चेतना मुक्त चेतना है। यह अपने स्रोत में जाती चेतना मुक्त चेतना है। यही निर्वाण है।

ध्यान के सारे प्रयोग मौलिक रूप से एक ही काम करते हैं--विधियां कितनी ही भिन्न हों मगर मौलिक प्रयोजन एक है--कि कैसे तुम्हारे चित्त के पर्दे पर चलते हुए चित्रों को विदा किया जाये। धीरे-धीरे धीरे-धीरे सारे चित्र विदा हो जाते हैं, खाली एक शून्य रह जाता है तुम्हें घेरे हुए। उसी शून्य में आत्मस्मरण होता है। स्मरण कहना ठीक होगा, दर्शन कहना ठीक नहीं होगा; ज्ञान कहना ठीक नहीं होगा, बोध कहना ठीक होगा। एक बोध जग उठता हैः मैं साक्षी हूं।

और ख्याल रखना, जब मैं कह रहा हूं कि ऐसा बोध जगता है कि मैं साक्षी हूं, ऐसे शब्द नहीं बनते कि मैं साक्षी हूं। यह तो मुझे तुमसे कहना पड़ रहा है इसलिए शब्दों से कह रहा हूं। बस ऐसा बोध होता है, निःशब्द बोध--मैं साक्षी हूं! बस उसी क्षण में क्रांति घट गई। उसी क्षण में दृश्य से तुम द्रष्टा पर छलांग लगा गये। वही छलांग निर्वाण है। वही छलांग परम आनंद है। गये सब दुख, गये सब सुख--महासुख आया अब! आनंद का आविर्भाव हुआ अब!

छठवां प्रश्नः ओशो, कल्पवृक्ष के नीचे जो मांगो, वह मिलता है--ऐसा सुना है। मगर यहां वह भी वृक्ष है, जिसके नीचे बिना मांगे मिलता है! और खूब-खूब मिलता है! ओशो, आपकी अनुकंपा का कैसे धन्यवाद करूं?

मुक्ति! गाओ, नाचो! तुम जितना नाचो उतना तुम्हारा धन्यवाद। तुम जितना गाओ उतना तुम्हारा धन्यवाद। मुझे सीधा धन्यवाद देने की जरूरत ही नहीं है। मस्त हो जाओ। मस्ती से जीयो। रस से भरपूर जीयो। एक-एक क्षण रस-मग्न हो, आनंद-विभोर हो--बस वही धन्यवाद है।

मुझे धन्यवाद देने की कोई और जरूरत ही नहीं है; तुम्हें आनंदित देख लूंगा, मुझे धन्यवाद मिल गया।

यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है!

जिसकी सुधि में तारों ने,
आंखों में रात बिता दी,
उसकी ही छबि नयनों में,
छविमान हुई जाती है!

यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है!

नहीं जानती कैसे होगा,
चित्र अधूरा पूरा!
धूमिल-सी रेखा भी,
अंतर्ध्यान हुई जाती है।
यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है!

श्वास-पृष्ठ पर कैसे लिख दूं,
अंतर-तम का लेखा!
चिर-पीड़ा भी अधरों की,
मुसकान हुई जाती है!
यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है!

स्वप्न मिलन की बात,
प्राण इतना तुम-मय हो बैठे!
दो पल की देरी, युग का
व्यवधान हुई जाती है!
यह किसकी पहचान अधर का गान हुई जाती है!

मुझसे तुम्हारी पहचान हो तो तुम्हारे अधर पर गान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त मेरे संन्यासी का और कोई लक्षण नहीं होगा, और कोई चरित्र नहीं होगा, और कोई आचरण नहीं होगा। मेरा संन्यास जाना जायेगा उसके आनंद-भाव से। मेरा संन्यासी पहचाना जायेगा उसकी मस्ती से। मेरे संन्यासी को परमात्मा की शराब पी लेनी है।

औरों ने कुछ और लक्षण दिये होंगे। किन्हीं ने कहा है कि तुम अपने चरित्र को सम्हालना। किन्हीं ने कहा है कि तुम अपने व्यक्तित्व को ऐसा बनाना, वैसा बनाना, शुद्ध करना। मेरे संन्यासी की पहचान एक ही होगीः उसका प्रतिपल उत्सवमय होना। वही तुम्हारा धन्यवाद है। मेरी पहचान तुम्हारे अधर का गान हो जाये, बस।

आखिरी प्रश्नः हे परमात्मा, आपको सुनकर झूमने लगती हूं। अस्तित्व सब दिशा से बोध बरसा रहा है यह झेलने की क्षमता देने की कृपा करें। और यह विराट जीवन, सब रंगों से भरी दुनिया, यह अनंत विस्तार... मैं कैसे आरती उतारूं?

आरती कैसे करूं गोसाईं
तुम्हीं व्यापि रहे
व्यापि रहे सब ठाईं
आरती कैसे करूं गोसाईं!

तरु, जब ऐसा लगे कि आरती कैसे करूं गोसाई, तभी आरती हो पाती है। जब तक तुम सोचते हो कि आरती की जा सकती है, तब तक आरती नहीं होती। आदमी के किये क्या हो सकता है! हम जो भी करेंगे, छोटा है; हमारे हाथ की उस पर छाप होती है। हम उस विराट की आरती भी करेंगे तो हमारी आरती भी छोटी होती है। हम तो विवशता का ही निवेदन कर सकते हैं। हम अपनी असहाय अवस्था में रो सकते हैं।

आरती कैसे करूं गोसाईं
तुम्हीं व्यापि रहे
व्यापि रहे सब ठाईं
आरती कैसे करूं गोसाईं!

यही भाव आरती है। आरती का कोई संबंध थालियों से नहीं है--फूल सजाई गई, धूप-दीप जलाई गई। आरती का संबंध भाव की एक दशा से है--असहाय! इतना दिया है परमात्मा ने, इतना, हम धन्यवाद भी दें तो हमारी जबान छोटी है। हमारे शब्द ओछे हैं। हम सिर भी उसके चरणों पर रखें तो हमारे सिर में भी क्या है, भुस ही तो भरा है। हम अपने को निछावर भी कर दें तो भी क्या खाक, क्योंकि हम उसी की देन हैं, उसी को वापिस दे दिया। त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये! तेरी चीज थी, तुझी को लौटा दी, धन्यवाद भी क्या है! इतनी असहाय अवस्था की जो प्रतीति है, वही आरती है।

जो मेरी जीवन-वीणा के
तारों में स्वर बन लहराया।
जिसने स्वयं हाथ फैलाकर
मेरी पूजा को अपनाया।
जग उसको पाहन कह दे,
पर मैं पाहन कह पाऊं कैसे?
मन का गीत सुनाऊं कैसे?
जिसका गृह आलोकित करने
रवि-शशि स्वयं दीप्त हो जाते।
जिसके चरणों पर ढुलने को
शत-शत सागर उमड़े आते।
उस आराधित के चरणों पर
आंसू अर्घ्य चढ़ाऊं कैसे?
मन का गीत सुनाऊं कैसे?

सागर भी उसके चरणों पर अपने को चढ़ा रहे हैं, हमारे आंसू तो कितने छोटे हैं! हमारे आंसुओं का अर्घ्य... कहां अनंत-अनंत सागर उसके चरणों पर लोट रहे हैं! हम दीये भी जलायें आरती के थाल में तो क्या होगा? चांद भी उसी के लिये जलता है और सूरज भी उसी की आरती है और सारे तारे, अनंत तारे उसकी आरती में परिभ्रमण कर रहे हैं।

जिसका गृह आलोकित करने
रवि-शशि स्वयं दीप्त हो जाते।
जिसके चरणों पर ढुलने को

शत-शत सागर उमड़े आते

उस आराधित के चरणों पर

आंसू अर्घ्य चढ़ाऊं कैसे?

मन का गीत सुनाऊं कैसे?

बड़ी कठिनाई है, भक्त की बड़ी कठिनाई है। अवाक रह जाता है भक्त, मौन रह जाता है, शब्द नहीं बनते और जब शब्द नहीं बनते तभी आरती है। निःशब्द आरती है। कुछ कहा नहीं जाता और सब कह दिया जाता है।

जो मेरी जीवन-वीणा के

तारों में स्वर बन लहराया।

जिसने स्वयं हाथ फैलाकर

मेरी पूजा को अपनाया।

जग उसको पाहन कह दे,

पर मैं पाहन कह पाऊं कैसे?

मन का गीत सुनाऊं कैसे?

और जब गीत गाने का प्राण होता है लेकिन गीत गाने की असमर्थता होती है, तब वह स्वयं ही तुम्हारी पूजा को अपने हाथ से ले लेता है। और मजा तो तभी है। तुमने चढ़ाया, इसमें मजा नहीं है; उसने लिया, तब मजा है। तुम्हारे चढ़ाने में तो तुम्हारा ही खेल है। लेकिन जिस दिन भक्त शून्य-भाव से असहाय अनुभव करता है उस क्षण परमात्मा स्वीकार कर लेता है--खुद ही स्वीकार कर लेता है। उसके हाथ स्वयं ही बढ़े चले आते हैं। तब जीवन में बसंत छा जाता है। तब खूब फूल खिल जाते हैं।

उलट गयी अबीर की झोली!

स्वर्ण मुकुट सज्जित गिरि से उषा ने खेली होली!

डाल-डाल पर पंछी बोले

कलियों ने अवगुंठन खोले,

बहने से सुरभित समीर के

कोमल तरु पल्लव दल डोले!

मुक्त भ्रमर करने के हित सरजित ने पलकें खोलीं!

उलट गयी अबीर की झोली!

जब उसका हाथ हमारी तरफ बढ़ता है तो सारा जगत अपने को हम पर उंडेल देता है--सारे रंगों में, सारे स्वरों में! सारा जगत पूरे सरगम से गीत गा उठता है।

भक्त शून्य हो तो भक्ति पूर्ण हो जाती है, क्योंकि शून्य में ही पूर्ण उतरता है।

आरती कैसे करूं गोसाईं

तुम्हीं व्यापि रहे

व्यापि रहे सब ठाईं

आरती कैसे करूं गोसाईं

यही आरती है तरु! इसी में डूब, इसी में धीरे-धीरे खो जाओ।

दिया जिन्होंने स्नेह

सभी का ऋण मुझ पर है,
मेरा क्या है
मैं तो लघु दीपक की बाती!
दान उन्हीं का किरण-जाल यह
मेरा क्या है,
कोमल कर
जो सौंप गये ज्वाला की थाती!
जलने के पल ही तो हैं
जीवन की घड़ियां,
संध्या की उषा से जोड़ें
ऐसी कड़ियां!
मिट्टी का यह पात्र सलोना
मेरा क्या है,
दो निशि भी तो
इससे नाता जोड़ न पाती!

मैं तो चलती नहीं
राह कैसी, क्या जानूं?
रुदन हंसी को भिन्न
कहो मैं कैसे मानूं!
प्राणों को दी व्यथा जिन्होंने
सब कुछ उनका!
मेरा क्या है
रिक्त हाथ मैं आती-जाती!
मेरा क्या है
मैं तो लघु दीपक की बाती!
हमारे हाथ तो खाली हैं।
आरती कैसे करूं गोसाईं
तुम्हीं व्यापि रहे
व्यापि रहे सब ठाईं
आरती कैसे करूं गोसाईं!

हमारे हाथ तो रिक्त हैं। मगर रिक्त हाथ ही पर्याप्त हैं। इसी रिक्तता में वह उतरेगा। उतरता है, उतरता रहा है। जब भी भक्त का पात्र खाली और शून्य हुआ है, तभी वह आ गया है और पात्र भर गया है।

प्राणों को दी व्यथा जिन्होंने
सब कुछ उनका!

मेरा क्या है

रिक्त हाथ मैं आती जाती!

मेरा क्या है

मैं तो लघु दीपक की बाती!

भक्त अपने को मिटा देता है; वही उसकी आरती है। भक्त नहीं हो जाता है; वही उसकी आरती है।

आज इतना ही।

तेरहवां प्रवचन

प्रार्थना अर्थात संवेदना

पहला प्रश्न : सिद्ध सरहपा और तिलोपा यह तो बता गये कि क्रियाकांड और अनुष्ठान धर्म नहीं है। कृपया बतायें कि उनके अनुसार धर्म क्या है? उनका संदेश क्या है?

आनंद मैत्रेय, नेति-नेति धर्म की खोज का सार-सूत्र है। यह भी नहीं, यह भी नहीं--ऐसे परखते-परखते, जो है, वह शेष रह जाता है। उसे कहने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

निषेध सम्यक धर्म की खोज का उपाय है।

क्रियाकांड धर्म नहीं है, तीर्थयात्रा धर्म नहीं है, पूजा-पाठ धर्म नहीं है। स्वभावतः प्रश्न उठता है कि क्या धर्म नहीं है, यह तो बता दिया, फिर धर्म क्या है? शास्त्र धर्म नहीं हैं, सिद्धांत धर्म नहीं हैं, मंदिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे धर्म नहीं हैं, फिर धर्म क्या है? धर्म है उस सबका निषेध, जिसका निषेध हो सके। जब तक निषेध हो सके निषेध करते जाना। अभी निषेध और गहरा होगा--यह देह भी धर्म नहीं है; यह मन, विचार की प्रक्रिया भी धर्म नहीं है। निषेध करते ही जाना, तब शेष रह जायेगा सिर्फ साक्षी, सिर्फ देखनेवाला। न पूजा करनेवाला बचेगा, न कर्म करनेवाला बचेगा, न देह बचेगी, न मन बचेगा--बचेगा सिर्फ साक्षी। और साक्षी का निषेध नहीं हो सकता है; वही एकमात्र तत्व है जो असंदिग्ध है।

कोई भी यह नहीं कह सकता कि मैं नहीं हूं; क्योंकि ऐसा कहना तो विरोधाभास होगा। जैसे तुम किसी आदमी के द्वार पर दस्तक दो और आदमी भीतर से कहे कि मैं घर पर नहीं हूं, तो क्या अर्थ होगा? उसकी यह घोषणा कि मैं घर पर नहीं हूं, उसके होने का सबूत होगी। वह कह सकता है--मेरी पत्नी घर पर नहीं है, मेरा बेटा घर पर नहीं है--और सबका निषेध कर सकता है, सिर्फ अपना निषेध नहीं कर सकता। यह नहीं कह सकता कि मैं घर पर नहीं हूं। यह तो कहना उलटा हो जायेगा। यह तो प्रमाण हो जायेगा कि वह घर पर है। तुम और जोर से द्वार पीटने लगोगे।

ऐसे ही तुम सबका निषेध कर सकते हो, सिर्फ इस भीतर छिपे साक्षी का नहीं, वही साक्षी तुम्हारा स्वभाव है, स्वरूप है। वही साक्षी तुम्हारी सहजता है। इसलिये सरहपा और तिलोपा खंडन तो करते हैं, मंडन नहीं करते। यह तो बताते हैं कि क्या-क्या छोड़ दो मगर यह नहीं बताते कि क्या पकड़ लो; क्योंकि तुम जो भी पकड़ोगे गलत होगा; क्योंकि तुम जो भी पकड़ोगे वह तुम नहीं हो। जो पकड़ा जा सकता है, वह तुम कैसे होओगे? जो किया जा सकता है, वह तुम कैसे होओगे? तुम तो वह हो जो हर कृत्य का द्रष्टा है--जो सिर्फ देखता है। दर्शन की वह क्षमता तुम हो।

तुम दर्पण हो। दर्पण के सामने जो भी आता है, वह दर्पण नहीं है। अगर कोई दर्पण पूछे कि मैं कौन हूं, तो तुम क्या करोगे? एक स्त्री उसके सामने बाल बना रही है और दर्पण को लगता है कि मैं स्त्री हूं, यही स्त्री! सुंदर भी है, मनमोहक है और दर्पण लुभा जाता है। अगर तुमसे पूछे दर्पण कि मैं कौन हूं, क्या मैं यह स्त्री नहीं हूं, तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे कि नहीं, यह स्त्री तुम नहीं हो। फिर कोई पुरुष अपनी दाढ़ी बना रहा है, बड़ा मजबूत है, बड़ा शक्तिशाली है और दर्पण फिर लुभा जाता है और सोचता है यह मैं हूं; स्त्री नहीं हूं तो पुरुष

होऊंगा। स्वभावतः लोग विपरीत की तरफ मुड़ जाते हैंः अगर स्त्री नहीं हूं तो पुरुष होना ही चाहिये। और फिर तुम कहते हो कि नहीं, यह भी तुम नहीं हो। तो दर्पण पूछेगा, फिर मैं हूं कौन?

क्या जवाब दोगे? तुम यही कहोगे : तुम प्रतिफलन की क्षमता हो। सब रूप तुममें बनेंगे, सब आकार तुममें बनेंगे। न तो तुम कोई रूप हो न तुम कोई आकार हो, न तुम्हारा कोई नाम है। तुम वह शून्य भाव हो, जिसके सामने सब गुजरता है; जिसके सामने सब दृश्य आते हैं और जाते हैं। संसार बनते हैं और उजड़ते हैं। सृष्टि होती है और प्रलय आती है। तुम वह हो जो सदा देखता रहता है। तुम वह द्रष्टा हो। इस द्रष्टा के लिये कुछ और कहा नहीं जा सकता, क्योंकि जैसे ही कुछ कहोगे--कोई रूप, कोई आकार, कोई नाम दोगे--वैसे ही भूल हो जायेगी।

इसलिये जो परम ज्ञानी हुए हैं उन्होंने धर्म की निषेधपरक व्याख्या की है।

तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। यही आदमी की सदा से तकलीफ रही है। आदमी चाहता है विधेय और बुद्ध पुरुष देते हैं निषेध। आदमी कहता है कि कुछ विधायक बात कहो; हमें बताओ कि क्या धर्म है, तो हम करें। अगर हज जाना धर्म है तो हम हज जायें। अगर काशी की यात्रा करना धर्म है तो हम काशी चले जायें। अगर मंदिर में पूजा धर्म है तो हम वहां पूजा कर लें। अगर फूल चढ़ाना धर्म है तो हम फूल चढ़ा दें। अगर नारियल फोड़ना धर्म है तो हम नारियल फोड़ दें। यह सब हम कर सकते हैं। लेकिन कुछ विधायक बताओ। जनेऊ पहन लें, चोटी रखा लें कि चोटी कटा लें, कि जनेऊ तोड़ दें--कुछ विधायक बताओ। ... कि चंदन लगायें, कि किस तरह का चंदन, कि किस तरह का टीका? कुछ विधायक बता दो। कब उठें सोकर, कब सो जायें सांझ, कौन-सी प्रार्थना दोहरायें--वेद की कि कुरान की? कौन-से शब्दों का उच्चार करें? अल्लाह को पुकारें कि राम को? कुछ विधायक बता दो।

हम कुछ पकड़ना चाहते हैं और बुद्धपुरुष कहते हैं : यह भी नहीं, यह भी नहीं। इसलिये बुद्धपुरुष और हमारे बीच मेल नहीं हो पाता, तालमेल नहीं हो पाता। पंडितों से हमारा तालमेल हो जाता है। पंडित विधायक धर्म देता है। वह कहता है : यह रहा धर्म। इस मूर्ति की अगर ठीक-ठीक पूजा की तो जरूर पहुंच जाओगे। और मजा ऐसा है कि पहुंचोगे कभी नहीं, और पंडित कहेगा : ठीक-ठीक पूजा नहीं की। न होगी कभी ठीक पूजा, न कभी तुम पहुंचोगे। पूजा से कोई कभी पहुंचा है? मगर एक तरकीब है उसमें कि कभी ठीक तुमने की नहीं... हम कर भी क्या सकते हैं? ठीक करते जरूर पहुंच जाते। तुम्हारी पूजा में भूल रह गई। तुम्हारी पूजा के पीछे संदेह रहा। तुम्हारी श्रद्धा पूर्ण नहीं थी। तुम्हारे मन में संशय उठते रहे, इसलिये चूक हो गई। यह मंत्र पढ़ो, अगर ठीक से पढ़ोगे, बराबर पहुंच जाओगे।

मगर ठीक से कोई मंत्र पढ़ ही नहीं पाता। मंत्र पढ़नेवाला और ठीक से पढ़ पाये, मंदबुद्धि है यह तो साफ ही है, नहीं तो मंत्र पढ़ने बैठता? अब ठीक से क्या पढ़ पायेगा? और फिर मंत्र में ऐसी शर्तें लगा दी जाती हैं... तुमने प्रसिद्ध कहानी सुनी है न? तिब्बती कहानी। एक आदमी एक फकीर की सेवा में था। बहुत सेवा की और पीछे पड़ा थाः बस एक ही बात कि कोई एक मंत्र दे दो, कि उसके पढ़ते ही सिद्धि मिल जाये। कि फिर मैं जो चाहूं वही हो। कल्पवृक्ष मिल जाये, कि जो आशा हो तत्क्षण भर जाये। और उसकी सेवा तो ठीक थी, पैर भी दबाता था, पानी भी भर लाता था, रोटी भी पकाता था, लेकिन बार-बार यही प्रश्न। फकीर भी ऊब गया। उसने कहा कि ठीक, एक दिन... । तू नहीं मानता तो यह ले मंत्र। पांच मिनट इसे पढ़ लेना, सिद्धि हो जायेगी। फिर तुझे जो चाहिये वह मिल जायेगा। इसी के लिये तो वह आदमी तीन साल से सेवा कर रहा था। सेवा भी लोग मेवा पाने के लिये ही करते हैं। अब मेवा मिल गया तो छोड़ा फकीर को तो वह भागा अपने घर की तरफ। जब

वह सीढ़ियां उतर रहा था मंदिर की, तो उस फकीर ने कहाः सुन भाई। एक बात तो मैं भूल ही गया। जब तू पांच मिनट तक मंत्र का पाठ करे तो याद रखना, बंदर की याद न आये।

उस आदमी ने कहा : तुम भी क्या फिजूल की बातें कर रहे हो! बंदर की याद मुझे जिंदगी-भर नहीं आई, अब क्यों आयेगी?

मगर बस घर भी नहीं पहुंच पाया, रास्ते में ही बंदर की याद आने लगी। उसने झिड़का भी अपने को, कि मैं यह क्या कर रहा हूं, मगर बंदर थे कि बढ़ते ही चले गये, कि बंदर थे कि झांकने लगे उसके भीतर, कि खिलखिलाकर हंसने लगे, कि मुंह बनाने लगे! वह तो बहुत घबड़ाया कि अगर यही शर्त थी इस मंत्र की तो इस नासमझ फकीर ने बताया ही क्यों, चुप रह जाता। अभी दुनिया का कोई जानवर नहीं आ रहा, मगर यह बंदर... । घर पहुंचा, नहाया-धोया, लेकिन कुछ सार नहीं। बंदर हैं कि पीछे आते ही जा रहे हैं। कतारें लगी हैं उनकी। आंख बंद करे कि बंदर ही बंदर दिखाई प.ड़ें। रात-भर कोशिश की कि मंत्र पांच मिनट पढ़ ले बिना बंदरों के, नहीं हो पाया। सुबह तक एक बात साफ हो गई कि अब यह जिंदगी-भर भी कोशिश करे तो बंदरों से छुटकारा नहीं, क्योंकि बंदर रात में बढ़ते ही चले गये। सुबह जाकर मंत्र लौटा दिया फकीर को और कहा कि आप भी खूब हो! तीन साल मुझे परेशान किया। तीन साल के बाद यह दिया भी तो यह शर्त लगा दी। अगर यही शर्त थी तो चुप रह जाते, तो मैं पक्का तुम्हें भरोसा दिलाता हूं कि बंदर की मुझे याद न आती।

फकीर ने कहा : मैं भी क्या कर सकता हूं, शर्त तो बतानी ही होगी, बिना शर्त के मंत्र करोगे तो मंत्र से सिद्धि नहीं मिलेगी। हर मंत्र के पीछे शर्त है। तुम्हें चाहे पता हो, चाहे न पता हो, चाहे तुम्हें साफ-साफ कहा गया हो या छुप-छुपकर इशारा किया गया हो, हर मंत्र के पीछे शर्त है : श्रद्धा पूर्ण होनी चाहिये!

जिस आदमी की श्रद्धा पूर्ण है वह मंत्र पढ़ेगा? जिसकी श्रद्धा पूर्ण है वह तो भगवत्ता को उपलब्ध हो जायेगा श्रद्धा की पूर्णता में। जिसके सब संदेह गिर गये उसे बचा क्या पाने को? निःसंदिग्ध चित्त की दशा मिल गई, वही तो भगवत्ता है। अब जिसकी श्रद्धा पूर्ण नहीं है वही तो मंत्र पढ़ेगा। और मंत्र सिद्ध होते नहीं बिना श्रद्धा पूर्ण होने के। यह गणित देखते हो?

जिसके भीतर पूजा का भाव जगा है वह पूजा नहीं करता। भाव काफी है। भाव के सुमन काफी हैं। जिसके भीतर पूजा का भाव नहीं है, वहीं मंदिर में जाकर घंटियां बजाता है, पानी छिड़कता है, फूल चढ़ाता है, धूप-दीप जलाता है। पूजा का भाव नहीं है, इसलिये पूजा का अभिनय करता है। यह अभिनय है। और तुम चाहते हो कि तुम्हें कुछ बता दिया जाये कि धर्म क्या है--विधायक--कि क्या करें, कैसा भोजन करें, कैसे कपड़े पहनें, कैसे उठें, कैसे बैठें, सीधा-साफ हमें नियम दे दिये जायें।

नियम तो तुम्हें दिये गये बहुत बार और जब भी नियम दिये गये, देनेवाले बेईमान थे, लेनेवाले बेईमान थे। नियमों से कुछ हल नहीं हुआ। पृथ्वी वैसी की वैसी अधार्मिक है। नियमों की कोई कमी है? सब तरफ नियमों का पालन किया जा रहा है, लेकिन कहीं भी धर्म का सूरज उगता दिखाई नहीं पड़ता। क्षितिज पर लाली नहीं दिखाई पड़ती। आदमी का आकाश बिल्कुल अंधेरे से भरा है; एक तारा भी नहीं चमकता। और इतने धर्म और इतने विधायक नियम और पंडित उनका विस्तार किये चले जाते हैं!

तुम्हें कितनी आज्ञायें दी गई हैं, कितने आदेश दिये गये हैं। और ऐसा भी नहीं कि तुमने पूरे नहीं किये। जितना तुमसे बन सकता था, जितना मानवीय क्षमता में था... मंत्र तो उस आदमी ने रात-भर पढ़ा, और खूब स्नान कर-करके, बार-बार स्नान कर-करके पढ़ा, लेकिन कुछ जो मानवीय क्षमता में नहीं है... वह बंदर को कैसे भूले? जिसे तुम भुलाना चाहते हो, उसे भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि भुलाने की कोशिश में और याद आता

है। जितना भुलाओगे उतना याद आयेगा। जितना याद आयेगा उतना भुलाना मुश्किल हो जायेगा। जितना याद आयेगा उतना भुलाना चाहोगे और जितना भुलाना चाहोगे उतना याद आयेगा। तुम उलझ गये एक द्वंद्व में। इस द्वंद्व के बाहर अब तुम कभी न हो पाओगे।

लेकिन पंडित तुम्हारी तृप्ति कर देते हैं। तुम सस्ता धर्म मांगते हो, पंडित तुम्हें सस्ता धर्म दे देता है। विधायक धर्म सस्ता धर्म होता है। उसमें बहुत सीधी-साफ बातें होती हैं : पानी छानकर पी लेना, एकादशी का व्रत कर लेना, मंदिर चले जाना, पूजा कर लेना, रमजान आये तो रमजान के दिन में उपवास कर लेना। कुछ सीधी-सादी बातें होती हैं, जो कोई भी कर ले; जिनमें कुछ बहुत अर्थ नहीं है; जिनका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है।

लेकिन बुद्धपुरुष हमेशा निषेधात्मक धर्म देते हैं। नेति-नेति उसका स्वभाव होता है, स्वरूप होता है। न यह न वह। चलो काटते। करते चलो निषेध। उस जगह आ जाओ जहां निषेध करने को कुछ न बचे। काटते चलो, उस जगह आ जाओ जहां काटने को कुछ न बचे फिर जो बच रहा--अनकटा, जिसको न शस्त्र छेद सकते हैं और न आग जला सकती है, जिसको इनकार भी करना चाहो तो इनकार करने का कोई उपाय नहीं--उसका एक बार स्वाद मिल जाये, उस साक्षी की जरा सी प्रतीति हो जाये कि उग गया धर्म का सूर्य, कि हो गई सुबह, कि कट गई रात लंबी जन्मों-जन्मों पुरानी, कि गया सब अंधेरा, कि मिटी मृत्यु कि बरसा अमृत!

सरहपा और तिलोपा क्रियाकांड और अनुष्ठान को धर्म नहीं कहते। तुम पूछते हो : कृपया बतायें कि उनके अनुसार धर्म क्या है? वैसा चैतन्य, जिसमें न कोई क्रियाकांड है, न कोई अनुष्ठान है, न कोई विचार है, न कोई धारणा है, न कोई सिद्धांत है, न कोई शास्त्र है। वैसा दर्पण, जिसमें कोई प्रतिछवि नहीं बन रही--न स्त्री की, न पुरुष की, न वृक्षों की, न पशुओं की, न पक्षियों की। कोरा दर्पण, कोरा कागज, कोरा चित्त... वह कोरापन धर्म है। उस कोरेपन का नाम ध्यान है। उस कोरेपन की परम अनुभूति समाधि है। और जिसने उस कोरेपन को जाना उसने परमात्मा को जान लिया।

और ऐसा नहीं कि परमात्मा बाहर खड़ा हुआ मिलेगा--विषय की तरह नहीं--अपने अंतरतम की तरह। उसी, साक्षी का दूसरा नाम परमात्मा है। जिस दिन तुमने अपने भीतर छिपे साक्षी को जान लिया, तुमने सबके भीतर छिपे साक्षी को जान लिया। तुमने इस जगत के भीतर छिपे हुए चैतन्य का मूलस्रोत पकड़ लिया। तुम जगत के केंद्र पर आ गये।

कर्ता अलग-अलग हैं; साक्षी एक है। दृश्य अनेक हैं; द्रष्टा एक है।

दूसरा प्रश्न : मैं नाच रहा हूं यहां। मैं जो कि कभी नाचा नहीं। नाचना तो दूर, कभी सोचा भी नहीं था कि मैं नाचूंगा। मैं अपने पर ही चकित हूं। पूछता हूं कि यह क्या हो गया है मुझे?

प्रेम हो गया है तुम्हें, धर्म हो गया है तुम्हें। तुम अपने घर की तरफ आने लगे। तुम लौट पड़े। तुम अपने स्रोत की तरफ चल पड़े। गंगा गंगोत्री की तरफ बहने लगी है। उलटबांसी हो गई। जहां से आये थे उस तरफ तुम्हारे पहले कदम पड़ने लगे।

और उस तरफ जो पहले कदम पड़ते हैं, उन्हीं के कारण नाच पैदा होता है। परमात्मा से जितने दूर जाते हो उतना नाच खोता जाता है। उतना जीवन में उदासी, हताशा, विषाद छाता जाता है। जब तुम बहुत दुख में होते हो तो समझना कि परमात्मा से बहुत दूर होते हो

ऋषियों ने परमात्मा की व्याख्या की है सच्चिदानंद--वह सत है, वह चित है, वह आनंद है। सरहपा कहते हैं, तिलोपा कहते हैं : वह महासुख है। इसका अर्थ हुआ कि जितने तुम दुख में होते हो उतने उससे दूर होते हो। तुम्हारे दुख का अनुपात तुम्हारी दूरी का अनुपात है। तुम्हारे दुख की मात्रा तुम्हारी दूरी की सीमा है। जितना कम दुख उतने उसके पास। जब तुम नाच ही नहीं सकते, जब तुम्हारे भीतर सब रसधार सूख जाती है, जब तुम गा नहीं सकते, जब तुम मस्त नहीं हो सकते, जब तुम बिल्कुल पत्थर जैसे हो जाते हो--तो समझना कि परमात्मा से बहुत दूर पड़ गये। जैसे-जैसे करीब आओगे, वैसे-वैसे सुगंध आयेगी उसके फूलों की; वैसे-वैसे उसकी वीणा का नाद सुनाई पड़ेगा; वैसे-वैसे उसकी थाप मृदंग पर; वैसे-वैसे उसकी बांसुरी के स्वर तुम्हारे कानों को छुएंगे। फिर कैसे रुकोगे? फिर अवश नाचना होगा। मस्त होना ही होगा। परमात्मा करीब आ रहा हो तो नाचे बिना कोई उपाय नहीं।

तुम सोचते हो कि मीरा नाच-नाचकर परमात्मा को पा गई, तो तुम गलती में हो। मीरा जैसे-जैसे परमात्मा को पाती गई वैसे-वैसे नाच बढ़ता गया। अगर नाचने से कोई सोचता है परमात्मा मिलेगा तो सब नर्तकियों को मिल जाये। लेकिन परमात्मा मिलने से जरूर नाच पैदा होता है। यहीं तुम्हें भेद समझ लेना होगा। अगर तुमने सोचा नाचने से परमात्मा मिलता है तो नाचना क्रियाकांड हो जायेगा। नाचना नहीं, मटकना होगा। भीतर तो कोई नाचेगा नहीं। भीतर तो सब सन्नाटा रहेगा। भीतर तो तुम वही के वही रहोगे जैसे थे। शरीर को मटका लोगे, हिला-डुला लोगे। एक तरह का व्यायाम होगा। व्यायाम का जितना लाभ है उतना मिलेगा।

लेकिन एक और नाच है--नाच, जो क्रियाकांड नहीं है; जो अंतरउमंग है; जो उल्लास है; जो उत्सव है। यह नाच तो तभी पैदा होता है जब तुम परमात्मा के करीब पहुंचने लगते हो।

तुम कहते हो : मैं नाच रहा हूं यहां। धन्यभागी हो तुम! नाचो। कंजूसी मत करना, कृपणता मत कर जाना।

लोग हर चीज में कृपण हो गये हैं हर चीज में सम्हाल-सम्हालकर चलते हैं, हर चीज में नियंत्रण रखते हैं। लोग मुस्कुराते भी हैं तो ऐसे जैसे कि बड़ा खर्च हुआ जा रहा है। लोग प्रसन्न भी होते हैं तो बहुत सोच-विचारकर। प्रसन्न होने में कुछ खर्च नहीं होता, कुछ खोता नहीं। प्रेम करने में कुछ खर्च नहीं होता, कुछ खोता नहीं। मिलता है बहुत, पाया जाता है बहुत। मगर लोग ऐसे कृपण हो गये हैं कि न मुस्कुरा सकते हैं, न नाच सकते हैं, न गा सकते हैं।

और लोगों का कसूर नहीं है। यही उन्हें सिखाया गया है। सदियों-सदियों का संस्कार यही है कि धर्म यानी गंभीर बात, अति गंभीर। इसलिये तुम्हारे साधु-संन्यासी बिल्कुल गंभीर मालूम होते हैं, पथरीले मालूम होते हैं, रेगिस्तानी मालूम होते हैं--कि जिनके हृदय में कोई मरूद्यान नहीं; जिनके हृदय में कोई झरना नहीं बहता जीवन के रस का। यह चारों तरफ जगत नाच रहा है। तुम देखते हो, हर चीज वर्तुलाकार नाच रही है। यह रास चल रहा है। जिस पृथ्वी पर तुम बैठे हो, यह भी भागी जा रही है बड़ी त्वरा से, नाची जा रही है। यह थिर नहीं है। यह नृत्यमय है। यह सूरज का चक्कर लगा रही है। इसका नाच सूरज के पास चल रहा है। सूरज इसका प्रेमी है। सूरज इसका कृष्ण है, यह गोपी है। और ऐसे ही चांद भी नाच रहा है। चांद पहले तो पृथ्वी का चक्कर मार रहा है, फिर पृथ्वी के साथ सूरज का चक्कर मार रहा है ऐसे ही और ग्रह-उपग्रह नाच रहे हैं। ऐसे ही सारे तारे नाच रहे हैं। अनंत-अनंत तारों का यह महोत्सव तुम देखते हो! यहां हर चीज नाच रही है। बड़ी से बड़ी चीज, सूरज भी किसी और महासूर्य के इर्द-गिर्द नाच रहा है। वैज्ञानिक उसकी खोज में लगे हैं कि वह महासूर्य कहां है, जिसके केंद्र को मानकर हमारा सूर्य नाच रहा है? जरूर नाच तो रहा है, इसलिये कोई केंद्र भी होगा। जब कोई

नाचेगा तो केंद्र भी बनेगा। परिधि होगी तो केंद्र भी होगा। उस सूरज की खोज चल रही है। बहुत दूर होगा। हो सकता है, वही इस अस्तित्व का केंद्र हो; या कौन जाने, वह भी किसी और केंद्र के पास नाचता हो! कतारों पर कतारें हैं। बीच में कृष्ण हैं, फिर गोपियों की एक कतार है, फिर दूसरी कतार, फिर तीसरी कतार। कतारों पर कतारें हैं। दीपमालिकाओं पर दीपमालिकाएं हैं।

तुम "कृष्ण" शब्द का अर्थ समझते हो? कृष्ण का अर्थ होता है--जो आकृष्ट करे। कृष्ण शब्द का वही अर्थ होता है जो ग्रेविटेशन का होता है--आकर्षण--कर्षण--कृष्ण। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है जो केंद्र है सारे आकर्षण का; जिसके आसपास सब नाच चल रहा है। जैसे ही तुम नाचोगे, चाहे कृष्ण कितने ही फासले पर हो, वह तुम्हारा केंद्र बन गया। तुम परमात्मा के पास ही नाच सकते हो! किसी भी कारण से नाचो, परमात्मा का एक झोंका तुम्हारी जिंदगी में आ जायेगा। किसी स्त्री के प्रेम में पड़कर नाचे हो, वह भी परमात्मा का ही झोंका है। यह आई हवा की एक लहर। तुम्हारे घर बेटा पैदा हुआ है और तुम नाच उठे हो, आई उसी की एक लहर! तुम्हारे बगीचे में फूल खिला है गुलाब का और तुम नाच उठे हो, आई उसी की खबर!

आये नूपुर के स्वन झन-झन,
खिंच गये प्राण भर गये श्रवण,
आये नूपुर के स्वन झन-झन!

हो उठा तरंगित सुख-समीर,
कांपा अम्बर का वक्ष धीर,
आयी श्रवणों में उत्कंठा
जग गयी जगत की विसुध पीर
जब ध्वनि आयी रुन झुनन-झुनन, जब गूंजा मादक नूपुर स्वन!

भग गया दिशाओं में सपना!
जग भूला अहंभाव अपना!
मृण्मय भी बना परम तन्मय!
झंकृति-गुंजार-वितान तना!
स्वर भर लहराया मलय पवन! आये नूपुर के स्वन झन-झन!

कोऽहं की तान पुरानी मम,
अब तक थी अनुत्तरित विभ्रम,
पर अब नूपुर-गुंजारों में!
मिल गया समुद्र सोऽहं का सम!
हमने पाया कुछ आश्वासन; आये नूपुर के स्वन झन-झन!

हिय का यह हाहाकार निरा,
जिससे यह जीवन आज घिरा,

क्यों अब न शांत, उपरमित बने?
मन अब क्यों डोले फिरा-फिरा?
जब कान पड़ी यह ध्वनि नूतन, आये नूपुर के स्वन झन-झन!

झन-झन श्रवणागत अनिल-लहर,
झन-झन यह अनहद नाद गहर,
झन-झन ये ध्वनि-सुरधुनी-भंवर,
झन-झन-झन-अमर प्रणय-अक्षर;
झन-झन-झन गूंजा हिय आंगन; आये नूपुर के स्वन झन-झन!

दायें-बायें आगे-पीछे,
बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे,
सब ओर सुनी गुंजार वही,
ध्वनि ने जल-थल अम्बर सींचे;
अनमने प्राण, मन नाद-मगन; आये नूपुर के स्वन झन-झन!

आये अग को करते जग वे
अपगा को देते गति-पग वे,
चंचलता का पल्ला पकड़े,
आये धीमे धरते डग वे,
हुलसा सिरजन, गूंजा कण-कण, आये नूपुर के स्वन झन-झन!

धरती नाची; नाचा अंबर,
तारक-माला नाची सत्वर;
ता-थइ, ता-थइ कर नाच उठे,
अनगिनत सौर-मंडल थर-थर,
उनने जब किया चरण-नर्तन; आये नूपुर के स्वन झन-झन!

उल्लास भरे, उन्माद भरे,
मद भरे और अवसाद भरे,
हम आज पूछते हैं उनसे,
कोई किस तरह विवाद करे,
जब नूपुर बोलें झनन-झनन, हो उठे प्राण-मन, जब उन्मन?

जब सप्तदी पूरी होगी,

जब लुप्त द्वैत दूरी होगी,

जब पिय गलबहियां डालेंगे

जब उनकी मंजूरी होगी

तब हम बन उनके नूपुर स्वन, गूंजेंगे झन-झन, झनन-झनन।

एक यात्रा शुरू हुई। नृत्य की यात्रा ही तीर्थ-यात्रा है। तुम जहां नाचो वहीं तीर्थ बन जाता है। तुम जहां नाचो वहीं कृष्ण। तुम जहां नाचो वहीं परमात्मा है। पूरे भाव से नाचो तो तुम उसके पैरों के घूंघर बन जाओगे। पूरे हृदय से गाओ, तुम्हारे कंठ में वही गायेगा। तुम संगीतमय हो उठो तो उसने ही तुम्हारे हृदय की तंत्री को छेड़ा। वही जब छेड़ता है तभी यह स्वर जगते हैं।

तुम कहते हो : "मैं नाच रहा हूं यहां। मैं, जो कि कभी नाचा नहीं!"

नृत्य खो गया है--तुम्हारा ही नहीं, पूरी मनुष्यता का खो गया है। आदमी तो बस सोच-विचार में पड़ा है, वाद-विवाद में पड़ा है, नाचने की फुरसत किसे है! और जब जीवन में नाच नहीं होता तो हम बहाने खोज लेते हैं। हम कहते हैं : आंगन टेढ़ा, नाचें तो कैसे नाचें? हम कहते हैं कि अभी इतना धन नहीं कि नाचें, कि अभी इतना पद नहीं कि नाचें, कि अभी जो चाहा है वही नहीं मिला तो नाचें कैसे? हम नाचने पर शर्तें लगाते हैं। वे शर्तेंर् कभी पूरी नहीं होतीं। वे शर्तें पूरी होने वाली हैं भी नहीं। तुम कभी न नाच सकोगे। और जो नहीं नाचा वह अभागा था। बहुत पास होकर परमात्मा से बहुत दूर रह गया।

नाचो! तुम कहते हो : "नाचना तो दूर, मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मैं नाचूंगा। मैं अपने पर ही चकित हूं।" जब पहली बार हृदय में धर्म का आविर्भाव होता है तो सभी चकित होते हैं, आश्चर्यचकित होते हैं। क्योंकि हम धन के पागल कभी ध्यान के लिये पागल हो जायेंगे, इसका विचार ही नहीं उठा था; कि हम पद के पागल, कभी प्रभु के दीवाने हो उठेंगे, इसका स्वप्न भी नहीं जगा था; कि हम कूड़ा-करकट इकट्ठा करनेवाले, कभी भीतर के खजाने से हमारी पहचान हो जायेगी, ऐसा कोई हमसे लाख कहता तो भी हम भरोसा न करते।

और कहा है। जो जागे हैं उनसे पूछो। वे यही कह रहे हैं कि परमात्मा का राज्य तुम्हारे भीतर है। हम सुन भी लेते हैं, लेकिन मन भरोसा नहीं करता। हम सिर भी झुका लेते हैं। हम बुद्धों, क्राइस्टों के चरणों में जाकर नमस्कार भी कर आते हैं, मगर वैसे के वैसे वापिस लौट आते हैं। न कोई स्नान होता, न कोई ध्यान होता, न हमारे जीवन में उस परम का कोई स्वाद जन्मता है।

यहां तो एक जीता-जागता हुआ धर्म पैदा हो रहा है--नाचता हुआ धर्म, हंसता हुआ धर्म। मैं जीवन के गहन प्रेम में हूं और वही तुम्हें सिखा रहा हूं। मैं जीवन विरोधी नहीं हूं। मैं तुम्हें जीवन का त्याग नहीं सिखा रहा हूं। जीवन को कैसे भोगा जाये, यही सिखा रहा हूं। यही तो अड़चन है पंडित-पुरोहितों को, क्योंकि वे समझते हैं मैं भोगी हूं। ठीक ही समझते हैं। क्योंकि मेरी धारणा है कि परमात्मा महाभोगी है। परमात्मा भोग रहा है इन वृक्षों की हरियाली, इन चांद-तारों के प्रकाश को। परमात्मा बड़ा वैभवशाली है। यह सारा वैभव उसका है। इसलिये तो हम उसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का अर्थ है : जिसका सारा ऐश्वर्य है।

परमात्मा त्यागी नहीं है। भूलकर भी मत सोचना कि परमात्मा तुम्हें मिलेगा तो लंगोटी लगाये होगा। भूलकर भी मत सोचना। यह तो हो सकता है कि फूलों का हार उसने पहना हो; लंगोटी से कोई संबंध नहीं जुड़ता उसका। यह तो हो सकता है कि चांद-तारों का हार उसने पहना हो, कि सूरज उसके मुकुट में जड़े हों कि उसके हाथ में बांसुरी हो और अनाहद का नाद हो रहा हो। यह तो हो सकता है मगर लंगोटी... परमात्मा से उसका कोई संबंध नहीं जुड़ता।

तुम सोचते हो लंगोटी लगानेवाला परमात्मा ऐसा प्यारा जगत निर्मित कर सकता है? लंगोटी लगानेवाला परमात्मा गुलाब के फूल बनायेगा, कि कमल खिलायेगा, कि जुही में गंध भरेगा, कि तितलियों के पंख रंगेगा? तुम जरा सोचो। त्यागी परमात्मा इतना सुंदर जगत निर्मित करेगा? क्यों? यह तो महाभोगी परमात्मा ही कर सकता है। यह जगत उसके भोग का शाश्वत प्रमाण है।

और मैं तुम्हें त्यागी नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हें भोग की कला देना चाहता हूं कि कैसे भोगो, कि इतने गहरे भोगो कि तुम्हें उस महाभोगी से मिलन हो जाए। ऐसे नाचो की नाच में खो ही जाओ कि वही रह जाये शेष, तुम मिट ही जाओ। ऐसे गाओ कि तुम्हारा गीत कब उसका गीत हो गया, तुम्हें पता भी न चले। और वैसी घड़ी आ जाती है, गाते-गाते जब तुम्हें स्वयं का विस्मरण हो जाता है तो गीत तुम्हारा नहीं रह जाता। नाचते-नाचते जब तुम्हें याद ही नहीं रह जाती है कि कौन नाच रहा है, नाच ही बचता है, नर्तक नहीं बचता कोई, तब तुम ध्यान रखना, फिर वही तुम्हारे भीतर नाचता है।

यह तो बारीक मामला है, सूक्ष्म मामला है, नाजुक है। यह तो सिर्फ उसी को अनुभव होगा जिसको अनुभव होगा। बाहर से तो पता ही नहीं चलेगा। बाहर से तो तुम मीरा में और नर्तकी में क्या भेद कर पाओगे? यह भी हो सकता है कि नर्तकी ज्यादा अच्छा नाचे, ज्यादा प्रशिक्षित हो। मीरा के नाच में, हो सकता है, थोड़ा अनगढ़पन हो, थोड़ी अल्हड़ता हो। होनी ही चाहिये। इतने मस्त लोग कहां नियम की फिक्र करेंगे! कोई पैरों की गिनती थोड़े ही करेगी मीरा, कि कहीं पैर भूल-चूक का तो नहीं पड़ रहा है! मीरा तो मस्ती में नाचेगी, तो कुछ भूल-चूक भी हो सकती है। नर्तकी बिल्कुल गणित से नाचेगी, भूल-चूक नहीं होगी। बाहर से तो शायद तुम्हें नर्तकी के नृत्य में ही ज्यादा कला मालूम पड़े, मगर भीतर नर्तकी मौजूद है, हिसाब-किताब बिठाकर नाच रही है। उसकी नजर तुम्हारे नोटों पर लगी है। उसके नाच में हेतु है। और उसके नाच में अहंकार की तृप्ति है।

मीरा को पता ही नहीं है... लोक-लाज छोड़... । उसे पता ही नहीं है कि कब उसका आंचल सरक गया है। बीच बाजार में नाच रही है, लोग क्या कहेंगे! होश कहां है! यह मैं का भाव कहां है! भीतर कोई नहीं है अब।

तो जब मीरा नाचती है तो जानना कि कृष्ण नाचते हैं। जब भक्त नाचते हैं तो जानना कि भगवान नाचते हैं। मगर यह तो भीतर के स्वाद का भेद है। यह तुम नाचोगे तो पता चलेगा। तुम्हें पता चलता रहेगाः एक घड़ी आयेगी, जब तक तुम रहोगे और फिर अचानक तुम नहीं हो! और जहां से तुम नहीं हो वहीं से नृत्य धार्मिक हुआ, वहीं से नृत्य ध्यान हुआ।

नाचो! सोचो मत, विचारो मत। और-और चकित होने की घड़ियां घटेंगी। और-और आश्चर्य तुम्हारी प्रतीक्षा करते हैं।

तीसरा प्रश्न : जीवन में दुख-ही-दुख क्यों हैं? परमात्मा ने यह कैसा जीवन रचा है?

जीवन दुख-ही-दुख नहीं है। यह तुमसे किसने कहा? हां यहां दुख भी हैं, लेकिन दुख केवल भूमिकाएं हैं सुख की। जैसे फूल के पास कांटे लगे हैं, वे सुरक्षायें हैं फूल की। कांटे फूलों के दुश्मन नहीं हैं; उनके रक्षक हैं, पहरेदार हैं। कांटे फूलों के सेवक हैं।

जीवन दुख-ही-दुख नहीं है। यद्यपि दुख यहां हैं। पर हर दुख तुम्हें निखारता है और बिना निखारे तुम सुख को अनुभव न कर सकोगे। हर दुख परीक्षा है। हर दुख प्रशिक्षण है। ऐसा ही समझो कि कोई वीणावादक तारों को कस रहा है। अगर तारों को होश हो तो लगेगा कि बड़ा दुख दे रहा है, मीड़ रहा है, तारों को कस रहा है,

बड़ा दुख दे रहा है! लेकिन वीणावादक तारों को दुख नहीं दे रहा है; उनके भीतर से परम संगीत पैदा हो सके, इसका आयोजन कर रहा है। तबलची ठोंक रहा है तबले को हथौड़ी से। तबले को अगर होश हो तो तबला कहे : बड़ा दुख है, जीवन में दुख-ही-दुख है! जब देखो तब हथौड़ी, चैन ही नहीं है। मगर तबलची तबले को सिर्फ तैयार कर रहा है कि नाद पैदा हो सके।

दुख नहीं है, जैसा तुम देखते हो वैसा। परमात्मा तुम्हें तैयार कर रहा है। यह सुख की अनंत यात्रा है। लेकिन यात्रा में कुछ कीमत चुकानी पड़ती है, मूल्य चुकाना पड़ता है। सोने को शुद्ध होने के लिये आग से गुजरना पड़ता है। बीज को वृक्ष होने के लिये टूटना पड़ता है। नदी को सागर होने के लिये खोना पड़ता है। इस सबको तुम दुख कहोगे? दुख कहोगे तो चूक गये बात। यह कोई भी दुख नहीं है। ऐसा जो जानता है वही जानता है। यहां दुख भी हैं; सुख भी हैं। लेकिन हर दुख सुख की सेवा में रत है। यहां कांटे भी हैं, फूल भी हैं लेकिन हर कांटा फूल की सेवा में रत है।

हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

और जिनकी आंखें कभी रोई नहीं, उनकी मुस्कान बासी होती है। उनकी मुस्कान में तुम धूल जमी पाओगे। उनकी मुस्कान में धुलावट नहीं होती। उनकी मुस्कान में चमक नहीं होती। जो रोये ही नहीं कभी, जिनकी आंखों से आंसू नहीं बहे कभी, उनके ओंठ गंदे होते हैं। आंख से आंसू बहते रहें, तो ओंठ ताजे होते हैं, सद्यःस्नात होते हैं। जो रो सकता है, जब हंसता है, तो उसकी हंसी में फूल झरते हैं। और जो रोने की कला जानता है उसके तो आंसुओं में भी फूल झरने लगते हैं। जो पूरा-पूरा निष्णात हो जाता है उसके आंसू भी सुंदर हैं, उसकी मुस्कराहट भी सुंदर है।

अगर समझ हो तो तुम जब माला गूंथो फूलों की, अगर होशियार हो तो कांटों का भी उपयोग कर सकते हो। देखने की आंख चाहिये।

अब तुम देखते हो, नये युग में गुलाब से भी ज्यादा आदृत कैक्टस हो गया है। देखने की आंख चाहिये। लोगों ने घरों में गुलाब नहीं लगा रखे हैं, लोगों ने घरों में कैक्टस रख छोड़े हैं। कैक्टस! आज से तीन सौ साल पहले या दो सौ साल पहले दुनिया में अगर कोई घर में अपने कैक्टस रखता तो लोग उसको पागल समझते, कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है, यह धतूरे का पेड़ कहां भीतर लिये आ रहे हो! यह जहर है! इसका कांटा किसी को गड़ जायेगा, मौत हो जायेगी। लोग इस तरह के कैक्टस के झाड़ तो खेतों की बागुड़ में लगाते थे सिर्फ, ताकि जानवर न घुस जायें, कोई चोरी खेत से न कर ले जाये। इनको कोई घर में लाता था?

लेकिन मनुष्य की संवेदनशीलता विकसित होती गई है, परिष्कार हुआ है। अब कैक्टस में भी एक सौंदर्य है! और निश्चित सौंदर्य है। अब दिखाई पड़ना शुरू हुआ कैक्टस का सौंदर्य। ऐसी ही घटना घटती है। आंखवाले को दुख में भी सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। सुख दिखाई पड़ने लगता है।

हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

प्रार्थना बेला पुजारिन,
क्यों प्रकम्पित गात तेरा।
है यहां अवहेलना भी,

पर यहां वरदान भी है।
हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

डगमगाते क्यों चरण,
मंजिल तुझे करती इशारा।
देख इस अनजान पथ की,
एक चिर पहचान भी है।
हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

अबल है या सबल मानव,
हृदय युग-युग की समस्या।
है यहां यदि प्राप्ति आशा,
तो यहां प्रतिदान भी है।
हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

आंसुओं की लहरियों पर,
हास का सरसिज खिला है।
है हृदय में करुण क्रन्दन,
पर स्वरों में गान भी है।
हैं नयन में अश्रु भी यदि,
अधर पर मुस्कान भी है।

थोड़ा जागो। थोड़ा खोजो। किसने तुमसे कहा कि जीवन में दुख ही दुख है? ये तुम्हारे तथाकथित त्यागी-तपस्वी, ये तुम्हें इसी तरह के व्यर्थ बातें कहते रहे हैं : जीवन में दुख ही दुख है, कांटे ही कांटे हैं, सब बुरा ही बुरा है। त्यागो। भागो। छोड़ो।

लेकिन ख्याल रखना, जो जीवन को त्यागता है, जीवन को छोड़ता है, उसने परमात्मा का अपमान किया है। वह नास्तिक है। वह आस्तिक नहीं है। क्यों मैं ऐसा कह रहा हूं? खूब सोचकर ऐसा कह रहा हूं। अगर तुम चित्रकार को प्रेम करते हो तो उसके चित्र का त्याग कैसे करोगे? और अगर तुम मूर्तिकार को प्रेम करते हो तो उसकी मूर्ति का त्याग कैसे करोगे? और अगर तुमने संगीतज्ञ को चाहा है तो तुम उसकी वीणा को सिर-माथे धरोगे। परमात्मा ने अगर यह सृष्टि की है तो तुम इसका त्याग कैसे करोगे? इसके त्याग में तो परमात्मा के प्रति शिकायत है। इसके त्याग में तो यह घोषणा है कि यह तूने क्या बनाया? इसके त्याग में तो इस बात की घोषणा है कि तुझसे अच्छा तो हम जानते हैं कि कैसा जगत होना चाहिये था, हम बना लेते तुझसे अच्छा, यह तूने क्या बनाया? यह कैसा दुख ही दुख भर दिया है?

नहीं, दुख ही दुख नहीं है। दुख पृष्ठभूमि है सुख की। और जैसे रात में ही तारे दिखाई पड़ते हैं, दिन में भी तारे होते हैं आकाश में, कहीं भाग नहीं गये हैं, कोई दिन में संन्यास नहीं लेते तारे। दिन में भी आकाश तारों से भरा है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि पृष्ठभूमि नहीं है। अंधेरे की पृष्ठभूमि चाहिये! इसलिये जितनी अंधेरी रात होती है उतने तारे चमकते हैं। अमावस की रात तारों में जैसी ज्योति होती है वैसी कभी नहीं होती। काले ब्लैकबोर्ड पर लिखते हैं न हम सफेद खड़िया से; सफेद दीवाल पर लिखो, कुछ दिखाई न पड़ेगा। लिखावट भी हो जायेगी, कुछ दिखाई न पड़ेगा। ब्लैकबोर्ड पर लिखना पड़ता है, तब कुछ दिखाई पड़ता है। पृष्ठभूमि चाहिये। दुख सुख की पृष्ठभूमि है। कांटे फूलों की पृष्ठभूमि हैं। आंसू मुस्कुराहटों की पृष्ठभूमि हैं। और तुम पृष्ठभूमि को छोड़ दोगे, तो तुम्हारा जीवन बिल्कुल नीरस हो जायेगा, अस्त-व्यस्त हो जायेगा। तुम्हारे जीवन की सारी आधारशिला गिर जायेगी। मगर त्यागी-तपस्वी यही सिखाता रहा है कि भागो। वह तुम्हें अंगुलियां गड़ा-गड़ाकर दिखाता रहा है... तुम्हारी आंख में अंगुलियां डाल डालकर दिखाता रहा है कि यह दुख, यह दुख। वह दुखों की गिनती करवाता रहा है। किसी ने तुम्हें सुखों की गिनती नहीं करवाई अब तक।

और मैं तुमसे कहता हूं : ऐसा कोई दुख ही नहीं है जो सुख का आयोजन न कर रहा हो। हर दुख सुख के लिये पृष्ठभूमि है; सुख के तारों के लिये अमावस की रात है। इसे जानना मैं जीवन की कला मानता हूं। तब यह सारा जगत अपूर्व सौंदर्य से भरा हुआ मालूम होगा। और उस अपूर्व सौंदर्य में ही परमात्मा की पहली झलक मिलती है।

ख्याल रखो, जिस जीवन में चुनौतियां नहीं हैं दुख की वह जीवन नपुंसक हो जाता है। जिस जीवन में बड़े प्रश्न नहीं जगते उस जीवन में बड़ा चैतन्य पैदा नहीं होता।

वह जीवन का पथ है सूना
जिसमें कांटों के तार नहीं,
वह मानव का मानस सूना
जिसमें उठते उदगार नहीं!

है धूलि-पिण्ड वह मानव-उर
जिसमें यदि दहकी आग नहीं,
वह जीवन का संगीत शून्य
जिसमें करुणा का राग नहीं!

वे कांच-खण्ड सी आंखें हैं
जिनमें आंसू की धार नहीं,
वह है पशुओं का-सा जीवन
जिसमें असीम का प्यार नहीं!

वह निद्रा क्या है जड़ता है
जिसमें स्वप्निल-संसार नहीं,
वह विजय-हर्ष, क्या विजय-गर्व

जिसने देखी यदि हार नहीं!

उस सत्य प्रेम में सिद्धि कहां
जिसमें वियोग का स्वाद नहीं,
वह जीवन क्या बस मौत कहो
जिसमें पीड़ा अवसाद नहीं!

उस जीवन में आनंद कहां
जिस पर नैराश्य-प्रहार नहीं,
यदि सूने अधरों के पट पर
आहों की वंदनवार नहीं!

यदि सही न पीर प्रतीक्षा की
उस पाने में कुछ सार नहीं
जिसको न व्यथा के नैन मिले
वह देख सका संसार नहीं!

दुख को बदलो। दुख को सुख की सेवा में लगाओ। दुख को सुख का निखार बनाओ। दुख से भागो मत। जो भागता है, बुद्धिहीन है। जो जागता है, बुद्धिमान है। और ध्यान रखना, दुख न हो तो जाग ही न सकोगे।

तुमने एक मजे की बात देखी, कि अगर रात कोई मधुर, मीठा सपना चलता हो तो कभी नींद नहीं टूटती! जैसे तुम सम्राट हो गये, सोने के महल हैं, सुंदर स्त्रियां हैं, शराब की महफिल जमी है, नर्तकियां नाच रही हैं... नींद टूटेगी? क्यों टूटेगी? इतना मधुर सपना चल रहा है, नींद क्यों टूटेगी? मधुर ही मधुर है, नींद क्यों टूटेगी? लेकिन तुम एक दुख-स्वप्न देखते हो कि एक सिंह तुम्हारे पीछे लगा है और पास आता चला जा रहा है और तुम भाग रहे हो, प्राण छोड़कर भाग रहे हो... पहाड़ियां... और भागे जा रहे हो, बड़ी-बड़ी छलांगें मार रहे हो, पत्थरों से टकरा रहे हो, गिर रहे हो, उठ रहे हो, कांटे छिद गये हैं, पैर लहू-लुहान हैं और सिंह है कि चला आ रहा है और उसकी गर्जना और पास और पास सुनाई पड़ती है... और आखिर में सिंह ने तुम्हारी पीठ पर हाथ रख दिया। अब तुम्हारी नींद लगी रहेगी? एकदम नींद खुल जायेगी। हालांकि नींद खुलेगी, तुम पाओगे : कोई नहीं है, पत्नी ने सिर्फ हाथ रखा है पीठ पर। कोई सिंह इत्यादि नहीं है, सिर्फ पत्नी है। वह नींद में भी चिंतित रहती है, कहीं भाग-भूग तो नहीं गये। हाथ रखे हुए है, कि कोई गलत सपना तो नहीं देख रहे हो!

दुख-स्वप्न तत्क्षण नींद तोड़ देता है। इस जगत में जो दुख हैं वे जागरण के लिये उपाय हैं। यह जगत बिल्कुल सोया हुआ होता अगर यहां दुख न होते। जरा सोचो, दुख न होता तो इस जगत में बुद्ध न होते। बुद्धत्व हुआ इसलिये कि इस जगत में दुख है। दुख है तो आदमी ने विचार किया, सोचा, ध्यान किया। दुख हैं तो आदमी ने खोज की, अन्वेषण किया। दुख हैं तो कांटे चुभे। कांटे चुभे तो फूलों की तलाश शुरू हुई। मृत्यु है, इसलिये अमृत की खोज शुरू होती है। तो तुम मृत्यु को दुश्मन न समझो।

बुद्ध की कथा तो तुमने सुनी। राह पर रथ पर बैठे हुए उन्होंने देखा एक बीमार बूढ़ा और पूछा सारथी से : इसे क्या हो गया है? तब तक उन्होंने कोई बीमार और बूढ़ा नहीं देखा था। उनके पिता ने ऐसी व्यवस्था की

थी, क्योंकि जब वे पैदा हुए थे तो ज्योतिषियों ने कहा था कि इन्हें थोड़े सम्हालकर रखना; या तो यह बच्चा चक्रवर्ती सम्राट होगा और या फिर महाबुद्ध होगा। कौन बाप अपने बेटे को देखना चाहता है कि वह बुद्ध हो जाये! चक्रवर्ती सम्राट सभी बाप चाहते हैं कि हमारे बेटे हो जायें। तो बाप ने कहा कि यह तो बड़ी खतरनाक बात तुमने कह दी। मैं कैसे रोकूं मेरे बेटे को कि वह बुद्ध न हो पाये, चक्रवर्ती सम्राट ही हो? तो समझदारों ने सलाह दी कि इसे कभी बुढ़ापे का पता न चले, बीमारी का पता न चले, मुर्दा इसे कभी दिखाई न पड़े। अब यह सोचते हो, उन्होंने जो सलाह दी, एक अर्थ में बड़ी महत्वपूर्ण सलाह दी! उन्होंने कहा : ये ही चीजें हैं, जिनकी चोट पड़ती है और जिनकी चोट में आदमी जाग जाता है। इस पर चोट ही मत पड़ने देना। इसको सुलाये रखो। इसे सुख के सपनों में सुला दो।

तो बुद्ध के पिता ने महल बनवा दिये, अलग-अलग ऋतुओं के लिये अलग-अलग महल। और हर महल में ऐसा इंतजाम किया कि सुंदरतम स्त्रियां राज्य की इकट्ठी कर दीं, सौंदर्य ही सौंदर्य दिखाई पड़े। मीठा ही मीठा सब। आज्ञा थी मालियों को कि वृक्षों में पत्ते कुम्हलायें, इसके पहले अलग कर दिये जायें, कि कहीं वृक्षों के पत्तों को कुम्हलाया देखकर, सूखा देखकर बुद्ध के मन में यह सवाल न उठ जाये कि कहीं जीवन भी तो इसी तरह कुम्हला न जायेगा! उनकी बगिया से रात में सब फूल अलग कर दिये जाते थे, जो सूखने के करीब होते थे। बुद्ध ने कभी सूखा फूल नहीं देखा था। कोई बूढ़ा महल में प्रवेश नहीं कर सकता था। और बुद्ध को कभी जब राजधानी में निकलना होता था तो रास्ते खाली कर दिये जाते थे, कि रास्तों पर कोई बूढ़ा न हो, कोई बीमार न हो, कोई कुरूप न हो, कोई अपंग न हो, कोई मुर्दे की खबर ही बुद्ध को न मिले।

बुद्ध जब तक जवान हो गये उन्हें पता ही न था कि मौत होती है। तो स्वभावतः जब पहली दफा उन्होंने बूढ़े को देखा तो वे चौंके। सारथी ने कहा कि इसे कुछ हो नहीं गया है, कुछ खास बात नहीं हो गयी सभी इसी तरह बूढ़े हो जाते हैं। बुद्ध ने तत्क्षण पूछा क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा? और सारथी ने कहा कि होना ही पड़ेगा, कोई अपवाद नहीं। और तब बुद्ध ने देखा एक मुर्दा। उन्होंने पूछा : इसे क्या हो गया है? लोग क्यों इसे बांधकर कंधों पर उठाये लिये जाते हैं? सारथी ने कहाः यह आदमी मर गया है। यह बुढ़ापे के आगे का कदम है।

मर गया! मरना यानी क्या? बुद्ध को पहली दफा मृत्यु का आभास हुआ। और बुद्ध ने पूछा : क्या मैं भी मर जाऊंगा? क्या एक दिन मुझे भी लोग इसी तरह बांधकर कंधे पर रखकर ले जायेंगे? फिर क्या करते हैं?

सारथी ने कहा : फिर जला देते हैं, और तो कोई उपयोग नहीं।

"तो मुझे भी एक दिन जला देंगे!" और बुद्ध ने कहा : तब लौटा लो रथ को वापिस। वे जा रहे थे युवक-महोत्सव का उदघाटन करने, उन्होंने कहा : रथ को वापिस लौटा लो। अब न कोई युवक है न कोई महोत्सव है। अब मुझे जीवन की तलाश करने दो। अब मुझे कुछ ऐसे तत्व को खोजने दो जिसकी मृत्यु नहीं होती और जो बूढ़ा नहीं होता।

देखते हो दुख न होता तो बुद्ध कभी पैदा न होते। दुख न होता तो जगत में धर्म होता ही नहीं। जगत में धर्म इसलिये है कि दुख है और दुख न होता तो तुम्हें परमात्मा की कभी याद ही न आती। सुख में तो सभी लोग परमात्मा को भूल ही जाते हैं। दुख में ही थोड़ी-बहुत याद आती है। इसलिये दुख का तुम उपयोग समझो, दुख का अभिप्राय समझो।

संसार में दुख है, क्योंकि संसार में अमृत छिपा पड़ा है। दुख तुम्हें चौंकायेगा, जगायेगा, तो अमृत के तुम मालिक हो जाओगे। मृत्यु के पीछे अमृत है, दुख के पीछे सुख है। इस जीवन के रसायन को समझो। दुख-दुख

कहकर भाग मत खड़े होना। भागकर कहां जाओगे? दुख-दुख कहकर सिकुड़ मत जाना, डर मत जाना, भयभीत मत हो जाना। दुख तो चुनौती है।

वह जीवन का पथ है सूना
जिसमें कांटों के तार नहीं,
वह मानव का मानस सूना
जिसमें उठते उदगार नहीं!
वे कांच-खंड सी आंखें हैं
जिनमें आंसू की धार नहीं,
वह है पशुओं का-सा जीवन
जिसमें असीम का प्यार नहीं!

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव के महा कंजूस सेठ के पास मस्जिद के लिये कुछ दान मांगने गया। उस सेठ ने कभी किसी को दान दिया ही नहीं था। उसकी यही ख्याति थी कि जीवन में उसने कभी किसी को दान नहीं दिया था। उसके पास था बहुत, मगर वह एक से एक तरकीबें निकालता था। एक दफा कुछ लोग दान मांगने गये थे, उन्होंने कहा कि हम अनाथालय के लिये दान मांगते हैं। तो उसने कहा : सुनो मेरी मां अस्सी साल की बूढ़ी है और भूखों मर रही है। मेरा भाई लंगड़ा है, दाने-दाने को मोहताज है। मेरा पत्नी बीमार पड़ी है, दवा का भी इंतजाम नहीं।

जो लोग आये थे दान मांगने, वे तो बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा : आप इतने कष्ट में हैं, यह तो हमें मालूम ही न था। उसने कहा : कष्ट में मैं नहीं हूं, मगर मेरी मां अस्सी साल की है, उसकी मैं कुछ सहायता नहीं करता; मेरा भाई लंगड़ा है, उसकी मैं कोई सहायता नहीं करता; मेरी पत्नी बीमार पड़ी है, खाट से लगी है, उसकी मैं दवा नहीं करता--तो जब मैं अपनों की ही नहीं करता तो मैं दूसरों की क्यों फिकिर करूं? होंगे अनाथ। मेरे घर में ही काफी अनाथ हैं।

बहुत तरह से लोगों ने कोशिश की थी, लेकिन कभी उसने किसी को दान दिया नहीं था। जब मुल्ला उससे दान मांगने गया और मुल्ला ने बड़ी करुण गाथा सुनाई कि मस्जिद बिल्कुल गिरी जा रही है और उपासकों के ऊपर किसी दिन गिर जायेगी तो हत्या हो जायेगी--और आपके रहते... ! तो उसने कहा : एक काम कर, मेरी एक आंख नकली है और एक असली है। तू बता दे कि कौन-सी नकली है? अगर तूने ठीक-ठीक बता दिया तो मैं दान दूंगा।

मुल्ला ने एक क्षण उसकी आंखें देखीं और कहा कि आपकी बाई आंख नकली है। सेठ बहुत चौंका। उसने कहा : तूने जाना कैसे? उसने कहा कि जाना इसलिये कि बायीं आंख में थोड़ी दया-ममता मालूम होती है। यह नकली होनी चाहिये आंख। असली आंख तो बिल्कुल पत्थर की है, उसमें तो कोई दया-ममता का सवाल नहीं है।

लोग संवेदन-शून्य हो जाते हैं। उनकी आंखें पथरीली हो जाती हैं। अगर सिकुड़ना शुरू किया तो संवेदना खो जायेगी। और संवेदना प्रार्थना है। तुम अगर धीरे-धीरे दुख-ही-दुख देखकर कठोर होते गये... और कठोर न होओगे तो क्या करोगे? अगर दुख देखोगे तो कठोर हो ही जाओगे, क्योंकि दुख से सुरक्षा कठोरता में है। इसलिये तुम्हारे तथाकथित त्यागी-तपस्वी कठोर हो जाते हैं। उनके हृदय पत्थर हो जाते हैं। उनके जीवन का काव्य खो जाता है। वे बातें करुणा की भला करते हों और प्रेम की भला चर्चा चलाते हों और ब्रह्मसूत्रों पर प्रवचन देते हों, लेकिन उनके भीतर कहीं कोई झरना नहीं होता--आनंद का, रस का, प्रेम का। हो ही नहीं

सकता। जीवन में दुख-ही-दुख है। दुख से बचना है तो आदमी को कठोर होना पड़ेगा। जितने तुम कठोर हो जाओगे उतने ही दुख से बचाव हो जायेगा। जितने तुम सदय रहोगे, कोमल रहोगे, उतना ही दुख तुम पर हमला करेगा और पीड़ा देगा। दुख से सुरक्षा कठोरता में है।

इसलिये मैं तुमसे नहीं कहता कि जीवन में दुख-ही-दुख है, क्योंकि इसका अंतिम परिणाम बहुत संघातक है। अगर जीवन में दुख-ही-दुख है तो तुम पत्थर हो जाओगे, तुम पाषाण होकर मरोगे।

नहीं, जीवन में बहुत सुख भी है। दुख नहीं है, ऐसा मैं नहीं कहता, क्योंकि वह तो झूठ होगा। वह तो दूसरी अति हो जायेगी। कोई कहते हैं कि जीवन में सुख है ही नहीं; वह एक अति। मैं तुमसे न कहूंगा कि जीवन में दुख ही नहीं है; दुख है, खूब है! मगर सुख के मुकाबले कुछ भी नहीं। और सारे दुख को सुख की सेवा में नियोजित किया जा सकता है। सीढ़ियां बनाओ दुख की। राह के ऊपर पड़े पत्थरों को पत्थर और बाधायें ही मत समझो, सीढ़ियों में बदल लो। यही जीवन की कला है। इसको ही मैं धर्म कहता हूं। धर्म त्याग नहीं है--महाभोग है।

चौथा प्रश्न : प्रश्न का कोई अस्तित्व नहीं, यह जानते हुए विनम्रतापूर्वक मैं जानना चाहूंगा--मा दर्शन ने गुरुकुल कांगड़ी के वेदज्ञाता को आपके भगवान होने के विषय में उत्तर दिया : "भगवान तो आप भी हैं, लेकिन आपको स्मरण नहीं है।" मेरी मंद बुद्धि के अनुसार यह उत्तर वही दे सकता है, जिसे स्वयं स्मरण है। और जिसे स्वयं स्मरण है, वह स्वयं को भी तो भगवान कह सकता है! यदि स्मरण होते हुए भी नहीं कहा, तो इसका अर्थ है--निर-अहंकार के कारण नहीं कहा। लेकिन तब इस उदघोषणा से बचा क्यों जाये?

पूछा है भाई महकवाला, दिल्लीवालों ने। दर्शन भी दिल्ली से है, शायद इसी से अड़चन हुई होगी।

प्रश्न को ठीक से विश्लेषण करना जरूरी है, क्योंकि प्रश्न करीब-करीब उत्तर अपने में लिये हुए है!

पहली तो बात, कहा कि प्रश्न का कोई अस्तित्व नहीं। फिर पूछते क्यों हो? जब इतना पता ही है कि प्रश्न का कोई अस्तित्व ही नहीं, फिर पूछते क्यों हो? यह तो ऐसे ही हुआ कि गये डाक्टर के पास, कहा बीमारी का कोई अस्तित्व नहीं, फिर भी हाथ तो देखें, कुछ उपचार तो लिख दें, इंजेक्शन तो लगा ही दें, यद्यपि बीमारी का तो कोई अस्तित्व नहीं! क्यों शुरुआत की इस बात की कि प्रश्न का कोई अस्तित्व नहीं? शायद दिखाना चाहते हैं कि मैं और प्रश्न, मेरे लिये प्रश्न इत्यादि का कोई अस्तित्व नहीं है! लेकिन भीतर प्रश्न ही प्रश्नों का अंबार भरा होगा।

नाम तो है भाई महकवाला, मगर महक तो निष्प्रश्न चित्त में होती है! प्रश्नों से सिर्फ दुर्गंध ही उठती है, महक नहीं उठती। प्रश्नों से तो सिर्फ बास उठती है, दुर्गंध उठती है। निष्प्रश्न चित्त में समाधि की सुवास आती है। सुना होगा कि प्रश्न नहीं होने चाहिये; निष्प्रश्न होना चाहिए। इसलिये शुरुआत किया, लेकिन बचकर न जा सकोगे। ऊपर-ऊपर से कहोगे, इससे क्या होता है? भीतर तो प्रश्न भरे हैं।

और प्रश्न भी तुम्हारा अपना नहीं, दर्शन के संबंध में। दर्शन को पूछना हो दर्शन पूछे, गुरुकुल कांगड़ी के वेदज्ञाता को पूछना हो गुरुकुल कांगड़ी के वेदज्ञाता पूछें। तुम तो दोनों नहीं हो। तुम नाहक बीच में क्यों उतर आये? यह प्रश्न तुम्हारा नहीं है, फिर भी तुम्हारे मन को मथा होगा, नहीं तो यह पूछते क्यों? पर इतनी ईमानदारी भी नहीं है कि साफ कह दो कि मेरे मन में इससे पीड़ा हो रही है, इसलिये मुझे पूछना है; यह प्रश्न मुझे परेशान कर रहा है, इसलिये मुझे पूछना है।

इस देश में इस तरह का पाखंड बहुत फैल गया है। मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं कि ऐसे तो हमें ध्यान हो गया, मगर सोचा कि आपसे भी पूछ आयें कि ध्यान कैसे करना! यह भी नहीं कह सकते कि हमें ध्यान नहीं हुआ है। ध्यान तो हो ही गया है, समाधि का अनुभव हो रहा है; मगर ऐसे ही पूछने चले आये। मैं कहता हूं : काहे इतनी मेहनत की? नाहक परेशान हुए! जब आपको ध्यान हो ही गया है तो मैं कुछ और न कहूंगा अब। जब तक आप यह नहीं कहेंगे कि मुझे ध्यान नहीं हुआ है तब तक मैं क्यों कुछ कहूं? मेरा समय क्यों खराब करते हो? समाधिस्थ व्यक्तियों को किसी से जाकर पूछने की कोई जरूरत नहीं है। बात घट ही गई।

लेकिन ऐसा पाखंड है हमारे देश में। है कुछ स्थिति, कहेंगे कुछ और। हम मुखौटे ओढ़ने में बड़े कुशल हो गये हैं।

अब तुम पूछते हो : "प्रश्न का कोई अस्तित्व नहीं, यह जानते हुए विनम्रतापूर्वक मैं जानना चाहूंगा!" अब यह विनम्रतापूर्वक भी कुछ विनम्रता नहीं है इसमें। क्योंकि किसी दूसरे के संबंध में प्रश्न पूछना कैसे विनम्रता हो सकती इसमें? प्रश्न में लांछन है। प्रश्न में निंदा है। दर्शन ने कुछ गलत किया है, इसका आग्रह है। इसमें विनम्रता हो कैसे सकती है? नहीं है तो कहने की कोई जरूरत भी नहीं है।

लेकिन ऐसा ही हमारे देश में चलता है। "विनम्रतापूर्वक पूछना चाहता हूं... ।" प्रश्न ही अविनम्र है। प्रश्न ही अहंकार को लगी चोट से उठा है। शायद आप भी थोड़े-बहुत वेदज्ञाता होंगे। शायद गुरुकुल कांगड़ी से आपका भी कुछ नाता होगा। शायद चोट आपके ऊपर भी वही है जो गुरुकुल कांगड़ी के वेदज्ञाता को थी। लेकिन हटाकर पूछ रहे हैं, खुद बाहर रहकर पूछना चाहते हैं।

ईमानदारी सीखो! कहो कि चोट लगी है मुझे, यह बात मुझे जंची नहीं है, इसलिये पूछना है। तो प्रश्न में कुछ गर्मी होगी। प्रश्न को बिल्कुल निस्तेज कर डाला। पूछते हो : "मा दर्शन ने गुरुकुल कांगड़ी के वेदज्ञाता को आपके भगवान होने के विषय में उत्तर दिया--भगवान तो आप भी हैं, लेकिन आपको स्मरण नहीं है। मेरी मंद बुद्धि के अनुसार... ।" सच में तुम समझते हो कि तुम मंदबुद्धि हो? ईमान से मानते हो कि तुम मंदबुद्धि हो? ये आदतें छोड़ो। यहां हर कोई कहता है।

एक सज्जन आये और कहने लगे : मैं तो आपके पैर की धूल हूं। मैंने कहा : यह तो मुझे सदा से पता ही है। बस वे नाराज हो गये। मैंने कहा : आप खुद ही कहते हैं कि पैर की धूल हैं और मैंने स्वीकृति दी, तो आप नाराज क्यों होते हैं? वे यह थोड़े ही कह रहे थे कि मैं पैर की धूल हूं, वे तो यह बता रहे थे देखो मेरी विनम्रता; कि मैं अपने को आपके पैर की धूल बता रहा हूं। वे सुनना यह चाहते थे कि मैं उनसे कहूं कि नहीं-नहीं, आप और पैर की धूल! आप तो सिर पर रखे फूल हैं! तब वे खुश होते।

अब तुम कह रहे हो : "मेरी मंद बुद्धि के अनुसार... ।" अगर बुद्धि मंद ही है तो चुप रहो। अगर बुद्धि मंद नहीं है तो ही इस तरह के प्रश्नों में पड़ना चाहिये। लेकिन इसको हम शिष्टाचार समझते हैं। यह सब पाखंड है, शिष्टाचार नहीं। कहते हो : "मेरी मंद बुद्धि के अनुसार यह उत्तर वही दे सकता है जिसे स्वयं स्मरण है और जिसे स्वयं स्मरण है वह स्वयं को भी तो भगवान कह सकता है।"

दर्शन को स्मरण आ रहा है, पूरा-पूरा नहीं आ गया--जैसे सुबह नींद भी टूट गई और जागे भी नहीं हैं। दूधवाला दूध तौल रहा है द्वार पर खड़े होकर, थोड़ी-थोड़ी भनक पड़ रही है। बच्चे स्कूल जाने की तैयारी कर रहे हैं, थोड़ी-थोड़ी भनक पड़ रही है। पत्नी चौके में नाश्ता बना रही है, थोड़ी-थोड़ी बर्तन की आवाज भी आ रही है। पड़ोसी भी उठ गये हैं, पक्षी भी बोल रहे हैं बगीचे में। लेकिन तुम करवट लेकर और चादर ओढ़कर पड़े हो। थोड़े जाग भी गये हो, थोड़े जागे भी नहीं हो, आधे-आधे।

दर्शन वहीं है, आधी-आधी। भनक तो पड़ गई है, एहसास तो होने लगा है। दिन अब करीब ही है, सूरज निकलने को ही है। उसने उत्तर ठीक ही दिया।

चलती ट्रेन के स्लीपर में ऊपर वाले मुसाफिर की नींद खुली तो झुककर नीचे वाले से बोलाः भाई साहब, क्या बजा है? "बज के पांच"--जवाब मिला।

बज के पांच! थोड़ी देर बाद समझने की कोशिश कर चुकने के बाद उन्होंने फिर पूछा : भाई साहब, कित्ता बजा है? "बज के दस"--जवाब मिला।

"क्या बज के पांच, बज के दस लगा रखा है। साफ-साफ बताते नहीं कि टाइम क्या है?" डांटते हुए ऊपरवाले मुसाफिर ने कहा। नीचे वाले ने अपनी घड़ी दिखाते हुए सफाई दीः भाई साहब, जब छोटा कांटा है ही नहीं तो आप ही बताओ, मैं क्या बताऊं?

बज के पांच, बज के दस। ... अभी दर्शन का एक कांटा रास्ते पर आया है, दूसरा भी आ जायेगा। अभी वह इतना ही कह सकती है : बज के पांच, बज के दस! मगर इतना तो कहेगी! अभी वह मेरे संबंध में कह सकती है कि वे भगवान हैं, अभी अपने संबंध में जरा संकोच करती है। अभी बज के दस, अभी बज के पांच... । मगर जब एक कांटा चल पड़ा तो दूसरा भी चलेगा। घड़ी पूरे काम में लगी है, अब एक ही कांटा बिठाने की बात है। अगली बार तक जब वेदज्ञाता आयेंगे, दर्शन कहेगी : मैं भगवान हूं! तुम सुन लेना या तुम्हीं पूछ लेना उससे अब। अब मैं उसको आज्ञा देता हूं कि तेरा दूसरा कांटा भी आज बिठा दिया, अब तू फिकिर छोड़ कि बज के दस, बज के पांच; अब तो सीधा-सीधा कह देना कि इतने बजकर इतने।

यह जान लेने पर भी कि स्वयं भगवान भीतर बैठा हुआ है, जरूरी नहीं कि सभी उसकी घोषणा करें। बुद्ध ने सिद्धों के दो भेद किये हैं। एक को वे कहते हैं अर्हत और दूसरे को कहते हैं बोधिसत्व। अर्हत तो वे हैं जो जान लेते हैं और चुप रह जाते हैं। बोधिसत्व वे हैं जो जानते हैं और मकानों की मुंडेर पर चढ़कर सारे जगत को जगाते हैं। अर्हत ऐसा समाधिस्थ व्यक्ति है, जिसने जान लिया और चुप हो गया, किसी से कहना नहीं है। उसका तर्क यह है कि कौन समझेगा, कौन पहचानेगा? यह बात इतनी कठिन है कि सौ से कहो तो एकाध समझ पायेगा। और जो एकाध समझेगा उससे अगर न भी कहा होता तो देर-अबेर वह समझ ही लेता। जिसमें इतनी बुद्धिमत्ता थी, वह कितने देर तक रुकता समझने से, समझ ही लेता।

बोधिसत्व घोषणा करता है कि मैंने पा लिया है और तुम भी पा सकते हो। यहां मेरे पास दोनों तरह के फूल लगेंगे--अर्हत भी लगेंगे और बोधिसत्व भी लगेंगे। जो बोधिसत्व होंगे वे घोषणा करेंगे। जो अर्हत होंगे वे चुप रहेंगे। जानकर भी चुप रहेंगे।

तुमने अल हिल्ला.ज मंसूर का नाम सुना है। अदभुत सूफी हुआ। उसे लोगों ने सूली लगा दी, क्योंकि उसने घोषणा कर दी कि मैं ईश्वर हूं। उसके गुरु जुन्नैद ने अल हिल्ला.ज को कहा कि तू यह घोषणा मत कर। क्या तू समझता है मुझे पता नहीं है? मुझे भी पता है लेकिन मैं चुप हूं। तू भी चुप रह।

और जब गुरु ने शिष्य को कहा कि तू भी चुप रह तो अल हिल्ला.ज ने कहा कि आप कहते हैं तो चुप ही रहूंगा। लेकिन परमात्मा कि मर्जी कुछ और थी। अल हिल्ला.ज अर्हत नहीं हो सकता था। वह उसका गुणधर्म नहीं था। वह तो बोधिसत्व ही हो सकता था, तो जब भी मस्ती छाती और जब भी वह ध्यान में गहरा उतरता, फिर चिल्ला देताः अनलहक! जुन्नैद ने कहा देख, तू मानता ही नहीं। अल हिल्ला.ज ने कहा : मैं तो मानता हूं, मगर अब परमात्मा नहीं माने तो मैं भी क्या करूं? मैं जब तक रहता हूं, जब तक होश मैं अपना सम्हालता हूं

तब तक मैं चुप रहता हूं; लेकिन एक घड़ी आती है कि मैं खो जाता हूं और तब वही बोल देता है। फिर मैं क्या करूं? मेरा वश क्या?

जुन्नैद अर्हत है। अल हिल्ला.ज बोधिसत्व है। जुन्नैद भी वही जानता है लेकिन चुप रहा। बोधिसत्व चुप नहीं रह सकता। बोधिसत्व को बोलना होगा। अर्हत सदगुरु नहीं बनते; वे एकाकी यात्री होते हैं। अकेले अपनी मंजिल पर पहुंच जाते हैं और अकेले ही समाप्त हो जाते हैं, शून्य में लीन हो जाते हैं। बोधिसत्व सदगुरु होते हैं, वे घोषणा करते हैं। घोषणा करोगे तभी सदगुरु हो सकोगे। और बुद्ध ने कहा है : हो सके तो बोधिसत्व होना। न हो सके तो अर्हत होना ठीक है, क्योंकि बोधिसत्वों से औरों का भी जागरण होता है। जगाना। पुकारना। फिर चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े, चाहे प्राणों से ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े। वही हुआ मंसूर के साथ : हत्या कर दी लोगों ने। वही हुआ जीसस के साथ : हत्या कर दी लोगों ने।

बोधिसत्वों की हत्या हो जायेगी, हो सकती है। अर्हतों का कोई नुकसान नहीं होगा। अर्हत बोलेंगे ही नहीं वे चुप रहेंगे। जान लिया, हीरा मिल गया, कबीर कहते हैं गांठ में गठिया लिया, फिर चुप रहे, बताना क्या है? खोल-खोलकर क्या बताना है?

इसलिये यह मत सोचना कि पता होकर अनिवार्यता है घोषणा करने की। पता भी हो तो भी अनिवार्यता की कोई बात नहीं। और ऐसा भी तो जरूरी नहीं है कि जो घोषणा करे उसे पता ही हो, क्योंकि ऐसे भी लोग हैं जो बिना पता हुए घोषणा कर रहे हैं। इस जगत में सभी तरह का वैविध्य है। लेकिन इन चिंताओं में न पड़ो तो अच्छा। कुछ अपनी जिज्ञासाएं उठाओ, कुछ महक तुममें पैदा हो सके, ऐसे प्रश्न पूछो। कुछ अपने प्रश्न पूछो, निज के प्रश्न पूछो। तुम्हारी समस्याएं हल हों ऐसी कुछ बात पूछो।

यह तो दर्शन को पूछना चाहिये। उसे पूछना है तो पूछ लेगी। लेकिन वह तो कभी पूछती नहीं। अनेक वर्षों से मेरे पास है और मेरे जो बहुत निकट हैं उनमें से एक है। लेकिन कभी उसने कोई प्रश्न पूछा नहीं। कभी-कभी मुझे ही उसे उत्तर देना पड़ता है, पूछती नहीं तो देना पड़ता है। उसने कभी मुझे पत्र नहीं लिखा, मैंने ही उसे पत्र लिखा फिर। पूछना उसकी आदत नहीं है। प्रश्न उठाना उसकी आदत नहीं है। चुपचाप पीती है। जो मिल रहा है वह काफी है।

मगर तुम क्यों चिंता में पड़ गये? यह प्रश्न तुम्हें क्यों खलबली उठाया? दूसरों की फिकिर छोड़ो। और जब प्रश्न पूछो तो ईमानदारी से पूछो; फिर उसमें शिष्टाचार मत लाओ कि प्रश्न का कोई अस्तित्व नहीं... कि मैं विनम्रतापूर्वक पूछता हूं। यद्यपि प्रश्न है ही नहीं, फिर भी पूछता हूं। मैं मंदबुद्धि हूं, मंदबुद्धि के अनुसार पूछता हूं।

किसी नगर में एक कवि हैं, जो दो उपनामों से लिखते हैं--एक तो "ढेंचू" और दूसरा "राही"। एक कवि-सम्मेलन में संचालक ने कहा : अब ढेंचू जी अपनी रचना पढ़ेंगे। "मैं आज "राही" उपनाम से पढ़ूंगा--" ढेंचू जी ने कहा--"गंभीर रचना है।" गंभीर रचना होती है तो वे राही के नाम से पढ़ते हैं, हंसी-मजाक की होती तो ढेंचू नाम से। तो उन्होंने कहा : "मैं आज राही उपनाम से पढ़ूंगा, गंभीर रचना है।" लेकिन जनता में से आवाज आई, क्या फर्क पड़ता है, आवाज तो वही निकलेगी! अब ढेंचू से तो ढेंचू ही ढेंचू निकलेगा, फिर कितनी ही गंभीर रचना हो। मुखौटे हम कोई भी लगा लें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

और तुम्हारे मन में यह सवाल तो उठ गया कि दर्शन को अगर पता है तो उसे खुद ही घोषणा करनी थी कि मैं भगवान हूं। मगर तुम्हें यह सवाल न उठा कि तुम्हें पता है कि जिनको पता होता है वे घोषणा करते ही हैं? तुम्हें पता है कि जो चुप रह जाते हैं उन्हें पता होता ही नहीं? तुमने यह सोचा ही नहीं।

ऐसा हुआ, दो दार्शनिक एक नदी पर के पुल से गुजरते थे। एक दार्शनिक ने कहा : अहा, नदी कैसा किलकार कर रही है! पहाड़ी नदी, बड़ा शोरगुल, गीत गाती, नाचती, घूंघर बजाती जा रही थी। तो एक ने कहा कि देखो, कितने उल्लास में, कितने आनंद में नदी भागी जा रही है सागर की तरफ! दूसरे ने कहा : तुम नदी नहीं हो, तुम्हें कैसे पता चलेगा कि नदी को उल्लास है, आनंद है? बात तो बड़ी साफ पूछी : तुम नदी नहीं हो, तुम्हें कैसे पता चल रहा है कि नदी आनंदमग्न है? दूसरे दार्शनिक ने पता है, क्या कहा? उसने कहा : तुम मैं नहीं हो, तुम्हें कैसे पता चल रहा है कि मुझे पता नहीं है?

अगर दार्शनिक-विवादों में पड़ना हो तो बड़ी मुश्किल है। मालूम है पहले दार्शनिक ने क्या कहा? उसने कहा कि ठीक है, तुम नदी नहीं हो इतना मुझे साफ है और यह भी मुझे पता है कि मैं तुम नहीं हूं। लेकिन तुम्हें यह कैसे पता है कि मुझे पता नहीं हो सकता तुम्हारे संबंध में? तुम भी तो "मैं" नहीं हो।

अब इस विवाद का क्या अंत होगा? अब इसका कोई अंत नहीं हो सकता है। यह तो व्यर्थ की सिरफोड़ होगी। यह तो बाल की खाल निकालनी होगी?

गुरुकुल कांगड़ी के भूतपूर्व कुलपति सत्यव्रत आश्रम देखने आये थे, दर्शन उन्हें दिखाने ले गई थी। सत्यव्रत ने उपनिषदों पर बड़ी महत्वपूर्ण किताबें लिखी हैं, मगर किताबें ही होंगी। क्योंकि उपनिषदों की घोषणा यही है : अहं ब्रह्मास्मि! यह तो उनका मूल स्वर है। उनको बेचैनी एक ही रही होगी, परेशानी एक ही रही होगी, तो उन्होंने दर्शन को पूछा कि आप अपने गुरु को भगवान क्यों कहते हैं? तो दर्शन ने कहाः भगवान वे हैं... उतने ही जितने आप हैं। उन्हें पता है, उन्हें होश है; आप को होश नहीं है।

इसी संदर्भ में यह प्रश्न पूछा गया है। दर्शन ने बिल्कुल ठीक ही कहा। इतना ही भेद है। बुद्धों में और गैर-बुद्धों में और जरा भी भेद नहीं है, बस इतना ही भेद है : एक को होश आ गया, एक को होश नहीं आया; एक सोया है; एक जाग गया। जो सोया है वह भी जाग सकता है। जो जाग गया है वह भी कल तक सोया था। दोनों में कोई बुनियादी भेद नहीं है; जो जागा है वह सोया था, जो सोया है वह जाग सकता है।

और दर्शन, जैसा मैंने कहा, अभी आधी-आधी है। थोड़ी-थोड़ी सोई है, थोड़ी-थोड़ी जाग रही है। लेकिन जब भी थोड़ा-थोड़ा जागरण होता है, थोड़ी-थोड़ी नींद होती है, तो जागरण की ही विजय होने वाली है, नींद की विजय नहीं हो सकती। क्योंकि नींद की सत्ता ही क्या है? सामर्थ्य ही क्या है? जागने की एक किरण भी काफी है; गहन से गहन निद्रा को तोड़ जायेगी। छोटा-सा दीया भी काफी है; पुराने से पुराने अंधकार को नष्ट कर देता है। उसने ठीक ही उत्तर दिया। उसे भी थोड़ी-थोड़ी एहसास की झलक मिलने लगी है।

यहां जो मेरे पास इकट्ठे हैं, उन्हें अगर झलक नहीं मिल रही है तो मेरे पास होने का कोई अर्थ ही नहीं है, कोई प्रयोजन ही नहीं है। मेरे पास रुक ही वे लोग सकते हैं, जिनकी जबान पर थोड़ा-थोड़ा स्वाद फैलने लगा, थोड़ा-थोड़ा है अभी, कल बहुत भी हो जायेगा। शुरुआत हो गई तो पूर्णाहुति भी हो जायेगी। मेरे पास किसी और कारण से तो कोई रुक ही नहीं सकता, क्योंकि मेरे पास रहने से कोई समाज में प्रतिष्ठा नहीं मिलती, सम्मान नहीं मिलता, कोई पद नहीं मिल जायेगा। मेरे पास रहने से कोई तुम्हें धन कमाने की सुविधा नहीं हो जायेगी। अड़चनें पड़ जायेंगी। समाज में होगी प्रतिष्ठा तो खो जायेगी। कुछ नाम होगा तो और बदनामी हो जायेगी। जहां होओगे वहीं बेचैनी हो जायेगी।

मेरे संन्यासी होकर और अगर समाज तुम्हें चैन से रहने दे तो चमत्कार होगा--ऐसा ही चमत्कार... एक मित्र मुझे मिले, बहुत दिन बाद मिले। मैंने उनसे पूछा कि कहो कैसे हो? उन्होंने कहा कि बड़ा चकित हूं। बड़ा

चमत्कार ही समझो। मैंने कहा : क्या हुआ ऐसा? तो उन्होंने कहा : मेरे बड़े लड़के का नाम संजय, मझले लड़के का नाम सुरेश, छोटे लड़के का नाम कांति--फिर भी घर में शांति! इससे मैं चमत्कृत हूं।

मैंने कहा : यह कुछ नहीं। अगर और चमत्कार देखना है तो संन्यासी हो जाओ। फिर तुम्हारे घर में शांति रहे, तब तुम समझना कि कोई चमत्कार हुआ। पत्नी खिलाफ हो जाएगी, बच्चे खिलाफ हो जाएंगे, मां-बाप खिलाफ हो जाएंगे। फिर जहां जाओगे वहीं लोग उंगली उठाएंगे।

मेरे पास जो हैं उन्हें तो अनिवार्यरूपेण तपश्चर्या से गुजरना पड़ रहा है। दर्शन कोई सस्ते में तो मेरे पास नहीं है। घर-द्वार छोड़कर आई है। पति छोड़कर आई है। सब प्रतिष्ठा, सम्मान, धन छोड़कर आई है। इतना सब छोड़कर जब कोई आता है तो कुछ पाता होगा इसलिये आता है। तुम जरा विचार करना। मंदबुद्धि तो हो मगर फिर भी थोड़ा विचार करना। दर्शन ऐसे ही नहीं आ गई है; बहुत कुछ गंवा कर आई है। और आकर मस्त है, प्रसन्न है, आनंदित है! जरा उसके पास बैठना, उसका सत्संग करना। भाई महकवाला दिल्ली, दर्शन का थोड़ा सत्संग करो! मेरी बात तो शायद तुम्हें बहुत दूर की मालूम पड़े, दर्शन की शायद इतनी दूर की मालूम न पड़े, क्योंकि वह आधी सोई आधी जागी है। कुछ-कुछ तुम्हारी भाषा में बोल सकेगी।

मगर सदा याद रखो, प्रश्न अपने ही संबंध में हों तो अच्छे। दूसरे के संबंध में प्रश्न पूछना बड़ा आसान होता है। लेकिन तुमने देखा, मैंने प्रश्न को तुम्हारे संबंध में ही बदल दिया! क्योंकि मैं यही उचित मानता हूं।

ढब्बू जी ने पूछा चंदूलाल कोः चंदूलाल, लगता है तुम्हारा दांत तुम्हें काफी तकलीफ दे रहा है।

अगर मेरा दांत--ढब्बू जी ने कहा--ऐसे परेशान करता तो मैं उसे कब का उखाड़कर फेंक देता।

चंदूलाल ने कहा : हां, अगर आपका दांत होता तो मैं भी वैसा ही करता।

दूसरे का दांत उखाड़ने में क्या दिक्कत है, अपना उखड़वाना मुश्किल हो जाता है! मुझसे जब प्रश्न पूछो तो अपने दांतों के संबंध में पूछना।

आखिरी प्रश्न : इस मुर्दा देश को क्यों आपने अपने कार्यक्षेत्र की तरह चुना है?

इसीलिए! मुर्दा है, सो जिलाना है। जो जी रहे हैं, उन्हें क्या जिलाना? बीमार की चिकित्सा करनी होती है, स्वस्थ की तो नहीं!

यह देश मुर्दा है, और सदियों से मुर्दा है। और इसको पुनः प्राण देने हैं। और यह देश मूल्यवान देश है। यह मुर्दा नहीं होना चाहिए। इसका मुर्दा होना महंगा सौदा है। यह देश जीवित होना ही चाहिए। पुनरुज्जीवित होना ही चाहिए, क्योंकि इस देश के पास एक बड़ी संपदा है। यह अगर पुनरुज्जीवित हो जाए, तो सारे जगत को रोशनी मिले।

मगर यह देश मुर्दा पड़ा है। यह अपनी संपदा के ऊपर लाश होकर लेटा है। न यह खुद लाभ ले रहा है उस संपदा का, न किसी और को लाभ दे रहा है उस संपदा का। इस मुर्दे में प्राण फूंकने हैं, इसे जगाना है। क्योंकि इतनी बड़ी संपदा किसी और देश के पास नहीं है। यही मेरी मुसीबत है।

यह देश मुर्दा है, मगर इसके पास बड़ी संपदा है! बुद्धों ने, सिद्धों ने सदियों-सदियों में जो खोजा है वह इस देश के पास है। अभी भी है! यद्यपि हम मुर्दा हैं, इसलिये कोई उपयोग नहीं कर पा रहे हैं; न अपने लिए कर पा रहे हैं न किसी और के लिए कर पा रहे हैं। अगर हम जीवंत हो जाएं, अगर यह संस्कृति नई हो उठे, अगर

यह संस्कृति समसामयिक हो जाए, अगर हम बीसवीं सदी में जीने लगें--तो हम सारे जगत के लिए क्रांति के स्रोत हो सकते हैं।

मगर तुम ठीक कहते हो, देश तो बिल्कुल मुर्दा है। देश तो इतना मुर्दा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं!

कल मैंने अखबार में खबर पढ़ी कि दिल्ली में ओरियण्टल सर्कस का दिवाला निकला जा रहा है, क्योंकि मोरारजी देसाई ने पाबंदी लगा दी है कि बारह साल से ऊपर की लड़कियां सर्कस में चुस्त कपड़े पहनकर काम नहीं कर सकतीं। बारह साल के ऊपर की लड़कियां! उनको कमी.ज-सलवार पहनना चाहिए।

अब तुम जरा सो◌े◌ेचो, रस्सी पर कमी.ज-सलवार पहनकर कोई लड़की चले... जाएगी काम से! या झूले पर पचास फीट ऊंचाई पर झूले, उल्टी लटके और सलवार कहीं उलझ जाए... । और सलवार न उलझे, ऐसा हो नहीं सकता। और कुर्ती और दुपट्टा भी शायद... फरिया। तो कोई महिलाएं जो काम करती हैं सर्कस में, वे राजी नहीं हैं ये कपड़े पहनकर काम करने को, उनकी जान को खतरा है। और मोरारजी राजी नहीं हैं, कि वे चुस्त कपड़े पहनकर काम कर सकें। सर्कस का दिवाला निकला जा रहा है।

अब मोरारजी जैसे लोगों के हाथ में जिस देश की सत्ता हो, वह मुर्दा न हो जाए तो और क्या होगा? इस देश को युवा करना है। बड़ी मेहनत का काम है। बड़ा मुश्किल काम है। क्योंकि मुर्दे जो लोग बहुत दिन तक रहे हैं उनका मुर्दा होने में रस पैदा हो गया है। उनका मुर्दा होने में न्यस्त स्वार्थ हो गया है।

इसलिये तुम पूछते हो, तुम्हारी बात भी मैं समझता हूं। तुम्हारी बात प्रेमपूर्ण है। तुम यह कह रहे हो कि क्यों मैं यहां नाहक मेहनत कर रहा हूं, कोई मुझे समझेगा नहीं। यह सच है। यह असंभव को करने का उपाय है। मेरी बात कोई समझेगा, मेरी बात कोई सुनेगा इस देश में--यह असंभव को करने की चेष्टा है। लेकिन इसलिये मुझे इसमें रस भी है, चुनौती भी है।

अरे, ओ निरगुन फागुन मास!
मेरे कारागृह के शून्य अजिर में मत कर वास
अरे, ओ निरगुन फागुन मास!
यहां राग-रस-रंग कहां है?
झांझन मंदिर-मृदंग कहां है?
अरे चतुर्दिक फैल रही यह
मौत भावना जहां-तहां है
इस कुदेश में मत आ तू रसमय हंसता सोल्लास
अरे, ओ भोले फागुन मास!
कोल्हू में जीवन के कण-कण
तेल-तेल हो जाते क्षण-क्षण
प्रति दिन चक्की के घम्मर में
पिस जाता गायन का निकवन
फाग सुहाग भरी होली का यहां कहां रस राग
अरे, ओ मुखरित फागुन मास!
राम-बांस की कठिन गांस में
मूंज-बान की प्रखर फांस में

अटकी हैं जीवन की घड़ियां
यहां परिश्रम-रुद्ध सांस में
यहां न फैला तू अपना लाल-गुलाल विलास
अरे, अरुणारे फागुन मास!
छायी जंजीरों की झनझन
डंडा बेड़ी की यह घनघन
गर्रे का अर्राटा फैला
यहां कहां पनघट की खन खन
कैसे तुझको यहां मिलेगा होली का आभास
अरे, हरि हारे फागुन मास!
अरे, ओ निरगुन फागुन मास!
मेरे कारागृह के शून्य अजिर में मत कर वास

तुम्हारा प्रीतिकर प्रश्न मैं समझा। तुम यह कह रहे हो कि यहां क्यों मैं श्रम कर रहा हूं? यहां लोग नाच न सकेंगे; उनके पैर जड़ हो गए हैं। यहां लोग गा न सकेंगे; उनके कंठ खो गये हैं। यहां लोग प्रेम से अभिभूत न हो सकेंगे; उन्होंने प्रेम की शत्रुता बहुत-बहुत सदियों से की है। यहां मदिरता को फैलाना कठिन है। मगर इसीलिए! इन पत्थरों में फूल खिलाने हैं। इस मरुस्थल को फिर बगिया बनाना है।

अरे, ओ निरगुन फागुन मास!
मेरे कारागृह के शून्य अजिर में मत कर वास
यहां राग-रस-रंग कहां है?
झांझन मंदिर मृदंग कहां है?
अरे चतुर्दिक फैल रही यह
मौत भावना जहां-तहां है
इस कुदेश में मत आ तू रसमय हंसता सोल्लास
अरे, ओ भोले फागुन मास!

लेकिन फिर फागुन मास और कहां जाए? फिर और कहीं जाने की तो जरूरत नहीं है। जहां मृदंग बज ही रही है, जहां झांझन बज ही रही है और जहां गीत गाए ही जा रहे हैं, वहां फागुन मास के जाने की जरूरत क्या है? मृदंग नहीं है तो मृदंग बनाएंगे। राग-रस-रंग खो गया है, जन्मायेंगे। झांझन बजेगी। यह जो मौत की भावना ने पकड़ लिया है इस देश को, इससे छुटकारा करायेंगे।

मैंने तुम्हें गैरिक रंग दिया है संन्यास का--गैरिक वसंत का रंग है। इस देश को वसंत से भर देना है। यह बुद्धों की, सिद्धों की भूमि मुर्दों के हाथ में पड़ी न रह जाए। इसे वापिस छीन लेना है मुर्दों से। इसे पंडित-पुरोहितों से वापिस छीन लेना है। इसे फिर जीते-जागते, गीत गाते, नाचते लोगों के हाथों में दे देना है। यह हो सकता है। कठिन तो बहुत है; मगर कठिन है इसलिए करने योग्य भी है।

.जमाने के अंदाज बदल गए
नए राग हैं सा.ज बदल गए
उजाला है मसरिफ के इवान में

सहर हो गई शामो-लबनान में
नई सुबह है और नया आफताब
मुबारिक .जमाने की यह इन्कलाब
हम्हीं सुबहे-नौ हैं हमीं आफताब
हमीं हैं बगावत हमीं इन्कलाब
अंधेरी शबों के सितारे हैं हम
जो बुझते नहीं वह शरारे हैं हम
दिये बनो! ऐसे अंगार बनो--
जो बुझते नहीं वह शरारे हैं हम
अंधेरी शबों के सितारे हैं हम

थोड़े से ही दीये पैदा हो जाएं, तो रोशनी हो जाये। कोई सारे देश को ही जाग्रत होने की जरूरत नहीं है; थोड़े लोग जाग जायें, तो हवा में बातास आ जाए, माधुर्य आ जाये। थोड़े से लोग जागकर आनंद से जीने लगें, तो दूसरों को भी संक्रामक हो जाएगी बीमारी।

और यह करना ही है। और कोई भी कीमत चुकानी पड़े, यह करना ही है। क्योंकि इस देश के पास इतनी अपार संपदा है! उसे मरे हुए, मुर्दों के भूत-प्रतों से और मुर्दे जो सांप होकर बैठ गए हैं संपदा के ऊपर फन मारकर, उनसे उसका छुटकारा दिलवाना है।

इस देश के पास सूत्र हैं जो सारे जगत को सौरभ से भर दें। इस देश के पास अपरिसीम विज्ञान है--अंतर का विज्ञान।

पश्चिम ने बाहर के विज्ञान को पैदा कर लिया, आधा काम पश्चिम ने पूरा कर दिया है। हमने भीतर का विज्ञान पूरा कर लिया है; आधा काम हम बहुत पहले पूरा कर चुके हैं। अगर ये दोनों काम मिल जायें, तो पहली दफा पूरा मनुष्य पैदा हो और मनुष्य की अखंड समग्र संस्कृति पैदा हो।

मैं जो प्रयास यहां कर रहा हूं, वह यही है--पूरब-पश्चिम को आलिंगनबद्ध कर देने का; पूरब-पश्चिम को एक-दूसरे में डुबा देने का। पश्चिम से आये विज्ञान, पूरब का जागे धर्म, दोनों का हो मिलन--तो पहली दफा पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है। एक अपूर्व अवसर है। अगर हमने श्रम किया, तो जैसा कभी नहीं हुआ था, वैसा आज हो सकता है। बुद्ध लाख कोशिश करते तो भी बाहर का जगत तो दरिद्र था और दरिद्र ही रहता। भीतर का जगत शांत हो सकता था, समृद्ध हो सकता था, मगर बाहर का जगत तो दरिद्र ही रहता। वह आधी संपदा होती। पश्चिम आज लाख कोशिश करे... अच्छे मकान बना लिए, अच्छी कारें हैं, अच्छे रास्ते हैं, अच्छी दवाइयां हैं, सब है, लेकिन आदमी की आत्मा खो गई है। पश्चिम की सारी कोशिश व्यर्थ हो जायेगी। मिलन की एक अपूर्व घड़ी है।

मगर पूरब का धर्म मुर्दों और अंधों के हाथ में पड़ गया है। पश्चिम का विज्ञान जिंदा लोगों के हाथ में है लेकिन उन जिंदा लोगों को अपनी आत्मा का कुछ पता नहीं है। इसलिए कहीं चूक न हो जाये! कहीं ऐसा न हो कि घड़ी आ गई, रोटी भी बन सकती थी--आटा तैयार था, पानी तैयार था, नमक तैयार था, घी तैयार था, चूल्हा भी जला था; मगर रसोइये को यही समझ में न आया कि हम आटे को गूंथे कैसे? बस इतनी कमी है--आटा गूंथने की कमी है। सब तैयार है। इतना तैयार कभी भी नहीं था।

अतीत में दुनिया तो बाहर गरीब थी और गरीब ही रहती। आज बाहर तो दुनिया अमीर होती जा रही है, मगर भीतर गरीब है। अगर हम पुनरुज्जीवित कर सके, बुद्ध, सरहपा, तिलोपा के विज्ञान को और पश्चिम के विज्ञान को--आइंस्टीन, न्यूटन, एडिंग्टन, इन्होंने जो दान दिया है उसको। अगर ये दोनों मिल जायें--अगर आइंस्टीन और बुद्ध का मिलन हो जाए--तो मनुष्य के जगत में सबसे पहली बार... पहली बार मनुष्य के पूरे इतिहास में, एक ऐसी दुनिया होगी जो बाहर-भीतर दोनों तरफ फूलों से भर जाये... ।

मैं पश्चिम जा सकता हूं। मुझे सुविधा होगी। मुझे निमंत्रण है पश्चिम के देशों से। मुझे सुविधा होगी। मुझे व्यर्थ की झंझटों में न पड़ना पड़ेगा। मोरारजी देसाई जैसे लोगों से व्यर्थ की बातचीत में न उलझना पड़ेगा। काम सुगम होगा। मेरे लिए तो काम सुगम होगा, लेकिन भारत की संपदा खो जाएगी। यहां मुझे कोई दूसरा नहीं दिखाई पड़ता, जो उसे पुनरुज्जीवित कर ले। असंभव होगा उसे पुनरुज्जीवित करना। और पश्चिम में उसे पुनरुज्जीवित करना बहुत मुश्किल होगा, क्योंकि पश्चिम के पास वैसी आधारशिला नहीं है।

इसलिए मैं चाहता हूं यह पूरब को पुनरुज्जीवित करने की घटना यहां घटे। यहां आसानी से घट सकती है। और पश्चिम से लोग यहां आसानी से आ सकते हैं। तुम यहां से आसानी से पश्चिम न जा सकोगे। वह भी अड़चन है। मैं तो हट जाऊं यहां से पश्चिम। मुझे सब तरह की सुविधा होगी। काम आसान हो जाएगा, सुगम हो जाएगा। लेकिन तुम जानते हो, तुम तो यहां भी नहीं आ सकते हो जब मैं यहां हूं, तुम पश्चिम कैसे आ सकोगे?

और पश्चिम में तो बड़ी खोज है। और सुविधा भी है। पश्चिम से जिसको आना है वह कहीं भी आ जाएगा। यहां भी चला आ रहा है। हजार बाधाओं के बावजूद चला आ रहा है।

कल ही दिल्ली से डेढ़ सौ संन्यासियों के नाम नोटिस मिला है कि तत्क्षण भारत छोड़ दें। रोज यह उपद्रव चलता है। जो संन्यासी भारत के बाहर भारत के राज-दूतावासों में आज्ञा लेने जाते हैं, जानते ही कि वे मेरे संन्यासी हैं, उनके लिए आज्ञा निषिद्ध हो जाती है। उन्होंने कहा कि उन्हें पूना जाना है कि बस फिर उन्हें भारत आने कि आज्ञा नहीं मिल सकती। फिर भी वे आ जाते हैं। वे हजार उपाय कर लेते हैं। नहीं आते भारत, पहले नेपाल जाते हैं, फिर नेपाल से प्रवेश करते हैं; कि पाकिस्तान जाते हैं, फिर पाकिस्तान से प्रवेश करते हैं; कि लंका जाते हैं, फिर लंका से प्रवेश करते हैं। वे तो हजार उपाय कर लेंगे।

न मालूम कितनी पाश्चात्य संन्यासिनियों ने यहां आकर झूठी शादी की है। कोई मतलब नहीं है शादी से उन्हें। पति से कुछ लेना-देना भी नहीं है। मगर वे हिम्मतवर लोग हैं। उन्हें रहना है यहां मेरे पास, तो उन्होंने किसी भारतीय से शादी कर ली। तुम यह न कर सकोगे। कोई भारतीय स्त्री सिर्फ इसीलिए शादी न कर सकेगी पश्चिम आकर कि उसे मेरे पास रहना है। यह उसकी कल्पना के बाहर होगा। यह उसे असंभव मालूम होगा। हमने साहस ही खो दिया है। हमने अभियान खो दिया है।

इसलिए मैं यहां रुका हूं--रुकूंगा! यहां की संपदा को े मुर्दों के हाथ से छीनना ही है। और रही पश्चिम की बात, तो पश्चिम से जिनको आना है वे यहां आ जायेंगे; कोई अड़चन नहीं है। यह मिलन घट सकता है। एक ऐसा तीर्थ बन सकता है जहां पूरब और पश्चिम एक हो जायें; जहां विज्ञान और धर्म एक हो जायें। मैं बाहर की संपदा का विरोधी नहीं हूं। मैं भीतर की संपदा का उतना ही पक्षपाती हूं जितना बाहर की संपदा का पक्षपाती हूं।

अब तक तुमने ऐसे लोग जाने हैं जो बाहर की संपदा के पक्षपाती हैं, तो भीतर की संपदा के विराधी हैं--जैसे चार्वाक, जैसे एपीकुरस, जैसे मार्क्स। तुमने ऐसे लोग भी जाने हैं जो भीतर की संपदा के पक्षपाती हैं, तो बाहर की संपदा के विरोधी हैं--जैसे महावीर, जैसे बुद्ध। तुमने मेरे जैसा आदमी अब तक जाना नहीं है; तुम्हारा कोई कसूर नहीं है अगर तुम मुझे न समझ पाओ। दुनिया ने ही मेरा जैसा आदमी नहीं जाना--जिसमें चार्वाक

और बुद्ध का मिलन हो; जिसमें एपीकुरस और याज्ञवल्क का मिलन हो; जो नास्तिक से ज्यादा गहरा नास्तिक हो, जो आस्तिक से ज्यादा गहरा आस्तिक होे; जिसका अध्यात्मवाद भौतिकवाद का विरोधी न हो; जिसका भौतिकवाद अध्यात्मवाद का विरोधी न हो।

मेरे लिए बाहर और भीतर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मैं बाहर की संपदा का विरोधी नहीं हूं, मैं भीतर की संपदा का परिपूर्ण पक्षपाती हूं। मैं चाहता हूं तुम सब भांति संपन्न होओ--बाहर भी और भीतर भी। बाहर-भीतर का भेद ही व्यर्थ है। जैसे श्वास बाहर आती है, भीतर आती है, वही श्वास बाहर है वही भीतर है। वही परमात्मा बाहर है वही परमात्मा भीतर है।

तुम जरा मेरी कल्पना के मनुष्य को समझो। मेरी कल्पना का मनुष्य बाहर भी सुख, वैभव, आनंद में जीयेगा। और भीतर भी। तो मेरा विरोध तो होने वाला है। मेरा विरोध अध्यात्मवादी करेंगे क्योंकि वे कहेंगे कि मैं भौतिकवादी हूं। और मेरा विरोध भौतिकवादी करेंगे क्योंकि वे कहेंगे मैं अध्यात्मवादी हूं। मेरा विरोध दोनों तरफ से होना है। लेकिन जो जानते हैं, जो थोड़े समझदार हैं, वे दोनों तरफ से मेरा समर्थन भी करेंगे। हालांकि समझदार सदा कम होते हैं--सौ में एक इसलिए निन्यानबे आदमी मेरे दुश्मन होंगे और एक आदमी मेरा मित्र होगा।

मगर चिंता की कोई बात नहीं है। नादान दोस्तों से तो दाना दुश्मन बेहतर होता है। वे निन्यानबे किसी काम के भी नहीं हैं। उनकी दोस्ती का कोई मूल्य भी नहीं। मैं तो थोड़े से दाना दोस्तों की तलाश कर रहा हूं। थोड़े समझदार संन्यासी मुझे चाहिए। और यह काम होगा। यह ज्योति जलेगी! ये इशारे ऊपर से ही आ गए हैं कि ज्योति जलेगी।

दुख को बदलो। दुख को सुख की सेवा में लगाओ। दुख को सुख का निखार बनाओ। दुख से भागो मत। जो भागता है, बुद्धिहीन है। जो भागता है। और ध्यान रखना, दुख न हो तो जाग ही न सकोगे।

आज इतना ही।

चौदहवां प्रवचन

धरती बरसे अंबर भीजे

पहला प्रश्नः मैं वर्षों तक एक विरागी संन्यासी रहा हूं, लेकिन आपने मुझे प्रभु-राग में डुबो दिया है। अब आगे क्या आदेश है?

विराग एक बीमारी है। राग जीवन है, विराग मृत्यु है। संसार से राग हो तो राग की बुराई नहीं है, बुराई संसार की है। गलत से आंखों को जोड़ दो तो आंखों की क्या भूल? हाथ में हीरे भी ले सकते हो, हाथ में पत्थर भी; हाथ का क्या कसूर?

चूंकि अधिक लोगों ने अपने राग को संसार से जोड़ रखा है, इसलिए उनके विरोध में एक प्रक्रिया शुरू हुई, कि राग तोड़ो। राग की कोई भूल नहीं है, भूल है तो उस कूड़ा-करकट की है जिससे तुमने राग को जोड़ लिया। यही राग परमात्मा की सीढ़ी बन सकता है, बनना चाहिए। और जिसने राग ही छोड़ दिया, उसका तो परमात्मा से जुड़ने का उपाय ही समाप्त हो गया। राग जोड़ता है, विराग तोड़ता है।

राग की महिमा समझो। राग अर्थात प्रेम का रंग। राग शब्द का अर्थ रंग ही है। और राग शब्द का अर्थ संगीत भी है। प्रेम का रंग, प्रेम का संगीत। गलत से प्रेम जोड़ा जा सकता है लेकिन इससे प्रेम गलत नहीं होता। प्रेम तो सत्य से भी जोड़ा जा सकता है, सम्यक से भी जोड़ा जा सकता है--और तब प्रेम ही द्वार बन जाता है।

कोई प्याली में जहर रखकर पी रहा है, प्याली का क्या कसूर? इसी प्याली में अमृत भरा जा सकता है। प्याली मत तोड़ देना, क्योंकि प्याली तोड़ दी तो फिर अमृत कहां भरोगे?

इसलिए मैं तुम्हें राग ही सिखाता हूं--परम राग सिखाता हूं, प्रभु-राग सिखाता हूं। मेरा संन्यासी परमात्मा के प्रेम में डूबा हुआ दीवाना है। और एक बड़े मजे की घटना घटती है कि जिसका परमात्मा से राग हो जाता है उसका संसार से राग टूट जाता है। टूट ही जाता है! सार्थक से जो जुड़ गया उसका व्यर्थ से संबंध न रह जाएगा। जिसे सार्थक दिखाई पड़ने लगा उससे व्यर्थ अपने-आप छूट जाएगा। छोड़ना भी नहीं पड़ता, छूट जाता है। और तभी मजा है, जब छूट जाए; छोड़ना पड़े तो मजा नहीं। छोड़ना पड़े तो समझना कि कच्चे थे अभी। कच्चे फल को तोड़ना पड़ता है वृक्ष से। पका फल अपने से गिर जाता है। पके फल के गिरने में एक सौंदर्य है, एक प्रसाद है। वृक्ष को पता भी नहीं चलता कब गिर गया, कोई घाव भी नहीं छूटता पीछे। कच्चे फल को तोड़ते हो तो घाव पीछे छूटता है। किसी चीज को कच्चा मत तोड़ देना, पकने दो--और गिरने दो अपने से।

मेरे जीवन-चिंतना का यह आधारभूत सूत्र हैः सत्य की तरफ आंखें उठाओ, असत्य से आंखें अपने-आप हट जाएंगी। रोशनी से प्रेम लगाओ, अंधेरे से प्रेम अपने-आप विदा हो जाएगा। लेकिन सदियों तक इससे उल्टी ही बात की गई है। सदियों तक तुमसे कहा गया है। गलत को छोड़ो, तब सही मिलेगा। मैं तुमसे कहता हूंः सही को पा लो, गलत छूट जाएगा। सदियों तक तुमसे कहा गया हैः अंधेरे को हटाओ, तब रोशनी जलेगी। यह न तो विज्ञान है न गणित है। अंधेरे को कोई हटा सकता है? और जो अंधेरे को हटाने में लगेगा, पागल हो जाएगा। मैं तुमसे कहता हूंः रोशनी जलाओ, अंधेरा अपने से हट जाता है। अंधेरे की चिंता छोड़ो। अंधेरे की चिंता सिर्फ अंधे करते हैं। आंखवाले रोशनी जलाते हैं। रोशनी जलाकर फिर कहां अंधेरा? फिर कैसा अंधेरा? अंधेरा तो सिर्फ अभाव है प्रकाश का।

जिसको तुम संसार का राग समझे हो वह केवल परमात्मा के राग की अनुपस्थिति है। तुम्हें हीरे नहीं मिले तो तुमने कंकड़-पत्थरों पर मुट्ठी कस ली है। बच्चे को देखते हो, मां का स्तन नहीं मिलता, अपना अंगूठा ही चूसने लगता है। ऐसे ही संसार को तुम अंगूठा समझो, जिसे तुम चूस रहे हो। उससे कुछ मिलने वाला नहीं है। लेकिन बच्चे को एक सांत्वना मिलती है; मान लेता है कि यही मां का स्तन है। चूसते-चूसते सो जाता है। कम-से-कम नींद तो आ ही जाती है।

बस संसार की सारी सांत्वना तुम्हें थोड़ी-सी निद्रा दे सकेगी। थोड़ी-सी शांति मिल जाती है--बड़ा मकान बना लिया, बहुत धन इकट्ठा कर लिया, बच्चे हैं परिवार है। थोड़ी-सी शांति मिलती मालूम पड़ती है; चादर तानकर थोड़ी देर सो लेते हो, बस।

संसार में तुम्हें जो भी मिलेगा, अंगूठे चूसने से ज्यादा नहीं है। और अगर अंगूठा चूसने में ही लगे रहे तो सिकुड़ते जाओगे, भीतर-भीतर मरते जाओगे क्योंकि पोषण न मिलेगा। पोषण तो परमात्मा से मिलता है, वही पोषण है।

उपनिषद कहते हैंः अन्न ब्रह्म है! मैं तुमसे कहता हूंः ब्रह्म अन्न है। परमात्मा पोषण है। उसे पियो।

तुम कहते होः "मैं वर्षों तक एक विरागी संन्यासी रहा हूं।" विरागी रहे होओगे, संन्यासी नहीं। क्योंकि विराग का संन्यास से कैसे संबंध जुड़ेगा? जैसे अंधेरे का और प्रकाश का कोई संबंध नहीं जुड़ता वैसे ही विराग और संन्यास का कोई संबंध नहीं जुड़ता। संन्यास तो उत्सव है, विराग कहां? संन्यास तो परम राग है, परम आनंद की अनुभूति है। वहां कहां उदासी, कहां उदासीनता? संन्यास में त्याग है ही नहीं।

और ख्याल रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि त्याग नहीं होता। लेकिन संसार छोड़ना नहीं पड़ता। वास्तविक संन्यासी को तो केवल संन्यस्त होना पड़ता है, ध्यानस्थ होना पड़ता है, समाधिस्थ होना पड़ता है, कूड़ा-करकट छूटता चला जाता है, बीमारियां अपने से गिर जाती हैं। सूखे पत्ते अपने से झड़ जाते हैं, कब झड़ जाते हैं, कानोंकान खबर नहीं होती।

विराग और संन्यास का संबंध अब तक रहा है। वह संबंध बड़ा घातक सिद्ध हुआ। उस संबंध ने संन्यास को मार ही डाला। उसी संबंध को विच्छिन्न करना चाहता हूं। उस गांठ को तोड़ देना चाहता हूं। उस समझौते को मिटा देना है। विराग छाती पर चढ़ बैठा है संन्यास की, उससे संन्यासी उदास हो गया। इसलिए तुम्हें संसारी तो कभी हंसता मिल जाए, संन्यासी हंसता नहीं मिलता। होना तो उल्टा था कि संसारी न हंस सकता, उदास मिलता, उदासीन होता और संन्यासी हंसता। संन्यासी के पास तो खिलखिलाहट होनी थी--वही जो पहाड़ से गिरते झरनों में होती है; वही जो हवाएं गुजरती हैं वृक्षों के भीतर से तो वृक्षों के पत्तों में होती है। संन्यास में तो एक नाद होना था। लेकिन संन्यास उदास है। विराग से गलत संबंध जुड़ गया। त्याग से गलत संबंध जुड़ गया। त्याग के क्षयरोग ने संन्यास की छाती जला डाली।

संन्यासी को संसार नहीं छोड़ना है--परमात्मा पाना है। संन्यासी को सत्य पाना है, असत्य नहीं छोड़ना है। संन्यासी को ध्यान पाना है--सार पाना है, असार नहीं छोड़ना है। संन्यासी को तो और बड़े प्रेम को जन्माना है।

संसारी और संन्यासी में यही फर्क है। संसारी का प्रेम छोटा है, क्षुद्र है। और छोटा प्रेम, क्षुद्र प्रेम तुम्हें क्षुद्र कर देता है। तुम्हारा प्रेम ही तो तुम्हें निर्मित करता है। प्रेम सृजनात्मक है। क्षुद्र से प्रेम करोगे, क्षुद्र हो जाओगे। जो रुपये-पैसे से प्रेम करता है उसकी शकल पर तुम देखना वही घिसे-पिसे रुपये जैसी छाया दिखाई पड़ने लगती है। वही, जैसा नोट कई हाथों से गुजरकर गंदा होता जाता है, वैसे ही कृपण की आंखों में गंदगी हो जाती

है! स्वाभाविक है। जिससे प्रेम करोगे वैसे ही हो जाओगे। जो वस्तुओं को प्रेम करता है वह आत्मवान नहीं रह जाता है; वह धीरे-धीरे वस्तुओं जैसा ही हो जाता है; जितना बड़ा प्रेम उतने बड़े तुम।

आंखें उठाओ। आकाश से प्रेम करो। आकाश तुम्हारे भीतर उतर आएगा। विराट को तलाशो!

लेकिन दो ही तरह के लोग हैं इस दुनिया में। कुछ हैं जो क्षुद्र को पकड़े हुए हैं। और कुछ हैं जो क्षुद्र को छोड़ने में लगे हुए हैं। मगर दोनों की आंखें क्षुद्र पर अटकी हुई हैं। दोनों क्षुद्र हो गए हैं। तुम्हारा संसारी क्षुद्र है, तुम्हारे तथाकथित संन्यासी क्षुद्र हैं। और संसारी को तो माफ किया जा सकता है, संन्यासी को माफ नहीं किया जा सकता।

लेकिन कैसे यह दुर्घटना घटी? संन्यास का विराग से संबंध कैसे हो गया? संबंध इसलिए हो गया कि हम प्रतिक्रिया से जीते हैं। हम एक अति से दूसरी अति पर चले जाते हैं। हमने संन्यासी की जो प्रतिमा बनाई है, वह संसारी के विपरीत बनाई है; बस वहीं भूल हो गई। जो-जो संसारी करता है उससे विपरीत संन्यासी को होना चाहिए; वहीं चूक हो गई।

संन्यासी संसार का विरोधी नहीं है। संन्यासी परमात्मा का प्रेमी है। और तब तत्क्षण रूपांतरण हो जाएगा। तब तुम्हारी दृष्टि और हो जाएगी। परमात्मा का प्रेमी! और यह संसार भी परमात्मा का है। इसलिए संन्यासी इस संसार को भी प्रेम करेगा, लेकिन परमात्मा के अंग की भांति। और तब पूरा गणित और हो जाता है। तब वह पदार्थ को भी प्रेम करेगा, लेकिन परमात्मा के प्रतीक की भांति। वह अपनी पत्नी को भी प्रेम करेगा, लेकिन उसके भीतर परमात्मा की उपस्थिति अनुभव करेगा। अपने बेटे को भी प्रेम करेगा, लेकिन बेटे में भी आया तो वही है। अब उसके सारे प्रेम में परमात्मा की ही झलक फैलने लगेगी। अब अगर संगीत सुनेगा तो उसे उसीका अनाहत नाद सुनाई देगा। अगर सूरज को उगते देखेगा तो उसे परमात्मा का ही आविर्भाव दिखाई पड़ेगा। रात आकाश तारों से भर जाएगा तो वह परमात्मा की महिमा का गुणगान करेगा। वृक्षों पर फूल खिलेंगे तो वह चमत्कृत होगा। मिट्टी से ऐसे फूल निकल आते हैं, परमात्मा के हाथों के सिवाय यह कला किसी और की नहीं है! उसे हर जगह परमात्मा के हस्ताक्षर दिखाई पड़ेंगे।

पश्चिम के एक बहुत बड़े संत, जैकब बोहमे ने कहा है कि जिस दिन मैंने जाना, उस दिन मैंने उसके हस्ताक्षर पत्ते-पत्ते पर पाए, कण-कण पर पाए। यह सारा जगत उसकी ही लिखी हुई पातियां हैं तुम्हारे लिए। उसी का संदेश आता है हवाओं में। उसी का संदेश आता बादलों की गर्जनों में। उसी का संदेश आता है बिजलियों की तड़फन में। उसी का संदेश आता फूलों में। उसी का संदेश आता मोर के नृत्य में और उसी का संदेश आता कोयल की कुहू-कुहू में।

जो परमात्मा को प्रेम करेगा, उस विराट प्रेम में संसार का प्रेम अपने-आप सम्मिलित हो जाता है। मगर गुणात्मक भेद हो जाता है। संसार से प्रेम नहीं होता, अब तो परमात्मा से ही प्रेम होता है। सृष्टि से प्रेम नहीं होता अब तो स्रष्टा से ही प्रेम होता है। और तब जो-जो व्यर्थ है, जो-जो असार है, वह अपने-आप गिरता जाता है। जैसे तुम रोज अपने घर से कूड़ा-करकट निकालकर बाहर फेंक देते हो, चिल्लाते थोड़े ही फिरते हो कि आज मैंने फिर सारे कूड़ा-करकट का त्याग कर दिया, कि देखो... ! छाती थोड़े ही पीटते फिरते हो कि मेरी शोभायात्रा निकालो, कि मैंने कूड़ा-करकट त्याग कर दिया है! लोग तुम्हें पागल समझेंगे ऐसा तुम करोगे तो। कूड़ा-करकट फेंकने के लिए ही है। इसमें त्याग कहां है?

सच्चा संन्यासी कुछ छोड़ता नहीं, यद्यपि बहुत कुछ उससे छूट जाता है। और सच्चा संन्यास संसार-विरोधी नहीं होता; परमात्मा के स्वीकार से जन्मता है।

तुम कहते होः "मैं वर्षों तक एक विरागी संन्यासी रहा हूं।" विरागी रहे--संन्यासी नहीं। विराग और संन्यास का मेल नहीं बैठता। जैसे पानी और तेल को न मिला सकोगे, ऐसे ही विराग और संन्यास को नहीं मिलाया जा सकता है। सदियों से चेष्टा की गई है, लेकिन मिलन हो नहीं पाया। हो नहीं सकता। उनका स्वभाव भिन्न है। कहां संन्यासी की मस्ती और कहां विरागी की उदासी, कैसे मेल बिठाओगे?

कहते होः "लेकिन आपने मुझे प्रभु-राग में डुबा दिया। अब आगे क्या आदेश है?" अब आगे किसी आदेश की कोई जरूरत नहीं, बस प्रभु-राग में डूबते जाओ। नाव में बैठ गए हो। अब पतवार भी चलाने की जरूरत नहीं है, पाल खोल दो। उसकी हवायें तुम्हें ले चलेंगी। रामकृष्ण ने यही कहा है कि या तो पतवार चलाओ या पाल खोल दो। रामकृष्ण ने कहाः अगर मुझसे पूछते हो तो मैं कहता हूं, पतवार चलाने की झंझट में क्यों पड़ते हो, पाल ही खोल दो! तुम मग्न होकर बैठो, उसकी हवाएं तुम्हें ले चलेंगी।

योगी पतवार चलाता है, भक्त पाल खोलता है। योगी श्रम करता है; सहज-योगी विश्राम में नदी के साथ अपने को छोड़ देता है। और इधर तो हम सरहपा और तिलोपा की बात कर रहे हैं; वे दोनों सहज-योगी हैं। सहज-योग बौद्ध परंपरा में भक्ति-भाव का ही संस्करण है। "भक्ति" शब्द का उपयोग बौद्ध परंपरा में नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें भगवान को ही मानने की कोई धारणा नहीं है तो भक्ति कैसी? चूंकि भक्ति का कोई उपाय नहीं है लेकिन भक्ति की महिमा को इनकारा भी नहीं जा सकता, इसलिए सहज-योग का जन्म हुआ। सहज-योग वही है बुद्ध भाषा में, जो अन्य भाषाओं में भक्ति-योग है। जरा भी भेद नहीं है।

हंसा उड़े अकास में, पै नहिं छूटयौ शब्द द्वंद्व
मन अरुझायौ ही रह्यौ मानसरोवर-फंद।

हम बिराग आकाश में बहुत उड़े दिन-रैन;
पै मन पिय-पग राग में लिपिट रह्यौ बेचैन।
हम सेन्द्रिय, बनिबे चले, निपट निरिन्द्रिय रूप,
इत, मन बोल्यौः बावरे पिय को रूप अनूप।

व्यर्थ भये, असफल भये जोग-साधना-यत्न,
कौन समेटे धूरि, जब मन में पिय-सो रत्न?

कहं धूनी की राख यह? कहं पिय-चरण-पराग?
कहां बापुरी विरति यह? कहां स्नेह, रस राग?

प्रिय, हम तैं या देह सौं सधैगौ न वैराग,
फीके-फीके-से लगत सबै जोग-जप-जाग।

सदा राउरी अर्चना, संतत राउर ध्यान,
राउर ढिग रहिबौ ललकि, यही हमारी बान।

बस तुम्हारे पास रहे आएं... सदा राउरी अर्चना! तुम्हारे पास रहने में ही प्रार्थना है, पूजा है, अर्चना है। सदा राउरी अर्चना, संतत राउर ध्यान! यही ध्यान है कि तुम दिखाई पड़ते रहो, कि तुम्हारी प्रतीति होती रहे, कि आंखें तुम्हारे रूप से भरी रहें। राउर ढिग रहिबौ ललकि... बस सदा तुम्हारे पास रहें, ऐसी ललक है। यही हमारी बान!

व्यर्थ भये, असफल भये जोग-साधना-यत्न,
कौन समेटे धूरि, जब मन में पिय-सो रत्न?

सब धूल है, कूड़ा-करकट है। जिसको तुम विराग कहते हो, यत्न कहते हो, प्रयास कहते हो--सब धूल है। प्यारा भीतर बैठा है। उसके प्रेम में पड़ो।

थकित गात, संश्लथ चरण, हिय, मन, प्राण उदास,
अब न नैंक नीकौ लगै, यह प्रवास-आयास।

अब तौ यों कछु लगत है, बैठि रहिय वा ठौर,
जहं लखि पिय कौ नेह-घन, नाचि उठै मन मोर।

रिम-झिम बरसै नेह-घन, नाचै मत्त मयूर,
ऐसी रहनी रहहु मन, रहहु न पिय तैं दूर।

छांड़हु देस-विदेस कौ यह पर्यटन असार,
बैठहु पिय के चरण गहि, करहु सुलोचन चार।

विचरहु पिय की डगरिया, बसहु पिया के गांव,
पिय की ड्योढ़ी बैठि कैं, रटहु पिया को नांव!

अब डूबो! अच्छा हुआ कि आ गए मेरी भंवर में। अब डूबो!

अब तौ यों कछु लगत है, बैठि रहिय वा ठौर।
जहं लखि पिय कौ, नेह-घन, नाचि उठै मन मोर।

अब नाचो! अब गाओ! अब आनंदमग्न हो उठो!

विचरहु पिय की डगरिया, बसहु पिया के गांव,
पिय की ड्योढ़ी बैठि कैं, रटहु पिया कौ नांव!

अब असली संन्यास शुरू हुआ। प्रभु से प्रेम का नाता जुड़ा कि संन्यास हुआ। "संन्यास" शब्द का अर्थ समझते हो? संन्यास शब्द बनता हैः सम्यक न्यास... ठीक-ठीक त्याग। जाहिर है कि कुछ त्याग होता है, जो ठीक नहीं होता। जाहिर है कि कुछ त्याग होता है, जो गलत होता है। कौन-सा त्याग गलत और कौन-सा त्याग ठीक? वह त्याग गलत जो तुम्हें करना पड़े; वह त्याग ठीक, जो हो जाए। वह त्याग गलत, जिसमें चेष्टा हो, प्रयास हो, जबरदस्ती हो, अपने पर हिंसा हो। वह त्याग सम्यक, सही--जो चुपचाप हो जाए, बोध से हो जाए, समझ से हो जाए! वह त्याग गलत, जिसमें दुख हो; वह त्याग सही, जो महासुख के अवतरण से होने लगे।

तुम रोज इस प्रक्रिया से गुजरते हो। अच्छे वस्त्र खरीद लाए, फिर पुराने वस्त्रों का क्या करते हो? त्याग कर देते हो। नया फर्नीचर ले आए, फिर पुराने को बाहर निकाल देते हो। यह तुम रोज कर रहे हो। अगर तुम जीवन की सामान्य व्यवस्था को ही समझ लो तो तुम्हारे हाथ में बड़े से बड़े सत्यों का छोर आ जाए। श्रेष्ठ को ले आओ, निकृष्ट निकाल ही दिया जाता है, अपने-आप! फिर न पीड़ा होती है, न परेशानी होती है। श्रेष्ठ को निमंत्रण दो, उसके निमंत्रण से जो त्याग होता है, वह सम्यक! यही संन्यास का अर्थ है।

तुम पूछते होः "आगे क्या आदेश है?" अब प्रेम की पातियां लिखो। अब प्रेम-पत्र भेजो परमात्मा को। अब प्रेम के गीत गाओ।

यही नहीं कि हाथ कंपते हैं, हिय भी कंपता आज,
पूरन कैसे होगा पतिया-लेखन का यह काज?
बड़े जतन से, हिम्मत करके, लिखने बैठा पत्र
पर ना जानूं कैसे यह हो गया आर्द्र सर्वत्र!
हिय धड़के, युग हस्त कंपें, चिट्ठी का ओर न छोर,
थोड़े में समझना बहुत तुम, हे प्राणों की डोर!
मेरे हिय की मंजूषा में नहीं रतन अनमोल,
और नहीं है वहां तरलता की कोई कल्लोल!
फिर भी हूं कर रहा समर्पित श्री चरणों में आज,
इसमें क्या है? तुम मत पूछो, तुम्हें लगेगी लाज!
टूटी सन्दूकची बनी यह, इसमें वंशी एक
कभी-कभी वह रो उठती है करुण-राग की रेख!

भेजो आंसू! भेजो प्रेम! भेजो आनंद! जितना बांट सको अपने को, बांटो। और जितना तुम बांटोगे, उतना परमात्मा करीब आने लगेगा। जितने तुम नाचोगे उतना करीब आने लगेगा। जो मार्ग नाचकर तय हो सके, उसे क्यों उदास होकर तय करना? और उसके मंदिर पर बिना नाचते हुए जाओगे, शोभा होगी? उसके मंदिर पर नाचते ही जाना है। सच तो यह है, जो नाचते जाएगा वही उसके मंदिर को पा सकेगा। उदास गए तो कहीं और पहुंचोगे, उसके मंदिर पर न पहुंचोगे--किसी मरघट में पहुंचोगे, किसी कब्र पर पहुंचोगे। उस पर जीवन के मंदिर पर कैसे पहुंच सकोगे?

फूलों से कुछ सीखो! पक्षियों से कुछ सीखो! वृक्षों से कुछ सीखो! चांद-तारों से कुछ सीखो! इस सारे अस्तित्व में चल रहा जो प्रतिपल आनंद का उत्सव है, इससे कुछ सीखो! और इस उत्सव में तल्लीन होओ, लवलीन होओ--यही आदेश है।

दूसरा प्रश्नः हजारों वर्ष धरती तपश्चर्या करके गर्भ धारण करती है तो कहीं एक बुद्ध का अवतरण होता है। और इस देश में अनंत बुद्ध हो गये। अंतरज्ञान की अपार संपदा इस देश ने खोजी। फिर भी जब आप जैसे बुद्धपुरुष वर्तमान हैं, तो भी इस देश के लोगों को, तथाकथित धर्म-गुरुओं को, तथा शासन में पहुंचे हुए लोगों को आपकी बात समझ में क्यों नहीं आती? भारत पर आपकी कितनी करुणा है, यह आपके ही श्रीमुख से सुनकर मुझे लगता है कि करुणा को भी करुणा आ गई होगी। लेकिन भारतवासियों का हृदय क्यों नहीं पिघलता, कृपा करके समझायें।

ऐसा नहीं है कि धर्मगुरुओं को मेरी बात समझ में नहीं आती। समझ में आती है, मगर उनके स्वार्थ के विपरीत है। समझ में न आती होती तो वे मेरा विरोध ही न करते। समझ में तो आती है, मगर वे चाहते नहीं कि समझ में आये।

बहुत बार ऐसा हो जाता है, बात तुम्हारी समझ में आती है, लेकिन तुम्हारे न्यस्त स्वार्थ के विपरीत पड़ती है। अगर बात समझो तो तुम्हें बहुत-सा स्वार्थ तुम्हारे छोड़ना पड़े। उसकी छोड़ने की तुम्हारी तैयारी नहीं है। और कोई सोये को तो जगा सकता है लेकिन जो जागा ही पड़ा है और सोने का अभिनय कर रहा है उसे जगाना बहुत मुश्किल हो जाता है। यह कैसे होगा कि उनको मेरी बात समझ में न आए? क्योंकि मैं वही तो कह रहा हूं जो वेदों ने कहा, उपनिषदों ने कहा। वही तो कह रहा हूं, जो कुरान ने कहा, बाइबिल ने कहा। यह कैसे हो सकता है कि उनकी समझ में न आए?

बात तो उन्हें समझ में आ रही है; यही खतरा हुआ जा रहा है। यहीं झंझट हो रही है। समझ में न आती तो वे मेरी उपेक्षा कर देते। उनको चिंता ही न होती। ... होगा कोई पागल! क्या बनता-बिगड़ता था उनका? बात समझ में आ रही है, और यह भी समझ में आ रहा है कि अगर बात को समझा, स्वीकार किया, तो फिर हम अपने न्यस्त स्वार्थों को पकड़े न बैठे रह सकेंगे। लोग अपने स्वार्थ को अपनी समझ से ऊपर बिठाये हुए हैं, यही अड़चन है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी कई दिनों से बीमार चल रही थी। डाक्टर इलाज कर-कर के थक गए थे। सबसे बड़े डाक्टर को बुलाया। उसने कहा कि मैं दुखी हूं नसरुद्दीन, कुछ किया नहीं जा सकता। बीमारी संघातक है। पत्नी तुम्हारी अब दिन-दो-दिन बच जाए तो बहुत। मैं अत्यंत दुखी हूं। कुछ किया नहीं जा सकता।

नसरुद्दीन ने उसकी पीठ ठोंकी और कहा कि नहीं, छी-छी, आप दुखी न हों। अरे जब तीस साल सह लिया तो दो दिन और सह लेंगे।

भीतर बैठे स्वार्थ हैं। स्वार्थों में जब कोई बात पड़ती है जाकर, तो उसके अर्थ भिन्न हो जाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पांचवीं मंजिल पर खड़ा था। वहां से पान की पिचकारी चला दी, थूक दिया। नीचे किसी भले आदमी के सिर पर उसकी पीक पड़ी। उस भले आदमी ने ऊपर देखा और चिल्लाया कि मुल्ला, आप नीचे देखकर नहीं थूकते?

मुल्ला बोलाः आप ऊपर देखकर क्यों नहीं चलते? उस आदमी ने कहाः अगर ऊपर देखकर चलता, तो सिर के बजाय मुंह में गिरती।

अपनी-अपनी फिक्र पड़ी है। अपने-अपने को बचाने की चेष्टा चल रही है। सिद्धांत इत्यादि तो आड़ हैं। शास्त्र इत्यादि तो बहाने हैं। मनुष्य कहता कुछ है, उसके प्रयोजन कुछ और होते हैं। और आदमी अपने अर्थ की बात निकाल लेने में बड़ा कुशल है। और जो अपने स्वार्थ के विपरीत पड़ती हो, उसे छोड़ देने में भी बड़ा कुशल है।

वीर-रस के एक कवि ने अपने मित्र से--जो नई कविता के कवि थे--कहाः जानते हो, जब मैं मंच पर काव्य-पाठ करता हूं, तो श्रोताओं के रौंगटे खड़े हो जाते हैं! यह तो कुछ भी नहीं--नई कविता वाले कवि बोले--जब मैं कविता-पाठ करता हूं, तो श्रोता स्वयं खड़े हो जाते हैं।

अपना-अपना मतलब होगा। स्वार्थ, निहित स्वार्थ अड़चन डाल रहे हैं। मैं जो कह रहा हूं ऐसा नहीं है कि समझ में नहीं पड़ रहा है। समझ में पड़ रहा है। और वे ही लोग विरोध में हैं, जिनके स्वार्थ के विपरीत बात पड़

रही है। पंडित-पुरोहित, मौलवी होगा ही विरोध में। उसका मंदिर-मस्जिद, उसका पूजा के नाम पर चलता क्रियाकांड, हवन, यज्ञ-याज्ञ, अगर मैं सही हूं तो सब गलत है। वही उसकी रोटी है। वही उसकी रोजी है। वही उसका जीवन है। उसके पैर के नीचे से जमीन खिंच जाएगी। उसे बचाना ही होगा अपनी जमीन को।

और ऐसा वह मेरे साथ ही नहीं कर रहा है, यही उसने सदा सभी बुद्धों के साथ किया है। तुम सोचते हो जीसस को सूली देने वाले कोई दुष्ट लोग थे, कोई बुरे लोग थे? नहीं, पंडित-पुरोहित, तथाकथित ज्ञानी... ! तुम सोचते हो जिन्होंने सुकरात को जहर पिलाया, वे कोई अपराधी लोग थे? नहीं; समाज के प्रतिष्ठित राजनेता... । क्या कठिनाई थी सुकरात से उनको? यही कठिनाई थी कि सुकरात सत्य बोलता था। और यह सबसे बड़ी कठिनाई है इस जगत में, क्योंकि जिनका धंधा ही असत्य बोलने पर चलता हो, वे सत्य बोलने वाले आदमी को बरदाश्त नहीं कर सकते। सत्य उनके लिए जहर जैसा मालूम होगा।

मेरे एक संन्यासी स्वामी कृष्ण प्रेम कुछ दिन पहले मोरारजी देसाई को मिलकर आये। मोरारजी देसाई ने उनसे कहा कि "तुम्हारे गुरु से कुछ वर्षों पहले मेरा मिलना हुआ था, लेकिन उन्होंने कुछ कठोर शब्द मुझसे कहे।" मैं सोचने लगा कि कौन-से कठोर शब्द मैंने उनसे कहे! तब मुझे याद आया कि मैंने उनसे कहा था कि जब तक महत्वाकांक्षा है, तब तक जीवन में दुख होगा। और जब तक महत्वाकांक्षा है, तब तक ध्यान संभव नहीं होगा।

उन्होंने पूछा थाः ध्यान करना चाहता हूं। मैंने कहाः राजनीति और ध्यान साथ-साथ न चल सकेंगे।

ये कठोर शब्द हो गए! ये कठोर शब्द उन्हें अभी भी कांटे की तरह चुभ रहे हैं। सत्य कठोर मालूम होता है, अगर तुम असत्य से बहुत ज्यादा जुड़े हो। उनको बातें प्यारी लगती हैं... मुक्तानंद ने उनको जाकर कहा कि "धन्यभाग है भारत का! यह देश, धर्म-भूमि, साधुओं की भूमि... और आप जैसा साधु-पुरुष इस देश का प्रधानमंत्री!" ये मधुर शब्द हैं। ये मैं नहीं कह सकता हूं।

मैंने उनसे कहा थाः जब तक राजनीति है मन में तब तक ध्यान न हो सकेगा।

अगर मुझे थोड़ी भी राजनीतिक समझ होती, तो मैं यह बात नहीं कहता। उनसे कहता कि आप तो ध्यानी हैं ही, आपको ध्यान की क्या जरूरत है? तब वह प्रसन्न हो गए होते, उनकी छाती फूल गई होती, वे मेरे विरोध में न होते। लेकिन मैंने वही कह दिया जो सही था।

यह मैं सोच ही नहीं सकता कि महत्वाकांक्षी चित्त और ध्यान कर सकता है। यह असंभव है। महत्वाकांक्षी चित्त कैसे ध्यान कर सकता है? महत्वकांक्षा होती है भविष्य से जुड़ी और ध्यान होता है वर्तमान से जुड़ा। महत्वाकांक्षा का अर्थ हैः कल पा कर रहूंगा। और ध्यान का अर्थ होता हैः पाने को कुछ है ही नहीं। जो पाने योग्य है, मिला है और जो पाने-योग्य नहीं है, वह नहीं मिला है। महत्वाकांक्षी परितुष्ट हो ही नहीं सकता और ध्यानी को परितुष्ट होना ही पड़ेगा। परितोष की ही पृष्ठभूमि में ध्यान का फूल खिलता है। संतुष्ट जो है, वही ध्यान कर सकता है। संतोष ही ध्यान की भूमिका है।

अब मैंने उनसे सत्य-सत्य कह दिया। कृष्ण प्रेम को उन्होंने कहा कि आपके गुरु ने मुझसे बड़े कठोर शब्द बोले। वर्षों बीत गए... कम-से-कम इस बात को हुए दस साल हो गए, मगर वे कठोर शब्द अभी भी उनको गड़ रहे हैं। मैं तो बहुत सोचकर याद कर पाया कि कौन-से शब्द थे जो कठोर हो सकते हैं। क्योंकि ज्यादा देर बात हुई भी नहीं थी और ध्यान के संबंध में ही बात हुई थी। यही बात उनको चोट कर गई होगी।

राजनीतिज्ञ यह बात नहीं सुन सकता कि महत्वाकांक्षा गलत है, क्योंकि वही तो उसकी आत्मा है। यह तो वह मान ही नहीं सकता कि वह साधु नहीं है; क्योंकि साधु है, इसी प्रचार पर तो वह जीता है। साधु है, यही लोगों को भरोसा दिला-दिलाकर तो वह लोगों का अगुआ बना रहता है।

और मैंने उनसे कहा था कि राजनैतिक व्यक्ति साधु नहीं हो सकता। राजनीति असाधुता की जड़ है। बात कठोर हो गई। बात चोट करनेवाली हो गई। नहीं कि उनकी समझ में नहीं आई, समझ में तो ऐसी आई कि दस साल हो गए अभी भी भूले नहीं। समझ में तो खूब बैठ गई। समझ में तो ऐसी आई है कि मरते समय शायद यही याद रहेगा। समझ में कैसे न आएगा? जिंदगी-भर कचरा-कूड़ा बीनने में गई। और जो मैंने बात कही है, वह उनकी जिंदगी-भर का सार तो प्रगट कर रही है। आखिरी समय में जहां तक संभावना इसी बात की है कि मुझे ही याद करते वे विदा होंगे। वह कठोर जो बात है... । मगर चूंकि मैंने उनके अहंकार को कोई पोषण नहीं दिया... ।

और राजनीति में जो लोग हैं, पदों पर जो लोग हैं, वे आदी हो जाते हैं, प्रशंसा के। वे इतने आदी हो जाते हैं कि कोई भी सत्य बात सुनना उनके लिए असंभव हो जाती है। वे उन लोगों से घिरे हैं, जो उनकी प्रशंसा में हर तरह के झूठ गढ़ते हैं। तो लाभ हुआ मुक्तानंद को। मेरे संन्यासी जब भारतीय राजदूतावासों में जाते हैं दुनिया के अलग-अलग देशों में, आज्ञा मांगते हैं कि पूना जाना है, तो राजदूतावास उनसे कहते हैं कि पूना जाने की कोई जरूरत नहीं, तुम मुक्तानंद के आश्रम जाओ। मोरारजी देसाई प्रसन्न हुए, मुक्तानंद ने कहा आप साधु हैं! मुक्तानंद को लाभ हो रहा है कि मोरारजी देसाई के राजदूतावास लोगों को उनके आश्रम में भेज रहे हैं, सुझाव दे रहे हैं। यह पारस्परिक लेन-देन हो गया। लाभ ही लाभ है दोनों का। सत्य बोलना हो तो हानि झेलने को तैयार होना ही होगा। क्योंकि सत्य जिन-जिनके विपरीत पड़ेगा, जो-जो नाराज हो जाएंगे, वे बदला लेंगे। और बदला लोग सीधा नहीं लेते। उतनी निष्ठा और उतनी ईमानदारी भी कहां है? बदला भी परोक्ष लेते हैं। इस ढंग से लेते हैं, जिसका हिसाब नहीं।

अब आज दो वर्षों से मैं चेष्टा कर रहा हूं एक विस्तीर्ण... संन्यासियों का नगर बन सके। कच्छ के महाराजा ने चार सौ एकड़ जमीन दी है दान। वह पड़ी है। न तो हां भरते हैं, न ना करते हैं। चालबाजी देखो! अगर वे ना करें तो मैं सुप्रीम कोर्ट जा सकता हूं। क्योंकि ना करना गैर-कानूनी होगा। कोई हक नहीं है उन्हें इनकार करने का। चूंकि मैं सुप्रीम कोर्ट न जा सकूं, इसलिए ना भी नहीं करते। और "हां" तो करनी नहीं है। ये चालबाजियां हैं।

यहां महाराष्ट्र में साढ़े सात सौ एकड़ जमीन खरीदी आश्रम ने। न तो हां भरते, न ना करते। क्योंकि भलीभांति जानते हैं कि ना करना गैर-कानूनी है। और कानून के मामले में फिर जीत न सकेंगे अदालत में। तो इसलिए ना ही मत करो। अब जब तक वे ना न करें, तब तक अदालत में नहीं जाया जा सकता। अदालत पूछती है कि अगर वे ना कर दें, तो ठीक है। हां भी नहीं भरते। टालते रहते हैं--और आठ दिन, और आठ दिन, और महीना भर और दो महीना... ऐसा-वैसा... टालते रहो।

सीधा संघर्ष करने की भी हिम्मत झूठे लोगों में नहीं होती। झूठ हमेशा पीछे से वार करता है, पीठ में छुरा भोंकता है। सामने आने की, आंख चार करने की भी हिम्मत नहीं होती।

और क्या-क्या बहाने लोग खोजते हैं!

कृष्ण प्रेम को मोरारजी देसाई ने कहा कि तुम जो इतने लोग उनसे प्रभावित हो गए हो, उसका कुल कारण इतना है कि उन्होंने तुम्हें सम्मोहित कर लिया है। जो उनके पास जाता है वह सम्मोहित हो जाता है। उनके पास जाना ही नहीं चाहिए।

तो राजनेता मेरे पास आते भी नहीं। मेरे विरोध में बोलते हैं; मेरे पास नहीं आते, क्योंकि भय कि कहीं आंख-से-आंख मिली और कहीं सम्मोहित हो गए! तो यहां आ भी नहीं सकते। क्या-क्या तरकीबें लोग खोज लेते हैं!

ये जो हजारों लोग यहां आ रहे हैं, ये सब सम्मोहित हो गए हैं? जो यहां मेरे पक्ष में है वह सम्मोहित है; और जो मेरे विपक्ष में हैं, वे ठीक हैं। तब तो निर्णय कैसे होगा? तब मैं जो कह रहा हूं वह ठीक है या गलत है, इसका निर्णय कैसे होगा? क्योंकि जो भी मेरे पक्ष में गवाही देगा, वह सम्मोहित है। उसकी बात का तो कोई मूल्य ही नहीं रह गया। और जो मेरे विरोध में बोलेगा वह बुद्धिमान है! और जो मेरे विरोध में बोलता है, वह यहां कभी आया नहीं। ऐसी-ऐसी बातें लोग कहते हैं कि बड़ी हैरानी होती है। न कभी यहां आते, न कभी यहां आकर देखते कि क्या हो रहा है। डर पकड़ा हुआ है, भय पकड़ा हुआ है कि कहीं सम्मोहित न हो जायें! तो सम्मोहन का एक धुआं खड़ा कर लिया। अब सुरक्षा हो गई। आने की जरूरत भी न रही और जो कहना है कहे जाओ। और पद पर हो, इसलिए जो तुम कहते हो वह अखबार भी छापे चले जायेंगे।

नहीं, ऐसा मत समझो कि उनकी समझ में बात नहीं आ रही। इतनी बात तो उनकी समझ में आ रही है कि कुछ हो रहा है यहां। कोई अंगार यहां पैदा हो रही है। कोई आग यहां जल रही है। उससे वे भयभीत हो गए हैं। इस आग को बुझाने की सब तरह से चेष्टा चल रही है। मगर यह गैरिक आग बुझनेवाली नहीं है। यह वह आग ही नहीं जो बुझ जाए। इसे जितनी बुझाने की कोशिश की जायेगी, उतनी यह भड़केगी, उतनी यह बढ़ेगी। उनके विरोध के कारण बहुत-से लोग आ जाते हैं।

इसलिए मैं चिंता नहीं करता कि मेरे खिलाफ अखबारों में क्या चलता है। चले, खिलाफ भी चले, तो भी ठीक है। कुछ चले... । खिलाफ पढ़कर ही लोग कुछ आ जाते हैं। जो कि शायद न खिलाफ पढ़ा होता तो कभी न आते। और एक मजे की बात है, कि जब बहुत कुछ खिलाफ में पढ़कर आते हैं, तो वे अपेक्षायें करके आते हैं कि इतना-इतना खिलाफ सब देखने मिलेगा। जब उन्हें यहां देखने को कुछ भी नहीं मिलता, वे जो खिलाफ सुनकर आये थे, तो एक रूपांतरण होता है; एक धक्का लगता है कि हम किस तरह की व्यर्थ की बातों को मानते रहे!

नहीं, उससे कुछ हानि नहीं है। समझ में उनके आ रहा है, समझना वे नहीं चाहते हैं। समझना उनके स्वार्थ के विपरीत है। और अपनी भूल तो कभी कोई स्वीकार करता नहीं। जो अपनी भूल स्वीकार कर ले, उसके जीवन में तो धार्मिक क्रांति घट जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपनी सहेली से कह रही थीः उन जैसा लापरवाह भी जमाने में शायद ही कोई दूसरा हो! अब यही देखो कि वर्षों मैं इसी चिंता में घुलती रही कि आखिर ये रोजाना सारी-सारी शाम कहां बिताते हैं? वह तो मैं अकस्मात उस दिन शाम को क्लब से जल्दी घर लौट आई, तभी पता चला कि हजरत घर में ही बैठे रहते थे।

अपनी भूल दिखाई ही नहीं पड़ती। और अपनी भूल जिसे नहीं देखनी है, उसे दूसरों की भूल देखते रहने में लगा रहना होता है। दूसरों की भूल में उसे इतनी उत्सुकता लेनी चाहिए, ताकि अपनी भूल देखने का समय ही न बचे। उसे इतने जल्दी दूसरों के विरोध में लग जाना चाहिए कि उसे कभी याद भी न आए कि मेरे भीतर

भी कुछ पड़ा है, जिसका विरोध करना है, जिसे तोड़ना है, जिसे गिराना है, जिसे समाप्त करना है, कि मेरे भीतर भी बहुत अंधेरा है, जहां रोशनी जलानी है।

पंडित हैं, पुजारी हैं, उनकी तकलीफ है कि उनका व्यवसाय, उनकी रोजी-रोटी धर्म है। राजनेता हैं, उनकी तकलीफ--कि अहंकार उनके जीवन की आधारशिला है। और जब भी कोई बुद्धपुरुष होगा, तो दोनों पर चोट पड़ेगी। सारे बुद्धों ने अहंकार पर चोट की है। क्योंकि बिना अहंकार के टूटे, तुम्हारे भीतर परमात्मा का आविर्भाव नहीं होगा। इसलिए जो-जो अहंकारी हैं, वे नाराज होंगे। और सारे बुद्धों ने धर्म के नाम पर चलते क्रियाकांडों का विरोध किया है। क्योंकि धर्म का असली रूप क्रियाकांड का नहीं है, भाव का है। ऊपरी आयोजन से कुछ अर्थ नहीं है। ये ऊपरी आयोजनों के नाम पर अर्थ तो बिल्कुल नहीं होता, अर्थी निकल गई है धर्म की। भीतरी भाव की दशा पर जोर होता है। जो भी जागा है वह जोर देगा आंतरिक पर। पंडित-पुजारी नाराज होंगे।

धर्मगुरु और राजनेता, सदा से बुद्धों के विपरीत रहे हैं और सदा विपरीत रहेंगे। इसमें कुछ आज ही ऐसा हो रहा है, ऐसा मत सोचना। यह शाश्वत नियम है। लेकिन कोई सारा देश राजनेताओं और धर्मगुरुओं से नहीं बना है। देश का अधिकांश जन न तो राजनीति में उत्सुक है, न धर्मगुरुओं में उत्सुक है। उस तक ही खबर पहुंचानी है। उसके और मेरे बीच राजनेता और धर्मगुरु खड़े होंगे और खबर नहीं पहुंचने देंगे, लेकिन खबर उस तक ही पहुंचानी है। राजनेताओं और धर्म-गुरुओं की फिक्र छोड़ो। तुम तो इस देश के सामान्य जन तक खबर पहुंचा दो। उसका कोई स्वार्थ नहीं है। और उसके जीवन में ब.ड़ी प्यास है और बड़ी आकांक्षा है। उसके भीतर बड़ी अभीप्सा है। इस देश ने सदियों-सदियों तक परमात्मा को खोजने की अभीप्सा पाली है। वह अब भी जीवित है साधारण जन में। वह जो सामान्य जन है, उसके भीतर अभी भी वह प्यास बुझ नहीं गई है। उसी प्यास के कारण तो पंडित-पुरोहित उसका शोषण कर पाते हैं, नहीं तो शोषण कैसे करेंगे?

अगर कोई आकर तुम्हारे हाथ में नकली चीज पकड़ा जाता है, तो एक बात पक्की है कि तुम्हें असली की तलाश थी। नहीं तो कोई नकली भी कैसे पकड़ाता? नकल चलती है, क्योंकि असल की तलाश है। झूठ चलता है, क्योंकि सत्य की खोज है। मगर प्यास तो निश्चित है; जो पंडित-पुजारी के चक्कर में पड़ा है, वह चक्कर में पड़ता ही क्यों? कोई नास्तिक तो नहीं पड़ता। जिसको ईश्वर से कुछ लेना-देना नहीं है, जिसे धर्म से कुछ प्रयोजन नहीं है, वह तो पंडित-पुरोहित के चक्कर में नहीं पड़ता, लेकिन जो पंडित-पुरोहित के चक्कर में पड़ा है, उसे कुछ लेना है। वह टटोल रहा है, खोज रहा है। उसकी आंखें तलाश कर रही हैं। फिर जो भी उसे मिल जाता है निकट, जो भी कहता है कि ऐसा करने से मिल जाएगा, बेचारा वैसा ही करने लगता है। उस तक मेरी खबर पहुंचाओ। पंडितों की, पुजारियों की फिक्र छोड़ो। उस तक मेरी खबर पहुंचने दो। उस तक खबर पहुंचते ही वह पंडित-पुजारियों के घेरे के बाहर हो जाएगा। यही डर है पंडित-पुजारी को कि उस तक खबर न पहुंच जाये।

इसलिए जितनी गुहार वे मचा सकते हैं मेरे विरोध में, मचायेंगे। मगर उनको पता नहीं है, जीवन के नियमों का उन्हें कुछ पता नहीं है। जितना वे मेरा विरोध करेंगे, उतनी ही खबर पहुंचेगी। वे ही खबर पहुंचा रहे हैं। मैं तो कहीं जाता नहीं। तुम यह चमत्कार देखते हो, मैं अपने कमरे में ही बैठा रहता हूं--और दुनिया में एक देश नहीं है जहां मेरी चर्चा न चल रही हो, विरोध न हो रहा हो, सभाएं न हो रही हों मेरे खिलाफ! अखबारों में लेख लिखे जा रहे हैं। तुमने कभी सुना, ऐसा कोई आदमी अपने कमरे में बैठा रहे और सारी दुनिया में इतना उपद्रव मचता रहे! मैं कमरे से बाहर जाता ही नहीं, तो कौन मेरा काम कर रहा है? पंडित-पुजारी बड़े काम में लगे हैं। उनकी बड़ी कृपा है। वे मानेंगे नहीं, वे पहुंचा ही देंगे खबर लोगों तक।

पिछले दो महीने से जर्मनी में बड़े जोर से मेरा विरोध चल रहा है। शायद ही एक अखबार हो जर्मनी का जिसने मेरे विरोध में नहीं लिखा। लेकिन जब इतने लोग विरोध में लिखते हैं तो कुछ लोग सोचने लगते हैं कि मामला क्या है? आखिर किसी आदमी को, जो न कभी आया यहां न कभी आयेगा, उसकी खिलाफत इतनी क्यों की जा रही है? तो जर्मनी से तलाश करने लोग आने लगे। फिर जो यहां आये, उन्होंने पक्ष में लिखना शुरू कर दिया। सिलसिला शुरू हो गया। अब आने वाले दो-तीन महीनों में यहां जर्मनी से सर्वाधिक लोग होंगे। रोज जर्मनी से लोग आ रहे हैं, इतना जिसके विरोध में चल रहा है तो जरूर कुछ बात होगी। विरोध करने की ही सही, मगर कुछ बात होगी। उत्सुकता पैदा होती है।

अब मेरे संन्यासी जर्मनी से आ रहे हैं, वे कह रहे हैं कि पहले तो हम बहुत डर गये थे। क्योंकि हम कहीं भी रास्ते पर निकलते थे तो लोग घूर-घूर कर देखते थे कि ये जा रहे हैं! इतना खिलाफत में प्रचार चला कि हम भयभीत होने लगे थे कि क्या होगा! मगर धीरे-धीरे हवा बदल गई है।

मैंने कहाः तुम फिक्र न करो, मैं अपने कमरे में बैठा-बैठा हवा बदलता रहता हूं। तुम चिंता न करो।

अब लोग पास आकर पूछते हैं कि बात क्या है, असली बात क्या है? जिन्होंने कभी नहीं पूछा वे घर भोजन पर निमंत्रित करते हैं कि आओ, जरा बताओ, बात क्या है? कोई किताब पढ़ने को दो। कुछ खबर सुनाओ। हम भी आना चाहते हैं।

नए-नए लोग आना शुरू हुए हैं, जो शायद कभी न आते। और तुम जानते हो, किसने यह सारा आयोजन किया? जर्मनी के प्रोटेस्टेंट चर्च ने यह आयोजन किया। यह सारा विरोध का सिलसिला उन्होंने शुरू करवाया। यहां जासूस भेजे। झूठी कहानियां गढ़वाईं। झूठे वक्तव्य दिलवाये। प्रोटेस्टेंट चर्च को क्या पड़ी थी? स्वभावतः अड़चन होती है। जर्मनी से सैकड़ों युवक-युवतियों ने आकर संन्यास लिया है। और जो संन्यस्त हो जाता है, वह फिर चर्च नहीं जायेगा। चर्च किसलिए जायेगा? उसका तो क्राइस्ट से ही संबंध जुड़ गया, अब उसे क्रिश्चियन होने की जरूरत न रही। तो भय व्याप्त हो गया। घबड़ाहट व्याप्त हो गई।

फिर, जो यहां एक बार आ जाता है, वह जब लौटता है तो दूसरे ही ढंग का आदमी होता है। बहुत-से तो कभी लौटते ही नहीं। तो मां-बाप को फिक्र होती है, सरकारों को फिक्र होती है कि यह हो क्या रहा है? निश्चित ही सम्मोहन चल रहा है। नहीं तो जो लोग गए, वे गए ही, फिर लौटे ही नहीं। सम्मोहन के अतिरिक्त और तो इसका कोई कारण हो ही नहीं सकता। और कुछ उनकी समझ में नहीं आता। यह तो वे मान ही नहीं सकते हैं कि सत्य का भी एक सम्मोहन होता है, कि प्रेम का भी एक सम्मोहन होता है, कि आनंद का भी एक सम्मोहन होता है। यह तो वे मान ही नहीं सकते। वे तो मानते हैं कि कोई जादू-टोना कर दिया गया है लोगों पर... कि लोग उनकी इच्छा के विपरीत जबर्दस्ती रोक लिये गए हैं।

तो फिर जर्मन सरकार ने अपने जासूस भेजने शुरू कर दिये। मगर जल्दी ही सरकारें अपने जासूस भी भेजना बंद करेंगी, क्योंकि जासूसों में से कुछ ने संन्यास ले लिया है। जर्मनी से आए एक प्रोटेस्टेंट पादरी ने संन्यास ले लिया। क्योंकि उसे लगा मैं तो वही कह रहा हूं जो जीसस ने कहा है। आदमी हिम्मतवर था। और अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई है, क्योंकि वह अपने चर्च में मेरे संबंध में बातें कर रहा है, गैरिक वस्त्र पहनकर! अब पूरा उपद्रव खड़ा हो गया है। क्योंकि चर्च के इतिहास में ऐसा कभी किसी ने किया नहीं। इसलिए इसके पक्ष-विपक्ष में कोई नियम नहीं है कि कोई आदमी माला पहनकर किसी की चर्च में बोल सकता है या नहीं, उसे हक है बोलने का या नहीं? गैरिक वस्त्र पहनकर बोल सकता है या नहीं? जर्मनी के चर्च ने उस आदमी को थाइलैंड भेज दिया, वहां से स्थानांतरित कर दिया। मगर वह आदमी खुश है। उसने लिखा है कि मैं बड़ा प्रसन्न

हूं, क्योंकि थाइलैंड जाते वक्त फिर पूना रुक सकूंगा। इस बार मेरी पत्नी भी संन्यास लेने आ रही है। और हमें आज्ञा दें कि थाइलैंड में हम आपका क्या काम कर सकते हैं।

घबड़ाओ मत, विरोध से कुछ नुकसान कभी हुआ नहीं है। जो खोज रहे हैं, उन्हें लाभ ही होगा। और जो सामान्यजन है, जिसका कोई स्वार्थ नहीं है, उसका हृदय जल्दी ही आंदोलित होगा। उसके पास हृदय है भी। पंडित-पुजारियों के पास, राजनेताओं के पास हृदय इत्यादि कहां! जरूरत भी नहीं है वहां हृदय इत्यादि की। न हृदय की, न बुद्धि की--इन सब चीजों की वहां जरूरत नहीं है।

मैंने तो सुना है कि एक राजनेता के मस्तिष्क का आपरेशन हुआ। बड़ा आपरेशन था। तो उसकी खोपड़ी में से मस्तिष्क निकालकर सफाई की जा रही थी मस्तिष्क की। राजनेता का मस्तिष्क, सफाई तुम सोच ही सकते हो कि भारी सफाई करनी पड़ेगी! इतनी गंदगी और कहां इकट्ठी होगी? इतनी चोरी-बेईमानी, इतना इरछा-तिरछा-पन... । जब तक चिकित्सक उसके मस्तिष्क की सफाई कर रहे थे, एक आदमी आया और उसने कहा कि आप यहां लेटे क्या कर रहे हैं, आपका तो चुनाव हो गया है, आप तो प्रधानमंत्री बन गए। तो वह नेता तो एकदम से उठ खड़ा हुआ। प्रधानमंत्री कोई बन जाए तो मुर्दा उठ खड़ा हो। वह तो एकदम चला! डाक्टर चिल्लाया कि भाई आप कहां जाते हैं, मस्तिष्क तो लगा देने दें! उसने कहाः अब मुझे मस्तिष्क की क्या जरूरत? अब मैं प्रधानमंत्री हो गया हूं। अब मस्तिष्क तुम रखो।

राजनेता को न तो मस्तिष्क की जरूरत है, न हृदय की। सच तो यह है अगर मस्तिष्क हो, तो राजनेता होता? तो कुछ और सार्थक काम करता--कवि होता, चित्रकार होता, मूर्तिकार होता, संत होता, नर्तक होता, गायक होता; इस जीवन को कुछ सौंदर्य देता; इस जीवन में कुछ काव्य जोड़ता; इस जीवन को कुछ रंग देता। राजनेता होता? हृदय होता, तो कैसे राजनेता हो पाता? तो करुणा होती; प्रेम होता। राजनीति असंभव हो जाती। उनके पास तो हृदय नहीं है।

लेकिन वृहत जन के पास अभी भी हृदय है, अभी भी मस्तिष्क है। उसी तक खबर पहुंचाओ। उस तक खबर पहुंचेगी। कितनी ही बाधाएं हों, उस तक खबर पहुंचेगी। क्योंकि उसकी प्यास है। और जिसकी प्यास है, सरोवर है कहीं तो प्यासा उसे खोजने निकल पड़ता है।

तीसरा प्रश्नः आप प्रभु की परम अनुभूति के लिए कभी-कभी शराब जैसा प्रतीक क्यों प्रयोग करते हैं? क्या कोई अच्छा प्रतीक नहीं मिल सकता है?

अच्छा और बुरा देखने की बात है, नहीं तो शराब से प्यारा प्रतीक और क्या होगा? शराब का अर्थ केवल इतना ही है--मस्ती, विस्मरण, लवलीनता, तल्लीनता। शराब तो सूफियों का बड़ा समादृत प्रतीक है।

उमर खैयाम की रुबाइयात पढ़ी है? उमर खैयाम कोई शराबी नहीं है। उमर खैयाम एक सूफी फकीर है। उमर खैयाम एक परम ज्ञानी है--जैसे सरहपा और जैसे तिलोपा, ऐसा परम ज्ञानी है।

शराब प्रतीक है। और शराब से सुंदर कोई प्रतीक नहीं हो सकता परमात्मा के संबंध में, क्योंकि जो भी उसमें डूबता है सदा के लिए मस्त हो जाता है, अलमस्त हो जाता है। शराब भी और ऐसी शराब कि फिर उतरती नहीं, चढ़ी सो चढ़ी! सिर चढ़कर बोलती है, ऐसी शराब। ऐसी शराब कि बेहोशी ही नहीं लाती, बड़ी विरोधाभासी है--एक तरफ बेहोशी लाती है, एक तरफ होश लाती है। अहंकार तो बेहोश हो जाता है और आत्मा जग जाती है।

नहीं, बनेगा नहीं। शराब का प्रतीक तो लाना ही होगा।

हरचंद हो मुशाहद-ए-हक की गुफ्तगू।

बनती नहीं है, बादा-ओ-सा.गर कहे ब.गैर।।

लाख तत्व-चर्चा करो, मगर बनती नहीं है, बात बनती नहीं है। हरचंद हो मुशाहद-ए-हक की गुफ्तगू... कितनी ही ईश्वरीय चर्चा करो, जब तक शराब की मादकता, शराब की सुराही और साकी की बात न आ जाए, बात बनती नहीं है। कुछ रूखा-रूखा रह जाता है, कुछ सूखा-सूखा रह जाता है।

हरचंद हो मुशाहद-ए-हक की गुफ्तगू।

बनती नहीं है, बादा-ओ-सागर कहे ब.गैर।।

सागर तो मधुघट। शराब--मदमस्ती! भक्त--पियक्कड़! साकी--वही परमात्मा पिलानेवाला। लेकिन तुम्हारे मन में शराब का साधारण अर्थ बैठ गया है। साधारण अर्थ अगर तुम्हारे भीतर बैठा है तो तुम्हारा कसूर है। शराब जैसे प्यारे शब्द को वहीं समाप्त मत हो जाने दो, उसे ऊपर उठाओ, उसे मुक्त करो। उसे शराबियों के हाथ से छुड़ाओ, उसे सूफियों के हाथ में दो।

प्यारे-से-प्यारे शब्द की दुर्गति हो सकती है गलत हाथों में और गलत-से-गलत शब्द की सुगति हो सकती है ठीक हाथों में--हाथों की बात है।

अनगढ़-से-अनगढ़ पत्थर ठीक कलाकार के हाथ में पड़ जाए तो सुंदरतम मूर्ति बन जाता है।

ऐसा हुआ कि माइकल एंजिलो एक संगमरमर के पत्थर की दुकान के पास से गुजरता था। उसने दुकान के बाहर दूर सड़क के उस तरफ संगमरमर की एक बड़ी चट्टान पड़ी देखी। उसने दुकानदार से कहा कि इस चट्टान के कितने दाम होंगे? दुकानदार ने कहाः दाम! उसे कोई खरीदता नहीं--इतनी आड़ी-तिरछी, इतनी बेढंगी कि कोई मूर्तिकार उसे खरीदता नहीं। इसलिए मैंने उसे सड़क के उस तरफ डाल दिया है। तुम दाम की पूछो ही मत। अगर तुम ले जा सकते हो अपने खर्चे से उठाकर तो तुम ले जाओ। मेरा छुटकारा हो, मेरी जगह खाली हो।

माइकल एंजिलो उस पत्थर को उठवा ले गया। दो वर्ष बाद उसने दुकानदार को कहा कि आओ घर, चाय भी पीना, नाश्ता भी करना और कुछ तुम्हें दिखाना है। वह दुकानदार तो भूल ही गया था उस पत्थर की बात। चाय पिलाने के बाद जब माइकल एंजिलो उसे ले गया अपने स्टूडियो में और उसने जीसस की प्रतिमा दिखाई... मरियम ने, जीसस की मां ने, जब जीसस को सूली से उतारा गया तो अपनी गोद में लिया हुआ है--ऐसी प्रतिमा उसने बनाई, मरियम और जीसस गोद में! कहते हैं माइकल एंजिलो की यह प्रतिमा उसकी सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा है। और उसकी ही नहीं, शायद पृथ्वी पर इतनी सुंदर प्रतिमा खोजनी दूसरी मुश्किल है। भाव-विभोर हो गया वह दुकानदार। पारखी था वह भी। काम ही उसका संगमरमर बेचना था चित्रकारों, मूर्तिकारों को। उसने कहाः यह पत्थर तुमने कहां से पाया? माइकल एंजिलो हंसने लगा, उसने कहाः तुम्हें याद नहीं, दो साल पहले तुम्हारी दुकान के बाहर तुमने एक पत्थर फेंक दिया था, यह वही पत्थर है! वह दुकानदार तो भरोसा न कर सका। उसने कहा कि तुम इस पत्थर को ऐसा रूप दे दिए हो, यह पत्थर जीवित हो उठा! यह तुम्हें कैसे ख्याल आया?

माइकल एंजिलो ने कहाः मुझे ख्याल नहीं आया, मैं जब तुम्हारी दुकान के सामने से गुजरता था तो इस पत्थर में छिपे जीसस ने मुझे आवाज दी कि मुझे मुक्त करो, मैं इस पत्थर में बंद पड़ा हूं। वही आवाज सुनकर यह पत्थर मैं उठा लाया था। जो व्यर्थ था वह काटकर अलग कर दिया है, जीसस मुक्त हो गए हैं।

यही प्रतिमा, तुम्हें याद होगा, कोई डेढ़ साल पहले वेटिकन के चर्च में एक पागल आदमी ने हथौड़े से तोड़ दी, यही प्रतिमा थी! सुंदरतम प्रतिमा भग्न कर दी गई। इस दुनिया में लोग हैं, जो पत्थरों को प्रतिमाएं बना देते हैं; इस दुनिया में लोग हैं, जो प्रतिमाओं को भग्न कर देते हैं, यहां सृजनात्मक लोग हैं, यहां विध्वंसात्मक लोग हैं।

मैं तो जीवन में जो है, उस सबको एक रूप देना चाहता हूं, मेरे लिए शराब शब्द में कोई बुराई नहीं है। अंगूरों से ढलती है शराब, आत्माओं से भी ढलती है। एक शराब बाहर की भी है, एक भीतर की भी है। और सच पूछो तो भीतर की शराब की जो खोज कर रहे हैं वे ही बाहर की शराब के चक्कर में पड़ जाते हैं। भीतर जाना तो कठिन, बाहर सस्ती मिल जाती है। लेकिन मेरी अपनी समझ, और मेरी ही समझ नहीं, आधुनिक मनोविज्ञान इसके समर्थन में है कि जो भी लोग शराब पीते हैं उनके भीतर कोई धार्मिक तलाश है। क्यों? क्यों वे शराब पीने लगते हैं? वे अपने अहंकार को विसर्जित करना चाहते हैं, लेकिन उपाय नहीं खोज पाते; शराब उनको थोड़ी देर के लिए अहंकार को विस्मरण करने का बहाना बन जाती है; थोड़ी देर को अहंकार भूल जाता है, चिंता भूल जाती है, विषाद भूल जाता है; जगत भूल जाता है; थोड़ी देर को वे दूसरे जगत में लीन हो जाते हैं।

यह तो तुम्हें पता ही है कि साधु-संन्यासी सदियों से गांजा, भंग, शराब का उपयोग करते रहे हैं। क्यों? साधु-संन्यासी क्यों? तलाश है! इस अहंकार से कैसे छुटकारा हो?

असली छुटकारा तो ध्यान से होगा, समाधि से होगा। मगर समाधि साधना तो लंबी प्रक्रिया है। मिले कोई गुरु, जगाए कोई गुरु, पुकारे कोई गुरु तुम्हारी नींद से--तो होगा। लेकिन शराब सस्ती मिल जाती है, गांजा आसानी से मिल जाता है। बाहर की शराब भीतर की शराब की तलाश में ही पकड़ में आ जाती है। और अगर दुनिया को बाहर की शराब से मुक्त करवाना है तो एक ही उपाय हैः भीतर की शराब बहाओ, भीतर की मधुशालाएं खोलो।

यह भी एक मधुशाला है--भीतर की मधुशाला। बाहर की शराब से छूट ही नहीं सकते तुम, जब तक कि तुम्हें भीतर की असली शराब न मिल जाए।

मैकशों ने पी के तोड़े जामे-मै।

हाय वोह सा.गर जो रक्खे रह गये।।

लेकिन बहुत हैं यहां, जिनके भीतर भरी हुई सुराहियां रखी थीं शराब की, वैसी ही रखी रह गईं। उन्होंने कभी न पी, न पिलाई। ऐसे ही आए ऐसे ही गए।

इन तल्ख़ आंसुओं को न यूं मुंह बना के पी

ये मै है खुद कशीद इसे मुस्करा के पी

उतरेंगे किसके हल्क से यह दिल ख़राश घूंट

किसको पयाम दूं कि मेरे साथ आ के पी

बुला रहा हूं लोगों को कि यहां एक मधुशाला खोली है, आओ--मेरे साथ बैठो और पीयो। शराब तल्ख़ होती है--बाहर की भी और भीतर की भी। पीते वक्त कड़वी मालूम होती है। सत्य कड़वा मालूम होता है पीते समय; कंठ से नहीं उतरता; तुम्हारे सारे व्यक्तित्व के विपरीत होता है। तुम तो मीठे झूठ पीने के आदी हो गए हो।

इन तल्ख़ आंसुओं को न यूं मुंह बना के पी

ये मै है खुद कशीद इसे मुस्करा के पी

उतरेंगे किसके हल्क से यह दिल ख़राश घूंट
किसको पयाम दूं कि मेरे साथ आ के पी

हिम्मत चाहिए, क्योंकि तल्ख़ हैं ये घूंट, कड़वे हैं ये घूंट, सत्य के हैं ये घूंट। थोड़े हिम्मतवर ही पी सकेंगे। हां, एक बार पी लेंगे और एक बार स्वाद लग जाएगा तो फिर सारी तल्खी भूल जायेंगे। फिर पीते-पीते एक माधुर्य का आविर्भाव होता है, अनुभव से होता है।

नहीं, मेरे लिए शराब के प्रतीक में जरा भी कुछ खराबी नहीं है। मुझे तो यह शब्द बड़ा प्यारा है। मैं पियक्कड़ हूं और तुम्हें भी पियक्कड़ ही बनाना चाहता हूं; और मैं तुम्हें ऐसी शराब देना चाहता हूं जिस पर कोई पाबंदी नहीं हो सकती, जिस पर कभी कोई पाबंदी नहीं होगी। और मैं तुमसे यह भी कहना चाहता हूं कि जो शराब मैं तुम्हें पिला रहा हूं अगर न पी तो बाहर की पाबंदियां तोड़कर भी तुम बाहर की शराब पीते ही रहोगे, चोरी-चपाटी से पीयोगे, खुले न पी सकोगे। खुले आम न पी सकोगे तो बहानों से पीयोगे। कुछ न कुछ रास्ते खोजते रहोगे।

और मजा यह है कि यहां शराब पीने वाले ही शराब पीने वाले नहीं हैं बाहर--कोई धन की शराब पी रहा है! तुमने देखा न धन-मद, कैसी अकड़, कैसी मस्ती!

मुल्ला नसरुद्दीन अपने जवान बेटे के साथ बरसात के दिन एक नाले को पार करता था, एकदम छलांग लगा गया-- बुड्ढा छलांग मारकर उस तरफ पहुंच गया। बेटे ने भी देखा कि जब बाप छलांग मार गया तो अब इज्जत की बात थी, जवान होकर वह छलांग न मारे! उसने भी छलांग मारी, मगर बीच नाले में गिरा। उठकर उसने पूछा कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता, आप बूढ़े हो गए और छलांग मार गए! नसरुद्दीन हंसने लगा, उसने कहाः इसका राज है। उसने खीसा बजाकर कलदार खनखनाए। बेटे ने कहाः मैं कुछ समझा नहीं। उसने कहाः बस पैसा पास में हो तो आदमी में गर्मी होती है, जवानी होती है, सब होता है। अब तेरी जेब खाली है, गिरे बीच में। मैं तो गिर ही नहीं सकता बीच में, क्योंकि नोट, रुपये भीग जाएं।

तुमने देखा, जब तुम्हारी जेब भरी भरी होती है तो पैरों में चाल होती है, गर्मी होती है, बल होता है। जब नोट नहीं पास, बस एकदम प्राण निकल जाते हैं, आत्मा खो जाती है, चलते मुर्दे जैसे।

धन का भी मद है। धन की बड़ी अकड़ है! पद की भी बड़ी अकड़ है। पद का भी बड़ा मद है! ये भी सब शराबें हैं। ये जरा सूक्ष्म शराबें हैं, मगर सब शराबें हैं।

इस दुनिया में या तो तुम्हें बाहर की शराब पीनी पड़ेगी और या भीतर की पीनी पड़ेगी, बचाव नहीं है। और अगर बाहर से बचना हो तो भीतर की पी लो। परमात्मा को पीयो, फिर बाहर कुछ पीने जैसा नहीं रह जाता। फिर सब बेस्वाद है बाहर, सब फीका-फीका है।

मेरा चंचल मन आता है
तेरे रोम-रोम को छू-छू!
इन्द्रिय का व्यापार नहीं है,
तन का भी अभिसार नहीं है!
मेरा कोकिल मन करता है
तेरे प्राण-प्राण में कू-कू!
सभी चाहते इसे पकड़ना;
इस पर अपना कब्जा करना!

मेरा रसमय मन जागा है

तेरे अंग-अंग से चू-चू!

जोड़ो परमात्मा से अपना संबंध, तो उसका संगीत तुमसे बहे, उसका रस तुमसे बहे। रसो वै सः! वह परमात्मा रस-रूप है।

उसी परमात्मा के रस-रूप की चर्चा वेदों ने सोमरस की तरह की है। सोमरस कोई गांजा-भांग का निचोड़ नहीं है। सोमरस कोई पुराने जमाने का एल. एस. डी. और मारिजुआना नहीं है। सोमरस वही शराब है, जिसकी मैं तुमसे चर्चा कर रहा हूं। वैज्ञानिक बड़ी खोज में रहे हैं कि यह सोमरस की जड़ी-बूटी कहां मिले, क्योंकि वेदों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है! वेद तो उसकी स्तुति से भरे हैं। उसको देवता कहा हैः सोम-देवता। और कहा हैः जिसने सोमरस पी लिया उसने सब जान लिया। तो स्वभावतः सवाल उठता है कि सोमरस की जड़ी-बूटी है कहां? तो खोजबीन चलती रही है, हिमालय पर न मालूम कितने वैज्ञानिक खोज करने आए हैं। अब तक हाथ नहीं लगी है। कुछ को तो कुछ-कुछ हाथ लग गया, उन्होंने वही सिद्ध करना शुरू कर दिया कि यही सोमरस है।

सोमरस उसी शराब का नाम है, जिसकी मैं बात कर रहा हूं--बाहर की किसी जड़ी-बूटी से नहीं मिलता, आत्मा में निचुड़ता है।

मेरा चंचल मन आता है

तेरे रोम-रोम को छू-छू!

मेरा कोकिल मन करता है

तेरे प्राण-प्राण में कू-कू!

मेरा रसमय मन जागा है

तेरे अंग-अंग से चू-चू!

बुझेगी नहीं तुम्हारी प्यास, अगर तुमने शराब न पी--शराब मेरी, शराब बुद्धों की, शराब कृष्ण की और क्राइस्ट की!

बहुत दिन तक करके विश्वास,
बहुत दिन तक करके उपहास,
बहुत दिन रह करके दूर, बहुत दिन तक रह करके पास!
बुझ सकी नहीं हृदय की प्यास!

बहुत दिन किया किसी को प्यार,
बहुत दिन मन पर कर अधिकार,
बहुत दिन तक करके शृंगार, बहुत दिन तक लेकर संन्यास!
बुझ सकी नहीं हृदय की प्यास!

बहुत दिन नीड़ों का निर्माण
बहुत दिन प्राणों का अवसान,
बहुत दिन तक पायी है भूमि, बहुत दिन पाया है आकाश!
बुझ सकी नहीं हृदय की प्यास!

बुझेगी भी नहीं! किसी मधुशाला का अंग होना पड़ेगा। किसी सत्संग में डुबकी लगानी पड़ेगी। जो पीकर मस्त हो, उसके हाथ में हाथ दे देना होगा। उस प्रक्रिया का नाम ही शिष्यत्व है। शिष्यत्व है--गुरु के पात्र से उसे पीना, जो अभी तुम्हारे पात्र में नहीं है, जल्दी ही तुम भी योग्य हो जाओगे। शिष्यत्व का अर्थ है--अभी तुम्हें चलना नहीं आता, किसी का हाथ पकड़कर चार कदम चल लेना, जल्दी ही तुम योग्य हो जाओगे, तुम्हारे पैर खुद चलने लगेंगे। मैं तुमसे कहता हूं तुम्हारे भीतर मधुघट, मधुकलश भरा रखा है।

जब से तू इन गीतों में साकार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

मेरा जीवन निशा, और तू स्वप्न सुनहला!
निशि का सपने से ही तो शृंगार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

दीप सराहे विश्व, सराहूं नेह सदा मैं--
जो दीपक के जलने का आधार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

गाती हूं मैं गीत, रागिनी है प्रिय तू ही।
स्वर बिन साथी कौन यहां स्वरकार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

उस अज्ञात शक्ति को क्या कह प्राण पुकारे।
जिस से तप्त हृदय में मधु-संचार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

चित्रकार तू, छवि तेरी, मैं एक तूलिका।
किस से चित्रित यह तेरा संसार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

जब से तू इन गीतों में साकार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!
क्या कहकर पुकारें हम उसे?
उस अज्ञात शक्ति को क्या कह प्राण पुकारे।
जिस से तप्त हृदय में मधु-संचार हुआ है।
मुझ को अपने गीतों से कुछ प्यार हुआ है!

उसे तो मधु ही कहना होगा। उसे तो सोमरस ही कहना होगा। वह तो शराब है। नहीं, इससे प्यारा न कोई शब्द है न हो सकता है।

चौथा प्रश्नः मैं अत्यंत दुखी हूं। मेरी पत्नी की जब से मृत्यु हुई है, मेरे दुख का अंत नहीं है। आपके पास सांत्वना पाने आया हूं।

फिर तुम गलत जगह आ गए। सांत्वना यहां मैं किसी को देता नहीं। सत्य लेना हो तो ले लो, सांत्वना न मांगो। सब सांत्वनाएं झूठी हैं। सब सांत्वनाएं घाव की मलहम-पट्टी हैं, घाव का भरना नहीं।

यहां आए हो तो अच्छा हो कि घाव की मवाद बह जाने दो। अच्छा हो कि घाव खोल दो, खुली हवा और सूरज की रोशनी पड़ने दो। अच्छा हो कि घाव को छिपाओ मत, क्योंकि छिपे घाव भरते नहीं हैं। घाव को प्रगट कर दो, ताकि भर जाए।

तुम कहते होः मैं अत्यंत दुखी हूं। तो रोओ, बहने दो घाव को, तो खोलो घाव को! घबड़ाते क्यों हो? सुख पाया था पत्नी से, तो दुख कोई और पाएगा? सुख तुमने पाया, तब तुम नहीं आए कि बड़ा सुख पा रहा हूं, थोड़ा आप भी ले लें। अब तुम्हें दुख मिला, अब तुम सांत्वना लेने आ गए!

जो सुख पाएगा वह दुख भी पाएगा; वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैसे सुख को स्वीकार किया था वैसे दुख को स्वीकार कर लो। जैसे सुख को झेलते वक्त बेचैन न हुए थे, ऐसे ही दुख को झेलते वक्त भी बेचैन न होओ।

सुख के भी साक्षी बनो, दुख के भी साक्षी बनो।

तुम कहते होः मेरी पत्नी की जब से मृत्यु हुई, मेरे दुख का अंत नहीं है।

पत्नी के लिए रो रहे हो, अपने लिए कब रोओगे? पत्नी की मृत्यु हो गई, क्या तुम सोचते हो तुम सदा जिंदा रहोगे? अब रोने में समय न गंवाओ। कहीं ऐसा न हो कि रोते ही रोते समाप्त हो जाओ और फिर दूसरों को सांत्वना की तलाश करनी पड़े।

सत्य है मृत्यु। उसे जानो, पहचानो। अभी जो पत्नी जिंदा थी, अभी-अभी जागती थी, बोलती थी, चलती-फिरती थी, अभी-अभी गिर गयी--और तुम्हीं चढ़ा आए उसे चिता पर! ज्यादा देर नहीं है, तुम्हें भी दूसरे लोग चढ़ा आएंगे। पत्नी को चिता पर जलते देखकर अपने को जलता हुआ देखो। पत्नी की मृत्यु में अपनी मृत्यु देखो। जब भी कोई अर्थी निकले द्वार से, गौर से देख लेना, तुम्हारी ही अर्थी है। हर मृत्यु में अपनी ही मृत्यु का संकेत पाओ।

सांत्वना मत खोजो। सांत्वना तो झूठी बात है। तुम सोचते होओगे कि मैं कहूं कि मत घबड़ाओ।

अभी कुछ दिन पहले हुआ, सुप्रीम कोर्ट के जज... कोई सोचता है सुप्रीम कोर्ट का जज हो तो कुछ बुद्धिमान होगा; पर नहीं, आदमी तो सब आदमी हैं। पत्नी मर गई है! रो रहे हैं, परेशान हैं। कहते हैं चित्त को शांति नहीं है, सांत्वना लेने आए हैं। तो मैंने पूछा कि मैं क्या करूं जिससे आपको सांत्वना मिले। तो उन्होंने कहाः बस मुझे इतना भरोसा दिला दें कि अगले जन्म में कभी उससे मिलना होगा।

क्या-क्या पागलपन की बातें कर रहे हो? या कोई ऐसा उपाय कर दें, प्लेनचिट या कोई, कि इसी जन्म में कम-से-कम उससे बात हो जाए।

मैंने कहाः तुम तीस साल साथ-साथ रहे, बातचीत कुछ बची करने को? नहीं, कहने लगे, ऐसे तो कुछ बातचीत... । तीस साल साथ-साथ रहे, बात करने को और क्या रह गई है? तीस साल में पूरी नहीं हुई तो प्लेनचिट पर कैसे पूरी हो पाएगी? इस जन्म में साथ रह लिए, क्या पाया? अगले जन्म में भी साथ रहना है? इस जन्म में कुछ नहीं पाया, अगला जन्म भी गंवाना है?

वे तो बहुत चौंके, क्योंकि वे आए थे सांत्वना लेने। दिल्ली से कोई आए सांत्वना लेने... । लेकिन मैं सांत्वना दे ही नहीं सकता। मैं सत्य दे सकता हूं। मैंने उनसे कहाः समझो! तीस साल साथ रहकर गंवाए, अब पत्नी जा चुकी है, अब अकेले में गंवा रहे हो। गंवाते ही रहेगे? उम्र आ गई, अब तो थोड़ा चौंको। पत्नी की मृत्यु से आघात लगा है, इसका सदुपयोग कर लो। इस चोट को क्रांति बना लो। यह चुनौती है।

सांत्वना मत खोजो, मलहम-पट्टियां मत खोजो। यह सत्य है, जो प्रगट हुआ है कि यहां हर जीवन के पीछे मृत्यु छिपी है कि यह जीवन सच्चा जीवन नहीं है; उस जीवन की हम तलाश करें जो कभी समाप्त न होता हो। और उस प्रेमी को खोजो, जिससे मिले तो मिले। पत्नियां तो मिलेंगी और बिछुड़ेंगी, पति मिलेंगे और बिछुड़ेंगे।

मैंने उनसे पूछाः कि तुम अगले जन्म में मिलने की पूछ रहे हो, एक बात तुमसे पूछूं? पिछले जनम में भी तुम्हारी कोई पत्नी रही होगी, उसकी याद आती है?

वे कहने लगेः कोई याद नहीं आती। मैंने कहाः उसके पिछले जनम में? न मालूम कितने जनम हुए होंगे तुम्हारे, उन सारे जन्मों में न मालूम कितनी पत्नियां हुई होंगी। उन सब में से किसी की याद आती है?

उन्होंने कहा कि नहीं, किसी की याद नहीं आती। मुझे याद ही नहीं है पिछले जन्मों की।

तो मैंने कहाः अगले जनम में भी तुम्हें इस जनम की याद नहीं रह जाएगी। पत्नी मिल भी जाएगी तो पहचानोगे नहीं। क्यों फिजूल की बातों में पड़े हो? होश सम्हालो! इतनी बड़ी चोट खाई, इस चोट का कोई सदुपयोग कर लो, कोई सृजनात्मक उपयोग कर लो।

भोर हो गई, मलय-पवन का
आंचल फिर लहराया!
झोंका आया, दीप बुझ गया;
नया फूल मुसकाया!
समय-समय की बात,
किसी की भोर, किसी की संध्या;
समय किसी को मरण,
किसी को जीवन बन कर आया!

दीपक और फूल से सीखो
कब बुझना, कब खिलना!
मिट्टी में या सूर्य-किरण में
कब दोनों को मिलना!
दिग्गज को दहलाने वाला
कम्प छिपाए उर में--
धरती से सीखो मलयज में

पल्लव-दल-सा हिलना!
किंतु न आसन से हिलते हम,
हिल जाते सिंहासन!
कभी रुधिर के फागुन आते,
अग्नि-वृष्टि के सावन!
खंभ फोड़ नरसिंह निकलते,
पूछा करते हमसे--
समय मनुज का वाहन है या
मनुज समय का वाहन?

माना, शस्य उगाने में
लगते बारह पखवारे;
खेत एक दिन कट जाता,
पर हाथ नहीं हत्यारे!
कभी अगाई, कभी पिछाई
हर खेती कटती है!
बरसा कर या तरसा कर,
हर घिरी घटा हटती है!
सिवा समय के, और सभी के
खेल खत्म हो जाते--
हर युग का दिन ढलता
रजनी जाती, पौ फटती है!
जरा समझो! यह तो क्रम है जीवन का--जो जन्मा, मरेगा; जो उगा, डूबेगा; जो बना, मिटेगा।
सिवा समय के, और सभी के
खेल खत्म हो जाते--
हर युग का दिन ढलता
रजनी जाती, पौ फटती है!

लेकिन नहीं, हम सांत्वना की तलाश करते हैं! मैं तुमसे कह दूंः "घबड़ाओ मत, मिलन होगा, निश्चित मिलन होगा, अगले जनम में होगा। फिर वही तुम्हारी पत्नी होगी। फिर तुम उसके पति होओगे।" बस कुछ लाभ होगा इससे? ऐसा मानकर चलने से कुछ हल होगा? हां, घाव ढक जाएगा और मौत ने जो एक असवर दिया था चूक जाएगा।

जब भी कोई प्रियजन मरे तो यह ध्यान की घड़ी है। जब भी कोई प्रियजन जाए तो तुम्हारे भीतर से इतना टूट जाता है कुछ कि इस मौके पर अगर तुम जागो तो जाग सकते हो। चोट में ही कोई जागता है। सुख में तो कोई जागता नहीं। सुख में तो आदमी और चादर फैलाकर सो जाता है। दुख में ही कोई जागता है।

इसलिए दुख सुख से ज्यादा बड़ा अवसर है। सुख में तो लोग भूल ही जाते हैं परमात्मा को, दुख में ही याद करते हैं। शायद दुख के कारण ही तुम यहां आ गए। पत्नी न मरती तो शायद तुम अभी यहां आते भी नहीं। पत्नी मर गई है तो तुम यहां आ गए। सोचा होगा कि चलो सांत्वना मिल जाए। लेकिन नहीं, मैं तुम्हें और विचलित करना चाहता हूं।

किन्तु न आसन से हिलते हम,

हिल जाते सिंहासन!

... हम ऐसे लोग हैं! अब तुम्हारा सिंहासन हिल गया; पत्नी तुम्हारे जीवन का आधार रही होगी, तब तो इतना दुख है, तुम्हारी भूमि पैर के नीचे से खिसक गई, मगर तुम किसी तरह अपना आसन जमाए रखना चाहते हो। उसी को तुम सांत्वना मान रहे हो। मैं तुम्हें किसी तरह पीठ ठोंककर कह दूं, सब ठीक है, घबड़ाओ मत, पत्नी मरी नहीं, आत्मा तो अमर है! कि मैं तुम्हें कहूं कि बिल्कुल मत घबड़ाओ, तुम्हारी पत्नी स्वर्ग पहुंच गई है! देवी हुई है! और तुम प्रसन्न हो जाओगे? बस इतने से? बस इन शब्दों से तुम्हें तृप्ति मिल जाएगी?

नहीं, तृप्ति तो नहीं मिलेगी। तुम्हें मैंने जहर दे दिया। तुम सो जाओगे फिर चादर ओढ़कर। तुम कहोगेः "अच्छा ही हुआ, पत्नी स्वर्ग में देवी हो गई। बहुत अच्छा हुआ!" तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलेगी--"होगी क्यों न, आखिर मेरी पत्नी थी।" तुम देवता, वह देवी! होना ही था। स्वर्ग में उसका सम्मान हो रहा है, तुम निश्चिंत रहो। तुम जब पहुंचोगे, वह तैयारी रखेगी सब?

क्या चाहते हो सांत्वना में? कुछ झूठ चाहते हो। कुछ झूठ, जो प्यारा हो, मधुर हो, मीठा हो। नहीं लेकिन, मैं सांत्वना देता ही नहीं। मैं तो सांत्वना तुम्हें कुछ मिली हो तो छीन लेता हूं। क्योंकि मैं तुम्हें संक्राति देना चाहता हूं। सांत्वना नहीं।

भोर हो गई, मलय-पवन का

आंचल फिर लहराया!

झोंका आया, दीप बुझ गया;

नया फूल मुसकाया!

खेल तो यह चल ही रहा है। इधर कली खिली, उधर फूल गिरा। इधर कोई दीप जला, उधर कोई दीप बुझा।

समय-समय की बात,

किसी की भोर, किसी की संध्या;

समय किसी को मरण,

किसी को जीवन बनकर आया!

तो सीखो कुछ!

दीपक और फूल से सीखो!

कब बुझना, कब खिलना!

मिट्टी में या सूर्य-किरण में

कब दोनों को मिलना।

जल्दी ही तुम्हारी घड़ी भी आती होगी। हम सब कतार में खड़े हैं, पंक्ति में खड़े हैं, क्यू लगा है। आगे से लोग गिरते जा रहे हैं, तुम करीब आते जा रहे हो, प्रतिपल करीब आते जा रहे हो। तुम्हारी मौत रोज-रोज पास सरकती आती है।

तुम्हारी पत्नी तुम्हें याद दिला गई है कि हम मृत्यु की पंक्ति में खड़े हैं। और चूंकि तुमने पत्नी को चाहा था, पत्नी को प्रेम किया था, इसलिए घाव छूट गया है। यह घाव भर मत लेना, झुठला मत लेना, क्योंकि यह घाव एक अपूर्व चुनौती है; इसीसे व्यक्ति धार्मिक होता है। अगर मृत्यु न होती दुनिया में तो लोगों ने शायद परमात्मा को कभी खोजा ही न होता। अगर मृत्यु न होती दुनिया में और दुख न होते दुनिया में, तो मंदिर न होते, मस्जिद न होती, गिरजे-गुरुद्वारे न होते। अगर मृत्यु न होती तो कौन अमृत की बात सोचता? कौन विचार करता, कौन ध्यान करता, कौन समाधिस्थ होता?

यह मृत्यु है, यह मृत्यु की अनुकंपा है कि तुम पर चोट करती है, कि तुम्हें सोने नहीं देती, कि तुम लाख उपाय सोने के करो कि तुम्हें जगा-जगा जाती है। मौत तो एक अलार्म है। लेकिन तुम मुझसे कह रहे हो कि मेरी पीठ थोड़ी थपथपा दो, कि मेरे सिर को थोड़ा दबा दो, कि मैं फिर सो जाऊं, कि इस अलार्म ने मेरी नींद तोड़ दी है।

अच्छा हुआ कि नींद टूटी। जितने जल्दी टूट जाए उतना अच्छा है। तुम सौभाग्यशाली हो कि सपना टूटने का क्षण आ गया। ध्यान में डूबो।

तुम्हारे भीतर वह भी है जिसकी कोई मृत्यु नहीं। और तुम्हारे भीतर वह प्यारा भी छिपा है, जिससे मिल जाओ तो फिर कभी बिछुड़ना नहीं होता; जिससे मिलन आत्यंतिक है। उसको ही पाओगे तो संतोष। उसको ही पाओगे तो शांति। और शेष सब संबंध तो बस संयोग-मात्र हैं। राह चलते लोग साथ हो लिए हैं, फिर घड़ी आ जाएगी विदा की और अपनी-अपनी राह पर चल पड़ेंगे। इनमें ज्यादा मत भटको, ज्यादा मत भूलो।

और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि संसार छोड़कर भाग जाओ, कि अपनी पत्नी को छोड़ दो, कि अपने बच्चों को छोड़ दो कि अपने पिता को छोड़कर भाग जाओ। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं तो सिर्फ इतना ही कह रहा हूं, रहो यहीं, लेकिन जाग जाओ, जागकर रहो। यह जानते हुए रहो कि यह सब संयोग मात्र है। यही नए संन्यास की अवधारणा है--संसार में रहते हुए और संसार के बाहर।

आखिरी प्रश्नः

जिसे तू देख ले एक बार मस्ती भरी नजर से

तो रजनीश--वो उम्र भर हाथों में अपने जाम न ले।

ओशो, आपके शब्दों में इतनी मादकता क्यों है?

क्योंकि वे शब्द मेरे नहीं हैं। वे शब्द उसके हैं। मैं तो बांसुरी हूं, गीत उसका है; ओंठ उसके हैं, स्वर उसके हैं, संगीत उसका है। मैं तो वीणा हूं, अंगुलियां उसकी हैं। उसकी अंगुलियां न हों तो इन तारों में क्या है? और उसके ओंठ न हों तो इस बांस की पोंगरी में क्या है? मादकता उसकी है। परमात्मा मादक है।

अगर तुम्हें मेरे पास बैठकर मादकता का अनुभव हो, मुझे धन्यवाद न देना, परमात्मा को धन्यवाद देना। अगर तुम्हें मेरी आंखों में कभी कोई रस दिखाई पड़े तो उसकी याद करना--उसकी ही याद करना! मुझे बीच में मत लेना।

अंबर बरसै धरती भीजै, यह जानैं सब कोई

धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई।

आकाश बरसता है और धरती भीजती है, यह तो हमने देखा; लेकिन धरती भी बरसती है और आकाश भीजता है, यह हमने नहीं देखा, यह कोई बिरला देख पाता है। इसे देखने के लिए बड़ी गहरी आंख चाहिए। यह तो हमने देखा कि लोग बोलते हैं। इसे देखने में कुछ अड़चन नहीं है। यह तो सीधी-सीधी बात है। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि बोलनेवाला चुप होता है और जो पारलौकिक है वही उससे बहता है।

मैं तो चुप हूं। तुम्हें मैं बोलता दिखाई पड़ रहा हूं, मैं चुप हूं। मैं चुप हूं, इसीलिए मेरे भीतर से कुछ बोला जा रहा है। वह मेरा नहीं है। मादकता है तो उसकी है। कुछ भूल-चूक हो जाती हो, मेरी समझना; कुछ ठीक-ठाक हाथ पड़ जाता हो, उसका मानना।

तम का दिग्जाल तोड़

निकल रहा तू किशोर

सूर्य-सा ललाट पर

प्राची के ग्रीष्म-घोर

किरणों के झोंकों से

आज खुला द्वार-द्वार!

ज्योतिर्मय, नमस्कार!

छंदों के बंध खुले,

गीतों के प्राण धुले!

सातों स्वर-मंडल में

सातों ही रंग घुले!

वाणी की वीणा का

कांप रहा तार-तार!

दिनेश! यह तार मेरे हैं, मगर जो इन्हें कंपा रहा है, उसको देखो। इन आंखों से न देख सकोगे। इन आंखों को बंद करो तो भीतर की आंख खुले। इन हाथों से उसे न छू सकोगे। इन हाथों को भूल जाओ तो भीतर हाथ हैं जिनसे छू सकोगे।

प्रत्येक इंद्रिय दोहरी है, आंख बाहर ही नहीं देखती, भीतर भी देख सकती है। कान बाहर ही नहीं सुनते, भीतर भी सुन सकते हैं। और जब तुम्हारी भीतर की इंद्रियां सजग हो उठेंगी तो तुम पहचानोगे--क्यों मादकता है, क्यों उपनिषदों में इतना रस है, क्यों इतना काव्य है कुरान में? मुहम्मद का कुछ हाथ नहीं। वही उतरा है। कुरान में जो रसधार बही है, वह आकाश से उतरी है।

स्वर्गिक सपनों के रथ पर चढ़

नव जीवन का स्वर भर अनंत,

सौंदर्य-शिखाओं को मुखरित--

कर सौरभ भर लाया बसंत!

देखते हो, जब बसंत आता है, अचानक हरे वृक्ष लाल फूलों से भर जाते हैं! चमत्कार हो जाता है। कहां हरे वृक्ष, कहां लाल फूलों का जन्म हो जाता है! हरियाली में लाली उग आती है! देखा बसंत का आगमन! मगर उसकी पगध्वनि तो सुनाई नहीं पड़ती। किसी ने बसंत की पगध्वनि सुनी? हां, फूलों की चटक सुनाई पड़ती है, बसंत की पगध्वनि तो सुनाई नहीं पड़ती। बसंत को देखा कभी? आ-आकर फूल खिला जाता है, लेकिन उसके हाथों का कुछ दर्शन नहीं होता। बसंत सूक्ष्म है।

ऐसा ही परमात्मा का आगमन है। आता है और किसी मनुष्य को छू देता है। और मिट्टी सोना हो जाती है। और बांसुरी में प्राण आ जाते हैं। और वीणा के तार कंपने लगते हैं।

स्वर्गिक सपनों के रथ पर चढ़,
नव जीवन का स्वर भर अनंत,
सौंदर्य-शिखाओं को मुखरित--
कर सौरभ भर लाया बसंत!

कोमल कलियों के अंतर में
भर-स्नेह-प्राण से नवल रंग,
अलियों से चुप-चुप आंख बचा
आकुल मन से पी मधुर भंग!

गा प्रणय-गान, भर नव प्रवाह
जड़-चेतन का कर अधर लाल,
आया बसंत दिशि, बन, गृह, पथ
को चित्रित कर, बिखरा गुलाल!

कोमल किसलय का मृदु शैशव
फूलों का यौवन हिल्लोलित,
इच्छाओं का साम्राज्य मूक
लाया बसंत भर कर अतुलित!

दिनेश! बसंत को देखो! फूल में ही मत उलझ जाना। फूल के ही पास खड़ा है बसंत। बसंत को देखो। उसने चमत्कार कर दिया है। हरे वृक्ष में लाल फूल आ गया--और भी चमत्कार हो रहा है। फूल स्थूल है, फूल से सूक्ष्म सुवास उठ रही है। फूल जमीन के गुरुत्वाकर्षण से भरा है, लेकिन सुवास जमीन के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त है। फूल गिरेगा तो जमीन की तरफ गिरेगा। सुवास आकाश की तरफ गिर रही है। चमत्कार हो रहा है। मगर इस अदृश्य बसंत को देखो।

और ऐसा ही घटता है। किसी तिलोपा के पास, किसी सरहपा के पास परमात्मा आकर खड़ा हो जाता है। मगर तुम्हें वीणा बजती दिखाई पड़ती है, तुम्हें उसकी अंगुलियां दिखाई नहीं पड़तीं।

प्रेम को कभी देखा है? लेकिन जिसके ऊपर प्रेम की वर्षा हो जाती वह दिखाई पड़ता है, उसकी चाल बदल जाती है, उसका रंग-ढंग बदल जाता है, उसकी जीवन-शैली बदल जाती हैं; उसकी आंखें, जो कल बिल्कुल धूमिल थीं, एकदम ज्योतिर्मय हो जाती हैं। कल उसके पैर ऐसे थे जैसे जंजीरें बंधी हों, आज ऐसे जैसे घूंघर!

नयनों की भाषा में, जाने क्या गा गयीं।
यूं तो थी अमां निशा, दीप तुम जला गयीं।।
मदमाते यौवन की रतनारी आंखों में,
श्यामल अलकों की घनी-घनी छावों में।
बहियां भर...
अंखियां भर...
दर्द दुलरा गयीं।।
जाने क्या गा गयीं।।

कंगना की खन खन से, वातायन गूंज उठा,
नूपुर के द्रुतरव से, गीतों का बोल उठा।
मुग्ध मगन...
चकित नयन...
मुझको तुम भा गयीं।।
जाने क्या गा गयीं।।

संवरे-से बालों का, बेना कुछ बोल उठा,
कानों के झुमकों का, हर मोती डोल उठा।
चितवन से...
मधुवन में...
मधु ढरका गयीं।।
जाने क्या गा गयीं।।

प्रेमी को क्या हो जाता है, कौन-सा मधुकलश उस पर उंडल जाता है! किसी को दिखाई नहीं पड़ता कि प्रेम का राजा आया, मिट्टी को सोना कर गया। और यह तो लौकिक घटना है। जब वह परम सम्राट आता है किसी के पास, किसी के ध्यान में गुंजरित होने लगता है, तो खूब शराब बहती है!

मादकता मेरे शब्दों में मेरी नहीं है। वे शब्द मेरे नहीं हैं--इसीलिए मादकता है!

आज इतना ही।

पंद्रहवां प्रवचन

प्रेम--समर्पण--स्वतंत्रता

पहला प्रश्नः ओशो, आपने कहा कि "तुझसे पहले भी मैं ऐसे दो जोड़े बना चुका हूं, तेरा तीसरा जोड़ा है।" पर ओशो मेरी तो कोई पात्रता ही नहीं, फिर आपने मुझे कैसे चुना? बताने की कृपा करें।

कृष्ण चेतना, प्रेम एकमात्र तत्व है जो मृत्यु को जीत ले। शेष सब मृत्यु से हार जाता है।

जीवन और मृत्यु में विरोध नहीं है। असली विरोध प्रेम और मृत्यु में है, जीवन और मृत्यु में तो विरोध होगा ही कैसे! क्योंकि जीवन की परिसमाप्ति हमेशा ही मृत्यु में होती है। तो मृत्यु तो जीवन का फल है, उसकी निष्पत्ति है। जीवन है यात्रा, मृत्यु है मंजिल। विरोध कैसे होगा? निरपवाद रूप से प्रत्येक जीवन मृत्यु में लीन हो जाता है। इसलिये मृत्यु तो जीवन का परम शिखर है। मृत्यु जीवन की विरोधी नहीं हो सकती।

फिर किससे विरोध है मृत्यु का? प्रेम से विरोध है। प्रेम एकमात्र तत्व है, जिससे मृत्यु हारती है; जिसके सामने मृत्यु समर्पण करती है। इसे समझना। इसीलिये जिसका हृदय प्रेम से भरा है उसके जीवन में भय विसर्जित हो जाता है। क्योंकि सभी भय मृत्यु का भय है। और जिसके जीवन में भय है उसके जीवन में प्रेम का अंकुरण नहीं हो पाता। भयभीत व्यक्ति धन इकट्ठा करेगा, पद-प्रतिष्ठा की खोज करेगा; लेकिन प्रेम से बचेगा। प्रेमी सब लुटा देगा प्रेम के ऊपर, सब निछावर कर देगा--पद भी, प्रतिष्ठा भी, धन भी, जरूरत पड़े तो जीवन भी।

सिर्फ प्रेम ही जानता है, जीवन का समर्पण भी किया जा सकता है। क्योंकि प्रेम को पता है कि जीवन के बाद भी एक और जीवन है; कि जीवन को छोड़कर भी शाश्वत जीवन शेष ही रह जाता है।

लेकिन, प्रेम बहुत थोड़े-से लोग ही जान पाते हैं। जैसे ध्यान बहुत थोड़े-से लोग जान पाते हैं, ऐसे ही प्रेम भी बहुत थोड़े-से लोग जान पाते हैं। जिन्होंने ध्यान जान लिया उन्होंने परमात्मा को जाना--एकांत में, अकेले में। और, जिन्होंने प्रेम जाना उन्होंने परमात्मा को जाना--संबंध में, संग-साथ में।

प्रेम है--किसी व्यक्ति के साथ इस तरह लीन हो जाना कि जरा भी द्वि न रह जाये, जरा भी भेद न रह जाये, कोई परदा न रह जाये, कोई घूंघट न रह जाये। दो व्यक्ति जब एक-दूसरे के सामने अपनी आत्माओं को परिपूर्ण नग्न कर देते हैं--सचाई में, प्रामाणिकता में; जैसे हैं वैसे ही एक दूसरे के सामने हो जाते हैं--तो उस अपूर्व घड़ी में परमात्मा घटता है। यह एक उपाय है परमात्मा के घटित होने का।

दूसरा उपाय हैः यदि प्रेम संभव न हो, यदि इसमें असुविधा मालूम पड़े कि मैं किसी के भी सामने अपने को पूरा-पूरा प्रगट न कर पाऊंगा, लाज-संकोच रहेगा, कुछ दुविधा रहेगी, कुछ द्वंद्व रहेगा, कुछ भीतर संशय रहेगा, प्रगट भी करूंगा तो थोड़ा अभिनय रहेगा, थोड़ा पाखंड रहेगा--तो फिर दूसरा मार्ग है, ध्यान का, कि फिर चुप हो जाओ, मौन हो जाओ, अपने एकांत में डूब जाओ।

दोनों के बीच एक ही घटना घटती है। जब दो व्यक्ति प्रेम में होते हैं तो अहंकार विसर्जित हो जाता है और जब कोई एक व्यक्ति ध्यान में होता है तब भी अहंकार विसर्जित हो जाता है। ध्यान और प्रेम, दोनों ही अहंकार को विसर्जित करने की कलाएं हैं। कुछ लोग हैं जो प्रेम से विसर्जित करेंगे, कुछ लोग हैं जो ध्यान से विसर्जित करेंगे। पुरुष के लिये आसान है ध्यान से विसर्जित करना। स्त्री के लिये आसान है प्रेम से विसर्जित करना। क्योंकि

पुरुष का जीवन ज्यादा से ज्यादा दस प्रतिशत प्रेम हो पाता है, नब्बे प्रतिशत प्रेम नहीं हो पाता। स्त्री का जीवन नब्बे प्रतिशत प्रेम हो पाता है--आसानी से, दस प्रतिशत में ही अड़चन होती है।

स्त्री और पुरुष की अंतर्व्यवस्था भिन्न-भिन्न है। इसलिये जिन्होंने परमात्मा जाना है--यदि वे पुरुष थे तो ध्यान से जाना है; यदि वे स्त्रियां थीं तो प्रेम से जाना है। लेकिन, स्त्री-पुरुष के भेद को बहुत जड़ता से मत पकड़ लेना। क्योंकि बहुत-से पुरुष हैं, जिनके पास स्त्रियों जैसा प्रेम करनेवाला हृदय है और बहुत-सी स्त्रियां हैं, जिनके पास पुरुषों जैसा विचार करने वाला मस्तिष्क है। फिर भेद होगा, फिर भिन्नता हो जाएगी।

मीरा ने जाना--प्रेम में, भक्ति में। लल्ला ने जाना--ध्यान में। लल्ला भी स्त्री है और मीरा भी स्त्री है। लेकिन लल्ला ऐसी स्त्री है--जैसे महावीर; जैसे महावीर का नया आविर्भाव। लल्ला अकेली स्त्री है मनुष्य-जाति के फकीरी के इतिहास में, जो नग्न रही। मीरा प्रेम में जानी, तल्लीन होकर जानी--कृष्ण में।

फिर ऐसी ही बात पुरुषों में भी है। बुद्ध ने ध्यान से जाना, चैतन्य ने प्रेम से जाना। बुद्ध ध्यान में अकेले, और अकेले, और अकेले होते गये। और चैतन्य मस्त होते गये नाच में, कृष्ण के प्रेम में। ऐसे डूबे कृष्ण के प्रेम में कि चैतन्य का पुरुष बचा ही नहीं। तो चैतन्य यद्यपि पुरुष हैं, मीरा स्त्री है; लेकिन, दोनों एक ही मार्ग के राही हैं। और लल्ला यद्यपि स्त्री है, महावीर पुरुष हैं; लेकिन दोनों एक ही मार्ग के राही हैं। इसलिये, स्त्री-पुरुष से शारीरिक भेद नहीं कर रहा हूं; स्त्री-पुरुष से तुम्हारी अंतर्व्यवस्था का भेद कर रहा हूं।

प्रेम से जो जान सके, उसे ध्यान की जरूरत नहीं है। जो प्रेम से न जान सके, उसे ही ध्यान की जरूरत है। और, मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि ध्यान दोयम है, नंबर दो है। क्योंकि, ध्यान थोड़ा रूखा-सूखा होगा--प्रेम की हरियाली न होगी, प्रेम के फूल न होंगे, प्रेम के झरने न होंगे।

चेतना को जब मैंने संन्यास दिया तब उसे मैंने नाम दिया "कृष्ण चेतना"; उसके पति को नाम दिया "कृष्ण चैतन्य"। इस नाम में संकेत था, इशारा था--कि दोनों को प्रेम में डूब जाना है। और, उन्होंने समझा। दोनों को एक-दूसरे के प्रेम में इस भांति डूब जाना है कि दो न बचें, एक ही बचे। इसी संदर्भ में चेतना ने पूछा है कि आपने कहा कि तुझसे पहले मैं ऐसे दो जोड़े बना चुका हूं, तेरा तीसरा जोड़ा है।

जोड़े तो बहुत हैं, दुनिया में, बस नाममात्र को हैं; कभी-कभार कोई असली जोड़ा होता है। पति-पत्नी तो होना आसान है--जोड़ा होना मुश्किल है। "जोड़ा" शब्द का अर्थ समझते हो? --जो जुड़ गये। किसी कानूनी व्यवस्था से नहीं, किसी सामाजिक नियम से नहीं--जो अंतरतम से जुड़ गये। जो दो देह रहे, लेकिन एक प्राण हो गये। ऐसे जोड़े मुश्किल से होते हैं। इस तरह के जोड़े अपने प्रेम को ही परमात्मा का मार्ग बना लेते हैं। इस तरह के जोड़ों के जीवन में प्रेम की शाश्वतता उतर आती है। फिर, प्रेम क्षणभंगुर नहीं होता--कि आज है और कल नहीं, कि अभी है और अभी गया। फिर, प्रेम के ऐसे मौसम नहीं आते। फिर, प्रेम एक थिरता होती है। चेतना में वैसी थिरता है। इसलिये कहा।

और तूने पूछा चेतना कि पर ओशो, मेरी तो कोई पात्रता ही नहीं है... । यही तेरी पात्रता है। प्रेमी मानता ही नहीं कि उसकी कोई पात्रता है। वही तो उसकी गुणवत्ता है। प्रेमी विनम्र होता है। प्रेमी निरहंकारी होता है। प्रेमी घोषणा नहीं कर सकता कि मैं प्रेमी हूं। ज्ञानी घोषणा कर सकता है। प्रेमी घोषणा नहीं कर सकता। प्रेमी तो कहता है, "मैं नहीं हूं"। "नहीं" होने में ही उसकी सारी पात्रता है। प्रेमी तो खाली होता है, रिक्त पात्र होता है। उसी रिक्त पात्र में तो धीरे-धीरे परमात्मा का रस झरता है और भरता है।

तूने पूछा कि मेरी तो कोई पात्रता ही नहीं है, फिर आपने मुझे कैसे चुना? इसीलिये! पात्रता होती तो ऐसी बात मैं न कहता। पात्रता नहीं है, कोई पात्रता का भाव ही नहीं है। इसलिये, चेतना बहुत शीघ्र मेरे बहुत

निकट आ गई है, अनायास; कुछ प्रयास किया है उसने, ऐसा भी नहीं है। जैसे, जन्मों-जन्मों का प्रयास है पीछे, उसकी फलश्रुति हुई है। मेरे पास आती है तो एक शब्द बोल नहीं पाती है, सिवाय आंसुओं के। पास आती है तो रोमांचित हो जाती है, उसका रोआं-रोआं नाचने लगता है। होश खो देती है। जिस शराब की मैं बात कर रहा था, जैसे ही मैं उसे बुलाता हूं, वैसे ही अपने बस में नहीं रह जाती है। कोई एक पार की मस्ती उसे पकड़ लेती है। ये प्रेमी के लक्षण हैं, ये दीवाने के लक्षण हैं।

उसके हृदय से सदा मैंने ऐसी आवाज सुनी हैः

पधारो, बैठ रहो इस अमराई की सघन कुंज में आज,
मेरी अमराई में आज!
यहां आने में लगती है निदाघ की दोपहरी को लाज,
दहकती दोपहरी को लाज!

लू चलती है हहर-हहर कर
आग बरसती है पृथ्वी पर,
जल रहे हैं पल-क्षण, तुम यहां बिता लो कुछ घड़ियां बिन काज;
पधारो, बैठ रहो इस अमराई की सघन कुंज में आज!

अति सूनी है यह अमराई,
यहां अमित नीरवता छाई,
कि केवल कोयल गाती है पंचम में अपने स्वर को साज;
सुघड़, इस समय पधारो गज-गति से तुम अमराई में आज!

देखो अमियां गदरायी हैं
मन में सिहरन उठ आयी है,
गुदगुदी अंतर की कहती है तुमसेः आओ, हे रसराज!
पधारो सहज, सलज मुसकाते मेरी अमराई में आज!

ऐसा उसने कभी कहा नहीं। ऐसी बातें कही नहीं जातीं। ऐसी बातें तो बिन-कही ही प्रकट होती हैं। ऐसे निमंत्रण शब्दों में नहीं दिये जाते। ऐसे निमंत्रण तो निःशब्द में दिये जाते हैं, कोरे कागजों पर भेजे जाते हैं। लिखो तो खराब हो जाते हैं। लिखो तो छोटे हो जाते हैं, बोलो तो ओछे हो जाते हैं। इतने विराट आमंत्रण मौन ही वहन कर सकता है।

नहीं चेतना कुछ बोलती है, नहीं चेतना कुछ कहती है; मगर उसका हृदय सब कह जाता है। उसका अबोल सब बोल जाता है।

ओ मेरे गोपाल छबीले कुछ ठुनका दो पांजनियां,
झुन-झुन खुन-खुन-टुन-टुन-धुन की तुम बरसा दो यांकनियां;
पांजनियां-किंकिणियां गूंजे, हुलस उठें ब्रज की जनियां,

मैं बलि जाऊं, तुम कुछ ठुनको, डोलो, मम घर-आंगनियां,
प्यासे श्रवण, हृदय अकुलाया, धुन सुनने को नूपुर की
अहो, हठीले जरा ठिठक, टुक आज हरो पीड़ा उर की

एक-एक रुन-झुन में उलझीं आकांक्षाएं कई-कई;
तुम क्या जानो, निठुर, जगी हैं क्या-क्या पीड़ा नयी-नयी
रही-सही यह लाज निगोड़ी, बह-बह गयी नयन जल में
उझक-उझक मग जोह रही है कठिन प्रतीक्षा पल-पल में
कुटिया के दरवाजे बैठी कब से कान लगाये मैं,
निष्ठुर, अब तो आ जाओ, इस घनी कुहू के साये में।

चुपचाप, चेतना बढ़ी जाती है। और भी बहुत मित्र हैं, जो चुपचाप बढ़े जाते हैं। कोई घोषणा नहीं है, कोई दुंदुभि नहीं पीटनी है। पता ही न चले, पगध्वनि भी सुनाई न पड़े। यही पात्र का लक्षण है। पात्रता की चर्चा तो सिर्फ अपात्र करते हैं। पात्रता की चर्चा तो वे ही करते हैं, जो हीन ग्रंथि से पीड़ित हैं। जिनके भीतर कोई हीन ग्रंथि नहीं--और जहां प्रेम है, जहां ध्यान है, वहां कैसी हीन ग्रंथि--वे प्रेम की चर्चा नहीं करते, ध्यान की चर्चा नहीं करते। वे पात्रता की चर्चा नहीं करते, योग्यता की चर्चा नहीं करते। लेकिन, उनकी आंखें, उनके आंसू सब कह जाते हैं--सब, जो नहीं कहा जा सकता।

चेतना को मैंने जानकर ही कहा है। यहां मेरे संन्यासियों में तीन जोड़े हैं, मेरे अंकन में--जो एक-दूसरे में डूब जायें तो परमात्मा को पा लेंगे। चेतना और चैतन्य का जोड़ा उनमें एक है।

दूसरा प्रश्नः आप कहते हैं कि जीवन को उसके सभी आयामों में जीओ। इससे आपका क्या प्रयोजन है?

मनुष्य शरीर है, मन है, आत्मा है--और परमात्मा भी! जब मैं कहता हूं कि जीवन को उसके सब आयामों में जीओ, तो मैं कहता हूं--शरीर की भांति भी, मन की भांति भी, आत्मा की भांति भी और परमात्मा की भांति भी, अपनी समग्रता में जीओ। किसी का निषेध न हो, किसी का खंडन न हो। ऐसा न हो कि तुम्हारा परमात्मा तुम अपने देह के विपरीत समझ लो। देह के विपरीत होता तो देह में क्यों होता? विपरीत ही होता तो देह में उतरने की कोई जरूरत ही न थी। उतरा है तो कारण होगा। उतरा है तो रहस्य होगा। इतनी लंबी यात्रा की है, अदृश्य से दृश्य की; तो यूं ही नहीं की होगी।

तो जब मैं कहता हूं कि सब आयाम में जीया जाये जीवन, तो तुम से यह कह रहा हूं कि जीवन का कोई भी अंग त्यागना मत, छोड़ना मत, तोड़ना मत। एक अंग को दूसरे अंग के विपरीत मत मान लेना। तुम्हारे जीवन के सारे अंग एक ही माला में पिरोये हुए फूल हैं, एक ही धागे में अनस्यूत हैं। तुम्हारे सारे जीवन में एक ऐसा संगीत होना चाहिये, जिसमें तुम्हारे सारे वाद्य--देह के, मन के, आत्मा के, परमात्मा के--समवेत हो जायें, एक स्वर में डूब जायें। तुम्हें एक आरकेस्ट्रा बनना है।

संगीत सोलो भी होता है। कोई आदमी सिर्फ बांसुरी बजाता है--सोलो बांसुरी-वादक। लेकिन फिर कोई तबले पर तबले के साथ तबले की संगति में बांसुरी बजाता है। तब रस और गहरा हो जाता है। क्योंकि तबला अपनी भाव-भंगिमा ले आता है। फिर वाद्य बढ़ते जाते हैं। फिर आरकेस्ट्रा तुमने देखा है? पचासों वाद्य एक साथ

बजते हैं। सारे वाद्यों के बीच एक अनस्यूत संगीत होता है। जितना बड़ा संगीतज्ञ होगा उतने अधिक वाद्यों को समाहित करेगा, क्योंकि उतना ही उसका संगीत अनंत आयामी हो जायेगा।

अब तक धर्म एक-आयामी रहा है। चुन लो एक दिशा और शेष सब उसी दिशा पर त्याग कर दो। तो धार्मिक व्यक्ति तो पैदा हुए; लेकिन सृजनात्मक व्यक्ति पैदा न हो सके। धार्मिक व्यक्ति तो पैदा हुए, लेकिन बड़े अधूरे, अपंग, अपाहिज। किसी के पास सिर्फ आंखें थीं, कान नहीं थे और किसी के पास सिर्फ पैर थे हाथ नहीं थे और किसी के पास जबान थी, और हाथ नहीं थे--लेकिन अपंग।

मैं एक ऐसे धार्मिक व्यक्ति को पृथ्वी पर जन्म देना चाहता हूं, जिसकी आंखें भी हों, कान भी हों, हाथ भी हों, पैर भी हों--जो सर्वांगीण हो, जो सर्वांग हो। लेकिन, सर्वांग तुम तभी हो सकोगे, जब तुम जीवन में कुछ भी न छोड़ो; जब तुम जीवन का सब समाहित कर लो; जब तुम इतने कुशल हो जाओ कि पूरे जीवन को समाहित करके भी जीवन से बंधो न।

देह तो परमात्मा का मंदिर है। अब तक तुम्हें समझाया गया है कि देह परमात्मा का शत्रु है--देह को गलाओ, जलाओ, उपवास करो, कोड़े मारो, धूप में रखो, कांटो पर सुलाओ।

मैं कहता हूंः देह को अंगीकार करो। देह तुम्हारा सौभाग्य है; परमात्मा की भेंट है, प्रसाद है। हां, देह को चाहो तो जुआघर बन सकती है देह और चाहो तो मंदिर बन सकती है। घर तो घर है--घर में चाहे जुआ खेलो और चाहे पूजा करो, प्रार्थना करो। लेकिन घर के दुश्मन मत हो जाना--सिर्फ इसलिये कि किसी घर में लोग जुआ खेलते हैं। क्या घर को आग लगा दोगे? यह जुआ खेलने वालों की भूल होगी। इसी घर को प्रार्थना-पूजा का गृह बनाया जा सकता है, इसी घर में परमात्मा प्रतिष्ठित हो सकता है। इसी में धूप उठे, दीये जलें; इसी में वीणा बजे। यह घर वही है। घर न तो जुआ खेलने से जुआघर हो जाता है, न पाप करने से पापी हो जाता है, न बुराई करने से बुरा हो जाता है। घर तो निष्पक्ष है; तुम जो करोगे वही हो जाता है। घर तो तुम्हारे साथ है। यह देह तो तुम्हारी सेवक है।

तो मैं एक ऐसा धर्म चाहता हूं जिसमें देह का अंगीकार हो, स्वागत हो, अभिनंदन हो। ऐसा धर्म जो देह को भित्ती बना ले; जो देह के स्वास्थ्य में रस ले; जो देह के आनंदों को अस्वीकार न करे।

देह के आनंद प्यारे हैं। लेकिन, तुम्हें कहा गया हैः अस्वाद साधो। मैं तुमसे कहता हूंः स्वाद साधो। ऐसा स्वाद साधो कि भोजन में भी परमात्मा की ही प्रतीति होने लगे। है तो सब परमात्मा ही--जो तुम भोजन कर रहे हो, उसमें भी वही है। अस्वाद साधने का अर्थ हुआ कि स्वाद मत लेना भोजन में। मगर यह तो परमात्मा का अंगीकार नहीं हुआ, अस्वीकार हुआ। यह तो अनादर हुआ। "अन्नं ब्रह्म"। तुम तो अन्न में भी ब्रह्म का ही स्वाद लो। तब तुम्हारे जीवन में शरीर के सारे रहस्य समृद्ध करेंगे तुम्हें।

ऐसे ही मन के रहस्य हैं। संगीत सुनते हो? वह मन का आयाम है। गीत गुनते हो, वह मन का आयाम है। सूरज उगा और तुमने सूरज का सौंदर्य देखा, उगते सूरज को--वह मन का आयाम है। कि तुमने एक सुंदर प्रतिमा देखी कि सुंदर चित्र देखा और तुम अभिभूत हुए--वह मन का आयाम है। तुमने एक सुंदर स्त्री देखी कि सुंदर पुरुष देखा और एक क्षण को तुम ठिठके और अवाक हुए--वह मन का आयाम है। उसे इनकार मत करना, क्योंकि उस स्त्री में भी परमात्मा ने ही एक झलक दी है।

सुबह के सूरज में भी वही उग रहा है, फूल में वही खिल रहा है, किसी सुंदर चेहरे पर उसी की आभा है और किन्हीं सुंदर आंखों में वही झांक रहा है।

अब एक धर्म है, जो कहता हैः अगर आंख से सुंदर स्त्री दिखाई पड़े तो आंख फोड़ लो। लोग कहते हैं, इसीलिये सूरदास ने अपनी आंखें फोड़ ली थीं। मैं नहीं मानता। कहानी झूठ होगी। क्योंकि सूरदास का काव्य मुझसे कहता है कि सूरदास सौंदर्य के पारखी हैं, उनके काव्य में इतनी रसमयता है कि मैं यह मान नहीं सकता। इतिहास लाख कहे, लोग कुछ भी कहें; मेरे लिये अंतःप्रमाण हैं कि सूरदास स्त्री को देखकर आंख नहीं फोड़ सकते। हां, इतना मैं जरूर कहूंगा कि किसी भी स्त्री को देखकर सूरदास को कृष्ण की ही याद आयेगी। यह जरूर सच है। अब इसके लिये कोई प्रमाण हो या न हो। मैं इतिहास पर आधार रखता भी नहीं हूं। मेरे आधार आंतरिक हैं। मैं भीतर से यह जानता हूं कि सूरदास आंख नहीं फोड़ सकते और सूरदास आंख फोड़ेंगे तो दो कौड़ी के हो जायेंगे; उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता। सूरदास का मूल्य तो तभी है जब सुंदरतम स्त्री में भी उसी परमात्मा की झलक मिले, अभिभूत हो जायें, आनंदित हो जायें। सुंदर स्त्री की पायल की झंकार में भी उसी की पाजेब की झंकार सुनाई पड़े, उसी का घुंघुरू बजे।

हर बांसुरी में उसी का स्वर मालूम होना चाहिये। तो फिर तुम मन के आयाम को भी आत्मसात कर लिये।

फिर आत्मा के दो आयाम हैं--प्रेम और ध्यान। बन सके तो दोनों को एक साथ आत्मसात कर लो। न बन सके तो एक को आत्मसात करना, दूसरा उसके पीछे छाया की तरह अपने-आप आ जायेगा। जिसने प्रेम किया वह ध्यानी हो जायेगा और जिसने ध्यान किया वह प्रेम से भर जायेगा।

लेकिन तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी अगर ध्यान करते हैं, तो उनके जीवन में प्रेम नहीं दिखाई पड़ता। यह प्रमाण है कि उनका ध्यान झूठा है। कैसा वृक्ष जिस पर फूल न खिलें? और कैसी रात जो तारों से न भरी? और कैसी वीणा कि जिसमें स्वर न जगें? कैसा ध्यान, जिससे प्रेम की धारा न बही? कैसा हिमालय, जिससे गंगा न उतरे? झूठा होगा, फिल्मी होगा। ध्यान थोप-थापकर बैठ गये होंगे। मगर अभी अंतःसलिला जगी नहीं, अभी अंतर की गंगा उतरी नहीं। नहीं तो प्रेम में बहेगी।

बुद्ध ने कहा हैः जिसे ध्यान होगा उसके जीवन में करुणा होगी ही होगी। अगर न हो करुणा तो समझ लेना कि ध्यान नहीं। करुणा कसौटी है। "करुणा" बुद्ध का नाम है, "प्रेम" के लिये।

और अगर कोई कहता है कि मैंने प्रेम को पा लिया और उसके जीवन में ध्यान की एकाग्रता न हो, ध्यान की तन्मयता न हो, ध्यान की थिरता न हो, ध्यान का निश्चल भाव न हो, ध्यान की शांति न हो--तो समझना कि उसने प्रेम अभी पाया नहीं, प्रेम के नाम से उसने वासना को ही पूज लिया होगा, प्रेम के नाम से कामना को ही मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया होगा। उसने अभी प्रेम जाना नहीं; प्रेम का धोखा खाया है, प्रेम की प्रवंचना में पड़ा है। लेकिन प्रेम का परमात्मा अभी उतरा नहीं। नहीं तो उसके साथ आती ही है ध्यान की शांति--अनिवार्यरूपेण, अपरिहार्य रूप से।

प्रेम आये तो ध्यान उसकी छाया की तरह आता है, ध्यान आये तो प्रेम उसकी छाया की तरह आता है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम एक पहलू घर ले आये, तो तुम सोचते हो दूसरा पहलू साथ न आ जायेगा? उसी के पीछे छिपा-छिपा चला आ रहा है। आयेगा ही। दोनों पहलू साथ ही हो सकते हैं, अलग-अलग करने का कोई उपाय नहीं है। यह आत्मा का आयाम है।

फिर परमात्मा का आयाम भी है। परमात्मा का आयाम का अर्थ हैः मैं नहीं हूं। आत्मा तक "मैं" का थोड़ा-सा भाव, थोड़ी-सी अस्मिता शेष रहती है--शुद्ध अस्मिता, बड़ी सुंदर, बड़ी शांत, आह्लादपूर्ण! प्रेम का विष तो चला गया होता है--जैसे विष वाले सांप के हमने दांत तोड़ दिये, मगर सांप अभी है। ऐसे ही जैसे रस्सी जल

गयी, मगर ऐंठ अभी है। किसी काम की नहीं है अब ऐंठ, राख ही है अब; छुओगे तो बिखर जायेगी। मगर जली रस्सी में भी ऐंठ रह जाती है, राख में भी ऐंठ रह जाती है।

परमात्मा का आयाम हैः जहां "मैं" परिपूर्ण रूप से विसर्जित हो जाता है; जहां बूंद सागर में गिर गई। आत्मा तक बूंद शुद्ध होती है, परिपूर्ण शुद्ध होती है। शुद्ध हो जाये तो ही परमात्मा में गिर सकती है। लेकिन परमात्मा में गिरे तभी बूंद सागर हो, तभी क्षुद्र विराट हो।

ये चार आयाम हैं। कुछ लोग शरीर पर रुक गये हैं। इनको हम नास्तिक कहते हैं, इनको हम भौतिकवादी कहते हैं। इन पर दया करो। ये मंदिर में आये और सीढ़ियों पर ही बैठ रहे। इन्होंने सीढ़ियों पर ही घर बना लिया। इन्होंने समझा कि आ गया मंदिर। इन पर दया करना, नाराज न होना। इन्होंने शायद सीढ़ियां भी कभी नहीं देखी थीं! सीढ़ियां भी इतनी प्यारी हैं, पोर्च भी इतना सुंदर है, कि इन्होंने समझा आ गया घर। बैठ रहे, वहीं रहने लगे, वहीं निवास कर लिया। पूरा भवन पड़ा था, कभी आंख ही न उठाई उस तरफ। ये छोटे बच्चे हैं जो खिलौनों से उलझ गये। सच्चा धार्मिक व्यक्ति इनके विरोध में नहीं होता। सच्चा प्रौढ़ व्यक्ति बच्चों के खिलौनों के विरोध में नहीं होता। और अगर कोई बच्चों के खिलौनों के विरोध में हो तो समझना कि प्रौढ़ व्यक्ति नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने मनोचिकित्सक को कहा कि मेरे बच्चे में कुछ गड़बड़ है, कुछ ठीक करना पड़ेगा, आप कुछ फिक्र करें।

चिकित्सक ने पूछाः क्या गड़बड़ है, क्या तकलीफ है?

तो उसने कहाः वह दिन-भर अपनी गुड़िया को ही लिये रहता है।

तो मनोवैज्ञानिक ने कहाः बच्चा है, इसमें कुछ खराबी नहीं है, इसमें कोई रोग नहीं है। बड़ा हो जायेगा, सब ठीक हो जायेगा। खेलने दो।

मुल्ला ने कहाः वह तो ठीक है, लेकिन फिर मुझे गुड़िया लेने का मौका ही नहीं मिलता। वही दिन भर लिये रहे तो मैं कब लूं?

अब इसका ऐतराज जो है, वह बता रहा है कि मुल्ला खुद भी प्रौढ़ नहीं है।

जो धार्मिक व्यक्ति नास्तिकों का दुश्मन होता है समझ लेना कि वह धार्मिक नहीं है। अभी वह भी पोर्च में ही उलझा है, सीढ़ियों में उलझा है। अभी वह भी भीतर गया नहीं है, अभी विवाद वहीं चल रहा है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति तो, जो सीढ़ी पर अटक गया है उस पर दया करेगा, करुणा करेगा। सोचेगा कि क्या करूं, कैसा उपाय करूं कि इसे भी भीतर बुला लूं।

मेरे पास नास्तिक आते हैं, वे कहते हैं हम नास्तिक हैं। क्या आप हमें संन्यास देंगे?

मैं उनसे कहता हूंः तुम्हें तो मैं पहले दूंगा, आस्तिकों से पहले दूंगा। मगर वे कहते हैं, कि हम नास्तिक हैं, नास्तिक संन्यासी हो सकता है? मैंने कहाः संन्यास इतनी बड़ी बात है कि नास्तिकों को भी पी जाये। तुम फिकर न करो।

तुम चिकित्सक से यह तो नहीं कहते कि मैं बीमार हूं, क्या बीमार की भी चिकित्सा हो सकती है? क्या बीमार को भी दवा दी जा सकती है? और अगर कोई चिकित्सक तुमसे यह कहे कि पहले ठीक होकर आओ, तब दवा दूंगा, तो तुम क्या समझोगे? यह चिकित्सक है?

मैं तो नास्तिक को आलिंगन कर लेता हूं, तत्क्षण। प्रतीक्षा ही करता था कि कभी वह राजी हो जाये तो उसे घर के भीतर बुला लिया जाये।

कुछ लोग शरीर पर उलझ गये हैं। उन्होंने स्वाद को ही जीवन का लक्ष्य समझ लिया है या धन को या पद को। काम को, भोग को उन्होंने जीवन का प्रारंभ और अंत, दोनों समझ लिया है। इनके विपरीत तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोग हैं। वे इनसे ही लड़ते रहते हैं और ऊपर ही ऊपर नहीं, भीतर भी इनसे लड़ते हैं। अगर ये भोजन में रस लेते हैं तो वे अस्वाद व्रत साधते हैं। मगर चाहे तुम भोजन में दीवाने हो जाओ और चाहे भोजन के विपरीत दीवाने हो जाओ, तुममें कुछ फर्क नहीं है, तुम दोनों एक ही साथ हो, तुम चचेरे भाई-बहन हो, तुम एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो।

एक स्त्री के पीछे दीवाना है, दूसरा स्त्री से भागा है और हिमालय की तरफ चला गया है। दोनों एक ही साथ हैं। दोनों की दृष्टि स्त्री पर लगी है या पुरुष पर लगी है।

फिर कुछ हैं जो मन में उलझ गये हैं। जो थोड़ा आगे बढ़े, सीढ़ियों से ऊपर गये, दहलान तक पहुंचे हैं, मगर वहीं उलझ गये हैं। उनके लिये मन के ही रस सब-कुछ हैं--काव्य है, संगीत है, साहित्य है, कला है--वे वहीं खो गये हैं। थोड़े तो गये, मगर बहुत आगे न गये।

फिर कुछ हैं जो आत्मा में उलझ गये हैं। जो कहते हैंः कोई परमात्मा नहीं है, इसके आगे और कोई भी नहीं है, बस पा लिया सब। अपनी प्रतीति होने लगी है, अपना अहसास होने लगा है। बूंद शुद्ध हो गई, अब और क्या चाहिये? ये गये, काफी भीतर गये; लेकिन, फिर भी परिपूर्ण रूप से भीतर नहीं गये। क्योंकि बूंद को अभी एक कदम और लेना है, अभी बूंद को सागर भी बनना है।

जब मैं तुमसे कहता हूं सब आयामों में जीयो, तो मैं यह कह रहा हूंः पोर्च भी तुम्हारा, दहलान भी तुम्हारी, भीतर के कक्ष भी तुम्हारे, अंतरतम तुम्हारे भवन का जो गर्भ-गृह है जहां परमात्मा विराजमान है--वह भी तुम्हारा।

और सब रूपों में जीयो। बस एक ही बात ध्यान रहे कि सब रूपों से परमात्मा ही सिद्ध हो। बस सब तरह से केंद्र से जुड़ते जाओ, फिर कोई अड़चन नहीं है।

ऐ शख्स! अगर "जोश" को तू ढूंढना चाहे
वो पिछले पहर हल्का-ए-इर्फां में मिलेगा
और सुबह को वो ना.जरे-न.ज्.जारा-ए-कुदरत
तरफे-चमनों-सहने बयाबां में मिलेगा
और दिन को वो सरगश्ता-ए-इसरारो-मआनी
शहरे-हुनरो-कूए-अदीबां में मिलेगा
और शाम को वो मर्दे-खुदा रिन्दे-ख़राबात
रहमत कदा-ए-बादा-फरोशां में मिलेगा
और रात को वो ख़िल्वतों-ए-काकुलो-रुखसार
ब.ज्मे-तरबो-कूचा-ए-खूबां में मिलेगा
और होगा कोई जब्र तो वो बंदा-ए-मजबूर
मुर्दों की तरह ख़ाना-ए-वीरां में मिलेगा

ऐ शख़्स! अगर "जोश" को तू ढूंढना चाहे... कवि कहता है कि अगर तुम्हें मुझे खोजना हो...

ऐ शख्स! अगर "जोश" को तू ढूंढना चाहे
वो पिछले पहर हल्का-ए-इर्फां में मिलेगा

... तो पिछले पहर अध्यात्मवादियों की गोष्ठी में खोजना, वह वहीं होगा। और सुबह को वो ना.जरे-न.ज्.जारा-ए-कुदरत। और अगर सुबह हो और उसे खोजना हो तो फिर प्रकृति के पास खोजना--जहां सूरज उगता हो, पक्षी गीत गाते हों, फूल खिलते हों। क्योंकि वह प्रकृति का प्रेमी है, या तो बगीचों में मिलेगा या जंगलों में मिलेगा।

और सुबह को वो ना.जरे-न.ज्.जारा-ए-.कुदरत

तरफे-चमनों-सहने बयाबां में मिलेगा।

और दिन को वो सरगश्ता-ए-इसरारो-मआनी

और अगर दिन में खोजना हो तो वह शास्त्रों में, शब्दों की गहराइयों में, काव्य में, काव्य की अनुभूतियों में, भाषा की ऊहापोह में, दर्शन के विचार में--वहां डूबा मिलेगा।

और दिन को वो सरगश्ता-ए-इसरारो-मआनी

शहरे-हुनरो-कूए-अदीबां में मिलेगा

फिर तुम्हें अगर उसे दिन में ढूंढना हो तो वह वहां मिलेगा जहां विद्वानों की महफिल होती है; जहां विचारशील लोग उठते-बैठते हैं; जहां तर्क, चिंतन, मनन की ऊंचाइयां छुई जाती हैं। शहरे-हुनरो-कूए-अदीबां में मिलेगा। तब तुम उसे अदीबों की गली में खोज लेना।

और शाम को वो मर्दे-खुदा रिन्दे-ख़राबात। और अगर शाम की बात हो, तो वह पियक्कड़ है।

और शाम को वो मर्दे-खुदा रिन्दे-ख़राबात। अगर शाम को खोजना हो तो उस पियक्कड़ को तुम एक ही जगह पा सकोगे... रहमत कदा-ए-बादा-फरोशां में मिलेगा... जहां कोई कृपालु हृदय अपने पात्र से मदिरा ढालता हो, तुम उसे वहां खोजना। वह किसी मधुशाला में मिलेगा। और रात को वो खिल्वतों-ए-काकुलो रुख़सार। और वह सौंदर्य का प्रेमी है। अगर रात हो...

और रात को वो खिल्वतों-ए-काकुलो-रुख़सार

ब.ज्मे-तरबो-कूचा-ए-खूबां में मिलेगा

... तो जहां कहीं आनंद-उत्सव हो रहा हो और सुंदरियां नाचती हों और सौंदर्य का जश्न मनाया जा रहा हो--वहां उसे खोजना, वहां मिलेगा।

और होगा कोई जब्र तो वो बंदा-ए-मजबूर, और अगर कहीं तुम्हें खबर मिल जाये कि कोई परेशान है, कोई पीड़ित है, कोई दुखी है...

और होगा कोई जब्र तो वो बंदा-ए-मजबूर

मुर्दों की तरह खाना-ए वीरां में मिलेगा

... और, अगर कहीं कोई मजबूर होगा, कहीं कोई दुखी होगा, कहीं जिंदगी किसी को तोड़े डाल रही होगी, तो करुणा से भरा हुआ वह तुम्हें किसी वीरान घर में मिलेगा।

जीवन सब आयामों में जीया जाना चाहिये। यह सारा अस्तित्व तुम्हारा है। इसका सौंदर्य तुम्हारा, इसका स्वाद तुम्हारा, इसकी शराब तुम्हारी। मालकियत की घोषणा करो। इसीलिये मैं अपने संन्यासियों को "स्वामी" कहता हूं--मालकियत की घोषणा करो। यह सारा अस्तित्व तुम्हारा है। मुझे पता नहीं, पुराने लोगों ने क्यों संन्यासी को "स्वामी" कहा था--उनके मतलब कुछ और थे; मेरे मतलब कुछ और हैं। मेरा मतलब है कि तुम इस सारे अस्तित्व के स्वामी हो, मालिक हो। यह सब तुम्हारा है। ये चांद-तारे तुम्हारे लिये परिभ्रमण करते हैं, ये वृक्ष तुम्हारे लिये हरे हैं, ये फूल तुम्हारे लिये खिले हैं, ये लोग तुम्हारे लिये हैं। यह सारा अस्तित्व तुम्हारे लिये

है। इससे दुश्मनी साधकर दूर मत हट जाओ। इसमें डुबकी मारो, इसमें गहरे डूबो, इसमें विसर्जित हो जाओ और तब तुम्हारे जीवन में एक समृद्धि होगी। इसी समृद्धि का नाम "धर्म" है।

धर्म कोई दीनता नहीं है, हीनता नहीं है। धर्म परम ऐश्वर्य है। वह ईश्वर की अनुभूति है। धर्म व्यक्ति को समृद्ध बनाता है और तब कभी ऐसा चमत्कार भी देखने में आता है कि बुद्ध जैसा भिखारी रास्ते पर चलता हो तो भी सम्राटों को झेंप आ जाये। धर्म इतना समृद्ध बनाता है व्यक्ति को कि भिखारी के पास भी धर्म की अनुभूति हो तो सम्राट दो कौड़ी के मालूम होते हैं। और यह संसार और यहां की धन-दौलत तुम कितनी ही इकट्ठी कर लो, यहां की कौड़ियां तुम कितनी ही जुटा लो, लेकिन अगर तुमने जीवन के समस्त आयाम अनुभव नहीं किये हैं, अगर तुम जीवन को उसकी समग्रता में नहीं जीये हो, परिपूर्णता में अगर तुमने जीवन को अंगीकार नहीं किया है, अभिनंदन नहीं किया है, तो हो सकता है तुम्हारे पास दुनिया-भर की धन-दौलत हो, मगर तुम्हारी आंखों में भिखमंगापन होगा। तुम सिंहासन पर भला बैठे रहो, मगर तुम रहोगे भिखारी। क्योंकि बादशाहत तो सिर्फ उनकी है जो इस अस्तित्व के साथ अपना सरगम जोड़ लेते हैं; जिनका छंद इस अस्तित्व के साथ जुड़ जाता है; जिनका नाच इस अस्तित्व के साथ जुड़ जाता है। जो इस विराट रासलीला के अंग हो जाते हैं।

थोड़े-थोड़े चलो, एक-एक कदम ही सही। एक-एक कदम से हजारों मीलों की यात्रा पूरी हो जाती है।

मेरी दृष्टि तुम्हें समझने में थोड़ी-सी कठिन मालूम होगी, क्योंकि निषेध और निषेध और निषेध में तुम जीये हो। "नहीं" तुम्हारा स्वर हो गया है और मैं तुम्हें "हां" कहना सिखा रहा हूं।

प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।
अर्चना का गीत बनकर,
जल रहे हैं प्राण मेरे।
कर रहे हैं आरती सी,
ये सिसकते गान मेरे।
तुम सदय हो ठीक, पर
इसका मुझे आभास तो दो।
प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

जल चुका है दीप, कैसे
अब जले बाती बता दो।
हृदय यह कब तक संभाले,
पीर की थाती बता दो।
वेदना ही दे रहे हो,
पर कभी उल्लास तो दो।
प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

मैं नहीं हूं अमर फिर भी
अमर मेरी भावना है।
स्वर्ण-सी जो तप रही है,

वह मनोरम कामना है।
विरह श्वासों में छिपा कर
मिलन की इक श्वास तो दो।
प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

मैं भिखारिन ही सही,
फिर भी नहीं झोली पसारी।
तुम महादानी अमर,
तुमने कभी ली सुधि हमारी?
शून्य सा यह हृदय-वन,
इसमें कभी मधुमास तो दो।
प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

अगर तुम जीवन को समग्रता में जीयो तो वही तुम्हारी प्रार्थना हो जाएगी, वही तुम्हारी अर्चना हो जायेगी और फिर तुम्हें यह न कहना पड़ेगाः प्यार दे सकते न यदि तुम, प्यार का विश्वास तो दो।

प्यार बरसेगा--चहुं-दिशाओं से, ऊपर से नीचे से, इधर से उधर से, बाहर से भीतर से। प्रेम की बाढ़ आ जायेगी। विश्वास न मांगना पड़ेगा। प्रेम ही आ जायेगा। अनुभव आ जायेगा। मैं उस व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं जो जीवन को बेशर्त उसकी समग्रता में जीता है। नहीं कुछ इनकार करता है, नहीं कुछ काटता है।

कहता हैः जैसा परमात्मा ने बनाया है, वैसा पूरा-पूरा जिऊंगा, क्योंकि इसमें से कुछ भी काटना परमात्मा का अपमान होगा, अवमानना होगी। इस भाव का नाम "आस्तिकता" है।

तीसरा प्रश्नः सभी ज्ञानियों ने पाखंड का बहुत विरोध किया है। लेकिन पाखंड में कुछ है कि वह उनके ही पीछे चलने वाले संप्रदायों में प्रवेश कर जीवन पाता रहा है। पाखंड का इतना बल और आकर्षण क्या है?

पाखंड तो बिल्कुल निर्बल है, उसमें जरा भी बल नहीं है। और पाखंड में कोई आकर्षण नहीं है--पाखंड में बड़ा विकर्षण है। लेकिन पाखंड अपने पैरों से चलता ही नहीं है; उसके पास अपने पैर हैं भी नहीं। पाखंड आदर्श की आड़ में चलता है। जहां आदर्श दिये जायेंगे वहां पाखंड अनिवार्य रूप से पैदा होगा। पाखंड आदर्श की छाया है; जैसे भरी दुपहरी में तुम चलोगे तो तुम्हारी छाया बनेगी। इस जीवन में जो भी आदर्श लेकर चलेगा वह पीछे पाखंड की छाया को छोड़ जायेगा।

और, इसे समझना निश्चित ही बहुत कठिन है क्योंकि हम तो सोचते हैं आदर्श और पाखंड विपरीत हैं। विपरीत नहीं, संगी-साथी हैं। अनिवार्यरूपेण संगी-साथी हैं। कोई भी आदर्श पैदा करो, तत्क्षण पाखंड पैदा हो जायेगा।

एक ऐसा धर्म चाहिये, जो आदर्शवादी न हो, यथार्थवादी हो। मैं वही तुमसे कह रहा हूं--एक यथार्थवादी धर्म। फिर पाखंड पैदा नहीं हो सकता।

समझो तुमसे किसी ने कहा कि भोजन में स्वाद मत लेना; यह आदर्श है। ऐसा महात्मा गांधी के आश्रम में नियम था-- "अस्वाद-व्रत", भोजन में स्वाद मत लेना। स्वाद लिया तो यह आदर्श से पतन हो गया। अब जिसने

स्वाद लिया है, क्या करे? और स्वाद तो आयेगा, क्योंकि तुम्हारी जीभ पर स्वाद लेने की क्षमता वाले अणु हैं। मीठा मीठा मालूम पड़ेगा और कड़वा कड़वा मालूम पड़ेगा। तुम्हारी जीभ जीवित है। हां, कभी-कभी लंबे बुखार के बाद स्वाद नहीं आता है, क्योंकि जीभ मुर्दा हो जाती है, उसकी संवेदनशीलता क्षीण हो जाती है। क्या तुम सोचते हो सारे लोगों की जीभ ऐसी हो जाये जैसे लंबे बुखार के बाद हो जाती है? तुम जीवन के पक्षपाती हो या दुश्मन हो? तुम मृत्यु के पूजक हो या जीवन के आराधक?

लेकिन बड़ी अड़चन हो जायेगी। अगर तुम महात्मा गांधी के आश्रम में थे तो तुम्हारे लिये दो ही उपाय थे। एक तो यह था कि तुम किसी तरह अपने जीवन की संवेदनशीलता नष्ट कर लो। क्योंकि जो बात जीभ पर लागू है वही आंख पर लागू है, वही कान पर लागू है, वह सभी इंद्रियों पर लागू है। व्रतों का अर्थ ही यही है कि धीरे-धीरे सारी इंद्रियों को मार डालो। तुम क्या करते? एक तो रास्ता यह है कि तुम जीभ की संवेदनशीलता नष्ट कर दो। उसके उपाय गांधी ने किये थे। हर व्यक्ति को वह कहते थे कि भोजन के साथ-साथ नीम की चटनी भी खाओ। अब नीम की भी चटनी होती है कोई? और नीम की चटनी खाओगे तो भोजन का स्वाद मर ही जायेगा।

लुई फिशर नाम के एक विचारक ने लिखा है कि मैं गांधी का आश्रम देखने गया। ... गांधी के भक्तों में से एक था लुई फिशर। गांधी ने उसे अपने साथ भोजन पर बिठाया और नीम की चटनी तो खास चीज थी। भोजन भी परोसवाया। जो भोजन परोस रहा था, उसने नीम की चटनी नहीं परोसी--यह सोचकर कि नया आदमी है, आगंतुक, कि नीम की चटनी देना... यह कोई अंतेवासी तो नहीं है आश्रम का, अतिथि है। लेकिन गांधी ने देखा कि नीम की चटनी नहीं दी गई तो उन्होंने कहाः अरे! नीम की चटनी दो। तो नीम की चटनी दी गई। लुई फिशर ने तो सोचा कि यह कोई खास चीज होगी। उस बेचारे को क्या पता! उसने चखा--जहर, शुद्ध जहर! तो बड़ा हैरान हुआ। गांधी ने उसे समझाया कि "अस्वाद-व्रत" का अंग है; इससे जीभ का स्वाद मर जाता है।

लुई फिशर ने सोचा--पश्चिम का आदमी, हिसाब लगाकर चलता है--गणित से उसने सोचा कि यह तो झंझट है, इसमें पूरा भोजन खराब हो जायेगा, अगर यह चटनी के साथ रोटी खानी, सब्जी खानी। उसने सोचा, ज्यादा आसान रास्ता यह होगा--वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी--कि पहले यह चटनी एक ही गटाक में खतम कर जाओ, पानी पी कर मुंह साफ कर लो और फिर मजे से भोजन करो। तो वह जल्दी से एक ही बार किसी तरह जी संभालकर राम-राम कहकर... और उसने पूरा गोला गटक गया। लेकिन गांधी भी ऐसे छोड़ देने वाले तो नहीं। उन्होंने कहा कि और लाओ। देखो, मैंने कहा था कि नहीं, कि चटनी कितनी पसंद आई! और लाओ चटनी!

और चटनी दे दी गई। अब यह भी उपाय न रहा गटकने का। लुई फिशर ने लिखा है कि पूरा भोजन खराब हो गया। मगर स्वाद नहीं आया।

एक तो उपाय यह है--रुग्ण उपाय। और फिर मैं यह पूछता हूं कि चटनी का स्वाद स्वाद नहीं है? यह किसी ने पूछा नहीं है। यह लुई फिशर ने भी नहीं पूछा। मैं जरूर यह पूछना चाहता हूं कि क्या मिठास का स्वाद ही स्वाद है? कड़वाहट का स्वाद स्वाद नहीं है? अगर नीम का स्वाद आया तो अस्वाद-व्रत कैसे सधा? हां, नीम के स्वाद ने जहर ने और सारे स्वादों को मार डाला। लेकिन "अस्वाद-व्रत" कैसे सधा? यह तो "नीम के स्वाद का व्रत" सधा। मगर यह है स्वाद का ही व्रत। तुम नीम के प्रेमी हो, इससे इतना ही पता चलता है। इससे कोई अनासक्ति नहीं हो गई, सिर्फ नीम से आसक्ति हो गई।

और मैं मानता हूं कि यह आसक्ति थोड़ी विकृत है, अस्वाभाविक है--यह सहज नहीं है। सरहपा और तिलोपा भी इसका समर्थन न करेंगे; मैं भी नहीं करता हूं। कोई सहज-जीवन की प्रस्तावना करने वाला व्यक्ति

इसका समर्थन न करेगा। किसी भी बच्चे को नीम दे दो और पता चल जायेगा। छोटे-से बच्चे को नीम दे दो, वह फौरन थूक देगा। इससे जाहिर हो गया कि यह स्वभाव के प्रतिकूल है। अब बच्चे को किसी ने कहा नहीं था कि नीम थूक देना। बच्चे को मैंने बिगाड़ा नहीं था, मुझे कसूर न दो सकोगे। बच्चा मुझे सुनने आया भी नहीं था, मेरा संन्यासी भी नहीं था। बच्चा अभी बोल भी नहीं सकता, पढ़ भी नहीं सकता। बिन-बोलते बच्चे को नीम दे दो, वह थूक देगा। इससे जाहिर है कि यह स्वभाव के प्रतिकूल है। और जो स्वभाव के प्रतिकूल है उससे अपने को बांधना दमन है।

तो, एक तो उपाय यह है--जो कि तुम्हें विकृति की तरफ, पैथालाजी की तरफ ले जायेगा, तुम्हें रुग्ण करेगा; तुम्हारे जीवन की सारी सहजता, स्वाभाविकता नष्ट कर देगा, खंडित कर देगा।

अब दूसरा उपाय यह है कि स्वाद भी लेते रहो और लोगों से कहते रहो कि मुझे स्वाद आता ही नहीं है। तब पाखंड पैदा होगा। पाखंड का मतलब क्या होता है? पाखंड का अर्थ होता हैः आदर्श मानता हूं मैं और आदर्श पूरा होता नहीं; तो अब मैं झूठा ही दावा करता हूं कि आदर्श पूरा हो रहा है, कि मुझे स्वाद आता ही नहीं।

झूठे, असंभव आदर्श लोगों को दोगे और वे पाखंडी हो जायेंगे तो फिर तुम उनको गाली देते हो कि तुम पाखंडी हो। जीवन को सहज रहने दो, फिर कोई पाखंड नहीं होता। बच्चे पाखंडी नहीं होते। उन्हें जो अच्छा लगता है, कह देते हैं साफः "अच्छा"; जो अच्छा नहीं लगता, कह देते हैंः "अच्छा नहीं"। पाखंडी तो, जैसे-जैसे हम कुशल हो जाते हैं, जगत के हिसाब में, तब हो जाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक मेहमान आने को थे--बड़े धनपति। मगर एक खतरा था--मुल्ला का छोटा बेटा। क्योंकि वह जो धनपति आ रहे थे उनकी नाक बहुत बड़ी थी--इतनी बड़ी कि नाक ही नाक दिखाई पड़ती थी। मुल्ला भी परेशान था और पत्नी भी परेशान थी कि बेटा कुछ न कुछ कह न दे कि अरे! इतनी बड़ी नाक! और धनपति को ला रहे थे खुशामद के लिये, उससे कुछ काम था कि कहीं वह नाराज न हो जाये! और सबको पता था कि जो भी उनके नाक के संबंध में बात उठा देता, उससे वह नाराज हो जाता। क्योंकि उसकी नाक बड़ी कुरूप थी, बड़ी बेढंगी थी। तो दोनों ने कई दिन तक, तीन-चार दिन तक बेटे को तैयार किया कि देख ख्याल रख, और सब करना, नाक की बात मत छेड़ना। नाक की तरफ देखना ही मत तू, इधर-उधर देखना, मगर नाक मत देखना।

बेटा भी हैरान था, कि नाक में ऐसा क्या होगा! तीन दिन हो गये शिक्षण देते-देते। फिर भी डरे थे, क्योंकि बच्चे बच्चे हैं। कितना ही समझाओ, उनको पाखंडी बनाना बड़ा मुश्किल होता है। दोनों शंकित थे और कंप रहे थे। आखिर धनपति आया। मुल्ला ने स्वागत कियाः विराजो। पत्नी ने स्वागत किया। लेकिन दोनों डरे, बच्चे पर नजर रखे हुए थे--वह कहीं नाक तो नहीं देख रहा है! और बच्चा एकदम नाक ही देख रहा है, और कुछ देखता ही नहीं है। अगर उसे न कहा होता तो शायद वह और कुछ भी देखता... शायद उसने एकाध दफे नाक देख ली होती और उसने कहा होताः ठीक है, हर तरह की चीज दुनिया में होती है। बच्चों को अड़चन ऐसी खास आती नहीं है। मगर वह एकदम एक टकटकी लगाये और कहीं देखे ही नहीं, आंख की पलक भी न झपे... तीन दिन जिसको समझाया हो।

घबड़ाहट बढ़ती गई। मगर बेटा कुछ बोला नहीं। इतनी ही सांत्वना थी कि कुछ बोल नहीं रहा है। मगर घबड़ाहट बढ़ती चली गई। पत्नी भोजन परोस रही है, मगर हाथ कंप रहा है कि यह उसकी नाक की तरफ ही देख रहा है। अब उससे यह भी नहीं कह सकते कि नाक की तरफ मत देखो। सोच रही है कि जरा जाने दो

मेहमान को, इसकी कुटाई करनी पड़ेगी। तीन दिन समझाया मूढ़ को, इसको और कुछ नहीं सूझ रहा है, पलक नहीं झप रहा है। धनी को असमंजस में डाल रहा है।

और मुल्ला भी कुड़बुड़ा रहा है दिल ही दिल, मगर अब कर भी क्या सकते हो? बेटा सामने ही बैठा है और नाक देखे चला जा रहा है। आखिर, पत्नी ने, किसी तरह सब निपटा जा रहा है, प्रसन्न थी, चाय की प्याली लायी आखिर। चाय की प्याली धनपति को दी। मन में तो उसके वही लगा है। फिर उसने कहा कि "आप की नाक में कितनी शक्कर डालूं?"

नाक ही नाक, नाक ही नाक... छिपाये छिपती नहीं बात। कहने गयी थी कि आपकी प्याली में कितनी शक्कर डालूं, मगर प्याली तो छोटी और नाक बड़ी। और उसके मन में तो एक ही शब्द गूंज रहा है--"नाक" और वह बेटा देखे जा रहा है और काम खराब हुआ जा रहा है।

पाखंड पैदा होते हैं झूठे आदर्श थोप दो तो। इस जगत में इतने पाखंड दिखाई पड़ रहे हैं, ये तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों के कारण।

आनंद मैत्रेय, तुम पूछते होः "सभी ज्ञानियों ने पाखंड का बहुत विरोध किया है... ।" ज्ञानियों ने अगर सिर्फ पाखंड का विरोध किया है तो वे ज्ञानी थे ही नहीं, सिर्फ पंडित थे। ज्ञानी तो वे हैं जिन्होंने आदर्श और पाखंड दोनों का विरोध किया है। वे ही ज्ञानी हैं। उन्हीं को पता है। क्योंकि जिसने आदर्श का भी विरोध किया है, उसने ही वस्तुतः पाखंड का विरोध किया है--न होंगे आदर्श, न होंगे पाखंड। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।

इसलिये मैं तुम्हें कोई आदर्श नहीं दे रहा हूं। यही सहज-योग की आधारभूत मान्यता है। न सरहपा न तिलोपा कोई आदर्श दे रहे हैं। वे कह रहे हैंः जो व्यर्थ है, क्रियाकांड है, उसे जाने दो। हम तुम्हें कोई भी विधायक आदर्श नहीं दे रहे हैं कि तुम्हें ऐसे होना चाहिये। क्योंकि अगर तुम न हो पाये तो फिर क्या करोगे? और तुम न हो पाओगे, यह सुनिश्चित है। क्यों? क्योंकि, आदर्श आते कहां से हैं? आदर्शों का जन्म कैसे होता है? इसकी प्रक्रिया समझो।

महावीर नग्न हो गये। अब एक आदर्श पैदा हो जायेगा कि जिसको भी ज्ञान पाना है वह नग्न हो जाये। यह महावीर की मौज थी, इसकी ज्ञान से कोई अनिवार्यता नहीं है यह कोई ज्ञान का कारण नहीं है कि नग्न होने से कोई ज्ञान को उपलब्ध होता है। यह महावीर की मस्ती थी।

जीसस बिना नग्न हुए हो गये उपलब्ध ज्ञान को। बुद्ध भी हो गये, कृष्ण भी हो गये। जरथुस्त्र भी हो गये, लाओत्सु भी हो गये। मुहम्मद भी हो गये। ज्ञान को लोग उपलब्ध हो गये--बिना नग्न हुए! तो यह महावीर की अपनी निजी मौज थी। इसका ज्ञान से कोई अनिवार्यरूपेण संबंध नहीं है।

तुमने गोल दीया बनाया, किसी ने तिकोन दीया बनाया। किसी ने सोने का दीया बनाया, किसी ने मिट्टी का, किसी ने चांदी का। किसी ने अपने दीये पर हीरे जड़ दिये, किसी ने यह रूप दिया किसी ने वह रूप दिया। इससे क्या तुम सोचते हो कि ज्योति का कोई अनिवार्य संबंध है? वह जो दीये में ज्योति जलेगी, क्या वह ज्योति भिन्न होगी सोने के दीये में मिट्टी के दीये से? हीरे लगे दीये में भिन्न होगी, साधारण पीतल के दीये से? ज्योति तो एक है, दीयों में भिन्नता है। और अच्छा है। महावीर को मौज आई, उन्होंने वस्त्र छोड़ दिये। लेकिन इससे ज्ञान की कोई अनिवार्यता नहीं है।

लेकिन फिर महावीर के पीछे चलने वाली परंपरा सोचती है कि जब तक नग्न न होओगे तब तक ज्ञान न होगा।

मैं एक जैन मुनि को जानता हूं--गणेश वर्णी। वे जिंदगी-भर कोशिश करते रहे मुनि हो जाने की। जैनों में सीढ़ियां होती हैं। मुनि का मतलब--दिगंबर--जैनों में मुनि का अर्थ होता है नग्न। उसके पहले सीढ़ियां होती हैं--ब्रह्मचारी होता है, फिर कोई क्षुल्लक होता है, फिर एलक होता है। यह सब सीढ़ियां होती हैं--कितने वस्त्र छोड़ते गए, उस हिसाब से। आखिर में लंगोटी रह जाती है, फिर लंगोटी भी छूट जाती है, तब कोई मुनि होता है। गणेशवर्णी ने जीवन भर चेष्टा की कि मुनि हो जायें, लेकिन लंगोटी छोड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाये। जरूरत भी नहीं थी। संकोची आदमी रहे होंगे कि नंगा घूमना सड़क पर... नहीं जमा होगा। लेकिन मन में तो भाव था ही कि जब तक नग्न न हुए तब तक ज्ञान न हुआ। फिर मरते समय बेहोश हो गये, बेहोश होते-होते उन्होंने कहा कि जल्दी से मेरी लंगोटी और मेरी चादर अलग कर दो। कम से कम मर तो जायें मुनि होकर! उनकी बेहोशी की हालत में उनकी चादर और उनकी लंगोटी अलग की गई। उनकी बेहोशी की हालत में उनको मुनि की दीक्षा दी गई--बेहोशी हालत में।

क्या खेल कर रहे हो? ऐसे तो तुम अस्पताल में किसी को भी दे सकते हो मुनि-दीक्षा। जरा-सा क्लोरोफार्म सुंघा दो, दे दो मुनि की दीक्षा। तो क्या तुम सोचते हो वह आदमी मरकर मोक्ष चला जायेगा? मगर इस तरह से झंझट खड़ी हो जाती है। जब एक बात पकड़ ली कि नग्न हुए बिना मोक्ष हो ही नहीं सकता तो अड़चन आ गई। अब सबको नग्न होना पड़ेगा। अब यह नग्नता में पाखंड आया।

महावीर नग्न थे तो नग्न ही सोते थे--न कोई बिस्तर, न कोई कंबल--सवाल ही नहीं उठता। यह महावीर के लिये ठीक रहा होगा, कोई अड़चन न आई उन्हें। अब दिगंबर जैन मुनि, उसको तो ठंड लगती है। अलग-अलग तरह के लोग हैं।

मैं एक सज्जन को जानता हूं, जिनको मच्छर नहीं काटते। उनके खून में ऐसी बास है कि मच्छर भी एकदम दूर-दूर भागते हैं। हम दोनों एक ही कमरे में सोये। वह बोलेः मच्छरदानी की क्या जरूरत? मैंने कहाः इतने मच्छर हैं यहां! उन्होंने कहाः रहने दो, मच्छर क्या कर लेंगे? मैं चकित हुआ। रात भर में सुबह तक मुझे तो इतने मच्छर काट गये कि सारा शरीर मच्छरों के ही काटे चिह्नों से भर गया। मगर उन सज्जन को एक मच्छर ने न काटा। उन्होंने कहाः मुझे काटते ही नहीं। इसमें जरूर आपकी कोई गलती होगी। नहीं तो मच्छर क्यों काटते आपको?

मैंने उनके पास जाकर उनका शरीर सूंघा और मैंने कहा कि मैं समझ गया, तुम्हारे शरीर से इस तरह की बास आ रही है कि शायद मच्छरों को जमती नहीं। आखिर मच्छरों से बचने की जो दवाइयां बनाई गई हैं, वे भी बास के आधार पर बनाई गई हैं। इसी तरह के लोगों का अध्ययन करके कि जिनके खून में इस तरह की बास है तो फिर इस तरह की दवाइयां बनाई गई हैं--मलहम, उनको लगा लिया और मच्छर नहीं आता; वह एक खास तरह की बास से दूर ही दूर रहता है।

अब हो सकता है महावीर को मच्छर न काटते हों तो वे नग्न रह लिये, मजे में। अब जिसको मच्छर काटते हैं वह नग्न रहेगा तो मुश्किल में पड़ेगा। तो फिर अब उपद्रव करना पड़ेगा। छिपाकर कहीं चोरी से रखे रहो एक मच्छरदानी, कि जब सब चले जायें दरवाजा बंद करके अपनी मच्छरदानी लगा कर सो जाओ। अब यह पाखंड हुआ। महावीर का शरीर, हो सकता है, इस तरह का रहा हो कि उन्हीं जरूरत नहीं थी वस्त्रों की, कि रात उन्हें कंबल ओढ़ने की जरूरत नहीं थी। सबके शरीर भिन्न-भिन्न हैं।

लेकिन अब जैन दिगंबर-मुनि की बड़ी अड़चन है, वह क्या करे? तो उपाय करने पड़ते हैं। उपाय क्या हैं? कपड़े तो ओढ़ाए नहीं जा सकते, तो फिर कमरे को बिल्कुल बंद कर देते हैं जहां जैन-मुनि ठहरते है--दीवार-

दरवाजा सब बंद कर देते हैं, सब तरह से, ताकि जरा भी हवा अंदर न जा सके। और फिर जमीन पर बिछा देते हैं घास-पूस, ताकि घास-पूस की गरमी बनी रहे। और फिर जब मुनि लेट जाता है तो उसके ऊपर से डाल देते हैं घास-पूस, ताकि वह घास-पूस के अंदर पड़ा रहे। अब अगर तुम जैन मुनि से पूछो कि यह तो कोई बात न हुई--इतना उपद्रव करना, दरवाजा बंद करना, खिड़की बंद करना, फिर घास-पूस बिछाना, फिर घास-पूस ऊपर से डालना--इससे बहेतर है कि एक कंबल बिछा लेते, एक कंबल ओढ़ लेते, ज्यादा आसान था, ज्यादा सुगम था, कम झंझट का था। लेकिन वह तो वह कर ही नहीं सकता। वह कहताः घास-पूस से मुझे क्या लेना? मैंने तो घास-पूस बिछा हुआ पाया, तो मैं सो गया। मैंने तो नहीं बिछाया। अब देखते हो पाखंड कैसे पैदा होता है! ... मैंने बिछाया नहीं! वह नहीं बिछाता खुद, इसलिये उसको दोष नहीं है। और जब मैं लेट गया, लोगों ने घास-पूस ऊपर से डाल दिया, मैं क्या करूं! मैंने डाला नहीं! इसका नाम पाखंड।

एक सज्जन मेरे पास आये। हिंदू-संन्यासी। बंबई की बात। ध्यान समझने आये। मैंने कहा कि ध्यान का शिविर ही चल रहा है, कल सुबह तुम शिविर में आ जाओ। ठीक से वहां ध्यान करो दो-चार दिन, फिर पूछ लेना।

तो उन्होंने कहाः वह तो जरा कठिन है, मैं आ न सकूंगा। मैंने कहाः क्या कारण है? उन्होंने कहाः कारण यह है कि मैं पैसे अपने पास नहीं रखता। पैसे का मैंने त्याग कर दिया है। मैं छूता ही नहीं हाथ से।

तो मैंने कहाः मेरी समझ में नहीं आया, पैसा छूने से सुबह ध्यान करने आने का क्या संबंध?

उन्होंने कहाः आपके ख्याल में नहीं आ रही है बात। घाटकोपर रुका हूं। उधर से आते में टैक्सी करनी पड़ेगी।

तो मैंने कहाः यहां तक तुम कैसे आये? तो उन्होंने कहाः ये जो मित्र मेरे साथ हैं, ये कल नहीं आ सकते, इनको कल काम है। ये पैसा रखते हैं। ये पैसा चुकाते हैं, लेते हैं, देते हैं। मैं पैसा छूता नहीं।

मैंने पूछा कि यह पैसा इनके पास कहां से आता है? तो उन्होंने कहाः पैसा तो जो लोग मुझे चढ़ाते हैं--वह ये रखते हैं।

पैसा इनको चढ़ता है, एक सज्जन रखते हैं! वे सज्जन खर्चा करते हैं। अब कल चूंकि वे नहीं आ सकते, इनको अस्पताल जाना है, इसलिये कल बड़ी मुश्किल हो गई, ध्यान करने नहीं आ सकते! क्या पाखंड चला रहे हो! एक आदमी से जो काम हो जाता, उसमें दो को लगा रहे हो! पैसे तुमको चढ़ाये जाते हैं, उनको तो कोई चढ़ाता नहीं। ये सिर्फ दलाल हैं। ये सिर्फ तुम्हारे पैसे रखते हैं!

मैंने उनसे पूछा कि ये धोखा-धाखा नहीं करते कि कितने के कितने बनाये? उन्होंने कहा कि नहीं, हिसाब तो मैं रखता हूं। हिसाब मैं रख सकता हूं। अंधा नहीं हूं।

हिसाब तुम रखते हो, पैसा तुम रखते नहीं हो, किस खेल में पड़े हो! और ये सोच रहे हैं कि एक बहुत बड़ा काम इन्होंने कर लिया है, किस खेल में पड़े हो। आदर्श बनाओगे? आदर्श बनाओगे कैसे? किसी को देखकर बनाओगे। बस, किसी को देखकर बनाया कि झंझट शुरू हुई। इस जगत में दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं इसलिये आदर्श से पाखंड पैदा होता है। इस जगत में व्यक्ति-व्यक्ति भिन्न हैं। कृष्ण का आदर्श बनाओगे, बस तुम मुश्किल में पड़ जाओगे; तुम कृष्ण नहीं हो। महावीर का आदर्श बनाओगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे; तुम महावीर नहीं हो। महावीर भी किसी और का आदर्श मानकर नहीं चले थे; चलते तो वे भी पाखंडी हो जाते। वे अपनी सहजता से जीये, इसलिये कोई पाखंड न था। इस बात को खूब समझ लो गहराई से।

जो भी सहजता से जीता है, जिसका कोई आदर्श नहीं है, जो अपने स्वभाव से जीता है--किसी धारणा के अनुसार नहीं; जो किसी तरह का आचरण नहीं बनाता, अपने अंतस से जीता है--उसके जीवन में पाखंड नहीं होता। उसके जीवन में कोई पाखंड कभी नहीं होता। जो स्वाभाविक है वही करता है, पाखंड का सवाल ही नहीं। मगर जो लोग दूसरे का अनुकरण करेंगे वे सब पाखंडी हो जाते हैं।

इसलिये दुनिया में इतना पाखंड है, क्योंकि सारे लोग अनुकरण कर रहे हैं--कोई महावीर का, कोई बुद्ध का, कोई कृष्ण का। ये सब पाखंडी हो जाने वाले हैं।

इसलिये मैं अपने संन्यासी से कहता हूं कि मैं तुम्हारा आदर्श नहीं हूं। मेरे ढंग से जीने की चेष्टा मत करना। मैं नहीं चाहता कि मैं तुम्हारे ऊपर आरोपित हो जाऊं, नहीं तो मुश्किल होगी; नहीं तो कठिनाई में पड़ोगे, पाखंडी हो जाओगे। मैं जैसा जी रहा हूं वह मेरे लिये स्वाभाविक है। मैं किसी को आदर्श मानकर नहीं जी रहा हूं।

यही तो इस देश को अड़चन है कि मैं किसी को आदर्श मानकर नहीं जी रहा हूं, मैं अपने ढंग से जी रहा हूं। देश को अड़चन है कि वे पूछते हैं कि रामकृष्ण परमहंस तो ऐसे जीते थे, आप ऐसे क्यों जी रहे हैं? रामकृष्ण परमहंस अपने स्वभाव से जीते थे, मैं अपने स्वभाव से जी रहा हूं। न तो रामकृष्ण परमहंस को मेरे अनुसार जीने की जरूरत है, न मुझे रामकृष्ण परमहंस के अनुसार जीने की जरूरत है।

वे पूछते हैं कि बुद्ध तो ऐसा जीते थे, आप ऐसा क्यों जी रहे हैं? जैसे बुद्ध ने कोई ठेका ले रखा है कि अब दुनिया में सबको वैसे ही जीना पड़ेगा! तब तो जिंदगी बड़ी उदास हो जायेगी, बड़ी पाखंडी हो जायेगी। बुद्ध बड़े प्यारे हैं, मगर उनकी खूबी यही है कि वे पुनरुक्त नहीं किये जा सकते हैं। कोई उनकी कार्बनकापी नहीं हो सकता है और जो भी होगा वह कुरूप होगा। कार्बन-कापियां सदा कुरूप होती हैं। मौलिक बनो।

आदर्श सीखोगे कहां से? आदर्श सदा दूसरे से सीखोगे और जो भी दूसरे से सीखा गया वह पाखंड पैदा करवायेगा। उसे तुम पूरा कर न सकोगे, क्योंकि तुम्हारे अनुकूल न पड़ेगा, तुम वैसे हो नहीं। तुम तो बस "तुम" जैसे हो। तुम्हारे जैसा न कभी कोई हुआ न कभी होगा कोई। तुम्हें तो सिर्फ अपना स्वभाव जीना है। फिर पाखंड नहीं होगा।

तो तुम पूछते हो मैत्रेय, कि सभी ज्ञानियों ने पाखंड का विरोध किया है... । लेकिन अगर ज्ञानियों ने सिर्फ पाखंड का विरोध किया हो तो वे ज्ञानी नहीं हैं। असली ज्ञानी पाखंड का विरोध तो पीछे करेगा, पहले आदर्श का विरोध करेगा। क्योंकि आदर्श कट जाये तो जड़ कट गई पाखंड की। यही सरहपा और तिलोपा कह रहे हैं।

इसलिये तुम देखते हो, सरहपा और तिलोपा का नाम ही मिट गया है इस देश से। क्योंकि उन्होंने कोई आदर्श नहीं सिखाया उन्होंने स्वतंत्रता सिखायी है, आदर्श नहीं। उन्होंने अंतस जगाया, आचरण नहीं दिया। उन्होंने तुम्हें चरित्र नहीं दिया, उन्होंने तुम्हें बोध दिया। उन्होंने तुम्हें इतना बोध दिया कि तुम अपने अनुसार जी सको और इतना बल दिया कि चाहे लाख अड़चनें हों, तुम अपने ही अनुसार जीना। टूटना हो तो टूट जाना--मगर झुकना मत, अपने ही ढंग से जीना। मिटना पड़े तो मिट जाना, मगर स्वयं रहकर मिटना। अपनी निजता को किसी कीमत पर खोना मत। कोई सौदा मत करना, कोई समझौता मत करना।

इसलिये तो सरहपा-तिलोपा भूल गये; तुलसीदास याद हैं; तुलसीदास कंठस्थ हैं, क्योंकि आदर्श की बात हो रही है और पाखंड का विरोध हो रहा है। और मजा यह है कि आदर्श से पाखंड पैदा होता है।

जब तक दुनिया में आदर्श हैं तब तक दुनिया में पाखंड रहेगा। अगर चाहते हो दुनिया गैर-पाखंडी हो जाये तो आदर्शों को नमस्कार कर लो, विदा कर दो; फिर तुम देखो कोई पाखंड नहीं। तुमने इतनी छोटी-सी बात, इतनी सीधी-साफ गणित की, विज्ञान की बात भी देखी नहीं कभी। तुम तो थोपे ही जाते हो आदर्श।

हर बाप अपने बच्चों पर आदर्श थोप रहा है, हर समाज अपने बच्चों पर आदर्श थोप रहा है, हर पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी पर आदर्श थोप रही है। और फिर जब आदर्श नहीं माना जाता तो दो ही उपाय हैंः या तो वह व्यक्ति अपराधी हो जाता है या पाखंडी हो जाता है। आदर्श न माने तो पाखंडी, दिखाये सिर्फ। और अगर ईमानदार हो तो फिर अपराधी। तुम विकल्प ही नहीं छोड़ते लोगों के लिये, तुमने फांसी लगा दी--या तो अपराधी या पाखंडी।

यह कैसा धर्म है! यह कैसी चिंतन-प्रक्रिया है! तुमने दो ही रास्ते छोड़े हैं लोगों के लिये। तो कुछ अपराधी हो जाते हैं, कुछ पाखंडी हो जाते हैं। दोनों बातें बुरी हैं।

आदर्श से छुटकारा करो। हर बच्चे को क्षमता दो, सहारा दो कि वह स्वयं हो सके। इतनी आत्मा दो कि उसे सारे संसार के विपरीत भी अगर लड़ना पड़े तो लड़े और खड़ा हो अपने बल से, चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। अपनी निजता में जीकर मर जाना लाख गुना बेहतर है--उस जीवन से, जो समझौते पर खड़ा होता है। फिर न तो तुम अपराधी होओगे न तुम पाखंडी होओगे।

इस बात से तुम्हें बहुत बेचैनी होगी क्योंकि तुम तो यही सोचते थे कि आदर्श ज्यादा से त्यादा फैल जायें तो लोग पाखंडी न हों। मैं यह कह रहा हूंः आदर्श जितने फैलेंगे उतने लोग पाखंडी होंगे। दोनों को विदा देना है। कम से कम मेरे संन्यासी को दोनों को विदा देना है।

करो निज की घोषणा। उसी घोषणा में तुम परमात्मा के निकट आने लगोगे, क्योंकि तुम्हारी निजता ही परमात्मा को छिपाए है।

इसी से संबंधित प्रश्न है चौथाः ओशो, यहूदी संत मुरजुत्रा का विचार था कि चेले ऐसे पात्र हैं कि उनमें गुरु का रंग झलकना चाहिये। यदि गुरु की गुरुता के बावजूद शिष्य में अपेक्षित गुण नहीं आये तो उसमें दोष गुरु का है; उसे ही अपना दोषी होना चाहिये।

इससे शिष्य को दंड देने के पहले वह अपने को दंड दे लिया करता था।

कृपा करके संत मुरजुत्रा के इस वचन का आशय हमें कहिये।

मुरजुत्रा मेरी दृष्टि में संत जरा भी नहीं है। मुरजुत्रा लोगों के ऊपर जबरदस्ती कर रहा है, हिंसात्मक है। तुम कहते हो कि "चेले ऐसे पात्र हैं", वह कहता था "कि उनमें गुरु का रंग झलकना चाहिये।" क्यों? गुरु का रंग चेलों में क्यों झलकना चाहिये? गुरु का रंग गुरु का रंग है, चेलों में चेलों का रंग झलकना चाहिये। गुलाब का फूल जूही के फूल में क्यों झलके? चमेली का फूल चंपा के फूल में क्यों झलके? कोई किसी पर क्यों झलके? यह आग्रह तो अहंकार का आग्रह है।

अहंकार चाहता है सारी दुनिया मेरी जैसी हो जाये। और जो मेरे जैसा नहीं है उसे जीने का कोई हक नहीं होना चाहिये।

स्वामी कृष्ण प्रेम और मा मधुरा को मोरारजी देसाई ने कहाः "अगर मेरे बस में होता तो मैं तुम्हारे गुरु के आश्रम को नेस्तनाबूद कर देता।" क्यों? जो मेरे अनुकूल नहीं है, उसे जीने का भी हक नहीं है! यह लोकतंत्र है! ये

लोकतंत्र के दावेदार हैं! "... नेस्तनाबूद कर देता" यह आकांक्षा अहंकार की आकांक्षा है। यह कोई सदगुण नहीं है।

सच्चा गुरु वही है, जो तुम्हें सहारा देगा ताकि तुम्हारा रंग तुम में प्रगट हो, तुम्हारा फूल खिले। सच्चा गुरु वही है जो अपना रंग तुम्हें देगा ही नहीं, तुम चाहो तो भी नहीं देगा। तुम तो चाहोगे, क्योंकि तुम तो हमेशा सदा सस्ती चीज की आकांक्षा में होते हो। तुम तो चाहोगे कि गुरु बता दे आचरण के सूत्र, बस दे दे कोई पांच-सूत्री कार्यक्रम--कि इतने बजे उठ आना, इतनी लंबी चोटी रख लेना, इस तरह का खाना खा लेना, यह प्रार्थना कर लेना, बस बाकी सब हो जायेगा। तुम तो कुछ सस्ता चाहते हो। तुम जीवन को दांव पर लगाना नहीं चाहते।

कोई सच्चा गुरु तुम्हें इतना सस्ता नहीं छोड़ सकता, और कोई सच्चा गुरु तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी नहीं कर सकता। तुम तो चाहते हो किसी की अनुकृति बन जाओ। मगर सच्चा गुरु वही है जो तुम्हें जगायेगा और कहेगा कि तुम स्वयं हो। तुम स्वयं बनो! तुम अपने ही रंग, अपने ही ढंग, अपने ही गीत को गाते हुए परमात्मा की तरफ जाना। तुम अपनी ही आत्मा को निखारो, फिर कौन जाने चमेली पैदा हो, कि जुही पैदा हो, कि रजनीगंधा पैदा हो क्या पता? तुम्हारा रहस्य अभी छिपा है। तुम गुलाब ही हो, यह जरूरी तो नहीं है कि तुम कमल ही हो, यह जरूरी तो नहीं है। तुम्हारा भविष्य क्या लायेगा, इसकी कोई घोषणा नहीं की जा सकती, कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

तुम रहस्य हो, तुम्हारे रहस्य को खराब नहीं करना है। और अगर कोई गुरु अगर तुम्हारे ऊपर अपना रंग चढ़ा दे, तो फिर तुम्हारी आत्मा का रंग कैसे प्रगट होगा, कब प्रगट होगा? गुरु का रंग चढ़ गया, यह तो ऐसे ही हुआ जैसे स्त्रियों ने अपने ओंठों पर लिपस्टिक लगा लिया। उनके अपने ओंठों का रंग फिर प्रगट होगा ही नहीं। ओंठों में लालिमा होनी चाहिये, यह तो समझ आने वाली बात है। मगर लिपस्टिक से रंग लिया! और इस झूठ को भी लोग सौंदर्य समझते हैं।

जरा स्त्रियों की नादानी देखते हो, ओंठों को रंगे चली जा रही हैं बाजारों में और सोचती हैं सुंदर हैं! फूहड़पन है। यह सौंदर्य नहीं है, जड़ता है। और यह जड़ता बढ़ती जा रही है। अब तो पलकों पर झूठे बाल लगाने का उपाय हो गया है। तो आंख की पलकों पर झूठे बाल लगाकर लोग निकल रहे हैं। इस झूठ को तुम जीवन कहते हो! और यही झूठ तुम धर्म की दुनिया में भी ले जाओगे!

मुल्ला नसरुद्दीन ने शादी की। सुहागरात। दोनों बैठे, दोनों चिंतित। कौन शुरुआत करे? मुल्ला ने कहा कि क्षमा कर एक बात अब मैं तुझे बता ही दूं, जो मैंने अभी तक बताई नहीं थी कि मेरे बाल नकली हैं। यह विग लगाये हुए हूं। अब यह बता ही देना ठीक है, क्योंकि अब यह कितनी देर चलेगा! जब तक ऐसे मिलना-जुलना चलता था, सागर के तट पर और फिल्म में और होटल में, तब तक ठीक था कि विग लगाये रहे।

पत्नी तो एकदम प्रसन्न हो गयी, पास आकर उसने मुल्ला का हाथ पकड़ लिया। उसने कहाः तुमने मेरा भार ही उतार दिया। तो अब फिर मैं भी क्यों छिपाऊं!

मुल्ला ने कहाः मतलब?

पत्नी ने कहाः मेरे दांत झूठे हैं। बाल भी झूठे हैं, एक टांग भी झूठी है! अब जब प्रेम ही हो गया, और साथ ही हैं तो सच ही सच बात हो जाये।

ऐसा ही चल रहा है बाहर के जीवन में तो। बाहर के जीवन में चलता हो, ठीक है, चलने दो। लेकिन कम-से-कम अंतस-जीवन में तो ऐसा न चलाओ। जब तुम बुद्ध जैसे बनकर बैठ जाते हो, तो तब तुमने विग लगा

लिया, कि तुम खड़े हो गये बिल्कुल कृष्ण की भांति पैर पर पैर रखकर और बांसुरी लगाकर। तो नाटक वगैरह में, नौटंकी वगैरह में काम करते हो तो ठीक है, मगर जिंदगी में नहीं हो सकेगा यह। जिंदगी सच्ची होनी चाहिये।

मुरजुत्रा को मैं संत मानने को राजी नहीं हूं। मगर मुरजुत्रा को बहुत से लोगों ने संत माना है, जैसे महात्मा गांधी को बहुत-से लोगों ने महात्मा माना है। दोनों एक जैसे आदमी हैं। दोनों की पकड़ एक जैसी है। दोनों की तर्क-सरणी एक है। मुरजुत्रा कहता हैः चेले ऐसे पात्र हैं... । पात्र! जैसे चेलों की कोई आत्मा नहीं है!

"चेले ऐसे पात्र हैं, जिनमें गुरु का रंग झलकना चाहिए।"... क्यों? अगर सदगुरु हो तो शिष्य में सदा ही शिष्य का रंग झलकता है। सिर्फ झूठे गुरु शिष्यों के चेहरे पर रंग-रोगन कर देते हैं। सिर्फ झूठे गुरु उनको अनुकृतियों में बदल देते हैं। सिर्फ झूठे गुरु उनसे कहते हैंः अनुसरण करो। सच्चे गुरु कहते हैंः अपनी आत्मा की तलाश करो। सच्चे गुरु उन्हें व्यक्तित्व देते हैं, मुखौटे नहीं।

मुरजुत्रा कहता हैः चेले ऐसे पात्र हैं कि उनमें गुरु का रंग झलकना चाहिये। यदि गुरु की गुरुता के बावजूद शिष्य में अपेक्षित गुण नहीं आये तो उसमें दोष गुरु का है।

कौन करेगा अपेक्षा गुण की? प्रत्येक व्यक्ति इतना भिन्न है और यहां कोई भी किसी की अपेक्षा पूरी करने को आया नहीं है। प्रत्येक को अपनी अंतरात्मा पूरी करनी है, किसी और की अपेक्षा नहीं। यही तो हमारे जीवन का कष्ट है। पति पत्नी की अपेक्षा पूरी कर रहा है और कष्ट भोग रहा है। पत्नी पति की अपेक्षा पूरी कर रही है और कष्ट भोग रही है, बच्चे मां-बाप की अपेक्षाएं पूरी कर रहे हैं और कष्ट भोग रहे हैं। हरेक दूसरे की अपेक्षाएं पूरी कर रहा है। तुम्हारी आत्मा कब पूरी होगी? मैं एक घर में मेहमान था। एक छोटा बच्चा घर का मेरे पास सुबह-सुबह बैठा था। मैंने उससे पूछाः तेरा बनने का इरादा क्या है?

उसने कहाः मैं पागल हुआ जा रहा हूं।

"पागल हुआ जा रहा है? तुझे हुआ क्या? अभी से पागलपन!"

उसने कहाः इसलिये पागल हुआ जा रहा कि मेरी मां चाहती है कि मैं संगीतज्ञ बनूं, मेरे पिता चाहते हैं कि मैं वैज्ञानिक बनूं, मेरे काका चाहते हैं कि मैं इंजिनियर बनूं, मेरी काकी चाहती है कि मैं डाक्टर बनूं। मैं पागल हुआ जा रहा हूं।

ये सारे लोगों की इतनी अपेक्षाएं, किस-किसकी अपेक्षा पूरी करोगे! और जब सभी की अपेक्षाएं पूरी नहीं होतीं--और सभी की हो भी नहीं सकतीं--तो सभी दुखी हो जाते हैं तुम्हारे चारों तरफ, सभी तुमसे खिन्न हो जाते हैं।

तुम जानते हो, बुद्ध जैसे बेटे को पाकर भी बुद्ध के बाप प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि अपेक्षा पूरी नहीं हुई। अपेक्षा थी कि बुद्ध चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे और बुद्ध बन गये संन्यासी। बुद्ध जैसे बेटे को पाकर भी बाप संतुष्ट नहीं। तब तो समझ लो कि इस जगत में संतुष्ट कोई हो न सकेगा। जीसस को पाकर जीसस के पिता संतुष्ट नहीं थे। क्योंकि जीसस की बगावती बातें पिता को कष्ट देती थीं, ऐसी अपेक्षा न थी।

हम सब अपेक्षाएं थोप रहे हैं। गुरु तो कम से कम ऐसा होना चाहिये जो अपेक्षा न थोपे। यह अपेक्षा थोपने का धंधा तो सारी दुनिया में चल रहा है। यही तो संसार हैः अपेक्षा थोपना। गुरु तुम्हें संसार के बाहर ले जाता है। फिर वहां भी अपेक्षा ही थोपी जायेगी!

"मेरे अनुसार चलो"... मैं कौन हूं? यह मेरा अहंकार है कि तुम मेरे अनुसार चलो। हां, तुम्हें जो प्रीतिकर लगे मुझमें, चुन लो; जो अप्रीतिकर लगे, छोड़ दो। जो तुम्हारे अनुकूल लगे उसे ग्रहण कर लो; जो तुम्हारे अनुकूल न लगे उसे चुपचाप भूल जाओ। लेकिन अंततः तुम्हें होना है तुम्हारे जैसा ही।

सदगुरु के पास अनंत फूल खिलेंगे; उसका प्रत्येक शिष्य एक अनूठी प्रतिभा होगा। झूठे गुरुओं के पास बस कतारें लगी होंगी एक से एक लोगों की--बेरौनक, आत्म-हीन, गौरव-रहित, गरिमा-शून्य।

मुरजुत्रा कहता हैः "यदि गुरु की गुरुता के बावजूद शिष्य में अपेक्षित गुण नहीं आए... ।" सदगुरु अपेक्षा करता ही नहीं है। देता है, अपेक्षा नहीं करता। लुटाता है, प्रत्युत्तर नहीं मांगता। उसके पास प्रेम है, बांटता है; मगर प्रेम के कारण तुम्हें बांधता नहीं है--"कि अब तुम ऐसे ही करना, देखो मैंने तुम्हें इतना प्रेम दिया, अब तुम्हें ऐसा करना ही होगा!" जो ऐसा कहता हो, वह न तो सदगुरु है, न ज्ञानी है, न उसे कुछ अनुभव हुआ है। वह अहंकारी है। वह छुपा हुआ राजनेता है। वह अनुयायी खोज रहा है, शिष्य नहीं।

"और वह कहता था कि अगर ऐसा न हो पाए तो उसमें दोष गुरु का है।" यह भी अहंकार हुआ। अगर तुम मेरे जैसे न बन पाओ तो पहली तो बात, यह अपेक्षा ही गलत थी। फिर तुम न बन पाओ तो इसमें दोष गुरु का हुआ! यह हद हो गई अहंकार की! तुम शिष्य को कुछ भी गौरव दोगे कि नहीं दोगे? इतना भी गौरव नहीं दोगे? ठीक होने का गौरव नहीं दिया, कम-से-कम गैर-ठीक होने का गौरव तो दो--इतनी भी स्वतंत्रता न दोगे? तुमने सारा ठेका ले लिया! तुमने शिष्य के लिये कुछ भी न छोड़ा। जैसे शिष्य की कोई आत्मा ही नहीं है! जैसे शिष्य कैनवास है, तुमने चित्र पोत दिया, अगर ठीक बन गया तो गौरव तुम्हारा, अगर ठीक नहीं बना तो अगौरव तुम्हारा। शिष्य कोई कैनवास तो नहीं है। शिष्य एक आत्मा है। उसके भीतर भी परमात्मा छिपा है। यह कैसा दुर्व्यवहार कर रहे हो?

मगर मुरजुत्रा ऐसा ही दुर्व्यवहार करता रहा। मुरजुत्रा का तो तुम्हें कुछ पता नहीं, लेकिन महात्मा गांधी का भी यही ढंग था, यही सलीका था। अगर आश्रम में किसी शिष्य से भूल हो जाती तो गांधी अपने को दंड देते थे। यह भी खूब मजा है! और भूलें भी क्या... किसी ने चाय पी ली, भूल हो गई! क्योंकि किसी को चाय पीने का हक नहीं है, चाय पाप है! चाय और पाप... तो तुम आदमी को जीने दोगे कि नहीं जीने दोगे? फिर तो जीना ही पाप है। अब ऐसी अपेक्षाएं... और फिर जब ऐसी अपेक्षाएं होती हैं तो समझ लेना कि गुरु नजर रखता है। गुरु क्या, वह एक तरह का जासूस हो जाता है। वह पता लगाए फिरता है कि कौन क्या कर रहा है, किसने चाय पी ली, किसने सिगरेट पी ली, कौन पुरुष किस स्त्री से बात कर रहा है, इस सबका पता रखना पड़ता है उसको। वह तो एक तरह की जासूसी हो गई।

यही धंधा चलता था गांधी जी के आश्रम में। अगर पता चल गया कि कौन स्त्री किस पुरुष से बात कर रही है, फौरन हाजिर करो। किसने चाय पी ली, उसको सामने लाओ। और दंड वे अपने को देंगे कि उन्होंने उपवास कर दिया, कि वे तीन दिन का उपवास करेंगे। अब यह तो किसी को सताने का बड़ा ही जालसाज उपाय हो गया। किसी ने चाय पी ली, तुमने तीन दिन का उपवास किया; उस आदमी का भी तो कुछ सोचो, उसका तुम कितना भयंकर अपमान कर रहे हो! और उसे तुम कितनी ग्लानि में डाल रहे हो! पूरा आश्रम उसकी तरफ देखेगा कि ये चले जा रहे हैं सज्जन, गुरुदेव इनके पीछे तीन दिन से भूखे हैं। और इन्होंने क्या किया, जरा-सी चाय के पीछे देखो महात्मा को कष्ट दे रहा है यह आदमी!

तुम जरा उसकी हालत तो सोचो, वह निंदा का पात्र हो गया। वह सब तरफ नजरें उस पर उठेंगी, अंगुलियां उस पर उठेंगी। यह तो हिंसा है। और अच्छा होता कि तुमने उसे एक चांटा मार दिया होता, कम-सेे-कम उसका सम्मान तो होता, बात खतम हो जाती। तुमने चांटा अपने को मारा, उसको इतना भी सम्मान न दिया! और चांटा अपने को मारकर तुमने उसकी ऐसी अपमानित दशा कर दी कि वह अब कीड़े-मकोड़े जैसे

अनुभव करेगा कि एक मैं हूं कि जरा-सी चाय का स्वाद न रोक सका और एक मेरे गुरु हैं कि तीन दिन का उपवास कर रहे हैं। मैं कीड़ा, मैं पापी, वे महात्मा! तुमने उसको कीड़ा बना दिया।

ये सदगुरुओं के लक्षण नहीं हैं। सदगुरु तो कीड़ों में भी परमात्मा को जगाते हैं। ये तो असदगुरुओं के लक्षण हैं कि तुम्हारे आत्मवान व्यक्तित्व को इतना दीन-हीन और छोटा कर देते हैं, इतना अपमानित, इतना ग्लानिपूर्ण कि तुम कीड़े-मकोड़े हो जाते हो।

उसे सदगुरु जानना जिसके पास बैठकर तुम गौरवान्वित होओ; जिसके पास बैठकर तुम्हारे भीतर जिन आकाशों को तुमने कभी नहीं देखा है वे आकाश दिखाई पड़ने लगें। उसके पास बैठकर सदगुरु जानना, जिसके पास बैठकर तुम्हारी महानता का तुम्हें बोध हो, तुम्हारी असीमता का तुम्हें स्मरण आए, तुम्हारे परमात्मा की सुधि जगे।

मगर ये इस तरह के लोग... मुरजुत्रा या महात्मा गांधी... सदगुरु नहीं हैं। ये बहुत चालबाज राजनीतिज्ञ हैं। ये जानते हैं कैसेे आदमी की गर्दन कसी जाए, कैसे उसे दबाया जाए; कैसे उसे परेशान किया जाए और कैसे उसे जोर-जबरदस्ती से पीछे चलाया जाए।

गांधी जी के आश्रम में अगर किसी युवक और युवती का प्रेम हो जाए तो महा दुर्घटना घट गई! जैसे प्रेम कोई अस्वाभाविक घटना है! और फिर जानते हो, वे शादी भी करवाएंगे, तो शादी के पहले कई शर्तें हैं। पहली तो यह शर्त है कि दो साल अब किसी से बोलना मत, मिलना-जुलना मत, यह पहली शर्त पूरी करो, तब शादी होगी, ताकि प्रमाण दो कि सच में तुम्हारा प्रेम है। अब दो साल उनको यातना में डाल दिया कि मिल नहीं सकते, बोल नहीं सकते, पत्र नहीं लिख सकते। और अब जासूसी चलेगी, क्योंकि अगर दो साल कोई पत्र लिख दे या कहीं से मिल ले मौके-बे-मौके एक-दूसरे की तरफ देख लें या सभा में सत्संग में साथ-साथ बैठ जाएं, एक-दूसरे को छू लें, कुछ हो जाए, तो अब यह जासूसी चलेगी। दो साल का प्रमाण दो। और दो साल का अगर प्रमाण दे दिया तो गांधी विवाह भी करवा देंगे और विवाह के बाद विवाह का आशीर्वाद देते समय यह कसम भी दिलवा देंगे कि अब जीवन-भर का ब्रह्मचर्य-व्रत ले लो। तुम सोचते हो यह पागलपन। और अब हजारों लोगों के सामने अब उन दोनों को फंसा दिया, अब वे आए थे आशीर्वाद लेने, आशीर्वाद दिया और कहा कि अब यही मेरा आशीर्वाद है कि अब दोनों कसम खा लो कि अब जीवन-भर, आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करेंगे। ... तो महाराज इनकी शादी ही काहे के लिए करवायी? अब यह और मुश्किल हो गई। भोजन सामने रखा हो और तुम बैठे रहो उपवास किए, तो यह भोजन की थाली ही किसलिए रखी है?

मैं विनाबा के एक आश्रम में मेहमान था। तो वहां एक युवती ने आकर मुझे कहा कि मैं पागल हो जाऊंगी। विनोबा जी ने मेरी शादी तो करवा दी है, मगर आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवा दिया हम दोेनों को। अब हालत इतनी बिगड़ती जा रही है कि हम विक्षिप्त हुए जा रहे हैं। इससे तो अच्छा था शादी ही न होती। हम एक कमरे में सो भी नहीं सकते, क्योंकि, उसकी आज्ञा नहीं है। तो मेरे पति दूसरे कमरे में सोते हैं, मैं एक कमरे में सोती हूं। और इसमें भी खतरा है, क्योंकि वासना का वेग उठ जाए! कसम खा ली है जीवन-भर ब्रह्मचर्य की। और कहीं हम उठकर एक-दूसरे के कमरे में रात चले जाएं... ।

तो मैंने कहाः फिर क्या उपाय किया है? तो उपाय उन्होंने कहा कि बताया गया है यह कि मैं ताला लगा लेती हूं अपनी तरफ से और चाबी उस तरफ फेंक देती हूं। चाबी पति के कमरे में रहती है। सो वह खोल सकता नहीं, क्योंकि ताला वहां नहीं है। ताला मेरे कमरे में रहता है, मैं खोल सकती नहीं, क्योंकि चाबी नहीं है।

अब यह तुम देख रहे हो, दो व्यक्तियों को सताने का कोई और इससे आसान उपाय हो सकता है! और जिनको इतने इंतजाम करने पड़ रहे हैं कि ताला लगाकर चाबी उस तरफ फेंकनी पड़ रही है, ये रात सो सकते होंगे? मैंने उस युवती को कहा कि अगर विनोबा जी ने... अगर एक बाबा ने तुम्हें यह उपद्रव दे दिया, तो मैं दूसरा बाबा... तुम्हें इस उपद्रव से छुटकारा देता हूं। तुम ताला-चाबी दोनों मुझे भेंट कर जाओ और मैं तुम्हें आजीवन प्रेमपूर्ण जीवन रहने की शिक्षा देता हूं। फिर उसी प्रेम में से अगर ब्रह्मचर्य निकल आए जो निकल आए, तो शुभ है। मगर यह कोई ब्रह्मचर्य होगा? यह विक्षिप्तता है।

मगर बड़ी अड़चनें हैं। अगर गुरु अपने को सताने लगे तो शिष्य को पीड़ा बहुत होती है कि मेरे कारण गुरु अपने को सता रहा है; तो अब जो भी कहता है, मान लो। ठीक है कि गलत, यह भी फिकिर करने की गुंजाइश नहीं रह जाती। आखिर शिष्य गुरु को प्रेम करता है, इसलिए तो गुरु के पास आया है। तो उसका प्रेम ही उसको कहता है कि ठीक है अब चलो इतना भी मान लो।

यह मुरजुत्रा कहता है कि उसे अपने को ही दोषी मानना चाहिए। इससे शिष्य को दंड देने के पहले वह अपने को दंड दे लिया करता था। यह हिंसात्मक वृत्ति है। यह सदगुरुओं का लक्षण नहीं है, अज्ञानियों का लक्षण है। यह खुद भी परेशान रहा होगा, यह दूसरों को परेशान कर रहा है। इसे खुद भी कुछ अनुभव नहीं हुआ। इसके पास किसी को कोई अनुभव नहीं हो सकता है।

मेरे पास तुम जो आए हो, मैं तुम्हें सम्मान देता हूं, इसलिए तुम्हें आचरण नहीं देता। तुम्हारा मेरे मन में इतना मूल्य है जितना कि परमात्मा का, उससे जरा भी कम नहीं। इसलिए मैं तुम्हें कोई आदर्श नहीं देता। और मैं तुमसे कहता हूंः तुम अपने मालिक हो। भूल करनी हो तो भूल करना, ठीक करना हो तो ठीक करना। न तो मैं अपने को दंड दूंगा तुम्हारे कारण, न तुम्हें पीड़ा दूंगा। भूल करोगे, उसी में तुम्हें दंड मिलेगा। वही दंड काफी है। भूल करोगे, उससे तुम्हें पीड़ा होगी, वही पीड़ा काफी है जगाने को। अगर वह काफी नहीं है तो फिर कोई और चीज तुम्हें जगा नहीं सकती। और ठीक करोगे तो आनंद होगा; वही पुरस्कार पर्याप्त है। अगर वह पुरस्कार तुम्हारे चित्त को हर्ष और उल्लास से नहीं भरता तो फिर इस जगत का कोई पुरस्कार तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता है।

मैं तुम्हें परिपूर्ण स्वतंत्रता देता हूं। मेरा संन्यासी एक स्वतंत्र व्यक्ति है। उसकी अपनी निजता है। उसकी निजता पर मेरी तरफ से कोई आरोपण नहीं है।

मैं अपना हृदय खोलकर तुम्हारे सामने रख देता हूं; कुछ तुम्हें प्रीतिकर लगे चुन लेना, तुम्हें प्रीतिकर न लगे मत चुनना। नहीं चुना तो तुम मुझे नाराज नहीं कर रहे हो। चुन लिया तो तुम मुझे प्रसन्न नहीं कर रहे हो। मेरा आनंद है तुम्हें दे देना। तुम्हारा आनंद है उसमें से अपने काम की बात चुन लेना।

और फिर तुम्हें अपने ढंग से चलना है, अपने ढंग से जीना है। क्योंकि तुम्हें वही होना है जो तुम होने को पैदा हुए हो। तुम्हें परमात्मा के सामने उत्तर देना पड़ेगा कि तुम तुम हुए या नहीं। बस एक ही उत्तर देना पड़ेगा कि तुम प्रामाणिक रूप से अपनी आत्मा के विकास को, खिलाव को उपलब्ध हो गए थे? तुम्हारा फूल खिला या नहीं? परमात्मा तुमसे यह नहीं पूछेगा कि तुमने किसी और का अनुकरण किया कि नहीं? परमात्मा पूछेगाः तुम जुही थे, जुही हुए? गुलाब थे, गुलाब हुए? कमल थे, कमल हुए?

इतनी ही मेरी तुमसे प्रार्थना है कि तुम जो हो--जुही, कमल, गुलाब, केतकी--वही हो जाना, क्योंकि वही होकर तुम परमात्मा के चरणों में चढ़ जाते हो।

वही है अर्चना। वही है प्रार्थना।

आज इतना ही।

सोलहवां प्रवचन

भोग में योग, योग में भोग

जिम विस भक्खइ विसहि पलुत्ता।
तिम भव भुज्जइ भवहि ण जुत्ता।। 7।।

परम आणन्द भेउ जो जाणइ।
खणहि सोवि सहज बुज्झइ।। 8।।

गुण दोस रहिअ एहु परमत्थ।
सह संवेअण केवि णस्थ।। 9।।

चित्ताचित्त विवज्जहु ण णित्त।
सहज सरूएं करहु रे थित्त।। 10।।

आवइ जाइ कहवि ण णइ।
गुरु उपएसें हिअहि समाइ।। 11।।

हउ सुण जुग सुण तिहुअण सुण।
णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण।। 12।।

लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

अन्तर में संघर्ष छिपाए,
तेरा जीवन जलता होगा!
हासों में छिप क्रन्दन तेरा,
भोले जग को छलता होगा!
पर अनजाने में तो तेरी,
अंखियां भी भर आती होंगी!
लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी!

जग की खुशियों पर न्योछावर,

होंगी कब तक तेरी चाहें!
पलकों के डोरों से कब तक,
नापेगा जीवन की राहें?
सोच रही हूं, बुझती कितनी--
यों ही जीवन-बाती होंगी!
लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

जागृति का संदेश लिये जब,
लेती होगी वायु हिलोरें!
ऊषा की आभा से रक्तिम,
होती होंगी नभ की कोरें!
जग के आंगन में जब चिड़ियां,
गाती मधुर प्रभाती होंगी!
लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

मनुष्य भी बंद है--लोहे की दीवारों में नहीं, लोहे से भी ज्यादा संघातक चित्त की दीवारों में, विचार की दीवारों में। ऊपर से कितने ही तुम स्वतंत्र मालूम पड़ो, लेकिन तुम्हारे पंख काट दिए गए। उड़ तुम सकते नहीं। आकाश तुम्हारा तुमसे छीन लिया गया है और ऐसे सुंदर शब्दों की आड़ में छीना गया है कि तुम्हें याद भी नहीं आती। तुम्हारी जंजीरों को तुम्हारा आभूषण बना दिया गया है। तुम्हारे कारागृह, समझाया गया है कि तुम्हारे मंदिर हैं। और जिनके बोझ से तुम दबे जा रहे हो, बताया गया है वह ज्ञान है, शास्त्र हैं, सिद्धांत हैं।

यह सारा विराट आकाश तुम्हारा है मगर जीते हो तुम बड़े संकीर्ण आंगन में-- हिंदू का आंगन, ईसाई का, मुसलमान का, जैन का। संकीर्ण आंगन हैं। छोटे-छोटे आंगन हैं। परमात्मा में जिसे जीना हो उसे सब जंजीरें तोड़ देनी पड़ती हैं; फिर वे जंजीरें चाहे सोने की ही क्यों न हों।

और ध्यान रखना, लोहे की जंजीरें तोड़ना आसान है, सोने की जंजीरें तोड़ना कठिन है, क्योंकि सोने की जंजीरें प्रीतिकर मालूम होती हैं, बहुमूल्य मालूम होती हैं। आदमी बचा लेना चाहता है सोने की जंजीरों को। और जंजीरों के पीछे सुरक्षा छिपी है। जो पक्षी तुम्हें पींजड़े में बंद मालूम होता है, तुम अगर पींजड़े का द्वार भी खोल दो तो शायद न उड़े। क्योंकि एक तो न मालूम कितने समय से पींजड़े के भीतर बंद रहा है, उड़ने की क्षमता खो चुका होगा। क्षमता भी न खोई हो तो विराट आकाश भयभीत करेगा। क्षुद्र में रहने का संस्कार विराट में जाने से रोकेगा। पंख फड़फड़ाएंगे भी तो आत्मा कमजोर मालूम होगी, आत्मा कायर मालूम होगी।

फिर, पींजड़े की सुरक्षा भी है। भोजन समय पर मिल जाता है, नियत मिल जाता है, खोजना नहीं पड़ता। कभी ऐसा नहीं होता कि भूखा रह जाना पड़े। खुला आकाश, माना कि सुंदर है और वृक्ष हरे हैं और फूल रंगीन हैं और उड़ने का आनंद, सब ठीक, लेकिन भोजन समय पर मिलेगा या नहीं मिलेगा? किसी दिन मिले, किसी दिन न मिले! असुरक्षा है। फिर खतरा भी है। पींजड़े में बंद, कोई हमला तो नहीं कर सकता। पींजड़े में बंद बाहर की दुनिया भीतर तो प्रवेश नहीं कर सकती। पींजड़े के बाहर शत्रु भी होंगे, बाज भी होंगे, हमला भी हो सकता

है, जीवन संकट में हो सकता है। पींजड़े में सुरक्षा है, सुविधा है। आकाश असुरक्षित है, असुविधापूर्ण है। तुम द्वार भी खोल दो पींजड़े का तो जरूरी नहीं कि पक्षी उड़ जाए।

मैंने तुम्हारे द्वार खोले हैं, मगर जरूरी नहीं कि तुम उड़ो। सच तो यह है जो तुम्हारा द्वार खोलता है उससे तुम नाराज हो जाते हो, क्योंकि तुम्हारे लिए द्वार खुलने का अर्थ होता हैः बाहर से शत्रु के आने के लिए भी द्वार खुल गया। तुमने अपनी एक छोटी-सी दुनिया बना ली है। तुम उस छोटी-सी दुनिया में मस्त मालूम होते हो। कौन विराट की झंझट ले!

इसलिए लोग मंदिरों में परमात्मा को खोजते हैं, जबकि परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। मंदिर छोटा-छोटा आंगन, छोटे-छोटे पींजड़े... । परमात्मा को लोग शास्त्रों में खोजते हैं, जबकि परमात्मा चारों तरफ जीवंत है! उसी का सागर लहरा रहा है। परमात्मा के संबंध में लोग दूसरों से पूछते हैं, जबकि परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है!

यही सहज-योग की घोषणा है। तुम परमात्मा हो, रत्तीभर कम नहीं। लेकिन जरा अपनी स्वतंत्रता को स्वीकार करो। और मजा यह है कि पक्षियों पर तो पींजड़े दूसरे लोगों ने बनाए हैं, तुम्हारा पींजड़ा तुम खुद ही बना लिए हो। पक्षी को तो शायद किसी और ने बंद कर रखा है; तुमने खुद ही अपने को बंद कर लिया है। क्योंकि तुम्हारा पींजड़ा ऐसा है, तुम जिस क्षण तोड़ना चाहो टूट सकता है।

सहज का अर्थ होता हैः जहां चेतना परिपूर्ण स्वाभाविक हो गई, सारे बंधन गिर गए, सारी जंजीरें गिर गईं। जंजीरें सूक्ष्म हैं, दिखाई पड़ने वाली नहीं हैं। लेकिन हैं जरूर। हर आदमी बंधा है। और जब भी कोई व्यक्ति यहां बंधन के बाहर हो जाता है तो बुद्ध हो जाता है, महावीर हो जाता है, मुहम्मद हो जाता है, जीसस हो जाता है, सरहपा और तिलोपा हो जाता है।

स्मरण करो, अपनी क्षमता को स्मरण करो। तुम भी यही होने को हो। इससे कम मत होना। होना हो तो ईसा होना, ईसाई मत होना, ईसाई होना बहुत कम होना है। जब ईसा हो सकते हो तो क्यों ईसाई होने से तृप्त हो जाओ? और जब महावीर हो सकते हो तो जैन होने से राजी होना बड़े सस्ते में अपनी जिंदगी बेच देना है।

मैं तुम्हें चाहता हूं बुद्ध बनो, उससे कम नहीं। उससे कम अपमानजनक है। उससे कम परमात्मा का सम्मान नहीं है। क्योंकि तुम्हारे भीतर परमात्मा बैठा है और तुम छोटी-छोटी चीजों में होकर छोटे-छोटे होकर उलझ गए हो। और अगर कोई तुम्हें तुम्हारी उलझन से बाहर निकालना चाहे तो तुम नाराज होते हो, तुम क्रोधित हो जाते हो। तुमने बड़ा मूल्य दे दिया है क्षुद्र बातों को। मूल्य तो सिर्फ एक बात का है--समाधि का। और सब निर्मूल्य है। उसी समाधि के ये सूत्र हैं।

अब तो बहुत थक गये, प्राण;
इधर-उधर, नित कुछ न कुछ खोजते फिरते बहुत हुए हैरान,
अब तो बहुत थक गये, प्राण।

पांव थके, हिय थका, जिय थका, लोचन थके, थके अंग-अंग
आशा थकी, प्रतीक्षा हारी, थकी कल्पना--अथक उड़ान,
अब तो बहुत थक गये, प्राण।

अन्वेषणमय अष्ट याम की परिक्रमा है श्रांत नितांत,

दरसन-प्यास बढ़ी अधिकाधिक ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी थकान,
अब तो बहुत थक गये, प्राण।

नीरस, अति निष्फल यह जीवन, हृदय-रिक्त, मन निपट अशान्त,
केवल व्यर्थ प्रयोगों में ही बीते जीवन क्षण सुनसान,
अब तो बहुत थक गये, प्राण।

गत जीवन पर डाल रहे हैं, अब हम हसरत भरी निगाह,
क्या से क्या हो जाते गर हम, यूं से यूं चलते अनजान,
अब तो बहुत थक गये, प्राण।

गत कृत अभ्यासों के बंधन हुए बहुत ही हैं मजबूत,
प्रीतम, कठिन दीख पड़ता है इस गति से पाना निर्वाण,
अब तो बहुत थक गये, प्राण।

खेल-खेल में तुम मन-मौजी, गर हमको दो झटका एक,
तो बस, उस इकटल्ले से ही हो जाये जीवन-कल्याण,
अब तो बहुत थक गये, प्राण।

जरा देखो गौर से अपने भीतर, कितने थक गए हो! कितने हताश-उदास हो गए हो! कितना बोझ लिए चल रहे हो! कितनी ऊब है तुम्हारे भीतर! तुम्हारे भीतर ऊब ही ऊब है। जीए जाते हो, क्योंकि जीना है। मगर कहां है जीवन का स्पंदन? कहां है जीवन का नृत्य? कहां है जीवन का उत्सव? बांसुरी तो बजती नहीं। वीणा पर तो टंकार उठती नहीं। मृदंग पर तो कोई थाप पड़ती नहीं। कहीं कोई मधुमयता नहीं है, कहीं कोई रसधार नहीं दिखाई पड़ती।

इसे जीवन कहते हैं तो फिर मृत्यु क्या है? इसे जीवन कहते हैं तो फिर जीवन दो कौड़ी का है! जीवन हो सकता था, हो नहीं पाया। तुम चाल ही न चले ऐसी कि जीवन हो जाता। तुम चाल ऐसी चले कि रोज-रोज संकीर्ण होते गए, रोज-रोज सिकुड़ते गए। तुम फैले नहीं, विस्तीर्ण न हुए।

"ब्रह्म" शब्द का अर्थ होता हैः विस्तार। जो फैलता ही चला जाए, जो सब सीमाओं का उल्लंघन कर दे, जो अतिक्रमण कर दे सारी मर्यादाओं का--वही ब्रह्म को उपलब्ध हो पाता है।

सहज-योग एक महाक्रांति है। इसे समझो तो द्वार खुल जाए परम अनुभूति का। इसे समझो तो तुम्हारा जीवन भी कृतार्थ हो।

एक-एक शब्द को गौर से समझना, क्योंकि तिलोपा ने बहुत शब्द नहीं कहे, थोड़े से शब्द हैं। मगर एक-एक शब्द पर्याप्त है तुम्हें मुक्त करने को।

जिम विस भक्खइ विसहि पलुत्ता। तिम भव भुज्जइ भवहि ण जुत्ता।।

"जिस प्रकार विष का शोधक विष खाकर भी मरता नहीं है, उसी प्रकार योगी सांसारिक विषयों को भोगता हुआ भी संसार के बंधनों में नहीं पड़ता।"

सुनो यह घोषणा। यह भगो.ड़ों की घोषणा नहीं है। यह संन्यास का पलायनवादी रूप नहीं है। यह संन्यास की आत्यंतिक रूप से विधायक धारणा है। तिलोपा कहते हैं कि जो विष का जानकार है वह विष को भी औषधि में बदल देता है। और जब तक तुम विष को औषधि में न बदल सको तब तक समझना तुम्हारे भीतर ज्ञान की किरण ही पैदा न हुई। तब तक समझना तुम्हारी बुद्धिमत्ता न जागी। तब तक तुम बुद्धू हो, तुम बुद्ध न हुए। जिस दिन जीवन के जहर को भी अमृतमय बनाने की कला आ जाती है, जो उस रसायन को जान लेता है वही योगी है।

योगी भगोड़ा नहीं हो सकता। भगोड़ा तो कायर होता है। भगोड़े का अर्थ तो यह है कि जहर देखकर जहर को छोड़कर भाग खड़े हुए। यह तो चुनौती का अस्वीकार हो गया। यह तो पीठ दिखा दी। यह तो जीवन के रण-क्षेत्र से कायर की तरह पूंछ दबाकर भाग गए। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं कि तू सहज-योगी होना, छोड़ना मत, भागना मत। जिंदगी में जो भी परमात्मा ने दिया है वह सभी रूपांतरित हो सकता है अमृत में। ठीक दुकान पर बैठे-बैठे मंदिर का आगमन हो सकता है। और मजा तो तभी है जब तुम्हें मंदिर न जाना पड़े और मंदिर तुम्हारे पास आए। रस तो तभी है जब तुम्हें हिमालय न जाना पड़े, तुम्हारे भीतर हिमालय उमगे; तुम्हारी अंतरात्मा हिमालय जैसी शांत और हरी-भरी हो जाए; तुम्हारी अंतरात्मा में झरने फूटें। हिमालय पर जाकर बैठ गए, जरूर थोड़ी शांति मालूम पड़ेगी, क्योंकि बाजार का शोरगुल न होगा। लेकिन वह शांति तुम्हारी नहीं है, याद रखना। एक क्षण को भी भूलना मत। वह शांति हिमालय की है।

ऐसे ही समझना कि दर्पण के सामने एक सुंदर व्यक्ति आकर खड़ा हो गया और दर्पण सोचने लगे कि मैं सुंदर हो गया! ... सुंदर व्यक्ति के हटते ही दर्पण वही का वही रह जाएगा, जैसा था, टेढ़ा-मेढ़ा, गंदा-कुरूप। सुंदर व्यक्ति की छाया बन गई थी। छाया पर भरोसा मत कर लेना। छाया माया है। छाया आत्मा नहीं है।

तुम हिमालय गए, एकांत में बैठ गए, हिमालय का सन्नाटा--कुंआरा सन्नाटा! शांत हवाएं, धूल रहित! हरे वृक्ष, उनकी आकाश को छूने की उमंग! हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर सूरज से बरसता हुआ सोना, कि पूर्णिमा की रात में चारों तरफ चांदनी का फैलाव! तुम अभिभूत हो गए। तुम्हें लगा, लगा ध्यान। तुमने समझा कि बनी समाधि, पकी समाधि। और जब उतरकर आओगे वापस मैदान में, सब खो जाएगा। कुछ भी हाथ न लगेगा। छाया थी। छाया ने भ्रम में डाल दिया।

तिलोपा कहते हैंः जो जानता है वह अमृत की तलाश में नहीं जाता; वह तो जहर को अमृत बना लेता है। जहर है ही नहीं, अमृत ही है, सिर्फ जरा तलाश की बात है। परमात्मा ने संसार बनाया ही नहीं है, परमात्मा ही है, जरा तलाश की बात है। संसार तो ऊपर-ऊपर है, बाहर-बाहर है; भीतर-भीतर परमात्मा है।

जरा खोदो, थोड़ी मिट्टी की पर्तों को हटाओ--और जलस्रोत मिल जाएंगे! अपनी पत्नी में ही थोड़ा खोदो और परमात्मा मिल जाएगा। अपने पति में थोड़ा खोदो और परमात्मा मिल जाएगा। अपने बच्चे में थोड़ा खोदो और परमात्मा मिल जाएगा। दुकान पर बैठे-बैठे, थोड़े शांत होने की कला सीखो और परमात्मा मिल जाएगा।

यह संसार जहर उनके लिए है, जो मूढ़ हैं। यह संसार अमृत है उनके लिए, जो बुद्धिमान हैं। संसार न तो जहर है न अमृत, सब तुम पर निर्भर है।

जिम विस भक्खइ विसहि पलुत्ता।

जो जानकार है वह विष को भी पी जाए तो हानि नहीं होती। वह विष को पीने की कला जानता है। जो जानकार है वह जीवन के सारे विष पी जाता है--अहंकार, क्रोध, लोभ, माया, मोह, सब पी जाता है। और मजा यह है कि इन सबको पीकर समृद्ध हो जाता है।

समझो थोड़ा, अगर तुमने क्रोध को काट दिया, पी न सके, तो तुम्हारे जीवन में करुणा कभी पैदा न होगी। अगर क्रोध को काट दिया तो करुणा पैदा न होगी।

ऐसा समझो, थोड़ा और स्थूल उदाहरण लो। तुम्हारे पैर तुम्हें वेश्यागृह में ले जाते हैं, तुमने पैर काट दिए, क्योंकि पैर न होंगे तो वेश्यागृह कैसे जाओगे? न होंगे पैर, न जाना पड़ेगा वेश्यागृह। तुमने पैर काट दिए, लेकिन अब मंदिर कैसे जाओगे? अब तीर्थयात्रा कैसे होगी? तुमने पैर तो काट दिए वेश्यागृह जानेवाले लेकिन पैरों का कोई ठेका थोड़े ही था वेश्यागृह जाने का। तुम ले जाते थे सो जाते थे। तुम मंदिर ले जाते तो मंदिर जाते। तुम काशी ले जाते तो काशी जाते। तुम काबा ले जाते तो काबा जाते। तुम जहां ले जाते वहां जाते। पैर काटकर तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। अब तो तीर्थयात्रा हो ही न सकेगी।

तुम्हारे मुंह से क्रोध निकलता था, गालियां निकलती थीं, तुमने जबान काट दी। लेकिन अब अमृत-वचन भी पैदा न हो सकेंगे, अब गीत भी न गा सकोगे, अब गुनगुना भी न सकोगे।

आंखें रूप पर मोहित हो जाती थीं, तुमने आंखें फोड़ दीं। लेकिन अब जब गुलाब में परमात्मा खिलेगा तो तुम वंचित रहोगे। और जब कमल पर उसके चरण-चिह्न होंगे, तुम वंचित रहोगे। और जब आकाश में सूरज उगेगा, तुम वंचित रहोगे। और इन सभी रूपों में वही प्रगट हो रहा है। तुमने बड़ी भूल कर ली। आंख का कोई कसूर न था। आंख तो निष्पक्ष है। तुम जो देखना चाहते वही देख लेते।

मगर यही हो रहा है। लोग क्रोध को दबा देते हैं, काट देते हैं; लोभ को दबा देते हैं, काट देते हैं। परिणाम क्या होता है? परिणाम ऐसा होता है, तुम अगर गौर से देखो तो तुम्हें अपने महात्माओं में दिखाई पड़ जाएगा। जिसने क्रोध को दबाया, काटा, नष्ट किया, उसके जीवन में करुणा पैदा नहीं होती, क्योंकि करुणा क्रोध का ही रूपांतरण है। करुणा क्रोध नाम के जहर का ही अमृत में रूपांतरण है। और जिसने लोभ काट दिया उसके जीवन से दान कट जाता है, क्योंकि दान तो लोभ की ही परिष्कृत अवस्था है। और जिसने काम काट दिया उसके जीवन से राम विदा हो जाता है, क्योंकि काम-ऊर्जा का ही ऊर्ध्वगमन, सहस्रार में प्रवेश राम का अनुभव है। जब काम की गंगा गंगोत्री की तरफ बहने लगती है तो राम का अनुभव होता है; जब कोई स्रोत की तरफ लौट चलता है। हां, काम की ऊर्जा बाहर की तरफ बहती थी तो राम का अनुभव नहीं होता। काम की ऊर्जा भीतर की तरफ बहने लगे, अंतर्यात्रा हो, तो राम का अनुभव होगा।

काम ने तुम्हें जरूर बहुत झंझटों में डाला है, यह सच है। न मालूम कितनी उलझनों में पड़ गए हो, काम के कारण! कामवासना ही तुम्हें भटका रही है जन्मों-जन्मों से। मगर याद रखना, यह कसूर काम की ऊर्जा का नहीं है। तुम समझ नहीं पाए। तुम जहर का राज नहीं समझ पाए। तुम इस काम की ऊर्जा का रूपांतरण करने की कीमिया नहीं समझ पाए। तुम कलाविद नहीं हो। काम ने नहीं भटकाया है, तुम्हारी नासमझी ने भटकाया है। तुम्हारी बेहोशी ने भटकाया है। होश होता, तब तो काम की ही सीढ़ियां बना लेते।

काम की ही ऊर्जा से ही कोई परमात्मा को उपलब्ध होता है। यह जानकर तुम्हें हैरानी होगी कि पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में कोई नपुंसक समाधि को उपलब्ध नहीं हो सका है। क्यों? नपुंसक को तो सबसे पहले समाधि को उपलब्ध हो जाना चाहिए। उसमें तो काम-ऊर्जा है ही नहीं। लेकिन काम-ऊर्जा नहीं है तो सोपान नहीं बनता, सीढ़ी नहीं लगती। नाव किससे बनाए? कैसे राम की तरफ चले? बाहर ही नहीं जा सकता तो भीतर कैसे जाए? जाने की क्षमता ही नहीं है कहीं, अटका रह जाता है। इसलिए नपुंसक बड़ी दयनीय अवस्था में है।

और कौन लोग नपुंसक की तरह पैदा होते हैं, कभी तुमने इस पर विचार किया है? मैं कहूंगा तो तुम चौंकोगे। जिन लोगों ने भी पिछले जन्मों में कामवासना को जबर्दस्ती दबाया है, तोड़ा है, मरोड़ा है, वे ही लोग नपुंसक की तरह पैदा होते हैं। तुम्हारे तथाकथित ब्रह्मचारी नपुंसक की तरह पैदा होते हैं, क्योंकि वही उनकी इच्छा थी। वही उन्होंने पिछले जन्मों में बार-बार करने की कोशिश की थी। सफल हो गई इच्छा, उनकी कामना पूरी हो गई। जो मांगा था मिल गया। अब रोते हैं। अब परेशान हो रहे हैं।

तुम जरा सोचो, एक बच्चा पैदा हो जिसमें भय न हो, जी सकेगा बच्चा? जी नहीं सकेगा। उसमें अगर भय न हो तो तुम सोचते हो, उसके जीवन में अभय होगा? जिसमें भय ही नहीं है उसमें अभय तो हो ही नहीं सकता। अभय की तो बात छोड़ दो, जीवन ही नहीं बचेगा; आग में हाथ डाल देगा, भय नहीं है उसे, जल जाएगा। सांप को पकड़ लेगा, सांप काट खाएगा, जल जाएगा। रास्ते पर ट्रक का ड्राइवर हार्न बजाता रहेगा, वह बैठा ही रहेगा; उसे कोई भय ही नहीं है। लेकिन इसको तुम बुद्धिमता कहोगे? यह तो बुद्धिहीनता हो गई।

भय आवश्यक है। और भय में ही छिपा हुआ है अभय। जो भय की पर्त को तोड़ देगा, जो भय को शुद्ध कर लेगा, उसके भीतर अभय की धारा पैदा होती है।

स्मरण रखो, तुम्हारे भीतर जो भी हो, काटना मत, त्यागना मत--परिष्कार करना, संशोधन करना। तिलोपा कहते हैंः जिस प्रकार विष का संशोधक विष खाकर भी मरता नहीं, ऐसे तुम संशोधक बनो। तुम जीवन की हर ऊर्जा का संशोधन करो।

विज्ञान ने यही किया है--बाहर के जगत में। धर्म को यही करना चाहिए--भीतर के जगत में। विज्ञान ने क्या किया? कोई नई शक्तियां तो विज्ञान ने पैदा नहीं कर दी हैं; जो शक्तियां मौजूद थीं, उनका संशोधन किया है। आकाश में बिजली तो कब से चमकती थी, सदा से चमकती है। लेकिन जब अतीत में आज से पांच हजार साल पहले ऋग्वेद के जमाने में चमकती थी तो लोग भयभीत हो जाते थे, भयाक्रांत हो जाते थे, छाती दहल जाती थी। उसी भय से उन्होंने सोचा था इंद्र देवता नाराज हैं। सोचते थे कि बिजली इंद्र देवता का धनुष है। बिजली की टंकार धनुष की टंकार है। देवता नाराज है। देवता की पूजा करो, प्रार्थना करो, अर्चना करो, बली चढ़ाओ, हवन-यज्ञ करो--ताकि देवता शांत हो जाए, कुपित न हो।

अब तुमने कभी सोचा कि जो कुपित हो जाए वह देवता कैसा? लेकिन नहीं, इससे इंद्र का कोई लेना-देना नहीं। इंद्र कहीं कोई है भी नहीं। यह मनुष्य के भय ने कथा गढ़ी। आखिर और कोई उपाय भी न था समझने का। और सांत्वना देने की भी कोई व्यवस्था तो करनी ही होगी। आकाश में बिजली चमक रही है, करो क्या? बिजली गिरेगी, गाज गिरेगी, किसी का प्राण ले लेगी। आज तुम्हें इसमें कुछ भय नहीं मालूम होता; आज आकाश में बिजली चमकती है, तो तुम हवन नहीं करते--हां, कुछ मू.ढ़ों को छोड़कर। आज आकाश में बिजली चमकती है तो तुम जरा भी भयभीत नहीं होते; तुम एकदम से माला लेकर राम-राम राम-राम नहीं जपने लगते। तुम जानते हो कि बिजली से इंद्र के कुपित होने का कोई संबंध नहीं; बिजली एक प्राकृतिक ऊर्जा है। अब तुम भलीभांति जानते हो, क्योंकि तुम्हारे घर में बिजली हजार तरह से सेवा कर रही है। जरा बटन दबाओ और इंद्र देवता हाजिर। पंखा डुलने लगे, इंद्र देवता पंखा डुल रहे हैं। जरा बटन दबाओ, इंद्र देवता हाजिर हैं, चाय बनाने लगे, इंद्र देवता चाय बना रहे हैं! जरा बटन दबाओ, रोशनी हो गई। इंद्र देवता तुम्हारे अंधेरे को तोड़ रहे हैं! अब बिजली तुम्हारे हाथ में है। विज्ञान ने किया क्या?

जो आकाश में बिजली चमकती थी, उसका संशोधन किया, उसको समझने की कोशिश की, उसके सूत्र पकड़े, उसका राज पहचाना। एक दफा राज हाथ में आ गया कि तुम मालिक हो गए। बाहर की बिजली तो हाथ

में आ गई, भीतर की बिजली कब हाथ में लाओगे? मैं उसी भीतर की बिजली को हाथ में लाने की बात करता हूं तो लोग नाराज हैं। मगर यह भी समझने जैसी बात है, क्योंकि वैज्ञानिकों ने भी जब पहली दफा बाहर की बिजली को वश में लाने की बात की तो लोग नाराज थे। क्योंकि लोगों ने कहाः यह कैसी बात! क्या इंद्र देवता को वश में करोगे? यह तो बड़ा अधार्मिक कृत्य होगा। क्या इंद्र देवता से तुम अपने घर में काम करवाओगे? यह तो इंद्र देवता बहुत नाराज हो जाएंगे। फिर तो उनके पास जो आखिरी अस्त्र होगा, ब्रह्मास्त्र, वही निकालकर सबकी गर्दन काट डालेंगे

लेकिन वैज्ञानिक बढ़े चले गए, उन्होंने फिकिर न की तुम्हारे विरोधों की। और आज तुम भूल ही गए अपने विरोध, आज तुम उन्हीं वैज्ञानिकों की खोज पर जी रहे हो, मजे से जी रहे हो। आज तुम सोच भी नहीं सकते कि बिना बिजली के दुनिया कैसी होगी। तुम्हारी सारी सभ्यता खो जाएगी बिना बिजली के। आज हर चीज बिजली पर निर्भर है।

अमेरिका में पिछले दो वर्ष पहले तीन दिन के लिए बिजली खो गई! और लोग चकित हो गये कि तीन दिन में सारी सभ्यता खो गयी। तुम थोड़ा सोचो अमेरिका की हालत तीन दिनों में क्या हो गई! न्यूयार्क में बिजली नहीं थी तीन दिन तक, भाएं-भाएं हो गया नगर। जो आदमी एक सौ बीसवीं मंजिल पर था, प्यासा अटका है, क्योंकि पानी को चढ़ाए कौन, इंद्र देवता मौजूद नहीं। भूखा बैठा है, क्योंकि लिफ्ट काम नहीं कर रही। अब एक सौ बीस मंजिल सीढ़ियां उतरना भोजन लेने जाने और भोजन लेकर आना, इससे तो बेहतर भूखे बैठे रहना, और जो वर्षों से इतनी सीढ़ियां उतरे नहीं, एक सौ बीस मंजिल, वे आज उतरेंगे तो हृदय का दौरा पड़ जाएगा। रास्तों पर लूट मच गयी, क्योंकि रोशनी नहीं है। कोई रास्ते पर जाए, कोई भी पकड़कर उसके पैसे छीन ले, कोई भी! एकदम जंगल का राज्य शुरू हो गया। तीन दिन में हत्याएं हो गयीं, चोरियां हो गयीं, लूट हो गयीं, बलात्कार हो गये। न पुलिस का वश, न कानून की व्यवस्था, सब खो गई। ट्रेनें बंद, रास्ते सब सुनसान पड़े, दुकानें बंद, दफ्तर बंद। सब कानून ठप्प हो गया। जो लोग तीन दिन न्यूयार्क जैसे नगरों में रहे, उन्होंने लिखा है कि हमने जाना कि हमारी सारी सभ्यता बिजली पर खड़ी है। बिजली खो जाए कि सब खो जाएगा। आदमी बच न सकेगा।

आज तुम इतने निर्भर हो गए बिजली पर! और जब पहली दफे वैज्ञानिकों ने ये शोधें शुरू की थीं तो तुम नाराज थे; तुम सोचते थे इंद्र नाराज हो जाएगा कि परमात्मा नाराज हो जाएगा।

वैसे ही लोग मुझ पर नाराज हैं। वैसे ही लोग तिलोपा पर नाराज थे। नाराजगी क्या है? हम भीतर की ऊर्जा को, भीतर की बिजली को वश में करना चाहते हैं। काम-ऊर्जा तुम्हारे भीतर की बिजली है। वही तुम्हें जलाए है। वही तुम्हें जिलाए है। वही तुम्हें चलाती है। हां, अभी इस ढंग से चलाती है जैसे पहले बिजली आकाश में चमकती थी और घबड़ाती थी। यह बिजली बस में की जा सकती है। कामवासना का ध्यान से थोड़ा संबंध हो जाए बस। कामवासना ऊपर की तरफ उठने लगे तो संभोग से समाधि की यात्रा कठिन नहीं है। संभोग से ही समाधि की यात्रा हो सकती है! काम ही राम बनेगा! क्रोध ही करुणा बनेगी। लोभ ही दान बनेगा। और संसार ही ब्रह्म का अनुभव हो जाता है।

"जिस प्रकार विष का शोधक विष खाकर भी मरता नहीं है उसी प्रकार योगी सांसारिक विषयों को भोगता हुआ भी संसार के बंधनों में नहीं पड़ता।"

स्मरण रखना, तिलोपा यह नहीं कह रहे हैं कि योगी भोगता नहीं है। तिलोपा कह रहे हैंः योगी इस कला से भोगता है कि भोगता भी है और बंधता भी नहीं। यही परम गुह्य विज्ञान है। ऐसे भोगो कि भोग भी लो और बंधो भी न।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं आमतौर से। भोगी हैं, जो बंध गए। बंधने के डर से, योगी हैं जो भाग गए। तिलोपा तीसरे मनुष्य की बात कर रहा है, जैसे मैं तीसरे मनुष्य की बात कर रहा हूं। भोगी बंध गया, यह कोई बड़ी सुंदर अवस्था नहीं है। दीन-हीन हो गया, गिड़गिड़ा रहा है, भिक्षापात्र लिये बैठा है। जो-जो किया है उसी में उलझ गया है। इसको उलझा देखकर योगी भाग गया है, भगोड़ा हो गया है, पलायनवादी हो गया है; वह डरता है कि अगर संसार में आए तो बंध जाएंगे। वह जंगलों में छिपा है डर के मारे।

मगर डर से ही तो सिर्फ भीतर की वासना समाप्त न हो जाएगी, वहां भी वासना प्रज्वलित रहेगी। वहां भी वासना उसे बांधती रहेगी। छोटी-छोटी चीजों से बांध लेगी; कोई महल थोड़े ही चाहिए बांधने के लिए, लंगोटी काफी है।

एक सूफी फकीर के पास एक खोजी आया। लेकिन खोजी देखकर दंग हुआ कि सूफी फकीर तो बड़ी शान से रहता था। उसने तो सुना था कि फकीरों को तो दीनता और दरिद्रता में रहना चाहिए। फकीर का अर्थ ही होता है कि जो गरीब है। यह कैसा फकीर! सोने का सिंहासन था उस फकीर का। राजमहल था उसका आश्रम। सब तरह की सुख-सुविधाएं थीं। हीरे-जवाहरात बरसे पड़ते थे। सम्राट उसके शिष्य थे। इस फकीर से बड़ी बेचैनी होने लगी। यह तो बिल्कुल उलटा ही हो रहा है!

लेकिन उस सूफी ने कहा कि अब आ ही गए हो, माना कि तुम्हारा मन राजी नहीं हो रहा है, कुछ देर तो मेहमान रहो, फिर जाना है तो चले जाना। थोड़ा और करीब से देखो।

देखा करीब से, लेकिन कुछ दिखाई नहीं पड़ा कि इसमें योग कहां है! भोग तो खूब चल रहा था; योग कहां है, वह दिखाई नहीं पड़ता था। फिर उसे यह भी डर लगा कि अगर यहां ज्यादा देर रुका तो यही गति मेरी हो जाएगी। क्योंकि उसे भी धीरे-धीरे रस आने लगा। अच्छा भोजन मिला। अभी तो रूखा-सूखा खाता था। अच्छा भोजन मिला, स्वाद लगा। अच्छे बिस्तर पर सोने को मिला, तो डर लगने लगा कि अब वृक्षों के नीचे सो सकूंगा या नहीं, नींद आएगी भी कि नहीं? उस सूफी ने दो आदमी लगा रखे थे जो रोज सुबह उसका हाथ-पैर दाबते, मालिश करते। उसने कहाः यह मुसीबत हुई जा रही है! अब बिना मालिश के चैन न पड़ेगी, कौन मेरी मालिश करेगा?

वह घबड़ा गया। आठ-पंद्रह दिन बाद उसने कहाः मुझे आज्ञा दें, मैं जाना चाहता हूं। सूफी ने कहाः घबड़ा गए! डर गए! कला नहीं आती? कहां जाना चाहते हो?

कहाः मैं तो जंगल जा रहा हूं। उस सूफी ने कहाः तो मैं भी चलता हूं। खोजी तो मान नहीं सका कि यह सूफी कैसे जाएगा--इतना बड़ा महल, इतनी व्यवस्था सब छोड़कर! मगर वह चल पड़ा उसके साथ। जब कुछ मील दोनों निकल गए, तब उस खोजी को याद आया कि मैं अपना भिक्षापात्र आपके महल में भूल आया, तो मैं जाकर उसे वापिस ले आऊं? तो उसे सूफी ने कहाः अपना साथ न चलेगा। मैं अपना पूरा महल छोड़ आया, तू भिक्षापात्र भी नहीं छोड़ सकता! फिर नमस्कार! फिर हमारे रास्ते अलग हो गए। फिर हमारी दोस्ती न चलेगी।

वह सूफी फकीर उसे यह स्मरण दिला रहा था कि सवाल क्या पकड़ा है यह नहीं है; सवाल तो पकड़ने का है! लंगोटी कोई पकड़ सकता है, भिक्षापात्र कोई पकड़ सकता है। कोई महल ही थोड़े ही चाहिए बंधने के

लिए। कुछ भी हो तो बंध सकता है, अगर कला न आती हो। और कला आती हो तो फिर महल में भी रहकर भी कोई आवश्यक नहीं है कि बंधे। फिर जल में कमलवत हो सकता है।

एक फकीर मर रहा था तो उसने अपने शिष्य से कहा कि देख, एक बात का ख्याल रखना, बिल्ली भर मत पालना। वह फकीर मर गया इतना ही कहकर। इसकी व्याख्या भी न कर गया। शिष्य तो बड़ा परेशान हुआ। बिल्ली न पालना, आखिरी संदेश! कोई ब्रह्मज्ञान की बात करनी थी। जीवन-भर इस बुद्धू की सेवा की और आखिर में मरते वक्त यह कह गया कि बिल्ली न पालना! बिल्ली हम पालेंगे ही क्यों! बिल्ली से लेना-देना क्या है! और बिल्ली पाल भी ली तो इससे मोक्ष में कौन-सी बाधा पड़ती है! किसी शास्त्र में लिखा नहीं कि बिल्ली मत पालना। बड़े-बड़े आदेश दिए हैं--ऐसा मत करना, वैसा मत करना; दस आज्ञाएं हैं--मगर बिल्ली मत पालना! चोरी मत करना, बेईमानी मत करना, झूठ मत बोलना--समझ में आता है, मगर बिल्ली मत पालना, यह कौन-सी नैतिकता का आधार है!

उसे हैरान देखकर एक दूसरे बूढ़े आदमी ने कहाः तू परेशान मत हो। मैं तेरे गुरु को जानता हूं, वह ठीक कह गया है। और मैं भी तुझसे कहता हूं कि अगर उसकी बात मानकर चला तो बच जाएगा। उसकी बात न मानी तो मुश्किल में पड़ेगा। क्योंकि वह मुश्किल में पड़ा था।

शिष्य ने पूछाः मुझे पूरी बात समझाकर कह दें, कैसी मुश्किल? क्योंकि मेरी अकल में ही नहीं बात बैठती। मैंने बड़े शास्त्र पढ़े हैं, मगर बिल्ली मत पालना!

तो उसने कहाः सुन, तेरा गुरु कैसी मुसीबत में पड़ा। तेरे गुरु ने संसार छोड़ दिया डर से कि यहां फंस जाऊंगा; जैसे लोग छोड़ देते हैं डर से। शादी नहीं की, दुकान नहीं की, बाजार में नहीं बैठा, भाग गया। जंगल में जाकर रहने लगा। एक मुसीबत आई। सिर्फ दो लंगोटियां थीं उसके पास। बस उतनी दो लंगोटियां ले गया था। लेकिन चूहे उसकी लंगोटियां काट जाते। वह सूखने डालता, रात को चूहे लंगोटी काट देते। उसने गांव के लोगों से पूछा कि क्या करना? उन्होंने कहा एक बिल्ली पाल लो। बस वहीं से सारा उपद्रव शुरू हुआ, सारा संसार शुरू हुआ। बात जंची गुरु को, उसने बिल्ली पाल ली। बिल्ली चूहे तो खा गई, लेकिन जब चूहे खा गई तब बिल्ली भूखी बैठी रहे वहां, सूखने लगी। अब उसकी हत्या का पाप लगेगा।

तो उस फकीर ने लोगों से पूछा कि भाई यह तो ठीक है, तुमने सुझाव दिया, तुम्हारी बात काम कर गई, चूहे खतम कर दिए बिल्ली ने। मगर अब बिल्ली का क्या हो? तो उन्होंने कहाः ऐसा करो, एक गाय पाल लो, तुम्हें भी दूध मिल जाएगा, बिल्ली को भी दूध मिल जाएगा। तुम यह जो रोज-रोज भीख मांगने जाते हो, इस झंझट से भी बचोगे। और गाय हम दे देते हैं, हमारी भी झंझट मिटेगी कि तुम्हें रोज-रोज आना, रोज तुम्हें हमें भिक्षा देना। गायें गांव के पास बहुत हैं, हम एक गाय तुम्हें गांव की तरफ से दे देते हैं।

फकीर को बात जंची, बात सीधी गणित की थी। गाय पाल ली, लेकिन झंझट--अब गाय के लिए घास चाहिए, भोजन चाहिए। गांव के लोगों ने कहाः अच्छा यह हो कि जमीन तो यहां पड़ी ही है ढेर तुम्हारे पास, थोड़ी खेती-बाड़ी करने लगो, बैठे-बैठे करते भी क्या हो! तो घास भी हो जाएगा, गेहूं भी हो जाएंगे, तुम्हारी रोटी का भी इंतजाम हो जाएगा। बिल्ली भी मजा करेगी, गाय भी मजा करेगी, तुम भी मजा करो।

तो बेचारे ने खेती-बाड़ी शुरू की। अब खेती-बाड़ी करे कि भजन-कीर्तन करे? गाय को सम्हाले, बिल्ली को सम्हाले कि शास्त्र पढ़े? फुर्सत ही न मिले भजन-कीर्तन की। शास्त्र इत्यादि भूलने लगे। उसने गांव के लोगों से कहाः तुमने तो यह झंझट बना दी। मुझे समय ही नहीं मिलता।

तो उन्होंने कहाः ऐसा काम करो कि गांव में एक विधवा है, उसका कोई है भी नहीं, वह भी परेशान है। उसको हम रख देते हैं यहां, तुम्हारी सेवा भी करेगी, रोटी भी... तुम मजे से भजन करना, तुम कीर्तन करना, वह रोटी भी बना देगी। और मजबूत विधवा है और किसान रही है, खेती-बाड़ी भी कर देगी।

यह बात भी जंची। गणित फैलता चला गया। विधवा भी आ गई! उसने खेती-बाड़ी भी शुरू कर दी, हाथ-पैर भी दबा देती, बीमारी होती तो सिर भी दबा देती। फिर जो होना था सो हुआ। फिर विधवा से प्रेम लग गया। कुछ बुरा भी न था, आखिर इतनी सेवा करती थी और उस पर प्रेम न उमगे तो क्या हो! वे ही गांव के लोग आ गये कि यह बात ठीक नहीं, अब अच्छा यही होगा कि आप इससे विवाह कर लो, क्योंकि इससे बड़ी बदनामी हो रही है, हमारे गांव की बदनामी हो रही है। तो विवाह हो गया, बच्चे हुए। फिर उपद्रव फैलता चला गया, फैलता चला गया। फिर बच्चों का विवाह हुआ।

और उस बूढ़े आदमी ने कहाः तुम्हारा गुरु ठीक कह गया है कि बिल्ली मत पालना; यह उसकी जिंदगी भर का सार-निचोड़ है। इस बिल्ली से ही सब उपद्रव शुरू हुआ था।

उपद्रव तो कहीं से भी शुरू हो सकते हैं। और बिल्ली की भी और गहराई में जाओ तो लंगोटी से शुरू हुआ। गुरु को असल में कहना था कि लंगोटी मत रखना। मगर कुछ तो रखोगे। लंगोटी, भिक्षापात्र, कुछ तो रखोगे! नहीं तो जिंदगी चलेगी कैसे? जीओगे कैसे? कोई राजमहल ही नहीं बांधते हैं, कोई भी चीज बांध लेगी।

तो असली सवाल यह नहीं है कि क्या तुम्हारे पास है; असली सवाल यह है कि क्या तुम्हारे पास वह कला है जिससे तुम वस्तुओं के बीच रहते हुए भी वस्तुओं से मुक्त रह सको?

भोगी हैं, बंध गये हैं। योगी हैं, भाग गये हैं। भाग गये हैं, मगर भोगी मरा नहीं है, क्योंकि भागने से कहीं कोई मरता है? भागने से कहीं चित्त बदलता है? योगी हैं, चित्त कह रहा है कि वापस चलो, पता नहीं चूक न हो गई हो, वहीं कहीं रस न हो, यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हो! भोगी हैं, वे सोचते हैं कि कब समय आयेगा, ठीक समय, जब हम छोड़कर जंगल चले जायेंगे! और जंगल में जो बैठे हैं वे सोच रहे हैं कि हम कहां फंस गये हैं, वहीं ठीक थे! लोग वहीं मजा कर रहे हैं, यहां तो और उदासी आ गई है। यहां बैठे-बैठे भी क्या करना है?

ये चित्त की दशायें हैं। मैं योगियों को जानता हूं, भोगियों को जानता हूं। भोगी सोचते हैं योगी मजे में हैं, योगी सोचते हैं भोगी मजे में हैं। तिलोपा कहते हैंः भोग में योग, योग में भोग। ऐसी कला सीखो कि भोग में योग सधे। रहो यहीं, मगर अलिप्त रहो। रहो बाजार में, मगर भीतर रहो। बाहर बाहर है। बाहर का बाहर चलने दो, मगर उसे भीतर प्रवेश न करने दो। भोग में रहो और योग को साधो। और योग में भी परम भोग को साधो, क्योंकि ध्यान में भी लेना तो है रस परमात्मा का। ध्यान में भी आलिंगन तो करना है परमात्मा का। संसार का आलिंगन करके भी आलिंगन मत करना और ध्यान में आलिंगन न करते हुए भी परमात्मा का आलिंगन करना--यह महत कला है। यह सहज-योग है। इसमें आदमी न तो भोगी बनता है, न भगोड़ा बनता है।

मगर यह बात तो भीतरी है और आंतरिक है। दूसरे शायद समझ भी न पायें। दूसरों को पता भी न चलेगा, क्योंकि बाहर की चीजें दिखाई पड़ती हैं। तुमने लंगोटी लगा ली, सिर घुटा लिया, चले जंगल की तरफ--सारे लोग कहेंगेः योगी हो गये! लेकिन तुमने भीतर ध्यान साधा, दुकान पर बैठे रहे, जैसे पहले बैठे थे अब भी बैठे रहे, किसको पता चलेगा? मगर पता किसी को चलाना ही क्यों? पता चलाने में तो अहंकार की ही आकांक्षा है। सारी दुनिया जाने कि मैं योगी हूं, यह तो अहंकार ही है।

और अहंकार तो बड़ी-से-बड़ी बाधा है तुम्हारे और परमात्मा के बीच। किसी को पता ही क्यों चले? चुपचाप, अलिप्त भाव से जी लेना। ध्यान का रस रहे; संसार बाहर चलता है चलता रहे, समानांतर चलने देना।

संसार बाहर चले, ध्यान भीतर चले। और ख्याल रखना, समानांतर रेखायें कहीं भी मिलती नहीं। रेल की पटरियां देखीं? बिल्कुल साथ-साथ दौड़ती हैं। हजारों मील तक साथ-साथ दौड़ती हैं, मगर कहीं मिलती हैं? समानांतर रेखायें कहीं मिलती ही नहीं।

योग और भोग समानांतर रेखायें बन जानी चाहिए, यह सहज-योग है। भोग चलता रहे बाहर, योग चलता रहे भीतर--पास ही पास, सटे-सटे, कदम में कदम मिलाकर, छंदबद्ध! मगर न तो तुम्हारा योग तुम्हारे भोग का दुश्मन हो और न तुम्हारा भोग तुम्हारे योग का दुश्मन हो। दोनों समानांतर हों, संतुलन करें एक-दूसरे का। एक-दूसरे के शत्रु न हों, एक दूसरे के परिपूरक हों--और तब तुम देखते हो! तब एक महिमाशाली व्यक्तित्व का जन्म होता है।

मगर दुनिया उसे शायद न पहचान पायेगी, क्योंकि दुनिया के पास तो दो ही कोटियां हैं--या तो योगी या भोगी। इसलिये तिलोपा पहचाना न जा सका; इसलिये सरहपा पहचाना न जा सका; इसलिए मैं भी पहचाना नहीं जा सकता हूं। किस कोटि में मुझे रखोगे? जिस कोटि में रखोगे वही कोटि छोटी पड़ेगी। और तुम बिना कोटि में रखे मान नहीं सकते, तुम्हें किसी न किसी कोटि में रखना पड़ेगा। लेकिन इस जगत में कुछ थोड़े-से लोगों को कोटि के बाहर रहने दो, क्योंकि वे ही नमक हैं; क्योंकि उन्हीं के कारण इस जगत में थोड़ा सौरभ है। न तो तुम्हारे तथाकथित भोगियों के कारण, न तुम्हारे तथाकथित योगियों के कारण; वरन उनके कारण जो योग में भोग को साध लेते हैं, भोग में योग को साध लेते हैं--उन थोड़े-से लोगों के कारण परमात्मा और प्रकृति मिलती रहती है। उन लोगों के कारण परमात्मा और प्रकृति के बीच एक सुसंवाद चलता रहता है, एक गुफ्तगू होती रहती है। परमात्मा और प्रकृति के बीच वे ही सेतु हैं। उनके ही कारण प्रकृति और परमात्मा छिन्न-भिन्न नहीं हो गये हैं।

तुम्हारा योगी तो प्रकृति में डूबा है, दमन करके डूबा है, दबाकर डूबा है। तुम्हारा भोगी भी प्रकृति में डूबा है; भोग की अति करके डूबा है। उन दोनों में बहुत भेद नहीं है। उन दोनों में से किसी का भी परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। दोनों की नजर एक है।

एक धन से भाग रहा है, एक धन की तरफ भाग रहा है; लेकिन दोनों की नजर एक है। दोनों की नजर में धन का मूल्य है। एक धन की तरफ मुंह करके भाग रहा है, एक धन की तरफ पीठ करके भाग रहा है; मगर दोनों भाग रहे हैं, और दोनों धन के कारण ही भाग रहे हैं। दोनों की जीवनचर्या का आधार धन है, या पद है, या प्रतिष्ठा है, या काम है, या तृष्णा है। मगर दोनों में कोई बुनियादी भेद नहीं है। हां, एक-दूसरे से भिन्न् हैं। एक पैर के बल खड़ा है, एक सिर के बल खड़ा है; मगर दोनों एक ही जैसे व्यक्ति हैं, जरा भी भेद नहीं है।

क्या तुम सोचते हो जब तुम शीर्षासन करते हो तो तुम दूसरे व्यक्ति हो जाते हो? क्या सिर के बल खड़े हो जाने से तुम समझते हो क्रांति घट गई, तुम दूसरे व्यक्ति हो गये? तुम वही के वही हो!

मैंने सुना, एक आदमी महा क्रोधी था। इतना क्रोधी था कि उसने अपनी पत्नी को धक्का दे दिया कुएं में। पत्नी मर गई। चौंका। गांव में एक जैन मुनि आये थे, उनके पास गया, चरणों में गिर पड़ा और कहा कि मुझे दीक्षा दें। जैन मुनि ने कहाः इतनी जल्दी दीक्षा! उसने कहाः इसी समय दें। जैन मुनि ने कहाः साध सकोगे? उसने कहा कि जो मैं न साध सकूं, वह कोई नहीं साध सकता। कहो क्या साधना है? जैन मुनि ने कहाः नग्न होना पड़ेगा। उसने तत्क्षण वस्त्र फेंक दिये। जैन मुनि भी चौंका, आदमी बड़ा साहसी था! साहसी नहीं था, था सिर्फ वह क्रोधी। वह हर काम में, उसकी क्रोध की प्रज्वलित अग्नि होती थी। उसको तुमने चुनौती दे दी, उसके क्रोध को जगा दिया।

लेकिन तुम संन्यास लेना क्यों चाहते हो, जैन मुनि ने पूछा। उसने कहा कि मैं महा क्रोधी हूं। मैंने अपनी पत्नी मार डाली। अब बस बहुत हो गया, मुझे शांति का पाठ दें। तो मुनि ने दीक्षा दी और नाम दियाः शांतिनाथ। और मुनि ने बड़ी प्रशंसा भी की कि तुम... मैंने बहुत देखे लोग, वे कहते हैं कल लेंगे संन्यास, परसों लेंगे संन्यास, फिर ले भी लेते हैं तो भी वर्षों लगते हैं नग्न दिगंबर होने में; तुम एक क्षण में कर दिये, तुम साहसी आदमी हो!

आदमी कुल जमा क्रोधी था। यह संन्यास भी उसका क्रोध का ही परिणमन था। यह कोई शांति की घोषणा नहीं थी, यह क्रोध का ही प्रज्वलन था। क्योंकि एकदम से कोई पत्नी को धक्का मारकर शांत हो जाता है! पत्नी को धक्का मारा, अब अपने को धक्का मार दिया कुएं में उसने; बस इतना ही समझना।

फिर उसकी बड़ी ख्याति हो गई। ख्याति होनी ही थी, क्योंकि वह खूब अपने को सताने लगा। दो-दो तीन-तीन दिन उपवास करे, तब एकाध बार भोजन ले। महीनों का उपवास करने लगा, कांटों पर सोये, पत्थरों पर पड़ा रहे, धूप में खड़ा रहे। सर्दी में जाकर पानी में खड़ा हो जाये, जहां कि बर्फ जम रही हो। उसकी ख्याति फैलने लगी। ऐसे ही लोगों की तो ख्याति फैलती है। लोग दूर-दूर से उसके दर्शन करने आने लगे। अंततः वह दिल्ली पहुंच गया, क्योंकि दिल्ली तो पहुंचना ही पड़ेगा। सारे मुनि धीरे-धीरे दिल्ली पहुंच जाते हैं। और दिल्ली पहुंचे कि फिर नहीं छोड़ते वे।

जैन मुनियों के लिये नियम है कि वे एक जगह तीन दिन से ज्यादा न रुकें। अब यह बड़ी झंझट की बात है। अगर वर्षा काल हो तो चार महीने ज्यादा से ज्यादा एक जगह रुक सकते हैं। तो फिर उन्होंने तरकीब निकाल ली, वे दिल्ली को एक नगर मानते ही नहीं, वे दिल्ली को कई नगर मानते हैं। बंबई को भी वे एक नगर नहीं मानते, कई नगर मानते हैं। तरकीब निकाल ली, गणित तो आदमी हर जगह बिठा लेता है। तो कृष्ण नगर, तिलक नगर... अलग-अलग नगर हैं। तो कृष्ण नगर में रहते हैं, फिर तिलक नगर में चले जाते हैं, फिर तिलक नगर से कृष्ण नगर में आ जाते हैं। मगर दिल्ली नहीं छोड़ते।

शांतिनाथ भी दिल्ली पहुंच गये। उनके गांव से एक आदमी दिल्ली आया था। सोचा कि शांतिनाथ जी बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं, इनके दर्शन कर आऊं। बचपन का साथी था उनका, सोचता था कि मान तो मैं नहीं सकता कि इसका क्रोध चला गया हो, क्योंकि आदमी ऐसा क्रोधी है, इसका अगर क्रोध चला जाये तो दुनिया में सबका क्रोध चला जाये। मगर कौन जाने हो भी गया हो, चमत्कार भी तो घट ही जाते हैं! असंभव कुछ तो, लगता हो तो भी होता नहीं, संभव है हो गया हो। गया। शांतिनाथ बैठे थे, सिंहासन पर नग्न। उन्होंने देख तो लिया, पहचान तो लिया कि बचपन का साथी है। पहचानते भी कैसे न! मगर अब वे हो गये थे शांतिनाथ महामुनि। पहचान लिया, मगर पहचाना नहीं। क्या पहचानना ऐरे-गैरे नत्थू खैरे को! देख लिया और अनदेखा कर दिया।

मित्र को भी समझ में तो आ गई आंख कि देख तो लिया है, पहचान भी लिया है और यह भी इधर आंख फेर ली। वह पास सरका। उसने कहा कि महाराज, क्या मैं आपका नाम पूछ सकता हूं? पुराना जानकार था उनके बाबत। उन्होंने कहाः मेरा नाम! अखबार नहीं पढ़ते? कौन मेरा नाम नहीं जानता? नाम पूछने चले आये!

उसने कहाः महाराज, मैं जरा गैर-पढ़ा-लिखा हूं। अखबार वगैरह की फुरसत भी नहीं है। मूढ़ समझें मुझे, नाम बता ही दें।

तो उन्होंने कहाः मेरा नाम शांतिनाथ! मगर जिस ढंग से उन्होंने कहा मेरा नाम शांतिनाथ, मित्र तो समझ गया कि कुछ बदलाहट हुई नहीं है। जो अकड़ थी कहने में... । थोड़ी देर इधर-उधर की बात चलती रही।

मित्र ने पूछाः महाराज, मेरी जरा स्मृति कमजोर है, मैं भूल गया, आपका नाम। अब तो महाराज को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा कि सुनते हो कि नहीं, बहरे तो नहीं हो? मैंने कहा--शांतिनाथ।

मित्र ने कहाः धन्यवाद महाराज! फिर इधर-उधर की बात चली, फिर उसने पूछा कि महाराज! अब मैं जा ही रहा हूं, आपका नाम तो बता दें। तो जो कमंडल वे लेकर चलते थे, उठाकर उसकी खोपड़ी में मार दिया। कहा कि हजार दफे कह दिया शांतिनाथ, तुझे होश नहीं आता?

उस मित्र ने कहाः अब मुझे बिल्कुल होश आ गया। यह जो आपका कमंडल सिर में लगा, उससे सब बात साफ हो गई। आप वही हो, जरा भी भेद नहीं हुआ है।

कपड़े उतार लेने से कोई भेद नहीं होगा। नग्न खड़े हो जाने से कोई भेद नहीं होगा। सिर के बल खड़े हो जाने से भेद नहीं होगा। बुद्ध की तरह आसन मारकर बैठ जाने से कुछ भेद नहीं होगा। भेद तो करना हो तो चैतन्य को बदलना पड़ता है। ध्यान के अतिरिक्त और कोई भेद नहीं होता।

तो भोग में ध्यान को जोड़ दो और योग हो जायेगा और योग में प्रेम को जोड़ दो और भोग हो जायेगा। और ये दो ही बातें हैं महत्वपूर्ण। भोग में ध्यान का प्रवेश करो, योग बना लो; योग में प्रेम का प्रवेश करो, भोग बना लो। और जब तुम इतने कलाकार हो जाओ कि ध्यान और प्रेम दोनों सध जायें तो किसी को पता चले न पता चले, इससे प्रयोजन नहीं है। परमात्मा जानेगा। तुम्हारे और उसके बीच बात घट गई। जो होने योग्य था हो गया। जो पाने योग्य था पा लिया गया।

जिस दिन ध्यान और प्रेम सध जाते हैं, उस दिन मनुष्य संसार में रहकर ही संसार से मुक्त हो जाता है और संसार से मुक्त होकर भी संसार का परम भोगी होता है।

मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि बुद्धपुरुष जैसा भोगते हैं, तुम क्या भोगोगे। जब बुद्ध देखते हैं एक कमल के फूल को तो उनकी आंखें जैसा रसास्वादन करती हैं, तुम्हारी आंखें क्या खाक करेंगी! तुम्हारी आंखों पर इतनी धूल जमी है कि क्या रसास्वादन होगा! जब बुद्ध देखते हैं हरियाली वृक्षों की तो हरियाली दिखाई पड़ती है, तो वृक्ष भी धन्यभागी होते हैं, क्योंकि किसी ने देखा। तुम तो देखते ही कहां हो! तुमने अपने को नहीं देखा, क्या खाक तुम वृक्षों को देखोगे! तुम स्वयं को देखने में असमर्थ हो, तुम किसे और देख सकोगे? जो स्वयं को नहीं देख सकता, कुछ भी न देख सकेगा। स्वदर्शन सारे दर्शन की आधारशिला है।

और जो भीतर रसमय नहीं है, वह कैसे भोगेगा, क्या भोगेगा? माना कि तुम भोजन कर लेते हो, जरूरत से ज्यादा भी कर लेते हो, मगर भोग नहीं है वहां। भोग तो सिर्फ बुद्ध करते हैं। जब बुद्ध भोजन करते हैं, तो एक-एक कौर भोजन का ब्रह्म का स्वाद लिये होता है। जब बुद्ध पानी पीते हैं तो एक-एक घूंट पानी का अमृत का स्वाद लिये होता है।

तुम तो अमृत भी पीयोगे तो समझोगे कोकाकोला है। तुम तो अमृत भी पीयोगे तो भी शायद ही तुम्हें उसका स्वाद आ सके, क्योंकि स्वाद के लिये ध्यान की जरूरत है। तुम्हें ध्यान ही कहां है! तुम तो गटके जा रहे हो, भरे जा रहे हो, फेंके जा रहे हो चीजें भीतर। और इसलिये तो तुम ज्यादा भोजन कर लेते हो क्योंकि स्वाद नहीं ले पाते हो। तो स्वाद की जो कमी रह गई, वह मात्रा से पूरी करते हो। जो व्यक्ति स्वाद लेकर भोजन करता है, वह ज्यादा भोजन नहीं कर सकता। जरूरत ही न रही। तुम ख्याल करना इस बात का।

मेरे पास लोग आते हैं और अगर मुझसे पूछते हैं कि हम ज्यादा भोजन करने की आदत में पड़े हैं, क्या करें? तो मेरा उनको एक ही सुझाव होता है और वे चौंकते हैं सुनकर मेरा सुझाव। मेरा सुझाव यही होता है कि खूब रसपूर्वक भोजन करो। वे कहते हैंः रसपूर्वक! क्या कह रहे हैं आप? हम मरे जा रहे हैं भोजन से ही, हम

ज्यादा कर रहे हैं--और आप कह रहे हैं और रसपूर्वक! जिनके पास भी हम गये उन्होंने कहा कि भोजन छोड़ो, यह मत खाओ वह मत खाओ, आधा कर दो भोजन। आप कहते हैं रसपूर्वक!

मैं कहता हूंः रसपूर्वक! आधा अपने से हो जायेगा। एक-एक कौर को इतना चबाओ, इतना रस लो, जितना कि उसमें रस हो, पूरा का पूरा रस ले लो।

वैज्ञानिक कहते हैं कि एक कौर को कम से कम चवालिस बार चबाना चाहिये तो पूरा रस मिलता है। अब तुम जब एक कौर को चवालिस बार चबाओगे तो एक कौर ने तुमसे उतनी मेहनत करवा ली जितनी चवालिस कौर करवाते। और एक कौर से तुम्हें उतना रस मिल गया जितना शायद चवालिस से भी न मिलता। तृप्ति जल्दी हो जायेगी। आधे भोजन में, शायद एक चौथाई भोजन में तृप्ति हो जायेगी। और वही तृप्ति भोग है।

बुद्धपुरुष जानते हैं कैसे सोना कैसे जगना, कैसे उठना कैसे बैठना। उनके जीवन में सब तरफ प्रसाद ही प्रसाद होता है। उनका जीवन एक कला है, एक काव्य है। भोग को बोध बनाओ। मैं तुम्हें भोग सिखाता हूं। लेकिन अगर तुम ध्यानपूर्वक भोग कर सको तो तुम चकित हो जाओगेः भोग के भीतर से ही योग का शिखर उठने लगा। क्योंकि जैसे-जैसे ध्यान सम्हलेगा वैसे-वैसे योग सम्हलेगा। सार में भोग को ध्यानपूर्वक करो, परिणाम में योग हाथ आयेगा! और जब योग हाथ में आ जाये तब तुम्हें दूसरा सूत्र मैं देता हूं कि अब योग को प्रेमपूर्वक जीयो तो महाभोग हाथ में आये।

योग को प्रेमपूर्वक जीने का क्या अर्थ है? आंख तो स्वच्छ हो गई, ध्यान ने स्वच्छ कर दी। अब तुम फूल को देखते हो तो फूल अपनी परिपूर्णता में दिखाई पड़ता है। यह ध्यान ने एक काम पूरा कर दिया कि दर्पण की धूल झाड़ दी, दर्पण को स्वच्छ कर दिया पोंछकर धो डाला, स्नान करवा दिया। ध्यान स्नान है। दर्पण बिल्कुल स्वच्छ हो गया। अब फूल जैसा है वैसा दिखाई पड़ने लगा। यह योग हुआ। लेकिन अभी और थोड़ी बात होनी है। अभी दर्पण सिर्फ ग्राहक है; सिर्फ फूल को अपने भीतर प्रतिबिंबित करता है। फूल को कुछ देता नहीं, लेता है। प्रेम चाहिये अब, ताकि दर्पण फूल को कुछ दे भी; ताकि दर्पण फूल पर बरस पड़े; ताकि दर्पण बह उठे फूल पर। ले ही क्यों, दे भी!

ध्यान ने स्वच्छ किया, लेने के लिये पात्र बनाया; अब प्रेम देने के योग्य बनाया। ... बांटो! लुटाओ! दोनों हाथ उलीचिये! फिर जिस पर नजर पड़ जाये, सिर्फ नजर ही न पड़े, उस पर प्रेम भी बरस जाये, मेघ बनो प्रेम के! वृक्ष को देखो तो सिर्फ देखना ही मत, आदान-प्रदान होने देना। वृक्ष ने अपनी हरियाली दी, तुम भी कुछ दो। वृक्ष ने अपने फूल दिये, तुम भी कुछ दो। वृक्ष ने अपने रंग तुम पर डाले, तुम भी कुछ अपना रंग दो। वृक्ष बेचारा इतना दे रहा है, तुम लिये-लिये चले जाओगे? लौटाओगे नहीं? प्रतिध्वनि न करोगे? तो तुम पत्थर हो। तो फिर यात्रा आधी रह गई।

इसलिये जिसने सिर्फ ध्यान साधा और प्रेम नहीं साधा, वह पथरीला हो जायेगा। वह बैठा रहेगा रसहीन, बहेगा नहीं! सरोवर हो जायेगा। स्वच्छ सरोवर। स्फटिक जैसा जल होगा उसका। मगर बहाव न हो तो जीवन नृत्य नहीं हो सकता, उत्सव नहीं हो सकता। बहो।

ध्यान सिखाता है थिर होना, प्रेम सिखाता है बहाव। और जब स्वच्छ जल बहता है तो उतरती है गंगा आकाश से। उसी क्षण तुम भर्तृहरि हो गये। उसी क्षण तुम्हारे भीतर अपूर्व ध्यान और अपूर्व प्रेम दोनों का जन्म होगा।

भर्तृहरि ने दो किताबें लिखी हैं--एक शृंगार शतक और एक वैराग्य शतक। तुम्हारे भीतर दोनों बातें एक साथ घट जायेंगी। तुम्हारे भीतर योग घटेगा, वैराग्य और तुम्हारे भीतर प्रेम घटेगा, शृंगार। तुम्हारे भीतर बुद्ध

जैसा ध्यान होगा, मीरा जैसा प्रेम होगा। और जिसके भीतर बुद्ध और मीरा का मिलन हो जाये, वह इस जगत के सर्वोच्च शिखर को छू लिया।

मैं चाहता हूं कि मेरे संन्यासी ऐसे हों कि बुद्ध जैसा उनका ध्यान हो और मीरा जैसा उनका प्रेम हो। इस अपूर्व घड़ी में--जब ध्यान और प्रेम का मिलन होता है, जब ध्यान और प्रेम का संगम होता है--तो एक तीसरी नदी सरस्वती भी आकर प्रगट होती है--जो और किसी को दिखाई नहीं पड़ेगी; सिर्फ उसी को दिखाई पड़ेगी, जिसने ध्यान और प्रेम को साध लिया। जिसने गंगा और यमुना साध लीं उसके जीवन में सरस्वती का आविर्भाव होगा। उसके प्रतीक रूप में ही हमने प्रयाग को तीर्थराज कहा है। और तो सब तीर्थ हैं--प्रयाग तीर्थराज! तीर्थों का तीर्थ! क्यों? वहां तीन नदियां मिल रही हैं, दो दिखाई पड़ती हैं, एक दिखाई नहीं पड़ती। यह सिर्फ प्रतीक है। यह अंतर्तम का प्रतीक है। ध्यान की नदी दिखाई पड़ती है, प्रेम की नदी दिखाई पड़ती है--फिर एक तीसरी नदी पैदा होती है, वह है साक्षी। प्रेम और ध्यान दोनों के प्रति साक्षी-भाव, वह दिखाई नहीं पड़ता। वह अदृश्यतम है। और वह सर्वाधिक बहुमूल्य है। सरस्वती!

सरस्वती है ज्ञान की देवी। साक्षी है ज्ञान का स्रोत, ज्ञान का देवता! वहीं से सारा ज्ञान जन्मा है--वेद, उपनिषद, कुरान, गीता, धम्मपद। सारा ज्ञान साक्षी-भाव से बहा है। मगर साक्षी तक वही पहुंचता है जिसने प्रेम और ध्यान को सम्हाल लिया।

भोगी भी चूक जाते हैं, तथाकथित योगी भी चूक जाते हैं। तुम कुछ ऐसे बनो जो दोनों को साथ-साथ जीओ--समानांतर। कठिन होगी यह यात्रा। मगर जितनी कठिन होगी, उतने ही मीठे फल होनेवाले हैं। बहुत मूल्य चुकाना होता है। लेकिन जो जितना मूल्य चुकाता है उतनी ऊंचाइयों पर उठ जाता है; उतनी ऊंचाइयों पर विराजमान हो जाता है।

परम आणंद भेउ जो जाणइ, खणहि सोवि सहज बुज्झइ।

"अपूर्व आनंद के भेद को जो जानता है, उसे सहज का ज्ञान एक क्षण में प्राप्त हो जाता है।"

भेद मैंने तुमसे कहा। भोग में ध्यान, योग में प्रेम--और तब साक्षी प्रगट होता है। यही राज है, यही विज्ञान है अंतर का। यही रसायन की प्रक्रिया है।

तिलोपा कहते हैंः परम आणंद भेउ जो जाणइ... । और जिसको परम आनंद का ऐसा भेद पता हो गया... खणहि सोवि सहज बुज्झइ। एक क्षण में क्रांति हो जाती है, समय नहीं लगता। एक क्षण में सहज का ज्ञान हो जाता है। एक क्षण में पहुंचना हो जाता है। एक क्षण में हम पहुंच क्यों सकते हैं और कैसे पहुंच सकते हैं, यह सवाल उठता है। एक क्षण में इसीलिये पहुंच सकते हैं, कि वहां हम पहले से ही पहुंचे हुए हैं, सिर्फ हमें होश नहीं है। अगर दूरी होती तो एक क्षण में तय नहीं हो सकती थी।

जैसे कि तुम यहां बैठे, एक क्षण में तुम न्यूयार्क नहीं पहुंच सकते और न पेकिंग पहुंच सकते हो। यात्रा करनी होगी। पूना और पेकिंग के बीच फासला है। लेकिन कोई बैठा-बैठा यहां मेरी बातें सुनते-सुनते सो गया और सपना देख रहा है कि पेकिंग में है; इसको एक क्षण में पूना लाया जा सकता है, जरा हिला दो। ऐसा नहीं है कि यह कहेगा कि अभी मैं कैसे आऊं, अभी मैं पेकिंग में हूं! अभी मैं बहुत दूर हूं! अभी हवाई जहाज पकड़नी पड़ेगी, टिकट खरीदनी पड़ेगी, जब मिलेगा, तब; अभी नहीं आ सकता। नहीं; जरा-सा हिला दो, एक क्षण में आ जायेगा।

वास्तविक यात्रा हो तो समय लगता है। लेकिन तुम वहां हो ही जहां तुम्हें होना है। यही तो सहज का अर्थ है। तुम वहां हो ही, वही जो तुम्हें होना है। यह तुम्हारा स्वभाव है। परमात्मा तुम्हारी सहजता है। सिर्फ सो गये हो, जरा सपना देखने लगे हो, जरा-सा कोई झकझोर दे।

खेल-खेल में तुम मन-मौजी गर हमको दो झटका एक
तो बस, उस इकटल्ले से ही हो जाये जीवन-कल्याण,
अब तो बहुत थक गये प्राण!

जरा-सा धक्का... वही तो गुरु करता है। गुरु कुछ लेता-देता थोड़े ही--जरा-सा धक्का! जरा झकझोर देना और नींद टूट गई और सपने बिखर गये और सत्य प्रगट हो गया!

पत्थर क्या विश्वास करेगा!
चाहे कितने पुष्प चढ़ाओ,
चाहे जितने दीप जलाओ!
जल-जल कर उर दीपक प्रतिपल
अपना ही तो नाश करेगा!
पत्थर क्या विश्वास करेगा!

क्या जाने यह मन की चाहें,
क्या जाने अंतर की दाहें!
प्राणों की मनुहारों का,
यह निर्मम क्या आभास करेगा!
पत्थर क्या विश्वास करेगा!

क्यों इस पर निज ममता वारूं,
क्यों इस पर निज क्षमता वारूं!
मेरी इस दुर्बलता का यह,
युग-युग तक उपहास करेगा!
पत्थर क्या विश्वास करेगा!

और तुम पत्थरों के सामने पूजा कर रहे हो। किसी सदगुरु को खोजो। पत्थर तुम्हें झकझोर नहीं सकते। पत्थर तुम्हें जगा नहीं सकते, खुद ही सोये हुए हैं। पत्थर तो निद्रा की आखिरी अवस्था है। पत्थरों के सामने दीये जला रहे, समय गंवा रहे। किसी सदगुरु को खोजो। कहीं जहां चैतन्य प्रगट हुआ हो, जहां दीया जल गया हो--वही तुम्हें जगा सकता है। जागा हुआ तुम्हें जगा सकता है।

तुम कारागृह के भीतर हो। जो कारागृह के बाहर हो, उससे संबंध जोड़ो। और माना कि बड़ी अड़चन होती है। कारागृह के भीतर जो है उसका संबंध बाहर से जुड़ना बड़ा कठिन मालूम होता है। सबसे बड़ी कठिनाई यही होती है कि कारागृह की भाषा अलग है, बाहर की भाषा अलग है। सोये की भाषा अलग, जागे की भाषा अलग। संवाद नहीं हो पाता। सोये की धारणायें अलग, जागे की धारणायें अलग। संबंध नहीं ज.ुड पाता। इसीलिये तो जागे हुए पुरुषों को हम कभी भी अंगीकार नहीं कर पाये। अंगीकार भी हमने उन्हें किया तो तभी

किया जब वे जा चुके थे। फिर हमने उनकी पत्थर की मूर्तियां बना लीं और सदियों तक पूजा हम करते हैं। जिंदा बुद्धों को इनकार करते हैं, मुर्दा बुद्धों की पूजा करते हैं। जैसे पत्थर की मूर्ति से हमारा संवाद ज्यादा आसान होता है! हम भी पत्थर हैं और मूर्ति भी पत्थर है; दोस्ती बन जाती है। बुद्धों से बड़ी मुश्किल हो जाती है।

हम कहते तो हैं कि हमें जगाओ, मगर सच में हम नहीं चाहते कि कोई हमें धक्का मारे, कोई हमें झकझोरे। हम चाहते तो हैं कि जाग जायें, मगर हम चाहते हैं कि हमारे सारे सुंदर सपने भी बच जायें और जाग भी जायें। हां, हम चाहते हैं कि दुख-स्वप्न छूट जायें, मगर सुंदर प्यारे सपने बच जायें! यह नहीं हो सकता। जागोगे तो सब सपने टूट जायेंगे--सुंदर-असुंदर, प्यारे-जहरीले, सब टूट जायेंगे।

हम शर्तें रखकर सदगुरु के पास जाते हैं, इसलिये धक्का नहीं लग पाता। हमारी शर्तों की दीवाल धक्कों को पी जाती है, हम तक नहीं पहुंचने देती। जो सारी शर्तें छोड़कर पहुंचता है, वही जाग सकता है।

जाति, रंग, देश से मनुष्य तू विभिन्न है!
कृष्ण, श्वेत, रक्त, पीत;
हो रहा तुझे प्रतीत!
आत्मा के वस्त्र सभी
अंग-अंग में पुनीत!
रंगों से ऊपर तू
एक वर्ण, एक रंग और अविच्छिन्न है!

तुझमें क्या जाति-भेद!
एक रुधिर एक स्वेद!
हे मनुष्य, बंधा हुआ
आज तक महान खेद!
उठ न अभी तक सका?
कौन शत्रु तेरा है? किससे तू भिन्न है?

घेर नगर, प्रांत देश,
आप बंध रहा अशेष;
हे असीम, अंतहीन
इतना क्यों क्षुद्र वेश!
क्या स्वदेश, क्या विदेश?
तेरा सम्पूर्ण भुवन, फिर क्यों तू खिन्न है?

थोड़ा जागो! थोड़ा क्षुद्र सीमायें छोड़ो! छोटे-छोटे आग्रह विदा करो। पक्षपात, धारणायें, अंधविश्वास हटाओ। तो शायद किसी जाग्रत से मिलन हो। तो किसी जाग्रत की जागृति तुम्हें झकझोरे। बस उतना ही काफी है। एक क्षण में घटना घट जाती है। एक ही क्षण में घटनी चाहिये, क्योंकि तुम जहां जाना चाह रहे हो वहां तुम हो ही, वहां तुम सदा से ही हो!

गुण दोस रहिअ एहु परमत्थ। सह संवेअण केवि णस्थ।

"परमार्थ अर्थात परम सत्य यही है जिसमें न गुण है न दोष। स्व-संबंध कुछ भी नहीं है--न गुण न दोष।"

परम सत्य एक ही है--तिलोपा कहते हैं--कि वहां न कोई गुण हैं न वहां कोई दोष; न कोई पाप, न कोई पुण्य; न कोई अच्छाई न कोई बुराई; न दिन न रात; न दृश्य न द्रष्टा। वहां सारे द्वंद्व समाप्त हो गये हैं। वहां कोई साधु नहीं है, वहां कोई असाधु नहीं है। वहां सारे द्वंद्वों के पार केवल साक्षी-भाव है। सिर्फ द्रष्टा मात्र रह गया है। द्रष्टा भी दृश्य के विपरीत नहीं। दृश्य के विपरीत जो द्रष्टा है, वह तो गया। सिर्फ बोध मात्र रह गया है। हूं, इतना बोध मात्र रह गया है। एक हुंकार है वहां। होने का एक भाव है। और विराट आकाश जैसा!

आकाश न कभी शुद्ध होता न अशुद्ध। देखा तुमने? काले बादल घिरते हैं तो आकाश काला नहीं हो जाता। और गोरे बादल घिरते हैं तो आकाश गोरा नहीं हो जाता। बादल आते हैं और जाते हैं, आकाश वैसा का वैसा। उसकी निर्दोषता, उसका कुंवारापन अखंड है। ऐसा ही आकाश तुम्हारे भीतर है चैतन्य का। वह भी अखंड है। वहां भी न कोई गुण है न कोई दोष है। इसको कहा तिलोपा ने परम सत्य।

और जब तक इसे न जान लो, रुकना मत। तब तक छोटी-मोटी बातों को सत्य मानकर मत रुक जाना। परम सत्य को न जान लो तब तक समझना कि अभी यात्रा शेष है, अभी और चलना, और चलना; अभी और चुकाना। और जो भी चुकाना पड़े चुकाना। अगर जीवन से भी मूल्य चुकाना पड़े तो चुकाना क्योंकि असली जीवन तभी शुरू होता है जब परम सत्य उपलब्ध हो जाता है।

साक्षी की भांति जो जीता है वह परमात्मा की भांति जीता है। और वही परम जीवन है। और वही आनंद है।

चित्ताचित्त विवज्जहु ण णित्त। सहज सरूएं करहु रे थित्त।

"चित्त और अचित्त को सदा के लिए त्याग दे और सहज स्वरूप में स्थित हो जा।"

"यह मेरा यह तेरा" छोड़ दो। यह मेरा-तेरा, मैं-तू छोड़ दो। यह भेद जाने दो। चित्त क्या है? अचित्त क्या है? चित्त है तुम्हारे भीतर विचार की प्रक्रिया और अचित्त है तुम्हारा तन, तुम्हारी देह। चित्त यानी चैतन्य। अचित्त यानी तुम्हारे भीतर जो जड़ देह है। न तो तुम देह हो और न तुम मन हो। तुम तन-मन दोनों के पार हो। न तो तुम गंगा हो, न तुम यमुना हो; तुम सरस्वती हो। उस तीसरे की याद करो। और धीरे-धीरे उस तीसरे के ही साथ लीन हो जाओ। उसी तीसरे में प्रतिष्ठित हो जाओ।

"चित्त और अचित्त को सदा के लिए त्याग दे और सहज स्वरूप में स्थित हो जा।"

आवइ जाइ कहवि ण णइ। गुरु उपएसें हिअहि समाइ।

बहुत प्यारा वचन है। वह परम तत्व, वह परम सत्य न तो कहीं से आता है न कहीं जाता है, न किसी स्थान पर ठहरा है। तथापि गुरु के उपदेश से वह हृदय में प्रविष्ट होता है। वह परम सत्य न आता न जाता। आए तो कहां से, क्योंकि सभी जगह वही है? जाये तो कहां, क्योंकि सभी जगह वही है? वह परम तत्व सर्वव्यापी है। सब कुछ उसी में समाया हुआ है। जैसे आकाश, आकाश आये तो कहां से, जाये तो कहां? न आना न जाना। लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि आकाश ठहरा हुआ है, क्योंकि ठहरता तो वही है जो आ सकता है और जा सकता है। ठहरना तो आने-जाने के बीच का पड़ाव है। इसलिये आकाश को हम यह भी नहीं कह सकते कि ठहरा हुआ है। आकाश हमारे सारे शब्दों के पार है।

ऐसा ही साक्षी है। ऐसा ही तुम्हारे भीतर का अंतराकाश है। न कहीं से आता न कहीं जाता, लेकिन फिर भी एक चमत्कार घटता है--"तथापि गुरु के उपदेश से वह हृदय में प्रविष्ट होता है।" गुरु कौन? गुरु वह, जो मिट

गया है। गुरु वह, जो नहीं है। गुरु वह, जिसके भीतर अब कोई मैं-भाव नहीं है, सिर्फ हुंकार है, सिर्फ हूं-भाव है। गुरु वह, जो साक्षी में जाग गया है। गुरु वह, जो साक्षी की अदृश्य सरस्वती हो गया है।

गुरु एक अदृश्य अवस्था है; सिर्फ शिष्यों की पहचान में आती है, दर्शकों की पहचान में नहीं आ सकती। दर्शकों को तो गंगा दिखाई पड़ती है, यमुना दिखाई पड़ती है। भक्तों को सरस्वती का अनुभव होता है। इसलिए अड़चन है, बड़ी अड़चन है। शिष्य अगर समझाना चाहे तो समझा नहीं सकता। जो मेरे प्रेम में हैं, वे अगर मेरे संबंध में किसी को कुछ भी समझाना चाहें, न समझा सकेंगे। क्योंकि वे कहेंगे कुछ, सुननेवाला सुनेगा कुछ। वे कहेंगे सरस्वती की बात, सुनने वाला समझेगा यमुना-गंगा की बात। और सरस्वती के लक्षण गंगा-यमुना के लक्षण से मेल नहीं खाते। गंगा-यमुना का जल है, रंग है, धार है, रूप है; वे व्याख्य हैं। सरस्वती का न कोई रंग है, न रूप है; सरस्वती अव्याख्य है।

शिष्य को अव्याख्य की प्रतीति होती है। भक्त को ही प्रतीति होती है। वह तो प्रेम की आत्यंतिक घड़ी में ही अनुभव होता है कि वहां जो बोल रहा है, वह जो गुरु है, जो उपदेश दे रहा है, वह है नहीं; उसके भीतर से परमात्मा बोल रहा है। लेकिन यह तो जानने के लिये बड़ी सूक्ष्म आंख चाहिये, बड़ी निकटता चाहिए, बड़ा निष्कपट भाव चाहिये। इसलिए कोई शिष्य कभी अपने गुरु के संबंध में दुनिया को कुछ समझा नहीं सके। गूंगे का गुड़ हो जाता है!

लेकिन चमत्कार, तिलोपा कहते हैं, घटता है। जो न आता है न जाता है, वह भी गुरु के उपदेश से शिष्य के हृदय में समा जाता है।

उपदेश का अर्थ भी समझना। "उपदेश" शब्द बड़ा प्यारा है। देश का अर्थ होता हैः स्थान। उपदेश का अर्थ होता हैः उस स्थान में बैठना, उस स्थान में जुड़ना। उपदेश का अर्थ, जो कहा जाता है वह नहीं; उपदेश का अर्थ होता है गुरु की सन्निधि, निकट वास, सत्संग। सत्संग बोलकर भी होता है, अबोल भी होता है। असली सत्संग तो अबोल ही होता है। जब गुरु बोलता भी है, तब भी उसके बोलने में तीनों बातें होती हैं--गंगा-यमुना के रंग के शब्द होते हैं, और शब्दों के बीच में सरस्वती की अदृश्य धारा होती है।

शिष्य वह है जो गुरु के शब्दों को ही नहीं सुनता, शब्दों के बीच में शून्य को भी सुनता है। गुरु की पंक्तियां ही नहीं पढ़ता, पंक्तियों के बीच-बीच में रिक्त स्थान भी पढ़ता है। और तभी सरस्वती की पकड़ आती है। और सरस्वती की पकड़ ही असली बात है।

उपदेश का अर्थ होता हैः पास बैठना। यही उपासना का अर्थ होता है। यही उपवास का अर्थ होता है। यही उपनिषद का अर्थ होता हैः पास बैठना!

और पास बैठना बड़ी कला है। यह कला पूर्व में ही विकसित हुई, पश्चिम को इसका कुछ भी पता नहीं है। पश्चिम जानता है संभाषण, संवाद; गुरु बोले, शिष्य सुने। पूर्व जानता है वह घड़ी भी कि न गुरु बोले न शिष्य सुने--और बोलना भी हो जाए और सुनना भी हो जाए! चुप-चुप हो जाए! मौन में घट जाए! हृदय से हृदय मिले। बोलना तो मस्तिष्क के बीच आदान-प्रदान है। मौन में हृदय और हृदय का मिलन होता है। और वहीं संप्रेषण है और वहीं जागता है वह जो सोया था। वहीं समाता है वह जो आता है न जाता है।

यदि मेरे नन्हे हाथों में अर्चन का सामान नहीं था,
कैसे कह दूं इन प्राणों में पूजन का अरमान नहीं था।

शिष्य बोलता नहीं, लेकिन अबोल उसकी अर्चना है। गुरु बोलता नहीं, लेकिन मौन उसकी देशना है। मगर यह मौन देशना सिर्फ मौन शिष्य को ही समझ में आ सकती है। इसलिए गुरु का पहला पाठ है कि तुम्हें ध्यान सिखाए, मौन सिखाए, चुप होने का शास्त्र सिखाए।

यदि मेरे नन्हे हाथों में अर्चन का सामान नहीं था,
कैसे कह दूं इन प्राणों में पूजन का अरमान नहीं था।
मन मंदिर में बाला था वह,
मैंने प्रेम प्रदीप अनोखा।
जिसे बुझाने में निष्फल था,
निष्ठुर झंझा का भी झोंका।
तब छवि देखी और विमोहित अधर न यदि हिल पाए मेरे,
कैसे कह दूं इन प्राणों में प्रिय तेरा गुणगान नहीं था।

अर्चना की नहीं जाती--और हो जाती है। गुणगान किया नहीं जाता--और हो जाता है। निवेदन शब्द नहीं बनता और सिर झुक जाते हैं। तब कोई शिष्य... ।

यदि मेरे नन्हे हाथों में अर्चन का सामान नहीं था,
कैसे कह दूं इन प्राणों में पूजन का अरमान नहीं था।

मन मंदिर में बाला था वह,
मैंने प्रेम प्रदीप अनोखा
जिसे बुझाने में निष्फल था,
निष्ठुर झंझा का भी झोंका।
तब छवि देखी और विमोहित अधर न यदि हिल पाए मेरे,
कैसे कह दूं इन प्राणों में प्रिय तेरा गुणगान नहीं था।

कब से पलकें बनी हुई थीं,
आशा का सुकुमार बिछौना।
कब से आंखें अकुलाई थीं,
जैसे आकुल हो मृग छौना।
जिस लघुता की अवहेला की, तूने भी मुसका मुसका कर,
अपनी उस लघुता पर भी तो मुझको कब अभिमान नहीं था?

मेरे नयनों के निर्झर ने,
तुझ पर अपना जीवन वारा।
मेरे अंतर की आहों ने,
तुझको सौ सौ बार पुकारा।
कैसे तुझको रिझा न पाया इन प्राणों का मौन समर्पण,

पाषाणों में रहने वाले, प्रिय! तू तो पाषाण नहीं था।

सदगुरु मिला तो बुद्धों और महावीर की पाषाणों की प्रतिमाओं में जो छिपा था वह प्रगट मिला। लेकिन उसके पास पूजा के थाल नहीं ले जाने हैं; हां, हृदय का थाल जरूर ले जाना है। उसके पास शब्दों की प्रार्थनाएं नहीं करनी हैं, लेकिन मौन भाव जरूर निवेदन करना है। उसके पास आंख बंद करके बैठना है। उसके पास झुके-झुके बैठना है। उसके पास झोली फैलाकर बैठना है। फिर कुछ घटता है--अघट घटता है। नहीं घटना चाहिए, वह घटता है। जो आता नहीं, जाता नहीं--वह अचानक एक महान लहर की तरह, एक बाढ़ की तरह हृदय को आपूरित कर देता है।

और ध्यान रखना, गुरु कुछ देता नहीं; तुम्हारे भीतर ही जो सोया पड़ा था उसी को जगाता है, उसी को पुकारता है गुरु केवल पुकार देता है।

मैं तुम्हें परिचित सदा,
फिर तुम मुझे अनजान क्यों हो?

जानती हूं दीप मैं हूं,
और तुम आलोक नूतन!
जानती हूं देह मैं हूं,
और तुम हो दिव्य चेतन!
फिर तुम्हारे और मेरे,
बीच में व्यवधान क्यों हो?
मैं तुम्हें परिचित सदा,
फिर तुम मुझे अनजान क्यों हो?

ले तुम्हीं से ज्योति जग में,
बांट रवि दानी कहाया!
बन सके जग प्राण, तुमसे--
वायु ने वरदान पाया!
रजकणों में चेतना भर,
तुम बने पाषाण क्यों हो?
मैं तुम्हें परिचित सदा,
फिर तुम मुझे अनजान क्यों हो?

ऐसे निवेदन लेकर जब कोई शिष्य झुकता है तो भर जाता है--सदा के लिए भर जाता है! फिर कभी खाली नहीं हो पाता। इतने शून्य भाव से झुकना है, इतने अपूर्व प्रेम से झुकना है। इतनी समग्रता से जब समर्पण होता है तो उसी शून्य में पूर्ण का आविर्भाव हो जाता है।

कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर?
चन्द्र किरणें ले गईं जो
नयन के मोती चुरा कर,

अब बिखरते जा रहे हैं
वे अधर पर हास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर?

जिन दृगों की नीड़ में
लेते रहे सपने बसेरा,
अब वहां पर हैं विहंसती
सजगता विश्वास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर?

क्यों न पिक पंचम स्वरों में
गाए मेरा गान मधुमय,
आज पतझड़ भी यहां पर
आ गया मधुमास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर?

जिस हृदय में युग युगों से
याचना के गान पनपे,
अर्चना का गीत मुखरित
है वहां प्रतिश्वास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर?

कौन स्पंदित हो उठा है
आज फिर सूने हृदय में,
कौन छाया भाव भू पर
विमल शरदाकाश बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर?

पहली बार जब ज्योति लपटती है, पहली बार जब भीतर का अंकुर उमगता है, पहली बार जब समाधि बरसती है--तो भरोसा ही नहीं आता! भरोसा नहीं आता कि क्या घट रहा है! अघट घट रहा है!

क्यों न पिक पंचम स्वरों में
गाए मेरा गान मधुमय,
आज पतझड़ भी यहां पर
आ गया मधुमास बनकर,
कौन प्राणों में समाया जा रहा उल्लास बनकर?

पतझड़ एक क्षण में मधुमास हो जाता है। मृत्यु एक क्षण में परम जीवन हो जाती है। अंधेरा रोशनी हो जाता है। रात कट गई, सुबह आ गई--और ऐसी सुबह जो फिर कभी मिटती नहीं; और ऐसा सूर्योदय जिसका कोई सूर्यास्त नहीं!

आवइ जाइ कहवि ण णइ। गुरु उपएसे हिअहि समाइ।।

गुरु के पास बैठकर, गुरु के इशारों, इंगित पर चलकर, गुरु के साथ नाचकर, गुरु के साथ गाकर, गुरु के साथ होकर--जो न आता न जाता, वह हृदय में समा उठता है। और तब जीवन में गीत ही गीत हो जाते हैं। तब जीवन में फूल ही फूल हो जाते हैं।

एक सूनी-सी दिशा से सुन पड़ा कुछ ललित मृदु स्वर,
थी किसी की कण्ठ-ध्वनि वह, था किसी का गान मनहर!

कण्ठ स्वर के संग ही कुछ मींड-मय झंकार आयी,
गान गंगा में मुदित मन वीण-यमुना धार धायी
कुछ सुपरिचित-सा लगा वह कण्ठ गायन-भारवाही,
थी किसी कर की सुपरिचित अंगुलियों में वीण थर-थर!
सुन पड़ा कुछ हिय-हरण स्वर!

मुड़ गयी ग्रीवा उधर को, खिंच गये लोचन बेचारे,
किन्तु उस सूनी दिशा को देख हारे दृग हमारे;
विफल अन्वेषण-उदधि में तैर उट्ठे नयन-तारे;
शून्य में दृग-किरण बिखरी झर उठे अरमान झर-झर!
सुन पड़ा जब हिय-हरण स्वर!

ओ अनिश्चित-सी दिशा से उद्गता तू गान-धारा, --
क्यों समायी है श्रवण में? विकल है यह हिय बिचारा;
सुरत-स्मृतियों का जगा यह आज फिर संसार सारा;
देखना, क्या बीतती है अब हमारे प्राण, मन पर;
सुन पड़ा है जब मृदुल-स्वर!

हम कभी का ले चुके थे छन्द-स्वर-संन्यास मन में,
हम विरागी बन चुके थे, मल चुके थे भस्म तन में;
किन्तु गायन धार, तूने धो दिया वैराग्य क्षण में;
हो गये फिर से वही हम एक मजनूं घूम-फिरकर;
सुन पड़ा जब हिय-हरण स्वर!

एक बार जब हृदय को हर लेने वाला वह स्वर सुनाई पड़ता है, तो छूट जाता है सब विराग, छूट जाता है सब राग; छूट जाता है योग, छूट जाता है भोग; छूट जाते हैं सब द्वंद्व। फिर साक्षी की मस्ती है--ऐसी मस्ती,

जिससे तुम अभी परिचित नहीं; ऐसी मस्ती जिससे परिचित होना है! होना ही है! जिससे बिना परिचित हुए विदा नहीं हो जाना है, अन्यथा एक जीवन फिर व्यर्थ गया।

हउ सुण जुग सुण तिहुअण सुण। णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण।।

"मैं भी शून्य हूं, जगत भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है। महासुख निर्मल सहज स्वरूप है। न वहां पाप है न पुण्य।"... तिलोपा का अंतिम वचन। शिष्य ने जान लिया गुरु के पास बैठ-बैठकर जो जानने योग्य है। क्या है वह जानने योग्य? शून्य भाव, शून्याकाश। न जहां कुछ पाप है न जहां कुछ पुण्य है। प्रगट हुई सरस्वती। अदृश्य उतरा।

हउ सुण जुग सुण तिहुअण सुण। तब सब शून्य रह जाता है। मैं भी शून्य, जगत भी शून्य, त्रिभुवन भी शून्य।

शून्य का क्या अर्थ है? शून्य का अर्थ नहीं है कि सब मिट गया। शून्य का अर्थ है सब सीमाएं मिट गईं। शून्य का अर्थ हैः सब भेद मिट गए। शून्य का अर्थ हैः सब संयुक्त हो गया। अब किस को आदमी कहें और किस को पत्थर कहें और किस को वृक्ष कहें! किस को स्त्री कहें! किस को जवान, किस को बूढ़ा, किस को जीवित किस को मृत! भेद न रहे, परिभाषाएं न रहीं, सब एक-दूसरे में लीन हो गया। एक ही बचा। अव्याख्य बचा।

शून्य से ऐसा मत समझ लेना जैसे बहुतों ने गलती से समझ लिया है कि शून्य कोई नकार है। शून्य नकार नहीं है। शून्य पूर्ण का ही दूसरा नाम है। शून्य शून्य नहीं है। शून्य का मतलब जीरो मत समझ लेना। शून्य तो पूर्ण का गर्भ है। शून्य में से ही सब उठता है और शून्य में ही सब लीन हो जाता है; जैसे आकाश से ही बादल उठते और फिर आकाश में ही लीन हो जाते हैं।

इस शून्य में ही सब समाया हुआ है। यह शून्य तुम्हारे भीतर भी है। जिस दिन पहचान लोगे उसी दिन मुक्त हो जाओगे। उसी दिन तुम्हारे पंख खुल जाएंगे आकाश में। जब तक उसे नहीं पहचाना, जब तक उसे नहीं जाना, तब तक दुख है, नर्क है। तब तक तुम एक पक्षी हो जो पींजड़े में बंद है।

लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

अंतर में संघर्ष छिपाए,
तेरा जीवन जलता होगा!
हासों में छिप क्रन्दन तेरा,
भोले जग को छलता होगा!
पर अनजाने में तो तेरी,
अंखियां भी भर आती होंगी!
लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

जग की खुशियों पर न्योछावर,
होंगी कब तक तेरी चाहें!
पलकों के डोरों से कब तक,

नापेगा जीवन की राहें?
सोच रही हूं बुझती कितनी--
यों ही जीवन-बाती होंगी!
लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

जागृति का सन्देश लिये जब,
लेती होगी वायु हिलोरें!
ऊषा की आभा से रक्तिम,
होती होंगी नभ की कोरें!
जग के आंगन में जब चिड़ियां,
गाती मधुर प्रभाती होंगी!
लोहे की दीवारें, पंछी!
कैसे तुझे सुहाती होंगी?

मैं गा रहा हूं प्रभाती। जागो! यह जीवन-बाती तुम्हारी ऐसे ही नष्ट न हो जाए, पुकारता हूं, सुनो। इस जीवन को सार्थक कर लेना है। इस जीवन को मधुमय कर लेना है। यह जीवन पतझड़ ही न रह जाए, इसे मधुमास कर लेना है। सूत्र : भोग में योग, योग में भोग--और तब जागेगा साक्षी--और तुम बन जाओगे तीर्थराज।

आज इतना ही।

सत्रहवां प्रवचन

भाई, आज बजी शहनाई

पहला प्रश्नः ओशो! "नयी दिल्ली" नामक अंग्रेजी पत्रिका में हाल ही में आश्रम में चलने वाली समूह-मनोचिकित्सा संबंधी कई चित्र प्रकाशित हुए हैं। जिनको लेकर समाचार-पत्रों तथा अन्यत्र भी काफी चर्चा है, कुछ गलतफहमी भी। मेरे दिल्ली प्रवास के समय वहां के कई संपादक मुझ से पूछते थे कि आप इस संबंध में क्या कहते हैं? कृपापूर्वक इस पर कुछ कहें।

कृष्ण प्रेम! नग्नता मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। परमात्मा ने मनुष्य को नग्न ही बनाया है। वस्त्र तो आदमी की ईजाद है। नग्नता को अस्वीकार करना परमात्मा को अस्वीकार करना है। और वस्त्रों की ईजाद सुविधा के लिए हो, तब तो ठीक। सर्दी हो और कोई वस्त्र पहने, प्रकृति से बचाव के लिए कोई वस्त्र पहने; लेकिन वस्त्रों की मौलिक ईजाद प्रकृति से बचने के लिए नहीं है, अपने को छिपाने के लिए है। वस्त्रों के पीछे पाखंड है। इसलिए जब भी कोई नग्न खड़ा होगा, तो तुम्हारे पाखंड को चोट लगती है।

महावीर नग्न हुए, बहुत विरोध हुआ। उससे भी ज्यादा विरोध हुआ जब लल्ला, कश्मीर की फकीर स्त्री, नग्न हुई। मगर ये इक्के-दुक्के लोग थे। हमने किसी तरह सह लिया।

मेरी दृष्टि में नग्नता सहज स्वाभाविक होनी चाहिए। और जब भी सुविधा हो, व्यक्तियों को नग्न होने का नैसर्गिक अधिकार होना चाहिए। वस्त्र छिपाते हैं। और छिपाने में ही सारी पोर्नोग्रैफी है। छिपाने में ही अश्लीलता है। आदिवासियों में कोई अश्लीलता न मिलेगी, क्योंकि वे नग्न हैं। जितना छिपाओगे, उतनी अश्लीलता मिलेगी। क्योंकि जितना छिपाओगे, उतना दूसरों के मन में कल्पना को जन्म मिलता है--कि पता नहीं जो छिपाया गया है, कितना रसपूर्ण होगा!

छिपाने से रस पैदा होता है, विकृति पैदा होती हैं। जिस चीज को भी हम छिपा लेते हैं, उसे देखने की आतुरता पैदा होती है। बुर्का डालकर, घूंघट डालकर एक स्त्री रास्ते से निकलती है, लोग झुक-झुककर देखने लगते हैं। वही स्त्री बिना बुर्का डाले निकलती है, कोई उसके चेहरे पर ध्यान नहीं देता। स्त्री की तो छोड़ दो, तुम किसी पुरुष को बुर्का पहनाकर निकाल दो रास्ते से और लोग आतुर हो जायेंगे और पीछे चलने लगेंगे। हजार काम छोड़कर देखने की उत्सुकता पैदा हो जायेगी। बुर्के में राज है। जो छिपा है, वह सहज ही जिज्ञासा पैदा करता है। कल्पना भी उसी से जन्मती है। तो थोड़ा छिपाओ और थोड़ा प्रगट रखो--यह अश्लीलता का सूत्र है। जरा-सा प्रगट करो और जरा-सा छिपाये रखो, तो जो प्रगट है वह छिपा है, उसके संबंध में जिज्ञासा को जन्माता रहेगा।

आदिवासी नग्न रहते हैं। न स्त्रियों को चिंता है पुरुषों की, न पुरुषों को चिंता है स्त्रियों की। सारे पशु नग्न हैं। वृक्ष नग्न हैं। तुम्हें कोई अड़चन नहीं हो रही है। मनुष्य को क्या हो गया है?

ईसाइयों की कहानी कहती है कि जैसे ही अदम और ईव ने ज्ञान के वृक्ष का फल खाया, जो पहली बात उन्हें याद आयी वह थी अपनी नग्नता। उन्होंने जल्दी से पत्ते उठाकर अपनी नग्नता ढांक ली। यह कहानी प्रीतिकर है, अर्थपूर्ण है। ज्ञान का फल खाया। जैसे ही अहंकार जगा--ज्ञान का फल अहंकार जगाता है--और

इसलिए अदम और ईव को परमात्मा ने स्वर्ग के राज्य से बाहर निकाल दिया। क्योंकि उनमें अहंकार का जन्म हो चुका था। और जहां अहंकार का जन्म होता है, वहां छिपावट, दुराव पैदा होता है।

मैं समस्त दुराव का दुश्मन हूं। मैं समस्त छिपाव का विरोधी हूं। मैं चाहता हूं कि तुम न केवल शारीरिक अर्थों में, मानसिक अर्थों में, आध्यात्मिक अर्थों में सब तलों पर नग्न होने की सामर्थ्य जुटाओ। परमात्मा के सामने नग्न होना है सब तलों पर... । तुम जैसे हो वैसे ही अपने को प्रगट करो। छिपाने से कुछ भी न होगा।

फिर छिपाने के पीछे तुम बीमारियां देखते हो, रोग देखते हो? एक तरफ हम छिपाते हैं; लेकिन जरा गौर से देखो कि जो हम छिपाते हैं, उसी को हम और उभार कर दिखाना चाहते हैं। स्त्रियां स्तन छिपाती हैं। लेकिन छिपाती हैं या उभारती हैं? स्तनों को उभारने के लिए कितने अंग-वस्त्र ईजाद किये जाते हैं, ताकि स्तन सुडौल मालूम पड़ें, बड़े मालूम पड़ें, स्पष्ट दिखाई पड़ें। एक तरफ छिपा रहे हो वस्त्रों में, दूसरी तरफ उभारकर दिखला रहे हो, उछाल रहे हो।

तुम जानकर चकित होओगे, यूनान में और रोम में ठीक इसी तरह की बीमारी अतीत में आदमियों को पैदा हुई थी। तो वे अपनी जनेंद्रिय पर एक चमड़ा चढ़ा लेते थे। चमड़े की एक खोल पहन लेते थे। ऊपर से वस्त्र पहनते, अंदर चमड़े की खोल जनेंद्रिय पर पहन लेते थे, ताकि वस्त्रों के ऊपर से जनेंद्रिय का बड़ा रूप दिखाई पड़ता रहे। इसको तुम रुग्ण कहोगे, या स्वस्थ कहोगे?

स्त्रियों के स्तन के संबंध में भी कुछ भेद नहीं है, यही बात है। झूठे स्तन बाजार में बिकते हैं--रबर और फोम के। झूठे नितंब भी बाजार में बिकते हैं। ऊपर से वस्त्र हैं, भीतर झूठे नितंब हैं, झूठे स्तन हैं। एक तरफ छिपाने का खेल चल रहा है, दूसरी तरफ उछालने का खेल चल रहा है।

कल मैंने अखबार में देखा, लोकसभा में स्त्रियों के अंग-वस्त्रों पर कुछ चर्चा चली। तो मोहन धारिया ने कहा कि जिनको भी इस संबंध में ठीक से समझना हो, वे श्री रजनीश आश्रम, पूना जायें।

मैं स्वागत करता हूं, लोकसभा के सारे मित्र यहां आयें। यह तो उन्होंने व्यंग्य में कहा है। लेकिन मैं निश्चित कहता हूं, उन्हें समझना हो कुछ भी जीवन के संबंध में तो यहां आयें। मोहन धारिया तो पूना ही रहते हैं, कभी आये नहीं यहां। पूछते हैं जो भी मिलता है उससे आश्रम के संबंध में, आने की हिम्मत नहीं जुटाते यहां! इस आश्रम के द्वार पर कमजोरों का काम नहीं है। इतनी भी हिम्मत नहीं जुटाते कि आकर यहां देख लें। पूना ही रहते हैं, पूना ही घर है। लोकसभा में दूसरों को निमंत्रण दे रहे हैं, खुद कभी यहां आये नहीं। और ऐसा भी नहीं है कि पूछ-ताछ नहीं करते। जो भी आश्रम से संबंधित है, उनसे संबंधित है, प्रत्येक से पूछ-ताछ करते हैं कि क्या वहां हो रहा है?

एक पाखंड का लंबा सिलसिला है। उस पाखंड के कारण जरा-जरा सी बातों से उपद्रव हो जाते हैं।

नयी दिल्ली पत्रिका में लीला नाम के समूह-चिकित्सा के प्रयोग के कुछ नग्न चित्र छपे हैं। उससे बहुत उपद्रव मच गया है--बिना समझे बिना बूझे! चित्र भी सब चुराये हुए हैं। क्योंकि चित्र जिसने लिये थे, जिस जर्मन पत्रकार ने, वह अब संन्यासी है। स्टर्न के जर्मन पत्रकार सत्यानंद ने उन चित्रों को लिया था और जर्मनी की पत्रिका स्टर्न में बड़ी महत्वपूर्ण व्याख्या के साथ उन चित्रों को छापा है। व्याख्या तो छोड़ दी नयी दिल्ली की पत्रिका ने; सिर्फ चित्र छाप दिये हैं बिना किसी व्याख्या के; बिना समझाये कि ये क्या हैं और क्या हो रहा है।

ये जालसाजियां हैं। यह अनैतिक व्यवहार है। यह अशोभन, अलोकतांत्रिक व्यवहार है। यह न्याययुक्त बात नहीं है। एक तो चित्र चुराये हैं, स्टर्न से कोई आज्ञा नहीं ली है--जो कि अंतर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन है। फिर बिना व्याख्या के छाप दिये हैं--जो कि अनीतिपूर्ण है। उनकी व्याख्या में ही उनका अर्थ छिपा है। सिर्फ चित्र

को छाप देने से कुछ भी न होगा। चित्र को छापकर तो सिर्फ लोगों को भड़काने की चेष्टा की जाती है। और इस देश में इतना गहन अज्ञान है, और इस देश में इतना गहन दमन है कि हर छोटी-मोटी चीज लोगों को भड़का देती है।

पहली तो बात, मनुष्य ने वस्त्रों को ओढ़-ओढ़कर अपने को खूब मिस्टिफाई कर लिया है, खूब रहस्यमय बना दिया है। मैं उस रहस्य को तोड़ देना चाहता हूं। वह रहस्य पोर्नोग्रैफी का जन्मदाता है, अश्लीलता का जन्मदाता है। जैसे ही कोई व्यक्ति नग्न हो जाता है डि-मिस्टिफाई हो जाता है, उसका रहस्य विलीन हो जाता है।

तुम्हें खुद भी अनुभव होगा। इसलिए तो तुम्हें अपनी पत्नी में कोई रस नहीं रह जाता, अपने पति में कोई रस नहीं रह जाता; लेकिन पड़ोस की पत्नी में रस होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन घर आया और उसने देखा, उसका निकटतम मित्र उसकी पत्नी का आलिंगन कर रहा है। उसने तो एकदम सिर पीट लिया। मुल्ला ने सिर पीट लिया और कहा कि मैं हैरान हूं, तू यह क्यों कर रहा है, मुझे तो करना पड़ता है!

पत्नियों में क्यों रस समाप्त हो जाता है, कारण तुमने खोजा है? तुम उनकी देह से परिचित हो गये हो। रहस्य खो गया। जिज्ञासा का कोई अर्थ नहीं रहा। कल्पना को खुलकर खेलने का कोई मौका नहीं रहा। लेकिन पड़ोसी की पत्नी है, उसके संबंध में कल्पना को खेलने का मौका है।

नग्न व्यक्ति को कितनी देर तक देखते रहोगे? थोड़ी देर बाद पाओगे, बात खतम हो गयी। आखिर नग्न व्यक्ति में क्या हो सकता है? जो होता है वस्त्रों में। वस्त्रों की छिपावट में सारी अश्लीलता का राज छिपा है।

दुनिया से अश्लीलता न मिटेगी, जब तक नग्नता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार स्वीकृत नहीं हो जाता।

और फिर ये चित्र तो कोई सामूहिक स्थानों पर नहीं लिये गये हैं। ये तो समूह-चिकित्सा में, बंद कमरों में हुए प्रयोगों के चित्र हैं। इससे किसी को कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए। फिर इन चित्रों के पीछे क्या प्रक्रिया है उसको समझने की चेष्टा करनी चाहिए। ये चित्र कोई संभोग के चित्र नहीं हैं। इन चित्रों में स्त्री और पुरुष नग्न हैं, क्योंकि नग्नता में एक मुक्तिदायी तत्व है। जैसे ही तुम बहुत-सी स्त्रियों और बहुत-से पुरुषों को नग्न देख लेते हो, वैसे ही तुम्हारे मन में जो सदा दूसरों को नग्न देखने की आतुरता छिपी है, वह विलीन हो जाती है। उसका विलीन होना बड़ा मुक्तिदायी है। उसके विलीन होने से ही एक कामातुरता नष्ट हो जाती है। तुम सहज, सरल, निश्चल हो जाते हो। तुम्हारे पीछे जो एक रोग पड़ा था, तुम्हारे स्वप्नों में जो नग्न स्त्रियां आ रही थीं और गीता में जो तुम फिल्मी पत्रिकाएं छिपा-छिपाकर पढ़ रहे थे--वह सब बंद हो जाता है। इससे एक बड़ी निश्छल स्वतंत्रता उपलब्ध होती है। एक सरलता आती है, जो छोटे बच्चों में होती है।

आखिर स्तन स्तन हैं। जननेंद्रियां जननेंद्रियां हैं। नितंब नितंब हैं। उनमें कुछ भी नहीं है। उनमें कुछ होना भी नहीं चाहिए। लेकिन छिपाने के कारण बहुत कुछ हो गया है।

तुम जरा अपने दरवाजे पर एक तख्ती लगा दो कि यहां झांकना मना है। फिर उस रास्ते से एक भी इतना हिम्मतवर आदमी न निकल सकेगा, जो बिना झांके निकल जाये।

एक मेरे मित्र हैं; उनके मकान की दीवाल के पास लोग पेशाब कर जाते थे। उन्होंने मुझ से कहाः मैंने कहाः तुम एक बड़ी तख्ती लगा दो कि यहां पेशाब करना सख्त मना है। उन्होंने तख्ती लगा दी। पांच-सात दिन बाद मेरे पास आये और बोलेः आपने और मुसीबत कर दी! जो बिना पेशाब किये निकलते थे, वे भी करने लगे।

क्योंकि जब तख्ती पढ़ी कि यहां पेशाब करना सख्त मना है, तो अड़चन पैदा हो जाती है, एकदम याद आ जाती है--जिनको याद नहीं भी थी; जो अपने मजे से काम पर चले जा रहे थे।

मैं रोज सुनता हूं, जैसे ही मैत्रेय जी खड़े होते हैं, मुझे पता चल जाता है कि वह खड़े हो गये, क्योंकि लोग एकदम खांसने लगते हैं। उनकी आवाज तो बाद में सुनाई पड़ती है, लेकिन तुम्हारी खांसी की आवाज सुनकर मैं समझ जाता हूं कि मैत्रेय जी खड़े हो गये। उन्हें देखकर ही... उसके पहले तुम बिल्कुल शांत बैठे थे, न कोई गले में खराश थी, न कोई खांसी थी। लेकिन मैत्रेय जी क्या खड़े हुए, बस एकदम सबके गले में खराश हो जाती है! इसे तुम रोज देखते हो, रोज अनुभव करते हो।

निषेध में एक तरह का निमंत्रण हो जाता हैं। वस्त्रों ने निषेध पैदा कर दिया है और निमंत्रण पैदा कर दिया है।

मोहन धारिया को जरूर मैं कहता हूंः आओ और दिल्ली के बाकी पागलों को भी अपने साथ ले आओ।

यहां पश्चिम से मेरी संन्यासिनियां हैं, वे किसी तरह का अंग-वस्त्र नहीं पहनतीं। भारतीय स्त्रियों को अड़चन होती है। मुझसे एक-दो भारतीय स्त्रियों ने कहा है कि आप पश्चिमी संन्यासी स्त्रियों को क्यों नहीं कहते कि बाडी पहनें, अंगिया पहनें। लेकिन बाडी या अंगिया तो सिर्फ अंगों को उभारने के लिए पहनी जाती हैं। वह तो जो स्तन ढल गये हैं, नहीं ढले हैं ऐसा दिखलाने के लिए पहनी जाती हैं। लेकिन भारतीय स्त्रियां सोचती हैं कि उसमें शील है, लाज है, संकोच है। उल्टी बात है। उन्होंने, मेरी पाश्चात्य संन्यासिनियों ने अंग-वस्त्र छोड़ दिया है, क्योंकि उसमें लाज नहीं है, अश्लीलता है। उसमें निमंत्रण है। उसमें दूसरे की आंखों पर हमला है। तुम्हारे उभरे हुए स्तन सिर्फ दूसरों के भीतर लुच्चाई पैदा करते हैं और कुछ भी नहीं।

लुच्चे का मतलब--घूर-घूरकर देखने की आकांक्षा पैदा करते हैं।

लुच्चा शब्द बनता है "लोचन" से आंख से। और जैसे ही तुम्हारे अंग-वस्त्रों में उभरे हुए झूठे स्तन कोई देखता है, उसकी आंख अटक जाती है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि सारी दुनिया के लोगों का यह अनुभव है कि भारतीय स्त्रियां दुनिया की किसी भी जाति की स्त्रियों से ज्यादा आकर्षक मालूम होती हैं! राज? राज है उनकी धोती, राज है उनकी साड़ी, उनके अंग-वस्त्र। छिपा-छिपाकर लाज में सकुची-सकुची चलती हैं। जितनी छिपी-छिपी हैं, उतनी ही आकर्षक मालूम होती हैं।

कुरूप से कुरूप स्त्री भी घूंघट में सुंदर हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने शादी की। पत्नी घर आयी। जैसा मुसलमानों में रिवाज है, पत्नी ने पहली ही बात जो पूछी वह यह कि मैं अपना बुर्का किन-किन के सामने उठा सकती हूं? इसके पहले मुल्ला ने उसका चेहरा तो देखा नहीं था। विवाह के पहले देखने का तो कोई रिवाज था नहीं तब। पहली दफा चेहरा देखा। ... सांस भी रुक गयी। उसने कहाः मुझे छोड़कर, जिसके भी सामने तुझे चेहरा दिखाना हो दिखाना, बस मुझे भर छोड़कर!

बुर्के में तो कुरूप से कुरूप स्त्री सुंदर मालूम होती है। घूंघट कुरूप स्त्रियों का आविष्कार है। बुर्का कुरूप स्त्रियों की खोज है।

और वस्त्रों में तुम क्यों अपने को छिपा रहे हो? क्योंकि वस्त्र तुम्हें एक तरह के झूठ में जीने की सुविधा देते हैं। समझो, तुम पुरुष हो। तुम ने एक सुंदर स्त्री देखी। अगर तुम नग्न हो, तो तुम्हारी देह कह देगी कि तुम आकर्षित हो; तुम्हारे अंग-प्रत्यंग कह देंगे कि तुम आकर्षित हो गये हो। अगर तुम स्त्री हो, तो भी। तुमने एक पुरुष को देखा और तुम्हारे चित्त में आकर्षण जगा, तत्क्षण तुम्हारा शरीर सत्य को प्रगट कर देगा। इस सत्य को कैसे छिपायें? एक ही रास्ता है वस्त्र ओढ़ लो, तो मन में कुछ भी चलता रहे, देह प्रगट न कर पाये।

ख्याल करना, देह बड़ी ईमानदार है। देह को तुम झुठला नहीं सकते। देह झूठ नहीं बोलती। मन को तुम झुठला सकते हो, क्योंकि मन भीतर है; दूसरे को पता न चलने दो तो न चलने दो। लेकिन देह तो बाहर है, उपलब्ध है। अगर कोई पुरुष किसी स्त्री में उत्सुक हो गया है, उसकी जननेंद्रिय सूचना दे देगी कि वह उत्सुक हो गया है। अगर स्त्री उत्सुक हो गयी है, उसके स्तन सूचना दे देंगे कि वह उत्सुक हो गयी हैं। मगर यह तो बड़ी अड़चन हो जायेगी; इसको कैसे छिपाना? वस्त्रों ने तरकीब दे दी, आड़ दे दी, तुम उत्सुक भी होते रहते हो दूसरों में और शरीर जिन सत्यों को प्रगट करता, उनको तुम वस्त्रों की आड़ में छिपाते रहते हो। ऐसे एक बेईमानी का जाल चल रहा है। मैं इस जाल को तोड़ देना चाहता हूं।

ये समूह-चिकित्सा के प्रयोग इस जाल को तोड़ने के प्रयोग हैं। फिर मैं कोई अभी जाकर बाजार में और सड़क पर तुम से ये प्रयोग करने को कह भी नहीं रहा हूं। इसलिए किसी को क्यों चिंता होनी चाहिए? जो इस उपद्रव से छूटना चाहते हैं, स्वेच्छा से, उनके लिए समूह-चिकित्सा का आयोजन किया जा रहा है। फिर जब स्त्री और पुरुष, बहुत-सी स्त्रियां और बहुत-से पुरुष नग्न होते हैं, एक दूसरे की आंखों में झांकते हैं, एक-दूसरे के हाथ में हाथ लेते हैं, नाचते हैं, कुछ प्रयोग ऊर्जा को जगाने के करते हैं, वर्तुलाकार घूमते हैं... । यह कोई संभोग नहीं हो रहा है, सिर्फ एक-दूसरे की ऊर्जा को चुनौती दे रहे हैं। ऊर्जा जगनी शुरू होती है... ।

ख्याल रखना, ऊर्जा जग जाये तो उसके दो परिणाम हो सकते हैं। या तो संभोग हो, तो ऊर्जा स्खलित होती है। और अगर संभोग न हो और ऊर्जा जग जाये और जागती चली जाये, तो उसका ऊर्ध्वगमन शुरू हो जाता है। या तो अधोगमन होगा, या ऊर्ध्वगमन होगा।

नयी दिल्ली पत्रिका में जो चित्र छिपे हैं, वे लीला नाम के समूह-चिकित्सा के चित्र हैं। लीला, ऊर्जा की लीला का प्रयोग है। स्त्रियों को देखकर, पुरुषों को देखकर दोनों के भीतर ऊर्जा का प्रवाह जगता है। उस प्रवाह को इतनी चुनौती देनी है कि तुम्हारे भीतर जो सोये पड़े हुए हैं जन्मों-जन्मों के स्रोत, वे सब सजग हो जायेंगे। और फिर उसे अधोगामी नहीं होने देना है, उसे ऊर्ध्वगमन की तरफ ले जाना है।

ये कुंडलिनी जागरण के ही प्रयोग हैं। ये कुछ नये प्रयोग नहीं हैं, ये सदियों से तंत्र के मार्ग पर चलने वाले साधक करते रहे हैं, सरहपा और तिलोपा और कणहपा सदियों से इन प्रयोगों को करते रहे हैं। मैं पहली बार इन प्रयोगों को एक वैज्ञानिक आधार-भूमि देने की चेष्टा कर रहा हूं। ये प्रयोग चुपचाप किये जाते रहे हैं। शास्त्रों में इनका उल्लेख भी है। लेकिन सामान्य-जन को इनकी कभी कोई खबर नहीं दी गयी है। क्योंकि सामान्य-जन का कभी सम्मान नहीं किया गया है। मैं सामान्य-जन का सम्मान कर रहा हूं। मैं कहता हूं कि क्यों सामान्य-जन का इतना अपमान हो। आखिर उसे भी इन अनूठे प्रयोगों का अवसर मिलना चाहिए। क्योंकि वह क्यों न जाने कि ऊर्जा के ऊपर जाते हुए आयाम भी हैं? वह क्यों वंचित रह जाये? जो ऊर्जा जननेंद्रिय से स्खलित होती है, वह क्यों न सहस्रार में चढ़े और क्यों न सहस्रार का कमल खिले?

जो अब तक छिपा-छिपा था, गुप्त-गुप्त था, उसे मैं प्रगट कर रहा हूं, यही मेरा कसूर है। यह मेरा अपराध है। इस अपराध के लिए मुझे हजार तरह की परेशानियां झेलनी पड़ रही हैं और झेलनी पड़ेंगी। क्योंकि मैं इस प्रक्रिया को बंद करनेवाला नहीं हूं, परिणाम कुछ भी हों। इस प्रक्रिया को और गहन करूंगा। इस प्रक्रिया को और-और लोगों तक पहुंचाऊंगा। जो भी सुनने को राजी होंगे, समझने को राजी होंगे, उनको जीवन की ऊर्जा का रूपांतरण कैसे किया जाये, नीचे जाती ऊर्जा को ऊपर कैसे ले जाया जाये--ये अनूठे प्रयोग मैं अब जगत के सामने प्रगट करना चाहता हूं। अब इनको थोड़े-बहुत लोग चुपचाप अपने-अपने मठों में, छिपकर करते रहें,

इतने से नहीं होगा। पूरी मनुष्य-जाति कामवासना से तड़प रही है, परेशान हो रही है। और औषधि हमारे पास हो और कुछ लोग इसका उपयोग करते रहें, यह ठीक नहीं। यह औषधि सर्वसुलभ होनी चाहिए। यह सब को मिल जानी चाहिए, क्योंकि यह सभी का रोग है।

वे जो चित्र "नयी दिल्ली" पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं, इसी तरह के प्रयोग के चित्र हैं। स्त्री और पुरुष नग्न, एक-दूसरे का हाथ में हाथ लिये, या एक-दूसरे की देह को स्पर्श करते हुए; या एक-दूसरे की आंख में आंख डाले हुए--चुनौती दे रहे हैं, वह जो भीतर छिपा है उसे जागने के लिए, जगाने के लिए। इससे संबंध संभोग का कोई भी नहीं है। यह तो संभोग के बिल्कुल विपरीत दिशा है। ऊर्जा पहले जगनी चाहिए--और जगती है विपरीत के आघात से। पुरुष है धन विद्युत, स्त्री है ऋण विद्युत; और दोनों का एक-दूसरे पर आघात हो, तो ही ऊर्जा जगती है। तुम भी जानते हो कि ऊर्जा जगती है, मगर तुम उसे दबा जाते हो।

इन प्रयोगों में उस ऊर्जा को दबाना नहीं है, उस ऊर्जा को सहारा देना है। उस ऊर्जा को उठाना है; जितना उठ सके उठाना है। और एक खास सीमा पर जाकर रूपांतरण होता है। जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर जब सौ डिग्री ऊर्जा जगती है, तो नीचे न जाकर ऊपर जाने लगती हैः तुमने देखा, पानी तो नीचे की तरफ जाता है, भाप ऊपर की तरफ जाती है! ... क्रांति घट गयी! और जैसे ही काम-ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है, राम की झलक मिलनी शुरू हो जाती है।

मगर यह तो वे ही समझ पायेंगे, जो इन प्रयोगों को करने का साहस करेंगे। मोहन धारिया नहीं समझ पायेंगे। मोहन धारिया तो इस आश्रम के दरवाजे के भीतर प्रवेश करने की हिम्मत नहीं कर सकते। और बिना समझे-बूझे वक्तव्य देना, सिर्फ मूढ़ता के लक्षण हैं, और कुछ भी नहीं।

यहां एक अनूठा रासायनिक प्रयोग हो रहा है। यह प्रयोग हिम्मतशालियों के लिए है। मनुष्य ऊर्जा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और प्रत्येक मनुष्य में दोनों ऊर्जाएं छिपी हैं। पुरुष के भीतर अचेतन में स्त्री छिपी है। स्त्री के भीतर अचेतन में पुरुष छिपा है। अब यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। कार्ल गुस्ताव जुंग के अन्वेषणों ने इस प्राचीन सत्य को आधुनिक कलेवर में, आधुनिक तर्क से सिद्ध कर दिया है। हम तो इसे जानते रहे हैं सदियों से। तभी तो हमने अर्धनारीश्वर की प्रतिमा बनाई थी। अर्धनारीश्वर की प्रतिमा क्या कहती है? शिव आधे स्त्री हैं, आधे पुरुष। यह तो केवल प्रतीक है। प्रत्येक व्यक्ति, फिर वह पुरुष हो या स्त्री, आधा-आधा है। होना ही चाहिए। क्योंकि तुम्हारा जन्म मां और पिता के मिलन से हुआ है। आधा हिस्सा मां ने दिया है, आधा पिता ने दिया है, तब तुम बने हो। तो तुम्हारे भीतर आधी स्त्री है आधा पुरुष है। अगर तुम पुरुष हो शारीरिक दृष्टि से, तो चेतन मन में तुमने अपने को पुरुष जाना है; उसके पीछे ही छिपा हुआ अचेतन मन है, उसमें तुम स्त्री हो। और अगर तुम स्त्री हो शारीरिक रूप से तो चेतन मन में स्त्री और अचेतन में पुरुष छिपा है।

ये जो लीला के प्रयोग हैं, ऊर्जा के प्रयोग हैं। इनमें बाहर की स्त्री का, बाहर के पुरुष का सहारा लेकर भीतर छिपी स्त्री और भीतर छिपे पुरुष को उकसाया जा रहा है, जगाया जा रहा है। तुम जब भी किसी बाहर की स्त्री में आतुर होते हो, उत्सुक होते हो, तो तुम्हें पता हो या न हो, कहीं न कहीं किसी अनजान अर्थों में, अज्ञात अर्थों में तुम्हारे भीतर की स्त्री की झलक तुम्हें बाहर की स्त्री में मिली है। नहीं तो तुम हर स्त्री के प्रेम में क्यों नहीं पड़ जाते हो? तुम ने कभी इस पर विचार किया है? हर पुरुष तुम्हें आकर्षित नहीं करता, हर स्त्री तुम्हें आकर्षित नहीं करती। कभी अकस्मात किसी व्यक्ति को पहली दफा देखते हो और आकर्षित हो जाते हो। क्या होगा इसका कारण? इसका कारण एक ही है, वह जो बाहर की स्त्री है, वह किसी रूप में तुम्हारे अचेतन में

छिपी स्त्री का प्रतिबिंब है। उसकी झलक दे रही है। उसने तुम्हारे भीतर की स्त्री को सप्राण कर दिया, सोये को जगा दिया।

लीला-चिकित्सा में इसको जानकर प्रयोग किया जाता है। लीला-चिकित्सा की पूरी प्रक्रिया और पद्धति ऐसी है कि जिसमें बाहर की स्त्री का सहारा लेकर भीतर की स्त्री को सोये से झकझोर देना है; और बाहर के पुरुष का सहारा लेकर भीतर के पुरुष को झकझोर देना है। जब तुम्हारे भीतर की स्त्री और पुरुष दोनों जग जाते हैं, तो एक अपूर्व मिलन घटित होता है। तुम्हारे भीतर घटित होता है! एक अपूर्व स्त्री और पुरुष ऊर्जा का सम्मिलन तुम्हारे भीतर घटित होता है! उस सम्मिलन में तुम पूर्ण हो जाते हो, क्योंकि फिर अधूरा-अधूरापन नहीं रह जाता।

और आश्चर्य की बात तो यह है, जिसके भीतर यह घटन हो जाये, जिसके भीतर यह संगठन हो जाये, जिसके भीतर की स्त्री और पुरुष एक हो जायें, उसे फिर बाहर की स्त्री और पुरुष में कोई रस नहीं रह जाता। मेरी बातें ऊपर से तो ऐसी लगती हैं कि मैं लोगों को भोग की तरफ ले जा रहा हूं। बस ऊपर से ही लगती हैं और नासमझों को लगती हैं। उनको लगती हैं जिनकी बात का कोई मूल्य नहीं है।

मैं तुम्हें परम ब्रह्मचर्य की तरफ ले चल रहा हूं। क्योंकि जिस दिन तुम्हारे भीतर की स्त्री और पुरुष का मिलन हो जायेगा उसी दिन परम ब्रह्मचर्य घटित हो जायेगा। उस दिन के बाद फिर तुम्हें कोई रस नहीं रह जायेगा बाहर की स्त्री में और बाहर के पुरुष में। और भागना भी न पड़ेगा कहीं, दबाना भी न पड़ेगा कुछ। एक अपूर्व शांत, मौन क्रांति घट जाती है, शोरगुल भी नहीं होता। तुम्हारे भीतर द्वंद्व समाप्त हो जाता है, निर्द्वंद्व का जन्म हो जाता है।

ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ सोचा है कभी? ब्रह्म जैसी चर्या। यह सिर्फ कामवासना को दबा लेने से कोई ब्रह्म जैसी चर्या को उपलब्ध नहीं होता। ब्रह्म जैसी चर्या को तो कोई तभी उपलब्ध होता है जब अर्धनारीश्वर हो जाये--आधा पुरुष आधा स्त्री, दोनों मिल जायें--और एक हो जायें। इस सम्मिलन में, इस समन्वय में, इस संगीत में ब्रह्मचर्य का जन्म है।

यहां जो भी हो रहा है, उसका अंतिम लक्ष्य ब्रह्मचर्य है। मगर जो ऊपर-ऊपर देखेंगे, वे तो बड़े परेशान होंगे। वे तो परेशान हो ही रहे हैं। उनकी परेशानी को जितना बन सके समझने की कोशिश करो। मगर उनकी परेशानी के कारण तुम परेशान मत हो जाना। उनकी परेशानी को अपनी परेशानी मत बना लेना।

नासमझों का एक समूह है, वह चलता रहेगा। वह मुझे गालियां देता रहेगा। उसकी फिक्र छोड़ो। उसकी चिंता न लो। उसमें उलझो भी मत। तुम अपने काम में लगे रहे हो। धीरे-धीरे जब यहां ब्रह्मचर्य को उपलब्ध चेतनाएं खड़ी हो जायेंगी, वे चेतनाएं ही असली उत्तर होंगी। और कोई उत्तर सार्थक नहीं हो सकता। मैं फिक्र में हूं कि प्रमाण जुटा सकूं। और उस फिक्र को तुम ही पूरा कर सकते हो।

कृष्ण प्रेम, चिंता न लो। मेरे जैसे व्यक्ति जब जमीन पर आते हैं तो बहुत ऊहापोह मचता है, बहुत तूफान-आंधियां उठती हैं।

दूसरा प्रश्न भी पहले से संबंधित हैः ओशो! भारतीयों को ग्रुप-थैरेपी, सामूहिक-मनोचिकित्सा में सम्मिलित क्यों नहीं किया जाता? क्या पश्चिम को ही सामूहिक-चिकित्सा की आवश्यकता है और पूर्व को नहीं? परंतु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं दिखती। वास्तविकता तो यह है कि नब्बे प्रतिशत भारतीय ही यौन-विक्षिप्त पाये

जाते हैं। इस संदर्भ में यह स्पष्ट करने की अनुकंपा करें कि भारतीयों को इस विशिष्ट पद्धति से वंचित रखना कहां तक उचित है और क्यों?

पूछा है डाक्टर तपन कुमार चौधरी ने। डाक्टर हैं, तो निश्चित वे जानते हैं कि भारतीयों की असली मानसिक दशा क्या है। ठीक है, नब्बे प्रतिशत ही नहीं, निन्यानबे प्रतिशत भारतीय काम-दमन से पीड़ित हैं। और मैं जानता हूं उन्हें जितनी आवश्यकता है, उतनी शायद किसी और को नहीं।

लेकिन अड़चनें हैं बहुत। पहली तो बात, भूमिका का अभाव है। भारत सदियों से दमन की धारा में जीया है। तो किसी भारतीय को अगर मैं कहता भी हूं कि तुम जाओ और सामूहिक-चिकित्सा में सम्मिलित हो जाओ, तो वह सम्मिलित नहीं होता। भाग खड़ा होता है। यहां आता ही नहीं फिर। यहां से भगाना हो किसी को, तो मैं उसे सामूहिक-चिकित्सा का सुझाव दे देता हूं। उससे मेरी भी झंझट छूट जाती है और उसको भी आने का उपाय दोबारा नहीं रह जाता। भूमिका का अभाव है।

सामूहिक-चिकित्सा के पीछे एक मानसिक भूमिका चाहिए। न तो उन्हें पता है कि एनकाउंटर क्या है, न उन्हें पता है कि प्रायमल-थैरेपी क्या है, न उन्हें पता है कि बायोइनरजेटिक्स क्या है। यह सारा विज्ञान पश्चिम में पैदा हुआ है। मैं तुमसे कहे देता हूं कि अगर तुम जल्दी नहीं जागे तो पश्चिम तुम्हें आध्यात्मिक अर्थों में भी पीछे छोड़ देगा। भौतिक अर्थों में तो तुम्हें पीछे छोड़ ही दिया है पश्चिम ने, क्योंकि तुम नहीं जागे। जाग सकते थे। भारत में पहली दफा गणित पैदा हुआ था। लेकिन फिर भारत आइंस्टीन को क्यों पैदा नहीं कर सका? सुस्ती है, काहिलता है। भाग्य पर छोड़े बैठे हैं सब। तो गणित भारत में पैदा हुआ, लेकिन आइंस्टीन... उसकी पूर्णाहुति भारत में न हुई, पूर्णाहुति पश्चिम में हुई।

भारत ने करीब-करीब सभी विज्ञानों की प्राथमिक खोज कर ली थी। लेकिन उसका अंतिम उत्कर्ष भारत में नहीं हुआ, पश्चिम में हुआ। हमने सर्जरी का प्राथमिक प्रयोग किया था, लेकिन फिर सर्जरी ने अपनी पराकाष्ठा पश्चिम में पायी। औषधि हो, कि गणित हो, कि सर्जरी हो, कि रसायन-विज्ञान हो, कि भौतिकी हो--हर दिशा में भारत ने सबसे पहले प्राथमिक प्रयोग किये थे। मगर प्राथमिक पर ही हम रुक जाते हैं। आत्यंतिक तक जाने का न हम साहस जुटा पाते, न शक्ति जुटा पाते, न उतना मनोबल जुटा पाते हैं।

अब वही दुर्भाग्य फिर घटने को है। तंत्र पर हमने सबसे पहले प्रयोग किये थे। और हमने तंत्र पर बड़ी गहराइयां पायी थीं। मगर अब पश्चिम हमसे आगे निकला जाता है। और अगर थोड़ी देर और की, तो जैसे अभी तुम्हारे बच्चों को पश्चिम जाना पड़ता है गणित और विज्ञान सीखने; कुछ आश्चर्य न होगा कि किसी दिन धर्म और ध्यान सीखने भी पश्चिम जाना पड़े। तुम उसमें भी पिछड़ते जा रहे हो, जिसमें तुम सदा अग्रणी थे। अब तुम उसमें भी अग्रणी ज्यादा देर न रहोगे। तुम्हारी आदत ही पिछड़ने की हो गई है। तुम किसी भी चीज में अपनी सारी सामर्थ्य लगाकर नहीं जुटते हो। अब तुमने पूछा है कि भारतीयजनों को सामूहिक-चिकित्सा से वंचित क्यों रखा जा रहा है?

पहली तो बात यह है कि कोई भारतीय यहां तीन-चार महीने आकर रुकने को राजी नहीं होता। तीन-चार महीने न रुके तो सामूहिक-चिकित्सा के प्रयोग नहीं किए जा सकते। भारतीय तो आता है दो दिन के लिए, दर्शन करने के लिए। वह कहता है दर्शन हो गए, सब हो गया। तुम्हें यह आदत पकड़ गई है सदियों से कि गए और किसी सदगुरु के दर्शन कर लिए और सब हो गया। बात खतम हो गई। चरण छू आए, आशीर्वाद ले लिया;

कुछ और करना नहीं है। पश्चिम से जो लोग आते हैं तीन से छह महीने का समय लेकर आते हैं। तुम यहां आते हो दिन-दो-दिन के लिए। बहुत किसी ने हिम्मत की तो वह दस दिन के लिए, शिविर के लिए आ जाता है।

शिविर में भी तुम ध्यान कम करते हो, देखते ज्यादा हो कि दूसरे क्या कर रहे हैं। तुम्हारा रस कुछ विक्षिप्त हो गया है। दांव पर तुम कुछ भी लगाना नहीं चाहते।

कुछ भारतीयों को मैंने चिकित्साओं में भेजा। मैं चाहता हूं कि ये चिकित्सा का जो लाभ हो सकता है वह भारतीयों को भी मिले; मिलना ही चाहिए। और तपन कुमार, तुम ठीक कहते हो कि निन्यानबे प्रतिशत लोग यहां रुग्ण हैं, इनको आप चिकित्सा का अवसर न देंगे? देना चाहता हूं। पहली तो बात, किसी को चिकित्सा के लिए कहो, तो वह राजी नहीं होता। अब जबर्दस्ती तो किसी के ऊपर चिकित्सा नहीं थोपी जा सकती। आदमी भाग रहा हो... और तुम उसे लिटाओ और आपरेशन करो, यह तो नहीं हो सकता। कम-से-कम उसकी स्वीकृति तो चाहिए ही। स्वेच्छा से ही चिकित्सा हो सकती है।

फिर किन्हीं को मैंने समझा-बुझाकर भेज भी दिया, तो वे चिकित्सा में पहुंच भी जाते हैं, सम्मिलित नहीं होते। बैठे रहते हैं एक कोने में। भागीदार नहीं बनते। वहां भी दर्शक बने रहते हैं। तो उनके कारण जो और लोग चिकित्सा में सम्मिलित हैं, उनको बाधा पड़ती है। तो मुझे पाश्चात्य संन्यासी आकर कहते हैं कि आप भारतीयों को मत भेजिए, क्योंकि वे सम्मिलित तो होते नहीं। और एक पत्थर की तरह वहां खड़े हो जाते हैं? किसी चीज में भाग लेते नहीं, तो जो धारा बहनी चाहिए समूह की, उसमें एक चट्टान पड़ जाती है; धारा में बाधा आ जाती है।

एक तो भूमिका का अभाव है, क्योंकि तुम दमन की हवा में पले हो। तुम्हारी छाती पर मोरारजी देसाई जैसे लोग इतनी सदियों से बैठे हैं कि जब तक तुम उन्हें न उतार दो, तुम्हारे रोग न उतरेंगे, तुम्हारी बीमारियां न उतरेंगी। तुम्हारे पास ऐसी-ऐसी धारणाएं चित्त में घर कर गई हैं कि उनके साथ अड़चन है।

अब तुमने पूछा है तपन कुमार, लेकिन अगर किसी भारतीय को मैं कहता हूं कि तुम जाकर लीला-थैरेपी में या एनकाउंटर में सम्मिलित हो जाओ, तो वह कहता हैः पहले मैं अपनी पत्नी को पूछूंगा! पत्नी राजी नहीं है, क्योंकि वहां और स्त्रियां हैं, पता नहीं तुम क्या करोगे!

एक मित्र को मैंने मालिश करवाने के लिए भेजा, क्योंकि उनके शरीर में तकलीफ है। उनकी पत्नी वहां खड़ी रहती है जाकर। मालिश भी नहीं करवाने देगी उनको; देखती है खड़ी होकर कि कोई गड़बड़ तो नहीं हो रही है। पत्नी को अगर भेजूं चिकित्सा में तो पति राजी नहीं है। तो कैसे भेजूं, क्या उपाय किया जाए?

फिर जो भारतीय आते हैं वे कभी अपनी वास्तविक बीमारियां तो बताते नहीं; मुझे दिखाई पड़ती हैं, मगर वे तो बातें दूसरी ही करते हैं। भारतीय आकर पूछता है--समाधि कैसे मिले, मोक्ष कैसे मिले? उसको मैं कहूं कि तुम जाओ और तुम एक चिकित्सा पद्धति में सम्मिलित हो जाओ। वह कहेगाः चिकित्सा से क्या लेना-देना है, मुझे मोक्ष चाहिए! मोक्ष तो नहीं मिलता चिकित्सा-पद्धति से; यद्यपि चिकित्सा-पद्धति से कूड़ा-कचरा तुम्हारे चित्त का साफ होगा, जो कि मोक्ष के मिलने में सहयोगी है। मगर सीधा मोक्ष नहीं मिलता।

तुम बातें ही हवाई पूछते हो आकर। फिर तुम जो पूछते हो, वही तुम्हें उत्तर देने पड़ते हैं। तुमने जो पूछा नहीं है उसका उत्तर देना ठीक भी नहीं है। तुम उसे झेल भी न सकोगे। तुम उसे लेने को राजी भी न होओगे।

इसलिए मेरी मजबूरी समझो। मैं चाहता हूं कि भारत वंचित न रहे। लेकिन भारत तय किये बैठा है कि वंचित रहेगा। तुम देखते हो, पूना में हर तरह की चेष्टा चल रही है कि यह आश्रम पूना में न बचे, इस आश्रम को

पूना से हटना चाहिए। और ऐसा भी नहीं कि पूना से हटना चाहिए, यह भारत में कहीं और भी नहीं जाना चाहिए। और ऐसा भी नहीं कि यह भारत के बाहर चला जाए... ।

अभी कल मैंने अखबारों में पढ़ा कि मुसलमानों ने एक सभा करके सरकार से निवेदन किया है कि मेरा पासपोर्ट जप्त कर लिया जाए! तो अब तो मुझे सिवाय मोक्ष जाने के कोई जगह बची नहीं! मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ, मैंने कहाः यही तो मैं... ! पूना रह नहीं सकता। कच्छ जा नहीं सकता। सासवड़ में आश्रम बन नहीं सकता। पासपोर्ट है, वह भी जप्त कर लेना चाहिए। तब तो फिर मेरे लिए सिर्फ निर्वाण ही रह जाता है।

और तुम कह रहे होः भारतीयों को मैं चिकित्सा-पद्धति में क्यों नहीं सम्मिलित करवाता? किनको करवाऊं--मोहन धारिया को, मोरारजी देसाई को, किसको? वे तो इस आश्रम को ही जीवित नहीं रहने देना चाहते। यह आश्रम बचना ही नहीं चाहिए। मोरारजी देसाई ने कहा कि अगर मेरा वश चले तो मैं इस आश्रम को नेस्तनाबूद कर दूं। और ऐसा नहीं है कि वे नेस्तनाबूद करने में कोई कमी छोड़ रहे हैं। वे सब तरह से कोशिश कर रहे हैं। और वश उनका क्यों नहीं चलता? सारी सत्ता उनके हाथ में है, वश की क्या अड़चन है? बस थोड़ा-सा एक संकोच उनको लगता है कि अब मैं कोई राष्ट्र के भीतर सीमित नहीं हूं, अब मेरी स्थिति अंतर्राष्ट्रीय है। वही उनको संकोच का कारण है, नहीं तो वश चलने में क्या दिक्कत है। बुलडोजर लाकर इस आश्रम को गिरवा दें। लेकिन अब उनको पता है कि मैं भारत में सीमित नहीं हूं। दुनिया के कोने-कोने में मेरे संन्यासी हैं। सारी दुनिया में तूफान मचेगा, अगर मेरे साथ कुछ भी ज्यादती की गई तो उसका परिणाम सारी दुनिया में प्रतिफलित होगा। छहों महाद्वीप पर मेरे संन्यासी हैं। इस बात को ऐसे ही नहीं छोड़ दिया जायेगा। यह बात आसान नहीं होगी। अगर इस आश्रम को कोई भी चोट पहुंची, तो मोरारजी देसाई किसी देश में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। जहां जायेंगे, वहां मुसीबत होगी। तो इस देश के राजदूतावास किसी देश में बचे नहीं रह सकेंगे। इससे घबड़ाहट है, इससे परेशानी है कि उपद्रव खड़ा हो जाएगा, कि फिर हम अपनी लोकतांत्रिक प्रतिमा को कैसे बचायेंगे, क्योंकि यह तो गैर-लोकतांत्रिक कदम होगा।

मैंने कोई कानून नहीं तोड़ा है। कमरे के भीतर नग्न होने का प्रत्येक को अधिकार है, नहीं तो सभी पति-पत्नियों को जेल में डालना पड़ेगा। मैंने कोई कानून नहीं तोड़ा है। मैं इस हिसाब से होशियारी से चल रहा हूं। मेरे ऊपर कोई कानूनी जुर्म नहीं है, न मेरे आश्रम पर कोई कानूनी जुर्म है। सारी फिक्र इस ढंग से की है कि कानूनी ढंग से तो कोई तरह से वे पकड़ ही नहीं सकते। नहीं तो तुम सोचते हो, वे छोड़ते? अगर वे संजय गांधी पर बाईस मुकदमे चला सकते हैं तो मुझ पर दो सौ बीस चलाते। मगर सब चार सौ बीस मिलकर भी मुझ पर दो सौ बीस मुकदमे नहीं चला सकते। मुकदमे का कोई कारण नहीं है। इसलिए एक नपुंसकता अनुभव हो रही है कि क्या करें, वश नहीं चलता है, नहीं तो मिटा देते। मगर जितना वश चलता है उतनी चेष्टा जारी रखते हैं।

तुम कहते होः मैं भारतीयों को इन चिकित्सा पद्धति में क्यों सम्मिलित नहीं करता? किसको सम्मिलित करूं? फिर सम्मिलित होने इस तरह के लोग जरूर आते हैं, जिनका प्रयोजन दूसरा है--जो चाहते हैं कि चित्र ले लें वहां जाकर और चित्रों को अखबारों में छपवा दें। जिसको सम्म्लित होना है, उसे ध्यान करना होगा, शिविर करने होंगे। और जो चिकित्सा-पद्धति मैं दूंगा उनमें सम्मिलित होना होगा। उतना धीरज नहीं है। उतने प्रयोगों से गुजरने की क्षमता नहीं है।

एक तो भूमिका का अभाव है। पश्चिम में पिछले पचास वर्षों में मनोविज्ञान ने बड़ी ऊंचाइयां ली हैं, बड़े शिखर छुए हैं! उसका कोई बोध नहीं है। और गैर-पढ़े-लिखे आदमी की बात छोड़ दो; विश्वविद्यालय में तुम्हारे जो शिक्षक मनोविज्ञान पढ़ा रहे हैं, वे भी तीस-चालीस साल पुरानी किताबों के आधार से पढ़ा रहे हैं। उन्होंने

जो पढ़ा था विश्वविद्यालय में, वही पढ़ा रहे हैं। उनके लिए अब भी मैकडूअल की किताबें वेद हैं। उन्हें कोई पता नहीं है अब्राहम मैसलो का, उन्हें कोई पता नहीं फ्रिडज पर्ल्स का। उन्हें कोई पता नहीं जैनोव का। उन्हें कोई पता नहीं कि नई-नई क्या खोजें हो रही हैं। उन्हें विलियम राइक का कोई पता नहीं है।

मगर फिर यह भारत की ही बात नहीं है। विलियम राइक तो अमरीका में था, लेकिन अमरीकी सरकार ने उसे जेल में डाल दिया, क्योंकि उसने काम-ऊर्जा के रूपांतरण के कुछ प्रयोग किए। काम-ऊर्जा के रूपांतरण के प्रयोग, और विलियम राइक दिक्कत में पड़ा। और फिर उन्होंने आखिरी क्या तरकीब की, तुम्हें पता है? कोई उसके खिलाफ कानूनी उपाय नहीं मिल सका, तो झूठा, जबर्दस्ती उसे पागल करार दे दिया। और पागल करार देकर जेलखाने में रख दिया। विलियम राइक जेलखाने में मरा। इस सदी का सबसे बड़ा तांत्रिक शोधक पागल की तरह जेलखाने में मरा; जबर्दस्ती मारा गया। अब अमरीका में अगर ऐसा होता हो, तो भारत का तो तुम सोचो कि क्या हालत होगी!

इसलिए भूमिका का अभाव बड़ी अड़चन हैं। शिक्षा का अभाव बड़ी अड़चन हैं। तुम मुझसे कहते हो, सामूहिक-चिकित्सा में भारतीयों को प्रवेश दूं। मैं देना भी चाहता हूं; लेकिन यह ऐसा ही होगा कि जिसे साधारण गणित नहीं आता वह अल्बर्ट आइंसटीन की सापेक्षवाद के सिद्धांत को समझने के लिए कोशिश करे। नहीं समझ पायेगा। उसकी भूमिका तय करनी होगी। धीरे-धीरे, शनैः शनैः उसकी भूमिका तैयार कर रहा हूं। यह मेरे संन्यास का व्यापक प्रसार उसी दिशा में आयोजन है। धीरे-धीरे तुम मुझसे राजी होने लगो, मेरी बात तुम्हें समझ में आने लगे; धीरे-धीरे तुम इतनी श्रद्धा से भर सको कि अपनी धारणाओं के विपरीत भी प्रयोग करना हो तो कर सको--तो फिर मैं आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हें प्रयोग करवाऊं। और तुम्हें प्रयोग करवाने के लिए ही नए कम्यून को बनाने का आयोजन कर रहा हूं। क्योंकि पाश्चात्य व्यवस्था से सामूहिक-चिकित्सा तुम्हारी न हो सकेगी। तुम्हारे लिए मुझे नए ढंग ही खोजने होंगे, जो तुम्हारी भारतीय शैली और व्यवस्था के अनुकूल हों।

पाश्चात्य चिकित्सा महंगी है; यद्यपि मैंने उसे इतना सस्ता किया है जितना किया जा सकता है। जिस चिकित्सा के लिए पश्चिम में पांच हजार रुपये खर्च होते हैं, उस चिकित्सा के लिए यहां पांच सौ रुपये में व्यवस्था की है। लेकिन भारतीय के लिए तो पांच सौ रुपये भी बहुत हैं। उसके लिए तो पचास रुपये में व्यवस्था हो सके, तो ही काम हो सकेगा। तो नए कम्यून में जहां ज्यादा जगह होगी, ज्यादा विस्तार होगा, ज्यादा सुविधा से प्रयोग हो सकेंगे। अब यहां तो हर चीज की अड़चन है। यहां तो साउंडप्रूफ कमरा चाहिए, एअरकंडीशन्ड कमरा चाहिए। क्योंकि साउंडप्रूफ न हो तो चिकित्सा में जो आवाजें निकलेंगी... पड़ोसी परेशान करते हैं, वे पुलिस को फौरन खबर कर देते हैं। एयरकंडीशन्ड होना चाहिए तो ही साउंडप्रूफ हो सकता है। नहीं तो लोग मर जायेंगे भीतर बंद कमरे में। तो महंगा हो गयाः एयर कंडीशन्ड होगा, साउंडप्रूफ होगा--आवाज बाहर नहीं जानी चाहिए। खास तरह की ईंटों से बना होगा। तो सारी चीज महंगी हो गई।

भारतीयों के पास सुविधा नहीं है कि वे अभी पांच सौ रुपये भी चिकित्सा के लिए खर्च कर सकें। फिर चिकित्सा के समय में खास तरह का भोजन दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक चिकित्सा तुम्हारी ऊर्जा पर काम करती है। किस ऊर्जा के लिए कैसा भोजन जरूरी है, वही भोजन दिया जाता है। वह भी महंगा हो जाता है। अब कौन भारतीय पंद्रह दिन के लिए पांच सौ रुपया चिकित्सा का देने के लिए तैयार है। लाये भी कहां से, इतनी तो उसकी मासिक तनखाह भी नहीं है। वह महीने भर अपने बच्चों को क्या खिलायेगा, पत्नी को क्या खिलायेगा?

चाहता हूं, बहुत हृदय से चाहता हूं; भीतर-भीतर चिंतित होता हूं कि क्यों तुम्हारे लिए भी सारा साधन न उपलब्ध हो जाए। मगर फिर उसके लिए बहुत विस्तीर्ण जगह चाहिए, जहां कोई पड़ोसी न हो, तो न एयरकंडीशन की जरूरत होगी न साउंडप्रूफ की जरूरत होगी।

फिर भाषा का प्रश्न हैं। अभी तो हमारे पास जितने चिकित्सक हैं, वे सब पश्चिम से आए हैं। क्योंकि मैंने पश्चिम के श्रेष्ठतम चिकित्सकों को यहां इकट्ठा किया है... तुम जानकर चकित होओगे, इस समय पृथ्वी पर चिकित्सा का इतना श्रेष्ठ कोई केंद्र नहीं है! क्योंकि जितने पश्चिम के श्रेष्ठ चिकित्सक थे, सब मेरे संन्यासी हो गए हैं। वे समझ सके हैं मुझे, तत्काल समझ सके। पश्चिम के कई चिकित्सा-केंद्र बंद हो गए, क्योंकि उनके संस्थापक तो पूना आ गए हैं। इंग्लैंड के दो चिकित्सा-केंद्र बंद हो गए--जो बड़े चिकित्सा-केंद्र थे, यूरोप के सबसे प्रतिष्ठित चिकित्सा केंद्र थे। एक को तीर्थ चलाता था, एक को सोमेन्द्र चलाता था; वे दोनों यहां आ गए। सारी दुनिया से श्रेष्ठ चिकित्सक यहां हैं। लेकिन भाषा का सवाल है।

तो अब मैं फिक्र कर रहा हूं इसकी कि भारतीय भाषाओं में चिकित्सक तैयार हो सकें। तो फिर भारतीय चिकित्सा में उतर सकेंगे, नहीं तो भाषा अड़चन बन जाती है। जिस भाषा को तुम बिना किसी अड़चन के नहीं बोल सकते, उस भाषा में बहुत गहरा संवाद नहीं हो सकता। और ये सारी चिकित्सायें संवाद पर आधारित हैं। क्योंकि तुम्हारे हृदय को पूरा का पूरा प्रगट करना है। समझो कि तुम अंग्रेजी बोल लेते हो कामचलाऊ; लेकिन अगर झगड़ा हो जाए, मार-पीट होने लगे, तो फिर अंग्रेजी न बोल सकोगे। फिर एकदम हिंदी में गाली दोगे। क्योंकि गाली देना अंग्रेजी में किसी स्कूल में सिखाया भी नहीं गया, न किसी विश्वविद्यालय में। मगर तब यह बात अड़चन की हो जायेगी।

कहानी है प्रसिद्ध कि भोज के दरबार में एक विद्वान आया और उसने कहा कि मैं तीस भाषाओं का पारंगत हूं। और तुम्हारे दरबार के जो रत्न हैं उनको चुनौती देता हूं कि कोई मेरी मातृभाषा पहचान ले। मातृभाषा पहचान ले, तो एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं मैं भेंट करूंगा। और अगर कोई न पहचान सका, तो दस लाख स्वर्ण मुद्रायें तुम्हें मुझे भेंट करनी पड़ेंगी।

यह चुनौती बड़ी थी। भोज के दरबार में बड़े-बड़े विद्वान थे। कालिदास भी भोज के दरबार में थे। बड़े-बड़े विद्वानों ने चुनौती स्वीकार की, लेकिन हर एक हारता गया। वह व्यक्ति इतना अदभुत था कि हर भाषा ऐसे बोलता था जैसे उसकी मातृभाषा हो! अंततः कालिदास ही बचे। भोज ने कहा कि कुछ करो, नहीं तो यह बड़ा अपमान होगा। दुनिया हंसेगी कि हमारे दरबार में एक आदमी नहीं है ऐसा, जो इसकी मातृभाषा पहचान सके। भोज की बात सुनकर भी कालिदास चुप रहे। उस दिन आखिरी विद्वान हारा। इसके बाद के दिन कालिदास का नंबर आने को था। सब विदा हो रहे थे। वह दस लाख अशर्फियां उस दिन लेकर फिर लौट रहा था। जैसे ही सीढ़ियों से महल के उतरते थे, कालिदास ने उसे एक धक्का दे दिया। थैली गिर गई, अशर्फियां बिखर गईं। वह आदमी कोई पचास सीढ़ी राजमहल की नीचे खिसट कर जमीन पर गिरा, उठकर एकदम गाली देने लगा। कालिदास ने कहाः यही तुम्हारी मातृभाषा है। मुझे क्षमा करो, और कोई उपाय नहीं था जानने का। और वही उसकी मातृभाषा थी।

प्रेम करना हो या गाली देनी हो, दूसरे की भाषा में नहीं किया जा सकता। इसलिये अगर कोई भारतीय किसी पाश्चात्य स्त्री के प्रेम में पड़ जाता है या पाश्चात्य पुरुष किसी भारतीय स्त्री के प्रेम में पड़ जाता है, ज्यादा देर टिकता नहीं मामला, क्योंकि हार्दिकता प्रगट नहीं हो पाती, संवाद नहीं हो पाता। कुछ-कुछ फासला बना रह जाता है। प्रेम हो कि घृणा, ये इतने उत्तप्त भाव हैं कि इनके लिए अपनी ही भाषा चाहिए। यह अड़चन है।

अभी हमारे पास कोई भारतीय चिकित्सक पैदा नहीं हो सके। उनके पैदा होने की सुविधा बनाना चाहता हूं, लेकिन मोरारजी देसाई बनने नहीं देना चाहते। कच्छ की तो उन्होंने कसम खा ली है कि कच्छ में तो आने नहीं देंगे, क्योंकि उनके प्रदेश गुजरात को मैं बरबाद कर दूंगा। गुजरात को तो उन्हें बचाना है। और अब वे महाराष्ट्र की भी चिंता में पड़ गए हैं कि महाराष्ट्र को भी बचाना है। दोनों तरफ जमीनें लेकर पड़ी हुई हैं, लेकिन कोई निर्णय नहीं देते। और मैंने उनको खबर भेजी है कि कह दो--"नहीं", तो भी काम हो जाए। वे "नहीं" भी नहीं कहते। क्योंकि वे जानते हैं, "नहीं" कहना गैर-कानूनी है। "नहीं" कहेंगे तो मैं अदालत से फैसला ले सकता हूं। तो "नहीं" भी नहीं कहते, ताकि "नहीं" भी रुकी रहेगी तो मैं अदालत भी नहीं जा सकता। इस तरह का लोकतंत्र इस देश में चल रहा है। इसको जयप्रकाश नारायण कहते हैं--दूसरी स्वतंत्रता!

विन्सटन चर्चिल ने जब भारत आजाद हुआ तो इंग्लैंड की पार्लियामेंट में जो शब्द कहे थे, वे करीब-करीब भविष्यवाणी की तरह सही सिद्ध हो गए हैं। उसने जो शब्द कहे थे वे ये थे। एटली को उसने कहा था कि महानुभाव, आप भारत को स्वतंत्रता तो दे रहे हैं, लेकिन तीस साल के भीतर यह लुच्चे और लफंगों के हाथ में पड़ जाएगा। तीस साल पूरे हो गए और लुच्चे और लफंगों के हाथ में देश पड़ गया।

मैं थोड़ा हैरान हुआ कि विन्सटन चर्चिल को कुछ ज्योतिष-शास्त्र आता था क्या! विन्सटन चर्चिल कैसे यह कह सका, ठीक तीस साल... और देश लुच्चे-लफंगों के हाथ में पड़ जाएगा? और वैसा ही हो गया है।

तो पहली बात, भूमिका का अभाव है। दमन की लंबी परंपरा है। और ये सारी चिकित्साएं दमन के विपरीत हैं। ये चिकित्साएं विसर्जन की हैं, कैथार्सिस की हैं, रेचन की हैं। इनमें जो भी दबा पड़ा है, बाहर निकाल देना है। अगर क्रोध दबा है, तो क्रोध बाहर निकाल देना है। और तुमने जिंदगी-भर सीखा है क्रोध को दबा लेना। तो बड़ी मुश्किल हो जाती है, तुम क्रोध निकालोगे कैसे?

एक भारतीय युवती को मैंने चिकित्सा के लिये भेजा। उसने कहा कि क्रोध पड़ा है, मगर जिंदगी-भर की शिक्षा... निकालना भी चाहती हूं तो निकलता नहीं है। बस रह जाता है, अटका रह जाता है, छाती में अटका रह जाता है। कितनी सदियों से तुम्हें सिखाया गया है नियंत्रण; और ये सारी चिकित्साओं में अनियंत्रण सूत्र है। छोड़ दो बिल्कुल अपने को सहज। क्रोध है तो क्रोध, काम है तो काम; जो भी है निकलने दो, बहने दो--ताकि मवाद बह जाये। ये मवाद निकालने के प्रयोग हैं। ये चिकित्सायें वमन की चिकित्सायें हैं।

इसलिये तुम घबड़ाओगे। इसलिए चित्र जो तुम देख रहे हो अखबारों में, बहुत घबड़ाने वाले हैं--कि यह क्या वीभत्स कृत्य हो रहा है! यह वीभत्स कृत्य नहीं है। यह तुम्हारे भीतर सदियों से पंडित-पुरोहितों ने जो दबा रखा है, उस मवाद को निकालने का प्रयोग है। और मवाद जब निकलेगी, तो दुर्गंध तो थोड़ी फैलेगी। मगर मवाद निकल जाए, तो तुम स्वच्छ हो जाओ। तो दमन की लंबी परंपरा बाधा डाल रही है। पर मैं धीरे-धीरे प्रयोग कर रहा हूं। कुछ-कुछ भारतीयों को भेजता हूं। दो-चार भारतीयों ने बड़ी गहराई से प्रयोग किये और बड़े आनंदमग्न बाहर आए। और उनका जीवन एक नई शैली ले लिया।

विनोद को मैंने भेजा प्रयोग के लिए--और विनोद खरा उतरा। खूब गहरा गया। और उसके बाद से उसके जीवन ने एक नया ढंग ले लिया। एक नई शैली, एक नई मस्ती आ गई। एक दूसरे मित्र को भेजा। वही आग्रह करते थे बहुत दिन से कि मुझे भेजें। कामवासना से परेशान हैं। तो आग्रह करते थे कि मुझे तंत्र-चिकित्सा में भेज दें। मैंने उनसे कहा कि तुम कहते हो कि तुम्हें तंत्र-चिकित्सा में भेज दूं, लेकिन तुम उसमें उतर न पाओगे अभी। तुम्हें पहले उचित होगा कि तुम प्रायमल थैरेपी में जाओ। मगर प्रायमल थैरेपी चलती है कोई दस दिन, बारह दिन। उन्होंने कहाः उतना तो मेरे पास समय ही नहीं है। मुझे तो तीन दिन का तंत्र भर दे दें। नहीं माने, तो मैंने

कहा कि ठीक है जाओ। जानता था कि व्यर्थ होगा; क्योंकि प्रायमल थैरेपी से गुजरो पहले तो तंत्र में प्रवेश कर सकेगे, नहीं तो नहीं कर सकोगे। समझ में ही न आएगा। वे तीन दिन वहां बैठे रहे। उनकी अकल में कुछ भी न आया कि क्या हो रहा है। और तंत्र में जो लोग सम्मिलित थे उन्होंने शिकायत की कि इस आदमी को आपने क्यों भेज दिया है? यह सिर्फ वहां बैठा रहता है पालथी मारे। इसकी मौजूदगी हमें अखर रही है। न कुछ बोलता, न कुछ चालता; चौंका-सा; घबड़ाया-सा कि यह क्या हो रहा है!

अब वह फिर आ गए थे कि मुझे फिर तंत्र में जाना है। मैंने कहा कि अब नहीं; अब तुम दो-चार चिकित्साओं में पहले जाओ, आहिस्ता-आहिस्ता।

अनुभव यह कह रहा है कि मुझे भारतीयों के लिए थोड़ी उदार, थोड़ी कुनकुनी चिकित्साएं विकसित करनी होंगी। पश्चिम की चिकित्साएं बहुत उत्तप्त हैं। पश्चिम के लोगों को जरा अड़चन नहीं है। पश्चिम ने बड़ी हिम्मत कर ली है।

तुम जरा सोचो, पश्चिम से युवतियां चली आई हैं... बिना फिक्र किए, यहां परदेश में अटकी हैं। तुम्हारी सब तरह की बेहूदगियां झेलती हैं। संन्यासिनियों को रोज रास्तों पर कोई धक्का देता है। कोई उनके कपड़े खींच लेता है। कोई उनका बैग ही छीनकर भाग जाता है। सब तरह का उपद्रव झेल रही हैं। लेकिन फिर भी मौजूद हैं, टिकी हैं। एक बड़ा साहस पश्चिम में पैदा हुआ है। वैसा साहस हमारे लोगों ने खो दिया है।

हमने हजारों साल से अभियान नहीं किया है कोई। हम बिल्कुल मुर्दा हो गए हैं। हमने देश को एक मरघट बना दिया है। इस मरघट में मैं फिर से तुम्हें पुकार रहा हूं। कुछ जागने लगे हैं लोग, वही मेरे संन्यासी हैं। कुछ हिम्मतवर स्वीकार करने लगे हैं चुनौती, वही मेरे संन्यासी हैं। जल्दी ही जैसे ही सुविधा जुट जायेगी, भारतीयों के लिए भी चिकित्सा का इंतजाम, तपन कुमार, हो सकेगा। करना ही चाहता हूं, भारत को बड़ी जरूरत है!

तीसरा प्रश्न : ओशो! आप ही मेरे सब कुछ हो। आपके रंग में पूरी तरह डूब गयी हूं। मेरा यह समर्पण पूरा है या अधूरा, मैं कुछ नहीं जानती। फिर भी मैं जैसी हूं, आनंदित हूं। आपके पहले मेरा न किसी संत से मिलना हुआ, न आगे किसी से मिलने की इच्छा है। फिर भी शायद आगे किसी तथाकथित साधु से मिलना हो जाए कि जो चमत्कार, जादू-टोना करनेवाला हो, तो क्या उसके सम्मोहन का मुझ पर असर हो जाएगा? कृपया बताने की अनुकंपा करें।

शांता भारती! जिस पर मेरा सम्मोहन चल गया, फिर उस पर किसी का सम्मोहन नहीं चलता है। उसकी तू चिंता छोड़। आखिरी बात हो ही गई। अब कहां जादू-टोना!

क्या आशा अभिलाषा, बन्दे अब यह रोना-धोना क्या?
दृष्टि लग गई जब कि नियति की, तब जादू और टोना क्या?
इतना तो हो चुका अभी तक, अरे और अब होना क्या?
अपने ही को जब कि खो चुके तब आगे अब खोना क्या?
नंग नहाये ताल तलैया धोना और निचोना क्या?
जब यों बे-घर-बार हुए तब बाती-दीप संजोना क्या?
जब आकाश बन गया चंदुवा तब छप्पर में सोना क्या?
जब संग्रह का विग्रह छूटा तब अब स्वर्ग खिलौना क्या?

हलके हो कर तुम निकले हो फिर यह बोझा ढोना क्या?

कथरी छोड़ी कासा छोड़ा, गठरी और बिछौना क्या?

तुमने कब दुकान लगायी तब ड्यौढ़ा औ पौना क्या?

मस्त रहो, ओ रमते जोगी लुटिया आज डुबौना क्या?

अब फिकर छोड़ो। अब कोई जादू-टोना कुछ कर सकेगा नहीं। अब तो डूब ही गये। अब और कोई क्या डुबायेगा? अब बचे नहीं। अब कोई और क्या मिटायेगा? नहीं, अब कोई चिंता नहीं है।

और, तू सौभाग्यशाली है शांता, कि सीधे ही सागर के पास आ गयी! छोटी ताल-तलैयों में न उलझी। और जिसने सागर देख लिया, अब ताल-तलैया कुछ भी न कर सकेंगे। जिसे मेरी बात रुच जाती है, उसे चिंता के बाहर हो जाना चाहिये। जादू चल गया।

अब तू यह भी चिंता मत कर कि पूर्ण समर्पण है या नहीं। एक बीज भी पड़ जाये समर्पण का, तो काफी है। एक बीज ही फिर वृक्ष हो जाता है। एक बीज से ही फिर बहुत बड़ा वृक्ष हो जाता है। वह बीज पड़ गया है। एक बूंद अमृत की काफी है। कोई पूरा सागर अमृत का थोड़े ही पीना पड़ता है। एक बूंद काफी है। और वह बूंद पड़ गई है। वह बूंद न पड़े, तो मुझसे संबंध ही नहीं जुड़ता।

मुझसे थोड़े-से ही लोगों का संबंध जुड़ सकता है। मुझसे संबंध जुड़ना ही अपने आप में एक बड़ी परीक्षा है, एक कसौटी है।

आदमी की उंगलियों में कल्पना जब दौड़ती है

पत्थरों में जान पड़ जाती है

मूर्तियां सप्राण हो कर जगमगाती हैं।

स्पर्श में संजीवनी है।

आदमी का स्पर्श उंगली से उतर कर

पत्थरों की मूर्तियों में वास करता है

मूर्तियां जीवित बनी रहतीं हजारों साल तक,

बस, यही लगता, किसी ने आज ही इनको छुआ है।

और इस कारण बहुत-सी वस्तुएं प्राचीन युग की

खुशनुमा हैं, मोहनी हैं।

क्योंकि वे हैं आज भी

गर्मी लिये उन उंगलियों की

था जिन्होंने एक दिन उनको छुआ आवेश में।

मैं जिसे छू रहा हूं, उसे आवेश में छू रहा हूं। मैं आविष्ट हूं। जो मेरे पास संन्यस्त हो रहा है वह भी आविष्ट हो रहा है। यह एक जादू के जगत में दीक्षा है। जो झुकेगा, अंजुली भरेगा। जरा-सा पी लेगा यह जल, फिर कभी उसकी प्यास न उठेगी।

जीसस एक सांझ एक कुएं पर रुके। कुएं पर भरती थी एक स्त्री जल। उन्होंने उस स्त्री से कहा : मुझे प्यास लगी है, मुझे थोड़ा पानी दोगी? उस स्त्री ने जीसस की तरफ देखा। वह स्त्री अत्यंत दीन-हीन स्त्री थी। छोटी जाति की स्त्री थी। उसने देखा कि जीसस छोटी जाति के नहीं हैं। उनके कपड़े-लत्ते, उनका ढंग, उनका चेहरा... ।

उसने कहा : क्षमा करें! राही, शायद तुम्हें पता नहीं कि मैं बहुत गरीब, दीन-हीन, छोटी जाति की स्त्री हूं। आपकी जाति के लोग मेरा छुआ पानी नहीं पीते।

जीसस ने कहा : तू फिकिर छोड़! तू मुझे पानी पिला। और, मैं भी तुझे पानी पिलाऊंगा।

उस स्त्री ने कहा : आप भी मुझे पानी पिलाएंगे! थोड़ी चौंकी। उसने कहा : न तो डोर है आपके पास, न आपके पास बाल्टी है। आप मुझे कैसे पानी पिलाएंगे? और आप मुझे पानी पिला सकते हैं तो फिर मुझसे क्यों पानी मांगते हैं?

जीसस ने कहा : तेरा पानी और, मेरा पानी और। तू मुझे पानी पिला। लेकिन, तेरा पानी ऐसा है कि घड़ी भर बाद फिर प्यास लग आएगी। मैं भी तुझे पानी पिलाऊंगा। लेकिन मेरा पानी ऐसा है कि फिर तुझे कभी प्यास न लगेगी।

और कहते हैं, उस स्त्री ने जीसस की आंखों में झांका और जीसस की हो गई। उन आंखों में पी लिया उसने जल। मिल गया उसे अमृत।

झांको मुझमें, संन्यास का इतना ही तो अर्थ है कि मेरे करीब आ सको, कि मैं अपनी आविष्ट अंगुलियों से तुम्हें छू सकूं, कि जो मुझे घटा है उसका थोड़ा संस्पर्श तुम्हें भी हो जाये, कि तुम्हारी वीणा को थोड़ा झंकार दूं। एक बार बज जाये राग तो फिर कभी कोई और राग न तो उसके ऊपर है, न कभी था, न हो सकता है।

चौथा प्रश्न : ओशो! मृत्यु से मुझे इतना भय नहीं लगता जितना वृद्धावस्था के विचार से या वृद्धावस्था से। ऐसा क्यों है?

कृष्ण वेदांत, भय तो सिर्फ एक ही है--मृत्यु का। बाकी सब बहाने हैं। हर भय के पीछे मृत्यु का भय है।

जो आदमी डरता है कि मेरा धन न खो जाये, तुम सोचते हो धन के कारण भयभीत है? नहीं, धन सुरक्षा है। धन है तो जीवन है। ऐसी उसकी प्रतीति है। धन खो गया तो फिर जीवन भी गया। धन है तो कल बीमार होऊंगा तो चिकित्सा करवा सकूंगा। धन है, कल बूढ़ा होऊंगा तो कोई मेरी सेवा करेगा। धन है तो मृत्यु से कुछ बचाव है। धन गया तो फिर मैं बिल्कुल ही असुरक्षित हो जाऊंगा। इसलिये लोग धन को पकड़ते हैं। धन को पकड़ते हैं मृत्यु के डर के कारण।

तुमने परिवार को पकड़ा हुआ है। तुम सोचते हो, परिवार के लिये? नहीं, अकेले में डर लगता है। अकेले में आदमी को अपनी मौत याद आने लगती है। इसलिये तो रात के अंधेरे में तुम अगर निकलो किसी रास्ते से अकेले, तो घबड़ाहट पकड़ लेती है। भूत-प्रेतों की आवाजें आने लगती हैं। भूत-प्रेत चल रहे हैं आसपास... पैरों की पगध्वनि मालूम होने लगती है। खुद के ही पैर की आवाज, भूत-प्रेत की आवाज मालूम होने लगती है! खुद की छाया किसी प्रेत का आगमन मालूम होने लगती है।

क्या हो जाता है अकेले में? ये कौन प्रेत? ये कोई और प्रेत नहीं है। यह मृत्यु ही है, जिसे तुम दबाये रहते हो भीड़-भाड़ में, खोये रहते हो भीड़-भाड़ में--अकेले में प्रकट हो जाती है।

वृद्धावस्था से क्या डर हो सकता है? डर इतना ही है कि वृद्धावस्था आ गई, अब आखिरी कदम मौत है, और कुछ भी नहीं। वृद्धावस्था मौत का द्वार है।

तुम कहते हो : मौत से मैं नहीं डरता। शायद इसलिये कि मौत से तुम अपरिचित हो। मौत को देखा तो किसी ने नहीं। लोगों ने वृद्धावस्था देखी है और फिर वृद्धावस्था के बाद मौत की अनजानी घटना घटते देखी।

मौत तो किसी ने देखी नहीं। इसलिये मौत का सीधा-सीधा डर पकड़ में नहीं आता। वृद्धावस्था का डर पकड़ में आता है क्योंकि वृद्धावस्था के पीछे ही आती होगी मौत--अनजान, अपरिचित, अदृश्य।

कृष्ण वेदांत, भय तो सब मृत्यु का है। सारे भय निचोड़े जाएं तो मृत्यु का भय ही मिलेगा।

तुम अपने बच्चों को पकड़ते हो, सम्हालते हो, बड़ा करते हो। तुम सोचते हो--बड़ा प्रेम है। तुम गलती में हो। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बच्चों के माध्यम से तुम अमर होना चाहते हो। मैं तो मर जाऊंगा, लेकिन मेरा बेटा रहेगा। इसलिये इस देश में तो जब तक बेटा न हो जाए तब तक बड़ी बेचैनी होती है--जाओ, पूजा करो, पाठ करो, हनुमान-चालीसा पढ़ो, ज्योतिषियों से मिलो, भृगुसंहिता दिखवाओ, कुछ करो! ... हवन-यज्ञ, जादू-टोना! मगर बेटा तो होना ही चाहिए! बिना बेटा के मर गए तो व्यर्थ मर गए। क्यों? क्योंकि बेटे के आधार से एक झूठी अमरता मिल जाती है : मैं तो न रहूंगा, लेकिन मेरा बीज रहेगा। यह देह तो चली जाएगी, मगर मेरा कोई अंश रहेगा। मेरा कोई नाम-लेवा रहेगा। कोई तो होगा जो हर साल श्राद्ध करवा देगा। कोई तो होगा जिसके कारण मेरा कोई चिह्न इस जगत में छूट जाएगा।

स्मरण रखो भय यानी मृत्यु का भय, फिर बहाने कुछ भी हों। तुम्हारे मन में इसने वृद्धावस्था का बहाना ले लिया। वृद्धावस्था में क्या भय की बात हो सकती है? वृद्धावस्था का तो अपना सौंदर्य है। वृद्धावस्था तो एक शिखर है। जीवन जब पक जाता, जीवन के अनुभव जब पक जाते, जीवन की वासनाओं के उद्दाम वेग जा चुके, जीवन की आपाधापी समाप्त हो गई, जीवन की महत्वाकांक्षाएं विदा हो गईं, वासना-तृष्णा का ज्वर चला गया--वृद्धावस्था तो एक परम शांत दशा है! वृद्धावस्था तो बड़ी सुंदर है।

रवींद्रनाथ ने कहा है : वृद्धावस्था तो ऐसे है जैसे हिमालय के उत्तुंग शिखर, जिन पर कुंवारी बर्फ सदियों-सदियों से छायी है। ऐसे ही जब किसी बूढ़े के सिर पर सफेद बाल होते हैं... हिमाच्छादित शिखर!

वृद्धावस्था का सौंदर्य तुमने गौर से देखा? हां, मैं जानता हूं कि बहुत कम वृद्ध सुंदर हो पाते हैं। उसका कारण यह नहीं है कि वृद्धावस्था में कोई खराबी है। उसका कारण यही है कि जीवन-भर गलत जीये, जीवन-भर व्यर्थ जीये। तो वृद्धावस्था व्यर्थ हो जाती है। अगर जीवन को थोड़ा सार्थक ढंग से जीये होते, थोड़ा काव्यपूर्ण, थोड़ा रसपूर्ण, थोड़ा आनंदपूर्ण, थोड़ा प्रभु का स्मरण किया होता, थोड़ा ध्यान साधा होता, थोड़ा काम-ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन किया होता--तो वृद्धावस्था बड़ी सुंदर अवस्था है।

वृद्धावस्था तो निचोड़ है तुम्हारे जीवन का, पराकाष्ठा है। तुम्हारी पूरी कथा है।

वृद्ध के चेहरे पर पड़ी हुई झुर्रियों में वेद छिपे हैं, अगर कोई ठीक से जीया हो तो। गलत जीया हो तो निश्चित ही उन झुर्रियों में कुछ भी नहीं है--सिर्फ जीवन का विषाद है, सिर्फ जीवन की हार है। उन झुर्रियों में फिर विजय की कोई चमक नहीं है। लेकिन जब भी कोई ढंग से जीता है, सम्यकरूपेण जीता है तो वृद्धावस्था प्रमाण होती है। और जिसका वृद्धावस्था का काल सुंदर होता है उसे मृत्यु आती ही नहीं। दूसरों को दिखाई पड़ती है उसकी मृत्यु आयी है, उसके लिये तो अमृत का ही द्वार खुलता है।

सब सुंदर हो सकता है। बचपन सुंदर हो सकता है; वह नहीं हो पाता--क्योंकि शिक्षक हैं, मां-बाप हैं, समाज है, वे बचपन को कुरूप करवा देते हैं। पंगु कर देते हैं।

अभी परसों ही एक युवती ने मुझे कहा कि मेरे बेटे को कुछ कहिये--वह बेटे को साथ लेकर आई थी। बेटा प्यारा है! मैंने पूछा : इसकी क्या तकलीफ है? उसने कहा कि यह बहुत ज्यादा शोरगुल, नाचकूद, भागदौड़ मचाये रखता है। इसे कुछ समझाइये।

मैंने कहा कि तू गलत आदमी के पास ले आयी। यही होना चाहिये! यही क्षण हैं नाचने-कूदने के। अगर यह बहुत उछल-कूद करता है तो इसको नृत्य सिखाओ। आखिर सक्रिय ध्यान किसके लिये है? कुंडलिनी सिखाओ। बजाये नाचना-कूदना बंद करवाने के इसके नाचने-कूदने को कला दो, कुशलता दो। फर्क समझ रहे हो? इसको आज्ञा दो कि बैठो शांत, एक कोने में। यह नहीं बैठ सकेगा। और अगर बैठ गया तो इसकी ऊर्जा मर जाएगी। इसकी ऊर्जा बैठ जाएगी, फिर जिंदगी भर नहीं उठेगी। ना, इसकी ऊर्जा को दिशा दो, अवरुद्ध मत करो। अगर यह उछलता-कूदता है तो इसके उछलने-कूदने को नृत्य बनाओ। फिर नृत्य सुंदर हो गया। अगर यह शोरगुल मचाता है तो शास्त्रीय संगीत किसके लिये है? तो इसको आलाप भरवाओ, इसकी आवाज को शास्त्रीय संगीत में रूपांतरित करो। अगर यह शांत नहीं बैठ सकता तो वृक्षों पर चढ़ना सिखाओ, पहाड़ों पर चढ़ाओ, नदियों में तैराओ, समुद्रों में उतारो। यह मौका चूकने का नहीं है। इसको बचपन को इसकी पूरी गरिमा में जीने दो, क्योंकि इसी गरिमा के बाद इसका यौवन आयेगा। और तब इसका यौवन भी प्रगाढ़ होगा, गहन होगा।

जिसका बचपन रूखा-सूखा हो गया, उसका यौवन भी दीन-हीन हो जाता है। जिसका यौवन दीन-हीन हो गया उसका बुढ़ापा रुग्ण हो जाता है। जब यह जवान हो जाए तो इसे मत सिखाना व्यर्थ की बातें। इसको सिखाना जीवन का रंग, जीवन का रस। जब यह युवा हो जाये तो इसे कहना कि सारे रंग, पूरा इंद्रधनुष तेरा है। और, सारे स्वर तेरे हैं, सारा सरगम तेरा है। नाच, जी! भरपूर जी! कुछ छोड़ मत देना अधूरा। हर क्षण को पूरा का पूरा पी जा, ताकि जवानी जाते-जाते जवानी की दौड़ और जवानी की महत्वाकांक्षा और जवानी की तृष्णा सब अनुभव से गिर जाये।

इसको जवानी में संतोष मत सिखाना। इसे जवानी में संघर्ष सिखाना। इसे जवानी में कहनाः कर ले जितनी विजय की यात्राएं करनी हों, क्योंकि फिर बुढ़ापा आता है। फिर बुढ़ापे में बैठना मौन। फिर बुढ़ापे में होना शांत। फिर वृद्धावस्था में प्रभु-स्मरण, सुरति।

ऐसे अगर क्रम से जीवन चले तो वृद्धावस्था अपूर्व है, अद्वितीय है। और, हमने ऐसे वृद्ध जाने थे, इस देश में। इसीलिये तो हमने वृद्धों को इतना सम्मान दिया। वृद्धावस्था सम्मानित हो गई थी इस देश में, क्योंकि हमने बड़े प्यारे वृद्ध लोग जाने थे। वे केवल उम्र से बूढ़े नहीं थे, वे अनुभव से परिपक्व थे। इस देश में वृद्धों को ही अधिकार था कि वे शिक्षक हों, गुरु हों क्योंकि उन्होंने जीवन जीया है, सब उतार चढ़ाव देखे, अंधेरी रातें देखीं, अमावस्याएं देखीं, पूर्णिमाएं देखीं। सुख देखे, दुख देखे! कांटे चुने, फूल चुने। उन्होंने सब जाना है। वे सब तरह से पक गये हैं।

उन्हीं के पास हम बच्चों को भेजते थे, क्योंकि उनके जीवन-भर की दौलत, काश, बच्चों को मिल जाये तो बच्चे अभी से समृद्ध होने लगें। जो ठीक-ठीक वृद्ध हुआ है--और ठीक-ठीक वही वृद्ध होता है जो ठीक-ठीक पूरा जीवन जीया है... ।

इसलिये, मैं तुमसे कहता हूंः योग की फिक्र छोड़ो। तुम भोग को इतनी परिपूर्णता से भोगो कि तुम भोग से भोग के कारण ही मुक्त हो जाओ। और तब योग अपने-आप जलेगा। अपने-आप दीया जलेगा। फिर मौत नहीं। फिर तो मृत्यु भी सिर्फ एक ही संदेश लाती है--देह-मुक्ति का। फिर मृत्यु अंत नहीं है--सिर्फ एक नई यात्रा का प्रारंभ है; सिर्फ देह से छुटकारा है। और देह तो संकीर्ण है। देह तो ऐसी है जैसे कोई कारागृह में बंद है, कि पक्षी पिंजड़े में बंद है। मौत तो खबर लाती है कि पिंजड़ा टूट गया। और अब हंसा उड़ सकता है। हंसा जाये अकेला! अब चलो मानसरोवर! अब चलें अपने घर!

कैसा मरण-संदेसा आया?

किसके कंठाभरण स्वरों ने लय-संगीत सुनाया?
कैसा मरण-संदेसा आया?

देह थकित जर्जरित हो गयी, बिगड़ गया कुछ खटका,
संज्ञा-शून्य शरीर हो गया, लगा मृत्यु का झटका,
देख लुप्त होते जीवन को मन संभ्रम में अटका
जीवन का रहस्य यह क्या है? क्या यह मृण्मय माया?
कैसा मरण-संदेसा आया?

दो विभिन्न गतियां जगती मेंः इक जड़मय इक चेतन;
जड़गति है घूर्णित आंदोलन, चेतन है उद्वेलन,
जब जड़कण-समूह बन आया चेतन का सुनिकेतन,
तब उसमें विकास गति आईः जड़ ने जीवन पाया;
अभिनव मरण-संदेसा आया!

जिन ने मर कर चिर जीवन का रुचिर रूप पहचाना,
जिन ने निज को खोने ही में शुचि निजत्व को जाना,
वे बोले कि मरण है जीवन का ही एक बहाना,
अभिनव मरण-संदेसा आया!

जीवन का अखंड वैश्वानर हहर-हहर कर चमका,
भय भागा, संदेह हट गया छूटा संशय तम का;
अपने "स्व" को "स्वधा" सम होमा, टूटा फंदा सम का;
अपने मन की हुई मृत्यु, तब चिर जीवन लहराया;
नव-नव मरण-संदेसा आया!

शरीर से छूटकर आत्मिक जीवन मिलता है। मन से छूटकर चैतन्य की अपूर्व असीम यात्रा शुरू होती है। मृत्यु में अमृत का संदेश छिपा है।

आज बजी शहनाई, भाई, आज बजी शहनाई,
कित देह के कर्णरंध्र में मंद-मंद ध्वनि आई!
भाई, आज बजी शहनाई!

मंगल घट ले मृत्यु खड़ी है इस प्रयाण की बेला,
औ, अनंत-से अगम पंथ में छिटका अलख उजेला,
जीवन के उपकरण छोड़ कर चेतन चला अकेला,
महानिष्क्रमण की स्वर लहरी मन-आंगन में छाई,

भाई, आज बजी शहनाई!

निर्ममता की अश्रुविगलिता जो मृत्तिका पुरानी,
उससे निर्मित मंगल-घट ले आयी मृत्यु भवानी;
मरण-द्वार पर खड़ी हुई है ठसक भरी ठकुरानी,
ना जाने किस दूर देश का वह संदेसा लाई,
भाई, आज बजी शहनाई!

मत कर सोच-विचार, छोड़ तू झंझट इस बस्ती का;
नहीं खात्मा होगा, प्यारे, तेरी इस हस्ती का,
बंधन तोड़, चला चल पीकर प्याला अलमस्ती का
मरण एक बंधन-खंडन है, मरण नहीं दुखदाई,
भाई, आज बजी शहनाई!

पौ फट गई, मिट गया क्षण में अंधकार अज्ञानी,
नभरानी ऊषा मुसकानी, भव-भय-निशा सरानी;
अनजानी की अकल कहानी अब चेतन ने जानी,
उसने आज अलख की अश्रुत पायल ध्वनि सुन पाई;
भाई, आज बजी शहनाई!

नचिकेता बोला गुरु यम सेः आर्य, ईश हैं साक्षी,
मैं मुमुक्षु हूं मृत्यु तत्व का मुझे न दो मीनाक्षी;
अंतक यम बोलेः "नचिकेतो, मरणे मानुप्राक्षीः"
किंतु फंसा कब वह माया में जिसे मरण-धुन भायी?
भाई, आज बजी शहनाई!

मरण की धुन समझो-- मृत्यु का संगीत पहचानो। मृत्यु की शहनाई सुनो। डरो मत, डरने को कुछ भी नहीं है। तुम अमृत के पुत्र हो। "अमृतस्य पुत्रः"!

आखिरी प्रश्नः ओशो,
रोम-रोम में प्यार बसा क्यों एक तुम्हारा?
दृश्य-दृश्य क्यों रूप दिखाता एक तुम्हारा?
पल-पल निकले नाम तुम्हारा क्यों अधरों से?
रात-रात क्यों स्वप्न न टूटे एक तुम्हारा?

जगदीश! ऐसा ही हो, तभी कोई शिष्य है। ऐसा ही हो, तभी कोई दीक्षित हुआ। ऐसा ही संबंध जुड़ जाये, ऐसा ही सेतु बन जाये, ऐसा ही प्रेम... तो ही समझना गुरु से गांठ बंधी और फिर सब संभव है। फिर असंभव भी संभव है। गांठ भर बंध जाये तो उंडेला जा सकता है सब। जो गुरु में है, वह सब शिष्य के पात्र में भरा जा सकता है। लेकिन, संबंध न जुड़े, थोड़ी भी दूरी रह जाये तो चूक हो जाती है।

दूरी मिट रही है। यह अच्छा हो रहा है। धन्यभागी हो!

कौन-सी यह प्रीति जागी? कौन-सा यह राग जागा?
कौन-से ये स्मरण जागे? कौन उलटा भाग जागा?

कौन कहता है कि बाहर से लहर पै आ गये स्वर?
करुण मेरे गीत ही हैं भर रहे पाताल अंबर,
पर मुझे ये लग रहे हैं अजनबी-से किंतु मनहर,
हाय, अपने को बिगाना कर रहा हूं मैं अभागा,
कौन-सा यह राग जागा?

हलचलों के बीच भी वाणी रहे मेरी अकंपित,
और विप्लव भी न कर पाये सुघड़मय गीत, खंडित,
साध भी यह, किंतु देखा कंठ है आक्रोश-मंडित,
और मैं बस रो रहा हूं हिचकियों के राग गा गा,
कौन-सा यह राग जागा?

कौन-सी यह प्रीती जागी? कौन-सा यह राग जागा?
कौन-से ये स्मरण जागे? कौन उलटा भाग जागा?

जगदीश, भाग के जागने की घड़ी आ गई। पलक खुलने का मुहूर्त आ गया। डरना मत, भयभीत न होना। संकोच न कर जाना, सिकुड़ न जाना। छलांग लगाओ।

प्रिय, मैं आज भरी झारी-सी
ललक-ढुलूंगी श्री चरणों में निज तन-मन वारी-सी,
साजन, आज भरी झारी-सी!

अर्पित करने कंचन-काया,
मैं आयी हूं लख तम-छाया,
प्राणार्पण में नहीं सुहाती,
जग उजियाले की वह माया,
आज अंधेरे में खिल डोली हिय कलिका न्यारी सी,
प्रिय, मैं आज भरी झारी-सी!

यह तम का पर्दा रहने दो,
मेरी "अहं" यहां बहने दो,
चली आ रही हूं ध्रुव-पग धर,
बरबस खिंचती-सी निज मग पर,
तारा चंद्र रहित मम अंबर,
दिशा-शून्य मम पंथ विघ्न हर
आज सभी दिक्शूल बने हैं सुमन कली प्यारी सी,
प्रिय मैं आज भरी झारी-सी!

तुम शायद सोचो हो मन में,
कौन बला आयी तम घन में,
क्यों यों सोचो हो तुम प्यारे,
हूक उठा कर इस जीवन में?
मेरी और तुम्हारी तो है युग-युग की यारी-सी;
प्रिय, मैं आज भरी झारी-सी!

भूल गये क्या मुझको, साजन?
मैं हूं वे एकत्रित रज-कण--
जिनको तुमने स्वकर-परस से,
कभी किया था झन-झन उन्मन,
आज वही माटी की पुतली आयी हिय-हारी-सी;
प्रिय मैं आज भरी झारी-सी!

नाचो! खिलने दो फूल, झरने दो फूल। यही घड़ी है, जो प्रत्येक शिष्य तलाश रहा है। तुम कहते जगदीश--

रोम-रोम में प्यार बसा क्यों एक तुम्हारा?
दृश्य-दृश्य क्यों रूप दिखाता एक तुम्हारा?
पल-पल निकले नाम तुम्हारा क्यों अधरों से?
रात-रात क्यों स्वप्न न टूटे एक तुम्हारा?

जुड़ो, इतने जुड़ो कि यह मैं-तू का भेद भी न रह जाये! पहला कदम उठा लिया, अब दूसरा भी उठानाः यह मैं-तू का भेद भी न रह जाये। जिस क्षण शिष्य और गुरु में मैं-तू का भी फासला नहीं रह जाता, उसी क्षण शिष्य भी समाप्त, गुरु भी समाप्त और परमात्मा का प्रगटीकरण होता है--उसी क्षण परमात्मा का साक्षात्कार।

एक कदम तुमने उठा लिया, एक अभी और उठाना है। कठिन कदम तो उठा ही लिया, अब दूसरा कदम तो सरल है। और दो ही कदम में सत्य की यात्रा पूरी हो जाती है।

आज इतना ही।

अठारहवां प्रवचन

हो गया हृदय का मौन मुखर

पहला प्रश्नः ओशो, यह विश्वास ही नहीं आता है कि ऋषि-मुनियों के इस देश में और आप जैसे मनीषी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया जा रहा है।

वियोगी! पहले तो यह भ्रम छोड़ दो कि कोई देश ऋषि-मुनियों का देश है। न तो ऋषि-मुनि किसी देश के होते हैं, न कोई देश ऋषि-मुनियों का होता है। देश और काल के जो पार हो जाते हैं, वे ही तो ऋषि हैं। ऋषि भारतीय नहीं हो सकते; और अगर हों, तो समझना ऋषि नहीं होंगे। ऋषि तो अपनी देह से भी अपना तादात्म्य नहीं करता, तो अपने देश से कैसे करेगा? जो अपनी देह से, इतनी निकट जो मिट्टी है, उससे भी अपने को भिन्न मानता है, तो पृथ्वी की मिट्टी... उससे तो अपने को भिन्न मानेगा ही, जानेगा ही।

कोई ऋषि भारतीय नहीं होता, न कोई ऋषि ईरानी होता है, न अरबी होता है। ऋषि का तो जन्म होता है साक्षी-भाव में। साक्षी के शिखर पर सारे तादात्म्य छूट जाते हैं--देह के, जाति के, वर्ण के, रंग के, मन के। वहां तो केवल रह जाती है झलकती हुई एक चैतन्य की ज्योति। चैतन्य का कोई देश है, कोई अपना है, कोई पराया है? चैतन्य तो सर्वव्यापी है।

फिर दोहरा दूंः ऋषि-मुनि किसी देश के नहीं होते और न ऋषि-मुनियों का कोई देश होता है। इस भ्रांति को तोड़ ही दो, क्योंकि इस भ्रांति के कारण सिवाय अहंकार के और कुछ पलता नहीं पुसता नहीं। यह भाव कि यह देश ऋषि-मुनियों का है, तुम्हारे अहंकार को पोषित करता है। यह भाव तुम्हें, दूसरों से श्रेष्ठ हो, इस तरह की भ्रांति देता है। और दूसरे से श्रेष्ठ होने की जो भ्रांति है, वह अधार्मिक है, पाप है। इस भ्रांति ने सदियों में मनुष्य को बहुत सताया है। क्योंकि जिसने भी समझ लिया कि हमारे पास धर्म की बपौती है, वही दूसरों को हानि पहुंचाने का कारण बन गया। जिसको भी ऐसा ख्याल पैदा हो गया, ऐसी अस्मिता आ गई कि मेरी किताब सच्ची किताब, कि मेरा देश सच्चा देश, बस फिर दूसरों के साथ अत्याचार करने की उसे सुविधा मिल गई। उनके ही हित में वह दूसरों से अत्याचार करने लगा। उसने मस्जिदें जलाईं, उसने मंदिर तोड़े, उसने गिरजे जलाये, उसने गुरुद्वारे तोड़े। जिसको भी यह भ्रांति आ गई कि धर्म मेरे पास है, स्वभावतः दूसरों के पास धर्म नहीं है, उन्हें धर्म देना जरूरी है। और अगर सीधे-सीधे न लेते हों, तो जबर्दस्ती देना जरूरी है। अगर समझ-बूझकर न लेते हों, तो तलवार की धार पर देना जरूरी है; मगर धर्म तो देना ही पड़ेगा। अगर धर्म देने में उनके प्राण भी जायें तो कोई हर्ज नहीं। चाहे वे धर्म लेना चाहते हों या न लेना चाहते हों... ।

अहंकार बड़ा सूक्ष्म है और बड़े कुशल रास्ते खोजता है। अपने को छिपाने के लिए अहंकार ऐसे-ऐसे परिधान पहनता है कि तुम पहचान न सको। अहंकार बड़ा बहुरूपिया है! और जो श्रेष्ठतम परिधान अब तक अहंकार खोज सका है अपने को छिपाने के लिए, वह है धर्म का परिधान--हिंदू का, ईसाई का, मुसलमान का, जैन का, बौद्ध का। छिप जाओ... । धर्म के परिधान में छिपना बहुत आसान है। अगर शैतान को कहीं भी छिपना हो, तो मंदिरों और मस्जिदों, गुरुद्वारों और चर्चों के सिवाय उसे और कोई ठीक जगह न मिलेगी। क्योंकि वहां तो कोई शक ही न करेगा। शैतान बाजार में नहीं छिप सकता, क्योंकि वहां तो सभी संदेह से भरे हैं। वहां तो

सभी चौंककर चल रहे हैं। शैतान पुजारी के पीछे छिपता है। शैतान वेद की आड़ में छिपता है। कहावत है कि शैतान भी शास्त्रों के उद्धरण देता है। शास्त्र बड़ी सुविधापूर्ण व्यवस्था है।

मैंने सुना है कि एक आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया। खलबली मच गई शैतान के शिष्यों में। क्योंकि जब भी कोई ज्ञान को उपलब्ध होता है तो शैतान के व्यवसाय पर चोट पड़ती है। शिष्य भागे, उन्होंने अपने गुरु शैतान को कहा कि कुछ करो, जल्दी कुछ करो। एक आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। देखते हो, पृथ्वी पर उस वृक्ष के नीचे बैठा कैसा प्रकाशित हो रहा है, कैसा ज्योतिर्मय! वह हमारे सारे धंधे को चौपट कर देगा।

शैतान ने कहाः तुम फिक्र मत करो, जब तक पुजारी हैं और पंडित हैं, तब तक हमें कोई भी चिंता नहीं। तुम जरा ठहरो। हमें कुछ बीच में पड़ने की जरूरत नहीं, जल्दी ही पंडित और पुजारी उसके आसपास इकट्ठे हो जायेंगे। जल्दी ही मंदिर बनेगा। जल्दी ही शास्त्र रचा जायेगा। जल्दी ही धर्म का जन्म हो जायेगा। बस, पंडे-पुजारी हमारे साथ हैं। तो ऐसे एकाध-दो कभी जो बुद्ध हो जाते हैं इनकी चिंता न लो। इनकी रोशनी को ढांकने के लिए पंडित और पुजारी काफी हैं।

तुम कहते होः यह विश्वास नहीं आता है कि ऋषि-मुनियों के इस देश में और आप जैसे मनीषी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया जा रहा है! यही तो सदा होता रहा है, यह कुछ नया तो नहीं। तुम सोचते हो क्या सुकरात को जिन लोगों ने जहर पिलाया था वे बुरे लोग थे? जिनको तुम भले लोग कहते हो वे ही थे। कोई हत्यारे नहीं थे, सम्मानित सदगृहस्थ थे। कोई अपराधी नहीं थे। शास्त्रों के जानकार थे; नीति-नियम को मानकर चलते थे। उन्हीं को तो अड़चन आई थी सुकरात से। अपराधी को क्या अड़चन आनी थी? वेश्या को, चोर को, जुआरी को क्या अड़चन आनी थी, शराबी को क्या अड़चन आनी थी सुकरात से? सुकरात कह रहा था सत्य की बात; इसलिए जो लोग सत्य के नाम पर असत्य का धंधा कर रहे हैं, सिर्फ उन्हीं को अड़चन आनी थी।

सुकरात को जिन लोगों ने सूली दी, वे भले लोग थे--तथाकथित भले लोग, सम्मानित, आदृत, समाज के प्रमुख मुखिया। उन्हीं लोगों ने मिलकर--न्यायाधीशों ने, पुरोहितों ने, ज्ञानियों ने मिलकर--सुकरात को जहर पिलाया।

जीसस को किसने मारा? यहूदियों में जो सर्वाधिक शास्त्रज्ञ थे, रबाई यहूदियों के धर्मगुरु, ऋषि-मुनि यहूदियों के, उन्होंने मिलकर जीसस को सूली पर चढ़ा दिया।

और मंसूर के हाथ-पैर किसने काटे? क्या अधार्मिकों ने? तो तुम गलती करोगे। धार्मिकों ने! जिनको ख्याल था कि उन्हें मालूम है कि धर्म क्या है। जो कुरान के पाठी थे। जो वचन-वचन में मुहम्मद का उल्लेख करते थे, उन्होंने। मुहम्मद जैसे ही दूसरे आदमी को, मंसूर को मार डाला--मुहम्मद का ही नाम लेकर! मुहम्मद जैसे एक दूसरे मसीहा को परेशान किया--मुहम्मद का नाम लेकर--मुहम्मद कहीं होंगे तो जार-जार रोये होंगे--जब मंसूर को काटा गया, उसके हाथ-पैर काटे गये, उसकी आंखें फोड़ी गईं। अगर कोई इस दुनिया में मुहम्मद के बाद मुहम्मद की जैसी क्षमता का व्यक्ति था, तो मंसूर था। मगर मारा किसने? मारा उन्होंने जिनको भ्रांति है कि वे मुहम्मद के पक्षपाती हैं।

ऋषि-मुनि, तुम्हारे तथाकथित पंडित-पुरोहित... उनका बड़ा जाल है! तो विश्वास करो या न करो, मगर यही सदा होता रहा है। बुद्धों के साथ, महावीरों के साथ, यही सदा होता रहा है। यही फिर होगा। आदमी बदलता ही नहीं! तो अभी तो कुछ ज्यादा दुर्व्यवहार हुआ नहीं, आगे-आगे देखिये होता है क्या-क्या... !

करंट के नये अंक में ऋषि-मुनियों की किसी संतान ने, किसी भारतीय संस्कृति के आराधक, संरक्षक ने सरकार से प्रार्थना की है कि मुझे देश से तत्क्षण निकाला जाये। इतना ही नहीं, इससे उनकी तृप्ति नहीं हुई।

भारतीय संस्कृति का हृदय इतने से नहीं भरा। ऋषि-मुनियों की संतान इतने से राजी नहीं हुई कि सिर्फ मुझे देश से बाहर निकाला जाये, साथ में यह भी सुझाव दिया है कि मेरी जबान काट दी जाए ताकि मैं कहीं बोल न सकूं और मेरे हाथ काट दिये जाएं, ताकि मैं लिख न सकूं! अहो, धन्यभूमि भारत! अहो, पुण्यभूमि भारत! जहां देवता भी जन्मने को तरसते हैं। ... जबान कटवानी होगी अपनी, हाथ-पैर कटवाने होंगे देवताओं को अपने, तो ही तरसते होंगे! और ये हैं संस्कृति के संरक्षक!

आदमी बदलेगा कभी या नहीं! आश्चर्य इस पर करो। इस पर आश्चर्य मत करो कि ऋषि-मुनियों का यह देश और आपके साथ दुर्व्यवहार क्यों कर रहा है। आश्चर्य इस पर करो कि आदमी कभी बदलेगा या नहीं! यही तो तुमने मंसूर के साथ किया था। जबान काटी थी। हाथ काटे थे। आंखें फोड़ दी थीं।

बीसवीं सदी में, एक लोकतांत्रिक देश में--जिसको यह भ्रांति है कि वह जगत का सबसे बड़ा लोकतंत्र है--वहां लोग खुलेआम अखबारों में सलाहें देते हैं, छापते हैं! और किसी को अड़चन नहीं होती, किसी को बेचैनी नहीं होती! मेरी जबान काट लेनी चाहिए, मेरे हाथ काट डालने चाहिए। और मुझे देश में फिर भी नहीं टिकने देना चाहिए। हो सकता है आंख से इशारे करूं और लोगों को कुछ बिगाडूं, लोगों को कुछ भड़काऊं। इनको तुम ऋषि-मुनियों की संतान कहते हो! ----उल्लू मर गए, औलाद छोड़ गए। इन उल्लू के पट्ठों को तुम ऋषि-मुनियों की संतान समझते हो? काश, इतना आसान होता ऋषि-मुनियों की वसीयत को सम्हालना!

लेकिन तुम्हारे तथाकथित ऋषि-मुनियों में सभी ऋषि-मुनि भी नहीं हैं, यह भी याद रखना। ऋषि-मुनि तो कभी कोई होता है। ऋषि होने के लिए ऐसा हृदय चाहिए जिसमें परमात्मा का काव्य पैदा हो। ऋषि का अर्थ होता है कवि। साधारण कवि नहीं, असाधारण कवि। साधारण कवि को तो कभी-कभी झलक मिलती है सौंदर्य की; ऋषि को चौबीस घंटे सतत सौंदर्य की धारा बहती रहती है। कवि को तो दूर से झलक मिलती है हिमाच्छादित शिखरों की; ऋषि वहां निवास करता है। कवि के लिए तो कविता के कभी-कभी क्षण आते हैं, ऋषि कविता जीता है।

क्या है काव्य? जहां अहंकार विलीन हो गया है और जहां कोई व्यक्ति केवल बांस की पोंगरी हो गया है... और जहां परमात्मा बहना शुरू होता है उस बांस की पोंगरी से और बांस की पोंगरी बांसुरी बन जाती है! ऋषि का अर्थ है, जिसके भीतर से परमात्मा बोलता है।

पंडित ऋषि नहीं होते। जिनसे उपनिषद बहा है, वे ऋषि हैं। जो उपनिषदों की टीकायें लिखते हैं और उपनिषदों की व्याख्याएं करते हैं, वे ऋषि नहीं हैं। जिनसे वेद जन्मे हैं, वे ऋषि हैं। लेकिन चतुर्वेदी और त्रिवेदी और द्विवेदी, इनको तुम ऋषि मत समझ लेना।

मुनि कौन है? जिसके भीतर शब्द की पकड़ छूट गई है, शास्त्र की पकड़ छूट गई है, सिद्धांत की पकड़ छूट गई है। ऐसा सन्नाटा छाया है, ऐसा मौन उतरा है जिसके भीतर, ऐसा शून्य व्याप्त हो गया है कि अब शून्य का ही नाद है... । अगर ऐसा व्यक्ति कुछ बोलता है, तो शून्य से ही निकलती है वह वाणी। वह उसकी अपनी वाणी नहीं है; वह आकाशवाणी है, क्योंकि शून्य से निकली है। इलहाम है, उदघोष है, अपौरुषेय है... । कभी-कभी कोई बुद्ध, कोई महावीर... ।

लेकिन बुद्ध को तुमने पत्थर मारे। तुमने बुद्ध को गालियां दीं। तुमने महावीर को एक गांव से दूसरे गांव खदेड़ा। महावीर मुनि हैं। बारह वर्ष मौन रहे। उनके मौन में तुमने उनको जितना सताया उतना शायद ही किसी को सताया हो। मौन थे, तो कुछ बोल भी नहीं सकते थे। लोगों ने कानों में खीले ठोंक दिये कि बोलता क्यों नहीं है? बुलवाने के लिए कानों में खीले ठोंक दिये! गांव-गांव खदेड़ा, क्योंकि महावीर नग्न थे। महावीर ऐसे निर्दोष

थे कि उन्होंने वस्त्र अपने गिरा दिये, और वस्त्रों के साथ तुम्हारी सारी थोथी सभ्यता गिरा दी। वस्त्रों के गिरते ही सभ्यता गिर जाती है।

तुम्हारी सभ्यता वस्त्रों में अटकी है। यह मेरा भी अनुभव है। वस्त्र गिराते ही तुम कुछ और ही हो जाते हो। वस्त्र गिराते ही वह तुम्हारी जो तथाकथित पाखंड की व्यवस्था है, टूट जाती है। तुम फिर पशुओं और वृक्षों के जगत में प्रवेश कर जाते हो। फिर निर्दोष हो जाते हो। जैसे अदम फिर लौट आया ईश्वर के बगीचे में!

इसलिए इस आश्रम में चलने वाली समूह-चिकित्साओं में नग्न होने पर बल है, जोर है। वस्त्र के गिरते ही अपूर्व परिणाम देखे जाते हैं। लाज गई, संकोच गया... । और तुम्हारी जो धारणायें थीं छिपाने की अपने को, बचाने की अपने को, सुरक्षा के वे जो तुमने आवरण ओढ़ रखे थे, वे भी सब गिर गए।

वस्त्र तो प्रतीक हैं। वस्त्रों के भीतर वस्त्र हैं; वे सभी उघाड़ देने हैं। मनुष्य तो ऐसा हो गया है--जैसे कि प्याज की गांठ हो। ... पर्त पर पर्त, वस्त्र पर वस्त्र, मुखौटे पर मुखौटे हैं। उघाड़ते जाना है। प्याज को छीलते जाना है... ! और प्याज जब छीलते हो तो आंख से आंसू गिरते हैं, पीड़ा भी होती है। और तब तक छीलते जाना है जब तक कि शून्य ही हाथ न लग जाये। वही शून्य मौन है।

महावीर ऐसे ही मुनि हुए थे। सारे वस्त्र छोड़ दिये। सारे संस्कार छोड़ दिए। सारी सभ्यता छोड़ दी। क्योंकि जो आदमियों से नहीं मिला था, वह वृक्षों और पशु-पक्षियों के पास रहकर मिला; उनके ही जैसे रहकर मिला। वृक्ष, पशु-पक्षी अब भी प्रकृति के अंग हैं। मुनि वह है जो फिर प्रकृति का अंग हो जाता है। हां, एक फर्क होता है उसमें और पशुओं में--पशु बेहोशी में प्रकृति के अंग हैं, मुनि होशपूर्वक प्रकृति का अंग हो जाता है।

समझो, भाषा ने ही तुम्हें उपद्रव में डाला है। भाषा को छोड़कर ही तुम उपद्रव के पार जा सकोगे। तुम्हें भिन्नता, भेद किसने पैदा करवाये हैं? कोई कहता है मैं मुसलमान हूं कोई कहता हैं मैं हिंदू हूं... बस बोले कि भेद हुआ। अगर दोनों चुप बैठे रहें, भेद कैसे होगा? अगर दोनों चुप बैठे हों, कैसे जान सकोगे कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, कौन सिक्ख है? एक ने कहा मैं वेद को मानता हूं, एक ने कहा मैं धम्मपद को मानता हूं, एक ने कहा कि मैं गीता को मानता हूं; भेद शुरू हो गया। एक ने कहा कि मैं ऐसा परमात्मा मानता हूं, दूसरे ने कहा मैं वैसा परमात्मा मानता हूं; भेद शुरू हो गये। सारे भेद भाषा के हैं। अगर भाषा गिर जाये तो अभेद आ जाये।

मुनि का अर्थ होता है, जिसने भाषा को गिरा दिया। और तुम तो तथाकथित भाषा-शास्त्रियों को मुनि समझते हो, ज्ञानी समझते हो, पंडित समझते हो, प्रज्ञावान समझते हो। और इन्हीं उपद्रवियों के कारण इस जगत पर अभिशाप की काली छाया है।

अब देखते हो, जिन सज्जन ने यह सुझाव दिया है--बड़े धार्मिक भाव से दिया है, बड़े धार्मिक जोश से दिया है--कि मेरी जबान और मेरे हाथ काट दिये जाने चाहिए। इसमें बड़ा धार्मिक भावावेश है; बड़े आविष्ट होकर दिया है! और इस आदमी को ख्याल भी न आया कि यह क्या कह रहा है! ये धार्मिक व्यक्ति के लक्षण हैं कि जबान काट दी जाए, कि हाथ काट डाले जाएं? अगर यह जबान किसी की है, तो परमात्मा की। अगर ये हाथ किसी के हैं, तो परमात्मा के हैं। किसी की भी जबान काटो, तुम परमात्मा की ही जबान काटोगे। और किसी के भी हाथ काटो, तुम उसी के हाथ काटोगे। मंसूर को नहीं मारा तुमने, "उसकी" आवाज को मारा। जीसस को नहीं तुमने सूली चढ़ाया, "उसके" ही रूप को, उसके ही अवतरण को तुमने सूली चढ़ा दिया। सुकरात को तुमने जहर नहीं पिलाया, वह जहर अब भी परमात्मा के कंठ में है। उसका कंठ नीला इसीलिए तो हो गया है। वह नीलकंठ हो गया है! तुम्हारा सारा जहर उसी के कंठ में पहुंच जाता है। किसी को पिलाओ, सब कंठ उसके हैं।

लेकिन ऐसा नहीं है कि इस पंडितों की संस्कृति के झूठे, थोथे पोषकों की भीड़-भाड़ में कभी कोई सच्चा आदमी नहीं होता। सच्चे आदमी भी होते हैं, प्यारे आदमी भी होते हैं--जिनके भीतर मुनि का कुछ रंग होता है! जिनके भीतर ऋषि की कुछ आभा होती हैं! एकदम अंधेरी रात ही नहीं है, यहां कुछ तारे भी टिमटिमाते हैं। इसलिए थोड़ी आशा है। इसलिए मनुष्य के संबंध में एकदम निराश हो जाने की जरूरत नहीं है।

कल मैंने एक पत्र पाया। कल ही करंट में यह लेख पढ़ा और कल ही मैंने एक पत्र पाया। संतुलन हो गया। आदमी पर डगमगाता भरोसा ठहर गया। अजमेर में भारत के मुसलमानों की सर्वाधिक पूज्य दरगाह है--ख्.वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह! उस दरगाह शरीफ के प्रधान हैं--एस. अयाज महाराज। तुम थोड़ा चौंकोगे--एस. अयाज तो मुसलमान का नाम है--और महाराज! क्योंकि ख्.वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए एक-सी प्यारी है। होनी ही चाहिए। इसलिए दरगाह का जो प्रधान है, उसको महाराज भी कहते हैं। वहां हिंदू भी पूजा करते हैं, मुसलमान भी पूजा करते हैं। मैं तो चौंका! कल एस. अयाज महाराज का पत्र पाकर बहुत चौंका। पत्र में उन्होंने लिखा है कि "आपका एक ही प्रवचन मैंने टेप से सुना है--"द सीक्रेट आफ द सीक्रेट्स" का दसवां प्रवचन--और मैं दीवाना हो गया हूं! क्या मुझे आप अपना शिष्य स्वीकार करेंगे? मैं देर नहीं सह सकता। मुझे पता ही नहीं था कि आप हैं। मुझे बुला लें। मेरी पात्रता नहीं है, लेकिन क्या मुझे आप अपना शिष्य स्वीकार करेंगे?" बार-बार दोहराया है।

मुश्किल में पड़ जायेंगे एस. अयाज! मैं तो उनको लिखवा दिया कि आ जायें। मैं तुम जैसे ही दीवाने लोगों के लिए हूं। मगर मुश्किल में पड़ जायेंगे! पीछे जो हजारों मुसलमान उन्हें पूजते हैं, मानते हैं, वे तो बड़े क्रुद्ध हो जायेंगे। लेकिन आदमी हिम्मत के मालूम होते हैं।

ऐसे थोड़े-से आदमी हैं जिनको ऋषि कहो, जिनको मुनि कहो, जिनके पास आंखें हैं। फिर वे हिंदुओं में हों, मुसलमानों में हों, ईसाइयों में हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिनके पास आंखें हैं वे ही मुझे पहचान सकेंगे। एस. अयाज समझ पाये। क्योंकि सूफी का दिल है। और अगर मेरी बात न समझ पाते, तो प्रमाण होता कि सूफी का दिल नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह सूफियों का सार है, भक्तों का सार है, सारे ज्ञानियों का निचोड़ है। उसमें कुरान का स्वर है। उसमें वेद का स्वर है। उसमें धम्मपद की आवाज है। उसमें बाइबिल की छाया है, छाप है।

मैं किसी एक देश के लिए, एक धर्म के लिए, एक जाति के लिए नहीं बोल रहा हूं। यह सारी पृथ्वी मेरी अपनी है। यह सारा मेरा विस्तार अपना है। और ऐसा ही यह तुम्हारा भी होना चाहिए। छोड़ो ये बातें कि यह ऋषि-मुनियों का देश... । अब तो सारी पृथ्वी हमारी है।

और विश्वास करो कि इसी तरह के लोग धर्म को नष्ट करते रहे हैं। विश्वास नहीं आता, क्योंकि हमारी धारणा धार्मिक आदमियों के प्रति कुछ और होती है। हम उनसे यह आशा नहीं करते कि वे जबानें काटने और हाथ तोड़ने की बातें करेंगे। हम उनसे हत्याओं की आशा नहीं करते। हम उनसे जीवन का वरदान चाहते हैं। हम चाहते हैं कि वे अभिशाप नहीं होंगे--वरदान होंगे, आशीष होंगे। मगर वैसे आशीष होने वाले व्यक्ति तो कभी-कभी होते हैं, सौ मैं एक, और निन्यानबे जिनको तुम ऋषि-मुनि समझते हो उस एक के विपरीत हो जाते हैं।

तो तुम जरा भेद करना सीखो। तुम्हारे ऋषि-मुनियों में दुर्वासा भी हैं। तुम्हारे ऋषि-मुनियों में व्यर्थ के लोग भी हैं, व्यर्थ के दावेदार भी हैं। और उनकी भीड़ है। क्योंकि नकल करना सदा आसान है, असल होना बहुत कठिन है। असल के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। असल के लिए साधना से गुजरना पड़ता है। नकल के लिए तो बस ओढ़ लिया एक बाना, काम हो गया। कुछ कूड़ा-करकट शास्त्रों का इकट्ठा कर लिया, कुछ लफ्फाजी सीख ली। बस पर्याप्त है। थोड़े कुशल तोता हो गए, और बात हो गई। कुशल तोतों से सावधान! वे फिर चाहे किसी

शास्त्र का उल्लेख करते हों और किसी संस्कृति का दावा करते हो--तोतों से सावधान। तोतों ने मनुष्य जाति को यंत्रवत कर दिया है। और हम काफी पीड़ित हो लिए हैं। अब समय आ गया है कि आदमी थोड़ा जागे, थोड़ा होश से भरे।

इस दुनिया में न हिंदुओं की जरूरत है, न मुसलमानों की, न ईसाईयों की; इस दुनिया में तो सिर्फ धार्मिक लोगों की जरूरत है। और धार्मिक व्यक्ति सांप्रदायिक नहीं होता। धार्मिक व्यक्ति राजनैतिक नहीं होता। धार्मिक व्यक्ति किसी देश, किसी सीमा में आबद्ध नहीं होता है।

दूसरा प्रश्नः इस बार कुछ अजीब-सी परिस्थिति में आप तक पहुंचा। यहां पहुंचने पर घर से तार मिलाः जल्दी आओ! परन्तु आपकी निकटता के अत्यंत प्रसादपूर्ण शीतल आनंद को छोड़ पाना इतना सरल नहीं था। द्वंद्वपूर्ण स्थिति में भी यहीं रुके रहने का निर्णय लिया। आज बड़ा प्रसाद उतरा है। भीतर की वीणा पर स्पष्ट रूप से ट्यूनिंग का आभास पहली बार मिला है। आनंदित हूं, आश्चर्यचकित हूं। उचित समझें तो कुछ कहने की अनुकंपा करें।

प्रेम वेदांत! जब कोई कुछ चुकाता है तभी कोई कुछ पाता है। मुफ्त कुछ भी नहीं। सत्य तो मुफ्त मिलता ही नहीं। इस बार तुमने कुछ चुकाया। घर से खबर आई कि चले आओ, द्वंद्व हुआ। मन ने कहा होगाः चलो, घर है, गृहस्थी है, परिवार है, कोई अड़चन होगी, कोई मुसीबत होगी। मन ने खींचा होगा कि चलो। मन चिंतित हुआ होगा। स्वाभाविक। फिर भी तुम रुके। उस "फिर भी" में ही सारा राज है। तुमने कुछ छोड़ा। तुमने चिंता छोड़ी। तुमने एक लगाव छोड़ा, एक आसक्ति छोड़ी। यहां होने के लिए तुमने पहली बार कीमत चुकायी।

आते तुम पहले भी थे, मगर तब आना एक था। रुकते तुम पहले भी थे, लेकिन तब रुकना एक था। इस बार मन के विपरीत रुके। और जो मन के विपरीत रुक गया वही आत्मा में प्रवेश करता है। इस बार तुमने मन को त्यागा, तुमने कहाः करता रह तू चीख-पुकार, नहीं जाना है। इस बार तुमने मन की उपेक्षा की। उस उपेक्षा में ही मन से तुम्हारे धागे टूटे। और मन से धागे टूटें तो आत्मा से जुड़ें। या तो मन से जुड़े रहो या आत्मा से जुड़ जाओ, बस दो ही उपाय हैं। दोनों के साथ एक साथ जोड़ नहीं बनता। या तो बहिर्मुखी या अंतर्मुखी। इस बार बहिर्मुखता तुमने थोड़ी-सी छोड़ी। तुमने थोड़ा दांव पर लगाया। मन ने हजार शंकायें भी उठायी होंगी। कर्तव्य के न मालूम कितने-कितने विचार मन में आये होंगे कि पता नहीं कौन-सी मुसीबत है! तार में तो सिर्फ लिखा है जल्दी आओ, पता नहीं पत्नी बीमार है कि मरणशैया पर है, कि मां बीमार है, कि पिता बीमार हैं, कि चोरी हो गई घर में, कि डाका पड़ गया, कि दुकान लुट गई, कि आग लग गई, पता नहीं क्या है! हजार चिंताएं उठी होंगी। उन सारी चिंताओं को तुमने एक पोटली में बांधकर अलग कर रख दिया। उसी के कारण, बस उसी के कारण इस बार तुम्हें लगा कि मन की वीणा पर कुछ स्वर बज रहा है।

जो भी कीमत चुकाने को राजी है, उसे मिलता है--उसे निश्चित मिलता है। कबीर ने कहा हैः "कबिरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ। जो घर बारै आपना चले हमारे साथ।" कुछ तो जलाना पड़े। कुछ जगाना हो तो कुछ जलाना पड़े। कुछ नया जन्म देना हो तो पुराने के प्रति कुछ मरना पड़े। जितने मरोगे उतने ही जन्मोगे। अगर पूरे-पूरे मर जाओ अतीत के प्रति तो तुम्हारा संपूर्ण जन्म हो जाए, नवोन्मेश हो जाए। एक नई लहर उठे तुममें, जिससे तुम भी परिचित नहीं! एक नयी चैतन्य की ज्योति जले तुममें, जिसका तुमने सपनों में भी आभास नहीं पाया!

पर शुरुआत हुई, अच्छा हुआ कि तुम रुक गये। तार मानकर चले भी गए होते तो भी क्या कर लेते? अगर घर में आग लग गयी थी तो लग गयी थी, तुम भी जाकर क्या बुझा लेते? तुम्हारे जाते-जाते तो बुझ ही चुका होता घर भी और आग भी। तुम्हारे जाने से ही क्या होनेवाला था? पहुंचकर भी कोई क्या कर लेता है? तुम नहीं भी पहुंचे तो भी जिंदगी रुक नहीं गयी, जिंदगी बहती ही रही है। कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि न पहुंचने का परिणाम लाभकर वहां भी हुआ हो। पत्नी बिस्तर पर पड़ी है, एक-दो दिन राह देखी होगी कि अब आते स्वामी, अब आते स्वामी, फिर सोची होगी कि नहीं आते। फिर उठ आई होगी। फिर काम-धाम में लग गई होगी। फिर भूल-भाल गई होगी बीमारी। क्योंकि पति न हो तो पत्नी को बीमारी बनाये रखने में रस ही नहीं होता। ... पति हो तभी पत्नी को बीमार होने का मजा होता है।

मैं एक घर में बैठा था, सामने। दंपत्ति घर के बाहर गये थे। अपने बच्चे को छोड़ गये थे मेरे पास खेलते। वह खेलते-खेलते सरक गया और बगल की दीवार से गिर गया, कोई चार-पांच फीट नीचे। गिरकर उसने मेरी तरफ देखा। मैं जैसा बैठा था वैसा ही बैठा रहा। मैंने कुछ जैसे हुआ ही नहीं, ऐसे ही बैठा रहा। उसने देखा। थोड़ी देर देखता रहा होगा। वह भी समझ गया होगा कि कोई सार नहीं है। उठा, कपड़े झाड़कर फिर अपने खेलने में लग गया। आधा घंटे बाद जब उसके मां-पिता लौटे, एकदम रोने लगा। मैंने कहाः देख, यह बिल्कुल ठीक नहीं है। उसने कहाः क्यों ठीक नहीं है? मैंने कहाः आधा घंटा हो चुका तुझे गिरे, अब रोने का क्या मतलब? उसने कहाः लेकिन तब रोने का क्या मतलब था? आप तो ऐसे बैठे थे जैसे पत्थर की मूर्ति हों। आप तो बस देखते रहे। मैं भी चौंका। अब मेरी मां आ गयी, अब भी न रोऊं?

गिरने से कोई संबंध रोने का जरूरी नहीं है। मां हो तो बच्चा ज्यादा रोता है, मां न हो तो देखकर समझ जाता है कोई सार नहीं है। पति घर पर हो तो पत्नी की बीमारी लंबा जाती है। पति घर पर न हो, पत्नी उठ आती है--बच्चों को स्कूल भेजना है, काम-धाम करना है।

जीवन बहुत अदभुत है। तुम नहीं गये, इससे कुछ हानि हो गयी होगी ऐसा मत सोचना। हानि होने को इस जगत में कुछ है ही नहीं। इस जगत में ऐसा कुछ मूल्यवान है ही नहीं जिसकी हानि हो जाये। हां, तुम गये होते तो जरूर कुछ हानि हो गयी होती। यह जो वीणा में थोड़ी-सी झंकार उठी, इससे तुम चूक गये होते। और मजा ऐसा है कि तुम्हें कभी समझ में भी न आता कि कुछ चूक गये हो। क्योंकि चूकने का तो पता ही तब चलता है जब झंकार उठने लगे। यही तो दुर्भाग्य है करोड़ों लोगों के जीवन में; वीणा में झंकार नहीं उठती, वे सोचते हैं वे कुछ चूक नहीं रहे हैं, उनकी जिंदगी ठीक चल रही है। क्लब जाते हैं, सिनेमा देखते हैं, रेडियो सुनते हैं, टेलीविजन देखते हैं, पत्नी है, बच्चे हैं, धन-दौलत है, सब ठीक चल रहा है। उन्हें याद भी आये तो कैसे आये कि कुछ चूक रहा है--कुछ जो सर्वाधिक मूल्यवान है। चूकने का भी पता तब चलता है जब थोड़ा स्वाद आये। जिसने सुनी थोड़ी झंकार उसे पता चलेगा कि अरे, काश मैं चला गया होता तो पता नहीं क्या चूक जाता!

अब इस बात को भूल मत जाना। आदमी की स्मृति बड़ी कमजोर है, जल्दी भूल जाता है। स्मृति की कमजोरी बड़ी घातक है। भूल मत जाना। यह जो अभी तुमने वीणा में थोड़ी-सी ट्यूनिंग मालूम पड़ी है, यह कोई अंत नहीं है, यह प्रारंभ है। यह तो पहली चोट है। अभी बहुत कुछ होना है। अभी बहुत राग उठने हैं। रागों पर राग हैं, महाराग हैं, उनका कोई अंत नहीं है। जितने तुम गहरे जाओगे उतने रहस्य और गहरे होते जाते हैं। रहस्य कभी चुकते नहीं। इसलिए तो हम कहते हैं कि परमात्मा अनंत है; जान-जानकर भी जानने को शेष रह जाता है। कितना ही जानो, फिर भी जानने को शेष रह जाता है। पर एक शुभ किरण तुम पर उतरी।

चिटकीं ये बेले की कलियां, ओ मधुराधर,

छिटकी हो मानो तव मंद-मंद स्मिति मनहर।

मुकुलित हो गया अमित जीवन-उल्लास-हास,
वृन्तों पर थिरक उठा, नव चेतन का विकास;
पांखुरियों में स्पंदित नवल जागरण-विलास;
अलिगण की गुन-गुन में गूंजे हैं नव-नव स्वर;
ओ मेरे मधुराधर।

सर-सर-सर-सर करता नाच उठा मधु समीर,
फर-फर-फर-फर करती आयी है विहग-भीर
जीवन का जय-निनाद उमड़ा है गगन चीर,
लहर उठीं नभ-सर में बाल अरुण किरण-लहर;
ओ मेरे मधुराधर।

जग में है ज्योति-हास, जड़ में चेतन-प्रकाश,
तृण-तृण में सुरस-रास, चिन्मय है महाकाश;
तव हिय क्यों हो उदास? मानव क्यों हो निराश?
उपल-हृदय में भी तो लहर रहा निर्झर,
ओ मेरे मधुराधर।

निरख-निरख कलियों की मादक मुसकान अमल--
बलि जाऊं! आयी है तव स्मिति की स्मृति विह्वल!
मन मन-सर में विकसित हैं तव युग नयन-कमल,
परिमल मिस आयी तव तन-सुवास सिहर-सिहर!

चिटकीं ये बेले की कलियां, ओ मधुराधर,
छिटकी हो मानो तव मंद-मंद स्मिति मनहर।
ओ मेरे मधुराधर।

उसकी पहली किरण उतरी। उस प्रिय की पहली झलक आयी। पहला घूंट गले के नीचे उतरा है। अभी बहुत पीने हैं, सागर पीने हैं। लेकिन सूत्र याद रखना, कुछ इस बार छोड़ा है इसलिए कुछ पाया है, यह गणित भूल न जाए। जितना छोड़ोगे उतना पाओगे। जितना दांव पर लगाओगे उतना पाओगे--उतना ही पाओगे! जीवन बड़ा न्यायपूर्ण है।

तीसरा प्रश्नः राजनैतिक लुच्चे-लफंगों से देश का छुटकारा कब होगा?

बहुत कठिन है। क्योंकि प्रश्न राजनैतिकों से छुटकारे का नहीं है, प्रश्न तो तुम्हारे अज्ञान के मिटने का है। तुम जब तक अज्ञानी हो, कोई-न-कोई तुम्हारा शोषण करेगा। कोई-न-कोई तुम्हें चूसेगा--पंडित चूसेंगे, पुरोहित चूसेंगे, राजनेता चूसेंगे। तुम जब तक जाग्रत नहीं हो, तब तक लुटोगे ही। फिर किसने लूटा, क्या फर्क पड़ता है? किस झंडे की आड़ में लूटा, क्या फर्क पड़ता है? मंदिर में लुटे कि मस्जिद में, समाजवादियों से लुटे कि साम्यवादियों से, क्या फर्क पड़ता है? तुम लुटोगे। लुटेरों के नाम बदलते रहेंगे और तुम लुटते रहोगे।

राजनीति तो झूठ का खेल है। जब तक तुम सच को न पहचानने लगोगे तब तक तुम झूठों के हाथ में पड़ते ही रहोगे, पड़ते ही रहेगे।

ऐसा मत पूछो कि राजनैतिक लुच्चे-लफंगों से देश का छुटकारा कब होगा? यह प्रश्न अर्थहीन है। ऐसा पूछो कि मैं कब इतना जाग सकूंगा कि झूठ को झूठ की तरह पहचान सकूं। और जब तक सारी मनुष्य-जाति झूठ को झूठ की भांति नहीं पहचानती, तब तक छुटकारे का कोई उपाय नहीं है।

हम सिर्फ अपने कंधों के बोझ बदलते रहते हैं। मरघट तुमने देखा है, लोग अर्थी ले जाते हैं! एक कंधा थक जाता है, तो फिर अर्थी को दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। कुछ अर्थी का बोझ कम नहीं हो जाता कंधा बदलने से। लेकिन थका कंधा, थोड़ी राहत ले लेता है, गैर-थका कंधा थोड़ा सम्हाल लेता है। फिर जब वह कंधा थक जायेगा, फिर कंधा बदल लेंगे।

बस ऐसे ही एक राजनेता को हटाते हो दूसरे को बिठलाते हो; कंधा थक जाता है, फिर तीसरे को बिठाल लोगे। यह खेल चलता रहता है... सदियां बीत गईं! आदमी के भीतर कहीं कोई किरण की कमी है, कहीं कोई रोशनी की कमी है। झूठ नहीं पहचान पाता। और कैसे झूठ तुमसे बोले जाते हैं, फिर भी तुम नहीं पहचान पाते! राजनेता ऐसे झूठ बोलते हैं, जिसको कोई भी पहचान ले, बच्चा भी पहचान ले कि यह झूठ है। लेकिन फिर तुम भ्रम में आ जाते हो। तुम उनके आश्वासनों को फिर मान लेते हो। तुम फिर भरोसा कर लेते हो कि आ गया रामराज्य, इस बार पक्का आ गया! कभी नहीं आता।

राजनेताओं से रामराज्य कभी आने को है भी नहीं! सच तो यह है कि राम के राज्य में भी कहां रामराज्य था, तो अब क्या आयेगा? रामराज्य कभी रहा ही नहीं है। शूद्र उतने ही पीड़ित थे राम के राज्य में जितने आज पीड़ित हैं। एक शूद्र के कानों में शीशा पिघलाकर डाल दिया गया था, क्योंकि उसने वेद के वचन सुन लिये थे। यह रामराज्य है! यह कैसा रामराज्य? शूद्र और ब्राह्मण का यह भेद, रामराज्य! स्त्री-पुरुष के बीच इतना भेद था जिसका हिसाब नहीं। जब राम सीता को रावण से छीनकर ले आये, तो उसकी अग्नि-परीक्षा ली। स्वयं भी तो देनी थी। क्योंकि सीता अकेली रही थी, राम भी अकेले रहे थे। और कई इतिहासज्ञ हैं जिनको शक है कि राम का शबरी से प्रेम था। मैं नहीं जानता, मैं कोई गवाही नहीं दे रहा हूं कि था कि नहीं। मुझे कुछ लेना-देना भी नहीं है--न शबरी से न राम से। लेकिन इतिहासज्ञ हैं, मैंने किताबें पढ़ी हैं, जिनको शक है।

लेकिन स्त्री-पुरुष में भेद है। स्त्री को तो अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी। पुरुष... पुरुष तो सदा ही शुद्ध है! पति तो परमात्मा है! उसको परीक्षा क्या देनी? यह तो बेईमानी हो गई। या तो सीता की परीक्षा नहीं लेनी थी। और अगर लेनी थी तो दोनों को आग से गुजरना था। और फिर भी तुम देखते हो, परीक्षा से भी क्या हुआ! लौटकर अयोध्या में सरसरी फैली होगी कि इतने दिन तक रावण के वहां रही, पता नहीं क्या संबंध रहा, कैसा रहा! लोग तो सदा लोग हैं, अफवाहों पर जीते हैं! अफवाहें ही उनकी सारी संपदा हैं।

कहानी कहती है कि एक धोबी के कहने से, मगर मैं यह नहीं मान सकता, कई धोबी कह रहे होंगे। क्योंकि धोबियों को मैं जानता हूं। उनका धंधा ही यही है। एक धोबी तभी कह सकता है, जब कई धोबी कह रहे

हों। हवा रही होगी, पूरे गांव में यही चर्चा रही होगी। अयोध्या में यही कानाफूसी चल रही होगी कि मामला क्या है, इतने दिन तक रावण के घर रहकर सीता को ले आये! कोई एक धोबी के कहने से राम ने सीता को छोड़ा होगा, यह बात जंचती नहीं है। यह तो बड़ा ही अलोकतांत्रिक हो जायेगा कि निन्यानबे प्रतिशत लोग पक्ष में थे और एक प्रतिशत पक्ष में नहीं थे। उस एक प्रतिशत के लिए निन्यानबे प्रतिशत के विचार की हत्या की गई, यह तो रामराज्य नहीं होगा। यह तो अल्पमत का राज्य हो जायेगा।

और फिर, जब अग्नि-परीक्षा ले ली थी; फिर तो सीता को छुड़वा देना जंगल में--गर्भवती सीता को--बड़ा अन्यायपूर्ण है! फिर परीक्षा का क्या हुआ, फिर परीक्षा का अर्थ क्या था? और अगर ऐसा ही था कि लोग बहुत निंदा कर रहे थे, तो स्वयं भी सीता के साथ जंगल चले जाना था। तो कुछ बात भी होती। राज्य बचा लिया, पद बचा लिया, पत्नी छोड़ दी? स्त्री का मूल्य ही क्या है, लोग तो उसको पैर की जूती समझते रहे हैं!

नहीं, उस दिन भी रामराज्य क्या खाक रहा होगा! रामराज्य कभी नहीं रहा। रामराज्य आयेगा तब, जब तुम्हारे भीतर ज्योति होगी; जब तुम्हारे भीतर ध्यान का प्रकाश होगा। जब बहुत लोग ध्यानपूर्वक जीयेंगे, तब यह संभव है।

राजनीति तो झूठ पर चलती है।

ढब्बू जी ने एक नेता जी से पूछाः एक झूठ बोलकर तो दिखाइये बिना सोचे। नेताजी ने कहाः मैं झूठ नहीं बोलता। ढब्बू जी ने कहाः शाबास! आपने सोचने में जरा भी वक्त नहीं लिया।

नेताजी और झूठ न बोलें, तो नेताजी बोलेंगे क्या!

श्रीमती जी ने यह सुनकर कि आज उनके मित्रों को उनके पतिदेव ने, जो कि एक राजनेता हैं, खाने पर बुलाया है... । तो नेताजी आनन-फानन उठे और घर-भर की छतरियां तथा हैट उठाकर भंडार घर में छिपा आये। श्रीमती जी ने जरा चकित होकर पूछा कि क्या आपको डर है कि मेहमान लोग छतरियां और हैट चुरा ले जायेंगे? यह बात नहीं, नेताजी ने खोपड़ी खुजाते-खुजाते कहा, मुझे यह डर है कि वे लोग अपनी वस्तुएं पहचान न लें।

नेताओं की जिंदगी तो झूठ और चोरी पर ही चलेगी। और फिर ज्यादा-से-ज्यादा तुम बदलाहट कर सकते हो--एक चोर की जगह दूसरा चोर। और चोर वही के वही हैं। चोरी वही की वही है। छाप तुम कोई भी लगा लो।

तुम देखते हो, एक ही तरह के चोर इस मुल्क की छाती पर सवार हैं। इस पार्टी से उस पार्टी में चले जाते हैं; उस पार्टी से इस पार्टी में चले जाते हैं; चोर वही के वही!

मुल्ला नसरुद्दीन केमिस्ट की दुकान पर गये और दुकानदार से बोलेः याद है, कल मैं आपके यहां से एक स्याही के दाग दूर करने वाली दवा ले गया था? दुकानदार ने कहाः हां, क्या नसरुद्दीन, दूसरी शीशी चाहिए, मुल्ला ने कहा कि नहीं, अब उस दवा के दाग को मिटाने वाली दवा हो तो दे दीजिए।

एक राजनैतिक पार्टी नुकसान करती है। फिर उसको सुधारने के लिए दूसरी को लाओ; वह और नुकसान करती है। फिर तीसरी को लाओ। ... यह जारी रहा है। आदमी की छाती पर शोषण जारी रहा है। और जारी रहेगा। कसूर तुम्हारा है। तुम जागो। कसूर राजनैतिक का नहीं है। राजनैतिक तो सिर्फ अवसरवादी है। वह तो अवसर का फायदा ले रहा है। वह देखता है कि तुम राजी हो सीढ़ियां बनने को तो तुम्हारी सीढ़ियां बनाकर चढ़ जाता है। उसे कुर्सी तक पहुंचना है। तुम कुर्सी को जब तक आदर दोगे, तब तक कुछ लोग तुम्हें सीढ़ियां बनाकर कुर्सी पर पहुंचते रहेंगे। कुर्सी को आदर देना बंद करो। कोई जरूरत क्या है? अगर प्रधान मंत्री गांव में आ जायें,

तो सारे गांव को वहां मूढ़ों की तरह इकट्ठे होने की आवश्यकता क्या है? आने दो, जाने दो; तुम चिंता छोड़ो। तो कुर्सी का जो मूल्य बन गया है, वह नीचे गिरे।

कुर्सी का मूल्य गिराओ। कुर्सी को नीचे हटाओ। कुर्सी को इतने नीचे हटा दो कि कुर्सी पर बैठने का मजा ही न रह जाये। जब तक कुर्सी पर बैठने का मजा है, तुम चले पूजा करनेः तुम चले फूलमालाएं लेकर। और मजा यह है कि वे ही नेता जब तक पद पर नहीं थे, तुम्हारे गांव में आये तो तुम्हें कोई चिंता न थी। जैसे ही वे पद पर पहुंच जाते हैं, तुम एकदम दीवाने हो जाते हो, जैसे उनमें कोई ईश्वरीय शक्ति का अवतरण हो जाता है! कुर्सी का इतना समादर करोगे, तो फिर लाखों लोग कुर्सी तक पहुंचने के लिए तड़फेंगे। और जब लाखों लोग तड़फेंगे, तो संघर्ष छिड़ेगा, महत्वाकांक्षा होगी, गलाघोंट प्रतिस्पर्धा होगी। फिर उनमें जो सबसे ज्यादा चालबाज होगा, वही पहुंच पायेगा।

राजनीति में तो वही जीतेगा जो सबसे ज्यादा चोर, सबसे ज्यादा बेईमान होगा। और इतना कुशल होना चाहिए कि बेईमानी भी करता रहे और ईमानदारी का झंडा भी उठाये रहे। साधु-संत भी बना रहे ऊपर-ऊपर और भीतर-भीतर सारे उपद्रव भी जारी रखे। इस सबके पीछे आधार क्या है? तुम क्यों कुर्सी को इतना मूल्य देते हो?

पद के मूल्य को गिराओ। हर चीज का मूल्य बढ़ रहा है, कम-से-कम एक चीज का मूल्य मत बढ़ने दो। कुर्सी का मूल्य मत बढ़ने दो। उसका मूल्य-ह्रस करो। जैसे रुपये की कीमत गिरती जाती है, ऐसे ही कुर्सी की कीमत गिराते जाओ। एक घड़ी ऐसी आ जाये कि जिसको तुम कुर्सी पर बिठा दो, वह बैठा ही रहे, न कोई फूल माला लाये, न कोई शोरगुल मचाये, न कोई जय-जयकार करे। तब तुम पाओगे कि राजनीति में दूसरी तरह के लोग उत्सुक होंगे, जो कुछ सेवा करना चाहते हैं। तब! नहीं तो चोर और लफंगे और लुच्चे ही उत्सुक होंगे, जो ताकत में होना चाहते हैं।

कुर्सियां डस रही हैं मौसम को
पर उन्हें सब सलाम करते हैं
कुर्सियां आज बन गई हैं रोग
कितने मासूम ब-अदब हैं लोग
चोट खाखाकर मुस्कराते हैं
राज-काजों में कट गया सब दिन
घर की राहों में आह भरते हैं
कुर्सियां डस रही हैं मौसम को
पर उन्हें सब सलाम करते हैं

कुर्सियों के बिना गुजर भी नहीं
कुर्सियों की बड़ी उमर भी नहीं
कुर्सियां सभ्यता का लालच हैं
कुर्सियां मौत से बड़ा सच हैं
कुर्सियां सोचती नहीं खुद तो
सोचते वे कि जो उतरते हैं

या कि जो कुर्सियों से डरते हैं

कुर्सियां डस रही हैं मौसम को

पर उन्हें सब सलाम करते हैं।

कुर्सियों को सलाम करना बंद करो। कुर्सी-पूजा बहुत हो चुकी। जितनी कुर्सी की पूजा कम हो जाये उतने ही गलत लोग कुर्सी की तरफ जाना बंद कर देंगे। तुमने कुर्सी को बहुत आकर्षण दे दिया है।

लेकिन अखबारों में राजनेता की चर्चा है पहले पृष्ठ से लेकर आखिरी पृष्ठ तक। गांव में उसकी चर्चा है, होटलों में उसकी चर्चा है, चौपालों में उसकी चर्चा है। जहां देखो वहां राजनीति की चर्चा है। सुबह से उठे नहीं कि बस अखबार की तरफ दौड़ते हो। चाय भी पीछे, पहले अखबार पीते हो। जरा खाली समय मिला कि रेडियो पर बैठ जाते हो कि लगा लिये कान दिल्ली पर।

मेरा प्रयास यही है। अगर मैं राजनीति के खिलाफ कभी बोलता हूं तो उसका कारण यह नहीं है कि मुझे राजनीति में कोई रस है। उसका कुल कारण इतना है कि मैं चाहता हूं कि तुम्हारे मन से राजनैतिक की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाये। प्रतिष्ठा समाप्त होगी तो प्रतिष्ठा-लोलुप व्यक्ति उस तरफ जाने अपने-आप बंद हो जायेंगे। तुम जिस चीज को मूल्य देते हो, लोग उसी तरफ जाने लगते हैं।

तुमने देखा, पुराने जमाने में हम संन्यासियों को मूल्य देते थे, तो हर आदमी के मन में एक कामना होती थी कि कभी-न-कभी संन्यासी होना है। होना ही है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, मगर एक दिन वह सौभाग्य की घड़ी जरूर आयेगी, जब मैं भी संन्यस्त हो जाऊंगा। लोग सपना देखते थे संन्यासी होने का! छोटे बच्चे संन्यासी होने का सपना देखते थे। संन्यासी का मूल्य था, क्योंकि सम्राट भी संन्यासी के चरण छूते थे। तो संन्यास की एक हवा थी।

अब छोटे बच्चे ही नहीं, बूढ़े भी सोचते हैं कैसे फिल्म के नेता हो जायें अभिनेता हो जायें। अगर नेता नहीं हो सकते तो कम-से-कम अभिनेता हो जायें। मगर दो ही चीजें होती हैं लोगों को या तो नेता या अभिनेता। बच्चे एकदम बंबई की तरफ भागते हैं या दिल्ली की तरफ। और किसी चीज का कोई आकर्षण नहीं मालूम होता। किसी को फिकिर नहीं है कि कुछ और भी जीवन में है--बस अभिनेता या राजनेता। क्योंकि दोनों को खूब सम्मान मिल रहा है, खूब आदर मिल रहा है, खूब प्रशंसा मिल रही है, फूलमालायें मिल रही हैं।

अहंकार जहां तृप्त होता है उस तरफ लोग दौड़ने लगते हैं।

बदलो इस मूल्य को। अगर आदर ही देना हो तो उन चीजों को आदर दो जिनकी तरफ लोग दौड़ेंगे तो जीवन का सौंदर्य बढ़े। संगीतज्ञ को आदर दो। उस साधक संगीतज्ञ को आदर दो जो आठ घंटे रियाज करता है और वर्षों के बाद कभी कुशल हो पाता है। उसे आदर दो। उस मूर्तिकार को आदर दो जो पत्थर को तोड़ता है और पत्थर में प्राण डालता है, कि एक दिन पत्थर बोलने लगता है, सजीव हो उठता है। उस कवि को आदर दो, जिसके गीत आकाश की कुछ खबर लाते हैं। उस ऋषि को आदर दो जो वर्षों ध्यान में डूब-डूबकर एक दिन अपने शून्य को प्रगट करता है।

आदर ही देना है तो कुछ ऐसी चीजों को आदर दो, जो लोगों के जीवन में बढ़े तो जगत सुंदर बने, मनोरम हो, यह पृथ्वी स्वर्ग बने। मगर तुम गलत लोगों को आदर देते हो। तुम राजनेताओं को आदर देते हो या अभिनेताओं को आदर देते हो। फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि अगर आदर इन दोनों में से ही चुनना हो तो अभिनेता को देना, राजनेता को तो देना ही मत। अभिनेता फिर भी एक तरह की कला के जगत में अपने को लगाता है। बहुत कीमती उसकी कला नहीं है, सतही है, थोथी है। क्योंकि तृतीय श्रेणी की जो भीड़ है उसको तृप्त

करने के लिए उसकी कला है। उसकी कला में कोई अभिजात्य नहीं है। हो भी नहीं सकता, क्योंकि बाजारू है। नहीं तो उसकी फिल्म चलेगी कहां, देखेगा कौन?

अगर तुम ध्यान करते लोगों की फिल्म बनाओ, देखेगा कौन? हुड़दंग चाहिये, तो लोग देखेंगे, क्योंकि हुड़दंगे हैं। चारों तरफ उस तरह के लोग हैं। जितनी हुड़दंग हो फिल्म में, जितना शोर-शराबा मचे, उतने लोग देखेंगे। सतही है, मगर फिर भी कम-से-कम कला तो है। और एक बात तो निश्चित है, कम-से-कम हानि नहीं होती उससे कुछ। राजनेता निश्चित नुकसान पहुंचाता है, क्योंकि राजनीति का मौलिक आधार ही बेईमानी है, जालसाजी है, चालबाजी है।

यह कौन-सा गगन है
हर ओर चांद-तारे
लगते बुझे-बुझे से
कहते कि जल रहे हैं
हर फूल कह रहा है
माली सही नहीं है
और शूल कह रहे हैं
खुशबू रही नहीं है
यह कौन-सा चमन है
हर ओर रंग बिखरे
लेकिन कदम हवा के विपरीत चल रहे
हर धूप सेंकती है छाया
गुनाह करके
निर्माण चाहती है हिंसा तबाह करके
यह कौन-सा भवन है
चारों उदास कोने
दीवार है पुरानी
परदे बदल रहे
बदली गई सुराही
दो स्वाद एक नशा है
आंसू किसी हंसी के
भुज पाश में बंधा है
यह कौन सा शमन है
मरघट गुलाल छिड़के
कुछ अर्थहीन नारे
मुख से निकल रहे
पहले हृदय से घायल
अब बुद्धि से हैं घायल

अब दुख रहे हैं कंगन
तब दुख रही थी पायल
यह कौन सा तपन है
भयभीत कल्पनाएं
यह रक्त बीज दृग में
दिन-रात पल रहे हैं

एक दुख-स्वप्न चल रहा है और सदियों से चल रहा है। इस दुख-स्वप्न को तोड़ना है। मनुष्य की महत्वाकांक्षा को कुछ ऊंचाइयां दो। परमात्मा पाने की अभीप्सा दो, पद पाने की नहीं। ध्यान की तलाश दो, धन की तलाश नहीं। दूसरों को जीतने का प्रलोभन मत दो, स्वयं को जीतने का विचार जन्माओ।

राजनीति का अर्थ होता हैः दूसरों को कैसे जीत लूं? धर्म का अर्थ होता हैः स्वयं को कैसे जीत लूं? इसलिये धर्म और राजनीति बड़े विपरीत हैं। धर्म फैले तो राजनीति अपने-आप सिकुड़ जायेगी और अगर धर्म न फैला तो राजनीति फैलती ही रहेगी। आदमी जीतेगा तो... जीतने की आकांक्षा आदमी के प्राणों में है। अगर अपने को नहीं जीतेगा तो दूसरों को जीतेगा।

धन्यभागी हैं वे जो स्वयं को जीतते हैं, क्योंकि स्वयं को जीतकर ही परमात्मा के मंदिर का द्वार खुलता है, शाश्वत जीवन उपलब्ध होता है। और अभागे हैं वे, जो दूसरों को ही जीतने में लगे रहते हैं क्योंकि दूसरों को तो जीत ही नहीं पाते, दूसरों को जीतने की चेष्टा में स्वयं को भी गवां बैठते हैं।

चौथा प्रश्नः मैं कैसे भवसागर पार करूं? नौका है टूटी-फूटी, पतवारें हाथ में नहीं, सागर विशाल है और मेरी सामर्थ्य अति सीमित। कहीं मध्य में ही डूब तो न जाऊंगा?

पहली बात, डूबने की कला ही भवसागर को पार करने की कला है। जो डूबने को तैयार हैं वे ही भवसागर के पार होते हैं। जो डूबते हैं उन्हीं को किनारा मिलता है। इसलिए तुम यह मत पूछो कि कहीं मैं डूब तो न जाऊंगा? डूबने से डरे, तो चूक जाओगे। डूबने से डरे तो इसी किनारे पर अटके रह जाओगे। डूबने से डरे, तो अहंकार को बचा रहे हो, और क्या कर रहे हो?

डूबने का क्या अर्थ है? शरीर तो एक दिन मौत ले लेगी, डूबेगा। अब मन बचता है, चाहो तो बचा लो। बचा लोगे तो नये शरीर को ग्रहण कर लेगा। फिर नयी नौका में बैठ जायेगा। फिर भवसागर की यात्रा शुरू हो जाएगी। मन को बचाया तो नये गर्भ में प्रवेश कर जाओगे। देह तो चढ़ जाती है चिता पर, मन जल्दी से नये गर्भ में प्रवेश कर जाता है।

डूबने से मेरा क्या अर्थ है? डूबने से मेरा अर्थ हैः शरीर तो अपने-आप मृत्यु ले लेगी, तुम अपने मन को ध्यान में डुबा दो। जैसे शरीर चिता पर जल जायेगा, ऐसे तुम अपने मन को साक्षी में जला दो। न बचे शरीर न बचे मन, फिर जो शेष रह जायेगा, तुम्हारे भीतर का आकाश--वही मोक्ष है, वही मुक्ति है। हो गये पार। मध्य में डूबो तो पार हो जाओ।

हम भी अजब जंतु हैं जग में चढ़ कागज की नाव,
प्रेम-समंदर चले लांघने लगा प्राण के दांव;
पेशेवर मल्लाह हंस पड़े यह बौड़मपन देख,

पर हमने दे टीप, अलापी अपने मन की टेक।

दुनियादारो, तुम क्या समझो हम मस्तों का खेल?
शास्त्र हमारा अलग जगत से अलग हमारी गैल;
सरकण्डे की डांड़ हमारी, और कागज की नाव,
लहर, भंवर का इस सागर में हमें नहीं अटकाव।

इन उपकरणों को ही लेकर सदियों पहले यार,
जिन पगलों ने किया संतरित यह रस पारावार,
हम भी उन ही के वंशज हैं, फिर हमको क्या सोच?
कैसी झिझक? जुगुप्सा कैसी? क्या भय? क्या संकोच?

तरल तरंगित, पवन विकम्पित प्रेमाम्बुधि के बीच;
वे समान-धर्मा अलबेले लीक गये हैं खींच,
अरे, आज भी दीख रहे हैं उनके वे नौ-यान,
क्षीरोदधि में राजहंस की पांतों से अम्लान।

हमने भी डाली सागर में नौका जर्जर क्षीण,
गल जाये तो भी क्या चिंता? होंगे सागर लीन,
तिरती है तब तक तो उसमें बैठे हम रस-खान,
हो निःशंक रहेंगे गाते पुण्य प्रेम के गान!

जब तक हो, गाओ गीत! जब तक हो, उठाओ प्रार्थना! जब तक हो, बहने दो अर्चना! और जब डूब जाओ तो आनंदमग्न लीन हो जाना सागर में। बचाव की सोचो ही मत। डरो मत।

जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः जो बचायेंगे वे खो जाएंगे। और जो खोने को राजी हैं वे बच गये। विरोधाभासी दीखता यह वचन अदभुत है, अपूर्व है। यह समस्त ध्यानियों की आधारशिला है। यही नाव है जिसमें बैठो। मिट जाओ तो बच जाओगे। पोंछ दो अपने को। बचाने की किंचित भी चिंता न करना, क्योंकि जितने तुम बचोगे उतना ही तुम्हारे और परमात्मा के बीच अवरोध रह जाएगा। जब तुम बिल्कुल नहीं होते हो तो परमात्मा पूरा का पूरा प्रगट होता है। तुम्हारे न होने में उसका होना है। तुम्हारे होने में उसका न होना है।

और यहां है भी क्या खोने को? हमारे पास है भी क्या? कुछ लेकर आये न थे, कुछ लेकर जाएंगे नहीं। खाली हाथ आये खाली हाथ जाएंगे। इस बीच के पड़ाव पर थोड़ा शोरगुल मचा लिया है, मकान बना लिया है, थोड़ा धन इकट्ठा कर लिया है, बैंक में बैलेंस जमा करवा दिया है। मगर यह सब बीच का खेल है; एक सपने से ज्यादा इसका मूल्य नहीं है।

सपना मैं किसे कहता हूं? सपना मैं उसे कहता हूं, जो मौत छीन लेगी। जिस चीज को भी मौत छीन लेगी, वह सपना है। चाहे तुम सत्तर साल देखो, इससे क्या फर्क पड़ता है? सात घंटे देखो रात में कि सत्तर साल देखो दिन में, कोई फर्क नहीं पड़ता। निर्णायक कसौटी मौत है। जो मौत तुमसे छीन लेगी वह तुम्हारा नहीं था--

उसके लिए तुम नाहक परेशान थे। उसके लिए तुम नाहक बचा रहे थे। उसके लिए तुम नाहक उपाय और आयोजन कर रहे थे। वह तो छिनेगा।

कि जिस दिन तक है जिसका काम,
उसी दिन तक यह दुआ-सलाम;
तभी तक आवभगत, अनुरक्ति, तभी तक है मेरा सम्मान!
जानकर के भी मैं अनजान!

प्राप्ति से दूर, कर्म के पास;
मुक्ति से दूर, धर्म के पास;
तर्क से दूर मर्म के पास, लीन होंगे ये मेरे प्राण।
जानकर के भी मैं अनजान!

देह पर इतना अत्याचार,
गेह पर इतना अत्याचार;
सत्य चातक है क्षम्य न
विश्व-मेह पर इतना अत्याचार;
बुझा लूं क्या मैं अपनी ज्योति विश्व को करके दीप प्रदान!
जानकर के भी मैं अनजान!

जान-जानकर अनजान बने हो! ये सब दुआ-सलाम--राह पर मिल गये अजनबियों के बीच है। ये पत्नी, ये पति, ये बेटे, पिता-मां, भाई, मित्र, परिजन, परिवार... ।

कि जिस दिन तक है जिसका काम,
उसी दिन तक यह दुआ-सलाम;
तभी तक आवभगत, अनुरक्ति, तभी तक है मेरा सम्मान!
जानकर के भी मैं अनजान!

कब तक अपने को धोखा देना चाहते हो? यहां खोने को क्या है?

प्राप्ति से दूर, कर्म के पास;
मुक्ति से दूर, धर्म के पास;
तर्क से दूर मर्म के पास, लीन होंगे ये मेरे प्राण।
तर्क से दूर, मर्म के पास, लीन होंगे ये मेरे प्राण।
जानकर के भी मैं अनजान!

कहां डूबोगे तुम? हृदय में डूबोगे! बुद्धि काम न आयेगी। तर्क काम न आयेंगे। शास्त्र, सिद्धांत काम न आयेंगे। बस प्रेम और प्रार्थना काम आयेगी।

तर्क से दूर, मर्म के पास, लीन होंगे ये मेरे प्राण।
जानकर के भी मैं अनजान!

अब जागो! बहुत दिन अनजान रह चुके, बहुत समय गंवाया। डूब जाओ। उसकी वस्तु उसी को दे दो। कह दोः गोविन्द तेरी वस्तु है, तू संभाल! त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये!

तुम्हारी वस्तु तुम्हारे पास!
मिली थी कुछ दिन हेतु उधार,
किया था मैंने भी तो सत्कार,
आज ले लो तुम अपनी देन, और यह मेरा अमर प्रयास!
तुम्हारी वस्तु तुम्हारे पास!

स्वाति-घन हंसे, हुए चुपचाप,
हंसे फिर बोले अपने आप;
हुआ क्या नहीं अभी तक पूर्ण, तृषित चातक तेरा अभ्यास!
तुम्हारी वस्तु तुम्हारे पास!

नहीं सह पाया तप का भार,
उतर ही आया शशि सुकुमार;
कह गया कानों में आकाश, "तुम्हारी वस्तु तुम्हारे पास"!
तुम्हारी वस्तु तुम्हारे पास!

दे दो! तुम्हारा है क्या? बचाते क्या हो? बचाना क्या है? डूबो! डूब जाना है। जैसे सरिता सागर में डूब जाती है, ऐसे डूब जाओ। और स्मरण रखो, सरिता सागर में डूबकर सागर हो जाती है।

पांचवां प्रश्नः ओशो, क्या लोग कभी भी आपको समझ पायेंगे या नहीं?

तुम समझ जाओ, इतना काफी। लोगों की चिंता न करो। लोग यानी कौन? कोई समझेगा, कोई नहीं समझेगा। जो समझ लेगा लाभ ले लेगा। जो नहीं समझेगा, उसकी मर्जी। तुम उनकी चिंता न करो। कहीं ऐसा न हो कि उनकी चिंता करने में तुम्हीं समझने से वंचित रह जाओ।

फिर, प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है। बात खोलकर रख दी है; जिसको लेना हो ले ले, जिसको न लेना हो उसकी भी स्वतंत्रता है। किसी पर जबर्दस्ती थोड़े ही थोपे जाते हैं सत्य।

समझाकर ही रहेंगे, ऐसा आग्रह मत करना। उसी से मतांधता पैदा होती है। उसी से उपद्रव पैदा होता है। उसी से लोग किसी को हिंदू है तो ईसाई बनाने में लगे हैं; कोई ईसाई को आर्यसमाजी बनाने में लगा है; कोई कुछ कर रहा है कोई कुछ कर रहा है। और अकसर मजा ऐसा है...

एक आर्यसमाजी पंडित एक बार मेरे घर मेहमान हुए। उनकी पूरी जिंदगी इसी में गई है कि कोई मुसलमान हो गया तो उसको कैसे आर्यसमाजी बनाओ, कोई ईसाई हो गया, उसको कैसे आर्यसमाजी बनाओ। सुबह हम दोनों साथ-साथ बैठे थे। सर्दी की सुबह, मीठी-मीठी धूप पड़ती थी। मैंने उनसे पूछा कि आपको कई वर्षों से जानता हूं, एक बात मुझे पूछनी है, सच-सच कहना, ईमान से कहना; यह सूरज उग रहा है इसकी कसम खाकर कहना।

उन्होंने कहाः ऐसी कौन-सी बात है? मैंने कहाः तुम आर्यसमाजी खुद हो पाये कि नहीं? तुम न मालूम कितने लोगों को आर्यसमाजी बनाने में लगे हो, तुम खुद हो पाये या नहीं?

एक क्षण को वे झिझक गये। मैंने उनसे कहा कि अब कुछ मत कहना, क्योंकि झिझक ने सब कह दिया। तुम एकदम से उत्तर न दे पाये, सहज उत्तर न निकल पाया, तुम्हारी सांस एक क्षण रुक गई। और जो तुम स्वयं नहीं हो पाये, किसको बना पाओगे? तुम समझे हो धर्म?

नहीं; इसकी उन्हें चिंता ही नहीं है। उनकी चिंता इसमें लगी है कि कोई हिंदू मुसलमान न हो जाये। मैंने उनसे पूछा कि अगर ऐसा होता हो कि वह हिंदू मुसलमान होकर ज्यादा बेहतर आदमी हो जाता हो तो अड़चन क्या है? और अगर जैसा हिंदू था वैसे ही मुसलमान होकर रहता हो तो भी क्या अड़चन है? वैसे का वैसा आदमी है। मंदिर जाता था, अब मस्जिद जाने लगा। कुछ फर्क तो पड़ा नहीं है, वही का वही है। तब जैसा था अब भी वैसा ही है। हां, चिंता तो तुम तब करो जब कि वह जितना हिंदू था उससे भी बुरा हो जाए मुसलमान होकर, तो थोड़ी-बहुत चिंता करो। हिंदू-मुसलमान से क्या लेना-देना है? चिंता इसकी होनी चाहिए कि आदमी कहीं बुरा तो नहीं हो गया।

तो मैंने उनसे कहा कि तुम क्यों इस फिक्र में लगे रहते हो। वे उस वक्त आये ही इसलिए थे उस गांव में कि एक मुसलमान ने एक हिंदू युवती से शादी कर ली थी, तो उसका छुटकारा करवाने आये थे। तुम किसी का छुटकारा कर रहे हो? उस हिंदू स्त्री को अगर प्रेम है उस मुसलमान से तो तुम कौन हो बीच में बाधा डालने वाले? अगर वह प्रसन्न है उस मुसलमान के साथ--और मैं जानता हूं कि वह प्रसन्न है, क्योंकि उस गांव में मेरे सिवाय उनको आशीर्वाद देने वाला कोई था ही नहीं, तो वे मेरे ही पास आशीर्वाद लेने आये थे। मुसलमान नाराज थे कि ये झंझट तुम मत लो क्योंकि हम थोड़े हैं, कही हिंदू भड़क जायें और कोई झगड़ा-झांसा हो जाये, तो नाहक परेशानी होगी। मुसलमान प्रसन्न नहीं थे। और हिंदू तो नाराज होंगे ही, क्योंकि एक हिंदू स्त्री गयी। अपमान हो गया! स्त्रियों को तो लोग संपत्ति मानते हैं न, तो संपत्ति जहां चली गयी, नुकसान हो गया। अगर कोई हिंदू किसी मुसलमान स्त्री को अपने घर ले आये तो हिंदू खुश होते हैं, संपत्ति घर आयी है!

तुम स्त्री को इतना भी सम्मान नहीं देते मनुष्य होने का? ... संपत्ति! और मुसलमान के घर चली गयी तो भारी नुकसान हो गया, संपत्ति चली गयी! फिर उसके बच्चे पैदा होंगे और मुसलमानों की संख्या बढ़ती जाएगी और संख्या बढ़ने में तो राजनीतिक बड़ी झंझट खड़ी हो जाती है, वोट इत्यादि। तो मैंने कहा कि मुझे पता है कि वे दोनों खुश हैं, तुम उनमें बाधा मत डालो। और मैं जानता हूं कि तुम खुश नहीं हो। लेकिन तुम अपनी उदासी और अपने दुख को भुलाने के लिए इस तरह की झंझटों में पड़ गये हो। तुम दूसरों को कैसे सुधारना, इसमें लग गये हो--यह भूल ही गये कि अभी खुद घर साफ-सुथरा न हुआ था।

तुम चिंता न करो कि लोग कभी मेरी बात समझ पायेंगे या नहीं। तुम समझ लो। तुम समझ लो, पर्याप्त है।

फिर लोग हजार ढंग के हैं। और लोग हजार ढंग के हैं, यह दुनिया में वैविध्य है। अच्छा है। यहां सभी लोग मेरी बात समझ लें तो उसका अर्थ होगाः एक ही तरह के लोग हैं। नहीं, वह दुनिया बहुत सुंदर नहीं होगी, जहां एक ही तरह के लोग होंगे। बस गुलाब ही गुलाब खिले हैं पूरी बगिया में, कितने ही अच्छे लगते हों तो भी गुलाब ही गुलाब... । नहीं, कुछ जुही भी होनी चाहिए, कुछ चमेली भी होनी चाहिए, कुछ चंपा भी। और-और हजार फूल हैं, सब फूल होने चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा थाः जी हां, जब मैं बंबई से पूना की तरफ आ रहा था तब डाकुओं ने मुझे आ घेरा। और मेरे पास के सभी रुपये, घड़ी और सोने की चेन छीनकर चंपत हो गये।

मैंने पूछाः नसरुद्दीन, किंतु तुम्हारे पास पिस्तौल भी तो थी।

"हां थी, लेकिन उस पर उन लोगों की नजर ही नहीं पड़ी।"

समझें भी तो ऐसी ऐसी हैं! करोगे क्या? मगर ये भी प्यारे लोग हैं, ऐसे थोड़े लोग चाहिए।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन साइकिल पर अपने छोटे बच्चे को बैठाकर सब्जी खरीदने बाजार जा रहा था। रास्ते में हर पांच मिनिट के बाद लड़के को एक चपत जमा देता। जब उसने पांचवीं बार यह हरकत की तो मुझसे न रहा गया। मैंने पूछा कि नसरुद्दीन, इस बच्चे को बिना वजह क्यों मार रहे हो? उसने कहाः क्या बताऊं साइकिल में घंटी नहीं है!

उल्टी खोपड़ियां भी हैं। पर थोड़ी उल्टी खोपड़ियां भी चाहिए, इससे जीवन में थोड़ी हंसी-मजाक रहती है।

एक कवि रचना पढ़ रहे थे। शीर्षक था उनकी कविता का यथार्थ और भ्रम। एक आदमी बीच में खड़ा हो गया, श्रोता और उसने कहाः कृपा करके यथार्थ और भ्रम का पहले अंतर स्पष्ट कर दें, क्या यथार्थ क्या भ्रम? कवि बोले--आपका यहां उपस्थित रहना और मेरा कविता पढ़ना यथार्थ है। पर मेरा यह मानना कि कविता आप समझ रहे हैं या समझ सकेंगे, मेरा भ्रम है।

सभी नहीं समझ सकेंगे। इसलिए तुम इस चिंता में ही मत पड़ो।

मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर गया था। उसने अपना घर मुझे दिखाया। कहा कि यह रहा मेरा संगीत-कक्ष। मैंने उसके संगीत-कक्ष को देखा, मैं थोड़ा हैरान हुआ--बिल्कुल खाली! उसमें कुछ भी नहीं--न कोई वीणा, न कोई बांसुरी, न कोई तबला, कुछ नहीं, बिल्कुल खाली! मैंने उससे कहा कि नसरुद्दीन, लेकिन मुझे यहां कोई वाद्य नजर नहीं आ रहा है, यह कैसा संगीत-कक्ष है? उसने कहाः वाद्य की क्या आवश्यकता है? यहां बैठकर मैं पड़ोसियों के घर का रेडियो सुनता हूं। इसलिए इसका नाम संगीत-कक्ष है।

नहीं; सारे लोग नहीं समझेंगे। लेकिन थोड़े-से समझ लें तो बहुत... था.ेडे-से भी जिस दिशा में मैं इशारा कर रहा हूं, उस दिशा में देख लें तो बहुत... बुद्ध आये, कितने लोग समझे? थोड़े-से इने-गिने लोग। महावीर को कितने लोग समझे? मुहम्मद को कितने लोग समझे? इने-गिने लोग। यह बात भी तो इतनी ऊंचाई की है! आकाश की तरफ सभी लोग सिर उठाना भी तो नहीं चाहते; उनकी नजरें तो जमीन पर गड़ी हैं। उनको तो जमीन में ही खजाने खोजने हैं। इसीलिए तुम अगर उन्हें आकाश की तरफ कहो भी कि जरा आंख उठाओ, वे कहते हैं हमारा समय खराब मत करो।

लोग ताश खेल सकते हैं और उनके पास समय है। शतरंज बिछाकर बैठ जाते हैं, उनके पास समय है। और उनसे अगर कहो कि ध्यान करो तो वे कहते हैं कि समय कहां है। शतरंज खेलने के लिए समय है! ये वे ही लोग, जो तुम्हें कहते मिल जायेंगे कि क्या करें भाई, समय नहीं कट रहा है, तो ताश खेल रहे हैं। कि फिल्म देखने जा रहे हैं, समय नहीं कट रहा है, कि फिजूल के गपशप में लगे हैं, समय नहीं कट रहा है। मगर इनसे तुम कहो कि ध्यान, और--तत्क्षण उनका उत्तर आता है कि समय कहां है!

समय बहुत है लेकिन ध्यान में कुछ अर्थ है, इस बात को समझने के लिए भी चित्त की एक ऊंचाई चाहिए, एक निर्मलता चाहिए, एक भूमिका चाहिए, एक तैयारी चाहिए।

मैं जो कह रहा हूं, उसको हर-एक कैसे समझ सकेगा? यह आखिरी कक्षा की बात है। यह आत्यंतिक बात है। इसलिए इसकी फिक्र भी न करो, इसकी अपेक्षा भी न करो। मैं तो चाहता हूं कि थोड़े-से लोग समझ लें तो बस काम हो गया। थोड़े-से दीए जल जाएं, फिर उन दीयों के सहारे कुछ और दीये जलते रहेंगे और दीयों से दीये जलते रहेंगे। बस पर्याप्त है। एक सिलसिला शुरू हो जाए, उतना काफी है। यह सारी पृथ्वी रूपांतरित हो जाए, यह सारी पृथ्वी आज ही इस बात को समझ जाए--इस तरह के आग्रह अगर मन में उठते हैं तो खतरनाक हैं। क्योंकि फिर आदमी जल्दबाजी में पड़ता है और जल्दबाजी में जब पड़ता है तो हिंसा पर उतर आता है। जल्दी करवाना हो तो किसी की छाती पर छुरा रख दो, कहो कि समझते हो कि नहीं? उसको कहना ही पड़ेगा, कि बिल्कुल समझते हैं।

ऐसी कहानी है मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में कि एक झक्की आदमी ने, जो एक किस्म का दादा था, एक उपद्रवी, गांव का बड़ा गुंडा, उसने नसरुद्दीन को बुला भेजा। उसने कहा कि मेरे शागिर्द कहते हैं कि तुम बड़े चमत्कारी हो, बड़े रहस्यवादी हो, वे कहते हैं तुम्हें अदृश्य चीजें दिखाई पड़ती हैं, तुम्हें ईश्वर का दर्शन हुआ! और उसने छुरा निकाल लिया और उसने कहा कि मुझे भी कुछ दिखलाओ, नहीं तो आज ठीक नहीं होगा। नसरुद्दीन ने नीचे की तरफ देखा जमीन में और कहाः यह देखो, पाताल, नर्क! लोग सड़ाये जा रहे हैं, काटे जा रहे हैं, आग के कढ़ाहे जल रहे हैं, लोग कढ़ाहों में डाले जा रहे हैं!

उस गुण्डे ने नीचे देखा, उसे तो कुछ दिखाई पड़ा नहीं। फिर नसरुद्दीन ने कहाः यह देखो ऊपर--बहिश्त! शराब के चश्मे बह रहे हैं, हूरें नाच रही हैं, ऋषि-मुनि मजा कर रहे हैं। यह ऊपर देखो!

उस आदमी ने कहा कि मुझे तो कुछ दिखायी नहीं पड़ता, तुम्हें कैसे दिखायी पड़ता है? उसने कहाः तुम छुरा बंद करो भीतर तो मुझे भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारे छुरे की वजह से ये चीजें मुझे दिखाई पड़ रही हैं। तुम छुरा तो भीतर रखो। मुझे भी कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है।

मगर भय आदमी को जो न दिखला दे, थोड़ा है। और तुम समझ लेना तुम्हारे शास्त्रों में पंडितों ने जो नर्क की कथायें गढ़ी हैं, वे सिर्फ भय हैं, छुरे हैं। उन छुरों के आधार पर तुम्हें कुछ चीजें मनवाने की कोशिश की गयी है। और जो स्वर्ग की कथायें गढ़ी हैं, वह लोभ है, प्रलोभन है, पुरस्कार है। उन पुरस्कार के आशा पर तुम्हें कुछ चीजें मनवाने की कोशिश की गयी।

न तो मैं तुम्हें नर्क का भय देता हूं न स्वर्ग का प्रलोभन देता हूं! न कोई नर्क है न कोई स्वर्ग है। नर्क तुम्हारे चित्त की एक दशा है--जब तुम मूर्च्छा में जीते हो। स्वर्ग तुम्हारे चित्त की दशा है--जब तुम जागरूक होकर जीते हो। नर्क और स्वर्ग कोई भौगोलिक अवस्थाएं नहीं हैं--मनोवैज्ञानिक अवस्थाएं हैं।

मैं तुम्हें न कोई भय देता हूं न प्रलोभन देता हूं। मैंने जो जाना है वह तुम्हारे सामने रख देता हूं।

कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ।
जो घर बारै आपना चले हमारे साथ।।

छठवां प्रश्नः मैं ध्यान करने बैठती हूं, तो जैसे आपकी आंख को देखती हूं, कुछ देर देखते रहने से आंखों से आंसू बहते हैं। अब तो मेरी नाक से भी आंसू टपकते हैं। यह कैसे?

तू प्यार करे या ठुकराये, हम तो हैं तेरे दीवानों में
चाहे तू हमें अपना न बना, लेकिन न समझ बेगानों में
मरने से हमें इनकार नहीं, जीते हैं मगर इक हसरत में

भूले से हमारा नाम कभी, आ जाये तेरे अफसानों में

मनोरमा! जो भी मेरे रंग में रंग गया है, मेरे अफसानों में आ गया। जो भी संन्यस्त हुआ है, मेरे जीवन का अंग हो गया। तूने संन्यास का साहस किया, उसी दिन से तू मिट गयी।

संन्यास का अर्थ ही यही है, कि शिष्य ने कहा कि अब मैं अपने को अलग से न सोचूंगा, कि मेरी बूंद अब अलग-थलग न होगी, कि मैं अब डूबता हूं। दीक्षा का अर्थ होता हैः शिष्य का गुरु के साथ ऐसा जुड़ जाना कि शिष्य का अलग से कोई तादात्म्य न रह जाये। वह घट गया है और आंसुओं से अब उसी की झलक आ रही है। ये आंसू आनंद के आंसू हैं। ये आंसू तेरे हृदय से उठी प्रार्थनायें हैं। इन्हें रोकना मत। मस्त होकर इन्हें बहने दो, ये जितने बहें उतना अच्छा है। ये आंसू ही नहीं हैं, ये तेरे हृदय के फूल हैं। ये फूल ही नहीं हैं, ये तेरे प्राणों की सुवास हैं।

और मैं इतना ही तो सिखाता हूं यहां। रोना सिखाता हूं आनंदमग्न होकर। हंसना सिखाता हूं आनंदमग्न होकर। गीत गाना सिखाता हूं, नाचना सिखाता हूं। मस्ती सार-संक्षेप में। तुम्हें मस्त होना सिखाता हूं, क्योंकि जो मस्त हैं वे परमात्मा के हैं।

यह फूल नहीं है, मेरे मन की भाषा है!
अवनी के मन में अंबर से मिल जाने की अभिलाषा है!

बन गई नयन-मुसकान शब्द,
हो गया हृदय का मौन मुखर!
अन्तर्मन के अनजाने कोने का--
आया मधु-भाव उभर!
यह फूल नहीं है, अलिखित मेरे छंदों की परिभाषा है!

चिर हुई अचिरता में पल भर
सौरभ-रंग-रस की एक लहर!
मुरझा कर झरने के क्रम में
खुल कर खिलना बस एक पहर!
यह फूल नहीं है, कर्म-वचन-मन खिल पाने की आशा है!

यह खुला हुआ अपलक जैसे
अंतरतम का ध्यानस्थ नयन!
है पलक-पंखुरियों पर हंसता
रवि-कर-चुम्बित चंचल हिम-कन!
यह फूल नहीं है, मंत्र-लुब्ध नयनों की अमर पिपासा है!
इन आंसुओं को आंसू न समझना! --
अलिखित मेरे छंदों की परिभाषा है

अवनि के मन में अंबर से मिल जाने की अभिलाषा है!

कर्म-वचन-मन खिल पाने की आशा है!

मंत्र-लुब्ध नयनों की अमर पिपासा है!

ये आंसू नहीं हैं, ये फूल हैं। ये फूल ही नहीं हैं, ये तुम्हारे भीतर आनंद की तरंगें हैं। तुम्हारी वीणा छू ली गयी। तुम्हारी वीणा में स्वर आने शुरू हो गये हैं। खुशी मनाओ, जश्न मनाओ, उत्सव मनाओ।

और जिस दिन संन्यस्त हुई मनोरमा, उसी दिन मेरे अफसाने में सम्मिलित हो गयी, मेरी कहानी का हिस्सा हो गयी, मेरे गीत की कड़ी हो गयी!

आखिरी प्रश्नः ओशो,

तुम्हारी याद में जादू भरा है,

पुलकते प्राण हैं, मन नाचता है।

कभी गाता, कभी हंसता,

कभी रोता, बिलखता हूं।

अहं पाषाण गलता है,

दृगों से अश्रु झरते हैं।

लुटा है मन, ठगा है तन,

रुंधा है कंठ कम्पित स्वर।

तुम में लीन होने को,

बिलखते प्राण हैं मेरे।

तुम्हारी याद में जादू भरा है,

पुलकते प्राण हैं, मन नाचता है।

धर्म वेदांत! यही हो, इसका ही तो सारा आयोजन चल रहा है। यह धर्म क्षेत्र, यह काबा इसीलिए तो निर्मित किया जा रहा है कि फिर एक बार तुम्हें परमात्मा की याद आये, जो तुम जन्मों-जन्मों से भूले बैठे हो; कि फिर एक चोट पड़े तुम्हारे हृदय पर; कि फिर तुम्हारा झरना जो भीतर दब गया है, फूट पड़े। बहुत गीत उठेंगे, बहुत सुवास झरेगी, बहुत दीये जलेंगे। चलते चलो। जैसे-जैसे डूबोगे ध्यान में और जैसे-जैसे डूबोगे--इस रस में, जिसको मैं संन्यास कहता हूं--वैसे-वैसे अपूर्व चमत्कार तुम्हारे जीवन में प्रत्यक्ष होने लगेंगे क्योंकि वैसे-वैसे परमात्मा तुम्हारे करीब आयेगा, उसकी पगध्वनि सुनायी पड़ेगी।

ख्वाबों के उफक पे जगमगाया कोई,

खुरशीद सिफ्त व मुस्कुराया कोई।

टूटा ये तिलिस्मे शबे गम अब टूटा,

आया निगहे शौक! यों आया कोई।

सोई हुई यादों को जगाता गुजरा,
एहसास में हलचल सी मचाता गुजरा।
तजदीदे रहो रहम हो जैसे मंजूर;
यूं पास से कोई मुस्कुराता गुजरा।

गुंचों के लबों पे मुस्कराहट आई,
बुझते तारों में जगमगाहट आई,
दिल पिछले पहर आज कुछ ऐसे धड़का;
जैसे तेरे कदमों की अब आहट आई।

खामोशी की गुफ्तगूं सही है बरसों,
यूं उसकी सुनी अपनी कही है बरसों।
मैं उसके लिए नया न वो मेरे लिये,
ख्वाबों में मुलाकात रही है बरसों।

जिससे अब तक तुम्हारा कभी-कभी सपनों में थोड़ा-सा साक्षात्कार हुआ है उसे खुली आंखों, तुम से मिला देना है। जिसकी झलक कभी-कभी किन्हीं अनायास क्षणों में तुम्हें मिली है, किसी दिन सूरज को उगते देखकर और तुम्हारे भीतर गदगद भाव उठा है और झुक जाने का मन हुआ है--कि झुक जाने का घुटनों पर, कि सिर टेक देने का पृथ्वी पर, कि कभी आकाश को तारों से भरा देखकर तुम्हारे हृदय में एक गुदगुदी दौड़ गयी है, रहस्य की थोड़ी-सी प्रतीति हुई है, कि कभी किसी खिले फूल को देखकर, कि पपीहे की पी-पी की पुकार सुनकर तुम्हारे भीतर कोई सोई पुकार झंकार गयी है, कि कभी गहन संगीत में, कि कभी गहन प्रेम में तुम्हें परमात्मा की थोड़ी-थोड़ी आहट मिली--वह सब ख्वाब में हुआ था!

मैं उसके लिए नया न वो मेरे लिये,
ख्वाबों में मुलाकात रही है बरसों।
अब खुली आंख से मुलाकात कर लो।
ख्वाबों के उफक पे जगमगाया कोई
देखो वो दूर क्षितिज पर उगने लगा परमात्मा का सूरज।
ख्वाबों के उफक पे जगमगाया कोई,
खुरशीद सिफ्त वो मुस्कराया कोई।
टूटा ये तिलिस्मे शबे गम अब टूटा,
टूटने लगी यह रात अंधेरे की, ये विरह की।
टूटा ये तिलिस्मे शबे गम अब टूटा,
आया निगहे शौक! यों आया कोई।
कोई आने लगा पास--कोई रोज-रोज आने लगा पास! शनैः शनैः आवाज करीब आने लगी।
सोई हुई यादों को जगाता गुजरा
एहसास में हलचल सी मचाता गुजरा।

तजदीदे रहो रस्म हो जैसे मंजूर;

यूं पास से कोई मुस्कराता गुजरा।

पहले तो भनक पड़ेगी। पहले तो सिर्फ एहसास होगा। पहले तो उसकी मौजूदगी अनुभव होगी। वह दिखाई नहीं पड़ेगा। फिर धीरे-धीरे-धीरे-धीरे आंखें राजी हो जाएंगी। जैसे कभी तुम भरी दोपहरी के बाद घर लौटे हो, तो अपने कमरे में अंधेरा मालूम पड़ता है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। फिर धीरे-धीरे आंखें राजी हो जाती हैं। फिर कमरे में रोशनी मालूम होने लगती है।

गुंचों के लबों पे मुस्कराहट आई,

बुझते तारों में जगमगाहट आई,

और जिसके जीवन में परमात्मा से थोड़ा-सा संपर्क हो जाए, थोड़ा-सा भी--उसके जीवन की सारी कहानी बदल जाती है। उसके जीवन का गीत बदल जाता है। उसके प्रत्येक अनुभव में ज्योतिर्मयता फलित होने लगती है।

गुंचों के लबों पे मुस्कराहट आई,

फूल तो पहले भी देखे हैं, लेकिन अब फूलों में उसी की मुस्कुराहट दिखाई पड़ेगी।

गुंचों के लबों पे मुस्कराहट आई,

बुझते तारों में जगमगाहट आई,

तारे तो पहले भी देखे थे बहुत, मगर अब तारे वही नहीं हैं। अब हर रोशनी में उसकी रोशनी झलकेगी। हर रोशनी में उसकी रोशनी है। हर सौंदर्य में उसी का सौंदर्य है। अब तुम किसी सुंदर स्त्री को देखोगे और ऐसा नहीं लगेगा कि कोई सुंदर स्त्री देखी है--ऐसा ही लगेगा कि वही झलक दे गया! अब किसी बच्चे को प्रसन्न मुस्कुराते देखोगे, खिलखिलाते देखोगे--और तत्क्षण तुम्हें एहसास होगा, वही खिलखिला गया!

गुंचों के लबों पे मुस्कराहट आई

बुझते तारों में जगमगाहट आई,

दिल पिछले पहर आज कुछ ऐसे धड़का;

जैसे तेरे कदमों की अब आहट आई।

खामोशी की गुफ्तगूं सही है बरसों,

यूं उसकी सुनी अपनी कही है बरसों।

मैं उसके लिए नया न वो मेरे लिये,

ख्वाबों में मुलाकात रही है बरसों।

धर्म वेदांत! रुकना नहीं, क्योंकि यह कठिनाई आती है। लोग ऐसे हैं कि जरा-सा कुछ मिल जाता है तो बस वहीं रुक जाते हैं। और आगे, और आगे! तुम्हें मैं टेरता ही रहूंगा और पुकारता ही रहूंगा--और आगे!

इतनी नाकामियां

इतनी महरूमियां

इतनी मजबूरियां

इतनी लाचारियां

कितना चाहा मगर
फिर भी उठ न सका,
उनकी महफिल में जो
एक बार आ गया,

इश्क मगमूम था,
इश्क नाशाद था,
हुस्न बेचैन था,
हुस्न बेताब था

मंजिलें दूरियां
छोड़कर आ गईं
शौक से जब भी
उनको पुकारा गया

उठ तो न सकोगे अब इस महफिल से। लेकिन बैठे ही न रह जाना। बैठे-बैठे भी यात्रा करनी है। अंतर्यात्रा तो बैठे-बैठे ही होती है।

इतनी नाकामियां
इतनी महरूमियां
इतनी मजबूरियां
इतनी लाचारियां

मुझे पता है, बहुत कठिनाइयां हैं, बहुत सीमाएं हैं, बहुत पत्थर हैं रास्तों पर। हजार बाधायें, अड़चनें हैं! सारा संसार विपरीत हो जाएगा। क्योंकि जैसे ही तुम परमात्मा की तरफ बढ़ने शुरू हुए, पाओगे कि अपने पराये होने लगे, कि अपने ही दुश्मन होने लगे।

इतनी नाकामियां
इतनी महरूमियां
इतनी मजबूरियां
इतनी लाचारियां

कितना चाहा मगर
फिर भी उठ न सका,
उनकी महफिल में जो
एक बार आ गया

मगर अब उठने का उपाय नहीं, महफिल में तुम आ ही गये। सम्मिलित हो ही गये--दीवानों की इस बस्ती में--दीवानों की इस मस्ती में!

कितना चाहा मगर

फिर भी उठ न सका,
उनकी महफिल में जो
एक बार आ गया,

इश्क मगमूम था
इश्क नाशाद था,
हुस्न बेचैन था
हुस्न बेताब था।

मंजिलें दूरियां
छोड़कर आ गईं
शौक से जब भी
उनको पुकारा गया।

और अब कहीं जाना नहीं है। अब तुम जहां हो वहीं परमात्मा आयेगा। पुकारे चलो। मगर पुकारना--परिपूर्ण अभीप्सा से। सारे जीवन को दांव पर लगाकर पुकारना। पुकारना कि श्वास-श्वास पुकार बन जाये, हृदय की धड़कन-धड़कन पुकार बन जाए। तुम समग्रता से पुकारो तो द्वार खुलने में देर नहीं है। देर कभी नहीं थी, तुमने पुकारा ही नहीं।

जीसस ने कहा हैः मांगो और मिलेगा। खटखटाओ और द्वार खोल दिये जाएंगे। खोजो और पा लोगे। वही मैं तुमसे पुनः पुनः कह रहा हूं।

आज इतना ही।

उन्नीसवां प्रवचन

प्रेम प्रार्थना है

पहला प्रश्नः ओशो, कुछ लोग आपके आश्रम की तुलना जोन्सटाउन से करते हैं। जिस भांति सामूहिक आत्मघात गुयाना के जंगल में हुआ, वैसा ही कुछ क्या यहां होने की संभावना हो सकती है? क्या आप अपने संन्यासियों से अपने प्रति या अपनी धारणाओं के प्रति प्रतीक-रूप में ऐसा कुछ बलिदान करने को कह सकते हैं?

बैरी स्लाटर! मैं भी मृत्यु सिखाता हूं--मगर एक और भांति की मृत्यु। मृत्यु, जैसा जीसस ने कहा। जीसस ने कहाः जिन्हें प्रभु के राज्य में प्रवेश करना है, उन्हें पुनर्जन्म लेना होगा। उन्हें मरना होगा एक तल पर और जागना होगा दूसरे तल पर। उन्हें शरीर से मुक्त होना होगा और चेतना के आकाश में पंख फैलाने होंगे। मैं उसे ही वास्तविक मृत्यु कहता हूं।

देह तो मरती रहती है; अपने-आप ही मरती रहती है। उसे मारना तो मारे हुए को मारना है। मारना है मन को, जो कि मर-मरकर नहीं मरता; जो हर मृत्यु के पार फिर नये जन्मों का सिलसिला शुरू कर देता है

मैं मन मांगता हूं, तन नहीं। मैं चाहता हूंः तुम मरो। मैं चाहता हूं कि मेरा संन्यासी मरे। मरे--भौतिक तल पर, ताकि जी सके आध्यात्मिक तल पर। मरे कीचड़ की भांति, ताकि हो सके कमल।

मृत्यु तो सारे सदगुरुओं ने सिखायी है। लेकिन जो जोन्सटाउन में हुआ, उसका धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। वह तो एक प्रकार की विक्षिप्तता है; एक तरह की आत्मघाती वृत्ति है। जोन्सटाउन में रेवरेंड जिम जोन्स ने जो किया, उससे केवल एक बात सिद्ध होती है कि वह स्वयं भी विक्षिप्त था और उसने जिन लोगों को अपने आसपास इकट्ठा कर लिया था, वे भी विक्षिप्त थे। वह पागलों की एक जमात थी! विध्वंसक, आत्मविध्वंसक लोगों का एक समूह था। जो किसी भी बहाने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इस आश्रम में ऐसा कभी कुछ नहीं हो सकता है। क्योंकि इस आश्रम में तो जो प्रविष्ट हो चुका है, वह तो मर ही चुका। अब उसे और मरने का उपाय नहीं है। अब तो शाश्वत जीवन उसके लिए है। अब तो अमृत का जीवन उसके लिए है। संन्यास का अर्थ ही मृत्यु होता है। मृत्यु--मनोवैज्ञानिक--अस्मिता की, अहंकार की। मैं नहीं हूं, ऐसा भाव ही तो संन्यास है। और जब मैं नहीं हूं, तो अब कौन मरेगा? मैं का मिट जाना ही तो संन्यास है।

इसलिए जो लोग इस आश्रम की तुलना जोन्सटाउन से करते हैं, वे न तो जोन्सटाउन को समझते हैं, न इस आश्रम को समझते हैं। उन्हें कुछ समझ नहीं है। वे तो जीसस की तुलना भी रेवरेंड जोन्स से करेंगे। वे तो बुद्ध की तुलना भी रेवरेंड जोन्स से करेंगे। क्योंकि बुद्ध ने भी कहा है, प्रतिपल मरो। और जीसस ने तो बार-बार दोहराया है कि जब तक तुम मरोगे नहीं, तब तक उसे पा न सकोगे। लेकिन किस मृत्यु की बात कर रहे हैं जीसस और बुद्ध? कोई और ही मृत्यु है। कोई और ही रासायनिक प्रक्रिया है।

मैं भी कहता हूं, प्रतिपल मरो। अतीत के प्रति मरते चलो। अतीत का बोझ न ढोओ। तुम्हारे चित्त के दर्पण पर अतीत की कोई छाया न इकट्ठी हो, कोई धूल न जमे। पोंछते चलो, झाड़ते चलो, रोज स्नान करते चलो। प्रतिपल समझो कि नया जन्म हुआ। अतीत मर जाये और भविष्य जन्मे--उस ताजगी में ही, उस ओस जैसी ताजगी में ही तुम परमात्मा से संबंधित हो पाओगे।

लेकिन वैसा मरना कठिन है। वैसे मरने के लिए लंबी साधना की यात्रा करनी होगी। और जो जोन्सटाउन में हुआ, वैसा मरना बहुत आसान है। जहर खाकर मर जाना कोई बहुत बड़ी कला तो नहीं! बोध को जगाकर मर जाना कला है, योग है। जहर खाकर मरोगे, तो तुम्हारा जीवन भी व्यर्थ गया, तुम्हारी मृत्यु भी व्यर्थ गयी। बेहोशी में मरे। और बेहोशी में वही मरता है, जो बेहोशी में जीया हो। क्योंकि मृत्यु तो जीवन की परम अभिव्यक्ति है।

मैं तुम्हें जागकर जीने को कहता हूं। ऐसे जागकर जीयो कि जब मौत आये तब भी तुम जागे रहो। मौत भी ध्यान में घटित हो। तुम वहां जागे रहो और यहां मौत घटित हो। वहां चैतन्य का दीया जलता रहे और शरीर से छुटकारा हो। बस अगर तुम जागकर मर सको, तो फिर दोबारा न जन्मोगे न मरोगे। फिर अमृत से तुम्हारा संबंध हो गया।

रेवरेंड जोन्स कोई सदगुरु तो नहीं--मनोविकारग्रस्त व्यक्ति होगा। मेरे पास भी ऐसे मनोविकारग्रस्त लोग कभी आ जाते हैं। मुझसे आकर कहते हैं कि ओशो, आप आज्ञा दें तो हम आपके लिए मरने को तैयार हैं। मैं उनको कहता हूं कि अगर मेरी आज्ञा ही माननी हो, तो पहले मेरे लिए जीने को तो तैयार हो जाओ। जीयो मेरे लिए पहले; मैं जो कहता हूं वैसे जीयो। मरना तो बड़ा सुगम है। मरने में देर कितनी लगती है? जीना कठिन बात है; मरना तो क्षण में हो जाता है। कूद गये पहाड़ी से जाकर। एक क्षण की ही हिम्मत की जरूरत है। जीना, सत्तर साल जीना होगा... । हजारों ऋतुएं बदलेंगी। हजारों मन के भाव बदलेंगे। परिस्थितियां बदलेंगी। अनुकूलताएं प्रतिकूलताएं आयेंगी, सफलताएं-विफलताएं आयेंगी। फिर भी एक धागे को पकड़कर जीना, एक प्रेम के धागे को पकड़कर जीना, एक प्रार्थना को अडिग और अकंप रखना--कठिन मामला है--अति कठिन मामला है। और जब मैं किसी से कहता हूं जैसे मैं कहता हूं वैसे जीयो, तो वह शिथिल हो जाता है; मरने को तैयार है।

यही तो सदियों से हुआ है। लोग धर्म के नाम पर मरते रहे; धर्म के नाम पर जीया कौन? मैं तुम्हें धर्म के नाम पर जीना सिखाता हूं। मेरा तो सारा संदेश जीवन के अहोभाव का संदेश है--नृत्य का, गीत का, उत्सव का। मैं तो चाहता हूंः तुम फूल बनो, खिलो; कि पक्षी बनो, आकाश में उड़ो; कि सीखो चांद-तारों से नृत्य; कि सीखो झरनों से गीत-गान। मैं तो जीवन का प्रेमी हूं, क्योंकि मेरे लिए जीवन ईश्वर का पर्याय है। और जीवन कभी मरता नहीं; जीवन शाश्वत है। देहें बदल जाती हैं, रूप बदल जाते हैं, रंग बदल जाते हैं, नाम बदल जाते हैं; लेकिन जो तुम्हारे भीतर बसा है, वह तो कभी बदलता नहीं।

जोन्सटाउन में जो हुआ, वह तो बड़ी रुग्ण-चित्त की अवस्था है। इसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। हां, धर्म के नाम पर बहुत तरह के उपद्रव दुनिया में चल रहे हैं, चलते रहे हैं; उनसे ही इस बात का संबंध है।

रेवरेंड जोन्स एडोल्फ हिटलर जैसा रुग्ण-चित्त, विक्षिप्त आदमी रहा होगा। भ्रांतियां रही होंगी उसे। और अपनी भ्रांतियों को सिद्ध करने के लिए आदमी कुछ भी कर सकता है। लोगों को जीवन जीना तो नहीं सिखा पाया... ।

जब तुम कुछ सृजन नहीं कर पाते तो तुम्हारी ऊर्जा विध्वंसक हो जाती है। जब तुम बना नहीं पाते तो मिटाने की आतुरता पैदा हो जाती है। स्मरण रहे, जो भी हार जायेगा बनाने से, वह मिटाने को उत्सुक हो जाता है। कम से कम इतनी तो घोषणा कर दे कि नहीं बना सका, कोई बात नहीं; मिटा तो सका। मिटाने में भी तो ऐसा लगता है कि मैं बलशाली हूं, मेरी प्रभुता है। आखिर दुनिया में विध्वंस का इतना रस क्यों है? इसीलिए रस है, नहीं बना सके, कोई फिक्र नहीं; मिटा तो सकते हैं। मिटाने में भी लगता है कि हम महत्वपूर्ण हो गये,

महिमाशाली हो गये। दो ही तो कृत्य हैं इस जगत में: बनाओ या मिटाओ। जो बना सकता है, मिटायेगा नहीं। जो नहीं बना सकता है, वही मिटाता है।

सदगुरु तो वह है जो जीवन को जगाता है; जीवन को बनाता है। सदगुरु तो मूर्तिकार है; अनगढ़ पत्थरों को गढ़ता है। टूटे-फूटे लोगों को सुघड़ता देता है। सौंदर्य देता है उनको, जो कुरूप हो गये हैं। स्वास्थ्य देता है उनको, जिनकी छातियों में सिर्फ घाव हैं और कुछ भी नहीं। जिनके प्राणों में मवाद भरी है उनके प्राणों से मवाद खींचता है। उनके जीवन से जहर को बाहर करता है; अमृत का दान देता है। कोई सदगुरु ऐसा करेगा?

एक पागल आदमी के आसपास कुछ और पागल इकट्ठे हो गये होंगे। और पश्चिम में यह जोर से हो रहा है। क्यों हो रहा है पश्चिम में यह जोर से? इसलिए हो रहा है कि परंपरागत धर्म सड़ गया है। परंपरागत ईश्वर अर्थहीन हो गया है। चर्चों और मंदिरों में सूनापन है, सन्नाटा है। वहां से देवता कभी के विदा हो चुके हैं। वहां पंडितों ने और पुजारियों ने, पादरियों ने दुकानें खोल रखी हैं! और आदमी के मन में ईश्वर की तलाश पैदा हुई है। और इसलिए तलाश पैदा हुई है कि पश्चिम पहली बार समृद्ध हुआ है। जब भी कोई समृद्ध होता है, जब भी जीवन की सारी सुविधाएं पूरी हो जाती हैं, तो परमात्मा की खोज अनिवार्य होती है। क्योंकि फिर और कुछ खोजने को बचता नहीं। धन पा लिया, पद पा लिया, प्रतिष्ठा पा ली--और कुछ भी तो न मिला! तब एक आध्यात्मिक रिक्तता की प्रतीति होती है। तब एक संताप पकड़ लेता है। उसी संताप में आज पश्चिम है। ... तलाश कर रहा है।

और जब लोग तलाश करते हैं, तो झूठे लोगों की बन आती है। जब लोग तलाश कर रहे होते हैं, तो झूठे सिक्के भी चल जाते हैं। जब लोग टटोल रहे होते हैं, तो जो दरवाजे नहीं हैं, वे भी दरवाजे की घोषणा कर देते हैं। हिंदुस्तान में भी जितने बेईमान किस्म के साधु-संन्यासी हैं, वे सब अमरीका की तरफ भाग रहे हैं। फिर महर्षि महेश योगी हों कि स्वामी मुक्तानंद हों, या कोई और हों। उनको वहां बाजार दिखाई पड़ रहा है। केलिफोर्निया धर्म का बाजार हो गया है। पांच हजार संप्रदाय नये, केलिफोर्निया में चल रहे हैं। कोई भी... कोई भी मूढ़ जोर से घोषणा कर सकता हो जाकर केलिफोर्निया में, तो शिष्य खोज लेगा। शिष्य तैयार ही हैं; किसी के भी पीछे चलने को तैयार हैं।

मैंने जानकर ही तय किया कि पश्चिम नहीं जाऊंगा। क्योंकि पश्चिम धर्म के नाम पर बाजार बन गया है। जिनको आना है उन्हें यहां आना होगा। अगर तलाश है, खोज है, तो हजारों मील का फासला तय करके लोग यहां आ जायेंगे। जिनको, जिन तथाकथित गुरुओं को यहां से वहां जाना पड़ रहा है, ख्याल रखना, वे शिष्यों की तलाश में हैं, शिष्य उनकी तलाश में नहीं हैं। शिष्य जिसकी तलाश में हैं, उसे कहीं जाने की जरूरत नहीं है।

मैं तो अपने कमरे में बंद होकर बैठ गया हूं। इसे तुम चमत्कार समझो कि जो आदमी कमरे के बाहर नहीं जाता, उसके पास सारी दुनिया से लोग चुपचाप चले आ रहे हैं! हजार तरह की अड़चनें झेलकर चले आ रहे हैं। और मैं चाहता भी हूं कि पहले वे उन सब तथाकथित गुरुओं के पास हो लें तो अच्छा। इसलिए मेरे पास जो लोग आ रहे हैं, वे बहुत गुरुओं के पास होकर आ रहे हैं। अब उन पर काम हो सकता है। क्योंकि जिसने असार देख लिया है, उसी को सार दिखाई पड़ सकता है। जिसने झूठ को पहचान लिया है, वही सत्य की दिशा में कदम उठा सकता है। असार को असार की भांति जान लेना, सार को जानने के लिए पहला कदम है, पहली सीढ़ी है।

मैं तो यहां जीवन का उत्सव सिखा रहा हूं--जीवन का इंद्रधनुष, जीवन के सातों रंग! मैं जीवन निषेधक नहीं हूं। मैं तो जीवन के प्रेम में हूं, अनंत प्रेम में हूं।

यहां तो ऐसी घटना घट ही नहीं सकती। अगर कोई स्थान है जहां ऐसी घटना असंभव है, तो वह स्थान यही है। मैं तुम्हें रुग्ण तो नहीं बनाना चाहता। यद्यपि जो झूठे गुरु हैं वे तुम्हें रुग्ण बनायेंगे, क्योंकि तुम जितने रुग्ण हो जाओगे, उतनी ही तुम्हें उनकी जरूरत होगी। वे तुम्हें दीन-हीन बनाएंगे। वे तुम्हें पापी बनाएंगे। तुम पापी हो, ऐसी घोषणा करेंगे। तुम जितने दुर्बल हो जाओगे, तुम्हारी दुर्बलता में उनका बल है

मैं घोषणा कर रहा हूं कि तुम पापी नहीं हो। मैं कह रहा हूं कि कोई पापी नहीं हैं। मैं घोषणा कर रहा हूं कि तुम्हारे भीतर परमात्मा अपनी परम शुद्धि में उपस्थित है। तुम क्वांरे परमात्मा हो। मैं घोषणा कर रहा हूं तुम्हारी परम वैभवशीलता की, तुम्हारी परम समृद्धि की। मैं तुम्हें बल दे रहा हूं। मैं तुम्हें आत्मा दे रहा हूं। तुम्हें दीन-हीन नहीं कर रहा हूं।

स्मरण रहे, यही कसौटी है। जहां तुम दीन-हीन किये जाओ, समझ लेना कि जो व्यक्ति तुम्हें दीन-हीन कर रहा है, वह व्यक्ति तुम्हारे ऊपर बल, अधिकार, मालकियत की घोषणा करना चहता है। दुर्बलों पर ही मालकियत हो सकती है। मैं तुम्हें जितना बल दे रहा हूं, उतना तो किसी ने कभी नहीं दिया है। बेशर्त तुम से कह रहा हूं कि तुम्हारे जीवन में कुछ भी नहीं है, जिसके लिए तुम अपराधी अनुभव करो। तुम्हें नर्क नहीं जाना है। कहीं कोई नर्क नहीं है। तुम्हें जागना है; और तुम पाओगे कि तुम स्वर्ग में हो।

बैरी स्लाटर, तुमने पूछा कि कुछ लोग आप के आश्रम की तुलना जोन्सटाउन से करते हैं। वे वे ही लोग होंगे, जो न यहां कभी आये हैं, न जिन्होंने कभी मेरी आंख में आंख डालकर देखा है, न जो कभी मेरे पास बैठे हैं, न जिन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया है। वे ही लोग, जिन्होंने इस सत्संग की शराब कभी नहीं पी। वे ही लोग, जो इस मधुशाला से दूर-दूर हैं। उनकी बातों का कोई मूल्य नहीं है।

तुमने पूछा कि जिस भांति सामूहिक आत्मघात गुयाना के जंगल में हुआ, वैसा ही कुछ क्या यहां होने की संभावना हो सकती है?

यहां तो जो संन्यासी होता है, उसने आत्मघात कर ही लिया! संन्यास का अर्थ ही वही है कि मरता हूं जैसा मैं था, ताकि अब जी सकूं वैसा जैसा कि मैं हूं। मेरे पाखंड को छोड़ता हूं। मेरे मुखौटे छोड़ता हूं। मेरे व्यक्तित्व को जाने देता हूं... नदी की धार में, ताकि मेरी आत्मा प्रगट हो सके।

संन्यास तो आत्मघात है--सही अर्थों में आत्मघात। क्योंकि उसी के बाद सच्चा जीवन शुरू होता है। यहां तो अब आत्मघात को कोई बचा नहीं। यहां तो कोई उपाय नहीं है। यहां तो सन्नाटा है। यहां तो शांति है। यहां तो उस शांति से आनंद के गीत उठ रहे हैं। वह भी संन्यासी गा रहे हैं ऐसा नहीं, संन्यासी सिर्फ परमात्मा को अपने भीतर से गाने दे रहे हैं... ऐसा।

तुमने यह भी पूछा कि क्या आप अपने संन्यासियों से अपने प्रति या अपनी धारणाओं के प्रति प्रतीक-रूप में ऐसा कुछ बलिदान करने को कह सकते हैं?

पहली तो बात, मेरी कोई धारणाएं नहीं हैं। मैं धारणाएं सिखाता नहीं। मैं धारणाओं से मुक्ति सिखाता हूं। मैं सिखाता हूं कि कैसे ज्ञान से छुटकारा हो। मैं तुम्हें ज्ञान देता नहीं, तुमसे ज्ञान छीनता हूं। मैं तुम्हें शून्य देना चाहता हूं। शून्य का ही दूसरा नाम ध्यान है। जब तक ज्ञान है तब तक ध्यान नहीं। जब सारा ज्ञान गिर जाता है तब ध्यान का आविर्भाव होता है।

ध्यान उस निर्मल दशा का नाम है, जब ज्ञान की कोई धूल तुम्हारी चेतना के दर्पण पर नहीं बचती। मैं तुम्हें कोई धारणा नहीं सिखा रहा हूं। मैं तो यह भी नहीं कहता कि मानो कि ईश्वर है। मैं तो यह भी नहीं कहता कि मानो कि मोक्ष है। मैं तो यह भी नहीं कहता कि मानो कि पुनर्जन्म है। मैं तो कहता ही नहीं कि कुछ मानो।

मैं तो कहता हूंः जो है, इस क्षण, अभी, यहां, उसे जानो। मानने पर मेरा जोर नहीं है। क्योंकि जो भी तुम्हें मनाता है, वही तुम्हें गुलाम बना लेगा। मनाने का अर्थ हैः तुम्हारे हाथ में झूठ पकड़ा देना। जो तुम्हारा अनुभव नहीं है, वह झूठ है। मेरा अनुभव मेरे लिए सत्य है। तुम्हारा अनुभव तुम्हारे लिए सत्य होगा। मेरा अनुभव तुम्हारे लिए कभी सत्य नहीं हो सकता। मैंने स्वाद लिया, तुम्हें तो स्वाद नहीं आया। मैंने संगीत सुना, तुम्हारे कान तो वैसे के वैसे वंचित रहे। मैंने भोजन किया, मेरी भूख मिटी; तुम्हारी तो न मिट जायेगी। अगर मेरे भोजन करने से मेरे संन्यासी की भूख नहीं मिटती; तो मैं परमात्मा को जान लूं, इससे मेरा संन्यासी कैसे परमात्मा को जान सकेगा? जब शरीर की भूख तक नहीं मिटती, तो आत्मा की भूख कैसे मिट जायेगी?

इसलिए स्मरण रहे कि सत्य जब भी जानने वालों के हाथ से गैर-जाननेवालों के हाथ में जाता है, उसी प्रक्रिया में झूठ हो जाता है। दूसरे का सत्य तुम्हारे लिए झूठ है। इसलिए मैं कोई धारणाएं नहीं दे रहा हूं। अगर कुछ मैं दे रहा हूं तो जागरण, होश। इसलिए मेरी धारणाओं पर बलिदान करने का तो कोई सवाल ही नहीं है, कोई प्रश्न ही नहीं है।

त्याग और बलिदान मेरी जीवन-शैली के अंग ही नहीं हैं। मैं तुमसे कुछ भी मेरे लिए छोड़ो, ऐसा न कहता हूं न कह सकता हूं। हां, तुम्हें जो दिखाई पड़ने लगे व्यर्थ है, वह छूट जायेगा और जो सार्थक है, तुम उसे पकड़ने लगोगे। लेकिन यह घटना घटेगी तुम्हारे भीतर, तुम्हारे अंतरतम में; तुम्हीं इसके निरीक्षक, तुम्हीं इसके मालिक होओगे।

मैं तुम्हारा मालिक नहीं हूं, ज्यादा-से-ज्यादा तुम्हारा संगी-साथी हूं।

बुद्ध ने स्वयं को कहा है, मैं कल्याण-मित्र हूं। वही मैं तुमसे कहता हूंः मैं तुम्हारा कल्याण-मित्र हूं।

तुम मेरे शिष्य हो, इससे तुम यह मत समझ लेना कि मेरे भीतर कोई गुरु-भाव है। तुम जरूर मेरे शिष्य हो, क्योंकि तुम अभी तलाश कर रहे हो। लेकिन जहां तक मेरा संबंध है, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं, न तुम मेरे शिष्य हो। क्योंकि मुझे तो वह दिखाई पड़ रहा हैः तुम जिसे तलाश कर रहे हो, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। मेरी तरफ से तो मैं मित्र हूं, तुम्हारी तरफ से गुरु हूं। तुम अज्ञानी हो। तुम अज्ञानियों की सारी धारणाएं गलत हैं। उसी में यह धारणा भी सम्मिलित है कि मैं तुम्हारा गुरु हूं, कि तुम मेरे शिष्य हो। जब दीया जलेगा, तुम्हारे भीतर रोशनी होगी, ये धारणाएं भी विदा हो जायेंगी। न तुम पाओगे कि तुम शिष्य हो, न तुम पाओगे कि मैं गुरु हूं। न रहेगा मैं, न रहेगा तू; परमात्मा ही रह जाता है--न कोई शिष्य, न कोई गुरु। और जहां दोनों खो जाते हैं, वहीं सत्य का प्रथम साक्षात्कार है।

दूसरा प्रश्न भी पहले से संबंधित हैः ओशो, रेवरेंड जिम जोन्स का किस्सा और गुयाना में घटित सामूहिक आत्मघात की कहानी पिछले कुछ सप्ताहों से समाचार-पत्रों में छायी हुई है। इस कांड में एक आदर्श रोचक समाचार-कथा के सब लक्षण हैं। इस घटना की फलश्रुति हैं--अंतहीन विश्लेषण और टीकाएं, और साथ ही सभी गैर-परंपरागत धार्मिक प्रयोगों का पुनर्परीक्षण। प्रचार-साधनों की शास्त्रीय भाषा में ये चीजें संप्रदायों, "कल्ट्स" के नाम से ज्ञात हैं--जो कि एक तरह से अनुमानित दोषारोपण है।

मैं निश्चित समझता हूं कि यही बात ओशो आश्रम के साथ लागू हो सकती है। क्या आप हमें समझाने की कृपा करेंगे कि आपकी शिक्षा और प्रयोगों में, और संप्रदाय ("कल्ट्स") में क्या अंतर है?

रोहित! पहली तो बात, मेरे पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं, ये किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं हो रहे हैं, ये तो सिर्फ एक जीवंत प्रयोग में भागीदार हो रहे हैं। यह प्रयोगशाला है। न मैं हिंदू हूं, न मैं मुसलमान हूं, न मैं ईसाई हूं, न जैन, न बौद्ध। यहां तो सारी मनुष्य-जाति की जो वसीयत है--उसमें हिंदू भी सम्मिलित हैं, मुसलमान भी, जैन भी, ईसाई भी, बौद्ध भी, यहूदी भी, सिक्ख भी, उसमें सारी दुनिया के जाग्रत पुरुष सम्मिलित हैं, उन सारे पुरुषों ने जो जाना है, जो जीया है और जो अनूठे प्रयोग दिये हैं, उन सबके लिये यह एक प्रयोग-स्थल है।

यह एक विश्वविद्यालय है। यह कोई संप्रदाय नहीं है। जो मित्र यहां संन्यासी हो गए हैं, उनके संन्यासी होने से अब वे ईसाई नहीं रहे, हिंदू नहीं रहे, मुसलमान नहीं रहे--ऐसा नहीं है। उनकी मौज है। जो कभी मुसलमान थे ही नहीं, झूठे मुसलमान थे, वे संन्यासी होकर मुसलमान न रह जाएंगे। जो सच में मुसलमान थे वे संन्यासी होकर और गहरे मुसलमान हो जाएंगे।

संन्यास तो तुम्हें धर्म देगा और धर्म विशेषण-रहित। मैं तुम्हें कोई विशिष्ट धर्म नहीं दे रहा हूं--सिर्फ एक धर्म-भाव दे रहा हूं। मैं तुम्हें किन्हीं परंपराओं में नहीं बांध रहा हूं, किन्हीं औपचारिकताओं में, किसी क्रियाकांड में नहीं बांध रहा हूं। मैं तो तुम्हें जो सार-निचोड़ है, जिसके माध्यम से, जिस कुंजी से तुम अपने भीतर के रहस्यों के ताले खोल लो, वह कुंजी दे रहा हूं। ताला खुल जाए, कुंजी फेंक देना, फिर क्या करोगे कुंजी का? नदी पार हो जाओ, नाव छोड़ देना, फिर क्या करोगे नाव का?

संप्रदाय तो तब पैदा होता है जब तुमसे कहा जाता है कि नदी भी पार हो जाए तो भी नाव को सिर पर ढोना। अब यह बड़े आश्चर्य की बात है कि कोई संन्यस्त हो जाता है, फिर भी जैन रहता है; संन्यस्त हो जाता है, फिर भी हिंदू रहता है; संन्यस्त हो जाता है, फिर भी बौद्ध रहता है। ध्यान में उतर गए, इतने ध्यान में उतर गए कि संन्यास भी फला; अब भी नाव ढोओगे--शास्त्रों की, शब्दों की, सिद्धांतों की? अब तो अपना अनुभव हो गया। अब ये उधार और बासे शब्दों को क्यों ढोना?

यह कोई संप्रदाय नहीं है। फिर संप्रदाय को बनाने के लिए तो एक विशेष धारणा-पद्धति चाहिए। मेरे पास आते हैं लोग, वे कहते हैं कि आप कोई एक ऐसी छोटी-सी किताब लिख दें, जैसे ईसाइयों का कैटजिज्म होता है, जिसमें सब सार आ जाए--कि इतने सिद्धांत, इतनी बातें मानना, इतनी बातें नहीं मानना, इतना करना इतना नहीं करना; ऐसा भोजन, ऐसा उठना ऐसा बैठना--सब संक्षिप्त में आ जाए। वे मांग कर रहे हैं कि मैं उन्हें एक संप्रदाय दूं। मैं उन्हें पूरा आकाश दे रहा हूं। वे कहते हैंः हमें छोटा आंगन दो, साफ-सुथरा हो, दीवाल से घिरा हो, सुरक्षित हो। मैं उन्हें पूरा आकाश देना चाहता हूं। वे कहते हैंः हमें पींजड़ा दो।

मैं कोई पींजड़ा किसी को नहीं दे रहा हूं। इसलिए यहां मेरे पास सारे धर्मों के लोग हैं। मैं उनसे पूछता भी नहीं कि तुम किस धर्म से आते हो। मैं उनसे कहता भी नहीं कि तुम कुछ छोड़ो कि तुम कुछ पकड़ो। मुझे जो अनुभव हुआ है, उसे तुम्हारे सामने फैला देता हूं। यदि तुम्हारे भीतर भी कोई तार झंकृत हो जाएं तो चल पड़ो तुम भी खोज पर। मैं एक अभियान देता हूं--एक यात्रा। मैं तुम्हें मंजिल नहीं देता। मैं तुम्हें बंधी हुई धारणाएं, सिद्धांत, बंधे हुए लक्ष्य नहीं देता। मैं तुम्हें निर्बंध... मुक्ति की एक पुकार देता हूं। यह बड़ी भिन्न बात है।

तुम मुझे धर्मगुरु न समझो। अच्छा हो, तुम मुझे एक कवि समझो। तुम मुझे धर्मगुरु न समझो। अच्छा हो कि तुम मुझे एक शराबी समझो। मैं एक पियक्कड़ हूं, जिसने परमात्मा की शराब पी ली है और जो अपनी मस्ती में कुछ गुनगुना रहा है। गुनगुनाहट शायद तुम्हें पकड़ जाए, शायद पास बैठे-बैठे तुम्हें भी मेरी शराब का स्वाद लग जाए, तो खोज पर निकल पड़ना।

जिनको वैसा स्वाद लग गया है वे ही मेरे संन्यासी हैं।

तो पहली तो बात, यह कोई कल्ट या संप्रदाय नहीं है। यह तो समस्त संप्रदायों से मुक्ति है। और ये कौन लोग हैं जो कल्ट और संप्रदायों की निंदा करते हैं। ये खुद ही सांप्रदायिक लोग हैं--कोई ईसाई है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है। ये संप्रदायों की निंदा करते हैं। क्यों? इनके संप्रदायों को खतरा है। ये खुद बंधे हैं धारणाओं में, मगर इनको डर है कि कोई प्रतिस्पर्धी न पैदा हो जाए। हां, एक बात उनके पक्ष में है कि वे कहते हैं कि हम परंपरागत हैं, इसलिए हम कल्ट नहीं हैं; हम धर्म हैं। जो परंपरागत नहीं है; वह संप्रदाय; जो परंपरागत है, वह धर्म। यह भी खूब परिभाषा हुई! तो फिर जीसस ने जब पहली दफा ईसाइयत को जन्म दिया, तब वह धर्म था या कल्ट? तब तो वह परंपरागत नहीं था। तो फिर यहूदियों ने ठीक ही किया कि जीसस को सूली पर लटका दिया। क्योंकि यह कल्टिस्ट था। यह एक संप्रदाय पैदा कर रहा था, यहूदियों को भड़का रहा था, बिगाड़ रहा था। तो फिर बुद्ध ने जब बौद्ध धर्म को जन्म दिया तब वह कल्ट था, संप्रदाय था, धर्म नहीं था।

फिर सोचने की बात है कि जो जन्म के समय में ही संप्रदाय था, वह दो हजार साल चलने के बाद धर्म कैसे हो जाएगा? जो जन्मा गधे की तरह है वह मरेगा भी गधे की तरह। और जो जन्मा है फूल की तरह वह मरेगा भी फूल की ही तरह। आखिर अगर जन्म के समय ही बुद्ध की बातें सांप्रदायिक हैं और धर्म नहीं हैं, तो फिर दो हजार साल चलने के बाद तो और भी सांप्रदायिक हो जाएंगी। क्योंकि दो हजार साल पंडित-पुरोहित और जोड़ते चले जाएंगे। जिंदा बुद्ध जब सांप्रदायिक हैं तो दो हजार साल बाद तो लाश सड़ चुकी होगी शब्दों की। उस पर खूब टीकाएं चढ़ चुकी होंगी।

लेकिन ईसाई, अगर कोई नया धर्म पैदा होता है, कोई नया उदभव होता है चेतना का, तो उसको कहते हैंः कल्ट। फिर जीसस जब नए थे, तब? हिंदू कोई नई बात पैदा हो तो उसके विपरीत खड़े हो जाते हैं। लेकिन कभी कृष्ण भी नए थे, कभी कबीर भी नए थे, कभी नानक भी नए थे, कभी मुहम्मद भी नए थे। जो नया है वही तो एक दिन पुराना होता है। नहीं तो पुराना कैसे होगा? और जो पुराना है वह एक दिन नया रहा होगा, अन्यथा पुराना कैसे होता? तो अगर कल का है तो धर्म और अगर आज का है तो संप्रदाय--यह तो बड़ी अजीब परिभाषा हुई!

नहीं, ऐसी मैं परिभाषा स्वीकार नहीं करता। फिर मेरी क्या परिभाषा है? जो शब्दों और सिद्धांतों और शास्त्रों से बंधा है वह संप्रदाय और जो अनुभव से जीता है वह धर्म। मैं कहता हूंः ईसाइयत, हिंदू, मुसलमान, जैन, बौद्ध सब संप्रदाय हैं। हां, कृष्णमूर्ति के पास बैठकर जो लोग सुन रहे हैं, यह धर्म है। मेरे पास बैठ गये हैं जो लोग, यह धर्म है।

धर्म तो सदा ताजा होता है, नया होता है, धर्म तो गंगोत्री पर होता है। फिर गंगोत्री से जैसे ही गंगा उतरती है नीचे, रोज-रोज गंदी होती जाती है। तुमने भी खूब किया है, काशी में आकर पूजा की गंगा की! तब तक न मालूम कितने नदी-नाले, न मालूम कितनी गंदगी शहरों की गंगा में गिर चुकी होगी। गंगा क्वांरी है गंगोत्री पर--जब अभी उतरी-उतरी है, भगीरथ के बालों से अभी उतरी-उतरी है, अभी शंकर उसे उतारकर लाए ही हैं आकाश से, अभी गंगा भटक ही रही थी उनकी केश-राशियों में! यह हिमालय शंकर की केश-राशि है। अभी जब उतर ही रही है गंगा, शिव के बालों से झर ही रही है अभी, तब धर्म है। और जब काशी पहुंच गई तो संप्रदाय हो जाएगा।

समय संप्रदाय बनाता है। परंपरा संप्रदाय बनाती है। नूतनता, नवीनता... अभी जो मैं तुमसे कह रहा हूं यह गंगोत्री है। हां, सौ-दो-सौ साल बाद मेरे जाने के बाद यह गंगोत्री नहीं रह जाएगी। लेकिन तुम, काशी पर जब मैं पहुंच जाऊंगा, तब तुम तीर्थ बनाओगे, तुम ऐसे अंधे हो! गंगोत्री को गाली दोगे, काशी को पूजोगे।

मुहम्मद को टिकने न दोगे एक गांव में--मक्का से मदीना, मदीना से मक्का भगाते फिरोगे। मुहम्मद के पीछे तलवार लेकर लगे रहोगे और फिर जब मुहम्मद विदा हो जाएंगे तो तुम सदियों तक पूजा करोगे! तुम बड़े अजीब लोग हो! तुम मुर्दों के पूजक हो। तुम खुद मुर्दे हो और मुर्दों की पूजा करते हो।

मुर्दे जब मुर्दों की पूजा करते हैं, उसको मैं संप्रदाय कहता हूं। जो मुहम्मद के पास इकट्ठे हो गए थे, वे हिम्मतवर लोग। जिन्होंने मुहम्मद के पास बैठकर कुरान सुनी थी, जिन्होंने मुहम्मद से जन्म होती हुई गंगा को अनुभव किया था--वे धार्मिक लोग थे।

तो मेरी तो परिभाषा उल्टी है। जितना पुराना हो, जितना सड़ा हो, जितना गला हो--उतना संप्रदाय। जितना नया हो, जितना ताजा हो, अभी-अभी उतरती हो गंगा आकाश से, अभी-अभी किसी की समाधि के हिमालय से गंगोत्री झरती हो--तो धर्म।

धर्म विशेषण-रहित होता है, क्योंकि नए का कोई विशेषण नहीं होता। जब बुद्ध बोले पहली दफा तो उसका कोई विशेषण नहीं था। तब तक बौद्ध धर्म का जन्म नहीं हुआ था। यह तो तुम जानते हो न कि जीसस यहूदी की ही तरह पैदा हुए और यहूदी की ही तरह मरे। जीसस ईसाई नहीं थे। अभी ईसाइयत का जन्म ही कहां हुआ था? ईसाइयत तो तब पैदा होगी जब गंगा काशी पहुंच जाएगी। जीसस तो यहूदी ही रहे, यहूदी ही मरे।

अभी मेरे पास किसी धर्म का नाम नहीं है--अभी धर्म है! मेरे जाने के बाद नाम होगा। तब संप्रदाय होगा। तब उससे बचना। वह फिर मेरा हो या किसी और का हो, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। मरी हुई चीज से बचना। जीवित के पास जाना, क्योंकि परमात्मा जीवन है।

रोहित! जो यहां घट रहा है यह संप्रदाय नहीं है--अभी धर्म है। और अभी जो आ गए हैं मेरे पास वे धन्यभागी हैं; पीछे जो आएंगे मेरे विदा हो जाने पर वे अभागे होंगे। मगर अभागों से दुनिया भरी है।

तीसरा प्रश्नः मैं बिल्कुल पत्थर हूं और फिर भी प्रार्थना में डूबना चाहता हूं, पर जानता नहीं कि प्रार्थना क्या है। कैसे करूं प्रार्थना? मुझ अंधे को भी आंखें दें!

आंखों की कोई जरूरत नहीं है प्रार्थना के लिये--आंसुओं की जरूरत है। और अंधा भी रो सकता है उतना ही जितना आंखवाले रो सकते हैं। फिकिर छोड़ो आंखों की। आंखों के मांगने में तो तुमने ज्ञान को मांगना शुरू कर दिया--और ज्ञान प्रार्थना का दुश्मन है। आंसू मांगो। भाव मांगो, हृदय मांगो।

आंखें मांगने में तो तुमने मस्तिष्क मांगना शुरू कर दिया। आंखें तो मस्तिष्क के द्वार हैं। आंखें मत मांगो। आंखें न हुईं तो चलेगा--हृदय चाहिए। और हृदय की भी आंख है। आंखें नहीं हैं--आंख है! मस्तिष्क की दो आंखें हैं, हृदय की एक आंख है। मस्तिष्क द्वंद्वात्मक है, द्वैत है; इसलिये दो आंखें हैं। हृदय की एक आंख है; वही तीसरा नेत्र है, शिवनेत्र। नाम ही है नेत्र का... मैं उसी आंख को प्रेम कहता हूं।

ज्ञान मत मांगो। ज्ञान में हमेशा द्वंद्व है। ज्ञान में तर्क है। और जहां तर्क है वहां कोई निश्चय नहीं। जहां तर्क है वहां विवाद है। जहां विवाद है, वहां कोई निष्पत्ति न हो सकती है न हुई है न होगी। तुम जो भी मानोगे उसके विपरीत तर्क दिये जा सकते हैं। तुम्हारा हर विश्वास खंडित किया जा सकता है, क्योंकि विश्वास और संदेह बराबर शक्ति के हैं। इसलिये तो दुनिया में न आस्तिक जीत पाते न नास्तिक जीत पाते। कितने हजार साल हो गये आदमी को, अब तक निर्णय हो जाना चाहिए था। अगर आस्तिक ठीक थे तो सारी दुनिया आस्तिक हो

जाती। अगर नास्तिक ठीक थे तो सारी दुनिया नास्तिक हो जाती। लेकिन कोई निर्णय नहीं हो पाता। आस्तिक अपनी दलीलें देते हैं, नास्तिक अपनी दलीलें देते हैं। दोनों की दलीलें करीब-करीब समान बल की हैं।

मेरा अपना अनुभव यह है कि तर्क हमेशा दोनों तरफ से समान बल का होता है। तर्क वेश्या है। वह किसी के भी साथ जाने को तैयार है। तर्क वकील है। वह किसी के भी साथ जाने को तैयार है--जो पैसे चुका दे, जो कीमत चुका दे, जो खरीद ले। तर्क कभी भी निर्णायक नहीं हो पाता। तुम मानो कि ईश्वर है, तो जिन प्रमाणों के आधार पर तुम मानते हो कि ईश्वर है वे सभी प्रमाण खंडित किये जा सकते हैं; उतने ही बलपूर्वक जितने बलपूर्वक तुमने उन्हें सिद्ध कर रखा है।

इसलिए हर विश्वास के नीचे संदेह दबा रहता है और हर संदेह के नीचे विश्वास की इच्छा बनी रहती है। मेरे देखने में कोई नास्तिक होता है तो उसके भीतर मैं छिपा हुआ आस्तिक देखता हूं और कोई आस्तिक होता है तो उसके भीतर छिपा नास्तिक देखता हूं। नास्तिक-आस्तिक साथ-साथ होते हैं--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिये मस्तिष्क कहीं भी नहीं ले जाता, सिर्फ भरमाता है, भटकाता है। कोल्हू के बैल की तरह चलाता है। बस घूमते रहते हो एक ही जगह। घूमने से लगता है, चल रहे हो, पहुंच रहे हो। न कहीं पहुंचना होता है न कहीं चलना होता है।

ऐसा हुआ कि बर्नार्ड शा एक होटल में ठहरा था किसी यूरोपीय देश के। उसने टैक्सी बुलाई। उसे स्टेशन जल्दी पहुंचना था। टैक्सी में जाकर बैठ गया। टैक्सी वाले ने गाड़ी शुरू की। बर्नार्ड शा ने कहा कि जल्दी चलो, मुझे जल्दी पहुंचना है। गाड़ी भागने लगी। लेकिन थोड़ी देर बाद बर्नार्ड शा को लगा कि यह तो स्टेशन की तरफ न जाकर उल्टी दिशा में जा रही है। तो उसने पूछा कि तुम कहां जा रहे हो? तो टैक्सी ड्राइवर ने कहाः यह मुझे पता नहीं, यह मुझे किसी ने कहा भी नहीं कि मुझे कहां जाना है। लेकिन एक बात पक्की है कि जहां भी जा रहा हूं तेजी से जा रहा हूं।

बर्नार्ड शा ने सोचा था कि होटल के जिस नौकर को भेजा था टैक्सी बुलाने उसने बता दिया होगा कि स्टेशन जाना है, इसलिये उसने खुद ने तो बताया नहीं कि स्टेशन जाना है; सिर्फ इतना कहा तेजी से चलो, जल्दी पहुंचना है। टैक्सी-ड्राइवर भी पहुंचा हुआ दार्शनिक रहा होगा। उसने भी नहीं पूछा, कि जब खुद जानेवाला नहीं बता रहा है तो मैं भी क्यों पूछूं? सिर्फ तेजी से पहुंचना है, तेजी से पहुंचो।

लोग तेजी से चले जा रहे हैं! खूब सोचते-विचारते, खूब तर्क करते--और भूल ही गये हैं कहां जा रहे हैं!

मस्तिष्क चलाता तो बहुत है, पहुंचाता कहीं नहीं। चलाता काफी तेजी से है!

एक हवाई जहाज रास्ता भटक गया बादलों में। हवाई जहाज के पायलट ने यात्रियों को सूचना दी कि दो समाचार हैं--एक सुखद, एक दुखद। पहले सुखद समाचार, कि हम परिपूर्ण रफ्तार से गन्तव्य की ओर जा रहे हैं; और अब दुखद समाचार कि गन्तव्य कहां है, इसका अब हमें कोई पता नहीं है।

मगर ऐसी अवस्था आदमी की है। बड़ी तेजी से चले जा रहे हैं लोग। और तेजी को कैसे तेज करें, इसके नये-नये ईजाद कर रहे हैं लोग। मगर कहां जा रहे हो?

हृदय मंजिल की सूचना देता है। हृदय गन्तव्य की तरफ संकेत करता है, क्योंकि हृदय प्रेम है। इसलिये हृदय का जो इशारा है वह परमात्मा की तरफ लगा रहता है।

दिशा-सूचक यंत्र होता है न, तो तुम कैसा ही उसे घुमा-फिराकर रखो वह ठीक दिशा बताने लगता है। उत्तर कहां है, वह बता देता है। ऐसे ही हृदय सदा ही परमात्मा की तरफ लगा हुआ है। और वह जो परमात्मा की तरफ लगाव है, उसका नाम प्रार्थना है। उस प्रार्थना का जो मूलस्रोत है, उसका नाम प्रेम है।

तुम आंखें मत मांगो--आंख मांगो! तुम तर्क मत मांगो, ज्ञान मत मांगो--प्रेम मांगो। आंख नहीं आंसुओं से काम हो जायेगा।

पूछते हो तुमः "मैं बिल्कुल पत्थर हूं!" सब ही पत्थर हैं। जब तक परमात्मा नहीं घटा है तब तक सभी पत्थर हैं। इसलिये मन में कोई हीनता न लेना। परमात्मा के घटते ही सब पत्थर प्रतिमाएं बन जाते हैं, अपूर्व सौंदर्य प्रगट होता है।

टूट जाता है कभी पाषाण भी।
भेद कब खुलने दिया जल बिंदु ने,
घोर बड़वानल छिपाई सिंधु ने।
सह रहा है किंतु सह पाता न जब,
उठ कभी जाता प्रबल तूफान भी।
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

शाप भी प्यारा मुझे वरदान भी।
मान लो भगवान तो पाषाण भी।
किंतु ऐसे क्षण न कम हैं जब कभी--
अश्रु बन जाती मधुर मुसकान भी!
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

सोचती है यह हठीली कामना,
अंत तक क्या साथ देगी साधना?
आंधियों में बुझ न पाया दीप जो,
वह बुझा सकता सहज पवमान भी।
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

जानती हूं मौन रह दीपक जला,
मौन रह कर फूल कांटों में खिला।
किंतु मैं तो मौन भी कैसे रहूं,
है विवशता यह कि हूं इंसान भी।
टूट जाता है कभी पाषाण भी।

घबड़ाओ न, पत्थर भी टूट जाते हैं। देखते नहीं, गिरती है क्षीण-सी जलधार और पत्थर टूट जाते हैं।

लाओत्सु ने कहा हैः पत्थर से मत सीखो, सीख लो जलधार से सब राज। जलधार कोमल है, स्त्रैण है, सुकुमार है। तोड़ देती है कठोर से कठोर पाषाण को। बड़े-बड़े शिलाखंड रेत होकर बह जाते हैं। जब पहली दफा जलधार गिरी होगी पत्थरों पर तो पत्थरों को ख्याल भी न आया होगा कि हम और टूट जायेंगे। इस क्षीण-सी जलधार के मुकाबले, इस स्त्रैण जलधार के मुकाबले हमारा पुरुष हार जायेगा; सोचा भी न होगा। जो सदियों-सदियों से वहां टिके थे, समय आया और गया, हजारों-हजारों ऋतुएं आईं और गईं, न मालूम कितने सूरज उगे

न मालूम कितने चांद ढले और जो पत्थर सदा से वैसे के वैसे रहे थे, समय जिनका कुछ भी न बिगाड़ पाया था--यह जलधार कुछ बिगाड़ लेगी! पत्थर हंसे होंगे। मगर जल्दी ही पता चलता है कि कोमल जलधार पत्थर को तोड़ जाती है।

ऐसे ही आंसू गिरने शुरू हो जायें तुम्हारे। आंख मत मांगो, आंसू मांगो--और पत्थर टूट जायेंगे। आंसू पिघलाते हैं हृदय के पथरीलेपन कोः आंसू बहा ले जाते हैं हृदय के आस-पास जो दीवालें बनी हैं उनको। और तब तुम्हारे भीतर से एक सुवास उठनी शुरू होती है। फिर तुम जो बोलो वही प्रार्थना है। फिर तुम जो करो वही अर्चना है। फिर तुम जहां बैठो-उठो वही उपासना है।

बार-बार कुछ कह जाती हूं,
तुमसे मैं अनजाने में ही!

सजी आरती, सहमी प्रतिमा,
सहमी स्वयं पुजारिन भोली!
बीत चुकी अर्चन की बेला,
कैसे आज चढ़ाऊं रोली!
नयन खुले ना, अधर हिले ना, भोर हुआ अनजाने में ही!
बार-बार कुछ कह जाती हूं, तुमसे मैं अनजाने में ही!

अर्चन का जलता प्रदीप यह,
साध एक पाले था मन में!
जब-जब जन्म मिले दीपक बन,
ज्योति भरूं जग के कण-कण में!
अरमानों का भार उठाए, दीप बुझा अनजाने में ही!
बार-बार कुछ कह जाती हूं, तुमसे मैं अनजाने में ही!

दीपशिखा फिर ज्योतित देखी,
देखा नहीं जलाने वाला!
झंकृत देखी वीणा सब ने,
देखा नहीं बजाने वाला!
तार कसे जीवन-वीणा के, किस प्रिय ने अनजाने में ही!
बार-बार कुछ कह जाती हूं, तुमसे मैं अनजाने में ही!

सहसा फिर प्रतिमा मुसकाई,
मुसकाया मंदिर का कण-कण!
युग-युग के चिर-स्वप्न अधूरे,
मानो थे साकार उसी क्षण!

हार-हार कर जीत गई मैं, यह बाजी अनजाने में ही!

बार-बार कुछ कह जाती हूं, तुमसे मैं अनजाने में ही!

बस आंसू बहाने की कला आ जाये, फिर तुम जो कहो वही प्रार्थना है। राम पुकारो तो ठीक, अल्लाह पुकारो तो ठीक। न पुकारो तो चलेगा। मौन रहो तो ठीक। बोले तो ठीक, अबोले तो ठीक। मगर हृदय पिघलने लगे आंसुओं में।

ज्ञान न मांगो--भाव मांगो, भक्ति मांगो। फिर धीरे-धीरे तुम्हें वह सुनाई पड़ने लगता है जो साधारणतः नहीं सुनाई पड़ता, क्योंकि कान मस्तिष्क के शोरगुल से भरे हैं। इसलिए हृदय की धीमी-धीमी आवाज पहुंच नहीं पाती। पहले तो बीन की झंकार सुनाई पड़ती है और फिर धीरे-धीरे बीनकार भी दिखाई पड़ता है।

दीपशिखा फिर ज्योतित देखी,

देखा नहीं जलाने वाला!

झंकृत देखी वीणा सब ने,

देखा नहीं बजाने वाला!

तार कसे जीवन-वीणा के, किस प्रिय ने अनजाने में ही

बार-बार कुछ कह जाती हूं, तुमसे मैं अनजाने में ही!

प्रार्थना कोई कला नहीं है कि तुम कहीं सीख लोगे। प्रार्थना की कोई पाठशाला नहीं है। और पाठशालाओं ने ही प्रार्थना को विकृत किया है। तुम्हें प्रार्थना सिखा दी गई, यही तुम्हारी अपनी प्रार्थना के जन्मने में बाधा बन गई है।

प्रार्थना अनगढ़ होती है। प्रार्थना अपनी-अपनी होती है।

मूसा एक पहाड़ी से गुजर रहे हैं और उन्होंने एक आदमी को प्रार्थना करते देखा। एक चरवाहा, एक गड़रिया, अपनी भेड़ों को विश्राम देकर पास में ही बिठाये झाड़ के नीचे, हाथ जोड़े घुटने टेके परमात्मा से कह रहा हैः हे प्रभु! तू अकेला रहते-रहते परेशान हो जाता होगा, मुझे बुला ले। मैं तेरी देखभाल करूंगा। तू मान मेरी। ऐसी देखभाल करूंगा कि तू भी पछतायेगा कि पहले क्यों न बुलाया! तुझे नहला भी दूंगा। रोज नहला दूंगा। पता नहीं कोई नहलाता भी है कि नहीं। तू मेरी भेड़ों को देख कैसा नहलाता हूं, जग-मग हो रही हैं! ऐसे ही जगमगा दूंगा। थका-मांदा होगा, पैर दबा दूंगा। तेरे सिर में जूएं पड़ जायेंगे, जूएं निकाल दूंगा।

परमात्मा से कह रहा है यह आदमी! मो.ज.ज ने तो सुना और कहा, यह तो बहुत हो गया है और कहा कि चुप, नासमझ! ठीक यहां तक भी मैंने बरदाश्त कर लिया कि तू नहला देगा और जगमगा देगा और भेड़ों जैसा... अब तू जूएं भी बीन देगा? तू सोचता है परमात्मा को जूएं पड़े हुए हैं!

उस भोले आदमी ने मो.ज.ज की तरफ देखा, चरण छुए और कहाः मुझे माफ कर दें! मैं गड़रिया हूं। और कोई भाषा जानता नहीं, भेड़ों को जूएं पड़ जाते हैं सो जूएं बीनता हूं। तो मैंने सोचा कि पड़ जाते होंगे उसको भी, मुझको भी पड़ जाते हैं। तो मैं सीधा-साधा आदमी हूं। नाराज न हों, आप कुपित न हों। अगर मैं कुछ गलत कह रहा होऊं, मुझे समझा दें, मैं ठीक कर लूंगा। मो.ज.ज ने कहाः मैं तुझे ठीक प्रार्थना बताता हूं। यह है प्रार्थना। इस तरह प्रार्थना करनी चाहिए। ये-ये वचन बोलने चाहिए, इस भाव से बोलना चाहिए। इस ढंग से बैठना चाहिए।

उसने कहा कि ठीक, तो अब मैं ऐसा ही करूंगा। एक बार और दोहरा दें क्योंकि मैं बे-पढ़ा-लिखा हूं, भूल न जाऊं। फिर तीसरी बार भी उसने पूछा। मो.ज.ज बड़े प्रसन्न हुए कि एक भटके-भूले को रास्ते पर ले आये। जब

उसे छोड़कर वे जंगल में अकड़े मस्त अपनी मस्ती में जा रहे थे कि एक भूले-भटके को रास्ते पर लगा दिया... इसीलिए तो परमात्मा ने मुझे भेजा है कि भूले-भटकों को रास्ते पर लगाऊं... तभी जंगल में एक जोर से आवाज उठी, बिजली कौंधी। घबड़ाकर मूसा ने अपने घुटने टेक दिये। आवाज आई आकाश से कि मूसा, मैंने तुझे इसलिये भेजा था कि जो मुझसे दूर हैं, उन्हें तू पास लाना; लेकिन आज तूने मेरे एक प्यारे को मुझसे दूर कर दिया। अब उसकी प्रार्थना थोथी हो गई, उधार और बासी हो गई। जा क्षमा मांग। अपनी प्रार्थना वापिस ले। उसकी प्रार्थना मुझ तक पहुंच रही थी। उससे मुझे लगाव हो गया था। उसकी बातें मुझे बड़ी प्रीतिकर लगती थीं। उसकी बातों में बड़ी मिठास थी। तूने सब कड़वा कर दिया। तू जा, इसी क्षण जा! और आगे याद रखना।

और कथा कहती है कि मो.ज.ज गये और उससे क्षमा मांगी और कहाः मुझे माफ कर दो और मैंने जो सिखाया वह भूल जाओ।

तुम्हें भी प्रार्थना सिखा दी गई है। वही अड़चन है। मां-बाप ने सिखा दी, स्कूल में सिखा दी, पंडित-पुरोहितों ने सिखा दी, चर्च में, मंदिर में सिखा दी। सब सीखी हुई प्रार्थना है। उस सीखी हुई प्रार्थना के कारण तुम परमात्मा से दूर पड़ गये हो।

तुम पूछते होः मैं प्रार्थना कैसे करूं? प्रार्थना में "कैसे" मत जोड़ो। भाव से उठने दो। ... सहसा फिर प्रतिमा मुसकाई। ... भाव से उठे तो मंदिर की पत्थर की प्रतिमा भी मुसका दे।

सहसा फिर प्रतिमा मुसकाई,
मुसकाया मंदिर का कण-कण!
युग-युग के चिर-स्वप्न अधूरे!
मानो थे साकार उसी क्षण!
हार-हार कर जीत गई मैं, यह बाजी अनजाने में ही!
बार-बार कुछ कह जाती हूं, तुमसे मैं अनजाने में ही!

हारना सीखो, और बाजी जीत जाओगे। प्रेम है हारने का ढंग, शैली। हारो! परमात्मा के सामने तुम्हें कुछ औपचारिक शिष्टाचार नहीं निभाना है, कि घंटी बजाओ कि फूल चढ़ाओ, कि पानी छिड़को... । नहीं-नहीं, सूरज उगा हो, भाव-विभोर हो जाओ, दो बातें मन में आती हों कर लो। फूल खिला हो, नाच उठो।

कैसा आश्चर्य कि गुलाब खिलता है तुम्हारी बगिया में और तुम कभी नाचे नहीं! चमत्कार होते रोज देखते हो और नाचे नहीं। और कोई उल्टे-सीधे लोग फिजूल के चमत्कार दिखा देते हैं और चले तुम हजारों की भीड़ में। किसी ने हाथ से राख निकाल दी, जो कोई मदारी रास्ते पर कर दे, उसको तुम चमत्कार कहते हो। मदारी को दो पैसे न दोगे और कोई बाबा यही कर देगा तो बस तुम्हें सब मिल गया! तुम्हारी मूढ़ता का अंत नहीं है। और चमत्कार रोज हो रहे हैं। बीज टूटता है, जिसमें कुछ भी दिखाई न पड़ता था, जिसको तुम तोड़ते तो कुछ भी न पाते--उसमें से एक विराट वृक्ष पैदा हो जाता है और तुम झुकते नहीं? तुम विभोर नहीं होते? हरे वृक्ष में से एकदम लाल गुलाब का फूल निकल आता है हरियाली लाली बन जाती है, क्रांति घट जाती है! तुम अवाक नहीं होते, विस्मय-विमुग्ध नहीं होते, आश्चर्य-चकित नहीं होते? तुम्हारी आंख से आनंद के दो आंसू नहीं गिरते? रात आकाश ऐसे तारों से भर जाती है... ! नहीं तुम्हें दिखायी पड़ते वे हाथ जो उन तारों को सम्हाले हैं, मगर तारे तो दिखाई पड़ते हैं! नहीं दिखाई पड़ते वे हाथ जो वीणा पर संगीत उठा रहे हैं, लेकिन संगीत तो सुनाई पड़ता है! संगीत ही सुनते-सुनते उन हाथों की भी पहचान आ जाएगी।

इस जगत के सौंदर्य को पूजो; वही प्रार्थना है। इस जगत के रहस्य को अनुभव करो; उसी से तुम गदगद होओगे। वही प्रार्थना है। नहीं तुमसे कहता मंदिर जाओ, नहीं कहता मस्जिद जाओ। मंदिर और मस्जिद तो आदमी के बनाए हुए हैं, खेल-खिलौने हैं। तुमसे मैं कहता हूंः यह जो प्रकृति चारों तरफ फैली है, परमात्मा के हाथ की जिस पर छाप है, इसके करीब जाओ। किसी झरने के पास बैठो, वही मंदिर है! किसी नदी के पास बैठो, वही मस्जिद है! किसी वृक्ष को आलिंगन करो। जहां से भी तुम्हें जीवन की थोड़ी-सी ऊष्मा मिले, वहीं झुक जाओ। और फिर जो तुम्हारे मन में हो... नहीं कोई बंधे-बंधाए शब्द, नहीं कोई रटी-रटाई बातें... जो तुम्हारे मन में सहज भाव उठता हो, प्रगट करो! प्रार्थना के लिए थोड़ा पागलपन चाहिए। पहले तो संकोच होगा।

अब तुम देखते हो, अगर तुम मंदिर में जाओ, पत्थर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ और कहने लगो जय जगदीश हरे, जय जगदीश हरे, तो तुम अपने को पागल नहीं समझते, क्योंकि यह स्वीकृत पागलपन है। लेकिन अगर तुम किसी वृक्ष के पास जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ तो लोग कहेंगेः कुछ दिमाग खराब हो गया, यह क्या कर रहो हो!

और मैं तुमसे कहता हूंः यह पागलपन प्रार्थना है। और वह जो तुमने पहला पागलपन किया था, वह न तो पागलपन है, न प्रार्थना है, सिर्फ मूढ़ता है; क्योंकि सिखावट... औरों ने कहा था, इसलिए कर लेते थे। किसी भय के कारण कर रहे थे। बचपन में जबरदस्ती थोप दिया गया था तुम्हारे ऊपर, फिर आदत बन गई। अब नहीं करते हो तो ऐसा लगता है कुछ कमी रह गयी, तो कर लेते हो। वह मूढ़ता थी। लेकिन उगते सूरज के सामने झुक जाना, क्योंकि रोशनी है तो उसकी है, क्योंकि सारी रोशनी उसकी है... कि किसी सुंदर स्त्री या किसी सुंदर पुरुष को देखकर हर्ष से भर जाना, उल्लास से भर जाना, क्योंकि सौंदर्य है तो उसका है। किसी बच्चे को किलकारी मारते देखकर तुम्हारे भीतर भी गुनगुनाहट आ जाए, क्योंकि सारी किलकारियां उसकी हैं!

तुम पूछते हो कि प्रार्थना में डूबना चाहता हूं। डूबो न! चारों तरफ तो उसका सागर मौजूद है, कौन रोकता है? सीखना क्या है इसमें? डूबने के लिए सीखना कुछ भी नहीं होता। तैरना हो तो शायद सीखना भी पड़े, डूबने के लिए क्या सीखना है? उस पार जाना हो तो सीखना भी पड़े, मगर डूब ही जाना है तो क्या सीखना है? प्रार्थना किनारे मानती ही नहीं। प्रार्थना तटों की तलाश ही नहीं करती। प्रार्थना तो डूबती है। प्रार्थना तो मदमस्ती है।

पूछते होः जानता नहीं प्रार्थना क्या है।

कभी प्रेम किया है? किसी को भी प्रेम किया--पति को पत्नी को, बेटे को मां को, मित्र को? किसी को भी कभी प्रेम किया? उसी प्रेम की किरण को बड़ा करते चलो। वह प्रेम की किरण कहीं भी रुके न, फैलती चली जाये, अनंत तक फैलती चली जाये--बस प्रार्थना है। और ऐसा तो कोई भी मनुष्य नहीं जिसने किसी को भी प्रेम न किया हो।

लेकिन तुम्हारी अड़चन मैं जानता हूं। तुम्हारे पंडितों ने, तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं ने, उन सबने जिन्होंने तुम्हारे जीवन को विषाक्त किया है, उन्होंने तुम्हें प्रेम के विपरीत समझाया है। उन्होंने समझाया हैः प्रेम किया तो प्रार्थना में बाधा पड़ जायेगी। इसलिए तुम मुश्किल में पड़ गये हो। और प्रेम ही प्रार्थना है। प्रेम प्रार्थना का पाठ है।

मैं तुमसे कहता हूंः प्रेम की ही किरण को निखारो, उजालो। बस प्रेम का जो तुम्हें थोड़ा-सा अनुभव मिला हो उसी अनुभव को बड़ा करना है। और अगर वहां तुम्हारा कोई अनुभव नहीं तो फिर प्रार्थना में उतरने

का कोई उपाय नहीं। मगर ऐसा मैं मान ही नहीं सकता, क्योंकि परमात्मा जिनको भी पैदा करता है, पशु-पक्षियों को भी, प्रेम से भरा हुआ पैदा करता है। मनुष्य को तो उसने बहुत प्रेम से भरकर पैदा किया है।

लेकिन चारों तरफ दुष्टों की जमात है। उन्होंने तुम्हारे प्रेम की सीमाएं बड़ी संकुचित कर दी हैं और प्रेम निंदित कर दिया है। प्रेम पाप है, ऐसा तुम्हारे मन पर संस्कार डाल दिया है। इसी कारण मनुष्य परमात्मा से टूट गया है।

इस पृथ्वी पर जो इतना अधर्म है, वह तुम्हारे पंडित-पुरोहितों के कारण है। यह अधर्म जा सकता है, लेकिन इस पृथ्वी को फिर प्रेम का राज सिखाना होगा। प्रेम पहला सोपान है। फिर तुम्हारे पास कुछ भी न हो--कुछ ज्ञान न हो, कुछ समझ न हो प्रार्थना की--कोई चिंता न करो। तुम्हारे प्रेम से सृजनात्मकता पैदा होगी। प्रेम सृजनात्मकता है। तुम जो भी करोगे प्रेम के हाथ से... मिट्टी भी छुओगे तो सोना हो जायेगी।

आज पूजा के नहीं कुछ
उपकरण हैं पास,
सर्जना के क्षण
तुम्हारी अर्चना के फूल!

पीड़ितों के दर्द की अनुभूति
बनती अर्चना-जल-धार
बनती अर्चना का गीत
बन मेरे हृदय में शूल!

आराधना के क्षण वही
जब प्राण को निस्पंद
कर देती नशीली ज्योत्स्ना में स्नात
पागल रात!
शांत बेसुध जागरण के बाद
ऊषा की किरण के साथ
लेकर सर्जना का रूप
खिलता अर्चना जलजात!

प्रार्थना के क्षण वही
जब सोचता मानव-व्यथा की बात!
भावना के जलधि में तूफान,
जीवन की तरी यह खोजती है
सृजन के पावन क्षणों का कूल!
आज पूजा के नहीं कुछ
उपकरण हैं पास,

सर्जना के क्षण

तुम्हारी अर्चना के फूल!

फिर नहीं कोई उपकरण चाहिए, प्रेम पर्याप्त है, क्योंकि प्रेम से सृजन की धार पैदा होती है। तुम्हारे जीवन में निर्माण मूल्यवान हो जाता है, विध्वंस की जगह। राजनीति की जगह धर्म मूल्यवान हो जाता है। महत्वकांक्षा की जगह आनंद-भाव मूल्यवान हो जाता है। वासना की जगह परितोष तुम्हारे भीतर खिलने लगता है। बस उसी परितोष की सुवास प्रार्थना है। संतुष्ट हो तुम जैसे हो जहां हो; परितुष्ट हो तुम; जिनके बीच हो उनकी व्यथा को भी अनुभव करते हो, उनकी पीड़ा भी तुम्हें छूती है, उनको तुम प्रेम भी बांटते हो... तुमने प्रेम से एक सूखते वृक्ष के ऊपर पानी की जलधार छिड़क दी, प्रार्थना हो गई! तुमने प्रेम से किसी के सिर में दर्द था और उसके सिर पर हाथ रखकर उसे पुचकार दे दी, प्रार्थना हो गई! कोई पीड़ित था, तुमने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। तुमने किसी के आंसू पोंछ दिये, प्रार्थना हो गई! प्रार्थना कोई बंधी-बंधायी प्रक्रिया नहीं है; प्रार्थना तो जीवन को प्रेमपूर्ण ढंग से जीने का ही नाम है।

चौथा प्रश्नः विवाहित जीवन के संबंध में आपके क्या ख्याल हैं?

मैं विवाहित नहीं हूं, इससे ही मेरे क्या ख्याल हैं, तुम्हें समझ में आ जाना चाहिए। इससे बड़ा वक्तव्य और क्या होगा?

जार्ज बर्नार्ड शा को एक मित्र, उसकी कहानी पर आधारित एक नाटक खेला जा रहा था, उसे दिखाने ले गये। चाहता था बर्नार्ड शा अपना मन्तव्य प्रगट करें। बर्नार्ड शा सबसे बड़ा नाटककार था इस सदी का, उसके मन्तव्य का मूल्य था। मित्र ने पहला ही नाटक लिखा था और पहली ही बार उसका मंचन हो रहा था, खेला जा रहा था। बर्नार्ड शा ने तो दो-एक मिनट देखा और फिर सो गया और घर्राटे लेने लगा। मित्र बड़ा बेचैन हुआ। उसको जगाना भी ठीक नहीं। बड़ा आदर भी था बर्नार्ड शा के प्रति। मगर यह तो बात ठीक न हुई, इतने मुश्किल से तो आया, आया तो आकर सो गया। जब नाटक समाप्त हुआ, बर्नार्ड शा ने आंख खोली, मित्र ने पूछा कि आपका कोई मन्तव्य? बर्नार्ड शा ने कहाः तुम समझे नहीं? मैं सो गया, यह मेरा मन्तव्य है। मैंने घर्राटे लिये, यह मेरा मन्तव्य है। अब और मन्तव्य देना है क्या? देखने-योग्य नहीं था, सोने-योग्य था।

तुम मुझसे पूछते हो कि विवाहित जीवन के संबंध में आपके क्या ख्याल हैं? पहली तो बात, अविवाहित आदमी से ऐसा पूछना नहीं चाहिए। विवाहित आदमी से पूछना चाहिये। हालांकि विवाहित आदमी भी... अगर पत्नी मौजूद हो तो पति सच नहीं बोल सकता, अगर पति मौजूद हो तो पत्नी सच नहीं बोल सकती, या डर भी हो कि दूसरे को पता चल जाएगा तो भी सच नहीं बोला जा सकता।

टालस्टाय, चैखव, तुर्गनेव रूस के तीन बड़े विचारशील लेखक एक बगीचे में बैठकर गपशप कर रहे थे। बात विवाह की उठ गई। बात भी कहां है और इस दुनिया में! अब बोलो यहां तुम आध्यात्मिक सत्संग करने आये, बात विवाह की उठा ली! विवाह का भूत तुम्हारे पीछे पड़ा होगा। विवाह की बात उठ गई। चैखव ने कहा तुर्गनेव से कि तुम्हारा क्या विचार है? तुर्गनेव ने अपना विचार बताया। तुर्गनेव ने पूछा चैखव से, तुम्हारा क्या विचार है? चैखव ने अपना विचार बताया। फिर दोनों ने पूछा टालस्टाय से, आप चुप क्यों हो? आप क्यों नहीं बोलते? उन्होंने कहा, मैं तब बोलूंगा जब मेरा एक पैर कब्र में। जल्दी से बोलकर मैं कब्र में समा जाऊंगा, क्योंकि मुझे पता है कि तुम दोनों मेरी पत्नी से भी मिलते-जुलते हो। मेरा मन्तव्य जल्दी पहुंच जायेगा उस तक।

अभी मैं सत्य नहीं बोल सकता। सत्य तो मैं सिर्फ कब्र में जाते वक्त ही बोलूंगा, आखिरी वक्त कह दूंगा कि यह है सत्य।

एक ट्रेन में दो यात्री साथ बैठे हैं। एक ने पूछा दूसरे सेः विवाहित जीवन के बारे में तुम्हें मेरे विचार मालूम हैं? दूसरे यात्री ने कहाः क्या तुम विवाहित हो?

पहला यात्रीः हां।

तो दूसरे ने कहाः तो फिर मालूम हैं। अब और बताने को क्या है?

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही थीः क्या तुमने कभी सोचा मुल्ला कि यदि मेरी शादी किसी और से हो जाती तो कितना अच्छा होता? मुल्ला ने उत्तर दियाः नहीं, मैं किसी व्यक्ति का बुरा क्यों चाहने लगा!

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन मेरे पास बैठा था। अखबार सामने पड़ा था, शिमला की तस्वीर छपी थी--सुंदर झील, सुंदर पहाड़ियां! मुल्ला एकदम बोलाः अहा शिमला! प्यारा शिमला! जिंदगी के रंगीन और मधुर क्षण मुझे शिमला ने ही दिये हैं!

मैं थोड़ा चौंका, क्योंकि मुझे पता है मुल्ला नसरुद्दीन कभी शिमला गया नहीं। तो मैंने पूछाः मगर मुल्ला, तुम तो कभी शिमला गये ही नहीं! ... उसने कहा कि नहीं, मेरी पत्नी गई थी।

एक आदमी मुझसे आकर पूछा कि ओशो, आपके आश्रम का कोई युवक नियम भंग करके शादी कर ले तो आप उसे क्या सजा देते हैं? मैंने कहाः कुछ नहीं। उसने कहाः क्यों? मैंने कहाः वही उसकी सजा है। और बेचारे को सजा! इतना पर्याप्त है, अब भोगेगा।

अकेले लोग रह नहीं सकते, साथ चाहिए। साथ भी रह नहीं सकते, क्योंकि जब अकेले ही नहीं रह सकते तो साथ कैसे रह सकेंगे? जब अपने साथ न रह सके तो दूसरे के साथ कैसे रह सकेंगे? दो व्यक्ति जो दोनों ही अकेले रहने में असमर्थ हैं, जब मिल जायेंगे तो उनके दुखों में जोड़ ही नहीं होगा, गुणनफल हो जाता है। और यही हो रहा है। विवाह के नाम पर ऐसे व्यक्ति साथ हो लेते हैं, जिनको अभी अकेले में जीना भी नहीं आता। तो साथ जीना तो जरा और कुशलता की बात है, और कला की बात है।

मेरे हिसाब से इस पृथ्वी पर विवाह तभी सुंदर होगा जब विवाह के पहले ध्यान की प्रक्रियाओं से लोग गुजरेंगे, अन्यथा विवाह कभी भी सुंदर नहीं हो सकता, कुरूप ही रहेगा। इस देश के प्रज्ञावानों को यह बात समझ में आ गई होगी, इसलिए हमने जीवन के पहले पच्चीस वर्ष गुरुकुल में बिताने का आयोजन किया था। यह कुछ उल्टी सी बात लगती है कि जीवन के पच्चीस पहले वर्ष गुरुकुल में ध्यान करते, प्रार्थना करते, पूजा में लीन, सत्य की खोज करते, मौन रहते, एकांत का रस अनुभव करते... । पहले पच्चीस वर्ष, एकांत में कैसे जीया जाए, अकेले में कैसे आनंदित हुआ जाए, इसमें बिताने थे। यह बिल्कुल वैज्ञानिक सूत्र है।

फिर दूसरे पच्चीस वर्ष विवाह में, क्योंकि जो व्यक्ति अकेले में रहने की कला सीख गया है, अब दूसरा कदम उठा सकता है।

तुम ऐसा समझो न, मैं एक नदी के किनारे बैठा था, एक आदमी अचानक डूबने लगा और चिल्लाया--मरा-मरा! बचाओ! एक दूसरा आदमी भी मेरे पास ही बैठा था। वह एकदम भागा और उसे बचाने के लिए कूद पड़ा। तब मुझे भी भागना पड़ा। मुझे दो को बचाना पड़ा, क्योंकि वह जो आदमी कूद पड़ा था उसको भी तैरना नहीं आता था। मैंने उससे कहाः नासमझ तू क्यों कूदा? उसने कहाः मैं भूल ही गया। यह आदमी मर रहा है, यह सोचकर मुझे याद ही न रही कि मुझे तैरना नहीं आता।

मैंने कहाः तूने और मुसीबत की। एक की जगह दो को बचाना पड़ा। खतरनाक हालत खड़ी कर दी तूने।

मगर उसकी भी बात मेरी समझ में आती है। इतनी तेजी से उसने आवाज दी कि बचाओ, कि वह कूद पड़ा। होश कहां है, लोग होश में कहां जी रहे हैं! मगर दूसरे को बचाने के लिए पहले तुम्हें तैरना आना चाहिए।

पच्चीस वर्ष, इस देश के प्रज्ञावान पुरुषों ने कहा थाः प्रत्येक को गुरुकुल में बिताने चाहिए। वहां से लौटो तुम सीखकर एकांत का रस। अब तुम साथ रह सकते हो, क्योंकि अब दोनों के पास एकांत का रस है और दोनों रस बांट सकते हैं। अब आदान-प्रदान हो सकता है, अब संवाद हो सकता है।

इस देश ने विवाह को एक अनुपम सौंदर्य दिया था, जो दुनिया में कोई देश कभी नहीं दे पाया। इस देश की दुनिया को जो कुछ देन है, उनमें विवाह भी एक था। अब नहीं है, कभी था। अब तो टूट गई सारी व्यवस्था। अब तो इस देश का विवाह बहुत कुरूप है। लेकिन कभी हमने प्रयोग किये थे--हिम्मत के प्रयोग किये थे।

पहला पाठः अपने साथ होना सीखो। इतने मस्त तुम्हें अकेले में होना चाहिए कि दूसरा न हो तो तुम्हारी मस्ती में बाधा न पड़े। तुम्हारी मस्ती दूसरे पर निर्भर नहीं होनी चाहिए। जब दो ऐसे व्यक्ति मिलते हैं, जिनकी मस्ती एक-दूसरे पर निर्भर नहीं है तो तो दाम्पत्य घटता है। तब वे एक-दूसरे के गुलाम नहीं हैं, न एक-दूसरे के मालिक हैं।

खलिल जिब्रान ने कहा हैः प्रेमियों को ऐसे होना चाहिए जैसे मंदिर के दो स्तंभ पास-पास खड़े, फिर भी दूर-दूर, एक ही छप्पर को सम्हाले, फिर भी दूर-दूर। प्रेमियों का ऐसे होना चाहिए जैसे मंदिर के दो स्तंभ! खूब निकट, एक ही छप्पर को सम्हाले! एक ही प्रेम का छप्पर सम्हालना है, लेकिन दूर-दूर। बहुत पास आ जायें अगर मंदिर के स्तंभ, मंदिर गिर जायेगा। थोड़ा फासला चाहिये। और फासला तभी हो सकता है जब परनिर्भरता न हो। स्वतंत्र व्यक्ति ही फासला रख सकते हैं। परतंत्र व्यक्ति तो एकदम चिपकते हैं एक दूसरे से, एक-दूसरे को पकड़े रखते हैं, एक-दूसरे पर नजर रखते हैं कि कहीं दूसरा यहां-वहां निकल कर बच न जाये, कहीं भाग न जाये!

पत्नी जांच-पड़ताल करती रहती है कि पति कहीं किसी और स्त्री के रस में तो नहीं डूबा जा रहा है। और कपड़े गौर से देखती है कि कहीं किसी स्त्री का बाल तो कपड़ों पर नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन की एक स्त्री, उनकी स्त्री, एक सांझ एकदम कपड़े देखकर और रोने लगी, जोर-जोर से छाती पीटकर रोने लगी। मुल्ला ने कहाः आज क्या है? आज तो कोई बाल भी नहीं है।

उसकी पत्नी ने कहाः इसीलिये रो रही हूं, तो अब तुमने गंजी स्त्रियों के साथ भी जाना शुरू कर दिया? अब तो हद हो गई।

पति भी नजर रखे हैं कि कहीं पत्नी किसी और में रस तो नहीं ले रही! जहां एक-दूसरे के पीछे इस तरह की खुफियागिरी चल रही हो, वहां कैसे आनंद होगा? जहां एक दूसरे पर इतना भी भरोसा न हो, वहां कैसे प्रेम उमगेगा? प्रेम तो अत्यंत श्रद्धापूर्ण वातावरण में जन्मता है। श्रद्धा ही नहीं है, दूसरे का सम्मान भी नहीं है और दूसरे पर निर्भरता इतनी ज्यादा है कि पकड़े रखो, एक-दूसरे की जंजीर बन जाओ।

तुम ठीक ही कहते हो जब निमंत्रण पत्र इत्यादि अपने बेटे-बेटियों के छपवाते हो--कि मेरा बेटा प्रणय-बंधन में बंधने जा रहा है। तुम्हें कुछ अकल है? प्रणय तो मुक्ति होनी चाहिए, बंधन नहीं। ये कोई जंजीरें हैं कि विवाह के बंधन में बंधने जा रहा है? मगर ऐसे तुम सच ही कह रहे हो।

मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे की शादी होने वाली थी। मुल्ला ने उसे एकांत में बुलाया और कहा कि दो बातें सदा ख्याल रखना, जीवन के अनुभव से कह रहा हूं। अब तू विवाह कर रहा है, इसलिये सार-निचोड़ तुझे

समझा देता हूं। पहली बातः पत्नी को कोई भी वचन दे, सदा पूरा करना। फिर मुल्ला कुछ झिझका। बेटे ने पूछाः और दूसरी बात? मुल्ला ने कहा कि अब कहनी पड़ेगीः और भूलकर भी पत्नी को कोई वचन मत देना। दो बातें ख्याल रखना। नहीं तो तू मुश्किल में पड़ेगा।

कल मैं एक किताब पढ़ रहा था। अदभुत किताब है। किताब हैः असत्य बोलने की कला। उसमें सारे... किन-किन स्थितियों में आदमी को असत्य बोलना पड़ता है, उस सबके बहुत-से उद्धरण और बहुत-से सुझाव दिए हैं। उस किताब की लाखों प्रतियां अमरीका में बिकीं। इतनी प्रतियां बिकीं, इसलिये मैंने खबर भिजवाई कि कोई मुझे वह किताब भेजो। देखा उसमें, तो जरूर बिकीं होंगी। सभी पति-पत्नियों के काम की है, क्योंकि उसमें काफी स्पष्टता से उदाहरण पूर्वक हर स्थिति में बहुत-से झूठ बोलने सुझाये हैं--आत्मरक्षा के निमित्त।

पति-पत्नी ऐसे ही झूठ बोल रहे हैं एक-दूसरे से। जिनके बीच सत्य भी नहीं है, उनके बीच आनंद कैसे होगा? जिनके बीच एक-दूसरे के प्रति संदेह ही संदेह हैं, उनके बीच संबंध ही क्या होगा? संदेह तो तोड़ता है, जोड़ता नहीं।

विवाह एक अपूर्व कला है। तुम जन्म से ही विवाह के योग्य पैदा नहीं होते। ठीक था कि पच्चीस वर्ष तक तुम अकेला रहना सीखते और फिर तुम विवाह में उतरते। लेकिन वह प्रयोग भी असफल हुआ, उसका कारण था। उसका कारण था कि वह प्रयोग अधूरा था, पुरुषों के लिए तो किया गया, स्त्रियों के लिये नहीं किया गया। इसलिये वह प्रयोग मरा। पच्चीस वर्ष तक युवक तो गुरुकुल में रहते थे और एकांत का और ध्यान का रस लेकर आते थे, लेकिन युवतियों के लिये वह अवसर नहीं था। यह एकांगी प्रयोग था, इसलिये मर गया।

मैं उस प्रयोग को फिर दोहराना चाहता हूं। लेकिन अब मैं उसे दोनों तरफ से दोहराना चाहता हूं। युवक और युवती दोनों के लिये लागू होना चाहिए। दोनों ध्यान की कला सीखें। और विवाह में तो तभी सम्मिलित होना चाहिए जब तुम इस योग्य हो गये, इतने प्रौढ़ हो गये, कि दूसरे के साथ जी सकोगे, क्योंकि दूसरे के साथ जीने का अर्थ होता हैः दूसरा तुम जैसा नहीं है; तुमसे भिन्न है--अलग ढंग से पला है, अलग ढंग से बड़ा हुआ है, उसके अलग संस्कार हैं, अलग सोच-विचार हैं। दूसरे के साथ होने का मतलब है कि तुम्हें अब बहुत-सी चीजों में उदार होना पड़ेगा, सहिष्णु होना पड़ेगा। दूसरे के साथ होने का अर्थ है कि तुम्हें लेन-देन करना होगा। दूसरे के साथ होने का अर्थ है तुम्हें समन्वय करना होगा।

एक आदमी बांसुरी बजाता है--सोलो, अकेला, यह एक बात है। फिर वह तबले के साथ बांसुरी बजाये तो कला और भी सीखनी पड़ेगी, क्योंकि अब तबले की ताल के साथ बांसुरी जानी चाहिए, अब संगत सीखनी पड़ेगी। विवाह संगत है दो वाद्यों के बीच में। ध्यान सोलो है; अपने बैठे बांसुरी बजा रहे हैं। ठीक बजाओ कि गलत बजाओ, किसी को लेना-देना भी नहीं है। अगर तुम्हीं बजानेवाले हो और तुम्हीं सुननेवाले हो, तुम्हारी मौज। लेकिन जब तुम दूसरे के साथ बांसुरी बजाते हो और दूसरा भी ताल दे रहा है तबले पर तो फिर तबले के साथ चलना होगा, तो दोनों के बीच संगत बनानी होगी।

विवाह संगत है। बड़ी कुशलता चाहिये। इस जगत में बहुत थोड़े-से विवाह सफल होते हैं। थोड़े-से भी हो जाते हैं, यह चमत्कार है। होने नहीं चाहिए। दुर्घटना-वश हो जाते हैं, संयोगवशात। अधिक तो असफल हो जाते हैं। सौ मैं निन्यानबे विवाह तो असफलता की कथाएं हैं। लेकिन तुम्हारे साधु-संन्यासी चाहते भी नहीं थे कि तुम्हारा विवाह सफल हो जाये, क्योंकि उनका सारा त्याग का धंधा तुम्हारे विवाह की असफलता पर निर्भर है। इसको तुम समझने की कोशिश करना। गणित के पीछे गणित हैं।

समझ लो कि अगर तुम्हारा विवाह सफल हो जाये तो कौन संन्यास लेगा? पुराने ढब का संन्यास तो कम से कम नहीं लेगा। मेरा ही संन्यास ले सकता है फिर। अगर विवाह सफल हो जाये तो फिर कौन सुनेगा विरागियों की? और विरागी लाख कहें स्त्री नरक का द्वार है, तुम कहोगेः "चुप रहो, बकवास बंद करो! मुझे पता है।" लेकिन जब विरागी कहता है स्त्री नरक का द्वार है, तुम एकदम राजी हो जाते हो। तुम कह रहे हो कि महाराज, बिल्कुल ठीक कह रहे हो! मेरा भी अनुभव यही है। जब तुलसीदास जैसे लोग कहते हैं कि स्त्री की गिनती करो--शूद्र, गंवार, पशु, नारी--तो तुम तैयार हो जाते हो। ... ये सब ताड़न के अधिकारी! तुम्हारा दिल कहता हैः अहा! इन्हीं महात्मा की तो तलाश थी! मारना तो तुम भी अपनी पत्नी को चाहते हो। मारते न होओ भला, मगर दिल में उमंगें तो बड़ी-बड़ी उठती हैं।

ऐसा पुरुष खोजना कठिन है जो पत्नी की हत्या की बात कभी न कभी नहीं विचारता हो। ऐसी पत्नी खोजनी मुश्किल है जो कभी न कभी सोचती हो कि छुटकारा हो जाये इस आदमी से तो अच्छा, कि हे परमात्मा! इसको उठा ही क्यों नहीं लेता?

तुम्हारा विवाह अगर सफल हो जाये तो तुम्हारे चर्च, मंदिर, तुम्हारी मस्जिदें एकदम असफल हो जायेंगी। इसलिये पंडित-पुरोहित ने तुम्हारे विवाह को सफल नहीं होने दिया है। उसने पूरी चेष्टा की है कि तुम्हारी जिंदगी दुख से भरी रहे। तुम्हारी जिंदगी दुख से भरी रहे, तो ही तुम उसके पास आते हो। समझना, कुछ धंधे ऐसे हैं जो विरोधाभासी हैं। जैसे चिकित्सक का धंधा। चिकित्सक के धंधे में यह खतरा है कि वह बीमार की चिकित्सा करता है, उसका धंधा तो यही है कि बीमार का इलाज करे, उसे ठीक करे; लेकिन अंतरतम भावना यही होती है कि लोग बीमार पड़ते रहें, नहीं तो उसका क्या होगा? ऊपर से इलाज भी करता है, भीतर कहीं बहुत गहरे में चाहता है कि लोग बीमार भी होते रहें। यह तो बड़ी विरोधाभासी बात हो गई।

एक शराब-घर में एक रात एक आदमी आया अपने मित्रों के साथ, खूब शराब पिलवाई उसने, खूब मजा-मौज किया। बारह बज गये, शराब की दुकान वाला मालिक तो गदगद हो गया। खूब रुपये लुटाये उसने! अपनी पत्नी से वह बोला कि ऐसे ग्राहक अगर रोज आते रहें तो कुछ ही दिनों में चांदी ही चांदी हो जाये। जाते वक्त उसने इस अदभुत ग्राहक को कहा कि भाई, कभी-कभी आ जाया करो। तुम जैसे ग्राहक सदा आते रहें तो हमारा सौभाग्य!

उस आदमी ने कहाः हमारा धंधा चलता रहे, प्रार्थना करो कि हमारा धंधा चलता रहे तो हम भी बराबर रोज आयें। वह तो अभी धंधा हमारा तेजी से चल रहा है। अभी तो हम आयेंगे आठ-पंद्रह दिन में। यह तो मौसम है हमारा।

उस आदमी ने पूछाः लेकिन मैं यह भी पूछूं कि तुम्हारा धंधा क्या है? उसने कहाः मेरा धंधा है मरघट पर लकड़ी बेचना। जब लोग ज्यादा मरते हैं, तब हमारा धंधा चलता है। इस वक्त लोग मर रहे हैं। साल के इस हिस्से में हमारा सीजन होता है। इस वक्त तरह-तरह की बीमारियां होती हैं और लोग मरते हैं। प्रार्थना करो परमात्मा से, हमारा धंधा चलता रहे, लकड़ियां बिकती रहें, हम तो रोज आते रहें।

बड़े अजीब-अजीब धंधे हैं। किसी का धंधा है कि वह मरघट पर लकड़ियां बेचता है। वह परमात्मा से प्रार्थना करता ही है कि मेरा धंधा चलता रहे; लोग मरें, इसकी प्रार्थना। चिकित्सक की प्रार्थना है कि लोग बीमार होते रहें। पंडित-पुरोहितों की, विरागियों की प्रार्थना है कि संसार में सुख न हो जाये।

इसलिए अगर वे मेरे विपरीत हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि मेरी चेष्टा बड़ी उल्टी है। मैं कह रहा हूंः तुम्हारे जीवन में सुख हो सकता है। यह पृथ्वी स्वर्ग हो सकती है, होनी ही चाहिये! अगर नहीं हो पा रही है तो

कहीं हमारा कसूर है। परमात्मा ने इसे स्वर्ग के योग्य ही बनाया, इसमें कुछ कमी नहीं छोड़ी। सब है, सिर्फ आदमी नासमझी कर रहा है। यह पृथ्वी स्वर्ग हो सकती है। लेकिन तब एक दूसरे ढंग का संन्यास होगा--मेरे ढंग का संन्यास होगा।

एक तो परमात्मा की तलाश है जो दुख से शुरू होती है, कि जीवन में इतना दुख पाया कि अब परमात्मा को खोजने चले। एक परमात्मा की तलाश है जो सुख से पैदा होती है, जीवन में इतना सुख पाया कि अब सुख का परम स्रोत खोजने चले। ये बड़ी भिन्न तलाशें हैं। इसलिये मेरा संन्यासी और पुराने ढंग का संन्यासी बिल्कुल विपरीत लोग हैं। मैं विरागियों से बिल्कुल विपरीत हूं। इसलिये वे सारे एकजुट होकर मेरा विरोध कर रहे हैं। मैं समझता हूं, यह स्वाभाविक है। उनके न्यस्त स्वार्थ पर मैं हमला कर रहा हूं।

मैं यह कर रहा हूं कि विवाह सुंदर हो सकता है; असुंदर है तो हमारी भूल के कारण है। मैं कहता हूंः बांसुरी और तबले के बीच संगत बैठ सकती है; नहीं बैठ रही तो हमने संगीत ठीक से नहीं सीखा है, इसलिये। संगीत सीखा जा सकता है।

मैं कहता हूं इसी जीवन में, शरीर के जीवन में, बड़ी-बड़ी रहस्य की संभावनाएं छिपी पड़ी हैं। परमात्मा शरीर में उपलब्ध हो सकता है और परमात्मा बाजार में उपलब्ध हो सकता है, घर-गृहस्थी में उपलब्ध हो सकता है। परमात्मा का और संसार का कोई विरोध नहीं है। तुम जहां हो वहां उपलब्ध हो सकता है।

चूंकि मेरी ऐसी उदघोषणा है, इसलिये मेरी प्रक्रिया भी पूरी अन्य होने वाली है। मैं चाहता हूं कि तुम रागी बनो, तुम प्रेमी बनो। ऐसा प्रेम का तुम्हें रस लगे कि एक दिन तुम कहो कि अब तो बस परमात्मा का प्रेम मिले तो ही तृप्ति होगी। मैं तुम्हें संगीत की थोड़ी समझ देना चाहता हूं, ताकि तुम और-और संगीत की तरफ बढ़ने लगो, ताकि एक दिन अनाहत नाद को सुनने की आकांक्षा जगे।

पुराना संन्यास विषादपूर्ण था, वैराग्यपूर्ण था। मेरी अवधारणा संन्यास की, विषाद की नहीं, आह्लाद की है; दुख की नहीं, आनंद की है। और अगर परमात्मा सच्चिदानंद है तो हमें भी सच्चिदानंद होकर जीना चाहिये, तो ही हमारा उससे तालमेल हो सकेगा। दाम्पत्य सुंदर हो सकता है, और प्रेम धीरे-धीरे प्रार्थना के लिये रास्ता बन सकता है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! दो माह पहले मेरे भाई, मासी के पुत्र की छब्बीस वर्ष की आयु में मृत्यु हो गयी। वे हमारे साथ पांच वर्ष रहे थे और वे भाई और पुत्र से भी ज्यादा आत्मीय थे। हमने उनकी मृतात्मा के आगे की यात्रा के लिए सुंदर विदाई दी। हम जानते थे कैसे। हमने भजन और धुन गाये। मृत्यु-शोक नहीं--उत्सव। एक भजन थाः मुखड़ा नी माया लागी रे... मोहन प्यारा, मुखडूं में जोयूं तारूं, मन मारूं धयूं न्यारूं रे... मोहन प्यारा! इस गीत में कृष्ण को संबोधित मधुरता थी, और साथ ही स्वर्गवासी राज की याद थी।

आज पहली बार आपका साक्षात प्रवचन सुनने के साथ ही उपरोक्त भजन सहज ही मुझसे गूंज उठा और दिन भर साथ रहा। शायद यह झलक थी--उस भजन के अंतरंग अर्थ की, जो हमने गाया था--मुखड़ा नी माया लागी रे... !

रोहित! मृत्यु इस जगत का सबसे बड़ा झूठ है। मृत्यु होती ही नहीं। जीवन है और जीवन है। जीवन के पार जीवन है। पर्त-पर्त जीवन है। जीवन की अनंत शृंखला है। मृत्यु तो केवल परिधान का बदल लेना है; जीर्ण वस्त्रों को छोड़ देना, बस इतना ही।

जैसे पतझर आता है और पुराने पत्ते गिर जाते हैं और वृक्ष नग्न खड़ा रह जाता है; मगर नग्न वृक्ष में जिसके सारे पत्ते झड़ गये हैं, उदासी नहीं है, दुख नहीं है, पीड़ा नहीं है। और आकाश की पृष्ठभूमि में तभी तो पत्तों से शून्य वृक्ष का भी एक अपूर्व सौंदर्य होता है। पत्तों से शून्य नग्न वृक्ष का भी एक अपना अनूठा ढंग, शैली और व्यक्तित्व होता है। उसकी अपनी शांति होती है, अपना शून्य होता है। फिर आयेगा मधुमास, फिर बसंत आयेगा, फिर अंकुर निकलेंगे, फिर नये पत्ते, फिर नये फूल। वृक्ष को भरोसा है, इसलिये उदास नहीं है; विश्राम कर रहा है मधुमास की प्रतीक्षा करेगा।

हमारा भरोसा बहुत कम है, इसलिये हम दुखी हो जाते हैं। हमारी श्रद्धा बहुत दीन-दुर्बल है, इसलिये हम दुखी हो जाते हैं।

रोहित! तुमने ठीक ही किया। यही मेरी शिक्षा है। मृत्यु को भी उत्सव बनाओ, क्योंकि चला कोई नये जीवन के मार्ग पर। जितने दिन हमारे साथ था, उस सबके लिये धन्यवाद तो दो, जाते यात्री को धन्यवाद तो दो। इतनी लंबी यात्रा पर जा रहा है, फिर मिलना होगा या न होगा, इसे उदास क्षण तो न बनाओ। रो-धोकर इसके सौंदर्य को खंडित तो न करो! विदा प्रीतिपूर्ण हो, उत्सवपूर्ण हो, शुभाशीषों से भरी हो, अनंत यात्रा की कामना से भरी हो।

और ध्यान रखना, इसके बड़े गहरे अर्थ हैं। अगर तुम उत्सवपूर्वक विदा दे सको तो तुमने उस चेतना को जो इस देह से मुक्त हो गई है, आगे जाने के लिये संबल दिया, सहारा दिया, पाथेय दिया। और तुमने उसे इस जगत से, इस जीवन से, इस जीवन के संबंधों से मुक्त होने की सामर्थ्य भी दी; नहीं तो मन पीछे लौट-लौटकर देखेगा। तुम रोओगे, तुम पीड़ित और परेशान होओगे, तो वह आत्मा लौट-लौट तुम्हारे आस-पास चक्कर काटेगी। तुम उसे भटकाओगे। तुम उसे उलझा दोगे।

नहीं, अब सारे सेतु टूट जाने दो। जाने दो उसे नये मार्ग पर। उसकी घड़ी आ गई। उसकी यात्रा का क्षण आ गया। उसकी नाव किनारे लग गई। और तुम अगर अपने मित्र को, अपने भाई को, अपने पति को, अपनी पत्नी को, अपने बेटे को आनंदपूर्ण ढंग से विदा दे सको तो तुम्हारे जीवन में भी क्रांति होगी, क्योंकि तुम भी अब मृत्यु से डरोगे नहीं। अब तुम्हारी अपनी मृत्यु भी एक दुर्घटना नहीं मालूम होगी। तुम्हारी जीवन की समझ इससे गहरायेगी, परिपक्व होगी।

तुमने अच्छा किया। मृत्यु तो उत्सवपूर्वक ही मनानी चाहिये। आंसू भी गिरें तो भी कृतज्ञता के हों, धन्यवाद के हों।

और पैमाने सभी बेकार हैं,
अन्य नापों का तो जड़ आधार है;
एक अपने ही हृदय के नाप से,
नाप सकते हम निखिल संसार ये!

कह रहा यह सांध्य-रवि ढलता हुआ,
यों सदा चढ़ कर उतरना है अटल;
फूल चढ़ तरु के शिखर पर हंस दिया,
अंत में तो धूल का आंचल मृदुल!

चिर दुखों की ठोकरों से चूर होकर,
भूल कर इस जिंदगी का दांव हारा;
विश्व के आलोक के हित चमकने का,
कह रहा आकाश से टूटा सितारा!

हृदय की गहराइयों को नापने,
यंत्र यह विज्ञान दे पाया नहीं;
एक करुणा-यंत्र से तुम नाप लो,
स्नेह है या स्वार्थ की छाया कहीं?

गीत क्या गाऊं भला मुख खोल मैं,
जब कि मेरे गीत ही तव राग है;
आंसुओं से क्या बुझाऊं उर-जलन,
जब कि अन्तर में तुम्हारी आग है!

विदा दो आनंद से, क्योंकि जो फूल अभी गिरा है धूल में, फिर कभी फूल होकर उगेगा। जो तारा अभी गिर गया है, फिर तारा बनेगा। अनंत है यात्रा; न इसका कोई आदि है न कोई अंत। क्षण-भर को हम मिल लेते हैं, साथ हो लेते हैं, उन क्षणों को प्रीतिकर बनाओ, मधुमय बनाओ। लेकिन उन क्षणों पर निर्भर न हो जाओ, उन क्षणों से बंध मत जाओ।

हम सब यात्री हैं और हमारा संबंध नदी-नाव संयोग है। विदा तो होना होगा देर-अबेर। मिलन के क्षण में भी विदा न भूले तो ही यह संभव हो पायेगा कि विदा के क्षण में तुम मिलन के लिये धन्यवाद दे सकोगे।

इस गणित को ठीक से हृदय में बैठ जाने दोः मिलन के क्षण में विदा न भूले। जब तुम किसी को आलिंगन करो तो जानना ही कि अलग होना होगा। जब तुम किसी का हाथ प्यार से हाथ में लो तो जानना ही कि हाथ छोड़ देना होगा। जब फूल खिले तो स्मरण रखना, सांझ गिरेगा। यह स्वाभाविक है।

कह रहा यह सांध्य-रवि ढलता हुआ,
यों सदा चढ़कर उतरना है अटल;
फूल चढ़ तरु के शिखर पर हंस दिया,
अंत में तो धूल का आंचल मृदुल!

लेकिन धूल का आंचल भी बहुत मृदुल है, बहुत प्यारा है, विश्राम है। मृत्यु विश्राम है--जीवन की थकान से, जीवन के सफलताओं-असफलताओं के घाव से। मृत्यु एक महानिद्रा है; फिर सुबह होगी, फिर नया जीवन उठेगा।

लेकिन हम क्यों इतने दुखी होते हैं? हम इसलिये इतने दुखी हो जाते हैं कि जो हमें जीवन में देना चाहिये था, नहीं दिया, उसका अपराध-भाव हमें पकड़ता है। तुम यह जानकर चौंकोगे। जब कोई मरता है तो तुम उसकी मृत्यु के कारण दुखी नहीं होते। तुम दुखी होते हो इसलिये कि अब क्या होगा, व्यक्ति जा चुका और मैंने इसे नहीं दिया जो मुझे देना था; जो प्रेम मुझे करना था मैंने नहीं किया; कल पर टालता रहा; कहा कि आज तो धन इकट्ठा कर लूं, कल तुम्हें प्रेम कर लूंगा, जल्दी क्या है; छोटी-छोटी चीजों पर लड़ता-झगड़ता रहा; क्षुद्र-क्षुद्र

बातों पर एक-दूसरे को घाव पहुंचाये जाते रहे--और आज व्यक्ति विदा हो गया! अब क्षमा मांगने का भी उपाय नहीं। अपराध-भाव पकड़ता है, इससे दुख होता है।

फिर इससे भी दुख होता है, कि हम एक-दूसरे से बंध जाते हैं। हम इतने बंध जाते हैं कि जब दूसरा विदा होता है तो हमें यह भरोसा ही नहीं आता कि अब हम अकेले कैसे जी सकेंगे! जब दूसरा मरता है तो हमारे भीतर कुछ मर जाता है। यह भी गलत जीवन की शैली है। किसी पर इतना निर्भर नहीं होना है। अगर सुबह के सूरज पर बहुत निर्भर हो गये तो सांझ पछताओगे, क्योंकि सांझ सूरज तो डूबेगा। तुम्हारी निर्भरता के कारण इस जगत के नियम रूपांतरित नहीं होंगे। तुम्हीं दुखी होओगे।

जो इस सत्य को जानता है कि अलग होना होगा, क्योंकि मिलना हुआ तो अलग होना भी होगा, सब संयोग बिखर जाते हैं--वह निर्भर नहीं होता। वह अपना मालिक रहता है। वह दूसरे को भी अपने पर निर्भर नहीं करता। सच्चा प्रेमी वही है, जो दूसरे को भी अपने पर निर्भर नहीं करता। सच्चा प्रेेमी वही है जो दूसरे को भी अपने पैरों पर खड़ा होने देता है; क्योंकि कब मैं विदा हो जाऊंगा, पता नहीं, तो मेरी पत्नी कहीं दुखी न हो पीछे, रोये न! सच्चा प्रेमी वही है, जो पत्नी को इस योग्य बना जाता है कि जब मैं जाऊंगा तो वह अपने पैर पर खड़ी हो सकेगी। और सच्चा प्रेमी वही है जो जानता है कि मैंने अपनी पत्नी को इतना प्रेम दिया है कि कल अगर मैं जाऊंगा तो मेरे प्रेम के कारण वह फिर प्रेम कर सकेगी।

इससे तुम और चौंकोगे।

सच्ची प्रेमिका वही है जो जानती है कि मैंने इतना प्रेम दिया है अपने पति को कि अगर कल मैं विदा हो गई तो मेरा पति फिर प्रेम कर सकेगा। मैंने इतना प्रेम दिया है कि प्रेम में रस जगा दिया है, मैंने प्रेम के योग्य बना दिया है।

लेकिन हम तो उल्टा काम करते हैं। हम तो मरते वक्त भी कसम लिवाना चाहते हैं पत्नी से कि तू सदा मेरी ही याद में रोती रहना; कभी किसी को प्रेम मत करना; कभी भूलकर किसी को प्रेम मत करना।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी तो उसी मरती स्त्री ने कहा कि मुझे मालूम है मुल्ला, कि मेरे मरते ही तुम फिर से विवाह रचोगे। तुम लाख कहो, मुझे मालूम है।

मुल्ला ने कहा : कभी नहीं! कसम खाता हूं तेरी, कभी नहीं! ऐसे कैसे हो सकता है? मैं और विवाह करूं, नहीं-नहीं! अगले जन्म की प्रतीक्षा करूंगा, फिर तुझी से विवाह करूंगा। जनम-जनम का साथ!

पत्नी बड़ी प्रसन्न थी। आश्वस्त तो नहीं थी, क्योंकि जिंदगी-भर का मुल्ला का अनुभव भी था कि जो जिंदगी में भी दगा देता रहा, वह मौत में साथ देगा इसका भरोसा क्या है! फिर भी उसने कहा : ठीक है, तुम कहते हो तो मान लेती हूं, मगर एक बात ख्याल रखना--अगर कभी शादी करो ही तो देखो मेरे कपड़े उस स्त्री को मत पहनने देना, इससे मेरी आत्मा को बड़ा दुख होगा।

उसने कहा : तू बिल्कुल फिकिर मत कर। रजिया को तेरे कपड़े बनेंगे भी नहीं।

वे तैयारी किये ही बैठे हैं, मरने की ही राह देख रहे हैं।

इस देश में यह घटना घटी, हमने स्त्रियों को जबरदस्ती सती होने के लिये मजबूर किया। पुरुषों का अहंकार देखते हो, कि मैं मर जाऊं तो मेरे साथ चिता पर चढ़ जाना! भय, संदेह... ये कोई प्रेम के लक्षण हैं? हां, कोई स्त्री अपने से चढ़ जाये, और बात; लेकिन यह समझाया जाये बुझाया जाये, इसके पाठ पढ़ाये जायें और अगर कोई स्त्री न चढ़ना चाहे तो जबरदस्ती चढ़ाई जाये... । जबरदस्ती स्त्रियां चढ़ाई गईं। धक्के दे-देकर उनको चिताओं पर ले जाया गया। इतना घी डालते थे चिताओं में कि धुआं इतना पैदा हो जाये कि वह स्त्री भाग न

सके। चारों तरफ मशाल लेकर लोग खड़े रहते थे। क्योंकि जिंदा आदमी अगर आग में गिरेगा कभी, दीये को हाथ से छूकर देखा तो समझ आयेगा, तो पूरी जलती हुई आग में जिंदा आदमी... स्त्री भागेगी, होश छोड़कर भागेगी। कोई भागने के लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी। तुम आग को छुओगे तो हाथ अपने से हट जाता है। ऐसे ही शरीर छलांग लगाकर बाहर हो जाना चाहेगा। यह तुम्हारी कोई वश की बात नहीं होगी। तो मशालों से उसको वापिस गिरा देना है। और इतना धुआं पैदा करना है और इतने बैंड-बाजे बजाते थे कि उसका शोरगुल, उसका चीत्कार... चीत्कार तो उठेगा, जिंदा आदमी जलेगा तो... सुनाई न पड़े। यह तो हत्या थी। फिर इस सती के नाम पर चबूतरा बना देंगे--सती का चौरा! फिर उस पर फूल चढ़ायेंगे। जिंदा को मारेंगे, मुर्दा पर फूल चढ़ायेंगे।

यह पुरुष का अहंकार था। और अगर यह सच है कि अहंकार था तो हमने जो सतियों के नाम पर बड़ी कहानियां गढ़ रखी हैं, उनको विदा करो। और मैं कहता हूं : यह अहंकार था, क्योंकि अगर यह अहंकार नहीं था, प्रेम था तो कोई पुरुष क्यों नहीं स्त्री की चिता पर चढ़ा? क्योंकि प्रेम क्या इकतरफा होता है? स्त्रियां मरती रहीं और पुरुष फिर-फिर विवाह करते रहे। सच तो यह है स्त्री मरती थी, मरघट पर ही उसको विदा करते वक्त ही विचार होने लगता! अब इसकी शादी कहां कर देनी है! मैं भी कुछ मरघटों पर गया हूं तो मैं चकित हुआ हूं कि विचार शुरू हो जाता है कि इसकी शादी कहां कर देनी है!

पुरुष ने तो प्रेम का एक भी लक्षण न दिया, एक भी सता न हुआ। सतियां ही सतियां... एकाध सता का चौरा देखा कहीं। यह तो चालबाजी हो गई। यह स्त्रियों के साथ बेईमानी हो गई। यह तो धोखा हो गया। मगर भय था पुरुष को कि मेरे हट जाने के बाद स्त्री किसी के प्रेम में न पड़ जाये। यह संदेह का रिश्ता था, प्रे◌ेम का रिश्ता नहीं। प्रेम का रिश्ता तो कुछ और होगा।

मेरी दृष्टि में, अगर पुरुष मर रहा है तो वह अपनी पत्नी को कहेगा कि जरूर तू किसी को प्रेम करना, क्योंकि प्रेम देवता है। तू फिर प्रेम करना। तू मेरी याद में प्रेम करना। तूने मुझे चाहा था तो किसी और को चाहना। क्योंकि जैसे परमात्मा मुझमें प्रगट हुआ है, ऐसे ही किसी और में भी प्रगट हुआ है। तू खुश होगी किसी को चाहकर, तू फिर नाचेगी किसी को चाहकर, तो मुझे आनंद होगा, मेरी आत्मा को आनंद होगा।

मेरे देखने के ढंग भिन्न हैं। प्रेम मेरे लिये परम मूल्य है। इसलिये विदा दो किसी को--आनंद से दो! और फिर बैठकर रोने की कोई जरूरत नहीं है। फिर जिंदगी भर रोने की कोई जरूरत नहीं है। अगर तुमने सच में प्रेम किया है उसे, तो फिर किसी को प्रेम करना। रोहित, तुमने अगर प्रेम किया है अपने भाई को, मौसी के पुत्र को, राज को, तो फिर किसी और को राज बनाना। फिर किसी को और भाई बनाना। प्रेम का स्रोत सूख न जाये।

और राज अपनी पत्नी पीछे छोड़ गया है, शैल्या, वह भी आज यहां उपस्थित है। मेरा उसको यह संदेश है : अगर तूने राज को प्रेम किया हो तो फिर किसी को प्रेम करना, फिर किसी राज को खोजना। वही सबूत होगा प्रेम का। वही प्रमाण होगा प्रेम का। और भूलकर भी यह मत सोचना कि किसी और को प्रेम किया तो यह राज के साथ धोखा हुआ, गद्दारी हुई। नहीं; यही प्रमाण हुआ कि तूने राज को चाहा था। उसकी चाह में किसी और को भी चाहना। चाह को इतना बड़ा करो, प्रेम को इतना बड़ा करो, संकीर्ण न करो। अगर तूने फिर किसी को प्रेम नहीं किया और राज की याद में बैठी रोती रही, तो वह सिर्फ इस बात का सबूत होगा कि राज के प्रेम ने तुझे इतना आनंद नहीं दिया था कि तू फिर प्रेम के झंझट में पड़े। वह इसी बात का सबूत होगा कि अच्छा हुआ यह झंझट मिट गई। राज भी गये, यह विवाह की झंझट मिट गई। अब तो किसी झंझट में पड़ना नहीं है। यह तो राज का अपमान होगा।

मेरी तर्क-सरणी को समझना। मेरी तर्क-सरणी को समझना थोड़ा कठिन पड़ता है, क्योंकि बंधी-बंधाई मान्यताओं के मैं बिल्कुल विपरीत हूं। मेरे हिसाब में तू तो जब फिर प्रेम करेगी, फिर फूलों से लदेगी, फिर पैरों में घूंघर बांधकर नाचेगी, तो सबूत होगा कि तूने किसी को चाहा था, खूब चाहा था! और उसने भी तुझे चाहा था और उसने तुझे प्रेम का ऐसा पाठ दिया था कि आज व्यक्ति विदा हो गया तो कोई हर्ज नहीं। अगर एक मंदिर गिर जाये तो दूसरे मंदिर में आराधना चलेगी। अगर एक पूजा का थाल न मिले तो दूसरे पूजा के थाल से आराधना चलेगी। लेकिन आराधना चलेगी।

प्रेम प्रार्थना है।

आज इतना ही।

बीसवां प्रवचन

हे कमल, पंक से उठो, उठो

पहला प्रश्न : ओशो, आपकी हत्या की धमकियां दी जा रही हैं। यह मुझ से न सुना जाता है, और न सहा जाता है।

आनंद भारती, मृत्यु होती कहां है? धमकियां व्यर्थ हैं। न कोई कभी मरा है, न कोई कभी मर सकता है। जो सोचते हैं कि मार सकेंगे, भ्रांति में हैं; जो सोचते हैं कि मर जायेंगे, वे भी भ्रांति में हैं। मृत्यु इस जगत में सबसे बड़ा झूठ है। न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

शरीर के विदा हो जाने से मृत्यु घटित नहीं होती। न तो जीसस मरे सूली पर, न सुकरात मरा जहर देने से। साधारणतः भी जो मरते हैं वे भी मरते नहीं। इसलिये न तो चिंता की कोई बात है, न पीड़ा की कोई बात है।

धमकियां स्वाभाविक हैं, धमकियां दी ही जानी चाहिये। मेरे जैसे व्यक्ति को हत्या की धमकियां न दी जायें, वही आश्चर्यजनक होगा। यह तो बिल्कुल तर्कसंगत है, इसकी जरा भी चिंता न लेना; चिंता लेना अज्ञान होगा।

कौन कहता है कि मौत आयी तो मर जाऊंगा
मैं तो दरिया हूं, समंदर में उतर जाऊंगा

तेरा दर छोड़ के, मैं और किधर जाऊंगा
घर में घिर जाऊंगा, सहरा में बिखर जाऊंगा

तेरे पहलू से जो उठूंगा तो मुश्किल यह है
कि सिर्फ इक शख़्स को पाऊंगा जिधर जाऊंगा

अब तेरे शहर में आऊंगा मुसाफिर की तरह
साय-ए अब्र की मानिंद गुजर जाऊंगा

चारासाजी से अलग है मिरा मियार कि मैं
जख्म खाऊंगा तो कुछ और संवर जाऊंगा

तेरा पैमाने वफा, राह की दीवार बना
वरना सोचा था कि जब चाहूंगा मर जाऊंगा

अब तो खुर्शीद को डूबे हुए सदियां गुजरीं

अब उसे ढूंढने मैं ताबे सहर जाऊंगा

जिंदगी शम्अ की मानिंद जलाता हूं "नदीम"
बुझ तो जाऊंगा मगर सुबह तो कर जाऊंगा
दीया बुझता है, लेकिन सुबह कर जाता है। और...
चारासा.जी से अलग है मिरा मियार कि मैं
जख्म खाऊंगा तो कुछ और संवर जाऊंगा

मैं जो कह रहा हूं वह और संवर जायेगा। मैं जो कह रहा हूं वह पत्थर की लकीर हो जायेगा। मुझे मारने वाले मुझे सदा के लिये मनुष्य-जाति के चित्त पर अमर कर जायेंगे। उनकी चिंता न लो, वे भी मेरे ही काम में लगे हैं। मित्र ही काम में नहीं शत्रु भी काम में लगे हैं। काम बड़ा है, इसमें दोनों की जरूरत है। काम इतना विराट है कि यह मित्रों के ही भरोसे न हो सकेगा, इसमें शत्रुओं का भी सहयोग चाहिये, चाहिये ही चाहिये।

पर मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। लेकिन तुम्हारी तकलीफ को बहुत बोझिल मत बना लेना। तुम्हारे प्रेम को समझता हूं। लेकिन तुम्हारा प्रेम इतना बड़ा होना चाहिये कि मृत्यु के पार अमृत को देखने में समर्थ हो सके, तो ही तुमने मुझे प्रेम किया। अगर मेरी देह के रहने से ही तुम्हारा प्रेम रहा तो कोई मुझे न भी मारे तो भी यह देह एक दिन छूट जायेगी। देर-अबेर की बात है, आज मरे कोई कि कल मरे कोई। देह तो छूटेगी। देह तो छूटनी ही है। तो फिर तकलीफ होगी। वही पीड़ा होगी। इसके पहले कि देह छूटे, देह के पार देखो। इसके पहले कि दीया बुझे, सुबह की तलाश करो।

जिंदगी शम्अ की मानिंद जलाता हूं "नदीम"
बुझ तो जाऊंगा मगर सुबह तो कर जाऊंगा

मैं जब अभी यहां हूं तो मेरी देह से ही मत बंध जाओ, मेरे शब्दों में मत अटक जाओ। मेरे पार देखो। मेरा इशारा मुझसे पार की तरफ है। मैं तो सिर्फ एक इशारा हूं--एक अंगुली--जो आकाश में उगे चांद को दिखा रही है। अंगुली का क्या, रही कि न रही! तुम चांद देख लो, अंगुली का काम पूरा हो गया।

मैं तुम्हें परमात्मा की याद दिला जाऊं, बस इतना पर्याप्त है। और अगर कोई धमकियां दे रहा है मुझे मारने की, तो तुम जल्दी करो। समय मत गंवाओ। तुम देरी मत करो। तुम आहिस्ता-आहिस्ता न चलो, त्वरा पकड़ो, गति पकड़ो। भभककर जलो, कि इसके पहले कि दीया बुझे, प्रभात हो जाये; इसके पहले कि देह छूटे, देह के पार का दर्शन हो जाये।

और किसी चिंता में समय व्यर्थ करना उचित नहीं है। समय थोड़ा है। समय सदा थोड़ा है। होशियारी से, सावधानी से उसका उपयोग कर लेना चाहिये। और एक ही उपयोग है जीवन का, जीवन के समय का कि हम परमात्मा को जानने में समर्थ हो जायें; उसे जानने में समर्थ हो जायें जो अमृत है।

दूसरा प्रश्न :

मेरे महबूब तुझे मेरी मुहब्बत की कसम
ऐ मेरे ख्वाब की ताबीर मेरी जाने ग.जल
जिन्दगी मेरी तुझे याद किये जाती है।
रात दिन मुझ को सताता है तसव्वुर तेरा

दिल की धड़कन तुझे आवाज दिये जाती है।
ओ मेरे, नरगिसी आंखों का सहारा दे दो।

देव वीणा, ऐसे ही मांगो। ऐसे ही उसके द्वार पर खटखटाओ। यही पूजा है, यही प्रार्थना है। और उसका सहारा तो मिला ही हुआ है। सिर्फ पहचानने की देर है। उसके हाथों ने ही तो तुम्हें सम्हाला है। उसकी आंखों ने ही तो तुम्हारी आंखों से देखा है। वही तो धड़कता है तुम्हारे हृदय में। पर अभी पहचान नहीं है। पहचान भी हो जायेगी।

परमात्मा को पाना नहीं है, सिर्फ पहचानना है। परमात्मा को हमने पाया ही हुआ है, इसलिये उसे दूर तलाश करने मत जाना। उसे खोजना अपने ही भीतर। अपने ही हृदय को खटखटाना है। अपने ही भीतर के द्वार तोड़ने हैं। पुकारो, जरूर पुकारो--

मेरे महबूब तुझे मेरी मुहब्बत की कसम
ऐ मेरे ख्वाब की ताबीर मेरी जाने ग.जल
जिन्दगी मेरी तुझे याद किये जाती है।
रात दिन मुझ को सताता है तसव्वुर तेरा
दिल की धड़कन तुझे आवा.ज दिये जाती है।

पुकारो। इतना पुकारो कि पुकारने वाला पुकार में लीन हो जाये। बस उसी घड़ी मिलन हो जाता है। ऐसे नाचो कि नाचने वाला नाच में खो जाये। बस उसी घड़ी मिलन हो जाता है। जब भी कोई कृत्य तुम्हारे कर्ता को अपने में डुबा लेता है, बस प्रार्थना की घड़ी आ गई, प्रार्थना की पूर्णता आ गई। नहीं किसी यम-नियम की जरूरत है, न तप-योग की--सहजता की। या चाहो तो कहो--सहज-योग की।

इधर बहुत दिनों से हम सरहपा और तिलोपा की ही बात कर रहे हैं--सहज-योग की। सहज-योग का अर्थ है : मिला ही हुआ है, जरा आंख अपनी भीतर लगानी है। दीया लेकर हम बाहर खोज रहे हैं। जरा दीये को भीतर लाना है। और प्रार्थना जितनी सरलता से दीये को भीतर ले आती है कोई और तत्व नहीं ला पाता, क्योंकि प्रार्थना तुम्हारे प्रेम का ही संघीभूत रूप है, तुम्हारे प्रेम की ही सघनता है। और प्रेम स्वाभाविक है, प्रत्येक को मिला है।

तुम्हें पता है कि हीरा कैसे बनता है? हीरा कोयले से बनता है। कोयला ही हजारों-हजारों साल पहाड़ों के नीचे दबा-दबा हीरा बन जाता है। कोयले और हीरे में कोई रासायनिक भेद नहीं है। ऐसा ही प्रेम सघन होते-होते सघन होते-होते प्रार्थना बन जाता है। चाहे अभी तुम्हारा प्रेम कोयले जैसा हो, घबड़ाना मत; यही कोयला हीरा हो जायेगा। कोयले से हीरे की यात्रा, यही तो सारे मनुष्य-जीवन की कथा है।

क्या जानूं यम-नियम-उपनियम, सनम, तुम्हारी गलियों के?
यों ही उलझ गयी फन्दे में मैं तो तुम-से छलियों के
मैं .गरीबिनी क्या जानूं तव पूजन की विधियां सारी?
मैं क्या जानूं क्या होती हैं योग-नियम-विधियां सारी?
आंख लगी, अरमान जगे, अब कहते हो कि नियम पालो।
अब तो आन पड़ी हूं दर पे जैसे जी चाहो टालो।
छोड़ो फिकिर और सब।

देव वीणा, तेरी आंखों में देखकर मुझे जो प्रतीति हुई वह यही हैः प्रार्थना तेरे लिये सूत्र है। पुकार तेरे लिये मार्ग है। मगर पुकार ऐसी हो कि फिर पुकारने वाला न बचे। पुकार ही पुकार हो जाये। बाढ़ आये। बूंदा-बांदी से नहीं होगा, मूसलाधार वर्षा हो। और यह तेरी क्षमता है। यह हो सकता है। न हुआ तो तेरे अतिरिक्त और कोई जुम्मेवार न होगा।

परमात्मा न मिले तो सिर्फ अपने को ही दोषी ठहराना। परमात्मा की तरफ से मिलने का पूरा आयोजन है। परमात्मा की तरफ से तो परमात्मा मिला ही हुआ है, हमारी तरफ से ही हम पीठ किये खड़े हैं। अब सूरज की तरफ पीठ कर लोगे तो सूरज से चूक जाओगे। और ऐसा नहीं था कि सूरज तुम्हारे लिये नहीं उगा था।

लौटो! पलटो। जिस दिशा में भागे जा रहे हो उसमें न भागकर, उसके विपरीत आंखें करो। लोग धन की तरफ भाग रहे हैं, ध्यान से वंचित रह गये; पद की तरफ भाग रहे हैं, प्रार्थना से वंचित रह गये। वासना अर्चना में नहीं उतरने देती। तृष्णा उपासना में नहीं बैठने देती--दौड़ाती है। इतनी-सी बात है।

सार की बात बहुत थोड़ी है कि आंखें बंद करो; कि भीतर कौन है, उसे देखो। महबूब वहां छिपा है। प्यारा वहां मौजूद है। एक क्षण को भी अनुपस्थित नहीं है। अनुपस्थित हो जाये तो हम समाप्त हो जायें। वही तो हमारा जीवन है। वही तो हमारी श्वास है। वही हमारा प्राण है।

तीसरा प्रश्न : आपने कहा कि सदगुरु शिष्य को संपूर्ण स्वतंत्रता देता है। इसका तो अर्थ हुआ कि वह शिष्य की जरा भी चिंता नहीं करता।

चिंता तो सदगुरु किसी की भी नहीं कर सकता। चिंता तो सदगुरु में निर्मित ही नहीं हो सकती। चिंता के पार है, इसीलिए तो सदगुरु है। हां, शिष्य का ध्यान रखता है, चिंता नहीं करता, चिंता बड़ी और बात है।

चिंता तो ऐसे कि कोई बीमार है तो तुम भी बीमार होकर उसके पास लेट गये। इससे बीमार को कोई लाभ नहीं होगा। इससे तुमने कोई सेवा भी नहीं की। शिष्य चिंतित है, दुविधाओं से घिरा है, समस्याओं से घिरा है--और सदगुरु भी चिंतित हो गया तो चिंता दुगनी हो गई, कम न हुई, घटी न। और जो स्वयं चिंतित हो जाये वह दूसरे को कैसे चिंता से मुक्त करेगा?

नहीं, चिकित्सक को कोई बीमार होकर बीमार के पास लेट जाने की जरूरत नहीं है। चिकित्सक को बीमार की चिंता नहीं करनी है; बीमार का ध्यान करना है, बीमार की सहायता करनी है, उपचार करना है।

सदगुरु चिंता नहीं करता। फिर, बात और भी थोड़ी समझने जैसी है। बीमार की तो बीमारी चिकित्सक को असली मालूम होती है, सदगुरु की तो और कठिनाई है। शिष्य की सारी बीमारियां झूठी हैं। चिंता क्या खाक करे? शिष्य की सारी बीमारियां झूठी हैं। सपने देख रहा है शिष्य। तुमने सपने में सांप देख लिया है, सदगुरु चिंता करे? सपने में तुम्हारे महल में आग लग गई है, सदगुरु चिंता करे, तो फिर सदगुरु न होगा। हां, सदगुरु करुणा करता है। और करुणा का यह मतलब मत समझना कि तुम्हारे महल में आग लगी है तो उसे बुझाने का आयोजन करता है, क्योंकि तुम्हारा महल झूठा, तुम्हारी आग झूठी। और जो बुझाने आयेगा वह भी तुम्हारे जैसा पागल है। तुम्हारे महल में जब आग लगी होती है तो सदगुरु तुम्हें जगाने की कोशिश करता है। तुम्हारे महल से तो कुछ संबंध नहीं बन सकता। तुम्हारा महल तो है ही नहीं।

इसलिये कभी-कभी ऐसा भी लग सकता है कि सदगुरु बड़ा कठोर है; हमारे महल में तो आग लगी है, वह हिला-डुला रहा है; हम सांत्वना लेने आये हैं, वह सांत्वना तो दे नहीं रहा, वह उल्टा हमें और चोटें मार रहा है।

सोते हुए आदमी को कोई जगाये तो प्रीतिकर तो नहीं लगता। चाहे दुख-स्वप्न में ही क्यों न दबा हो, मगर जागना प्रीतिकर नहीं लगता। करवट लेकर सो जाना चाहता है। सदगुरु तो सोये हुए लोग उन्हें मानते हैं जो उनकी चादर को और ठीक से ढंक दें, कंबल को उढ़ा दें; सुबह थोड़ी सर्द हो गई है, जो उनके सिर को थपथपा दें--और कहेंः वत्स, खूब गहरी निद्रा में सोओ! अच्छे-अच्छे सपने देखो--परमात्मा के, मोक्ष के, स्वर्ग के, परियों के, अप्सराओं के, देवदूतों के। अच्छे-अच्छे सपने देखो। धार्मिक सपने देखो। सोओ मजे से।

शिष्य भी मानता है कि गुरु हो तो ऐसा हो।

सदगुरु तो कष्ट देता मालूम होगा। सुबह-सुबह जब मीठी-मीठी सर्दी पड़ रही है, तब वह तुम्हारा कंबल छीन रहा है, तब वह तुम्हें उठाने की कोशिश कर रहा है, कि ठंडा पानी तुम्हारी आंखों पर मार रहा है। दुश्मन मालूम होगा।

सांत्वना तो सदगुरु नहीं देता, न तुम्हारी बीमारियों की चिंता लेता है। हां, तुम्हारी बीमारियों को सुनकर भीतर-भीतर हंसता है। कठोर लगेगा। और मैंने जब कहा कि सदगुरु शिष्य को संपूर्ण स्वतंत्रता देता है तो तुम्हारे मन में सवाल उठाः इसका तो अर्थ हुआ कि वह शिष्य की जरा भी चिंता नहीं करता? शिष्य का उपचार करना चाहता है, उपकार करना चाहता है, इसलिये शिष्य को संपूर्ण स्वतंत्रता देता है, क्योंकि स्वतंत्रता ही मोक्ष का मार्ग है। लेकिन शिष्य नहीं चाहता यह। यह तुम समझ लेना। शिष्य स्वतंत्रता नहीं मांगता। शिष्य कहता है कि मैं आपका गुलाम होने को तैयार हूं। शिष्य कहता हैः मुझे सहारा दो, स्वतंत्रता नहीं। मेरे पैर बन जाओ कि मेरे पंख बन जाओ, मगर मेरे पंखों को पैदा करने की कोशिश मत करो, क्योंकि वह कठिन बात है।

फिर जब शिष्य कहता है कि मेरे सहारे बन जाओ तो सारा उत्तरदायित्व सदगुरु पर छोड़ देता है। और उत्तरदायित्व जब भी तुम छोड़ दोगे, तुम्हारा विकास अवरुद्ध हो जायेगा। उत्तरदायी तो तुम ही हो। परमात्मा तुम्हारे गुरु से नहीं पूछेगा कि तुम क्यों नहीं जागे--तुमसे पूछेगा! उत्तरदायी तुम हो। तुम्हारे लिए कोई दूसरा उत्तरदायी नहीं है। तुम्हारे और परमात्मा के बीच कोई दूसरा खड़ा नहीं हो सकता, लेकिन लोगों की गलत आदतें बचपन से पड़ जाती हैं। पहले मां-बाप पर निर्भर रहते हैं, फिर स्कूल के शिक्षकों पर निर्भर हो जाते हैं, फिर राजनेताओं पर निर्भर हो जाते हैं। ऐसे जिंदगी निर्भरता-निर्भरता में बीतती है। ... किसी पर निर्भर। खुद अपने पैर पर न कभी खड़े होते हैं, न कभी अपनी स्वतंत्रता की उदघोषणा करते हैं। दूसरे करने भी नहीं देते, क्योंकि दूसरे चाहते हैं कि तुम गुलाम रहो। दूसरे चाहते हैं कि तुम निर्भर रहो। निर्भर रहो तो तुम्हारा शोषण हो सके।

सदगुरु तो तुम्हें इस सारी निर्भरता से मुक्त करेगा। वह तुम्हें जगायेगा। वह तो कहेगा कि तुम्हें तुम्हीं होना है--किसी और की नकल नहीं, किसी और आदर्श का अनुकरण नहीं। वह तो तुम्हारी अद्वितीयता की, तुम्हारी महिमा की तुम्हें प्रतीति देगा। वह तो कहेगाः तुम जैसे हो सुंदर हो। परिपूर्ण स्वतंत्रता में तुम्हारा फूल खिले, इसका आयोजन करेगा। तुम्हें सारी सुविधा देगा कि तुम जैसे होना चाहिये वैसे हो सको, लेकिन तुम्हारे ऊपर कोई आदर्श कोई आचरण नहीं थोपेगा।

मेरा अर्थ यही था कि सदगुरु शिष्य को पूरी स्वतंत्रता देता है। हैरानी तुम्हें होती होगी।

एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि वे विनोबा के पवनार आश्रम में थे, विनोबा जी बड़ी चिंता लेते हैं शिष्यों की। मैंने कहाः मतलब? उन्होंने कहा कि रोज प्रत्येक शिष्य के कमरे में आकर देखते हैं कि सब साफ-सुथरा है?

इतना ही नहीं, शिष्य के स्नानगृह और संडास में भी झांककर देखते हैं कि सब साफ-सुथरा है या नहीं? बड़ी चिंता लेते हैं!

मैंने कहाः यह काम तो किसी जमादार का हुआ! इसका सदगुरु से क्या लेना-देना? और अगर शिष्यों को इतनी बुद्धि नहीं मिली कि अपनी संडास की सफाई कर सकें तो और क्या खाक करेंगे! और कहां की सफाई करेंगे! इसके लिये भी अगर विनोबा को आना पड़ता है... और रोज... तो यह तो खूब सत्संग हो रहा है!

स्वभावतः ऐसे व्यक्तियों को लगेगा कि मैं जरा भी चिंता नहीं करता, क्योंकि मैं तो यह भी नहीं जानता कि कौन शिष्य इस आश्रम में किस कमरे में रहता है। कौन-कौन लोग इस आश्रम में रहते हैं, इसका भी मुझे पक्का पता नहीं है। मैं किसी के कमरे में आज तक गया नहीं हूं। अपने कमरे से और यहां तक का रास्ता भर मुझे मालूम है। मैं इस आश्रम में भी पूरा कभी नहीं गया हूं, कभी घूमा नहीं हूं, इसका मैंने एक चक्कर भी नहीं लिया है। इस आश्रम के दफ्तर में कभी नहीं गया हूं। मुझे पता नहीं है, कौन कहां क्या कर रहा है।

इतना बोध अगर न जग सके शिष्यों में कि ये छोटे-छोटे काम खुद सम्हाल लें, तो बात ही क्या हुई?

तुम हैरान होओगे कि इस आश्रम का काम मेरे बिल्कुल बिना चल रहा है। और इतना बड़ा आश्रम इस पृथ्वी पर कहीं भी नहीं है, लेकिन मुझसे बिल्कुल बिना चल रहा है। मैं उसमें भागीदार हूं ही नहीं। मैं अगर एक दिन चुपचाप अपने कमरे से अदृश्य हो जाऊं तो आश्रम में कहीं कोई बाधा नहीं पड़ेगी, सब ऐसा ही चलता रहेगा, कोई अंतर नहीं आयेगा, क्योंकि मेरा कहीं कोई हाथ ही नहीं है।

मैंने तुम्हें बोध दिया, समझ दी, अब तुम उसका उपयोग करो। और इसे तो मैं थोड़ा-सा विनोबा के लिये अशोभन मानता हूं। किसी की संडास में जाकर झांकना, उसका अपमान करना है, उसकी अवमानना है। इसमें निंदा का स्वर है। इसमें भरोसा नहीं है। और जब गुरु को इतना भरोसा अपने शिष्यों पर न हो तो शिष्यों का क्या खाक भरोसा गुरु पर होगा। और शिष्य अगर डरकर संडास साफ रखते हों कि गुरुदेव आते होंगे--गुरुदेव यानी सेनिटरी इंस्पेक्टर--अगर इसलिये संडास साफ रखते हों, तो यह कोई संडास का साफ रखना हुआ? ठीक है, संडास में तो झांक लोगे, इनकी आत्माओं को कौन साफ करेगा? कैसे इनकी आत्माओं को साफ करोगे?

उन मित्र ने कहा कि वे छोटी-छोटी चीज की फिक्र करते हैं कि किसी ने चाय तो नहीं पी ली, किसी ने सिगरेट तो नहीं पी ली? रात ठीक समय पर सब लोग सो गये कि नहीं? नौ बजे प्रकाश बुझ गया कि नहीं? ये कारागृह की बातें हैं, आश्रम की नहीं। आश्रम कोई कन्सन्ट्रेशन कैंप थोड़े ही है, कोई कारागृह थोड़े ही है। किसी को दस बजे सोना ठीक लगता है, वह दस बजे सोता है; और किसी को सुबह तीन बजे उठना ठीक लगता है वह तीन बजे उठता है; और किसी को छह बजे ठीक लगता है वह छह बजे उठता है। विनोबा नौ बजे सोते हैं, इसलिये प्रत्येक को नौ बजे सोना चाहिए, यह ज्यादती हो गई। मैं रोज बारह बजे सोता हूं, अब मैं सब पर थोपूं कि बारह बजे सोना चाहिए, यह तो ज्यादती हो जायेगी। विनोबा तीन बजे उठते हैं तो हर-एक को तीन बजे उठना चाहिए। तो लोग उठते हैं, बेमन से उठते हैं, गालियां देते उठते हैं। मुझे उन लोगों का पता है। मजबूरी में उठते हैं। लेकिन यह तो कारागृह हुआ। इस कारागृह से मुक्ति की यात्रा कैसे होगी?

यह तो ठीक है, सैनिकों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाये, लेकिन संन्यासियों के साथ तो ऐसा व्यवहार नहीं किया जा सकता। सैनिक की तो स्वतंत्रता मारनी है। सैनिक को तो इतना गुलाम बनाना है कि जब उससे कोई मूढ़तापूर्ण कृत्य करने को भी कहा जाये तो वह इनकार न कर सके। और सैनिक से काम ही मूढ़तापूर्ण करवाने हैं... ! किसी की छाती में गोली मार दो। अगर सैनिक में थोड़ी बुद्धि हो तो वह कहेगाः "क्यों? इस आदमी ने कुछ बिगाड़ा नहीं।" मगर इतनी बात अगर सैनिक कहे तो ये राजसत्तायें नहीं टिक सकतीं। इसलिए

सैनिक से तो उल्टे-सीधे न मालूम कैसे-कैसे काम करवाने हैं। उसकी तो बुद्धि बिल्कुल नष्ट कर देनी है। उसको तो बिल्कुल नियमबद्ध कर देना है कि यंत्रवत काम करे। बायें घूम, तो वह बायें घूमे।

एक दफा एक दार्शनिक दूसरे महायुद्ध में भरती हुआ। जरूरत थी ज्यादा सैनिकों की तो सभी वर्गों के लोग युद्ध पर जा रहे थे, दार्शनिक को भी जाना पड़ा। और जब उसे कवायद करवाई गई, कहा बायें घूम, तो वह खड़ा ही रहा। लोग बायें भी घूम गये, दायें भी घूम गये वह खड़ा ही रहा। आखिर जाहिर दार्शनिक था तो कवायद करवाने वाले कप्तान ने आकर कहा कि क्षमा करें, मुझे पता है कि आप प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, मगर यहां यह नहीं चलेगा। बायें घूम यानी बायें घूम। लेकिन उसने पूछाः क्यों? मैं यही तो सोच रहा हूं खड़ा हुआ कि बायें क्यों घूमूं। इसका प्रयोजन क्या है, अभिप्राय क्या है? घूमने से हल क्या होगा? और जो घूम गये उनको क्या मिला? और घूमकर वे फिर वहीं आ गये जहां मैं खड़ा ही हुआ हूं। तो मैं बचा झंझट से।

यह सोचकर कि यह आदमी तो किसी काम का नहीं... इतना सोच-विचार करो तो फिर सैनिक नहीं हो सकते। इतनी बुद्धिमत्ता सैनिक को नहीं चाहिए। इसलिए तो सैनिक से कवायद करवाते हैंः बायें घूम, दायें घूम, आगे जा, पीछे जा। वह जाता-आता सुबह से सांझ यही करता रहता है। करते-करते उसकी बुद्धि बिल्कुल ही मंद हो जाती है। सोच-विचार की हत्या हो जाती है। फिर एक दिन उससे कहते हैं गोली मार, तो वह गोली मार देता है। उसको बायें घूम और गोली चलाने में कोई अंतर नहीं रह गया अब। उससे तो कहो खुद को गोली मार तो वह खुद को गोली मार लेगा।

यह रेवरेंड जोन्स, जिनकी मैंने कल तुमसे चर्चा की, यह अपने शिष्यों से यह काम करवा सका कि सब जहर पी लो और उन सबने जहर पी लिया, तुम सोचते हो कि वह आश्रम कैसा रहा होगा? इसकी कोई ने पहले खबर नहीं दी, लेकिन यह पहली घटना नहीं हो सकती। ये नौ सौ आदमियों को जिन्होंने आत्महत्या की रेवरेंड जोन्स की बात मानकर, वर्षों तक कवायद करवाई गई है, तब यह घटना घट सकती है। अचानक किसी से जाकर कहो जहर पीयो तो वह पूछेगाः क्यों? तुम जानकर हैरान होओगे, इस घटना को घटाने के लिये वर्षों से रिहर्सल किया जा रहा था। घंटी बजती थी खतरे की। हर महीने में करीब-करीब एक बार दो बार घंटी बजती खतरे की, कभी भी। सारा आश्रम इकट्ठा होता और सबको प्यालियों में कुछ दिया जाता कि यह जहर है। यह रिहर्सल था। लोग धीरे-धीरे इसके आदी हो गये। यह कई दफे हो चुका था, यह कई साल से हो रहा था। लोग उस रस को पी लेते, स्वीकार करके। रेवरेंड जोन्स का कहना था कि यही तुम्हारे समर्पण का सबूत है कि अगर मैं जहर भी दूं तो तुम जहर पीयो। ये लोग रिहर्सल करते-करते भूल ही गये यह बात कि एक दिन असली जहर अगर दिया जाएगा तो फिर क्या होगा! यह नकली जहर था ये लोग तो मजे में लेते थे, घंटी भी झूठी थी। लेकिन इस बार घंटी सच्ची बजी! वह तैयारी ही कर रहा था इसकी। इस बार उसने जहर दे ही दिया। लोग जहर पी गये। नौ सौ लोग मर गये।

रेवरेंड जोन्स ने संन्यासी पैदा नहीं किये, सैनिक पैदा किये थे। उनकी हर छोटी-छोटी बात की वह फिकिर रख रहा था, जिसको तुम चिंता कहते हो--वे कब उठते, कब सोते, कैसे बैठते, कोई नियम का उल्लंघन तो नहीं हो रहा है? यह तो लोगों की आत्माओं को मारने का उपाय है। यह आदमी मौलिक रूप से हत्यारा था।

छोटे पैमाने पर ये काम सभी आश्रमों में चलते हैं। छोटे पैमाने पर चलते हैं तो तुम्हें पता नहीं चलता, लेकिन आत्महत्या तो वहां भी की जा रही है। अगर तुम अपनी नींद के खुद मालिक नहीं हो, अगर तुम अपने भोजन के खुद मालिक नहीं हो, अगर तुम्हें इतनी भी बुद्धि नहीं है कि क्या खाओ, क्या पीओ, कब सोओ, कब उठो, स्नान करो या न करो, अगर इतना भी बोध तुम्हें सदगुरु के पास रहने से नहीं मिल रहा है और इसके लिए

डंडा लेकर तुम्हारे पीछे पड़ा जाये, तो फिर मैं मानता हूं ऐसी जगह को आश्रम कहना ठीक नहीं है, कारागृह कहना ठीक है।

मैं तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देता हूं क्योंकि मेरी तुम पर पूरी श्रद्धा है। शिष्य ही थोड़े ही सिर्फ सदगुरु पर श्रद्धा करता है--सदगुरु वही है जो अपने शिष्य पर भी श्रद्धा करता है। श्रद्धा करता है, तुम्हारा सम्मान करता है, तुम्हारी आत्मा का गौरव स्वीकार करता है। तुम महिमावान हो। आज सोये हो, कल जाग जाओगे। बुद्ध सोया भी हो तो भी है तो बुद्ध ही। तुम भी प्रबुद्ध हो, देर-अबेर की बात है। और तुम्हें जितनी स्वतंत्रता दी जाये उतना ही तुम्हें अपने बोध से जीना पड़ेगा। और जितना तुम्हें अपने बोध से जीना पड़ेगा उतना ही बोध जागेगा। और बोध को जगाना है। लेकिन तुमने कुछ का कुछ समझ लिया।

अकसर ऐसा हो जायेगा, जितनी बड़ी बात होगी उतनी ही समझनी कठिन हो जाती है। तुम कुछ का कुछ समझ लिये।

स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि मेरे मन में तुम्हारे लिये कोई लगाव नहीं है। ठीक उल्टा। स्वतंत्रता दे रहा हूं, क्योंकि तुमसे प्रेम है। तुमने स्वतंत्रता का अगर नासमझी से उपयोग किया तो यह स्वच्छंदता हो जायेगी। कसूर तुम्हारा होगा। अगर तुम मेरे प्रेम को समझे, मेरी श्रद्धा को समझे, मैंने तुम्हें जो सम्मान दिया है उसे समझे--तो यही स्वतंत्रता परम मुक्ति बन जायेगी।

लेकिन खतरा कुछ भी हो, मैं तुम्हारी स्वतंत्रता नहीं छीन सकता। मैं यह खतरा लेने को तैयार हूं कि तुम स्वच्छंद हो जाओ, मगर यह खतरा लेने को तैयार नहीं हूं कि तुम गुलाम हो जाओ, कि तुम परतंत्र हो जाओ। मैं तुम्हें यहां महाजीवन दिखाने को हूं, महाजीवन की तरफ ले चलने को हूं। मैं तुम्हें मार नहीं डालना चाहता हूं।

लेकिन लोग तो अपने ढंग से समझते हैंः कुछ सुनेंगे कुछ समझेंगे।

ढब्बू जी अपने एक बीमार दोस्त से मिलने गये और उसकी तबीयत का हाल पूछा। दोस्त ने कहाः बुखार तो टूट गया, अब टांग में दर्द है। ढब्बू जी ने कहाः घबराओ मत, जब बुखार टूट गया तो टांग भी जल्दी ही टूट जायेगी।

एक आदमी, एक बिल्कुल अपरिचित आदमी मुल्ला नसरुद्दीन के पास पहुंचा। नमस्कार के बाद उसने निवेदन किया कि क्या आप मुझे पांच हजार रुपये उधार दे सकते हैं?

लेकिन मैं तो आपको पहचानता नहीं, मुल्ला ने चकित होकर कहा। उस आदमी ने कहाः यह भी खूब रही! जो पहचानते हैं, वे पांच रुपये देने को तैयार नहीं। किसी के पास जाता हूं, तो वे कहते हैंः हम तो आपको पहचानते हैं, आगे बढ़ो। अब आप कहते हैं पहचानता नहीं हूं, इसलिये नहीं दूंगा। तो मैं जाऊं किसके पास?

थोड़ा समझो। मैं जो कहता हूं उसे एकदम जैसा तुम्हारी बुद्धि में आ जाये वैसा ही मत मान लेना, थोड़ा उस पर ध्यान करना, थोड़ी उसकी बारीकियों में उतरना, थोड़ी उसकी गहराइयों में डुबकी मारना। जल्दी निष्कर्ष मत लिया करो।

निश्चित, मैं तुम्हें पूर्ण स्वतंत्रता देता हूं। यह मेरा सम्मान है तुम्हारे प्रति। तुम भी स्वतंत्रता का सम्मान करना। तुम भी स्वतंत्रता का सदुपयोग करना। तुम इस स्वतंत्रता को सीढ़ी बनाना। यह सीढ़ी ही तुम्हें मोक्ष की तरफ ले जायेगी।

मोक्ष है अंतिम स्वतंत्रता और जिसे उस अंतिम स्वतंत्रता को पाना है उसे पहले कदम से ही स्वतंत्रता का अभ्यास करना होगा। मैं तुम्हें किन्हीं भी नियमों में, जंजीरों में बांधना नहीं चाहता। मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं हूं। और न ही मुझे रस है इस बात में कि मैं अपने को तुम्हारे ऊपर थोप दूं। यह तो हिंसा है। मगर महात्मा गांधी

और विनोबा भावे, इस तरह के लोग इसी तरह की हिंसा को शिष्य की चिंता कहते हैं। अपने आग्रह उस पर थोप देते हैं, जबर्दस्ती थोप देते हैं।

मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं तो जो भी कह रहा हूं उसमें कोई भी आदेश नहीं है कि तुम्हें मानना ही है। मैं तो सिर्फ अपने विचार निवेदन कर रहा हूं। आज्ञायें नहीं हैं ये, सिर्फ मेरी अंतर्दृष्टि तुम्हें साफ कर रहा हूं। ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है। सुनो, गुनो। तुम्हें भी दिखाई पड़े तो चल पड़ना और जब तक तुम्हें दिखाई न पड़े तब तक चलने की कोई भी जरूरत नहीं है।

और जरा ध्यान रखना, मतलब अपने मत ले लेना।

ढब्बू जी अपने बेटे को कह रहे थेः आज तुम्हारे मास्टर जी ने शिकायत की है, तुम रोजाना देर से स्कूल पहुंचते हो। ढब्बू जी का बेटा, आखिर ढब्बू जी का बेटा! उसने कहाः इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। ढब्बू जी ने कहाः तुम्हारा मतलब? उसने कहाः मेरे स्कूल पहुंचने से पहले ही वे लोग घंटी बजा देते हैं; और एक दिन नहीं, रोज यही हो रहा है।

अपने-अपने मतलब हैं! नहीं, तुम अपने मतलब मत लेना। थोड़ी सहानुभूति, थोड़ा समभाव मुझसे साधो। थोड़ा मेरी आंखों से झांको, तो चीजें कुछ और ही रूप में प्रगट होंगी, और ही रंग।

नहीं तो मुझे गलत समझना बहुत आसान है, क्योंकि मैं बातें ही इतनी ऊंचाइयों की कर रहा हूं तुमसे कि अगर तुमने आंखें ऊपर न उठाईं तो तुम नहीं समझ पाओगे। और मैं नीचाइयों की बातें नहीं करूंगा। नीचाइयों की बातें करने वाले तो बहुत लोग हैं इस देश में। अगर उनसे ही तुम्हें संबंध जोड़ना है तो तुम मेरे पास आओ ही मत। तुम्हें अगर चाहिए कोई ऐसा गुरु जो चौबीस घंटे तुम्हारे पीछे लगा रहे खुफिया की तरह, तो तुम मेरे पास आओ मत। मैं तो तुम्हारे पीछे बिल्कुल न लगूंगा। मैं तो निवेदन कर दूंगा और तुम पर छोड़ दूंगा।

तुम पर छोड़ने में भी राज है। मैं चाहता हूं कि तुम अगर कोई चीज अंगीकार करो तो तुम्हारी निजता से अंगीकार होनी चाहिए। मेरे आग्रह से नहीं। मैंने कहा, इसलिये नहीं। तुम्हें दिखाई पड़ा, इसलिये। तुमने ऐसा अनुभव किया, इसलिये।

जब भी कोई सत्य सिर्फ किसी के आग्रह से स्वीकार किया जाता है, झूठ हो जाता है। सत्य तभी सत्य है जब तुम्हारी प्रतीति से उमगता है, जब तुम्हारे भीतर अंकुरित होता है।

चौथा प्रश्नः ओशो! अपनी समझ से मैं संन्यास ग्रहण करने की तैयारी करके आया था। यहां आकर पत्नी ने कड़ा विरोध खड़ा किया। इसलिये मैं तत्काल टाल गया। अब लगता है कि मैं ही इसमें सहयोगी हुआ। प्रवेग क्षीण पड़ गया। शायद इतना उत्साह न जुटा पाया कि मैं डूब सकता। दुखी हूं। समाधान देने की अनुकंपा हो।

केदारनाथ सिंह! समाधान न मांगो, समाधि मांगो। क्योंकि समाधि से ही समाधान है। और संन्यास तो समाधि की तरफ जाने का संकल्प है और कुछ भी नहीं।

पत्नी बाधा बनी, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसे तो तुम्हें पहले से ही अपेक्षा करनी थी। यह तो कुछ अनूठा न हुआ। यह तो होता ही है। इसके पीछे गणित है। अब तक तुम पत्नी के थे, संन्यस्त होकर तुम मेरे हो जाओगे। पत्नी से भी ज्यादा तुम मेरे हो जाओगे। यह पत्नी को अड़चन की बात तो है। अब तक तुम पूरे-पूरे उसके थे, अब तुम पूरे-पूरे उसके न रह जाओगे। अब तक पत्नी प्रथम थी, जिस दिन से तुम संन्यास लोगे उसी दिन से द्वितीय हो जायेगी। अगर किसी दिन चुनना होगा पत्नी और मेरे बीच तो तुम मुझे चुनोगे।

इससे पत्नी को पीड़ा तो होगी, अड़चन भी होगी। इतने पुराने दिन का अधिकार कोई ऐसे ही नहीं छोड़ देता, झंझट तो खड़ी करेगी। मगर उसकी झंझट से झुक जाना न तो तुम्हारे हित में है न उसके हित में है।

और ध्यान रखना, जब भी पत्नी तुम्हें झुकाये और तुम झुक जाओ तो पत्नी के मन में तुम्हारे प्रति जो आदर है वह कम हो जाता है। यह भी ख्याल रखना, जीवन बड़ा जटिल है। पत्नी उसी पति का आदर करती है जो न झुके। कौन स्त्री उस पति का आदर करती है जो ऐसा झुक जाये और पूंछ हिलाने लगे! इसीलिए तो पत्नियों की श्रद्धा पतियों में नहीं रह जाती, क्योंकि पति लल्लो-चप्पो करने लगता है और उन्होंने सोचा था कि किसी पुरुष के पास समर्पण हो रहा है। और फिर पाती है कि पुरुष-मुरुष कहां, जरा-सी बात में झुका लो।

स्त्रियों के मन में पति के प्रति आदर नहीं रह जाता। कारण? पतियों का खुद का व्यवहार है। पति जल्दी ही समझौते कर लेते हैं। पत्नियां इतने जल्दी समझौते नहीं करतीं। मेरे हिसाब में पत्नियां ज्यादा आत्मबल प्रगट करती हैं। और तुम्हें सभी को अनुभव होगा इस बात का। अगर तुममें और तुम्हारी पत्नी में झंझट हो गई तो झुकना तुम्हीं को पड़ता है, पत्नी नहीं झुकती। दिन बीतें, दो दिन बीतें, तीन दिन बीतें, नहीं झुकती। रोयेगी, खाने में ज्यादा नमक डालेगी, रोटियां जलायेगी, बच्चों को पीटेगी, बर्तन गिरायेगी, दरवाजे भड़कायेगी, सब करेगी--मगर झुकेगी नहीं! तुम्हें सता डालेगी सब तरफ से। आखिर तुम्हें उस हालत में कर देगी कि अब या तो पागल हो जाओ और या झुक जाओ। मगर ध्यान रखना, जब तुम झुकते हो तभी तुम्हारे प्रति श्रद्धा समाप्त हो जाती है।

स्त्री का मन उस पति को आदर देता है जो संकल्पवान है। अगर तुम न झुको, पहली बार न झुको... पहली बार ही भूल हो जाती है।

एक गांव के गंवार ने शादी की... शहरी होता तो इतनी हिम्मत नहीं रख सकता था... गांव का गंवार था। पत्नी को लेकर चला वापिस। घोड़ा गाड़ी थी उसके पास। घोड़ा बीच में अटक गया। उसने एक कोड़ा मारा घोड़े को और कहा कि एक... ! घोड़ा एकदम चल पड़ा। फिर अटका। उसने फिर उसे दो कोड़े मारे और कहा दो... ! पत्नी बैठी-बैठी सुन रही थी कि यह हो क्या रहा है! फिर तीसरी बार घोड़ा अटका। वह उतरा नीचे, निकाली उसने बंदूक और घोड़े को वहीं मार दी गोली। धड़ाम से घोड़ा नीचे गिर गया। दो दफे चेतावनी दे दी, पर्याप्त; अब तीसरा मौका आ गया। पत्नी ने कहाः यह तुमने क्या किया? उसने कहाः एक... ! बस... फिर उसके बाद दो की नौबत नहीं आई। मगर वह तो गांव का गंवार था। मामला पहली दफा रफा-दफा हो गया। ऐसे पुरुष का स्त्री आदर करती है!

केदारनाथ सिंह, तुमने क्या किया? कहना थाः एक... । तुम तो मेरे पास पहली दफा आये हो, लेकिन तुम्हारे संबंध में मुझे पहले से बहुत कुछ ज्ञात है, क्योंकि तुम्हारे पिता मेरे पास आते थे। केदारनाथ सिंह स्वर्गीय महाकवि दिनकर के बेटे हैं। उन्होंने बहुत बार तुम्हारी भी चर्चा मुझसे की है। वे भी बहुत बार आये और खाली गये। दिल में तो उनके भी बहुत था कि कुछ हो जाये, ध्यान हो समाधि हो, संन्यास हो; मगर हिम्मत न जुटा पाये। तुम्हारे पिता खाली गये, तुम भी खाली जाना चाहते हो? उन्होंने सुंदर गीत लिखे, मगर उन सुंदर गीतों के पीछे एक बहुत ही दुखी चित्त था। उन्होंने अमृत के भी गीत लिखे, मगर मृत्यु से उन्हें बड़ा डर था।

तो जब मैं दिनकर की अमृत की कवितायें पढ़ता हूं तो बहुत हैरान होता हूं। क्योंकि मैं उन्हें जानता हूं। वे मेरे पास आते थे तो मृत्यु से बहुत भयभीत थे। मृत्यु से बहुत डरे हुए थे, कंपे हुए थे। लेकिन बातें उन्होंने अपने गीतों में आत्मा की अमरता की की हैं। कारण है। ऐसा ही अकसर हो जाता है। कवि को अनुभव नहीं होते, सिर्फ अनुभव को प्रगट करने की क्षमता उसके पास होती है, अनुभव नहीं होता। ऋषियों को अनुभव होते हैं। कभी-

कभी ऐसा होता है कि उनको प्रगट करने की क्षमता नहीं होती। जब कभी कोई ऋषि और कवि एक साथ होता है तो सदगुरु पैदा होता है। अकसर ऐसा नहीं होता। कवि कह पाते हैं, जानते नहीं। ऋषि जानते हैं, कह नहीं पाते। जब कोई जानकर कह पाता है तब सदगुरु पैदा होता है। सदगुरु का अर्थ हैः जिसने जाना है और जो जना भी सकता है; जिसने शून्य को अनुभव किया है और जो शून्य की थोड़ी-सी झलक अपने शब्दों से तुम तक पहुंचा भी सकता है।

संन्यास का और क्या अर्थ है--किसी सदगुरु के निकट आना; आत्मीय बनाना; उसका अंतरंग बनाना। उसके समीप होने की क्षमता और पात्रता का नाम संन्यास है।

और मैं तुमसे कहता हूंः तुम्हारा संन्यास तुम्हारी पत्नी को भी चेतायेगा, अन्यथा वह भी सोई-सोई मर जायेगी। तुम जागो, साहस करो। पहले थोड़ी अड़चन आयेगी, स्वाभाविक है। मगर इस दुनिया में कोई चीज सदा नहीं टिकती, तो अड़चन कैसे सदा टिकेगी? न सुख टिकते न दुख टिकते। पत्नी कुछ दिन शोरगुल मचायेगी, मचाने देना। जब-जब पत्नी शोरगुल मचाये तभी-तभी तुम सक्रिय ध्यान करने लगना। मोहल्लेवालों के डर से वह खुद ही शांत हो जायेगी, कि बाबा सक्रिय ध्यान न करो। इतने ध्यान मैंने ईजाद किये हैं पतियों के लिये कि अपनी ही पत्नी नहीं, पड़ोस की सभी की पत्नियों को तुम पागलपन की दशा में भेज सकते हो।

इतने जल्दी नहीं झुक जाना था। एक तो झुकना ही नहीं चाहिये। और जब कोई चीज ठीक करने चले हो तब तो झुकना ही नहीं चाहिए। तुम कुछ गलत काम करने नहीं चले थे--तुम न तो शराबी बन रहे थे, न जुआरी बन रहे थे, न तुम वेश्यागामी बन रहे थे--तुम संन्यासी बनने चले थे। और बड़ा मजा है, आदमियों को देखकर बड़ी हैरानी होती है! अगर उनको शराब पीनी है तो पत्नी से नहीं डरते, पीये चले जाते हैं; और ज्यादा पीने लगते हैं। अगर उन्हें जुआ खेलना है तो पत्नी नहीं रोक पाती। बुराई से कोई पत्नी उन्हें नहीं रोक पाती। तुम समझ ही लो, अगर बुराई से पत्नियां रोकने में समर्थ होतीं तो इस दुनिया में सारी बुराइयां रुक गई होतीं, क्योंकि यहां सभी तो पति हैं। लेकिन कोई बुराई नहीं रुकी है। शराब चल रही है, चोरी चल रही है, बेईमानी चल रही है, रिश्वत चल रही है, जुआ चल रहा है, सब चल रहा है। कोई पत्नी नहीं रोकने में समर्थ हो पा रही है। तो तुम्हें जो करना है वह तो तुम करते हो। संन्यास के लिये तुम जल्दी से रुक गये, कहीं तुम्हारे भीतर ही निर्णय की कमी थी।

इसलिये तुमने ठीक ही सोचा है कि अपनी समझ से मैं संन्यास ग्रहण करने की तैयारी करके आया था। लेकिन तैयारी ऊपरी रही; भीतर कहीं-न-कहीं थोड़ा-सा अटकाव था। पत्नी ने उसी का उपयोग कर लिया। यहां आकर पत्नी ने कड़ा विरोध खड़ा किया, वह तो तुम्हें जानना ही था कि करेगी; तुम्हारी पत्नी है, तुम न जानोगे, कौन जानेगा? वह तो तुम्हें पहले ही सोच लेना था कि पत्नी कड़ा विरोध करेगी। मगर उसके सामने झुकना, तुम्हारा भी आत्मगौरव नष्ट हुआ, उसका भी आत्मगौरव नष्ट हुआ। क्योंकि उसने तुम्हें एक अच्छी दिशा में जाते हुए भी झुकते देखा कि तुम समझौता कर सकते हो। और तुम्हारी पत्नी भलीभांति जानती है कि और किसी चीज में तुमसे समझौता नहीं करवा पायी है, लेकिन इसमें समझौता करवा लिया।

कमजोरी कहीं तुम्हारे भीतर थी। उसे पहचानो और उस कमजोरी को हटा दो। यह तुम्हारे भी हित में होगा और तुम्हारी पत्नी के भी हित में होगा। अगर तुम मस्त हो सको, आनंदित हो सको और ध्यान और संन्यास तुम्हारे जीवन में कुछ फूल खिला सके, तो तुम्हारी पत्नी भी संन्यस्त होगी।

अड़चनें तो स्वाभाविक हैं। कुछ तो हमें मूल्य चुकाना ही पड़ेगा। यही तो तपश्चर्या है। धूप में खड़ा होना तपश्चर्या नहीं है, न भूखे मरना तपश्चर्या है। यही है असली तपश्चर्या कि जब तुम बदलना शुरू करोगे तो तुमसे

संबंधित सारे लोग बाधा डालेंगे। जब भी तुम बदलते हो तो तुमसे संबंधित सारे लोगों को अड़चन होती है। एक आदमी के बदलने से सैकड़ों आदमियों को अड़चन होती है। क्यों? क्योंकि वे, तुम जैसे हो तुमसे भलीभांति परिचित हो गये थे, तुम्हारे साथ व्यवहार का समायोजन हो गया था; अब तुम नये हो रहे हो, अब उनको फिर से तुम्हारे साथ नया समायोजन करना पड़ेगा। अब तुम्हारे संबंध में पुनर्विचार करना होगा। अब तक तुम्हारे संबंध में जो उन्होंने आदतों का एक जाल बना लिया था, वह सब टूट गया। यही तो अड़चन है, एक मित्र बनाता हूं मैं, तो सौ दुश्मन हो जाते हैं।

मुझसे लोग पूछते हैं कि आप इतने दुश्मन कैसे खड़े कर लेते हैं? उसका कारण सीधा हैः एक मित्र बनाऊं, सौ दुश्मन हो ही जाने वाले हैं। क्योंकि जितने लोग उससे संबंधित थे--उसकी पत्नी है, वह नाराज हो गई; पत्नी के परिवार के लोग हैं, वे नाराज हो गए; उसके पिता हैं, मां हैं, वे नाराज हो गये हैं; उसके बेटे-बेटियां, वे नाराज हो गये; उसके मित्र, वे नाराज हो गये। एक तूफान आ गया उसके संबंधों के जगत में। जितने उससे संबंधित लोग थे, उन सबको अड़चन खड़ी हो गई। अब यह आदमी कुछ और हो गया। अब इससे फिर से पहचान करो। अब इससे फिर से संबंध जोड़ो। अब यह पुराने भरोसे का आदमी न रहा।

और इस दुनिया में कोई भी आदमी कुछ सीखना नहीं चाहता। लोग पुराना जो सीख लिया उसी के आधार से जीना चाहते हैं। इसीलिये तो लोग आदतें नहीं बदलते। गलत आदतें भी हजारों साल तक चलती हैं। जीवन-घातक आदतें भी चलती रहती हैं। क्योंकि नये को कौन सीखे, कौन झंझट करे! पुराने के साथ एक सुविधा रहती है।

अब समझो कि तुम्हारी पत्नी यह जानती है कि अगर तुम्हें परेशान करेगी तो तुम क्रोधित हो जाते हो, नाराज हो जाते हो--और तुम्हें नाराज कर लेना तुम्हारी मालकियत है! पत्नी जानती है कि तुम्हारी बटन कैसे दबाना; जरा दबाई कि तुम नाराज हुए। नाराज कर लिया तो काम हो गया। अब तुम कितनी देर नाराज रहोगे? थोड़ी देर में नाराजगी के कारण अपराध-भाव पैदा होगा कि यह मैंने क्या किया, बेचारी स्त्री, इसको क्यों परेशान कर रहा हूं! जाकर साड़ी खरीद लाओगे। पत्नियां जानती हैं कि अगर साड़ी खरीदवानी हो तो पहले तुम्हें नाराज करो; पहले तुम्हें इतना नाराज कर दो, तुम्हें ऐसी गलत स्थिति में खड़ा कर दो, तुम्हारी स्थिति, कि तुम्हें खुद ही लगने लगे कि मैंने गड़बड़ की। जैसे तुम्हें लगा कि मैंने गड़बड़ की, कि अब इसका भरपाव, इसका कुछ प्रतिकार करना होगा, परिपूरक कुछ खोजना होगा। जाओ साड़ी खरीद लाओ, कि जाओ सिनेमा दिखा लाओ, कि पत्नी चाहती थी कि नया जेवर खरीदना है तो खरीद ही दो। अब कुछ न कुछ करके संतुलन वापिस स्थापित करना होगा।

अगर तुम ध्यान करोगे, संन्यस्त हो जाओगे, पत्नी तुम्हें नाराज न कर सकेगी। तुम हंसोगे, तुम मुस्कराओगे। तुम उसकी व्यर्थ की बकवास सुनकर परेशान न होओगे। तुम्हारे ऊपर से कब्जा गया। तुममें अपराध-भाव पैदा न करवा पायेगी, तो बस तुम्हारे ऊपर से मालकियत गई।

हमारे बड़े गहरे जाल हैं एक-दूसरे से बंधे हुए। पत्नी नहीं चाहती कि तुम शांत हो जाओ, क्योंकि तुम शांत हो गये तो शांत व्यक्ति पर कैसे मालकियत करोगे? पत्नी नहीं चाहती कि तुम ध्यान करो, न पति चाहते हैं कि पत्नी ध्यान करे।

बड़ी अजीब दुनिया में हम जी रहे हैं। पागलों की एक जमात है, उसमें कोई नहीं चाहता कि तुम पागलपन छोड़ो। अंधों की एक जमात है, उसमें कोई नहीं चाहता कि तुम आंखवाले हो जाओ, क्योंकि उससे सभी अंधों का अपमान होता है। वे खींचकर तुम्हें अंधा ही रखना चाहेंगे।

इसलिए केदारनाथ सिंह, अड़चन तो स्वाभाविक थी पहले ही सोच लेना था। कोई हर्जा नहीं, नहीं सोचा पहले, अब तो अड़चन साफ हो गई। मगर मैं तुम्हें कहना चाहता हूं, इतने जल्दी निर्णय नहीं बदलने चाहिए। नहीं तो मनुष्य की आत्मा पैदा नहीं हो पाती। आत्मा तो पैदा ही चुनौतियों में होती है।

अंधकार में टटोल ढूंढ़ता प्रकाश मैं!
दीप है, परन्तु लौ लगी नहीं;
ज्योति के समीप से जगी नहीं!
चाहता अनंत गगन भेदकर विकास मैं!

दीप कहीं और अमर ज्योति कहीं;
दीपक से अग्नि शिखा मिली नहीं!
फिर भी श्रम करता हूं जाता अभ्यास मैं!

माना, ये राहें हैं दुर्गम पथरीली;
लेनी हैं सांसें सब ठंडी, जहरीली!
मृत्यु से रहा निकाल छिपा अमृत हास मैं!

आशा है, पाऊंगा ज्ञान वह,
होगा जब सफल कठिन
पर्वत-अभियान यह!
कोने में दुबका-सा, भय से
प्रकाश के, ममता-तम
जायेगा छिप-छिप कर
सहम-सहम!
जाऊंगा स्वयं ज्योति का बन आकाश मैं!
अंधकार में टटोल ढूंढ़ता प्रकाश मैं!

संन्यास का भाव उठा, अंधेरे में प्रकाश के ढूंढ़ने की आकांक्षा उठी, अभीप्सा उठी, इसे मर न जाने दो। दीप है, परंतु लौ लगी नहीं! तुम भी दीये हो, जरा लौ लग जाये। ज्योति के समीप से जगी नहीं। तुम भी दीये हो, बुझे दीये हो, पुकारता हूं कि आओ मेरे करीब! जले दीये के करीब आ जाये बुझा दीया, बहुत करीब आ जाये, तो ही छलांग लगती है, ज्योति से फिर ज्योति जल जाती है।

अंधकार में टटोलता ढूंढ़ता प्रकाश मैं!
दीप है, परन्तु, लौ लगी नहीं;
ज्योति के समीप से जगी नहीं!
दीप कहीं और अमर ज्योति कहीं;
दीपक से अग्नि-शिखा मिली नहीं!

मिल सकती है! इसीलिए तो गैरिक वस्त्र चुने हैं संन्यास के लिये; वे ज्योतिशिखा के प्रतीक हैं, अग्नि के प्रतीक हैं। आओ करीब! साहस लो! शेष सब सम्हल जाता है। तुम मर भी जाओगे, तो भी दुनिया ऐसे ही चलती रहेगी। तुम्हारे संन्यस्त होने से कोई दुनिया अस्त-व्यस्त नहीं हो जाने वाली। हां, तुम्हारे संन्यस्त होने से तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जायेगी, तुम्हारी बाती जल जायेगी।

पांचवां प्रश्नः इस जगत में सर्वाधिक आश्चर्यजनक नियम कौन-सा है?

एक सूफी कहानी। एक चोर रात के समय किसी मकान की खिड़की में से भीतर जाने लगा, कि खिड़की की चौखट टूट जाने से गिर पड़ा और उसकी टांग टूट गयी। अगले दिन उसने अदालत में जाकर अपनी टांग के टूटने का दोष उस मकान के मालिक पर लगाया। मकान-मालिक को बुलाकर पूछा गया, तो उसने अपनी सफाई में कहाः इसका जिम्मेदार वह बढ़ई है, जिसने कि खिड़की बनायी। बढ़ई को बुलाया गया, तो उसने कहा कि मकान बनाने वाले ठेकेदार ने दीवार का खिड़की वाला हिस्सा मजबूती से नहीं बनाया था।

ठेकेदार ने अपनी सफाई में कहाः मुझसे यह गलती एक औरत की वजह से हुई, जो वहां से गुजर रही थी। उसने मेरा ध्यान अपनी तरफ खींच लिया था।

जब उस औरत को अदालत में पेश किया गया, तो उसने कहाः उस समय मैंने बहुत बढ़िया लिबास पहन रखा था। आमतौर पर मेरी तरफ किसी की नजर उठती नहीं है। सो, कसूर उस लिबास का है जो इतना बढ़िया सिला हुआ था।

न्यायाधीश ने कहाः तब तो उसे सीने वाले दर्जी को बुलाया जाये, वही मुजरिम है। उसे अदालत में हाजिर किया जाये। वह दर्जी उस स्त्री का पति निकला और वही वह चोर भी था जिसकी टांग टूटी थी।

यह इस जगत का सर्वाधिक आश्चर्यजनक नियम हैः जो गड्ढे तुम दूसरों के लिये खोदते हो, उनमें स्वयं गिरना पड़ता है। फिर तुमने चाहे गड्ढे जानकर खोदे हों चाहे अनजाने खोदे हों। जो कांटे तुम दूसरों के लिये बोते हो, वे तुम्हारे ही पैरों में छिदेंगे। अगर फूलों पर चलना हो तो सभी के रास्तों पर फूल बिखराना, क्योंकि तुम्हें वही मिलेगा जो तुम दोगे।

यह कहके आख़िरे-शब शम.अ हो गई ख़ामोश
किसी की िं.जदगी लेने से िं.जदगी न मिली।।

कितने पतंगों की िं.जदगी ले ली रात-भर में, मगर अंतिम परिणाम में शमा को खुद बुझ जाना पड़ता है। जो दूसरों को बुझाती रही रात-भर, सुबह होते खुद भी बुझ जाना होगा।

यह कह के आख़िरे-शब शम.अ हो गई ख़ामोश--
किसी की िं.जदगी लेने से िं.जदगी न मिली।।

फलक के तारों से क्या दूर होगी जुल्मते-शब।
जब अपने घर के चिरागों से रोशनी न मिली।।

वोह काफिले कि फलक जिनके पांव का था गुबार।
रहे-हयात से भटके तो गर्द भी न मिली।।

वोह तीरह-बख्त हकीकत में है जिसे मुल्ला।
किसी निगाह के साये की चांदनी न मिली।।

यह कह के आख़िरे-शब शम.अ हो गई ख़ामोश
किसी की िं.जदगी लेने से िं.जदगी न मिली।।

वही मिलेगा जो दोगे। जिंदगी दोगे, जिंदगी मिलेगी। जिंदगी लोगे, जिंदगी छिन जायेगी। जगत प्रतिध्वनि करता है। गीत गाओ, चारों तरफ से गीत तुम पर बरस जायेंगे। गालियां दो, चारों तरफ से गालियां तुम पर बरस जायेंगी। जो चाहो लो। मगर शर्त यही है कि वही दोगे तो मिलेगा। जगत प्रतिदान है। तुम दान करो। जगत प्रतिदान है। हजार गुना होकर लौट आता है सब।

यह कहानी तो एक व्यंग्य है, एक मजाक है। मगर जिंदगी ऐसी ही है। अगर इस नियम को तुम पहचानकर चलने लगे तो बस तुम्हारा रास्ता स्वर्ग की तरफ मुड़ गया। अगर इस नियम को न पहचाना, न समझे और इसके विपरीत चलते रहे तो नर्क ही तुम्हारी मंजिल है।

छठवां प्रश्नः श्री मोरारजी देसाई राष्ट्र-हित में यह करूंगा वह करूंगा, ऐसी बातें तो बहुत करते हैं, फिर कुछ करते क्यों नहीं?

एक सज्जन को मैं जानता हूं। वह जिंदगी भर से चुनाव लड़ते हैं और जिंदगी-भर से चुनाव हारते हैं। चुनाव लड़ना और चुनाव हारना, यही उनकी कथा है। कहीं भी चुनाव हो, कैसा भी चुनाव हो; उनको खबर भर लग जाये, वे चुनाव में खड़े होते हैं। और हर बार उनकी जमानत जब्त होती है।

मैं थोड़ा विचार में पड़ा कि मामला क्या है! और आदमी भले हैं, सच्चे हैं, ईमानदार हैं। मैंने खोज-बीन की, तो पता चला कि उनकी भलाई, उनकी सचाई, उनकी ईमानदारी के ही कारण जमानत जब्त होती है। एक चुनाव में खड़े थे, लोगों ने उनसे पूछा कि आप चुनाव में किसलिए खड़े हैं, जनता की सेवा के लिए? उन्होंने कहा कि नहीं, मुझे पद का मजा लेना है। अब इसको कोई वोट देगा, इस आदमी को? हालांकि, बात सच्ची कही उन्होंने कि जनता की सेवा वगैरह से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मुझे पद का मेवा लेना है; जनता की सेवा से मुझे क्या लेना-देना है? भाड़ में जाये जनता!

बिल्कुल ईमानदारी की बात कह दीः मगर ऐसे आदमी की जमानत तो जब्त होगी ही। लोगों ने मारा-पीटा नहीं, यही क्या कम है!

उनसे लोग पूछते हैं चुनाव में कि आप आश्वासन दें, क्या करेंगे? वह कहते हैंः कोई आश्वासन मैं नहीं दे सकता। क्योंकि आश्वासन अगर पूरे न हो सके तो? तो पहले मैं पद में पहुंच जाऊं; फिर तुम से कह सकूंगा कि क्या कर सकता हूं, क्या नहीं कर सकता हूं।

मगर ऐसे आदमी को कोई मत देगा? मत तो तुम झूठों को देते हो, बेईमानों को देते हो। और उन बेईमानों की सारी कला यही है कि तुम्हें खूब आश्वासन दें। और आश्चर्य तो यह है कि तुम्हें हर बार आश्वासन मिलते हैं; कभी पूरे नहीं किये जाते। फिर भी दोबारा जब मिलते हैं, तब तुम फिर उन्हें एकदम से गटक जाते

हो, एकदम से स्वीकार कर लेते हो। फिर आशा करने लगते हो कि अबकी बार पूरे होंगे। तुम्हारी आशा कब टूटेगी? कब तुम समझोगे?

आश्वासन राजनेता पूरे करने को नहीं देते। आश्वासन देने का लक्ष्य उनको पूरा करना नहीं है। आश्वासन देने का लक्ष्य तुम्हारा मत लेना है। जब मत ले लिया, आश्वासन देने का काम पूरा हो गया; फिर क्या पूरा करना है? फिर दूसरे काम पूरे करने हैं, जिनके लिये मत लिया था। वे भीतरी हैं। वे तुम से कहे नहीं थे। वे तुम से कहते तो तुम कभी मत न देते।

आखिर राजनेता की भी मजबूरी समझो। तुम मत तब दोगे जब वह तुम्हें बड़े-बड़े आश्वासन दे। और उसके भीतर जो छिपी इच्छाएं हैं जो उसे पूरी करनी हैं, वह तभी पूरी कर सकता है जब पद पर पहुंच जाये। तो तुम से कहेगा कुछ, करेगा कुछ। वही कुशल राजनीतिज्ञ है जो तुम्हें बार-बार धोखा दे सके और तुम्हें कभी भी इतना होश में न आने दे कि तुम यह सीधी-सी बात समझ जाओ कि राजनेता आश्वासन पूरा करने को नहीं देते हैं।

एक झील के किनारे मुल्ला मछली मार रहा था। झील के सामने तख्ती लगी है कि मछली मारना सख्त मना है। जो भी मछली मारेगा, मुकदमा चलाया जायेगा। मगर ऐसी झीलों में तो मछलियां मिलती हैं। जहां सभी मछलियां मार रहे हों वहां क्या खाक मिलेगा! दिन-भर बैठे रहो बंसी लटकाये, राम-राम जपो, कुछ नहीं होता। ऐसी झीलों में मुल्ला बहुत मछलियां मार चुका; कभी कुछ नहीं मिलता। और शाम को जाकर मछलीवाले से उसको मछली लेनी पड़ती है। क्योंकि पत्नी को तो दिखाना ही पड़ेगा कि मारकर आया है। नहीं तो वह कहेगी दिन-भर बरबाद किया। वह जाता है मछलीवालों की दुकान पर। बाहर खड़े होकर कहता है कि भाई, जरा मछली फेंक देना। मछलीवाला पूछता हैः मछली फेंक क्यों देना, ले क्यों नहीं लेते हाथ में? उसने कहा कि चाहे कुछ भी हो जाये, मछली पकड़ सकूं या न, लेकिन झूठ कभी नहीं बोलूंगा। पत्नी से जाकर कहना है कि मछली पकड़ी है। तुम फेंको तो मैं पकड़ लूं। झूठ मैं नहीं बोल सकता।

इधर तो मछलियां ही मछलियां थीं। उसने फिक्र छोड़ दी तख्ती की। ऐसे समय में कोई तख्तियां, नियमों इत्यादि की फिक्र करता है? कौन पकड़ने वाला है; देखा जायेगा जब जो होगा। मजे से मार रहा था मछलियां, तभी मालिक आ गया। बंदूक लिए पीछे आकर खड़ा हो गया। कहा कि मेरी तरफ देखो। तख्ती देखते हो?

मुल्ला ने तख्ती देखी, कहा कि हां, देखता हूं।

"तो यहां क्या कर रहे हो?" तो कहाः "मछलियों को तैरना सिखा रहा हूं।"

अब और क्या करोगे!

तो कांटे में आटा क्यों लगाया है?"

तो उसने कहाः मछली बिना उसके तैरना नहीं सीखती, इसलिए कांटे में आटा लगाया है। मछली फंसे तो फिर उसको तैरना सिखा दूं।

मछलियों को तैरना कोई सिखाता है? कांटे में आटा कोई मछलियों के हित में लगाता है?

तुम राजनेताओं के हाथ में मछलियां हो। और जब आश्वासन का आटा लगाकर कांटे तुम्हारे गले में डाले जाते हैं, तभी तो तुम उनको गटकते हो; नहीं तो तुम गटकोगे ही नहीं। आटे के लोभ में कांटे को गटक जाते हो। मतलब राजनेता का पूरा हो जाता है। और यह कोई एक की बात नहीं है, यह राजनीति का पूरा-का-पूरा जाल है। सदियों से आदमी इसी तरह शोषित हुआ है और होता रहेगा; जब तक कि जागे न, जब तक कि यह बात ठीक से देख न ले।

तुम यह भी नहीं सोचते कि राजनेता जो आश्वासन देते हैं, वे पूरे करेंगे कैसे? समस्याएं इतनी बड़ी हैं, वे पूरा करना भी चाहें, तो नहीं कर सकते। और तुम यह भी नहीं सोचते कि अगर वे पूरा करेंगे, तो तुम्हारे ही खिलाफ बहुत-सी बातें करनी होंगी, तब पूरा कर पायेंगे। और वह तुम बरदाश्त न करोगे।

देश गरीब है। हर राजनेता को तुम्हें आश्वासन देना पड़ता है कि गरीबी मिटा दूंगा। मगर तुम जानते हो गरीबी मिटाने के लिये जो करना पड़ेगा उसमें तुम्हें बहुत अड़चन आयेगी। तुम बरदाश्त न कर सकोगे। तुम्हें बच्चे पैदा करने पर बाधा पड़ जायेगी, क्योंकि अगर इस देश की गरीबी मिटानी है तो इस देश की संख्या रुकनी ही चाहिए। सच तो यह है कि अभी जितनी संख्या है इससे आधी संख्या होनी चाहिए, तो यह देश खाता-पीता खुशहाल हो सकता है, नहीं तो यह देश कभी खुशहाल नहीं हो सकता। संख्या रोज बढ़ी जा रही है। इस सदी के पूरे होते-होते एक अरब आदमी भारत में होंगे। अभी भी पचासी प्रतिशत लोग दरिद्र हैं। सम्यकरूपेण उनको भोजन नहीं मिल रहा है। अभी तो साठ-पैंसठ करोड़ ही आबादी है, इस सदी के पूरे होते-होते सौ करोड़ आबादी होगी, एक अरब।

हम भयंकर गर्त में जा रहे हैं, लेकिन अगर रोकना हो तो तुम्हें अड़चन आती है। तो तुम कहते हो कि यह तो बात ठीक नहीं कि हमें जबर्दस्ती संतति-नियमन लगाया जाये। तो तुम्हें खुश करना हो तो संतति-नियमन नहीं होना चाहिए। मगर तब तुम गरीब रहोगे। तब आश्वासन पूरा नहीं होता।

मोरारजी देसाई के सत्ता में आने के बाद संतति-नियमन के लिये जो भी महत्वपूर्ण प्रयास इंदिरा ने किया था वह सब समाप्त कर दिया गया, क्योंकि तुम्हें खुश करना है। इसीलिये तुमने उनको वोट दी।

इंदिरा से तुम नाराज हो गये, क्योंकि इंदिरा ने चेष्टा की कि कुछ हो सके। मगर उस चेष्टा में कष्ट होनेवाला है। अब किसी के मवाद को निकालना चाहोगे शरीर से, तो पीड़ा होगी। आपरेशन करोगे, तो दर्द होगा। और दर्द कोई झेलना नहीं चाहता।

इस देश की समस्याएं इतनी बड़ी हैं कि तुम्हारी स्वेच्छा पर छोड़ दी जायें तो पूरी नहीं हो सकतीं। तुम कहते होः "ब्रह्मचर्य से हम बच्चों को राकेंगे।" कैसे रोकोगे? कितने ब्रह्मचर्य से लोग बच्चों को रोक सके हैं? ब्रह्मचर्य तो तुम साध रहे हो सदियों से! लेकिन अगर संतति-नियमन का कोई उपाय तुम्हें दिया जाये, तो तुम्हें बेचैनी होती है। तुम घबड़ा जाते हो।

अगर पुरुषों की नसबंदी की जाये, तो वे समझते हैं कि उनका पुरुषत्व नष्ट हुआ। मूढ़तापूर्ण बात है। नसबंदी से किसी का पुरुषत्व नष्ट नहीं होता। मगर लोग भागते हैं कि यह नसबंदी न हो जाये। दूसरे गांव में भाग जाते हैं। मुझे ऐसे आदमियों का पता है जो इंदिरा के समय में, उनके गांव में नसबंदी चल रही थी, भागे सो भागे... अब तक नहीं लौटे हैं! इतनी दूर निकल गये मालूम होता है, कि अब कभी लौटेंगे कि इसका भी कुछ शक है। नसबंदी करनेवाले डाक्टरों पर हमले बोले गये।

यह तो फिर कैसे गरीबी दूर होगी? और अगर गरीबी दूर करना हो, तो तुम्हारी हड़तालें और तुम्हारे घिराव, और तुम्हारी मोर्चाबंदी और तुम्हारी सारी मूढ़ताएं अगर चलती रहें, तो गरीबी बंद नहीं होने वाली। कारखानों में काम ही नहीं होता। हड़ताल करो, कि कारखाना चले? लेकिन इसको हम मानते हैं हमारी स्वतंत्रता है। हड़ताल, घिराव इसमें हम बड़ा मजा लेते हैं। नारेबाजी में हमें बड़ा रस है। बस कोई भी नारा लगाता निकलता हो कि फिर तुम चल पड़ते हो साथ। चिल्लाने में खूब मजा आता है। शोरगुल मचाने में दिल की भड़ास निकल जाती है।

मैं एक सज्जन को जानता हूं, जो किसी पार्टी का मोर्चा हो उसमें जाते थे। कम्युनिस्ट का हो, कि सोशलिस्ट का हो, कि कांग्रेस का हो, कि जनसंघियों का हो। मैं उन्हें देखता था तो मैं थोड़ा हैरान था कि आदमी है किस पार्टी का! आखिर मैंने एक दिन उनका हाथ पकड़ा, कि मैं तुम्हें बार-बार देखता हूं इसी झाड़ के नीचे खड़े होकर। कोई भी मोर्चा, कोई भी उपद्रव, तुम चले... ।

उन्होंने कहाः हमें किसी से क्या मतलब? हमें तो चिल्लाने में मजा आता है। कवायद भी हो जाती है, घूमना भी हो जाता है, दिल की भड़ास भी निकल जाती है।

मगर उन्होंने कहा कि एक बात मुझे भी आप से पूछनी है, क्योंकि मैं भी आप से परेशान हूं, किसी पार्टी का मोर्चा हो, किसी का उपद्रव हो, आप क्यों झाड़ के नीचे हमेशा खड़े होकर देखते हैं? मैं भी आप से यही पूछना चाहता था। क्योंकि आप अकेले आदमी हैं जो मुझे पकड़ सकते हैं, और मुझे कोई नहीं जानता। मैं तो सभी पार्टियों का सदस्य हूं। सदस्य भी हैं वे सभी पार्टियों के! एक अकेले आप आदमी हैं जिनसे मुझे डर है क्योंकि आप मुझे हमेशा देखते हैं। और आप मुझे गौर से देखते हैं। आप क्यों खड़े रहते हैं?

उनकी परेशानी भी ठीक है, क्योंकि खड़े-खड़े देखने से तो कोई भड़ास नहीं निकलती। खड़े-खड़े देखने से तो कोई उपद्रव करने की जो तबीयत है वह भरती नहीं। मैंने उनसे कहाः जैसे मैं तुम्हें उपद्रव करते देखता हूं, ऐसे ही मैं मन को भी अपने एक दिन उपद्रव करते देखता था। देखते-देखते मन विदा हो गया। वहां उपद्रव शांत हो गया। अब मैं तुम सब के उपद्रव अध्ययन कर रहा हूं, कि किसी तरह तुम्हें भी साथ दे सकूं और तुम्हारे उपद्रव समाप्त हो सकें। मैं सभी के उपद्रव देख रहा हूं।

इस देश में भारी उपद्रव चल रहे हैं। तुम इन उपद्रवों को देखो, जरा द्रष्टा बनो, तो तुम्हें समझ में आयेगा कि इन उपद्रवों के चलते इस देश की कोई समस्या हल नहीं हो सकती। समस्याएं बड़ी हैं, बहुत बड़ी हैं।

एक बार दो चींटियां एक हाथी से मिलीं। एक ने कहाः "क्यों रे, हम से कुश्ती लड़ेगा?" इससे पहले कि हाथी कुछ बोलता, दूसरी चींटी कहने लगीः "अरे, बेचारा कैसे लड़ेगा, वह अकेला और हम दो!

तुम जरा समस्याएं देखते हो, कितनी बड़ी हैं! समस्याएं बहुत बड़ी हैं। और भारत की क्षमता बहुत छोटी--चींटी जैसी! सदियों-सदियों से हमने भारत की क्षमता को बढ़ाया नहीं है। हम सिकुड़ गये हैं। हम फैलना भूल गये हैं। हमें विस्तार की कला नहीं रही याद। हमने दीनता और गरीबी को भी गौरव मान लिया है। संतोष... हर स्थिति में संतोष। उसका यह दुर्भाग्य का फल भोग रहे हो। संतोष ठीक है उसके लिये जिसने स्वयं को जान लिया। संतोष स्वयं को जानने की छाया है; समाधि की सुवास है। उसके पहले तो संतोष झूठा है, सांत्वना है, अपने मन को समझाना है। जैसे लोमड़ी ने समझा लिया था कि अंगूर खट्टे हैं, क्योंकि पहुंच नहीं पाई अंगूरों तक। कोशिश तो की, पहुंच नहीं पाई। सोच लिया अंगूर खट्टे हैं, पहुंचने योग्य ही नहीं हैं। ऐसे हम अपने अहंकार को छिपा लेते हैं संतोष में।

सदियों से इस देश को संतोष का जहर पिलाया जा रहा है। फिर हम भाग्यवादी हो गये हैं। संतोषी भाग्यवादी हो ही जायेगा।

एक काहिल आदमी ने अपने दोस्त से कहाः देखो, कुदरत कैसी मेरी मदद करती है! मुझे कुछ पेड़ काटने थे और तूफान ने आकर मेरी समस्या हल कर दी। फिर मुझे कूड़े-करकट का एक ढेर जलाना था, तो बिजली गिरी और वह खुद-ब-खुद जल गया।

यह सुनकर दोस्त बोलाः अब आपका आगे का क्या प्रोग्राम है? उसने जवाब दियाः मुझे आलू और गाजर जमीन से निकालनी हैं इसलिए भूचाल का इंतजार कर रहा हूं।

संतोषी आदमी है... फिर धीरे-धीरे भाग्यवादी हो ही जायेगा। इस देश को भाग्यवाद ने मारा! समस्याएं बड़ी होती चली गयीं और हम समाधान खोज न पाये। उल्टे समाधान खोजने की जगह, हम दरिद्रता को आध्यात्मिक मानने लगे। यह वही अंगूर खट्टे वाली बात है। हम कहने लगेः दरिद्रता बड़ी आध्यात्मिक है! दरिद्रता बड़ी पवित्र है! दरिद्रता बड़ी निर्दोष है! दरिद्रता में बड़ा संतोष रहता है। धनी आदमी को बड़ी चिंता होती है, बड़ी फिक्र होती है, बेचैनी होती है। गरीब को न फिक्र न फांटा। ऐसे-ऐसे सुंदर-सुंदर हमने अपने चारों तरफ जाल खड़े कर लिये हैं।

और मजा यह है कि जिन्हें तुम चुनते हो, मोरारजी देसाई जैसे लोग, वे भी इसी तरह की बातों को मानते हैं। इन से हल कैसे होगा? और तुम उन्हीं को चुनते हो, जो तुम्हारी बातें मानते हैं। तुम उनको तो चुन ही नहीं सकते जो तुम्हारी बातें नहीं मानते हैं। इस संकट को समझो। तुम उनको चुनते हो जो तुम्हारी बातें मानते हैं। तुम्हारी बातों के ही कारण तुम परेशान हो। तुम्हारी बातों ने ही तुम्हें मारा है। तुम्हारे विचारों ने तुम्हारी फांसी लगा दी है। और तुम उनको चुनते हो जो तुम्हारे विचारों से सहमत हैं। हल कैसे होगा?

कैंसर के मरीजों ने तय कर रखा है कि हम तो डाक्टर उसी को चुनेंगे, जो कैंसर का मरीज हो। हम जैसा हो, उसी को चुनेंगे। अंधों ने चुनाव कर लिया है कि हम तो सिर्फ अंधों को चुनेंगे, हम आंखवालों को क्यों चुनें? हम तो अपने जैसे लोगों को चुनेंगे। मगर फिर आंख का इलाज कैसे होगा?

यह एक बड़ा भारी संकटपूर्ण प्रश्न है--बड़ा उलझाव का है। इस देश में चुनाव में उनको मत मिलते हैं, जो तुम्हारी मूढ़ताओं का समर्थन करते हैं। उनको तो तुम मत दे ही नहीं सकते जो तुम्हारी मूढ़ताओं के विपरीत हैं, क्योंकि वे तो दुश्मन हैं।

मेरी तो लोग जबान काटना चाहते हैं, हाथ काटना चाहते हैं। पत्र आते हैं रोज कि मैं बोलना बंद कर दूं, नहीं तो मुझे मार डाला जाएगा। मुझे भी वे वोट दे सकते थे। मुझे भी वे राष्ट्रपति बना सकते थे, अगर मैं उनकी मूढ़ताओं का समर्थन करता। अगर मैं एक लंगोटी लगाकर खड़ा हो जाता, एक भिक्षापात्र ले लेता और दरिद्र-नारायण के गीत गाता--और कहताः "भगवान तो वहां है जहां मजदूर पत्थर तोड़ रहा है। और भगवान तो वहां है जहां किसान भूखा मर रहा है।" तो जरूर कोई मेरी जबान नहीं काटता और न कोई मेरे हाथ काटने की योजनाएं बनाता, न कोई गोली मारने की बातें करता। तो वे मुझे उठा लेते सिंहासन पर। तब मैं भी अंधा होता और अंधे मेरे साथ हो जाते।

इस देश को जरूरत है आंखवालों की। और आंखवाले तुम्हारी मान्याताओं से राजी नहीं हो सकते। तुम्हारी मान्याताएं गलत हैं। तुम्हारी धारणाएं गलत हैं। उन्हीं धारणाओं ने तुम्हारी यह गति कर दी।

अमरीका तीन सौ सालों के इतिहास में समृद्धि के शिखर पर पहुंच गया। हमारा इतिहास दस हजार साल पुराना है। हम दरिद्रता के शिखर पर पहुंच गये! जरूर कहीं कोई अड़चन है, कहीं कोई तर्क की भूल है। और हमारी भूमि किसी दूसरी भूमि से कम उपजाऊ नहीं। और हमारा देश किसी दूसरे देश से कम सौभाग्यशाली नहीं। हमारे पास पहाड़ हैं, नदियां हैं, भूमि हैं--सब रंग, सब ऋतुएं हैं। हमारा देश तो सारी ऋतुओं को लिए हुए है। ऐसी कोई जगह नहीं जो हमारे देश में न हो। अधिकतम वर्षा वाले स्थान हमारे देश में हैं। कम-से-कम वर्षा वाले स्थान हमारे देश में हैं। बर्फ जमी रहे जहां सदा, ऐसे भी स्थान हमारे देश में हैं। आग बरसती है जहां, ऐसे भी स्थान हमारे देश में हैं। हमारा देश तो सारी दुनिया का एक छोटा-सा रूप है। इतनी समृद्ध भूमि तो कोई भी नहीं है।

लेकिन असमृद्ध भूमियां समृद्ध हो गयीं। जिनके पास कुछ भी न था, उनके पास सब हो गया। और हम बैठे हैं! हम भूचाल की राह देख रहे हैं। क्योंकि गाजर और मूलियां निकालनी हैं। हम भाग्यवादी हैं। और सिकुड़ने की कला हमने ऐसी सीखी है... और ऐसी मूढ़ता पूर्ण आदतें हो गयी हैं, जिसका हिसाब नहीं।

हमारे मंत्री, मोरारजी देसाई एंड कंपनी, सारे लोग इसी भाषा में सोचते हैं--कि मंत्रियों की तनख्वाह थोड़ी-सी कम कैसे हो जाये। जैसे कि मंत्रियों की तनख्वाह थोड़ी कम हो जाने से इस देश की गरीबी मिट जायेगी। तुम बातें क्या कर रहे हो? संजीव रेड्डी सोचते हैं कि छोटे मकान में राष्ट्रपति कैसे रहने लगे। रहते-वहते नहीं, सोचते हैं। सोचने से ही काफी हवा बन जाती है; लोगों को एकदम भाव हो जाता है कि आहा, यह रहा महात्मा!

मगर राष्ट्रपति के किसी छोटे मकान में रहने से देश की समस्या हल हो जायेगी? इतनी छोटी समस्या है? इतनी आसानी से अगर समस्या हल होती होती तो कभी की हल हो गयी होती। इतने लोग तो छोटे-छोटे झोपड़े में रह रहे हैं और समस्या हल नहीं हो रही। एक सज्जन और छोटे झोंपड़ों में रहने लगे, इससे समस्या हल हो जायेगी? इतने लोग तो बेकार हैं, तनख्वाह ही नहीं मिल रही बिल्कुल। कुछ सज्जनों ने अपनी तनख्वाह कम कर ली, इससे समस्या हल हो जायेगी? मगर यह पाखंड खूब चलता है।

एक साहब बेहद कंजूस थे। एक दिन वह सुबह-सुबह उदास सिर झुकाये बैठे थे, कि उनके एक दोस्त ने पूछाः भाई क्या बात है, क्यों उदास हो? उन्होंने उत्तर दियाः पहले पंद्रह रुपये किलो घी मिलता था और अब दस रुपये किलो घी हो गया है। यह सुनकर दोस्त ने कहाः फिर तो तुम्हें खुश होना चाहिए; एक किलो घी लेने पर पांच रुपये बचेंगे। उन साहब ने कहाः यही तो दुख है, पहले मैं घी न खाकर पंद्रह रुपये बचाता था और अब केवल दस रुपये बचेंगे।

इस तरह समस्याएं हल की जा रही हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा घर आया, उसने अपने बाप से कहा कि सुनते हो, आज मैंने आठ आने बचाये; बस में नहीं बैठा, बस के पीछे दा.ैडता आया। मुल्ला ने उसको दो चपत रसीद दी, एकदम दो चपत रसीद किये, कि उल्लू के पट्ठे! अगर बचाना ही था, तो टैक्सी के पीछे भागना था। साढ़े तीन रुपये बचते। अट्ठनी बचाकर आ गये!

इस तरह के लोग इस देश की समस्याएं सुलझाने में लगे हैं। कोई सोचता हैः चरखा कातने से समस्या सुलझ जायेगी। कोई सोचता है कि सप्ताह में एक दिन उपवास करने से समस्या सुलझ जायेगी। छोड़ो ये मूढ़तायें, और छोड़ो इस तरह के मूढ़ों का संग, इनका पीछा। और इनको तुम्हारी समस्याओं से कोई प्रयोजन नहीं है। इनको प्रयोजन कुछ और है--

इधर कुर्सी, उधर कुर्सी
यहां कुर्सी, वहां कुर्सी
जगह पायी नहीं ऐसी
नहीं पहुंची जहां कुर्सी
सखे! यह हाल है
इस देश में कुर्सी के मारों का
गधे भी रेंक कर कहते हैं--
लाओ इधर वह कुर्सी

कुर्सियों कुर्सियों में खूब ठनी
कुर्सियों कुर्सियों से मेल हुआ
कुर्सियों कुर्सियों की आंख लड़ी
यारो, शासन न हुआ, खेल हुआ
कुर्सी हमारी आन-बान-शान है कुर्सी
कुर्सी ही दीन-धर्म है, भगवान है कुर्सी
कुर्सी की याद मन में उठाती है कुरकुरी
पिछले कई जन्मों का वरदान है कुर्सी
किस्सा कुर्सी का बात कुर्सी की
दिन भी कुर्सी का रात कुर्सी की
जिह्वा जपती है मंत्र जन-हित का
दिल में खटकी है घात कुर्सी की

ये सारे लोग कुर्सी के पीछे दीवाने हैं; इन्हें कोई तुम्हारी समस्याएं हल करनी हैं? ये बेचारे अपनी समस्याएं हल करने में लगे हैं। तुम्हारी समस्याएं तो उनसे हल हो सकती हैं, जिनको अपनी समस्याएं हल हो गयी हों।

इस देश को समाधिस्थ लोगों का नेतृत्व चाहिए। इस देश को ऐसे लोगों का नेतृत्व चाहिए, जिनकी खुद की कोई समस्या नहीं है। तो कुछ हल हो; नहीं तो हल नहीं हो सकता। हल की जगह हालतें और रोज बिगड़ती जाती हैं। लेकिन तुम इसी तरह के लोगों के पीछे हो। तुम इन्हीं की चापलूसी में लगे हो। लोग इन्हीं के चमचे हो गये हैं। और कारण है, क्योंकि चमचों को लगता है कि ये भी माल लूट रहे हैं, कुछ चमचे के हाथ भी लग जायेगा। थोड़ा-बहुत हम भी... । और ऐसा नहीं है कि वे गलती में हैं, कुछ-न-कुछ उनके हाथ लग भी जाता है। मगर देश से किस को लेना-देना है?

एक साहब एक शानदार होटल में पहुंचे। और उन्होंने उमदा कीमती खाना खाया। जब बैरा बिल लाया, तो उन्होंने पैसे देने से इनकार कर दिया। बैरा मैनेजर के पास पहुंचा, उसे सारी बातें बताईं। मैनेजर ने आकर उनकी अच्छी तरह मरम्त की। मार खाकर वह कराहते हुए दरवाजे की तरफ बढ़ रहे थे कि अचानक बैरे ने झपटकर उनके मुंह पर दो घूंसे रसीद दिये। मैनेजर ने बैरे को डांटा, जब मैं मार चुका हूं, तो तुम्हें माने की क्या जरूरत पड़ी? बैरे ने कहाः जी, वह तो आपने अपना बिल वसूल किया था; मुझे भी तो अपना टिप वसूल करने दीजिए।

तो नेता हैं, वे अपना बिल वसूल कर रहे हैं; उनके चमचे हैं, वे अपना टिप वसूल कर रहे हैं। तुम कुटे-पिटे जा रहो हो। मगर तुम इन्हीं को बार-बार समर्थन दिये जा रहे हो, कोई करे भी तो क्या करे?

देश को जगाओ! देश को थोड़ा-सा होश से भरो। समस्याएं बड़ी हैं। तुम्हें बड़े लोग चाहिए। जो तुम्हारी समस्याएं हल कर सकें। दूर-दृष्टि लोग चाहिए। वैज्ञानिक क्षमता, प्रतिभा के लोग चाहिए। सड़े-गले लोगों को मुर्दों को तुम बिठा दोगे दिल्ली में... इससे सिर्फ समय कटेगा। और समय के साथ समस्याएं बढ़ती चली जाती हैं। अच्छे-अच्छे नाम... परिणाम कुछ भी नहीं हैं।

लोकतंत्र के नाम पर श्री मोरारजी देसाई को तुमने पद पर बिठा दिया है। और लोकतंत्र की सब भांति हत्या की जा रही है। और समस्याएं हल करना तो दूर, लोकतंत्र की सब भांति हत्या की जा रही है।

कम-से-कम शासन को श्रेष्ठतम शासन कहा गया है। और इस देश में सर्वाधिक शासन हो रहा है। हर छोटी-छोटी चीज पर कानून पर कानून। इतने कानूनों का जाल कि आदमी जी सके, यह असंभव मालूम होता है। यह कैसा लोकतंत्र है जहां कानून ही कानून के जाल हैं जहां आदमी को रत्ती-भर हिलने-डुलने की सुविधा नहीं है? फिर लोग बेईमानियां करते हैं। फिर लोग कानूनों से बचने के लिए रास्ते निकालते हैं। फिर उनकी बेईमानी रोकने के लिए और कानून बनाने पड़ते हैं। फिर कानूनों के छेद भरने के लिए और कानून बनाने पड़ते हैं। और लोग नये छेद खोज लेते हैं। और यह जाल बढ़ता जा रहा है।

कम-से-कम शासन होना चाहिए। न्यूनतम शासन होना चाहिए। लोगों को थोड़ी जीने की स्वतंत्रता दो, थोड़ी सांस लेने की स्वतंत्रता दो। वह भी नहीं हो पा रहा है। खाने-पीने की स्वतंत्रता नहीं है।

मैं शराब का विरोधी हूं, लेकिन शराब-बंदी का पक्षपाती नहीं हूं। क्योंकि यह तो व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता है। अगर कोई व्यक्ति शराब पीना ही चाहता है, तो उसे पीने का हक है। यद्यपि हमें फिक्र करनी चाहिए कि उसे पूरी तरह ज्ञात हो कि शराब के क्या-क्या नुकसान हैं। देश में हवा होनी चाहिए कि शराब के नुकसान क्या-क्या है। लेकिन फिर भी कोई तय करे पीने का, तो लोकतांत्रिक व्यवस्था में उस पर जबर्दस्ती नहीं होनी चाहिए। किसी एक आदमी को क्या हक है?

मोरारजी देसाई शराब के विरोध में हो सकते हैं; लेकिन उनको क्या हक है कि अपनी जिद को, अपनी हठ को सारे देश की छाती पर थोप दें? कल समझ लो, कोई शराबी मुल्क का प्रधानमंत्री हो जाये और कहे सबको शराब पीनी पड़ेगी, तब तुम कहोगे कि यह कैसा लोकतंत्र हुआ! तुम्हें पीना हो पीयो, न पीना हो न पीयो। तुम्हें जो ठीक लगता हो उसका प्रचार करो, हवा पैदा करो, लोक-मत बनाओ; लेकिन जबर्दस्ती क्यों?

अब विनोबा भावे कहते हैं कि वह अनशन करेंगे, अगर बंगाल में गऊ-हत्या बंद नहीं होती। मैं कोई गऊ-हत्या का पक्षपाती नहीं हूं। लेकिन फिर भी इस तरह की धमकियां देना हिंसात्मक है। बकरों की हत्या हो, विनोबा जी को कोई फिक्र नहीं। विनोबा जी जरा अपने गुरु महात्मा गांधी की तो याद करो, जिंदगी-भर बकरी का दूध पीकर जिये। बकरियां कटती रहें, बकरे कटते रहें, कोई मतलब नहीं। बकरी-बकरे जैसे मुसलमान हैं! गायें हिंदू हैं! यह भी खूब रहा, बकरी-बकरों को पता ही नहीं कि वे कब मुसलमान हो गये!

हिंसा नहीं होनी चाहिए, लेकिन इसका वातावरण पैदा करो। फिर भी अगर लोग कुछ मांसाहार करना ही चाहते हैं, तो उनको जबर्दस्ती से रोकना तो गलत बात है। फिर तो कल कोई जैन सत्ता में होगा तो वह कहेगाः मछली भी मत खाओ। फिर तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। वह कहेगा कि प्याज भी मत खाओ, आलू भी नहीं। क्योंकि जैन धर्म में जमीन के नीचे गड़ी हुई सब चीजें वर्जित हैं। उन्हें खाने से पाप होता है। तो आलू, मूली, गाजर सब पाप!

प्रत्येक को अपने ढंग से जीने दो। लोकतंत्र का अर्थ ही यह होता हैः जब तक कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे के जीवन में बाधा न डालने लगे, तुम बाधा न बनो। लोकतंत्र का अर्थ नकारात्मक होता है।

और जो करने योग्य है, वह तो करेंगे नहीं। संतति-नियमन होना चाहिए, वह तो करेंगे नहीं। शराब-बंदी होना चाहिए। जैसे शराब बंद हो जायेगी तो देश की समस्याएं हल हो जायेंगी, तुम सोचते हो! गरीबी मिट जायेगी, बीमारी मिट जायेगी, अशिक्षा मिट जायेगी? गऊ-वध बंद हो जायेगा तो तुम सोचते हो देश की समस्याएं मिट जायेंगी, गरीबी मिट जायेगी? एकदम धन की वर्षा हो जायेगी? अगर ऐसा होता तो अमरीका जैसे देश को तो दुनिया का सबसे गरीब देश होना चाहिए, क्योंकि गऊ-हत्या चलती है।

लेकिन ये तरकीबें हैं तुम्हारे मन को उलझाने की। गऊ-हत्या की बंदी होनी चाहिए, यह सुनकर हिंदू खुश हो जाता है, वोट दे देता है। गऊ-हत्या होने से, नहीं होने से कोई समस्या का हल नहीं है। और याद रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूंः गऊ-हत्या होनी चाहिए। लेकिन एक वातावरण होना चाहिए। सुसंस्कार की एक हवा पैदा होनी चाहिए। जोर-जबर्दस्ती नहीं। धर्म-परिवर्तन तक की आजादी नहीं है, और जयप्रकाश नारायण कहते हैंः यह दूसरी आजादी आ गयी। अब कोई हिंदू अगर ईसाई होना चाहे तो नहीं हो सकता। कोई ईसाई अगर हिंदू होना चाहे तो नहीं हो सकता। क्यों? यह कैसा देश है! लेकिन हिंदुओं को खुश करना है। जनसंघी सत्ता में पहुंच गये हैं, उनको खुश रखना है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जहर सत्ता में है; उसको खुश रखना है। तो अब कोई हिंदू ईसाई नहीं हो सकता।

लेकिन अगर कोई हिंदू ईसाई होना चाहे, तो क्यों रोक होनी चाहिए? कोई ईसाई हिंदू होना चाहे तो क्यों रोक होनी चाहिए? अगर कोई व्यक्ति अपने धर्म को भी नहीं चुन सकता, तो यह कैसा लोकतंत्र हुआ, यह कैसी विचार की स्वतंत्रता हुई?

आश्वासन तो कोई पूरे नहीं हुए। ये आश्वासन, जो कभी नहीं दिये थे, ये पूरे किये जा रहे हैं। ये किसी ने मांगे भी नहीं थे।

देश को एक बहुत जागरूक लोकमत बनाना चाहिए।

मेरा राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। मैं चाहता भी नहीं कि मेरे संन्यासियों का राजनीति से कोई लेना-देना हो। लेकिन फिर भी मैं कहूंगा कि मेरे संन्यासी को देश में एक जागरूक लोकमत पैदा करने में सहयोगी होना चाहिए, क्योंकि समस्याएं तुम्हारी भी हैं। देश की समस्या तुम्हारी समस्या है। मैं नहीं कहता कि तुम चुनाव लड़कर और लोकसभा में पहुंच जाओ। नहीं! मगर जहां हो हवा पैदा करो, जागरूकता थोड़ी पैदा करो। लोगों को कहो कि समस्याएं, असली समस्याएं क्या हैं। असली समस्याओं का समाधान क्या हो सकता है। झूठी समस्याओं को बताओ कि ये झूठी समस्याएं हैं; इनमें आदमियों का मन उलझाया जाता है। तुम्हारा मन हटाने के लिए झूठी समस्याएं खड़ी कर दी जाती हैं।

और लोगों को इतना सजग करो कि जब वे मत देने जायें, तो जो कम-से-कम झूठ बोलता हो--यह तो मैं कह ही नहीं सकता कि जो सच बोलता हो उसको वोट देना क्योंकि वह तो मुश्किल है--जो कम-से-कम झूठ बोलता हो, जो कम-से-कम राजनैतिक हो, जो कम-से-कम पद लोलुप हो, उसको ही मत देना। इसकी हवा पैदा करो। और जिंदा लोगों को मत दो। मुर्दों को, जो कभी के मर चुके हैं, जिन्हें कब्रों में होना चाहिए था, वे चूड़ीदार पाजामा पहनकर, अचकन पहनकर सत्ता कर रहे हैं! जिंदगी को मत दो, जवानों को मत दो! इसकी हवा जरूर पैदा करो।

आखिरी प्रश्नः आपका संदेश?

चाहता हूं
एक ताजी गंध भर दूं
सब दिशाओं में
तोड़ लूं फिर आम्रवन के
ये अनूठे बौर

पके महुए आज मुट्ठी में,
भरूं कुछ और
दूं सुना
कोई सुवासित श्लोक फिर
मन की सभाओं में
आज-प्राणों में उतारूं
एक उजला गीत
भावनाओं में बिखेरूं
चित्रमय संगीत
खिलखिलाते
फूल वाले छंद धर दूं
मृत हवाओं में

मर गया है यह देश, इस पर श्वास फूंक दूं! इसके गीत खो गये हैं, इसे छंदबद्ध कर दूं! इसकी वीणा खो गई है, इसके तार छेड़ दूं! और यह हो सकता है, तुम्हें देखता हूं तो भरोसा आता है कि यह हो सकता है।

इक तसव्वुर जिंदगी पाने को है
ऐसा लगता है कि तू आने को है
हर तरफ है तेरे आने की खुशी,
हर तरफ है शोर तेरे प्यार का
जिक्र है तेरे लबो रुखसार का
आसमां भी फूल बरसाने को है।

यूं निखरती जा रही है जिन्दगी,
खिल उठे जैसे बहारों में चमन
गुनगुनाती फिर रही है यूं हवा
जैसे छू कर आई हो तेरा बदन
ये हंसी वादी महक जाने को है।

ऐसा लगता है कि तू आने को है
तेरे आ जाने से ऐ जाने-बहार
मेरे नग्मों को जुबां मिल जायेगी,
इन फजाओं को मिलेगा बांकपन
रास्ते को कहकशां मिल जायेगी।

हुस्न तेरा जलवा दिखलाने को है।
ऐसा लगता है कि तू आने को है।

तुम गैरिक संन्यासियों को देखता हूं तो आशा बंधती है कि परमात्मा पुकारा जा सकता है। फिर मंदिर बन सकता है इस पृथ्वी पर--जीवंत, नृत्यमय, उत्सवमय! पर बहुत कुछ तुम्हें करना है।

हे अमृत, मृत्यु से उठो, उठो!
अंधकार, अंधकार!
फैला है आर-पार!
आपको न जहां कहीं
अपनी भी पहचान!
तुम वहां प्रकाशवान
हे मनुज, मर्त्य से उठो, उठो!

पशुता का पाश तुम्हें
जड़ता का वास तुम्हें!
कर रहे ये ही कुछ
सदियों से नाश तुम्हें!
तुम अनंत शक्ति-वीर्य,
हे पुरुष द्वंद्व से उठो, उठो!

झुक गया गाण्डीव;
झुक गया स्कन्ध ग्रीव!
बन गये तुम प्रवीर!
क्षण में हतभाग्य, क्लीव!
पूर्णपात्र तुम विराट,
हे प्रबल, दैन्य से उठो, उठो!

युग-युग से तुम अजेय,
प्राप्त करो पुनः श्रेय;
स्वप्नों की माया में
भूल गये पुण्य ध्येय?
तुम अशोक, परम हर्ष;
हे कमल, पंक से उठो, उठो!

तुम अकाट्य, अविच्छेद;
भाग नहीं, नहीं भेद!
क्या अभाव, जो ललाट पर
छलक उठा स्वेद?

तुम अखंड ज्ञान-ज्योति
हे अरुण, कुहा से उठो, उठो!

भय से क्यों भृकुटी बंक?
स्वयं बने हीन, रंक!
वर्ना, तुम तो महान,
तुम प्रबुद्ध, तुम अशंक!
हे सुह्रद, द्रोह से उठो, उठो!

रौंद रहा है भविष्य;
खींच रहा है अतीत!
वर्तमान तो घिसा
पिसा हुआ है सभीत!
तुम प्रदीप्त तेज-पुंज;
हे अनल, धूम्र से उठो, उठो।

यही संदेश है कि जागो। यही संदेश है कि उठो। हे कमल, पंक से उठो, उठो!

आज इतना ही।